भौगोलिक शब्दकोष

और

परिभाषायें

डॉ० अमरनाथ कपूर, एम० ए०, डी० फिल०
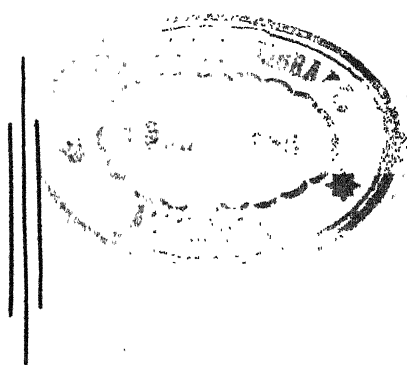
किताब महल, इलाहाबाद : बम्बई

प्रस्तावना

वैज्ञानिक शब्दावली और परिभाषाओं के क्षेत्र में प्रस्तुत **भौगोलिक शब्दकोष और परिभाषायें** का अपना एक विशेष स्थान है। इसके अन्तर्गत मानव, प्रादेशिक, भौतिक, गणित तथा आर्थिक भूगोल में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों को समझाया गया है। भूगोल में अनेक विषयों का समन्वय है। इसीलिए प्रस्तुत पुस्तक में भूगर्भ विज्ञान, आकाश विज्ञान, जलवायु शास्त्र, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान, अर्थशास्त्र, जीव विज्ञान तथा समाज-शास्त्र से सम्बन्धित अनेक शब्दों का निरूपण स्वभावतः हो गया है। इस सम्बन्ध के कठिनतम शब्दों को भी बड़ी ही सुचारु व सरल रीति से समझाया गया है। फलतः पुस्तक की सहायता से भूगोल के विद्यार्थी तथा सामान्य पाठक दोनों को ज्ञान प्राप्ति व स्पष्टीकरण में महत्वपूर्ण योग मिलेगा।

प्रस्तुत शब्दकोष में लगभग २५०० पारिभाषिक शब्दों को समझाया गया है। ये पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो साधारणतया भूगोल के ग्रन्थों में पाये जाते हैं और जिन्हें भूगोल के लेखकगण बहुधा प्रयोग में लाते हैं। परन्तु उनकी परिभाषा के अभाव में या अँग्रेजी भाषा में व्यक्त होने के कारण सामान्य पाठकों के लिए इन शब्दों का समझना बड़ा ही दुर्भर होता है। प्रायः ये शब्द नाम मात्र ही रह जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में अँग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ कोष्ट के भीतर उनका हिन्दी रूपान्तर भी दे दिया गया है। अधिकतर हिन्दी रूपान्तर वे हैं जो भारत सरकार की सलाहकार समिति द्वारा स्वीकार कर लिए गये हैं। प्रत्येक पारिभाषिक शब्द की व्याख्या के साथ-साथ उसके द्वारा इंगित भौगोलिक रूप या तथ्य विशेष का विवरण भी दिया गया है। प्रत्येक विवरण में विशेष रूप या तथ्य का प्रादुर्भाव, भेदों और गुणों का विस्तृत विवेचन किया गया है। प्रत्येक विवरण में विवेचन सर्वतः पूर्ण, स्पष्ट और व्यवस्थित है। पारिभाषिक शब्दों को अँग्रेजी की वर्णमाला के अनुसार रखा गया है।

इस शब्दकोष में विभिन्न भौगोलिक तथ्यों के बीच आन्तरिक संकेत (Cross

references) द्वारा तारतम्य रक्खा गया है। विभिन्न आन्तरिक संकेतों द्वारा पाठक को सम्बन्धित शब्दों का ज्ञान ही नहीं होता बल्कि उसको और अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा मिलती है। विषय को रोचक व स्पष्ट बनाने के लिए स्थान-स्थान पर रेखाचित्र व फोटो भी दिये गये हैं। ये चित्र विवरण को जीवन प्रदान कर पाठकों को विषय का सम्यक ज्ञान कराने में सहायक होते हैं।

निश्चय ही प्रस्तुत ग्रन्थ पुस्तकालयों, लेखकों, शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिये अपूर्व एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण रहेगा।

अमरनाथ कपूर

भौगोलिक शब्दकोष व परिभाषायें

Aa (आ) ज्वालामुखी उद्गार में लावा, मिट्टी, राख, पत्थर आदि वस्तुयें बाहर निकलती हैं। लावा तथा पिघली हुई चट्टानों का तरल पदार्थ धीरे-धीरे ठंडा होकर जम जाता है और उसके बड़े-बड़े ठप्पे या टीले बन जाते हैं। इन्हें ही हवाई द्वीपसमूह में आह-आह के नाम से पुकारते हैं।

Ablation (परिवहन) बहता हुआ जल, चलता हुआ हिम और वायु में केवल स्थल को काटने की ही शक्ति नहीं रहती बल्कि उन्हीं में से कुछ बहुत से पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने की भी योग्यता रखते हैं। इस कार्य को परिवहन कहते हैं और इस कार्य को करने में नदियाँ या बहता हुआ जल तथा हिमनदी या चलता हुआ हिम बहुत सफल होता है। इनकी तली में मिट्टी, बालू, पत्थर और बड़े-बड़े चट्टानखंड लुढ़कते हुए या घसीटते हुये चलते हैं। साथ-साथ पत्थर के छोटे-बड़े टुकड़े जल या हिम में मिलकर सतह पर बहते हुए भी चलते हैं।

Ablation morraines (प्रवाह मोरेन्स) हिमनदियाँ पदार्थों को दो प्रकार से लाती हैं। एक तो तली के साथ-साथ और दूसरे अपने प्रवाह में मिले हुये। इस प्रकार से मिले हुये मिट्टी, बालू व पत्थर को मोरेंस कहते हैं। यह कई प्रकार के होते हैं और प्रवाह मोरेन्स की विशेषता यह है कि वे पत्थर के छोटे तथा बडे टुकड़े पहाड़ के किनारों से टूटकर हिमनदियों के तल पर गिर जाते हैं। इन मोरेंस की दिशा हिम प्रवाह की समानान्तर न होकर इधर-उधर की चट्टानों के समानान्तर होती हैं। तली से ऊपर आते-जाते रहने के कारण इनका रूप घिसकर पोल बन जाता है। ये मोरेंस ग्रीनलैन्ड के हिम प्रवाह पर विशेष रूप से छितरे पाये जाते हैं।

Aborigines (आदि निवासी आदिम जातियाँ) पिछली दो या तीन शताब्दियों में संसार में नये देशों को खोजकर निकाला गया है। खोज से पहिले भी वहाँ लोग रहा करते थे और उन्हीं को आदिम जातियों के नाम से पुकारा जाता है। भारत के कोल, भील, अमरीका के रेड इन्डियन, और आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड के मावरी तथा काले मूर लोग संसार में पायी जानेवाली असंख्य आदिमजातियों में से प्रमुख है। ये लोग अधिकांशतः असभ्य व जंगली होते हैं। शिकार करके ये अपना बसर करते हैं। इन जातियों के रीति-रिवाज भी अजीब ही होते हैं। यद्यपि इनको सभ्य बनाने का प्रयत्न किया गया है परन्तु अभी तक जहाँ कहीं ये आदिम जातियाँ पाई जाती हैं उनका रहन-सहन बिल्कुल ही जंगली है।

Abrasion (काट-छांट) शुष्क स्थल के महासागरतल से ऊपर प्रकट होने के साथ ही साथ कुछ शक्तियाँ उस को घिसकर या काट कर नष्ट कर देने के लिए प्रस्तुत रहती हैं। इन शक्तियों में सूर्य, वायु, पाला, बहता हुआ जल, चलता हुआ हिम और समुद्र का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नष्ट करने का यह कार्य दो प्रकार का होता है, रासायनिक तौर पर और शारीरिक तौर पर। शारीरिक तौर पर नष्ट-भ्रष्ट करने का कार्य घिसकर या काट-

छाँट कर ही होता है। जल, वायु और हिम के प्रहार से कठोर से कठोर चट्टानों में भी काट-छाँट हो जाती है। चट्टानों से बड़े-बड़े टुकड़े कटकर गिर जाते हैं और फिर आपस में घिसकर वे महीन बालू या कंकड़ में बदल जाते हैं। इन सब क्रियाओं को काट-छाँट कहते हैं।

Absolute Drought (पूर्ण शुष्कता) जहाँ पर जलवृष्टि इतनी थोड़ी या इतनी अनिश्चित होती है कि किसी प्रकार का जीवन-यापन असंभव हो तो उन प्रदेशों की दशा को शुष्कता कहते हैं। ब्रिटिश द्वीपसमूह में जब लगातार १५ दिन तक वृष्टि इतनी कम होती है कि प्रतिदिन ·०१ इंच तक वर्षा नहीं होती तो इस काल को पूर्ण शुष्कता कहते हैं। यह पारिभाषिक शब्द अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर नहीं स्वीकार किया गया है। इसका प्रयोग केवल ब्रिटिश द्वीपसमूह तक ही सीमित है।

Absolute Humidity (वास्तविक आर्द्रता) वायुमण्डल में भाप का अंश काफी महत्वपूर्ण रहता है। इसके यह अर्थ अधिक होती है। वैसे तो अपेक्षाकृत भाप की मात्रा बहुत कम होती है परन्तु इसकी उपस्थिति से संसार के प्राणियों के जीवन पर बड़ा असर पड़ता है और तापांश में भी हेरफेर हो जाता है। साधारणतया यह देखा जाता है कि गर्म वायु में अधिक भाप लेने की शक्ति होती है और जैसे ही हवा ठंडी होती है भाप पानी बन जाता है। अतः वायु जितनी ही अधिक गर्म होगी उसमें नमी या आर्द्रता का अंश भी उतना ही अधिक होगा। वायु के फी घन फीट इकाई में आर्द्रता की वास्तविक मात्रा ग्रेनों (Grains) में निकाली जाती है और उसे वास्तविक आर्द्रता कहते हैं।

Abyssal (समुद्रतल सम्बन्धी) समुद्र में जल की मात्रा अगाध होती है और इस कारण उसकी सबसे निचली तली का पता लगाना बड़ा ही दुष्कर होता है। ऐसा माना जाता है कि समुद्र की सबसे निचली तली सतह से २००० फैदम से अधिक गहराई पर स्थित है। परन्तु यह केवल अनुमान मात्र ही है। वास्तविक गहराई का ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया है। इतनी गहराई तक सूर्य की रोशनी तो पहुँच नहीं पाती। इसलिए इस प्रदेश में किसी भी प्रकार की वनस्पति का उगना तो असंभव सा है। हाँ, कई प्रकार के जीव-कीटाणु अवश्य पाये जाते हैं और ताप, भोजन, व आक्सीजन गैस की कमी या अधिकता के अनुसार उनका स्वभाव अलग-अलग होता है। इन जीव-जन्तुओं का भोजन वही कुछ होता है जो ऊपर की सतह से डूब कर नीचे की तली तक पहुँच जाता है। इतनी गहराई पर इस समुद्री फर्श पर प्रायः एक सी दशायें पायी जाती हैं। सभी जगह हमेशा घोर अन्धकार रहता है, तापमान बहुत नीचा रहता है और इसके फलस्वरूप काफी ठंडक रहती है। समुद्र की तलैटी पर अनुपजाऊ चिकनी मिट्टी, जिसे लाल मिट्टी कहते हैं, पायी जाती है या प्राणिज पंक मिलता है। यह लाल मिट्टी ज्वालामुखी उद्गार से प्राप्त होती है। ये उद्गार या तो समुद्र की तलैटी में होते रहते हैं या ऊपरी धरातल के विस्फोटों से निकलकर आते रहते हैं। लोहे की मात्रा वर्तमान होने से ही इसका रंग लाल होता है।

Abyssal deposits (समुद्रतल निक्षेप) समुद्र तल पर पाये जाने वाले ठोस व आधे ठोस पदार्थों का निक्षेप बड़ा ही विस्तृत होता है। इस निक्षेप में पायी जाने वाली वस्तुयें तीन प्रकार से समुद्र की तली तक पहुँचती हैं। कुछ तो वायु द्वारा उड़ाकर ले जायी जाती हैं जैसे कि लाल व नीला दलदल, कुछ अपने आप जीव-जन्तुओं के मरने पर सड़ कर बन जाते हैं जैसे कि ऊज़स और कुछ ऊपर की सतह से डूबकर या समुद्रतल के ज्वालामुखी उद्गारों से निकलकर इकट्ठा हो जाती है जैसे लाल मिट्टी आदि। यह निक्षेप अधिकतर पंकमय

या दलदली होता है और उपर्युक्त तीनों प्रकार की वस्तुयें सभी जगह मिली पायी जाती है। ज्वालामुखी उद्गार, मूँगे के कीड़े तथा अन्य प्रकार की जीव-जंतुओं के सड़ने की रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप ये निक्षेप बनते हैं। वैसे तो इनका कोई विशेष आर्थिक महत्व नहीं है परन्तु इनके विविध रंग व रूप के कारण समुद्री फर्श बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होने लगा है। (देखिये Oozes, Red clay, Blue mud)

Abyssal Rocks (पातालीय अग्नेय चट्टानें) इन्हें Plutonic Rocks कहते हैं। बहुत पहले पृथ्वी का आन्तरिक भाग अथवा केन्द्र पिघले हुए पदार्थ का बना था। इसका कारण यह था कि पृथ्वी के अन्तरतम का तापमान बहुत अधिक था। धीरे-धीरे यह पिघला हुआ तरल पदार्थ ठंडा होता गया और साथ-साथ ठोस चट्टान बनता गया। फलतः इस पिघली हुई चट्टान राशि में मिले हुए विभिन्न खनिज पदार्थ ठोस रवे के रूप में बदल गये। अतः भूकेन्द्र में स्थित ये आग्नेय चट्टानें पूरी तरह से रवेदार हैं। ग्रेनाइट इसी प्रकार की चट्टान है।

Acreage (क्षेत्रफल) खेती की फसलों का क्षेत्रफल एकड़ों में नापा जाता है और किसी विशेष फसल में देश की कितनी भूमि लगी हुई है उसे उसका क्षेत्रफल कहते हैं।

Active Volcano (चैतन्य ज्वालामुखी) जिन ज्वालामुखी पर्वतों में कभी-कभी उद्गार आ जाया करते हैं उन्हें चैतन्य ज्वालामुखी कहते हैं। इस प्रकार के चैतन्य ज्वालामुखी भूपटल के निर्बल भागों की पंक्तियों पर व्यवस्थित रूप से पाये जाते हैं। इनके उद्गार आजाने से उनके आसपास के प्रदेश में किसी भी प्रकार की आर्थिक क्रिया व जीवन स्थायी रूप से सम्भव नहीं होता। इटली के सिसली द्वीप और जापान में इस प्रकार के अनेकों ज्वालामुखी हैं। (देखिये Volcano)

Adret (Adretto) (आडरेट) जिस पर्वत का ढाल दक्षिण की ओर, भूमध्य-रेखा की तरफ होता है ताकि सूर्य की किरणें सीधी आकर पड़ती हैं और दिन के अधिकांश भाग में वहाँ काफी प्रकाश व गर्मी रहती है, उसे आडरेट कहते हैं। यह पारिभाषिक शब्द फ्रांसीसी भाषा का है और इसका प्रयोग अल्प प्रदेश के ढालों के विषय में विशेष रूप से किया जाता है। इटली में इस प्रकार के पर्वतीय ढालों को आडरेटो (Adretto) और जर्मनी में सॉनन सीटे (Sonnenseite) कहते हैं।

Advection (समानान्तर तापवहन) वैसे तो वाहनिक धाराओं द्वारा वायु में गर्मी फैलती है परन्तु बहुधा ऐसा भी होता है कि वायु के एक सतह से गर्मी दूसरी सतह तक लम्ब रूप धाराओं में प्रवाहित न होकर समानान्तर धाराओं द्वारा ले जायी जाती है। पृथ्वी के सम्पर्क से निचली वायु गर्म होकर ऊपर को उठती है और ऊपरी सतहों को भी गर्म कर देती है। इस क्रिया को Convection या वाहनिक क्रिया कहते हैं। इसके विपरीत जब भूमध्यरेखीय अक्षांशों की गर्म वायु उष्ण कटिबंध से शीत व शीतोष्ण कटिबंध की ओर पृथ्वी के समानान्तर बहती हुई चलती है और उच्च अक्षांश की शीतल वायु को अपने सम्पर्क से गर्म कर देती है। इस क्रिया को समानान्तर तापवहन कहते हैं।

Aeolian (वायुद्वारा) भूपटल पर क्रियाशील शक्तियों में वायु का स्थान भी बड़ा ही महत्वपूर्ण है। वायु अपने प्रहार व आघात द्वारा बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़-फोड़ डालती है और फिर इस प्रकार के चूर्ण को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाकर इकट्ठा कर देती है। वायु द्वारा की गई इन क्रियाओं की तीक्ष्णता शुष्क मरुस्थली प्रदेशों में विशेष रूप से प्रखर होती है। वायु मोटी बालू, धूल व मिट्टी को उड़ाकर समुद्री भागों से अन्दर की ओर ले जाती है और चीन के कुछ भागों में स्थल वायु द्वारा लाई हुई धूल के मोटे आवरण सेढ कर

पाया जाता है। सहारा जैसे मरुस्थलों की बालू व बालू के टीले भी वायु द्वारा ही बनाये गये हैं। (देखिये Loess)

Aerography (वायुमण्डल विज्ञान) वायुमण्डल विज्ञान वह विद्या है जिसके अन्तर्गत हम वायुमण्डल की विशेषताओं, विस्तार आदि का अध्ययन करते हैं। (देखिये Atmosphere)

Aerology (वायुमण्डल विज्ञान) वायुमण्डल में पायी जाने वाली गैसों आदि की दशा का वैज्ञानिक अध्ययन इस शाखा के अन्तर्गत आता है। इस ज्ञान के द्वारा हम वायुमण्डल की ऊपरी परतों का अध्ययन करते हैं। (देखिये Metereology)

Affluent (सहायक नदी) सहायक नदी वह होती है जिसका जल किसी बड़ी नदी के प्रवाह में आकर मिल जाता हो। बड़ी नदी के प्रवाह क्षेत्र में सहायक नदी किसी भी दिशा से आकर कहीं पर भी मिल सकती है। सहायक नदी के संगम से मुख्य बड़ी नदी की चौड़ाई तो नहीं बढ़ती परन्तु जलराशि की वृद्धि हो जाने से वेग काफी तीव्र हो जाता है। जहाँ मुख्य नदी या सहायक नदी का जल धूल मिला हुआ या दलदली होता है वहाँ वेग तो तीव्र नहीं हो पाता और फलतः मुख्य नदी का विस्तार बन्द हो जाता है।

Afforestation (वनाच्छादन) जहाँ पहिले वन या पेड़-पौधे नहीं भी थे वहाँ पर पेड़-पौधे उगकर वन प्रदेश में परिणत करने की क्रिया को ही वनाच्छादन कहते हैं। संसार के जलवायु व कृषि विशेषज्ञों का अनुमान है कि पृथ्वी के मरुस्थल प्रदेश बराबर विस्तार में बढ़ रहे हैं और इसलिए ऐसी सम्भावना है कि थोड़े समय में मरुस्थलों के किनारों पर स्थित वर्त्तमान खेतिहर प्रदेश भी ऊसर व बंजर हो गये। अतः सभी राष्ट्रों ने मरुस्थल के प्रसार को रोकने के लिए वनाच्छादन क्रिया को अपनाया है। इस नीति के अनुसार वैज्ञानिक अन्वेषण के पश्चात् उचित पेड़-पौधों के बीजों का पता लगाकर उन्हें बोया जाता है ताकि वनस्थली या वनस्पतिमय हो जाने पर वायु का प्रहार कम हो जाये, धूल के कण पेड़ों की जड़ों में फँस कर रह जायें और वायु उन्हें उड़ाकर इधर-उधर न ले जा सके। फ्रांस के पश्चिमी तटीय प्रदेश में वनाच्छादन नीति से एक नये युग का सूत्रपात हो गया है। भारत में थार मरुस्थल के प्रसार को रोकने के लिए भी यही नीति अपनाई गई है। फलतः राजस्थान और पेप्सू राज्यों में हवाई जहाजों द्वारा बीजारोपण किया गया है।

After-glow (सूर्यास्त प्रकाश) पर्वतीय प्रदेशों में ऊँचाई के कारण बहुधा ऐसा होता है कि यद्यपि सूर्य क्षितिज रेखा से ३-४ डिग्री नीचे जा चुका होता है फिर भी पश्चिम दिशा की ओर से बड़ा तेज प्रकाश या चमक आती रहती है। सूर्य अस्त होने के बाद के इस प्रकाश को सूर्यास्त प्रकाश कहते हैं।

Agglomerate (विस्फोट द्वारा निर्मित चट्टानें) ज्वालामुखी विस्फोट से कई प्रकार के मिले-जुले सामान निकलते हैं। उद्गार होते ही राख, कंकड़, पत्थर, पिघली हुई चट्टानों का लावा, धुआँ आदि निकलता है। उद्गार के समय निकले हुए चट्टानों के छोटे टुकड़े बहुधा लावा प्रवाह में सने रहते हैं और बाहर निकलने पर जैसे-जैसे यह राशि ठंडी होती है चट्टानों के टुकड़े व जमे हुए लावा के टुकड़े इकट्ठा होकर एक विशाल ढेर-सा बन जाते हैं। इन्हें विस्फोट द्वारा निर्मित चट्टानें कहते हैं और इसकी विशेषता यह है कि इसमें पाये जाने वाले टुकड़े नुकीले व राख के कंकड़ों की अपेक्षा बड़े होते हैं।

Aggradation (नदीतल उत्क्षेप) जब पानी बहता है तो वह अपने प्रवाह की गति के अनुसार जमीन काटता चलता है। इस प्रकार की जलधारा अपने मार्ग के लिए छोटी-छोटी नालियाँ काट लेती है और जहाँ नदियाँ वेग से नीचे की ओर उतरती हैं, उनका मुख्य

कार्य अपने इधर-उधर की भूमि को नष्ट करना ही होता है। इस प्रकार की काट-छाँट से जल प्रवाह में चट्टानों के बड़े-बड़े टुकड़े आ गिरते हैं और प्रवाह के साथ-साथ लुढ़कते चलते हैं। चट्टानों के बड़े-बड़े टुकड़े आपस में टकराते हैं और धीरे-धीरे ये छोटे-छोटे गोल पत्थर तथा बालू के रूप में परिणत हो जाते हैं। जब नदी मैदानी भाग में प्रवेश करती है तो उसकी गति मन्द हो जाती है और तब तक उसमें मिश्रित कंकड़-पत्थर व बालू की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि कंकड़-पत्थर बालू का बहुत बड़ा अंश पानी के नीचे नदी की तली में बैठने लगता है। इस प्रकार नदी की तली पर निक्षेप बनते-बनते केवल जल की गहराई ही कम नहीं हो जाती बल्कि नदी की तल पहले की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँची भी हो जाती है और फलतः उस का ढाल तीव्रतर हो उठता है।

Agonic line (ध्रुवनिर्देशक रेखा) ध्रुवघड़ी से हमें उत्तर दिशा का ज्ञान होता है। यह उत्तर दिशा दो प्रकार की होती है—एक तो वास्तविक ध्रुवीय उत्तर और दूसरा चुम्बकीय उत्तर। बहुधा कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ ध्रुवघड़ी की सुई शून्य बिन्दु पर रहती है। वहाँ से वास्तविक व चुम्बकीय उत्तर की ओर बड़ी समान रूप से निर्देश करती है। अब इस प्रकार के स्थानों को एक मानचित्र पर अंकित करके यदि उन्हें एक रेखा द्वारा मिला तो वही रेखा ध्रुवनिर्देशक रेखा कहलायेगी। सामान्यतः यह देखा जाता है कि इस रेखा से हम जितनी दूर इधर या उधर बढ़ें उतना ही चुम्बकीय झुकाव भी बढ़ता जाता है।

Agriculture (कृषि, खेती) भूमि को जोतकर बीज बोने के उपरान्त फसल उगने के काम को खेती या कृषि कहते हैं। कृषि का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब मनुष्यों में सभ्यता आई और जनसंख्या बढ़ने से उन्होंने उपयोगी पौधों को उगाने का काम शुरू किया। पहिले मनुष्य वनों से कन्दफूल इकट्ठा करके या जंगली पशुओं का शिकार करके अपना पेट भरा करता था। परन्तु इससे उसकी प्राकृतिक सम्पत्ति दिन पर दिन क्षीण होती जाती थी। इसलिए उसने उपयोगी पशुओं को पालना शुरू किया। इस धंधे में भी उसकी भोजन की समस्या का स्थायी हल नहीं प्राप्त हुआ और इसीलिए उसने उपयोगी पौधों को उगाने खेती का धंधा अपनाया। प्रारम्भ में उपयोगी पौधे भी जंगली अवस्था में ही उत्पन्न होते थे। उनके आस-पास अनुपयोगी पौधों की भी भरमार रहती थी। अतएव मनुष्यों को उपयोगी पौधों की फसल काटने में और अनाज इकट्ठा करने में बड़ी कठिनाई होती थी। इसलिए मनुष्य ने जंगली अनुपयोगी पौधों को उखाड़ फेंका और एक भूमिक्षेत्र से केवल एक उपयोगी फसल उगाने का काम शुरू किया। परन्तु इसमें देखा गया कि इस प्रकार बहुत सी भूमि बेकार पड़ी रहती है। अतएव उसने सारे टुकड़े को साफ करके उसे जोत कर उपयोगी पौधों के बीज बराबर-बराबर दूरी पर डाल कर खेती करना प्रारम्भ कर दिया।

खेती के दो रूप या प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं—**प्रारम्भिक** या **प्राचीन** और **नवीन या विकसित**। खेती की प्रारम्भिक प्रणाली के अनुसार मनुष्य जंगलों को जलाकर साफ कर लेते और फिर कुछ वर्ष तक लगातार उस पर फसल पैदा करते रहते थे। जब इस प्रकार खेती करने से भूमि निर्बल हो जाती तब वे उस टुकडे को छोड़ कर दूसरे टुकड़े को साफ कर लेते और उस पर खेती करने लगते। परन्तु जनसंख्या के बढ़ने से भूमि की कमी मालूम पड़ने लगी और इस प्रकार खेती करना आर्थिक दृष्टिकोण से हानिकर प्रतीत होने लगा। अभी भी उष्ण कटिबंध के कुछ प्रदेशों में जैसे अमेजन और कान्गो नदी की घाटियों की जंगली जातियाँ इसी प्रकार की खेती करती हैं।

खेती के विकसित रूप में मनुष्य एक ही स्थान पर जम कर रहने लगा है और उसी भूमि

मे लगातार खेती करता है। इतना ही नहीं बल्कि साल में एक ही भूमि से दो-तीन फसलें तक उगाने की कोशिश करता है। विज्ञान की प्रगति के साथ मनुष्य ने नये तरीके अपना लिये हैं। वह शुष्क प्रदेशों में सिंचाई द्वारा जल देकर और कम उपजाऊ भूमियों में खाद की सहायता से खेती करने लगा है। इस प्रकार वह भूमि के प्रत्येक टुकड़े से पूरा लाभ उठाना चाहता है। अधिकांश देशों में गहरी खेती की जाती है। अधिक से अधिक पूँजी, और श्रम लगाकर थोड़ी भूमि से उत्पत्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु खेती की रीति व विधि प्रदेश विशेष की जलवायु, वर्षा, तापक्रम और मिट्टी के उपजाऊपन के अनुसार अलग-अलग होती है। (देखिए **Dry Farming**)

Agricultural Area (कृषिक्षेत्र) जिस प्रदेश में जलवायु व भूमि की दशायें खेती के अनुकूल होती हैं और इस कारण जहाँ के लोगों का मुख्य उद्यम भूमि से फसलें उगाना होता है उसे कृषिक्षेत्र कहते हैं। इसके अन्तर्गत खेतिहर, भूमि, फसलों के खेत, घास के मैदान व चरागाह आदि सम्मिलित रहते हैं।

Air Gap (वायुदर्रा) ऐसी सँकरी घाटी है जिसमें से होकर पहिले पानी प्रवाहित होता था परंतु जल के प्रवाह की दिशा में परिवर्तन हो जाने के कारण अब वह सूखी पड़ी हो। इसे **Wind Gap** या **Water Gap** के नाम से भी पुकारते हैं। यह उन प्रदेशों में विशेष मिलता है जहाँ नदी हरण (**River Capture**) कार्य बहुत बढ़ चुका होता है। अब बड़ी नदी अपने जल विभाजक से काटती हुई दूसरी समीपवर्ती नदी के स्रोत को अपने में मिला लेती है तो समीपवर्ती नदी में जल की मात्रा कम हो जाती है। स्रोत रहित होने के कारण एक वह समय आता है जब पानी बिल्कुल सूख जाता है और केवल शुष्क सँकरी तलैटी ही रह जाती है।

Air transport (वायु यातायात) वायुयानों के विकास के साथ-साथ हवाई यातायात का नया अध्याय शुरू हुआ है। वर्तमान युग के दो महायुद्धों से वायुयानों को विशेष प्रोत्साहन मिला है और यातायात में वायुयानों की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी। वायु द्वारा यातायात बड़ा ही वेगशील होता है परन्तु सस्ते दामों में भारी वस्तुओं को ले जाने के लिए रेल व जहाज ही अधिक सुविधाजनक होते हैं। बहुमूल्य सामग्री, डाक व यात्रियों के लिए ही हवाई जहाजों का अधिक प्रयोग होता है। वायु यातायात पर जलवायु और भूप्रकृति का बड़ा प्रभाव पड़ता है। भारी वर्षा, गहरे बादल, बर्फ व बालू की आँधियाँ इसमें बाधा डालती हैं। हवाई अड्डे बनाने के लिए समतल भूमि अच्छी रहती है। ऊँची-नीची भूमि के ऊपर उड़ना भी खतरे से खाली नहीं। वर्त्तमान युग हवा का युग है और संयुक्त राष्ट्र अमरीका, जर्मनी, रूस, संयुक्त राज्य और हालैंड में इसकी विशेष उन्नति हुई है।

Air Survey (वायु निरीक्षण) मानचित्रकार के अंकन का आधार निरीक्षण होता है। दूसरे महायुद्ध के बाद से हवाई जहाजों की सहायता से निरीक्षण किया जा सकने लगा है। विविध प्रकार के फोटो खींचने वाले यन्त्रों को हवाई जहाज में काफी ऊँचाई पर ले जाकर उनके द्वारा नीचे के क्षेत्रों की फोटो ले लेते हैं। इस विधि द्वारा दुर्गम प्रदेशों का हाल भी मिल सकता है। वायु निरीक्षण विधि से प्राप्त चित्र अधिक यथार्थ, अधिक विस्तृत व सूक्ष्म तथा कम समय में तैयार हो जाता है। इस प्रकार लाखों व करोड़ों मील का क्षेत्र थोड़े समय में निरीक्षण किया जा सकता है।

हवाई जहाज से ली गई फोटो दो प्रकार की होती है। एक तो वह जो फोटो खींचने के यन्त्र को लम्ब रूप में रखकर ली गई है और दूसरी वह जिन्हें फोटो यन्त्र को पृथ्वी के समानान्तर रख कर खींचा गया है। प्रथम को **Verticals** कहते हैं और दूसरे को

obliques कहते हैं । ये फोटो सिर्फ कुछ वर्गमील प्रदेश को ही चित्रित कर पाती है । इसलिए यदि हम साथ मिले बहुत बड़े क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें कई तस्वीरें एक साथ मिला कर रखना होता है । वास्तव में भविष्य के लिए मानचित्रकार को वायुनिरीक्षण चित्रों को ही आधार मानना होगा ।

Airport (हवाई बन्दरगाह) राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय वायु मार्गों पर स्थित हवाई अड्डों को Airport कहते हैं । इन हवाई अड्डों पर प्रत्येक कम्पनी व राष्ट्र के जहाजों को विश्राम करने, तेल आदि भरने और चुंगी आदि की जाँच के लिए रुकना पड़ता है । करांची, बम्बई, पलाम, दमदम, काहिरा, लन्दन आदि इसी प्रकार के हवाई बन्दरगाह हैं ।

Airroute (वायुमार्ग) वायु यातायात के इस युग में विभिन्न देशों व राष्ट्रों में सम्पर्क शीघ्र हो सकता है । इसके लिये वायुयानों को कुछ विशेष मार्गों का अनुसरण करना पड़ता है । सुरक्षा व संचालन सुविधा के दृष्टिकोण से वायुमार्ग नदियों की दिशा का अनुसरण करते हैं और मार्ग में पहाड़ी व रेगिस्तानी भागों को बचाते हुए चलते हैं ।

Aitoff's Projection (एटॉफ्स अंकन) यह अंकन सम क्षेत्रफल विधि का है और इसमें सम्पूर्ण पृथ्वी तल एक अंडाकार पट पर दिखलाई जाती है । इस अंकन पर खींचे गये मानचित्रों के केन्द्र में स्थित भूखंड तो बहुत कुछ ठीक आकृति के होते हैं परन्तु पूर्वी व पश्चिमी किनारों पर स्थित भूमियों का आकार बेढंगा व बेतरतीब हो जाता है । केवल केन्द्रीय भागों को छोड़कर अन्य सभी जगह क्षेत्रफल व आकृति दोनों ही त्रुटिपूर्ण व भ्रष्ट हो जाती हैं । हाँ इसकी एक विशेषता जरूर अच्छी है । वह यह कि देशान्तर व अक्षांश रेखाओं के मिलन बिन्दु पर बनने वाले कोण बहुत यथार्थ होते हैं और उनमें भ्रष्टता का अंश उतना अधिक नहीं होता जितना अन्य समक्षेत्रफल अंकनों में । ये कोण केन्द्र से बाँयी या दाँयी ओर भी बहुत कम भ्रष्ट होते हैं । संक्षेप में इस अंकनपर पृथ्वी के भागों का क्षेत्रफल तो ठीक रहता है पर भूखंडों का आकार केवल केन्द्र को छोड़ कर अन्य सभी बिगड़ जाते हैं । हाँ इस अंकन पर मानदण्ड सभी दिशाओं में ठीक रहता है ।

Alidade (एलीडेड) कोण व उससे सम्बन्धित दूरी नापने के लिये कई प्रकार के यन्त्र प्रयोग में लाये जाते हैं । उन सभी में निर्देशक सुई लगी होती है । उसकी हिलने-डुलने वाली सुई को एलीडेड कहते हैं ।

Alkali Flat (क्षार भूमिक्षेत्र) शुष्क प्रदेश में बहुधा ऐसे दलदल पाये जाते हैं जिनमें इधर-उधर से आकर नदियाँ गिरती हैं । प्रत्येक नदी अपने साथ बहाकर कुछ नमक लाती है और इस झील से जलाशय से निकास न होने के कारण इसका पानी बहुत नमकीन हो जाता है । वर्षा के समय तो यह एक छिछली दलदली झील सी हो जाती है परन्तु जब गर्मी के मौसम में सारा पानी भाप बनकर उड़ जाता है तो यह प्रदेश कठोर दलदल वाला रह जाता है और इसकी सतह पर नमक या क्षार की पपड़ी जमी रह जाती है । इस प्रकार का क्षार भूमिक्षेत्र प्रायः बंजर व अनुपजाऊ रहता है । कभी-कभी सिंचाई किये जाने वाले प्रदेशों में अधिक काल तक पानी बँधा रहने पर उसके नीचे की भूमि के आवश्यक नमक पानी के साथ-साथ नीचे चले जाते हैं और पानी सूख जाने पर उस पर क्षार की सूखी पपड़ी सी जमी रह जाती है । इस प्रकार के प्रदेश भी खेती के लिए सर्वथा बेकार हो जाते हैं ।

Alluvium (मृत्तिका) नदी अपने प्रवाह में इधर-उधर की चट्टानों को नष्ट करती चलती है और इस प्रकार के टूटे हुए टुकड़े नदी के जल में गिर जाते हैं । आपस में टकराकर तली से रगड़ खाकर और पानी के वेग में घसीट कर ये बड़े-बड़े टुकड़े धीरे-धीरे छोटे गोल

पत्थर बन जाते हैं और फिर चूर्ण होकर मोटी बालू, महीन मिट्टी तथा कंकड़ में परिणत हो जाते हैं। बड़े-बड़े टुकड़े तो नदी प्रवाह में लुढ़कते चलते हैं परन्तु बालू, महीन मिट्टी आदि तो पानी में मिली रहती है और इसी कारण नदी के जल का रंग मटमैला दिखाई पड़ता है। गति मन्द होने पर यह मिली हुई बारीक मिट्टी व बालू के कण जमे रह जाते हैं। इस ज़मी हुई मिट्टी, बालू व कंकड़ को मृत्तिका कहते हैं और मृत्तिका निक्षेप वाली भूमियाँ बड़ी ही उपजाऊ होती हैं।

Alluvial Fan or Cone (मृत्तिका पंख) पहाड़ी क्षेत्रों की वेगशील नदी जब मैदान में प्रवेश करती है या किसी खुली घाटी में बहना शुरू करती है तो उसकी गति एकाएक धीमी पड़ जाती है और वहाँ मिट्टी तथा पत्थरों की बहुत बड़ी राशि इकट्ठा हो जाती है। इन्हें मृत्तिका पंख कहते हैं। इनकी आकृति पंखे या शंकु की तरह होती है। शुष्क देशों में मृत्तिकामय प्रदेशों की बहुतायत होती है क्योंकि पहाड़ी नदियों में जल बढ़ने व घटने से इस प्रकार के निक्षेप में सहायता मिलती है। कभी-कभी तो मृत्तिकामय प्रदेश मीलों लम्बा-चौड़ा होता है और जब समीपवर्ती नदियों के मृत्तिकामय प्रदेश आपस में मिलकर एक हो जाते हैं तो पहाड़ के आधार पर मृत्तिकामय मैदान बन जाता है। ऐसी दशा में निक्षिप्त मृत्तिका अक्सर सैकड़ों फीट गहरी या मोटी होती है और प्रति वर्ष इसकी मोटाई बढ़ती ही रहती है। इसके अलावा मृत्तिकामय प्रदेश की ढीली मृत्तिका में नदी का जल सोख जाता है और इन दोनों विशेषताओं के कारण ये प्रदेश बड़े ही उपजाऊ होते हैं। खेती के लिए इनका महत्व बहुत अधिक है।

Alluvial Bench (मृत्तिकामय किनारे) जहाँ कोई नदी अपनी घाटी के अधिक चपटे भाग में प्रवेश करती हैं तो वहाँ उसकी धाराएँ मन्द पड़ जाती हैं और अधिक मिट्टी व बालू जो उस नदी में बहता हुआ रहता है, उस जल में बैठ जाता है। इस प्रकार मृत्तिकामय किनारे बन जाते हैं। इन किनारों की आकृति दीवार, टीले या लम्बी निकली हुई शाखा की तरह होती है। इस प्रकार के मृत्तिकामय किनारे नदी प्रवाह पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। इनके कारण बहुधा नदी प्रवाह की दिशा बदल ही जाती है। और नहीं तो कम से कम मोड़ और घुमाव तो जरूर ही बन जाते हैं।

Alluvial Plain (मृत्तिकामय मैदान) नदी के किनारे के वे भाग जिन पर नदी द्वारा बहाकर लाई हुई मृत्तिका जमती रहती है, मृत्तिकामय मैदान कहलाते हैं। नदी की तलैटी में इन्हें मृत्तिकामय प्रदेश कहते हैं। मध्य की तलेटी में इन्हें बाढ़ का मैदान कहते हैं और नदी के निम्न भाग में इन्हें डेल्टा कहते हैं। ये मृत्तिकामय मैदान समतल और सपाट होते हैं। बहुत सी नदियाँ प्रति वर्ष अपने किनारों के ऊपर से होकर बहने लगती हैं और अपनी तलैटियों के चिपटे तल पर उपजाऊ मिट्टी की एक पतली परत छोड़ देती है। मिश्र में नील की घाटी और उत्तर भारत में गंगा-जमना का मैदान इसके विशिष्ट उदाहरण हैं। (देखिये **Flood Plain, Alluvial Fan,** और **Delta**)

Alpine (आल्प तुल्य) आल्प तुल्य या आल्प सम्बन्धी से केवल यह अर्थ नहीं कि योरोप के आल्प्स प्रदेश से ही संबंधित बल्कि इसका अर्थ है पर्वतीय प्रदेश के उच्च भागों के तुल्य अथवा उससे संबंधित। विशेष रूप से इस पारिभाषिक शब्द का मतलब पर्वतीय प्रदेशों के उन भागों से है जो बर्फ रेखा और वनस्पति या वन रेखा के बीच में स्थित है। जहाँ तक जंगल या नुकीली पत्ती के वृक्ष पाये जाते हैं और जहाँ केवल बर्फ ही बर्फ नजर आती है इन दोनों ऊँचाइयों के बीच वह प्रदेश है। यहाँ की जलवायु इतनी सर्द व नम होती है कि वहाँ बड़े-बड़े पेड़ तो नहीं उग सकते पर हाँ घास के मैदान व चारण भूमियाँ जरूर पायी जाती हैं।

Altimeter (आल्टीमीटर) आल्टीमीटर एक प्रकार का वायुभार मापक यन्त्र

होता है जिसे प्रायः हवाई जहाजों में प्रयोग करते हैं। इसकी बनावट व आकृति बहुत कुछ आनीरायड बेरोमीटर से मिलती-जुलती रहती है। परन्तु इसका प्रधान उद्देश्य वायुभार को मापना नहीं होता बल्कि उसके सहारे समुद्रतल से या भूमि से ऊँचाई बतलाना होता है। इसलिए इसके ऊपर माप चिन्ह बने होते हैं जिन पर सुई की दिशा देखकर स्थान या वायुयान की ऊँचाई का ज्ञान हो जाता है।

Altitude (ऊँचाई) ऊँचाई शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। एक तो वह कि कोई विशेष स्थान समुद्रतल से लम्ब रूप कितना दूर है। समुद्रतल से इस लम्ब रूप दूरी को फीट या मीटर में नापते हैं। इसका दूसरा अर्थ वह है जिस में किसी ग्रह या नक्षत्र की स्थिति व दूरी का वर्णन करते हैं। ग्रह व नक्षत्रों की दूरी लम्ब रूप तल पर क्षितिज रेखा के साथ बनते हुए कोण द्वारा ली जाती है। क्षितिज के ऊपर ग्रह विशेष की कोणिक दूरी को भी हम ऊँचाई ही कहते हैं।

प्रथम अर्थ में ऊँचाई शब्द वास्तविक मानवी जगत में प्रयुक्त होता है और इस पर ही स्थान विशेष का तापक्रम वायुभार आदि जलवायु सम्बन्धी दशाएँ निर्भर रहती हैं। दूसरा अर्थ सौर जगत से सम्बन्ध रखता है और उसके सहारे हम ज्योतिष ज्ञान प्राप्त करते हैं।

Alto Cumulus (आल्टो कूमुलस) एक प्रकार का मध्यम मेघ होता है। इसमें बादल या भापराशि वाहनिक धाराओं के साथ ऊपर उठती हुई इतनी ठंडी हो जाती है कि भाप द्रवीभूत होकर श्वेत बादलों का रूप धारण कर लेती है। आल्टोकूमुलस मेघ पतले गोलाकार धब्बों की तरह फैले नजर आते हैं। कभी-कभी उन विभिन्न बादल के टुकड़ों के किनारे आपस में मिल जाते हैं और पूरे आसमान पर एक हल्की महीन चद्दर सी फैली नजर आने लगती है। कभी तो इनका रूप सामूहिक हो जाता है, कभी इनकी पंक्ति बन जाती है, और कभी ये लहर से फैले दिखाई पड़ते हैं। साधारणतया १०,००० से २५,००० फीट तक की ऊँचाई पर ये मेघ मिलते हैं।

Alto Cumulus Castellatus (आल्टो कुमूलस कास्टएलाटस) आल्टो कुमूलस मेघ ही का एक प्रकार है। सारी बातें तो आल्टो कुमूलस मेघ के समान ही होती हैं परन्तु वाहनिक वायुधाराओं के वेग व गति के कारण बहुत से बादलों के टुकड़ों का शिखर मीनार की तरह बन जाता है।

Alto stratus (आल्टो स्ट्राटस) ये भी मध्यम या मध्यवर्ती मेघ के ही एक प्रकार हैं और एक लगातार चादर की तरह फैले नजर आते हैं। कभी तो यह चादर इतनी पतली होती है कि पीछे का आसमानी रंग चमकता नजर आता है। पर कभी-कभी यह ऐसी घनी चादर बना लेते हैं कि सूर्य या चन्द्रमा का प्रकाश तक नहीं मिल पाता। सामान्यतः जब ये बादल आसमान पर छाये रहते हैं तो सूर्य व चाँद का प्रकाश धुँधला व अस्पष्ट दिखलाई देता है। गहरे सिरोस्ट्राटस मेघ की तरह इनका रूप भी लहरदार या रेशेदार ही होता है पर इन में सूर्य या चाँद के चारों ओर प्रकाश वृत्त नहीं बनता। अक्सर इस प्रकार के सघन बादलों से लगातार वर्षा भी होती है। ये १०,००० से २५,००० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

Anabatic wind (एनाबेटिक वायु) इसका दूसरा नाम घाटी वायु **Valley wind** भी है। दिन में तापक्रम के अन्तर के कारण पर्वतीय प्रदेशों में स्थानीय हवा चलने लगती है। जब मौसम शान्त होता है और आसमान साफ होता है तो पर्वतीय ढालों की अपेक्षा घाटियाँ कम गर्म हो पाती हैं। सूर्य की रोशनी पर्वतों के ढाल पर सीधी पड़ती है और निचली वनाच्छादित घाटियों की अपेक्षा अधिक व शीघ्र गर्म कर देती है। अतएव

पर्वतीय ढाल की वायु में वाहनिक धारायें ऊपर की ओर उठने लगती हैं। हवा गर्म होकर हल्की हो जाती है और ऊपर की ओर उठ जाती है। उसका स्थान लेने के लिए घाटी की वायु आती है। (देखिये Katabatic wind)

Anemogram (एनीमोग्राम) एनीमोग्राम यन्त्र की सहायता से वायु की गति व दिशा का बराबर अंकन होता रहता है। इन्हीं आकड़ों को एनीमोग्राम कहते हैं। इससे पता चलता है कि भूमि की सतह पर स्थित बाधाओं के कारण हवा में भवँर किस प्रकार बन जाती है और फिर उसके कारण हवा की गति व दिशा में विशेष अन्तर कैसे हो जाता है।

Anemograph (एनीमोग्राफ) यह अपने आप अंकित करने वाला एनीमोमीटर होता है। इसके द्वारा हवा की गति का निरन्तर ज्ञान प्राप्त होता रहता है और भूपटल के समीप चलने वाली हवा की दिशा का भी पता चल जाता है। वैसे तो यह कई प्रकार के आकार का होता है परन्तु सबसे प्रचलित रूप गिलासनुमा होता है। इसमें हवा के सामने की ओर मुँह किये हुये एक गिलास लगा रहता है जिसका ढक्कन हवा के दबाव से खुलता व बन्द होता रहता है। इसका सम्बन्ध एक ऐसे चक्कर से होता है जिसमें एक कलम लगी होती है और उसके नीचे एक घूमता हुआ ढोल जड़ा रहता है। शून्य विन्दु से इसकी कलम की ऊँचान से ही हवा की गति का पता लगाया जाता है।

Anemometer (एनीमोमीटर) यह वह यन्त्र है जिससे हवा की गति व दिशा का पता चलता है। यह हवा की चाल को मील फी घंटे या मीटर फी सेकंड के हिसाब से निर्देश करता है। इस बनावट का सबसे प्रचलित रूप वह है जिसमें कई प्यालों से सहायता ली जाती है। इसमें चार अर्द्धगोलाकार प्याले जो खोखले होते हैं पृथ्वी के समानान्तर लगे डण्डों पर जड़े होते हैं और ये डण्डे एक लम्ब रूप कीली या तकवे पर आधारित रहते हैं। जब हवा चलती है तो इन प्यालों को धक्का लगता है और समानान्तर डण्डा घूमने लगता है जिसके फलस्वरूप लम्बरूप कीली भी घूमना प्रारम्भ कर देती है। लम्ब रूप कीली के नीचे एक अंकन विधि लगी रहती है और उस पर वायु की गति मील फी घंटे के हिसाब से इंगित होती रहती है।

Aneroid Barometer (एनीरायड बैरोमीटर) यह एक विशेष प्रकार का वायुभार मापक यन्त्र होता है। इसमें पारा या अन्य कोई तरल पदार्थ नहीं भरा रहता। खोखला बकस होता है जिसमें से हवा निकाल कर ऊपर से ढक्कन बन्द कर दिया जाता है। इसमें धातु का ऊपर का ढक्कन पतली चद्दर का होता है और हवा निकाल देने से यह अपने आप बकस के ऊपर चिपक जाता है। परन्तु बकस के अन्दर एक स्प्रिंग होती है जो ढक्कन को बाहर की ओर धक्का देती रहती है और बाहर से वायु इसको अन्दर की ओर दबाती रहती है। जब बाहरी वायु का दबाव अधिक होता है तो यह ढक्कन अन्दर की ओर झुक जाता है और जब वायु का दबाव घट जाता है तो ढक्कन को अन्दर की स्प्रिंग ऊपर की ओर जोड़ देती है। ढक्कन के इस प्रकार ऊपर उठने या नीचे दबने से ऊपर की ओर लगी हुई घड़ीनुमा सुई घूमती है और अंकित चिन्हों से वायु भार का पता चल जाता है। यह यन्त्र बड़ा ही हल्का होता है और इसलिए इसे इधर-उधर ले जाया जा सकता है। परन्तु इसके द्वारा वायुभार ज्ञान बहुधा त्रुटिपूर्ण होता है।

Aneroidograph (एनीरायडोग्राफ) यह भी एक प्रकार का वायुभारमापक यंत्र है। इसे बेरोग्राफ (Barograph) भी कहते हैं। इसमें भार की दशा के विषय में आँकड़े अपने आप लिखते जाते हैं। इसका कार्य सिद्धान्त वही है जैसा कि एनीरायड बैरोमीटर में। हवा निकाल कर कई बकसों को एक के ऊपर एक इस प्रकार रक्खा जाता है कि उनका

फैलाव व विस्तार अधिक रहे। इनके बीच में कई लीवर लगे होते हैं और इनके ऊपर हवा के दबाव का असर साथ लगी हुई एक कलम द्वारा एक घूमते हुए ढोल पर अंकित होता रहता है। इसके द्वारा प्राप्त वायुभार का ज्ञान बिलकुल ठीक तो नहीं होता पर वायुभार के उतार-चढ़ाव बतलाने के लिये यह यन्त्र विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है।

Annular Eclipse **(सूर्य ग्रहण)** सौर मण्डल में भ्रमण करते हुये जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच इस प्रकार आ जाता है कि उसकी परछाईं सूर्य पर जाकर पड़ती है तो सूर्य ग्रहण होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि चन्द्रमा की पूरी परछाईं पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाती और चन्द्रमा के गोल स्वरूप के चारों ओर केवल प्रकाश का एक चक्कर सा ही दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार के सूर्य ग्रहण से सूर्य की रोशनी नहीं रुकती पर हाँ उस पर चिन्ह दिखलाई पड़ने लगते हैं। इसे सूक्ष्म सूर्यग्रहण कहते हैं।

Anchorage **(लंगर स्थान)** बन्दरगाह पर जहाँ जहाज आकर लंगर डाल कर रुकते हैं उसे लंगर स्थान कहते हैं; व्यापारी व सैनिक बन्दरगाहों के लिए विस्तृत लंगर स्थान होना बड़ा ही आवश्यक है। लंगर स्थान ऐसा होना चाहिये कि वहाँ कई जहाज साथ-साथ बराबर से रुक सकें और उन्हें समुद्री लहरों, तूफानों या रेतीले किनारों का जरा भी भय न रहे। अतएव सबसे अच्छे लंगर स्थान वे होते हैं जिनमें गहरा पानी बन्दरगाह के समीप पाया जावे और समुद्री लहरों से बचाव के लिए द्वीपों की पंक्ति सी बनी हो। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि लंगरस्थान की सुविधा प्राप्त होने से ही बड़े-बड़े बन्दरगाह बन जाते हैं।

Animal Industry **(पशु सम्बन्धी धंधे)** मनुष्य ने बहुत पहले से ही यह समझ लिया था कि पशु-पक्षियों को पालतू बना कर अधिक उपयोग में लाया जा सकता है। प्राचीन काल में पशु द्वारा मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता था। आज भी पहाड़ी प्रदेशों, रेगिस्तानों और कृषिप्रधान देशों में पशुओं तथा पशुबल का बड़ा महत्व है। परन्तु अब मनुष्य ने यह समझ लिया है कि पशु केवल गाड़ी खींचने या हल जोतने में ही काम नहीं आते बल्कि उन्हें पालकर उनके सहारे अनेक धन्धे शुरू किये जा सकते हैं।

अतः आजकल जहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक व जहाँ घास के मैदान हैं वहाँ गाय, बैल, भेड़-बकरी, सुअर, मुर्गियाँ आदि पाले जाते हैं। बैल और सुअर तथा मामूली नस्ल की भेड़ों को मार कर उनसे मांस प्राप्त किया जाता है। इन्हें सुखा कर डिब्बों में भरकर दूर-दूर की मंडियों को संयुक्त राष्ट्र अमरीका और आर्जेन्टाइना से भेजा जाता है। गाय और भैंस के दूध से मक्खन, पनीर आदि वस्तुयें बनाई जाती हैं। भेड़-बकरी की अच्छी नस्लों से ऊन प्राप्त किया जाता है। मुर्गियों को उनके अंडों के लिए पाला जाता है। इसी प्रकार शहद के लिये शहद की मक्खियाँ और रेशम के लिए रेशम के कीड़े पालने का धंधा भी विशेष रूप से चल निकला है।

Antarctic Circle **(अन्टार्कटिक वृत्त)** दक्षिणी गोलार्द्ध में ६६½° अक्षांशरेखा को ही अन्टार्कटिक वृत कहते हैं। पृथ्वी के अक्ष के झुके होने से यहाँ पर गर्मी के मौसम में २२ दिसम्बर के लगभग सूर्य बराबर चमकता रहता है। सूर्यास्त होता ही नहीं। इसी प्रकार २१ जून के करीब जब यहाँ घोर जाड़ा पड़ता होता है सूर्य निकलता ही नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस अक्षांशवृत्त में जब हम दक्षिणी ध्रुव की ओर जाते हैं तो यहाँ करीब-करीब ६ महीने तक सूर्य की रोशनी बराबर रहती है और दूसरे ६ महीने में सूर्य निकलता ही नहीं। इस प्रकार यहाँ ६ महीने दिन और ६ महीने रात रहती है। परन्तु ऐसा केवल इस वृत्त में स्थित आन्तरिक या ध्रुवीय भागों में ही देखा जाता है। साल भर बराबर खूब

ठंड पड़ती है । इस वृत्त के क्षेत्र में भूखण्ड नहीं के बराबर है । अधिकतर भाग बर्फीला जलखण्ड है जिस पर से होकर तेज बर्फीली हवायें चलती रहती हैं । अभी तक इस प्रदेश की कोई विशेष खोज नहीं हो सकी है । बर्फीले तूफानों के कारण खोजकार्य प्रायः असंभव-सा दीख पड़ता है ।

Antecedent River (यथापूर्व नदी) भूखण्ड पर रोज नये-नये परिवर्तन हुआ करते हैं । कभी कोई भाग नीचे दब जाता है तो कभी कोई भाग ऊपर उठकर खड़ा हो जाता है । अक्सर ऐसा होता है कि नदी के मार्ग में उत्क्षेप के कारण कोई नया स्थल रूप उत्पन्न हो जाता है । फलतः या तो नदी का प्रवाह रुक कर भिन्न दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है या नदी प्रवाह और नवीन स्थलरूप के बीच एक युद्ध-सा शुरू हो जाता है । नदी का जल अपने में मिश्रित कंकड़-पत्थर की सहायता से नवीन भूखंड को काट-छाँट करना शुरू करता है और कुछ समय में उस स्थल रूप के बीच से काट कर अपना मार्ग निकाल लेता है । इस प्रकार की नदी को नदी यथापूर्वक कहते हैं। क्योंकि वर्तमान स्थलरूप से वह पुरानी होती है ।

Anthracite (अन्थ्रासाइट) कोयला प्राणिज व वनस्पति निक्षेप का सडा व परिवर्त्तितरूप है । लगातार दबाव व गर्मी के कारण इस प्रकार के निक्षेप कोयले का रूप धारण कर लेते हैं । परन्तु दबाव व निक्षेप के युग और काल के अनुसार कोयला कई प्रकार का होता है । अन्थ्रासाइट कोयला सब से उत्तम प्रकार का होता है । इसका रंग गहरा काला, इसका रूप कठोर व चमकदार और इसमें पानी व गैस की मात्रा सबसे कम होती है । साधारणतया अन्थ्रासाइट कोयले में कारबन का अंश ९० प्रतिशत होता है । इसे हम कोयले का पूर्ण विकसित या परिपक्व रूप कह सकते हैं । यह भार में हल्का, जलाने में एक दफे आग पकड़ लेने पर खूब आँच देता है ।

Anthropo geography (मानव भूगोल) भूगोल शास्त्र का वह अंग है जिसके अन्तर्गत हम भौगोलिक परिस्थितियों के बीच मनुष्यजाति के वितरण का अध्ययन करते हैं । इसका मानवतत्व विज्ञान या मानव विकासशास्त्र (Anthropology) से बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है । इस शाखा का मुख्य उद्देश्य मानव जाति व समाज के विकास पर भौगोलिक परिस्थितियों के नियन्त्रण को अध्ययन करना होता है । मानव भूगोल पृथ्वी के मनुष्यों पर उसके आस-पास की जलवायु, भूप्रकृति और वनस्पति का प्रभाव तथा इन भौगोलिक परिस्थितियों पर विजय पाने के लिये उसके प्रयत्नों का अध्ययन करती है । (देखिये Human Geography)

Anticline (ऊर्ध्व मोड़ प्रतिनति) सपाट स्थल भाग धीरे-धीरे उठता रहता है और थोड़े समय में समुद्र के धरातल से ऊँचे होकर शुष्क प्रदेश बन जाते हैं । इन उठे हुए भूभागों पर प्राकृतिक शक्तियाँ आघात करना प्रारम्भ कर देती हैं और कालान्तर में भूकम्पों के आते रहने से या अन्य मन्दगतियों के दबाव से ऊपरी भूपटल मुड़ जाता है । इन गतियों की तारतम्यता से ये घरेरे और मुड़ जाते हैं । जब इस प्रकार परतों में घरेरे पड़ते हैं तो एक भाग ऊपर उठ जाता है और उसे ऊर्ध्व मोड़ कहते हैं । दूसरा भाग नीचे दब जाता है और घाटियाँ बन जाती हैं । ये ऊर्ध्व मोड दो प्रकार के होते हैं—(१) खुले हुये या फैले हुये और (२) सँकरे । खुले हुये ऊर्ध्व मोड़ कम ऊँचे व गुम्बज की तरह के होते हैं । सँकरे ऊर्ध्व मोड़ काफी ऊँचे व ढालू पहाड़ियों का रूप ग्रहण कर लेते हैं ।

Anticlinorium (मुड़ा हुआ ऊर्ध्व प्रदेश) ऊर्ध्व मोड़ के बीच से यदि एक अक्ष रेखा खींची जाय तो उसके दो भाग हो जाते हैं । प्रत्येक भाग को उसका अंग कहते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि ऊर्ध्व मोड़ के चौड़े अंग पर प्राकृतिक शक्तियों व मन्द

शक्तियों के प्रभाव से छोटे-छोटे और भी घरेरे पड़ जाते हैं और सम्पूर्ण ऊर्ध्व प्रदेश एक पंखे की तरह दिखलाई पड़ने लगता है। ऐसे प्रदेश को मुड़ा हुआ या घरेरेदार ऊर्ध्व प्रदेश कहते हैं।

Anti Cyclone (**विपरीत चक्रवात**) पृथ्वी के चारों ओर उच्च भार के दो मुख्य कटिबंध हैं। शीतोष्ण प्रदेशों में कम भार वाले प्रदेशों से घिरे हुए अधिक भार वाले स्थानीय प्रदेश हैं और अधिक भार वाले कटिबंध में कम भार वाले प्रदेश हैं। इस प्रकार के भार भेद के कारण पृथ्वी के वायु कटिबंधों में छोटे-छोटे वायु के चक्कर बन जाते हैं। इनको चक्रवात और विपरीत चक्रवात कहते हैं। चक्रवात का केन्द्र कम भार का होता है और विपरीत चक्रवात का केन्द्र अधिक भार का होता है।

विपरीत चक्रवात के केन्द्रीय प्रदेश का वायुभार आसपास की अन्य जगहों की अपेक्षा ज्यादा होता है और यह बहुधा दो चक्रवातों के बीच में स्थित पाया जाता है। इसकी कोई विशेष दिशा नहीं होती। कभी तो यह आगे बढ़ता है और कभी यह पीछे हटता है तथा कभी एक ही जगह पर कई दिन तक स्थायी बना रहता है। धीरे-धीरे क्षीण होकर यह गायब भी हो जाता है।

इसमें समभारदर्शक रेखायें अंडाकार घेरे में रहती हैं और सब से अधिक भार की रेखा अन्दर की ओर रहती है। बाहर की ओर समभार रेखायें क्रमशः घटती जाती हैं। वायु की गति व दिशा केन्द्र से बाहर की ओर रहती है। उत्तरी गोलार्द्ध में वायु की दिशा घड़ी की सुइयों की तरह बायीं से दायीं ओर को रहती है। परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध के विरुद्ध चक्रवात में वायु दायीं से बायीं ओर को चलती है। इसके केन्द्र के समीप वायु की गति हल्की और दिशा बदलती रहती है। कभी-कभी तो केन्द्र की दशा बिलकुल शान्त रहती है परन्तु किनारे की ओर वायु की गति व भीषणता बढ़ती जाती है। विरुद्ध चक्रवात में तापक्रम के परिवर्त्तन भी बहुत दृष्टिगोचर होते हैं। केन्द्र की शान्त दशा में बहुधा जल और भूखण्ड के तापमान में अन्तर होने के कारण स्थानीय वायु का असर प्रबल हो उठता है। इसीलिये विरुद्ध चक्रवात के केन्द्रीय प्रदेशों में स्थल व समुद्री पवन या पर्वतीय व घाटी पवन बहुधा प्रवाहित होता रहता है। इन स्थानीय पवनों के कारण बहुधा स्थानीय जलवृष्टि भी हो जाती है।

साधारण रूप से विरुद्ध चक्रवात से सम्बन्धित मौसम साफ व स्पष्ट होता है। कभी-कभी बूँदाबाँदी चाहे हो जाय परन्तु वर्षा तो बहुत कम होती है। केन्द्रीय प्रदेश में न तो वायु ही रहती है और न मेघ ही है। इसलिये वहाँ का मौसम जाड़े व गर्मी में अलग-अलग होता है। गर्मियों में तापक्रम अधिक होता है, आसमान मेघरहित होता है पर क्षितिज पर धुँधलापन नजर आता है। रातें ठंडी हो जाती हैं और सूर्योदय के समय धुंध व कुहरा दिखलाई पड़ता है। जाड़ों में दिन छोटे और रातें लम्बी होती हैं। इसलिए रात में ऐसा घना कुहरा बन जाता है जो बहुधा दूसरे दिन तक भी बना रहता है। यह तो हुई केन्द्र के मौसम की बात परन्तु किनारों पर का मौसम व तापक्रम हवा कहाँ से आती है इस पर निर्भर रहता है।

अभी तक विरुद्ध चक्रवात के विषय में कोई विशेष खोजपूर्ण कार्य नहीं हुआ है। फिर भी संसार में प्रवाहित विरुद्ध चक्रवातों को निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है—(१) **हवा की गति के कारण बने विरुद्ध चक्रवात**—ये अस्थायी भी होते हैं और स्थाई भी। स्थायी विरुद्ध चक्रवात समुद्री प्रदेशों पर ३०° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश के समीप स्थित पाये जाते हैं। (२) **वायुभार के कारण बने विरुद्ध चक्रवात**—ये भी स्थायी व अस्थायी दो प्रकार के होते हैं। स्थायी तो ग्रीनलैंड व अन्टार्टिका में पाये जाते हैं जहाँ सदैव उच्च भार रहता

है। अस्थायी रूप से ये जाड़ों में पहाड़ी प्रदेशों में बन जाते हैं। (३) **निम्न तापक्रम से बने हुए** विरुद्ध चक्रवात समुद्री प्रदेशों में पाये जाते हैं जहाँ थल की अपेक्षा उच्च वायु भार रहता है। बरमूडा और न्यूजीलैंड के समीप ऐसे दो प्रदेश हैं।

Antipodes (**प्रतिध्रुव**) प्रतिध्रुव से तात्पर्य पृथ्वी के उन भागों से है जो ऐसे बसे हुये हैं कि यदि उन दोनों बिन्दुओं को मिलाती हुई एक रेखा खींची जाय तो वह पृथ्वी के केन्द्र से होकर गुजरेगी। ग्रेट ब्रिटेन में लन्दन और न्यूजीलैंड के दक्षिणपूर्व में एन्टी पोड्स द्वीप एक दूसरे के प्रतिध्रुव हैं। वास्तविक प्रतिध्रुव में वे प्रदेश कहे जाते हैं जो एक दूसरे से १८०° देशान्तर पर बसे हों। मतलब यह है कि यदि एक प्रदेश ९०° उत्तरी अक्षांश पर बसा हो तो दूसरा ९०° दक्षिणी अक्षांश पर बसा होना चाहिये। इस प्रकार कर्क और मकर रेखा, आर्कटिक व अन्टार्कटिक वृत्त और उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव प्रतिध्रुव के स्पष्ट उदाहरण हैं। प्रतिध्रुव वाली जगहों में मौसम और दिन-रात एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत होते हैं। यदि एक जगह जाड़े का मौसम है तो दूसरी जगह गर्मी का मौसम होगा। जब एक जगह दोपहर के बारह बजे होंगे तो दूसरी जगह रात के बारह बजे होंगे। उदाहरण के लिये उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध की ही सभी जगहों को ले सकते हैं।

Anti-trades (**विरुद्ध व्यापारिक वायु**) जैसा नाम से ही स्पष्ट है इस वायु की दिशा व्यापारिक वायु से विपरीत होती है। ये वायु अपने सीमाओं के बाहर शीतोष्ण कटिबंध में चला करती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये विशेषकर दक्षिण-पश्चिम से और दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिम से चला करती है। इसलिए इन वायु को बहुधा केवल पश्चिमीय या पछुआ हवायें भी कहते हैं। ये वायु इतनी सीधी व नियमित रूप से नहीं चलतीं जितनी कि व्यापारिक वायु। ऋतु के अनुसार ये हवायें उत्तर और दक्षिण की ओर भी हटती रहती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में ये अधिक नियमित रूप से चलती हैं क्योंकि वहाँ उसे स्थलखंड से रुकावट नहीं पड़ती। इसलिए वहाँ वह इतनी अधिक तीव्र हो जाती है कि लोग उसको ४०° और ५०° अक्षांश के बीच में "गरजनेवाला चालीसा" (Roaring forties) कहते हैं।

विरुद्ध व्यापारिक वायु की विशेषता यह है कि ये गर्म प्रदेशों से ठंडे प्रदेशों की ओर चलती हैं और इनका प्रधान क्षेत्र ३५° अक्षांश से लेकर ध्रुवीयवृत्त तक फैला रहता है। इसमें तूफान तथा अन्य बहुत से भीषण भँवर व चक्कर आया करते हैं। ध्रुवीय सीमा की ओर यह भँवर व चक्कर और भी अधिक बढ़ जाते हैं। ध्रुववर्ती सीमा की तरफ इसमें ध्रुवों की ठंडी हवा आकर मिल जाती है। वास्तव में इनकी दिशा, गति व मौसम सभी कुछ विषम होती है। परन्तु विरुद्ध व्यापारिक वायु से तात्पर्य वास्तव में उन ऊपरी वायुधाराओं से है जो व्यापारिक हवाओं के क्षेत्र में भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर बहती है।

व्यापारिक हवाओं के क्षेत्र में भूमि के समीप तो व्यापारिक हवायें प्रवाहित होती रहती हैं जो कर्क और मकर रेखा के उच्चभार से भूमध्य रेखा की ओर चलती हैं। इन्हीं क्षेत्रों में वायुमण्डल कटिबंध की ऊपरी परतों पर कुछ हवायें चलती रहती हैं जिनकी दिशा सतह पर चलनेवाली व्यापारिक वायु के विपरीत होती है। इन्हें विरुद्ध व्यापारिक वायु कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में व्यापारिक वायु उत्तर-पूर्व से बहती है तो विरुद्ध व्यापारिक वायु की गति दक्षिण-पश्चिम होती है। फर्क केवल इतना ही है कि व्यापारिक हवायें भूमि के समीप चलती हैं और विरुद्ध व्यापारिक वायुमण्डल के ऊपरी भागों में। सच तो यह है कि व्यापारिक वायु द्वारा जो हवा भूमध्य रेखा तक आती है वह वाहनिक क्रिया द्वारा ऊपर उठ जाती है और ऊपरी सतहों में पहुँच कर ध्रुव की तरफ चलने लगती है। इस प्रकार विरुद्ध व्यापारिक वायु को व्यापारिक वायु क्षेत्र में लौटने वाली या वापसी वायु-धारायें कहा जा सकता है।

वैसे तो विरुद्ध व्यापारिक वायु को इन दोनों ही अर्थों में प्रयोग किया जाता है परन्तु इनका वास्तविक तात्पर्य दूसरे ही अर्थ से स्पष्ट होता है। यह वास्तव में वायुमंडल के ऊपरी परतों में बहनेवाली वायु है जिसका क्षेत्र उष्ण कटिबंध ही है। इसके द्वारा भूपटल पर बहने वाली पछुआ हवाओं की ओर निर्देश करना भूल है यद्यपि बहुधा पछुआ हवाओं को ही विरुद्ध व्यापारिक वायु कहते हैं।

Aphelion (उत्तरायण) पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती रहती है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा का मार्ग ग्रहपथ कहलाता है और इस ग्रहपथ पर पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य का पूरा चक्कर लगा लेती है। उत्तरायण स्थिति ग्रहपथ पर पृथ्वी की वह दशा है जब वह सूर्य से सब से अधिक दूरी पर रहती है। इस दशा में दक्षिणायन स्थिति की अपेक्षा यह सूर्य से करीब २० लाख मील और दूर हो जाती है। जब पृथ्वी इस दशा में पहुँचती है तो उत्तरीगोलार्द्ध में गर्मी की ऋतु होती है। उस समय उत्तरी गोलार्द्ध और विशेषकर कर्क रेखा पर सूर्य की तीखी किरणें सीधी पड़ती हैं। फलतः दिन बड़े होते हैं और सूर्यताप की अधिकता के कारण सूर्य से दूरी का प्रश्न नगण्य हो जाता है। इस समय पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी ९ करोड़ ४५ लाख मील होती है और इस स्थिति में सूर्य १८७ दिन रहता है। इस समय सूर्य की चाल धीमी मालूम पड़ने लगती है।

Apiculture (शहद की मक्खी पालना) वैसे तो शहद संसार के प्रत्येक देश में थोड़ा बहुत उत्पन्न होता है और जहाँ वनस्पति लहलहाती होती है वहाँ शहद की उत्पत्ति भी अधिक होती है। शहद की मक्खी फलों व कलियों से ही शहद इकट्ठा करती है। शहद की मक्खी पालने का धंधा संयुक्त राष्ट्र अमरीका और उत्तरी यूरोप में बहुत फैला हुआ है। यह किसान का सहायक धन्धा है और वह अपने अवकाश के समय इस धंधे को करके अपनी आय बढ़ाता है। इसमें उसे प्राकृतिक परिस्थिति पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रहना पड़ता। इस धंधे की सफलता मनुष्य की कुशलता व उसके परिश्रम पर निर्भर रहती है। अतः जहाँ के किसान अधिक परिश्रमी तथा कुशल हैं वहाँ यह धन्धा बहुत उन्नति कर गया है।

Apogee (द्राधिमा) ग्रहपथपर चन्द्रमा या अन्य किसी ग्रह की उस स्थिति को द्राधिमा कहते हैं जब उसकी दूरी पृथ्वी से सब से अधिक हो।

Apparent time (वास्तविक समय) समय का वास्तविक ज्ञान तो सूर्य से ही होता है। प्रातःकाल सूर्योदय से लेकर सन्ध्या समय सूर्यास्त तक ऐसा मालूम पड़ता है जैसे सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर आकाशमण्डल में चल रहा हो। सूर्य घड़ी द्वारा पृथ्वी के बिन्दु और सूर्य की पारस्परिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और वही उस ज्ञान के लिये वास्तविक समय कहलायेगा। इसे कभी-कभी सूर्य समय भी कहते हैं। इस प्रकार वास्तविक दोपहर या मध्यान्ह काल उस समय को कहेंगे जब सूर्य का स्थान विशेष पर ठीक लम्ब रूप चमक रहा हो या आकाशमण्डल के सर्वोच्च बिंदु पर स्थित हो। ऐसी दशा में किसी भी लम्ब रूप वस्तु की परछाईं सबसे छोटी होगी। चूँकि सूर्य और पृथ्वी के विविध स्थानों की पारस्परिक स्थिति अलग-अलग होती है, इसलिये वास्तविक समय भी अलग-अलग ही होता है। जो स्थान लगभग एक ही देशान्तर रेखा पर स्थित हैं, उनका वास्तविक समय तो एक होता है परन्तु देशान्तर रेखा के भिन्न होने से समय भी भिन्न हो जाता है। इसीलिये इसे स्थानीय समय भी कहते हैं।

Aquafer or Aquifer (जलमग्न परत) पृथ्वी पर जो वर्षा होती है उसका कुछ अंश पृथ्वी के अन्दर की चट्टानों में प्रवेश कर जाता है। पृथ्वी के अन्दर जल प्रवेश करने की मात्रा चट्टान की प्रकृति पर निर्भर रहती है। कुछ चट्टानों में छोटे-छोटे छेद व दरारें होती हैं

जिनमें से होकर जल बड़ी सुगमता से उनके भीतर प्रवेश कर जाता है। परन्तु कुछ चट्टानें इतनी कठोर होती हैं कि अपने मध्य जल को प्रवेश नहीं करने देतीं। जब दो अप्रवेश्य चट्टानों के बीच कोई ऐसी अन्दर को झुकी हुई प्रवेश्य चट्टान पाई जाती है जिसमें से होकर जल अन्दर दूर तक प्रवेश कर जाय तो उस मध्यवर्ती प्रवेश्य चट्टान को जलमग्न परत कहते हैं। यह जलमग्न परत प्रायः झूलाकार रूप में झुकी रहती है। इस स्थान के मध्य कुआँ खोदने से पर्याप्त जल फूट निकलता है। इसी प्रकार जलमग्न परत का पानी घूम-फिरकर पहाड़ी के किनारे से सोते व झरने के रूप में बाहर निकल आता है।

Archaen Era (प्राचीनतम युग) भूगर्भतत्व के दृष्टिकोण से पृथ्वी के समय को ५ युगों में बाँट दिया गया है। इन पाँच युगों में पृथ्वीतल पर विभिन्न परिवर्तन हुये और उन्हीं के संयुक्त फलस्वरूप हमारा भूपटल अपनी वर्तमान स्थिति में पहुँचा है। इन पाँच युगों में प्राचीनतम युग आरकेअन युग या **Pre Cambrian** युग कहलाता है। इस युग में पृथ्वी ठंडी हो रही थी, उस पर किसी प्रकार की वनस्पति, कीड़े-मकोड़े तथा पशु-पक्षी नहीं थे या यों कहिये कि उस युग के जीव व पौधों के विषय में अभी तक सम्यक् ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका है। उस समय पृथ्वी का अधिकतर भाग पिघला हुआ था और उन पिघले हुए पदार्थों के जमने से बनी चट्टानें वर्तमान भूखण्ड के करीब एकपंचमांश भाग में ऊपर निखरी हुई पायी जाती हैं। इनमें प्राणिज अवशेष बहुत कम मिलते हैं परन्तु इन चट्टानों का आर्थिक महत्व बहुत अधिक है। संसार की प्रमुख स्वर्ण खानें इन्हीं चट्टानों में पायी जाती हैं। ट्रान्सवाल में भी यही चट्टानें स्वर्णराशि का भंडार छिपाये हुये हैं।

Archipelago (द्वीप समूह) द्वीप समूह पारिभाषिक शब्दों को विशिष्ट अर्थों में प्रयोग किया जाता है—(१) ऐसा समुद्र जो छोटे-छोटे द्वीपों से भरा हो जैसे एजिअन सागर (२) द्वीप समूह जैसे इन्डोनीसिया। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि द्वीपों से आच्छादित इन सागरों व द्वीप समूह से बने इन देशों का रूप बदलता रहता है। भूगर्भ और भूपटल की गतियों की क्रिया से कभी तो ऐसा होता है कि द्वीप जल में डूब जाते हैं और कभी ऐसा होता है कि नये द्वीप निकल आने से द्वीपों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार द्वीप समूहों का रूप, आकृति व विस्तार बड़ा ही परिवर्तनशील होता है।

Arctic Circle (आर्कटिक वृत्त) उत्तरी गोलार्द्ध में ६६½° उत्तरी अक्षांश रेखा को आर्कटिक वृत्त कहते हैं। पृथ्वी के धुरी के झुके होने से यहाँ पर साल के एक दिन यानी २१ जून को जब समस्त उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम रहता है सूर्यास्त होता ही नहीं। दिन-रात सूर्य का प्रकाश वर्तमान रहता है। इसी प्रकार उत्तरी गोलार्द्ध के जाड़े वाले मौसम में २२ दिसम्बर को यहाँ सूर्योदय होता ही नहीं। चौबीस घंटे बराबर अंधकार रहता है। इस वृत्त से अन्दर की ओर ध्रुव की तरफ बढ़ने पर प्रत्येक मौसम में ऐसे दिनों की संख्या बढ़ती जाती है और अन्त में एक ऐसा बिन्दु आता है जहाँ ६ महीना रात और ६ महीना दिन रहता है।

यहाँ पर बहुत अधिक शीत पड़ती है और साल के अधिकतर भाग में भूखण्ड व जलखण्ड दोनों ही बर्फ से घिरे रहते हैं। यहाँ पर भी शीत प्रचण्ड वायु चलती है परन्तु अन्टार्कटिक वृत्त की अपेक्षा इस उत्तरी वृत्त में भूखण्ड भाग अधिक है और यहाँ लोग रहते भी हैं। इन्हें एस्कीमों या लाप कहते हैं। अधिक व निरन्तर शीत के कारण यहाँ किसी प्रकार का आर्थिक प्रयत्न असंभव सा है।

मौसम के दृष्टिकोण से साल के किसी भी महीने में यहाँ अन्टार्कटिक वृत्त से विपरीत दायें पायी जाती हैं।

Arete (एरीट) एरीट फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। जब दोनों पार्श्वों से अनावृत्तीकरण होता रहता है तो बहुधा घरेरेदार पहाड़ों के ऊर्ध्व मोड़ गुम्बजनुमा नहीं रह पाते। इसके विपरीत उनकी शिखर सुई की तरह तीक्ष्ण और पार्श्व खोखले हो जाते हैं। इस प्रकार की तीक्ष्ण शिरोविन्दु या शिखरवाली पर्वत श्रेणी को एरीट कहते हैं। जब किसी पर्वत प्रदेश पर प्राकृतिक शक्तियाँ कई ओर से प्रहार करके उसे खोखला कर देती हैं तो उसकी चोटी पर कई एरीट बन जाते हैं और पर्वत शिखर के केन्द्र से मशीन के दाँतेदार पहिये की भाँति फैले दिखलाई पड़ते हैं।

Arable Land (कृषियोग्य भूमि) जिस खेतिहर प्रदेश को फसल उगाने के लिए प्रति वर्ष या प्रत्येक द्वितीय वर्ष जोता व ठीक किया जाता है उसे कृषियोग्य भूमि कहते हैं। इस के अन्तर्गत वह सभी भूमि आ जाती है जो किसी भी प्रकार की फसल या उपज उगाने के काम आती है। हल द्वारा जोती हुई भूमि, बगीचे, अंगूर के खेत, थोड़े समय के लिये खाली छोड़ी हुई भूमि और दो फसलों के बीच घास द्वारा आच्छादित भूमि भी इसी के अन्तर्गत आ जाती है।

Argon (आरगन) वायुमण्डल में कई प्रकार की वस्तुयें मिली पायी जाती हैं। गैस, नमी या जलकण व धूलकण मुख्य तत्व हैं। गैसें कई प्रकार की होती हैं। वायुमण्डल में पायी जाने वाली एक प्रकार की प्रभावशून्य गैस का नाम आरगन है। शुष्क हवा में इसका अंश १ प्रतिशत से भी कम होता है। आरगन गैस हल्की होने के कारण वायुमंडल के ऊपरी भागों में पायी जाती है।

Arid (शुष्क) शुष्क प्रदेश से तात्पर्य पृथ्वी के उन भागों से है जहाँ वर्षा की मात्रा आवश्यकता से बहुत कम होती है। यह पारिभाषिक शब्द जलवायु व प्रदेश विशेष दोनों ही के लिए प्रयुक्त होता है। साधारणतया १० इंच से कम की औसत वार्षिक वर्षा में उपयोगी पौधों का उगना असंभव है। इसलिये जिन प्रदेशों या जलवायु में वर्षा इतनी कम होती है कि वहाँ उपयोगी वनस्पति की उपज नहीं हो सकती, उन्हें शुष्क कहा जाता है।

परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि शुष्क प्रदेश में वर्षा बिल्कुल नहीं होती या वहाँ किसी प्रकार की वनस्पति नहीं पायी जाती है। वर्षा भी होती है और घास व झाड़ी की वनस्पति भी पायी जाती है। परन्तु न तो वर्षा की मात्रा ही पर्याप्त होती है और न वनस्पति ही जीवनोपयोगी। शुष्क जलवायु की प्रधान विशेषता यह है कि वाष्पीभवन जलवृष्टि से अधिक होती है और स्थायी जलपूर्ण नदियाँ नहीं पाई जातीं।

Arm (शाखा) जब समुद्र का जल किनारे की कटान में से होकर देश के अन्दर तक आ जाता है तो उसे शाखा कहते हैं। जिन देशों के तटीय प्रदेशों में शाखा पाये जाते हैं वहाँ सुरक्षित बन्दरगाह व पोताश्रय स्वभावतः बन जाते हैं।

Arroyo (आरॉयो) यह स्पेनी भाषा का पारिभाषिक शब्द है और उत्तरी व दक्षिणी अमरीका में प्रयोग किया जाता है। मरुस्थली प्रदेशों में स्थित नदी घाटी को आरॉयो कहते हैं। साधारणतया यह नदी-तलैटी सूखी पड़ी रहती है परन्तु भारी वर्षा के बाद इसमें पानी भर जाता है और कभी-कभी तो वेगपूर्ण धारा सी बन जाती है। लेकिन घाटी में जल अधिक समय तक नहीं रह पाता। जैसे ही वर्षा बन्द होती है वैसे ही तलैटी में जल कम होने लगता है और तलैटी फिर पहले जैसी शुष्क हो जाती है। इस प्रकार की तलैटियों में बनने वाली धाराओं का न तो कोई उद्गम होता है और न कोई मुहाना। इन आरॉयो की दीवारें सीधी व ऊँची तथा इनकी तली सपाट होती है। तली पर बालू, मिट्टी व कंकड़-पत्थर के ढेर पाये

जाते हैं । और इस पत्थरराशि के नीचे काफी पानी इकट्ठा रहता है जो भाप बनने से बच रहता है । जमीन के भीतर की यह जलराशि कुओं व सोतों के रूप में बाहर निकल आती है और इनके आसपास मरुद्यान बन जाते हैं ।

Artesian well (**पातालफोड़ कुआ**) पातालफोड़ कुयें वे हैं जो इतने गहरे होते हैं कि उनका जल कभी भी कम नहीं हो पाता और उनमें जल की मात्रा सदा ही पर्याप्त बनी रहती है । पातालफोड़ कुयें में पानी अपने आप ही जल के दबाव से ऊपर सतह पर आता रहता है । किसी विशेष विधि या उपाय से उसे नहीं खींचना पड़ता । जल का यह दबाव इसलिए पड़ता है कि पानी निकलने का छेद जमीन के भीतर एकत्रित जलराशि के तल से नीचे स्थित होता है । जल की विशेषता यह है कि वह अपना तल पाना चाहता है । अतः चट्टानों की परतों में झूलाकार झुकाव पड़ा होता है तो ऊपरी परतों के नीचे जल भर जाता है और ऐसे स्थान के मध्य में कुआँ खोदने से उसमें से पर्याप्त जल फूट निकलता है ।

पातालफोड़ कुएँ के लिये आदर्श भूप्रकृति उन स्थानों में पायी जाती है जहाँ दो अप्रवेश्य चट्टानों की परत के बीच में प्रवेश्य चट्टानों की एक परत दबी पायी जाती है और साथ-साथ सम्पूर्ण क्षेत्र झूले की तरह अन्दर की ओर झुका रहता है । सबसे ऊपर और सबसे नीचे यदि चिकनी मिट्टी की तह हो तथा बीच में खड़िया मिट्टी की प्रवेश्य परत दबी रहे तो पातालफोड़ कुएँ बनाने के लिये विशेष सुविधा रहती है । वर्षा का पानी प्रवेश्य खड़िया मिट्टी के पार्श्व से होकर अन्दर पहुँच जाता है । खड़िया के नीचे चिकनी मिट्टी की तह होने से पानी और नीचे नहीं जा पाता । फलतः बीच की प्रवेश्य चट्टान वाली परत कुछ समय बाद पानी से पूरी तरह भर जाती है और धनुषाकार स्थल के मध्य में ऊपर की चिकनी मिट्टी वाली परत के बीच से यदि कोई छेद कर दिया जाय तो पानी धड़ाके से बाहर निकल पड़ता है ।

यदि पानी का भंडार काफी हुआ तो कुएँ से अपने आप पानी निकलता रहता है । परन्तु यदि किनारों पर पाये जाने वाली जलराशि का तल बहुत ऊँचा न हुआ तो पानी को हाथ या मशीन द्वारा चलाये जाने वाले पम्प द्वारा निकालना पड़ता है । पम्प द्वारा पानी खींचे जाने वाले ऐसे बहुत से पातालफोड़ कुएँ उन तटीय प्रदेशों में भी पाये जाते हैं जहाँ की बनावट ऐसी होती है कि दो अप्रवेश्य परतों के बीच में स्थित प्रवेश्य तह से होकर वर्षा का जल समुद्र की ओर जाता है ।

पातालफोड़ कुओं की गहराई भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न होती है । कहीं तो ये कुएँ केवल कुछ फीट गहरे होते हैं और कहीं इनकी गहराई सैकड़ों व हजारों फीट तक होती है । वैसे तो ये पातालफोड़ कुयें बहुत समय तक पानी देते रहते हैं परन्तु जब कभी प्राकृतिक शक्तियों व गतियों के फलस्वरूप धनुषाकार आकृति में कोई उलट-फेर हो जाती है तो इनमें पानी आना बन्द हो जाता है । पृथ्वी के शुष्क प्रदेशों में इनका बड़ा महत्व है । बहुत से छोटे नगरों व गाँवों को पीने का पानी इन्हीं कुओं से प्राप्त होता है । संयुक्त राष्ट्र अमरीका और आस्ट्रेलिया के शुष्क व अर्द्ध शुष्क मैदानों में इन कुओं के जल से सिंचाई करके खेती की जाती है ।

Artificial Harbour (**कृत्रिम पोताश्रय**) बन्दरगाहों के पोताश्रय दो प्रकार के होते हैं—स्वाभाविक व कृत्रिम । वास्तव में जहाजों के ठहरने, आने-जाने, माल लादने और उतारने के लिये कुछ स्वाभाविक सुविधाओं का होना आवश्यक है । पोताश्रय को समुद्री लहरों व तूफानों से सुरक्षित होना चाहिये तथा माल लादने-उतारने और जहाजों को किनारे तक पहुँचकर ठहरने के लिये गहरे पानी का पर्याप्त विस्तार होना जरूरी है । जहाँ पर ये स्वाभाविक सुविधायें नहीं पायी जातीं परन्तु देश के व्यापार के लिये बन्दरगाह बनाना

जरूरी होता है वहाँ कृत्रिम तरीकों से इन सुविधाओं को जुटाते हैं। खुले तट को चारों ओर से हजारों फीट लम्बी-चौड़ी दीवार द्वारा घेर कर तूफानों व लहरों से सुरक्षित कर देते हैं। झरनों द्वारा पानी गहरा कर देते हैं और तट से आगे बहुत दूर तक माल लादने-उतारने के लिये चौकियाँ बना देते हैं; इस प्रकार के पोताश्रय को कृत्रिम पोताश्रय कहते हैं। मद्रास इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

Asar (**आसर**) हिम नदी के प्रवाह के नीचे कंकड़-मिट्टी के इकट्ठा हो जाने से साँप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी लम्बी और सँकरी टीलों की पंक्ति सी बन जाती है। इन टीलों की ऊँचाई व चौड़ाई तो कभी भी बहुत अधिक नहीं होती। इनकी चौड़ाई तो कुछ गज ही होती है और ऊँचाई भी १०-१५ फीट से अधिक नहीं होती परंतु ये टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियाँ मीलों तक फैली रहती हैं। इनकी दिशा वही होती है जो हिम नदी के प्रवाह की। इनकी परतें बहुत सटी हुई या जमी हुई नहीं होतीं और उनमें बालू, कंकड़, मिट्टी या घिसे हुये पत्थरों की ढीली-ढाली राशि ही मिलती है। वास्तव में हिम नदी के नीचे बहनेवाली जलधाराओं से ही यह बन जाते हैं। चूँकि यह हिम के नीचे बनते हैं, इसलिये जैसे ही बर्फ पिघलती है तो तेज जल की धारायें चारों ओर फैल जाती हैं और इन टीलों को तितर-बितर कर देती हैं। पर जहाँ किसी कारण-वश हिमनदी के अन्त की धारायें इतनी वेगवती नहीं होतीं वहाँ इन टीलों की पंक्तियाँ पायी जाती हैं। इन्हें नार्वे-स्वीडन में आसर कहते हैं। अन्य स्थानों पर इसे एस्कर के नाम से पुकारते हैं।

Ash Cone (**ज्वालामुखी राख, शंकु**) ज्वालामुखी विस्फोट से निकली हुई सामग्री से बनी शंक्वाकार पर्वत Cinder cone भी कहलाता है। जब कभी ज्वालामुखी उद्गार विस्फोटमय होते हैं तो उनमें निकली राख व कंकड़-पत्थर इधर-उधर इकट्ठा हो जाते हैं। ज्वालामुखी के मुख को देखकर ज्वालामुखी उद्गार की भीषणता का अन्दाज लगाया जा सकता है। जब कुछ समय तक लगातार विस्फोट उद्गार आते रहते हैं तो एक नीचा व चौड़ा शंक्वाकार पर्वत सा बन जाता है और धीरे-धीरे विस्फोटक उद्गार आते रहने पर इसकी ऊँचाई व चौड़ाई बढ़ती रहती है तथा एकत्रित सामग्री परतों में जमती जाती है। फलतः ये शंक्वाकार ज्वालामुखी काफी ऊँचे हो जाते हैं परन्तु अपेक्षाकृत इनका मुँह छोटा ही बना रहता है। इनका ढाल शिखर की तरफ तीव्रतर होता जाता है और दूर से इनके लहरदार मोड़ बड़े ही सुन्दर मालूम पड़ते हैं। वैसे तो इनके दोनों पार्श्व बड़े ही समान रहते हैं और इनकी आकृति सम दिखाई पड़ती है। परन्तु जब कभी उद्गार के समय हवा भी चलती हुई हो तो अन्दर से बाहर फेंका हुआ राख व कंकड़ हवा की विपरीत दिशा में इकट्ठा हो जाता है और इसकी आकृति विषम हो जाती है।

Asteroid (**एस्ट्रायड**) एस्ट्रायड एक छोटे ग्रह का नाम है। इसे Planetoid भी कहते हैं। सूर्य के चारों ओर बृहस्पति नक्षत्रों के ग्रहपथ के बीच में इस प्रकार के बहुत से एस्ट्रायड ग्रह पाये जाते हैं। इनमें से सबसे बड़ा ५०० मील व्यासवृत का है और सबसे छोटा १० मील वृत व्यास का।

Atlas (**मानचित्रावली**) जैसा नाम से ही स्पष्ट है मानचित्रावली में मानचित्रों का संकलन रहता है।

Atlas maps (**मानचित्रावली वाले नक्शे**) मानचित्रावली के नक्शे एक विशेष प्रकार के होते हैं। प्रायः यह बहुत छोटे मानदण्ड पर खींचे जाते हैं। इसी कारण इनमें पृथ्वी के विभिन्न प्राकृतिक भागों से संबंधित विभिन्न प्राकृतिक, जलवायविक और आर्थिक दशाओं का केवल सामान्य चित्रण ही रहता है। यद्यपि अब कुछ विशेष दशाओं के चित्रण के लिए

विशिष्ट मानचित्रावली निकल रही हैं जैसे "आर्थिक मानचित्रावली" या "प्राकृतिक मानचित्रावली" परन्तु अधिकतर ऐसा ही होता है कि एक ही पुस्तक में विभिन्न दशाओं के परिचायक नकशे दिये रहते हैं। चूँकि मानचित्रावली का अधिकतर प्रयोग स्कूली छात्रों द्वारा किया जाता है इसलिए इसमें दिये गये नकशे रंगीन होते हैं और रंगों की विशेषता द्वारा ही मुख्य-मुख्य तत्व दिखलाये जाते हैं। इन मानचित्रों में मानदण्ड छोटा होने के कारण सूक्ष्म तत्वों का दिग्दर्शन सम्भव नहीं होता। इसलिये केवल मुख्य पहाड़ों व उनकी मुख्य चोटियों, प्रमुख नदियों और नगरों तथा प्रधान रेलों व सड़कों को ही दिखाया जाता है। कभी-कभी तो राजनीतिक विभाग और भूप्रकृति को एक ही मानचित्र पर दिखलाया जाता है। इस प्रकार मानचित्रावली के नकशे सामान्य व समन्वित चित्र मात्र उपस्थित कर पाते हैं।

Atmosphere (**वायुमण्डल**) भूमंडल एक आवरण से ढका हुआ है जिसे वायुमंडल कहते हैं। हमारे चारों तरफ वायु का एक समुद्र सा फैला हुआ है और इसकी गहराई करीब ३०० मील है। हमारे ऊपर वायुमण्डल वायु की परतों का बना है और वायु की ये परतें पृथ्वी के समीप तो घनी हैं परन्तु हम जितना ही ऊपर को उठते हैं उतना ही ये परतें एक दूसरे से दूर होती जाती हैं। वायुमण्डल तीन विशिष्ट तत्वों से मिलकर बनता है। इनमें गैसें मुख्य हैं परन्तु साथ-साथ पायी जाने वाली जलवाष्प व धूल के कणों का कुछ कम महत्व नहीं। गैसों में आक्सीजन, नाइट्रोजन और कारबन डाइ आक्साइड प्रमुख हैं। इन्हीं से हमको, जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों को भोजन मिलता है। भाप और धूल के कणों पर वर्षा की दशा निर्भर रहती है। वायुमण्डल के इन विभिन्न तत्वों की मात्रा व अंश ऊँचाई व अक्षांश के अनुसार बदलता रहता है। भूमि के समीप भारी गैसें व भाप पायी जाती हैं पर जितनी ही ऊँचाई पर हम चढ़ते जाते हैं वायु के हलके तत्वों की प्रधानता बढ़ती जाती है। इसी प्रकार भूमध्य रेखा पर ध्रुवों की अपेक्षा हल्के तत्वों की प्रमुखता रहती है।

इन तत्वों के वितरण व मिश्रण के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण बात है वायु का प्रवाह-गति। इसे हम हवा कह सकते हैं। परन्तु हवा के प्रादुर्भाव से पहिले ध्यान देने योग्य बात है हवा की गर्मी, उसका भार और उसकी नमी। वास्तव में सूर्य से ताप प्राप्त होता है परन्तु यह तापशक्ति पृथ्वी पर वायुमण्डल से होकर आती है और इसलिये इस पर वायुमण्डल के तत्वों व गतियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वायुमण्डल की दशा सदैव एक सी नहीं रहती बल्कि भूपटल की प्रकृति के अनुसार अलग-अलग स्थान पर अलग रहती है। इस प्रकार पृथ्वी पर सूर्य की किरणों व ताप का वितरण वायुमण्डल की दशा के अनुसार भिन्न हो जाता है। इसी भिन्नता से ऋतु व जलवायु नामक प्राकृतिक परिस्थिति का सूत्रपात होता है जो हमारे जीवन पर बड़ा व्यापक प्रभाव डालती है।

Atmospheric Pressure (**वायुभार**) वायु में भार होता है और वायुमण्डल में सदैव ही ऊपर की तहों का भार नीचे वाली तहों पर पड़ता रहता है। इसी कारण ऊपर की वायु हलकी तथा फैली हुई रहती है और नीचे की वायु अधिक घनी तथा भारी होती है। पृथ्वी के धरातलपट पर प्रति वर्ग इंच भूमि पर १४½ पौंड वायु का भार रहता है। वास्तव में किसी पृथ्वी के एक विन्दु पर वायु का भार उस विन्दु पर पड़ने वाले वायुस्तम्भ पर निर्भर रहता है। समुद्र तल से हम जैसे-जैसे ऊपर की ओर चढ़ते जाते हैं वायु का भार कम होता जाता है। परन्तु समुद्रतल के सभी स्थानों पर एक सा भार नहीं रहता। वायु का भार नापने के लिये वायुभार-मापक यन्त्र अथवा Barometer का प्रयोग किया जाता है।

समुद्रतल पर वायुभार के घटने-बढ़ने के कई कारण हैं—(१) गर्मी के कारण वायु फैलती

है और उसका घनत्व कम हो जाता है। इसलिये जब और जहाँ ताप अधिक होता है तो भार कम हो जाता है। (२) केवल वायु मे भाप भरी वायु हल्की रहती है। इस कारण नम या आर्द्र वायु का भार कम होता है। यही कारण है कि भूमध्य रेखा पर निम्न भार कटिबंध स्थित है। ध्रुवों पर अधिक शीत होने के कारण उच्च भार तो अवश्य रहता है परन्तु पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ध्रुवीयवृत्तों के चारों ओर निम्न भार कटिबंध रहता है। पृथ्वी की दैनिक गति वायु के बड़े परिमाण को भूमध्यरेखा की ओर हटाती रहती है। इन दोनों के बीच में कर्क और मकर रेखा के चारों ओर उच्च भार कटिबंध है।

Atmospheric obscurity (**वायुमण्डलीय अदृश्यता**) वैसे तो वायुमण्डल की परतें पारदर्शक होती हैं और मनुष्य नंगी आँख से काफी दूर तक देख सकता है परन्तु कभी-कभी वायु में स्थित भाप तत्व के द्रवीभवन से यह दृश्यता कम हो जाती है और उस दशा को वायुमण्डलीय अदृश्यता कहते हैं। भाप से भरी हवा जब किसी ठंडी सतह को स्पर्श करती है या ऊपर उठकर फैलती है या भिन्न तापक्रम की नम हवावाली धारायें जब आपस में मिलती हैं तो भाप द्रवीभूत हो जाती है और वायु में मिले धूल के कणों पर पानी की ये महीन बूँदें लटकी रह जाती हैं। फल यह होता है कि सम्पूर्ण वायमण्डल में धुंध फैल जाता है और कभी-कभी तो अदृश्यता इतनी बढ़ जाती है कि थोड़ी दूर पर स्थित वस्तुयें तक नहीं दिखलाई पड़तीं। कभी-कभी वायुमण्डल में बाहर से धूल व धुओं का अंश आ जाता है और इसके कारण भी वायुमण्डलीय अदृश्यता बढ़ जाती है। इस तरह धुंध और धुँये से अदृश्यता उत्पन्न होती है।

Atoll (**वृत्ताकार प्रवाली**) ३०° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश के बीच के समुद्रों का जल गर्म रहता है। जल की सतह का तापक्रम ७०° रहता है और जल की गहराई ३० फैदम से अधिक नहीं होती है। ऐसी दशाओं में मूँगे के कीड़े पनपते हैं। परन्तु जरा-सा भी कूड़ा-करकट इनके लिये बड़ा ही घातक होता है। इसलिये मूँगे के कीड़े साफ जल में अधिक पाये
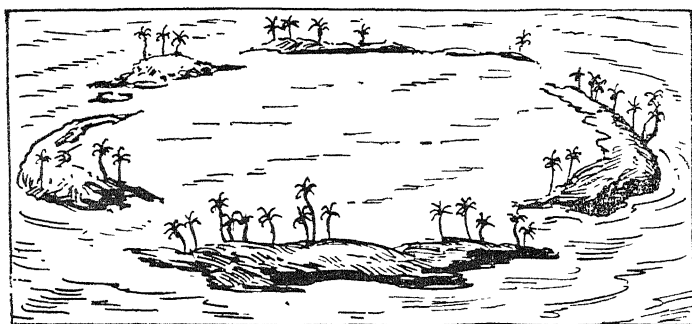
वृत्ताकार प्रवाली

जाते हैं। इन कीड़ों के शरीर एक दूसरे से इस प्रकार मिले रहते हैं कि उनके झुंड व समूह बन जाते हैं। इस प्रकार के झुंड व समूह एक दूसरे पर परत की तरह इकट्ठा होते जाते हैं और समुद्रतली से ऊपर व बाहर की ओर बढ़ते हुए मूँगे के ये टीले कुछ समय बाद समुद्र जल के बाहर निकल आते हैं। मूँगे की इन चट्टानों में प्रायः बुझे हुए चूने का अंश अधिक रहता है और चाहे उनकी परतें कितनी ही जमी हुई क्यों न हों पर उनकी ऊँचाई ज्वारभाटे के जल में १०-२० फीट से अधिक नहीं होती। मूँगे की इन चट्टानों व द्वीपों का फैलाव कई आकार

में पाया जाता है। जब मूँगे की चट्टान अँगूठी या घोड़े की नाल की तरह गोलाकार शृंखला सी बनी होती है और बीच में छिछले पानी का जलाशय रहता है तो उसे Atoll या मूँगे की चट्टानों की गोलाकार शृंखला या वृत्ताकार प्रवाली कहते हैं।

इस शृंखला की उत्पत्ति व विकास के विषय में दो मत हैं। डारविन महोदय के अनुसार किसी एक द्वीप के चारों ओर मूँगे की चट्टान की दीवार या किनारा बनता रहता है। भूपटल की गतियों के प्रभाव से यदि बीच का द्वीप जल निमग्न हो जाय तो चारों ओर के किनारे वाली मूँगे की दीवार ही शेष रह जायगी तथा द्वीप के स्थान पर जलाशय बन जायगा। इस प्रकार मूँगे की चट्टानों की शृंखला बन जाती है। दूसरा मत मरे महोदय का है। उनके अनुसार मूँगे के कीड़ों का प्राणिज निक्षेप समुद्रतल में स्थित किसी ज्वालामुखी या पहाड़ी के शिखर पर शुरू होता है। साथ साथ किनारे की मूँगे की चट्टानें भी बनती रहती हैं और बहुधा समुद्र की सतह पर पहले पहुँच जाती हैं। बीच के शिखर पर एकत्रित चूना व मूँगा धीरे-धीरे जल में घुल जाता है और इस प्रकार एक जलाशय के चारों ओर शृंखलाबद्ध मूँगे की चट्टानें खड़ी रह जाती हैं।

वास्तव में ये दोनों ही मत अपूर्ण व संदिग्ध हैं। मूँगे की चट्टानों की शृंखला इस प्रकार भी बनती है और इनके अलावा अन्य प्रकार से भी। इस प्रकार के जलाशययुक्त मूँगे की चट्टानों की गोलाकार शृंखला प्रशान्त महासागर में बहुत पाई जाती हैं। इन पर कोई विशेष आबादी तो नहीं है पर वैसे ये सैर के लिये बड़े ही उपयुक्त रहते हैं। इन पर प्रायः ताड़ के पेड़ उगे हुए दिखाई पड़ते हैं।

Attenuated form **(खींचा हुआ स्वरूप)** बहुत से देश व महाद्वीपों की स्थिति ऐसी होती है कि उन का विस्तार पूर्व और पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण में काफी फैला हुआ नहीं होता। जब प्रदेश की लम्बाई बहुत अधिक हो पर अपेक्षाकृत चौड़ाई कुछ न हो तो उस आकृति को खींचा हुआ स्वरूप कहते हैं। चिली का देश इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। ऐसी आकृति के देशों में आवागमन के मार्ग छोटे, स्थानों के बीच दूरी कम तो जरूर होती है परन्तु खेती का धंधा सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। खींचे हुए स्वरूप के देशों का पूर्व से पश्चिम तक का विस्तार बहुत कम होता है परन्तु उत्तर से दक्षिण तक वे बहुधा कई भिन्न अक्षांशों में फैले रहते हैं।

Aurora Australis **(दक्षिणी ध्रुव प्रकाश)** दक्षिणी गोलार्द्ध में ६५° दक्षिणी अक्षांश रेखा के समीप वाले भागों में एक प्रकाश दृष्टिगोचर होता है जिसे दक्षिणी ध्रुव प्रकाश कहते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में भूखण्ड का विस्तार कम होने से इस प्रकाश की विशेषताओं व प्रभावों का कोई खास अध्ययन नहीं किया जा सका है। परन्तु यह बहुत कुछ उसी प्रकार है जैसा उत्तरी ध्रुव प्रकाश।

वास्तव में दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव प्रकाश दोनों एक ही प्रकार के प्रकाश हैं जो ध्रुवीय प्रदेशों में देखे जाते हैं। यह प्रकाश अन्य और प्रकार के प्रकाश की भाँति सूर्य से सम्बन्धित है। सूर्य की बनावट अणु के समान है जिस के सम केन्द्र के चारों ओर विषम कण भ्रमण करते रहते हैं। विषम बिजली के इन कणों के घूमते रहने से सौरमंडल के ऊपरी भाग में चुम्बक से गुण आ जाते हैं। फलतः सौरमंडल का बहुत कुछ अंश खिंच कर ऊपर उठ जाता है और वहाँ पर फैल कर ठंडा होने पर काला दिखलाई पड़ने लगता है। फलतः सूर्य में धब्बे नजर आने लगते हैं जिन्हें Sun spots कहते हैं। जब ये Sun spots प्रकट होते हैं तो सौरमंडल में विद्युत विस्फोट होते हैं और इसकी प्रतिक्रिया वायुमंडल में भी होती है। वैज्ञानिक खोजों से पता चला है कि ध्रुव प्रकाश वायुमण्डल में होनेवाले विद्युत विस्फोटों

के कारण ही उत्पन्न होता है और ये विस्फोट उस साल या समय बहुत अधिक होते हैं जब सूर्य में धब्बे नजर आते हैं। सूर्य में काले धब्बे (Sun spots) हर ग्यारहवें साल अधिक हो जाते हैं और इसीलिये हर ग्यारहवें साल ध्रुव प्रकाश भी तीव्र हो जाता है।

Aurora Borealis (**उत्तरी ध्रुव प्रकाश**) उत्तरी गोलार्द्ध में ध्रुवीय प्रदेशों में जो ध्रुव प्रकाश दिखलाई पड़ता है उसे उत्तरी ध्रुव प्रकाश कहते हैं। कभी-कभी इसे केवल उत्तरी प्रकाश भी कहते हैं। दक्षिणी यूरोप में यह कभी-कभी ही दिखलाई पड़ता है और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व दक्षिणी इंगलैंड में तो यह कदापि दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु जैसे-जैसे हम ऊपरी अक्षांशों की ओर बढ़ते हैं यह अधिक दृष्टिगोचर होने लगता है। यूरोप और एशिया में ७०° अक्षांश रेखा पर और अमरीका में ६०° उत्तरी अक्षांश पर स्थित स्थानों पर उत्तरी ध्रुव प्रकाश अक्सर दिखलाई पड़ता है। आरकने, शटलैंड, नार्वे और दक्षिणी ग्रीनलैंड के प्रदेश में यह सबसे अधिक साफ दिखलाई पड़ता है। परन्तु इन स्थानों से भी उत्तरी ध्रुव प्रकाश की दृष्टिगोचरता प्रायः अनिश्चित ही रहती है। बहुधा दिन के प्रकाश या मेघाच्छादित आकाश से यह छिप जाता है। जब ध्रुव प्रकाश अधिक तीव्र नहीं होता तो चाँद के प्रकाश या गोधूलि के प्रकाश से भी छिप जाता है।

साधारणतया उत्तरी ध्रुवप्रकाश ५० मील से लेकर २४० मील की ऊँचाई तक वायुमण्डल में फैला दिखलाई देता है। परन्तु यह ऊँचाई भी अनिश्चित ही रहती है। नार्वे के पश्चिम में इसी प्रकार का प्रकाश सन् १९२६ के सितम्बर मास में दिखलाई पड़ा था और उसकी ऊँचाई ६०० मील थी। वैसे कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने बादलों के नीचे एक मील की ऊँचाई तक भी यह प्रकाश देखा है।

उत्तरी ध्रुव प्रकाश रूप रंग में कई प्रकार का होता है। धुँधला होने पर इसका रंग सफेद दिखलाई पडता है और कुछ तेज होने पर पीला। जब यह प्रकाश पूर्णतया तेज हो जाता है तो इसमें विविध रंग दिखलाई पड़ने लगते हैं। लाल और हरा रंग तो विशेष रूप से चमकता रहता है। वैज्ञानिकों का विचार है कि आक्सीजन के कारण हरा रंग दिखलाई पड़ता है और नाइट्रोजन के बिन्दुओं के कारण बहुत से अन्य रंग भी चमकते रहते हैं। इसके रूप और आकार भी अनन्य होते हैं। साधारण रूप से तो यह प्रकाश अर्द्धवृत्त सा फैला रहता है। कभी-कभी प्रकाश के अर्द्धवृत से रश्मियाँ पंखे की डंडियों के समान फैली दिखलाई पड़ती हैं। कभी-कभी उत्तरी आकाश में प्रकाश के चमकदार बादल दूर से कमरों के पर्दे या रंगीन झंडियों के समान मालूम पडते हैं। कभी प्रकाश एक छल्ले के समान संकुचित हो जाता है और उससे निकलकर किरणें क्षितिज की ओर फैल जाती है। रूप, रंग में इस परिवर्तनशीलता के कारण ही इस प्रकाश को हँसमुख नर्त्तकी (Merry Dancer) के नाम से भी पुकारा जाता है। और सचमुच ही उत्तरी ध्रुव प्रकाश की किरणें नृत्य करती हुई दिखलाई पड़ती हैं। कभी वे आगे जाती हैं तो कभी पीछे हटती है, कभी एक दूसरे को काटती है तो कभी ऊपर को चढ़ती हुई मालूम पड़ती हैं।

प्रकाश के साथ-साथ विद्युत विस्फोट भी होते हैं और यदि यह प्रकाश दक्षिणी इंगलैंड के अक्षांश पर दीख जाता है तो बडे भीषण चुम्बकीय तूफान आ जाते हैं। इस चुम्बकीय उथल-पुथल से भूपटल पर लहरें उठने लगती हैं। सन् १८७५ से सन् १९०३ तक पृथ्वी पर इस प्रकार १९ उथल-पुथल हुये। फलतः टेलीग्राफ के तार, बेतार के तार के खंभे आदि उखड़ जाते हैं और भूपटलपर भीषण परिवर्तन तक हो जाते हैं।

Autarky (**आत्मपूर्णता**) वर्त्तमान युग में संसार के विभिन्न राष्ट्र आपस में इस तरह सम्बद्ध हैं कि एक की आवश्यकता दूसरे से पूरी होती है। वर्त्तमान व्यापार का मुख्य स्तम्भ

आयात-निर्यात है। सभी देश दूसरे देशों से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ मँगा कर अपनी आवश्यकता पूरी करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि कहीं कोई वस्तु होती है तो कहीं दूसरी वस्तु बनाई जाती है। इस प्रकार की परस्पर निर्भरता को युद्धकाल में विशेष धक्का पहुँचता है। अतएव आजकल सभी राष्ट्रों की यह नीति है कि देश में आवश्यकता की सभी वस्तुओं का उत्पादन इतना कुछ बढ़ा लिया जावे कि देश आर्थिक दृष्टिकोण से पूर्ण व आत्मनिर्भर बन जावे। प्रत्येक राष्ट्र आर्थिक योजनाएँ बनाकर अपने देश की प्राकृतिक सम्पत्ति का इतना विकास करना चाहता है कि वह आत्मपूर्णता की मंजिल प्राप्त कर ले। कभी-कभी तो आत्मपूर्णता की इस नीति को सिद्ध करने के लिए पास के देशों पर चढ़ाई भी कर दी जाती है। परन्तु यह इस नीति का गलत उपयोग है। इस दृष्टिकोण से यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि आर्थिक आत्मपूर्णता स्वायत्तशासन से बिल्कुल भिन्न है।

Avalanche (**हिमखंड**) पर्वतों के उच्च शिखरों पर सदा बर्फ पड़ी रहती है और बर्फ की यह टोपी दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। जब बर्फ इतनी अधिक इकट्ठा हो जाती है कि शिखर के लिये सँभालना मुश्किल हो जाता है तो ऊपर की बर्फ की तहों के भार से नीचे की हिम राशि खसकने लगती है और अपने ही बोझ से वह पर्वतीय ढालें खसक आती हैं। इस प्रकार की क्रिया व दबाव से विशाल हिमखंड पर्वतीय ढालों पर होकर नीचे की ओर तेजी से सरकते चले आते हैं। इन्हें हिमखंड कहते हैं। बहुधा इन हिमखंडों के साथ हजारों टन कंकड-पत्थर भी ऊपर की चोटियों से नीचे चला आता है। फलतः इन हिमखंडों के प्रवाह से मार्ग में स्थित गाँव, सड़कें व जंगल तहस-नहस हो जाते हैं। ये हिमखंड बड़े ही विध्वंसकारी होते हैं और इनका प्रवाह तभी रुकता है जब वह किसी गहरे खड्ड में गिर जाय या पर्वत की तलैटी पर आकर स्वयं ही रुक जाय।

Avalanche Cone (**हिमखंड शंकु**) जहाँ हिमखंड आकर रुकते या गिर पडते हैं वहाँ बहुधा बर्फ और हिम के साथ कंकड-पत्थरों की बहुत बड़ी राशि इकट्ठा हो जाती है। वहाँ पर वे सब वस्तुएँ भी पड़ी रह जाती हैं जिन्हें ये हिमखंड अपनी प्रगति में विध्वंस करते चलते हैं। इस प्रकार की मिली-जुली एकत्रित वस्तुओं का ढेर शंकु के आकार का होता है और उसे हिमखंड शंकु कहते हैं।

Avalanche wind (**हिमखंड वायु**) जब हिमखंड पर्वतीय ढालों पर से उतरता रहता है तो उसकी तीव्र गति के प्रभाव से बड़ी तेज हवा चलने लगती है। यह हवा बड़ी ठंडी और इस की गति बडी तीव्र होती है। इसे तूफान सा कह सकते हैं। यह हिमखंड वायु कहलाती है और इस की प्रचण्डता व प्रकोप इतना अधिक होता है कि दूर-दूर तक इस के द्वारा हानि होती है। पर्वतीय नगरों के मकानों की छतें उड जाती हैं, खंभे व तार उखड जाते हैं और सैकड़ों मनुष्यों व जानवरों की जानें चली जाती हैं। परन्तु यह वायु काफी ऊँचे पर्वतीय प्रदेशों में पायी जाती है।

Aven (**आवन**) यह फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। खड़िया या चूने के बने प्रदेशों में अक्सर जलप्रवाह से चट्टानों का कुछ भाग घुल जाता है और उसमें कुप्पी के तरह के छेद बन जाते हैं। इन छेदों में से होकर सतह पर बहने वाली नदी जमीन के अन्दर प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार के छेदों को आवन कहते हैं। (देखिये Sinkhole)

Aviation (**हवाई उड़ान**) वायुयानों के आविष्कार से हवा में उड़ना सम्भव हो सका है और आजकल हवाई उड़ान का व्यापारिक व सैनिक जगत में विशेष महत्व है। इस के द्वारा एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने में बहुत कम समय लगता है। सैनिकों को

गहन व दुर्गम से दुर्गम प्रदेशों में भी पहुँचाया जा सकता है और घिरी हुई जनता को रसद आदि भी ऊपर से दी जा सकती है। हवाई उड़ानें प्राय: तीन प्रकार की होती हैं —(१) व्यापारिक, (२) सैनिक और (३) असैनिक या नागरिक। यद्यपि सैनिक हवाई उड़ानों को पिछले दो महायुद्धों से विशेष प्रोत्साहन मिला है परंतु अतिरिक्त व्यापारिक उड़ान का सम्बन्ध केवल बहुमूल्य वस्तुओं व डाक से ही हो सकता है। असैनिक उड़ान की उन्नति पाश्चात्य देशों में तो हुई है परन्तु पृथ्वी के बहुत से भाग अभी भी इसमें पिछड़े हैं। वास्तव में किराये की दर की अधिकता व उड़ान में मृत्यु के भय के कारण असैनिक उड़ान ने विशेष प्रगति नहीं की है।

Aviculture (पक्षी पालन) व्यापारिक दृष्टिकोण से चिड़िया पालने का धंधा बहुत अधिक उन्नत नहीं है। अधिकतर लोग केवल शौक के लिये ही चिड़िया पालते हैं। परंतु मुर्गी, बत्तख और शुतुरमुर्ग का व्यापारिक महत्व है और इन्हें अंडों व परों के लिये पाला जाता है। मुर्गी, बत्तख और शुतुरमुर्ग पालने के धंधे में अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होती। इसलिये खेती के साथ ही साथ इस धन्धे को भी लोग करते रहते हैं। मुर्गी और बत्तख पालने का धन्धा विशेष कर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, योरप और पूर्वी एशिया में महत्वपूर्ण है। मुर्गी पालने का धन्धा उन्हीं देशों में अधिक होता है जहाँ आबादी घनी है और गहरी खेती होती है। मुर्गी खेत और घर के कूड़े पर निर्वाह कर लेती है। कनाडा में भी मुर्गियाँ पाली जाती हैं। चीन का शाटुंग प्रायद्वीप भी मुर्गी पालने और अंडे उत्पन्न करने के लिए बड़ा ही प्रसिद्ध है। डेनमार्क, हालैंड, आयरलैंड, पोलैंड और बेलजियम में भी मुर्गी पालने का धन्धा बहुत उन्नत दशा में है। इन देशों में बड़े-बड़े खेतों पर हजारों की संख्या में मुर्गियाँ पाली जाती हैं, उन्हें बहुत प्रकार का बना हुआ भोजन खिलाया जाता है और ऐसे यन्त्र भी तैयार कर लिये गये हैं जिनसे अंडे को गरमी पहुँचाकर बच्चे निकाल लिये जाते हैं। अंडों को शीत भण्डार रीति से बहुत दिनों तक रक्खा जा सकता है।

शुतुर्मुर्ग पालने का धन्धा दक्षिणी अफ्रीका, सूडान, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, आरजेन-टाइना तथा फ्लारिडा में होता है। इस पक्षी को उसके मुलायम व सुन्दर परों के लिये पाला जाता है। इन परों से सुन्दर तथा फैशनेबिल वस्त्र तैयार किये जाते हैं।

Axis (अक्ष) पृथ्वी के केन्द्र से गुजरनेवाली काल्पनिक रेखा जो उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों को मिलाती है, उसे पृथ्वी की धुरी या अक्ष कहते हैं। पृथ्वी की धुरी को हम उसका वह व्यास कह सकते हैं जिस पर वह घूमती है। वास्तव में पृथ्वी अपने अक्ष (धुरी) पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। इसी कारण सूर्य स्थायी होने पर भी पूर्व दिशा से पश्चिम तक चलता हुआ मालूम पड़ता है।

पृथ्वी का अक्ष भूमध्यरेखा पर लम्बरूप अवश्य रहता है परन्तु पृथ्वी के ग्रहपथ पर अक्ष की स्थिति लम्ब के समान खड़ी कदापि नहीं है। अक्ष एक ओर को झुका हुआ है। अक्ष का झुकाव निश्चित व दृढ़ है। वह कभी बदलता नहीं। पृथ्वी के ग्रह पथ से २३½° झुकाव पर अक्ष झुका हुआ है। या यों कह सकते हैं कि पृथ्वी के ग्रहपथ के साथ उस की धुरी (अक्ष) ६६½° का कोण बनाती है। इस प्रकार पृथ्वी के अक्ष का झुकाव व स्थिति सदैव स्थायी रहती है। इसका सबसे उत्तरी सिरा जिसे उत्तरी ध्रुव कह सकते हैं सदैव ध्रुवतारे के समीपवर्ती आकाशविन्दु की ओर संकेत करता रहता है।

पृथ्वी की धुरी (अक्ष) का विशेष महत्व है। इसी पर घूम कर पृथ्वी दिनभर में यानी २४ घंटों में एक चक्कर पूरा कर लेती है। इस दृष्टिकोण से पृथ्वी के अक्ष का झुकाव और भी अधिक ध्यान देने योग्य है क्योंकि इसी झुकाव के कारण बहुत सी प्राकृतिक दशाएँ उत्पन्न

हो जाती हैं। मौसमों का हेर-फेर, दिन-रात के समय या अवधि में अन्तर तथा तापक्रम का वितरण इसी अक्ष के झुकाव पर निर्भर रहता है और इसी द्वारा निर्धारित भी किया जाता है।

Azimuth (**अजीमथ**) निरीक्षक की स्थिति और पृथ्वी के ध्रुवों से गुजरने वाली लम्बरूप एक रेखा खींचें और इसी प्रकार की एक दूसरी लम्ब रूप रेखा निरीक्षक की स्थिति और दी हुई वस्तु की स्थिति से होती हुई जाय तो इन दोनों खंडों के बीच एक कोण सा बन जायगा। अब यदि इन दोनों लम्बरूप खंडों के बीच की समतल कोणिक दूरी को नापें तो वह एजीमथ कहलायेगी। प्राय: एजीमथ डिग्रियों में व्यक्त किया जाता है और इसको निकालने व व्यक्त करने की रीतियाँ दो विशेष प्रकार की हैं। समुद्र सम्बन्धी खगोल विद्या में तो ध्रुव को केन्द्र मानकर उसे ०° मान लेते हैं और फिर पूर्व तक १८०° गिन जाते हैं। इसी प्रकार ध्रुव से पश्चिम की ओर भी १८०° तक गिन जाते हैं। ऋतु विज्ञान में एजीमथ निकालने के लिये वास्तविक उत्तर को केन्द्र मान लेते हैं और उसे ०° निर्धारित करते हैं। फिर घड़ी की सुइयों की भाँति ३६०° तक एजीमथ निकाले जाते हैं।

Azimuthal Projection (**एजीमूथल अंकन**) एजीमूथल अंकन में दिशाओं की यथार्थता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार के अंकन पर खींचे गये मानचित्र की विशेषता यह होती है कि नक्शों के केंद्र से देखने पर सब ओर की दिशाएँ बिलकुल सही रहती हैं। वास्तव में मानचित्र पर स्थानों व वस्तुओं की वही दिशाएँ रहती हैं जो पृथ्वी के वास्तविक धरातल पर। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि दिशा की सत्यता या यथार्थता केवल केन्द्र और उससे देखे जाने वाले बिन्दुओं के बीच तक ही सीमित रहती है। अन्य बिन्दुओं के बीच दिशाएँ न तो सत्य होती हैं और न यथार्थ ही। इनको सम दिशा या Conformal अंकन भी कहते हैं। समक्षेत्र अंकन से इसका फरक केवल देखने मात्र से ही पता चल जाता है। समक्षेत्रफल अंकन में तो भूमध्यरेखा से जैसे-जैसे हम उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, अक्षांश रेखाओं के बीच का अन्तर घटता जाता है। परन्तु एजीमूथल अंकन में भूमध्यरेखा से उत्तर व दक्षिण की ओर बढ़ने पर अक्षांश रेखाओं के बीच का अन्तर क्रमश: बढ़ता जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि इस अंकन पर खींची गई अक्षांशरेखाएँ पूर्ण वृत्त बनाती हैं। एजीमूथल अंकन पर खींची गई अक्षांशरेखाएँ पूर्ण वृत्त बनाती है। एजीमूथल अंकन को अधिकतर उन मानचित्रों के लिये प्रयोग करते हैं जिनमें आकृति व दिशा का सही होना आवश्यक है। अतएव वायु व समुद्री धाराओं के नक्शे तथा समुद्री व वायु मार्गों के चित्र इसी अंकन पर खींचे जाते हैं। इस अंकन का दूसरा नाम Zenithal Projection (जेनीथल अंकन) भी है।

इस अंकन को बनाने के लिये ग्लोब को छूते एक कागज पर रोशनी की सहायता से अक्षांश व देशान्तर रेखाओं के जाल की परछाँई फेंकते हैं। कागज ग्लोब को कहाँ छूता है और दूसरे रोशनी कहाँ पर रक्खी है, इन दोनों आधारों पर इस अंकन के कई भेद-उपभेद हो जाते हैं। जब कागज ग्लोब को ध्रुव पर छूता है तो जो अंकन बनाया जाता है उसे **ध्रुवीय जेनीथल अंकन** कहते हैं। जब कागज ग्लोब पर इस प्रकार रक्खा जाता है कि भूमध्य रेखा पर उसे छूता है तो उसे **भूमध्य रेखीय जेनीथल अंकन** कहते हैं। और जब अंकन का कागज ग्लोब को भूमध्य रेखा और ध्रुव के बीच में स्थित किसी बिन्दु पर स्पर्श करता है तो उसे **टेढ़ा जेनीथल अंकन** कहते हैं। इसी प्रकार रोशनी की स्थिति के अनुसार इसके तीन अन्य भेद हो जाते हैं। जब प्रकाश ग्लोब के मध्य में रहे तो **ग्नोनोमिक अंकन** कहते हैं। यदि प्रकाश ग्लोब के ऊपर उस बिन्दु पर रख दिया जावे जो ठीक उस भाग के विपरीत हो जहाँ कि ग्लोब कागज छूता है

तो एक **स्टीरियोग्राफिक अंकन** प्राप्त होगा। इस अंकन में अक्षांश रेखा व देशान्तर रेखाओं के बीच की दूरी सीमा की ओर बढ़ती जाती है और इसलिये क्षेत्रफल भी बढ़ते जाते हैं। यदि प्रकाश बहुत दूर से ग्लोब के ठीक ऊपर से होकर आये तो इस पर खिंची काली रेखाओं की छाया कागज पर पड़ने के कारण हमें एक आर्थोग्राफिक अंकन प्राप्त होता है। इसमें अक्षांश व देशान्तर रेखाएँ मानचित्र की सीमा पर एक दूसरे के बहुत समीप होती हैं और इसीलिये क्षेत्रफल बहुत ही कम हो जाते हैं।

इन तीनों भेदों में से **ग्नोनोमिक अंकन** सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें देशान्तर रेखाएँ तो सीधी रेखाओं द्वारा अंकित की जाती हैं और अक्षांश रेखाएँ एक ही केन्द्र से खींचे गये वृत्तों द्वारा बनती हैं। इस कारण दो बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा से उनके बीचका सबसे छोटा मार्ग का पता चल जाता है। इसमें केन्द्र से सीमा की ओर बढ़ने पर मान दण्ड बढ़ता जाता है। इसलिये विस्तृत क्षेत्रफल के चित्रण के लिये यह अंकन प्रायः बेकार सा है। नक्शे के भागों की दूरी, क्षेत्रफल और आकार बहुत विकृत हो जाता है। इसका एक दोष यह भी है कि इस पर पूरे गोलार्द्ध का विस्तार नहीं दिखाया जा सकता। इसको बनाने में काफी गणित का प्रयोग होने से और भी कठिनाई पड़ती है। इसीलिये केवल ध्रुवीय ग्नोनोमिक अंकन का ही अधिक प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग अन्त-र्राष्ट्रीय जलमार्गों के नक्शों, पोताश्रयों के रेखाचित्रों व ध्रुव प्रदेशों के मानचित्रों के लिये किया जाता है। क्षेत्रफल व मानदण्ड के विकृत हो जाने के कारण इसे मानचित्रावली के नक्शों के लिये नहीं प्रयोग करते।

Backing (**वायुदिशा विरुद्ध परिवर्तन**) बहुधा वायु की दिशा में एकाएक परिवर्तन हो जाता है। जब वायु की दिशा घड़ी की सुइयों के विपरीत ढंग से बदलती है तो उसे वायु दिशा विरुद्ध परिवर्तन कहते हैं। पूर्व दिशा से बहती हुई वायु पहले उत्तर-पूर्व की ओर से चलने लगेगी और फिर उसकी दिशा उत्तर की ओर हो जायगी।

Bad Lands (**बंजर भूमि**) शुष्क प्रदेशों में कटे-फटे ऊबड़-खाबड़ प्रदेश को बंजर भूमि कहते हैं। बंजर भूमियाँ आसपास के धरातल से कुछ ऊँची होती हैं और वर्षा की कमी के कारण न तो उन में घास ही उगती है और न अन्य किसी प्रकार की वनस्पति। अतः जब कभी भी घोर वर्षा हो जाती है तो उसमें दरारें पड़ जाती हैं। भूमि इतनी कटफट जाती है कि अक्सर गहरी कन्दराएँ व नालियाँ तक बन जाती हैं। उस पर से प्रकृति की अन्य शक्तियों को प्रहार करने का पर्याप्त अवसर मिलता है। फल यह होता है कि समस्त क्षेत्र कटा-फटा या ऊबड़-खाबड़ ही नहीं हो जाता बल्कि बीच-बीच चट्टानों के लम्बे खम्बे व चबूतरे उभरे हुए नजर आते हैं। इन पर की मिट्टी या धूल हवा या जल द्वारा हटाई जा चुकी होती है। अतएव इन प्रदेशों में न तो खेती हो सकती है और न पशुचारण ही। आर्थिक दृष्टिकोण से यह बंजर भूमि सर्वथा बेकार होती है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पश्चिमी भाग में इस प्रकार की विस्तृत बंजर भूमि पड़ी हुई है। वर्षा की शुष्क पेटी में भी इसी प्रकार की दशाएँ पायी जाती हैं।

Baguio (**बागुइओ**) अगस्त और सितम्बर के महीनों में दक्षिणी प्रशान्त महासागर व प्रशांत महासागर के पश्चिमी भाग में जहाँ केरोलीन द्वीप स्थित है तूफान की तरह भीषण व प्रचण्ड उष्णकटिबंधीय चक्रवात उत्पन्न हो जाते हैं और व्यापारिक वायु के साथ-साथ आगे बढ़ने लगते हैं। ये तूफानी चक्रवात फिलीपाइन द्वीप समूह पर भी आते हैं और वहाँ इन्हें बागुइओ कहते हैं।

Bahada (**बहादा**) पहाड़ी के आधार सीमा पर स्थित कई मृत्तिकामय प्रदेशों

से मिलकर बन मैदान का स्थानीय नाम हैं । (देखिये Alluvial Fan, Piedmont (Alluvial Plain)

Bai-U (बाई-यू) जापान में गर्मी के प्रारम्भ में होने वाली वर्षा को बाई-यू कहते हैं। एशिया महाद्वीप पर उत्पन्न चक्रवात मध्य चीन और पीले सागर को पार करके पहुँचते हैं। इस काल में आसमान में बादल छाये रहते हैं और वायु बड़ी ही आर्द्र रहती है । जलवृष्टि प्रायः हर समय ही होती रहती है । बादलों की वजह से तापांश अधिक नहीं बढ़ने पाता । इसी समय चावल के पौधों को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाने का काम भी होता रहता है । इसलिये चावल की फसल के लिये यह जलवृष्टि बड़ी लाभदायक सिद्ध होती है । यही समय अखरोट के पकने का भी होता है । इसलिये बहुधा इस वृष्टि को Plum Rain या अखरोट की वर्षा भी कहते है ।

Ballon Sonde (उच्च वायुप्रदेश निरीक्षक गुब्बारा) वायुमंडल की ऊपरी परतों का अध्ययन कई प्रकार के प्रयत्नों व उपायों द्वारा किया जाता है । ९ किलोमीटर की ऊँचाई तक तो पतंग द्वारा पता लगाया जा सकता है । हवाई जहाज १२ किलोमीटर तक जा सकते हैं; और ऊपर ३५ किलोमीटर की ऊँचाई तक मनुष्य संचालित गुब्बारों द्वारा जाँच-पड़ताल की जाती है । परन्तु इस के ऊपर मनुष्य का जाना संभव नहीं होता और न ही भेजे हुये गुब्बारों पर मनुष्य का कुछ संचालन ही रह जाता है । इसलिये एक बड़ा गुब्बारा हाइड्रोजन गैस भर कर उड़ा देते हैं और हाथ से छूटते ही यह गुब्बारा कई मील ऊपर उठ जाता है । इस गुब्बारे के नीचे बाँसों की टटरी में सुरक्षित वायुभार, ताप और नमी को नापने के यन्त्र रक्खे रहते हैं । काफी दूर चलने के बाद गुब्बारा फट जाता है और बाँसों की टटरी पृथ्वी पर आ गिरती है । इस टटरी को खोल विविध यन्त्रों को बाहर निकाल लिया जाता है और उन से वायु की दशा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है ।

Balance of Trade (व्यापार संतुलन) किसी भी देश के आयात-निर्यात के पूर्ण मूल्य के पारस्परिक सम्बन्ध को व्यापार संतुलन कहते हैं । जब किसी देश में आयात की हुई सामग्री के मूल्य की अपेक्षा निर्यात सामग्री का मूल्य अधिक होता है तो **व्यापार संतुलन को अनुकूल** कहते हैं । इसके विपरीत जब देश से निर्यात की गई सामग्री के मूल्य की अपेक्षा देश में आयात किये गये माल का कुल मूल्य अधिक होता है तो **व्यापार संतुलन को विपरीत** कहते हैं ।

Bank (तट किनारा) तट शब्द का प्रयोग दो अर्थो में किया जाता है । (१) समुद्र की तली का जो भाग अन्य भागों की अपेक्षा काफी उठा रहता है लेकिन फिर भी जलराशि इतनी होती है कि जहाज चल सके उसे तट कहते हैं । इंगलैंड के समीप Dogger Bank और न्यूफाउँडलैंड के समीप Grand Banks इसी प्रकार के तट हैं । (२) नदी, जलधारा झील आदि के किनारे की ढालू भूमि को किनारा कहते हैं ।

Banket (बॉन्गकेट) दक्षिणी अफ्रीका के ट्रान्सवाल प्रदेश में विट वाटर स्ट्रान्ड (Witwater strand) नाम की दीवार हैं जिसमें सोने की बहुमूल्य खानें स्थित पायी जाती हैं । इस स्वर्णमयी दीवार की चट्टानें मिले-जुले कंकड़-पत्थर की बनी हैं और दूर से इनका आकार बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि बूअर लोगों द्वारा तैयार की गई एक प्रकार की रोटी का होता है । उस रोटी को Banket कहते हैं और चूँकि इस चट्टान का आकार बहुत कुछ वैसा ही है इसलिये इसे भी Banket कह कर पुकारा जाता है ।

Banner cloud (मेघपताका) पर्वत की ऊँची चोटियों के वायुरहित पार्श्वों पर बहुधा ऐसे बादल बन जाते हैं जो ऊपर-नीचे सब ओर से मुड़े हुये रहते हैं। उनका

रूप बाहर को फूला हुआ रहता है । इस प्रकार के उन्नतोदर बादल को मेघपताका कहते हैं ।

वायु के मार्ग में पर्वत शिखर के स्थित होने से वायु के प्रवाह में बाधा पड़ती है और पर्वत के सहारे वायु ऊपर को उठती है और उसकी भाप ठंडी होकर द्रवीभूत हो जाती है । इस द्रवीभवन क्रिया के फलस्वरूप बादल बन जाते हैं । हवा के रुख से विपरीत वाली दिशा में नीचे जाने पर वायु उतरती हुई दिखलाई पड़ती है और इस कारण जलवाष्प के बिन्दु फिर से गर्म होकर भाप में परिणत हो जाते हैं । फल यह होता है कि मेघ पताका लोप हो जाती है । फिर भी साधारणतया दो विशेषतायें देखने में आती हैं । एक तो यह है कि मेघपताका से होकर हर समय नयी वायु की धारा भी आती रहती है फिर भी मेघ पताका इधर-उधर हटती नहीं । वह सदा ही स्थायी बनी रहती है । उसका रूप अचल सा मालूम पड़ता है ।

दक्षिणी अफ्रीका में केप टाउन के समीप टेबल पर्वत पर मेघपताका बहुधा दिखाई पड़ती है और वहाँ इसका रूप एक मेजपोश के समान मालूम पड़ता है । इसी प्रकार की मेघपताका जिब्राल्टर की चट्टान पर भी बन जाती है विशेषकर उन दिनों में जब भूमध्य सागर में तेज पूर्वी वायु चलती रहती है ।

Bar (निक्षेप निर्मित दीवार; मिलीबार) (१) वायु का भार मिलीबार में नापा जाता है । परन्तु बार वायुभार की इकाई है और ४५° अक्षांश रेखा पर ०° सेन्टीग्रेड पर २९.५३ इंच पारे के बराबर एक बार होता है ।

(२) जब कोई नदी किसी खाड़ी में गिरती है तो चाहे उसका मुहाना खुला हुआ रहे पर फिर भी खुले मुहाने के आर-पार बालू व कंकड़-पत्थर से मिली एक दीवार-सी बन जाती है । इसे निक्षेप निर्मित दीवार कहते हैं । नदी के जल में बालू-मिट्टी व कंकड़-पत्थर का अंश घुला-मिला रहता है । जब नदी खाड़ी में गिरने लगती है तो उस की गति धीमी पड़ जाती है और अपने साथ लायी हुई सामग्री उसे वहीं जमा कर देना पड़ता है ।

जब तेज बहती हुई नदी खाड़ी के शान्त व गहरे जल से मिलती है तो इस की गति रुक जाती है और खाड़ी के मुहाने पर आर-पार यह अपनी सामग्री का निक्षेप कर देती है । इस प्रकार की निक्षेप निर्मित दीवार से कभी-कभी तो खाड़ी का मुँह बिल्कुल ही बन्द हो जाता है पर यदि उस प्रदेश में ज्वार-भाटे आते रहते हैं या स्थल खंड से तेज धारायें आकर गिरती हैं तो उनके प्रवाह की तीक्ष्णता के कारण इन दीवारों के बीच छेद-सा बन जाता है । इसी के द्वारा पानी का आना-जाना चालू रहता है ।

इसी प्रकार नदियों के मुहाने पर समुद्र की लहरें बालू-मिट्टी का निक्षेप कर के दीवार-सी बना देती हैं और नदियों के खुले मुहाने इन दीवारों से बन्द हो जाते हैं । बहुत से समुद्री तटों पर बालू की ऐसी दीवारों की एक लम्बी शृंखला-सी बन जाती है और उनके पीछे नदियों के मुहाने व छोटे-छोटे जलाशय बन जाते हैं । इस प्रकार की दीवारों के दोष व गुण दोनों ही हैं। गुण यह है कि इनके पीछे सुरक्षित पोताश्रय बनाये जा सकते हैं परन्तु बहुधा एक बड़ा दोष इस काम को पूरा नहीं होने देता । वह यह कि मुख्य समुद्र से ये दीवारें तटीय प्रदेशों का सम्पर्क नष्ट-सा कर देती हैं और इनके पीछे का तटीय समुद्र इतना छिछला व रेतीला हो जाता है कि उसमें किसी भी प्रकार का यातायात सम्भव नहीं होता ।

निक्षेप निर्मित दीवारें कई प्रकार की होती हैं और प्रत्येक प्रकार की निर्माण विधि अलग-अलग है । चट्टानी तटों पर से लहरों द्वारा टूटे-टूटे कंकड़-पत्थर बहुधा समुद्र के जल में दूर-दूर तक बिखरे रहते हैं । इस प्रकार के निक्षेप से कभी-कभी ऐसे द्वीप भी बन जाते हैं

जो एक दीवार से तट के साथ मुड़े रहते हैं। कभी-कभी किनारे पर की बालू-मिट्टी लहरों द्वारा समुद्र में इतनी दूर ले जाई जाती है कि वहाँ पर तट से दूर मुड़ी हुई दीवार-सी बन जाती है। ये दीवारें स्थल तट के समानान्तर या खाड़ी के मुहाने के आर-पार नहीं होतीं। बल्कि तट के साथ एक लम्बरूप डण्डे की तरह समुद्र में निकली रहती हैं।

Barkhan or Barchan (**बारचन**) मरुस्थलों में बालू और धूल की विस्तृत राशि पायी जाती है। बालू की यह राशि हवा के साथ इधर-उधर उड़ती रहती है और वहाँ रुकती या इकट्ठा हो जाती है जहाँ बालू व रेत से लदी इन हवाओं को चट्टान, झाड़ी, घर आदि की रुकावट मिल जाती है। ऐसे स्थानों पर बालू के टीले बन जाते हैं। बालू के इन टीलों का रूप रेत की राशि और हवा की तेजी पर निर्भर रहता है। जब बालू की मात्रा कम होती है और हवा की गति मध्यम तो हँसिया के आकार के टीले बन जाते हैं। इन टीलों को बारचन कहते हैं।

बारचन नामक बालू के टीलों का बाहर की ओर उभड़ा हुआ ढाल या सपाट हिस्सा हवा की तरफ रहता है और इसका ढाल क्रमशः होता है। इनका तीव्र ढालवाला, अन्दर को झुका हुआ भाग वायु की गति व दिशा से विरुद्ध तरफ स्थित होता है और दूर से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है जैसे फसल काटनेवाली हँसिया को किसी ने लेटा कर रक्खा हो। हवा के कारण इस प्रकार के टीलों के किनारों व शिखर पर से बालू उड़ जाती है और हवा की दिशा से विमुख भाग अर्द्धचन्द्राकार-सा लगने लगता है।

इस प्रकार के बालू टीले तुर्किस्तान के मरुस्थली भागों में बहुत मिलते हैं और प्रायः अलग-अलग स्थित पाये जाते हैं। कभी-कभी कई बारचन एक साथ मिल जाते हैं और इस प्रकार उनका अर्द्धचन्द्राकार रूप नष्ट हो जाता है।

Barogram (**बेरोग्राम**) बेरोग्राफ यन्त्र द्वारा वायुभार माप का निरन्तर लेखा बेरोग्राम कहलाता है। बेरोग्राफ में एक घूमते हुये ढोल पर एक घड़ी की तरह के चिन्ह डाली हुई गोलाकार पटरी लगी रहती है और इस पर लीवर द्वारा संचालित कलम की सहायता से वायु भार परिवर्तन अपने आप अंकित होता जाता है। इस विधि व घड़ी-नुमा पुर्जे को ही बेरोग्राम कहते हैं।

Barograph (**बेरोग्राफ**) यह अपने आप वायु भार अंकित करने वाला बेरोमीटर होता है। (देखिये Aneriodograph)

Barometer (**बेरोमीटर**) वायु भार मापक यन्त्र को बेरोमीटर कहते हैं। बेरोमीटर यंत्र में ३ फीट लम्बी एक ओर से खुली शीशे की नली में ३० इंच या ७६० मिलीमीटर ऊँचाई तक पारा भरा रहता है। यह शीशे की नली को उलट कर पारे से भरे एक प्याले पर इस प्रकार रखा जाता है कि यह सदैव सीधा बना रहे। नली में स्थित पारे का यह स्तम्भ वायुभार के कारण सीधा रुका रहता है। वास्तव में ३० इंच ऊँचे पारा स्तम्भ का भार २०० मील ऊँचे वायु स्तम्भ के भार के समान है और वह वायु का भार पारे के भार को थामे रहता है। इस प्रकार शीशे की नली में पारे के स्तम्भ की ऊँचाई से वायु के भार की दशा का ज्ञान होता है। ज्यों-ज्यों वायु के भार में भेद होता जाता है त्यों-त्यों पारा स्तम्भ की ऊँचाई में भी भेद होता जाता है।

जब वायुभार बढ़ता है तो पारा स्तम्भ की ऊँचाई भी बढ़ती है और जब वायु का भार घटता है तो पारा स्तम्भ नीचे आ जाता है। जब पारा स्तम्भ ३० इंच या ७६० मिलीमीटर से अधिक ऊँचा हो जाता है तो उस दशा को उच्च भार कहते हैं। इसके विपरीत जब पारा

स्तम्भ की ऊँचाई ३० इंच या ७६० मिलीमीटर से कम हो जाती है तो उस दशा को निम्न-वायुभार कहते हैं । प्रायः वायुभार को मिलीबार में व्यक्त करते हैं और ७६० मिलीमीटर ऊँचा पारा स्तम्भ साधारणतया १०१३ मिलीबार के बराबर होता है ।

वैसे तो बेरोमीटर द्वारा प्राप्त वायुभार बहुत कुछ ठीक ही होता है परन्तु स्थान विशेष की ऊँचाई, अक्षांश स्थिति और तापमान के अनुसार बेरोमीटर से प्राप्त वायु भार को ठीक करना जरूरी होता है ।

Barometric Pressure (वायुभार) (देखिये Atmospheric Pressure) बैरोमीटर द्वारा प्राप्त वायुभार स्थान की ऊँचाई, अक्षांश स्थिति और तापमान के अनुसार बदलता रहता है । तीसरे पहर को वायुभार अत्यधिक होता है और सुबह के समय अति न्यून । समुद्रतल पर वायुभार अधिक होता है पर जैसे-जैसे हम ऊँचे स्थानों पर चलते जाते हैं वायुभार कम होता जाता है । इसी प्रकार सूर्य व चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के कारण भू-मध्यरेखा पर बेरोमीटर का पारा स्तम्भ ऊँचा हो जाता है और अक्षांश रेखाओं में जैसे-जैसे हम ध्रुवों की तरफ बढ़ते हैं यह कम होता जाता है ।

Barometric Ripples (**वायुभार परिवर्त्तन**) शीत काल में या जाड़े के मौसम में वायुभार स्थायी नहीं रहता बल्कि परिवर्त्तन क्षण-क्षण पर होते रहते हैं । इसके कई कारण हैं—प्रथम तो यह कि वायु की भिन्न-भिन्न परतों का घनत्व भी अलग-अलग होता है । भूपटल के समीप की वायु परत उससे बाद वाली परत की अपेक्षा अधिक ठंडी होती है । इस विभिन्नता के कारण या यूँ कहा जाय कि वायु की परतों के भार में अंतर होने के कारण हवा के फव्वारे—वायु फुहार उठने लगते हैं और भूपटल पर लिये जाने वाले वायुभार में भी फरक पैदा कर देते हैं । गर्मी में भी इसी प्रकार का अन्तर पाया जाता है परन्तु उस समय उठनेवाली वायु-फुहार इतनी ऊँची होती है कि उसके कारण पृथ्वीतल के वायुभार में परिवर्तन नहीं हो पाता है । इसीलिये वायुभार परिवर्त्तन जाड़े में ही अधिक दृष्टिगोचर होते हैं । वायुभार परिवर्तन साधारणतया १ मिलीमीटर से लेकर ३ मिलीमीटर तक होता है और ५ से १० मिनट तक स्थिर रहता है । परन्तु इस प्रकार के क्षणिक परिवर्तन बहुधा कई घंटों या कभी-कभी कई दिन तक भी होते रहते हैं ।

Barometric Slope (**वायुभार दिशा**) वायु का भार ऊँचाई, भूमध्यरेखा से दूरी और तापमान के अनुसार बढ़ता-घटता रहता है । जिस दिशा में वायु का भार क्रमश: घटता जाता है, उसे वायुभार दिशा कहते हैं । हवा की दिशा व प्रादुर्भाव वायुभार दिशा पर ही निर्भर रहता है । वायुभार दिशा की ओर ही हवा चलती है । इसीलिये दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है कि वायु उच्च भार से निम्न भार की ओर चलती है ।

Barometric Tendency (**वायुभार परिवर्त्तन दशा**) वायुभार में कई भौतिक कारणों की वजह से परिवर्त्तन हुआ करते हैं । कभी वायुभार बढ़ जाता है तो कभी घट भी जाता है । ऐसे अनिश्चित वायुभार प्रदेशों में वायुदशा निरीक्षण के समय से पहिले तीन घंटों में वायुभार में क्या कुछ हेर-फेर हुआ है उसे वायुभार परिवर्त्तन दशा कहते हैं । ऐसे प्रदेशों में वायुभार दिखलाने के लिये कई स्थानों पर लिये गये वायुभार परिवर्त्तन दशा के आँकड़े बड़े ही सहायक सिद्ध होते हैं ।

Barrow (**अति पुरातन टीला**) पश्चिमी यूरोप और ब्रिटिश द्वीप समूह में कब्रों व कब्रिस्तान के ऊपर बने हुये मिट्टी के बहुत बड़े-बड़े टीले पाये जाते हैं । इनके आदि और

प्रारम्भ के बारे में कुछ भी पता नहीं। इस प्रकार के स्थल रूप को अति पुरातन टीला कहते हैं।

Barrier Beaches (**भित्तिमय तट श्रेणी**) समुद्री तट की चट्टानों के आधार पर बहुधा कंकड़-पत्थर की विशाल राशि पायी जाती है। इसमें छोटे-बड़े हर मेल के पत्थर व कंकड़ पाये जाते हैं जो या तो अपने आप चट्टानों पर से लुढ़क आते हैं या लहरों के सतत प्रहार से कटकर गिर जाते हैं। बहुधा इस प्रकार का तट निक्षेप लहरों व जल के आघात द्वारा एक दीवार सा बन जाता है और निचले तटीय प्रदेशों के सामने रोक सी बना कर खड़ा हो जाता है।

ये भित्तिमय तट निक्षेप नदी द्वारा बहाकर लाई हुई मिट्टी व लहरों द्वारा चट्टानों से काटे हुए कंकड़ों-पत्थरों से मिल कर बनता है। परन्तु जहाँ समुद्र तल छिछला व बलुहा होता है वहाँ बिना इस प्रकार की निक्षेप सामग्री के भी ये भित्त बन जाते हैं। ऐसे प्रदेशों में समुद्री लहरें अपने आघात से तली की बालू को उठा देती हैं और स्थलतट से कुछ दूर पर बालू की एक दीवार सी बन कर खड़ी हो जाती है। यदि नदियाँ गिरती हैं तो उनकी लाई हुई मिट्टी व बालू से ये भित्तियाँ और ऊँची होती जाती हैं। पर यदि उस प्रदेश में नदियाँ नहीं गिरतीं तो ये भित्ति निक्षेप लहरों द्वारा धक्के के जोर से तट की ओर खसकते जाते हैं। एक दफे इनके बन जाने पर इसे हटाना बड़ा कठिन होता है।

Bare fallow (**खाली छोड़ी गई भूमि**) बार-बार फसल उगाते रहने से उपजाऊ से उपजाऊ कृषि क्षेत्र भी कमजोर व अनुपजाऊ हो जाता है। वास्तव में भूमि की उपजशक्ति कुछ खनिज नमकों पर निर्भर रहती है। जिसे खाकर या भोजनरूप ग्रहण करके पौधे पनपते व उगते हैं। परन्तु यदि इन नमकों को भूमि में बिना किसी भाँति पहुँचाये उस पर बार-बार फसलें उगती जायँ तो कुछ समय बाद भूमि की उर्वराशक्ति बिल्कुल नष्ट हो जायगी और वह क्षेत्र बंजर हो जावेगा। इसी कारण खेती के लिये इन खनिज नमकों की राशि को बनाये रखने के वास्ते खाद दी जाती है या फसलों में हेर-फेर कर के उगाया जाता है या फलीदार पौधों को उगाकर उन को हल द्वारा जमीन में मिला दिया जाता है। इसके अलावा जहाँ भूमि पर आबादी का दबाव अधिक नहीं है वहाँ कृषियोग्य भूमि को दो-एक फसल के मौसम तक खाली छोड़ रखते हैं ताकि उस कालान्तर में क्षीण नमकों की मात्रा पूरी हो जाये और पशुओं की विष्ठा द्वारा अपने आप खाद भी पहुँच जाये। इस प्रकार के क्षेत्र को खाली छोड़ी गई भूमि कहते हैं।

Barysphere (**परमाणमण्डल**) पृथ्वी वास्तव में तीन पटलों का समूह है। ये पटल एक अत्यन्त भारी तथा ठोस केन्द्र को क्रमशः ढके हुए हैं। पृथ्वी के इस भीतरी भाग को परिमाणमण्डल कहते हैं। यह परिमाणमण्डल की ऊपरी पपड़ी पर ही हम रहते हैं। या यूँ कह सकते हैं कि भूपटल के बाद का भीतरी भाग परिमाणमण्डल है।

यह परिमाणमण्डल गर्म तथा ठोस है। यह अनेक धातु मिश्रित चट्टानों का बना है और इस्पात से भी अधिक कड़ा है। पृथ्वी के भीतरी भाग के गर्म होने के कई प्रमाण हैं। पृथ्वी के नीचे से निकलने वाले गर्म जल स्रोत, ज्वालामुखी उद्गार से गर्म लावा प्रवाह और खानें खोदने पर तापक्रम का उत्तरोत्तर बढ़ते जाना यह दिखलाता है कि पृथ्वी का भीतरी भाग बहुत गर्म है। परन्तु इतना गर्म होने पर भी यह भाग द्रव नहीं है बल्कि ठोस है। वास्तव में ऊपर की चट्टानों के दबाव के कारण यह गर्म होते हुए भी द्रवीभूत नहीं हो पाता। परिमाणमण्डल के पदार्थों का घनत्व तापक्रम और दबाव बहुत अधिक रहता है।

Basalt (**बसाल्ट**) आग्नेय चट्टानें पृथ्वी के अन्दर से निकलने वाले द्रवित पदा

के ठंडे होने पर बनती हैं। ठंडे होने पर जमने की यह क्रिया दो प्रकार से होती हैं—एक तो पृथ्वी के भीतर ही और दूसरे पिघले हुए लावा के बाहर निकलकर फैलने पर। दूसरे प्रकार से बनी आग्नेय चट्टानों को बसाल्ट चट्टान कहते हैं।

लावा के ठंडे होने पर कठोर चट्टानें बन जाती है और इनका रंग गहरा काला होता है। पर इनमें रवे नहीं होते बल्कि कण एक-दूसरे के साथ ऐसे जमे रहते हैं कि उन की सतह शीशे की भाँति चमकती रहती है। लावा निक्षेप पूर्ण आग्नेय चट्टानें संसार के सभी भागों में पायी जाती हैं और बहुधा विशाल खंडों में स्थित रहते हैं। इनमें ऋतुप्रहार व अनावृत्तीकरण से काट-छाँट भी कम ही रहती है। साधारणतया ये पूर्ण खंड सी मिलती हैं।

Base level (अन्तरस्थल) इस पारिभाषिक शब्द के दो अर्थ हैं—(१) अन्तरस्थल वास्तव में वह तल है जहाँ नदी समुद्र से मिलती है या जहाँ वह समुद्रतल से भी निचली कोई जगह में जा गिरती है। (२) नदी की तलैटी व प्रवाह में अन्तरस्थल वह दशा है जब नदी द्वारा अनावृत्तीकरण और निक्षेप दोनों बराबर हो जाता है। वास्तव में यदि किसी नदी प्रवाह की तलैटी व दशा का अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि काट-छाँट करती हुई नदी एक ऐसी दशा को प्राप्त होती है कि वह न तो अपने तल को और अधिक गहरा ही कर सकती है और न उसमें सामग्री अपनयन करने की ही शक्ति रह जाती है। ऐसी नदी की तलैटी को अन्तरस्थल कहते हैं। परन्तु यह शब्द कुछ त्रुटिपूर्ण है क्योंकि नदी की तलैटी कभी भी समतल नहीं हो पाती। अन्तरस्थल की दशा में भी वह झूलाकार या नतोदर ही रहती है। इसलिए नदी की उस दशा को जब वह अपनी तलैटी को और गहरा करने में भी असमर्थ हो जाती है **अनावृत्तीकरण की अंतिम आधार रेखा** कहना अधिक उपयुक्त होगा।

एक तलैटी अन्तरस्थल तक कितने समय में पहुँच जायगी यह कहना कठिन है और अनावृत्तीकरण की गति पर निर्भर रहता है। बड़ी नदियाँ छोटी नदियों की अपेक्षा जल्दी अन्तरस्थल प्राप्त कर लेती हैं और इसी प्रकार कमजोर चट्टानों पर अन्तरस्थल शीघ्र प्राप्त हो जाता है। परन्तु अन्तरस्थल की स्थिति साधारणतया असंभव सी मालूम पड़ती है। निक्षेपक अनावृत्तीकरण का बराबर होना संभव नहीं। यदि नदी में पानी की मात्रा बढ़ जाय तो अनावृत्तीकरण बढ़ जाता है और यदि काट-छाँट से प्राप्त सामग्री की मात्रा अधिक हो जाय तो निक्षेप की प्रगति बढ़ जायगी। सच तो यह है कि जब तक नदी जल द्वारा अपनयन होता रहता है किसी न किसी भाग में अनावृत्तीकरण निक्षेप की अपेक्षा अधिक रहेगा ही। अतएव अन्तरस्थल सदैव अस्थायी होता है। स्थानीय रूप से अस्थायी अन्तरस्थल वहाँ बन जाते हैं जहाँ नीचे की चट्टान कठोर हो या जहाँ गहरा करने का कार्य बन्द हो गया हो या जहाँ नदियाँ झील में मिलती हों। स्थायी अन्तरस्थल तो केवल समुद्रतल को ही कहा जा सकता है।

Basin (नदीपात्र, घाटी, झीलपात्र, पात्र, गड्ढा) **Basin** शब्द कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है।(१) वह प्रदेश जिसकी चट्टानें व परत सब ओर से इस प्रकार टेढ़ी व झुकी रहती हैं कि देखने में यह उल्टी हुई नाँद या गुम्बज मालूम पड़े तो उसे घाटी पात्र कहते हैं।

(२) नदी पात्र वह समस्त भूमि क्षेत्र है जिस पर से होकर नदी व उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं। मिश्र नील नदी का पात्र है और इसी प्रकार उत्तरी-पश्चिमी पाकिस्तान को सिन्धु नदी का पात्र कह सकते हैं।

(३) जिस जहाज पर झील का पानी भरा रहता है उसे झीलपात्र कहते हैं। वास्तव में

झीलों के अस्तित्व के लिए एक झीलपात्र का होना आवश्यक होता है ताकि उसमें जल एकत्रित रह सके और भूमि में सोखने व वायु में भाप बनने के बाद भी वे भरी रहें। ये झीलपात्र दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे जिनमें जल इतना काफी होता है कि नदी नद के रूप में बह निकलता है और दूसरे वे जिनमें जल की कमी के कारण दलदल सा दिखाई पड़ता है। झील पात्रों की सृष्टि पृथ्वी की मन्दगतियों, ज्वालामुखी उद्‌गारों, भूगर्भ के जल की क्रिया, हिम नदी के अनावृत्तीकरण व निक्षेप तथा नदी कार्य द्वारा हो जाती है।

(४) भूपटल पर किसी भी प्रकार के खोखले भाग को चाहे उसमें पानी हो या नहीं गड्ढा का पात्र कहते हैं।

Basin Range Lakes **(पात्रक्रम झील)** पृथ्वी के भूपटल पर आने वाली प्राकृतिक मन्दगतियाँ बहुधा भूमि को ऊँचा-नीचा कर देती हैं। जब भूपटल की परतें इस प्रकार से नीचे की ओर दबती चली जायँ कि वे एक सीढ़ी सी बन जायँ तो बहुधा दो चट्टानों के मिलन बिन्दु पर गड्ढे बने रह जाते हैं और उनमें पानी एकत्रित होकर झीलें बन जाती हैं। इस प्रकार की झीलें क्रम से कई शिलाखंडों के बीच स्थित रहती है और कभी-कभी तो इन की एक श्रृंखला सी बन जाती है। इस प्रकार से बनी झीलों का आकार प्रायः त्रिकोण सा होता है और उनके पीछे तो चट्टान की दीवार तथा उन के तल पर सीढ़ीदार उतार अवश्य रहता है। आरीगाँव की बारनर झीलें इस पात्रक्रम झील का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

Basic Industry **(आधारभूत शिल्प)** इसके अन्तर्गत कई शिल्प व कारखाने उद्योग सम्मिलित हैं। जो शिल्प व कारखाना उद्योग देश की आर्थिक उन्नति व राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक हैं उन्हें आधारभूत शिल्प कहते हैं। लोहा व इस्पात का उद्योग, मशीनें आदि बनाने का उद्योग और रसायनिक उद्योग आधारभूत शिल्प कहलाते हैं। इन पर राष्ट्र की आर्थिक उन्नति ही नहीं निर्भर रहती बल्कि इनके द्वारा तैयार की हुई वस्तुओं की अन्य दूसरे उद्योग-धन्धों में भी आवश्यकता पड़ती है। आधारभूत शिल्प की उपज दूसरे सभी कारखाना उद्योगों के लिये अनिवार्य होती है और इस प्रकार देश का औद्योगीकरण आधारभूत शिल्पों पर ही निर्भर रहता है। जिन देशों में आधारभूत शिल्प नहीं है वे सदा दूसरों पर आश्रित व पिछड़े हुए रहते हैं।

Bat Furan **(खुला समुद्र)** अरब सागर में खुले समुद्र का मौसम जाड़ों में रहता है। जाड़े की ऋतु में उत्तरी-पूर्वी मानसून हवाएँ चलती रहती हैं। मध्य एशिया और साइबेरिया में उच्च भार होने से विरुद्ध चक्रवात की सी दशाएँ रहती हैं और अरब सागर पर हवाओं की गति मन्द रहती है। मन्द पवन से देशी जहाजों व नावों को चलाने में सुविधा रहती है और इसीलिये इस काल में जहाज व नावों की यात्राएँ खूब होती हैं। यह मौसम 'खुला समुद्र' कहलाता है।

Bat Hiddan **(बन्द समुद्र)** अरब सागर में गर्मी की ऋतु बन्द समुद्र कहलाती है। इसका कारण यह है कि गर्मी में दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनी हवायें चला करती हैं। अरब सागर की ओर से पानी से लदी हवायें स्थल की ओर चलती रहती हैं। और उनका स्थान ग्रहण करने के लिए अफ्रीका के सोमालीलैंड प्रदेश से स्थली हवायें अरव सागर पर बहने लगती हैं। इस शुष्क वायु के कारण अरब सागर प्रदेश इतना अशान्त हो जाता है कि प्रायः हर समय ही तूफान की दशायें वर्तमान रहती हैं। फलतः देशी नाव व जहाज का समुद्र में ले जाना तक खतरे से खाली नहीं रहता। इसीलिये उन्हें इस काल के लिये बन्द रक्खा जाता है। और यही कारण है कि इस मौसम को बन्द समुद्र कहते हैं।

Batholith (गुम्बजाकार पर्वत) इन्हें अक्सर Laccolths भी कहते हैं यद्यपि गुम्बजाकार पर्वत का विस्तार कहीं अधिक होता है । बहुधा तो यह गुम्बजाकार पर्वत सैकड़ों वर्गमील तक फैले रहते हैं । प्राय: पृथ्वी पर दो प्रकार की प्राकृतिक शक्तियाँ काम किया करती हैं—एक तो भीतरी परिवर्तन जिसके कारण विस्तृत चट्टानें टूटकर कभी तो नीचे धँस जाती हैं और कहीं ऊपर उठ जाती हैं । दूसरी शक्ति भूपटल के ऊपर समानान्तर रूप से काम करती है और भूपटल पर मोड़ या घरेरे उत्पन्न कर देती है । इन दोनों क्रियाओं व परिवर्त्तनों के मेल से गुम्बजाकार पर्वत बन जाते हैं ।

अन्य प्रदेशों की भाँति गुम्बजाकार पर्वत प्रदेश भी पहले सपाट छत की तरह थे परन्तु पृथ्वी के भीतर परिवर्तन होने से जब लावा पदार्थ ऊपर निकलने का प्रयत्न करता है और उसे निकलने का मार्ग नहीं मिलता तो उसके धक्के से पृथ्वी तल की ऊपरी परतों में उभार आ जाता है और उनका आकार गुम्बज की तरह बन जाता है । भूपटल पर मोड़ या घरेरे उत्पन्न करनेवाली शक्ति से इस गुम्बज का रूप फोड़े की तरह का हो जाता है ।

इन गुम्बजाकार पर्वतों का मध्य भाग ग्रेनाइट या भूगर्भ में बनी आग्नेय चट्टानों का होता है और इस केन्द्रीय चट्टान के चारों ओर अन्य निक्षेप गुम्बज की भाँति फैला रहता है । इनके दोनों पार्श्व बहुधा बिल्कुल ही समान होते हैं । संयुक्त राष्ट्र अमरीका की यूताह रियासत का हेनरी पर्वत इसी प्रकार है और अनुमान किया जाता है कि संसार की प्रमुख पर्वतश्रेणियों के आधार में इसी प्रकार के गुम्बजाकार पर्वत स्थित हैं और बहुत अधिक गहराई तक फैले हुये हैं ।

Bathysphere (परिमाण मण्डल) (देखिये Barysphere)

Bay (खाड़ी) स्थलखंड में समुद्र या झील द्वारा बनाये गये बड़े कटाव को खाड़ी कहते हैं ।

Bayon (दलदली नदी झील) नदी अपने प्रवाह में बहुत से घुमाव बनाती चलती है । बहुधा निक्षेप होते रहने से नदी घुमाव में नदी की एक पतली शाखा अलग कटी रह जाती है और झील का रूप धारण कर लेती है । नदी के बाढ़ के प्रदेश में ऐसी दलदली झीलें बहुधा बनी रह जाती हैं । नदी की बाढ़ कम होने पर बाढ़ के प्रदेश से पानी बहकर नदी में वापस चला जाता है और सपाट भूमि पर बिना किसी प्रवाह के होने के कारण ये झीलें केवल दलदली प्रदेश से रह जाती हैं । इन्हें दलदली नदी झील कहते हैं । कभी-कभी इस प्रकार की झील नदी के किनारे की कटान में भी बन जाती है । इनमें वैसे तो दलदल ही रहता है पर बाढ़ के समय पानी भर जाता है । पर जल बँधा होने के कारण इनका रूप बड़ा भद्दा-सा दीख पड़ता है ।

Beach (तटीय श्रेणी) समुद्र के किनारे-किनारे स्थल की एक पट्टी या सीढ़ी जो बहुधा समुद्र की लहरों की क्रिया के फलस्वरूप ज्वार और भाटे के जल के बीच बन जाती है, उसे तटीय श्रेणी कहते हैं। समुद्री चट्टान के आधार पर बहुधा कंकड़-पत्थर पड़े रहते हैं। ये कंकड़-पत्थर या तो अपने आप ही दूर कर नीचे आ जाते हैं या लहरों के आघात से टूट जाते हैं । जहाँ इस प्रकार का अनावृत्तीकरण बहुत तीव्र होता है या जिन खाड़ियों में लहरें इतनी शक्तिशाली नहीं होतीं वहाँ ये कंकड़-पत्थर एक चबूतरे की तरह इकट्ठा हो जाते हैं और इन्हें तटीय श्रेणी कहते हैं । समुद्री लहरों व नदियों द्वारा लाई हुई बालू, मिट्टी से इन चबूतरों का विस्तार बढ़ता जाता है । खुले हुये तटों पर ये चबूतरे कंकड़-पत्थर के बने होते हैं पर सुरक्षित तट रेखाओं पर इनमें बालू की प्रधानता रहती है । जब तट की चट्टानें ऐसी होती हैं कि उन्हें

लहरें आसानी से काट सकती हैं तो इन चबूतरों की चौड़ाई बढ़ जाती है। लहरों के लपेट से तट के बायें-दायें इनकी लम्बाई भी बढ़ती जाती है।

तटीय श्रेणी का रूप और आकार भी कई प्रकार का होता है। तट की सँकरी कटान में लहरों की शक्ति कम होने से काटी-छाँटी हुई सामग्री छोटे चबूतरों के रूप में इकट्ठा हो जाती है। बड़ी-बड़ी खाड़ियों में लहरों की शक्ति भी अधिक रहती है और काटी-छाँटी हुई सामग्री की मात्रा भी अधिक होती है। अतः जो चबूतरे बनते हैं वे अर्द्धचन्द्राकार होते हैं और उनका चन्द्राकार भाग लहरों की दिशा की ओर रहता है। कभी-कभी खाड़ी के मुहाने पर यह चबूतरा दीवार की तरह खड़ा हो जाता है। इसके अलावा लहरों की प्रगति के अनुसार कभी तो समुद्री चबूतरे का आकार हँसिया की तरह हो जाता है तो कभी फरसे की तरह। कभी-कभी पास में स्थित दो चबूतरे एक दूसरे से मिल जाते हैं और बाहर की ओर झुका हुआ प्लेटफार्म सा बन जाता है।

Bearing (कोणिक दिशा) निरीक्षण कार्य में वस्तुओं की दूरी व दिशा को नापा जाता है। सबसे प्रमुख वस्तु की दिशा को निरीक्षण की स्थिति से नापते हैं। इस दिशा नाप में ध्रुवघड़ी की सहायता ली जाती है और इसे कोणिक दिशानाप कहते हैं। वास्तव में वस्तु विशेष की दिशा और निरीक्षक की स्थिति रेखा के बीच एक समाकार कोण बनता है जिसे डिग्रियों में नापा जाता है।

कोणिक दिशा नाप को दो प्रकार का कहा जा सकता है—एक तो वह जो वास्तविक उत्तर से ली गई है और दूसरी वह जो चुम्बकीय उत्तर से ली गई हो। वास्तविक उत्तर से घड़ी की सुइयों की दिशा में नापी गई कोणिक दिशा को सत्य कोणिक दिशा कहते हैं और यह सब समय व दशाओं के लिए स्थायी रहता है। चुम्बकीय उत्तर से घड़ी की सुइयों की दिशा में नापी गई कोणिक दिशा को चुम्बकीय कोणिक दिशा कहते हैं और इसमें स्थान व दशा के परिवर्तन के साथ-साथ हेर-फेर होता रहता है।

किसी वस्तु की कोणिक दिशा को ध्रुवघड़ी के बिन्दुओं के दृष्टिकोण से व्यक्त करते हैं जैसे उत्तर ४०° पश्चिम या उत्तर से ४०° पश्चिम में। कभी-कभी स्थूल रूप से उत्तर-पश्चिम भी कहकर कोणिक दिशा व्यक्त करते हैं।

जब निरीक्षक अपने सामने स्थित वस्तु की कोणिक दिशा इस प्रकार निकालता है कि वह वस्तु उसके सामने ही रहे तो उसे आगे से ली गई कोणिक दिशा कहते हैं। कभी-कभी निरीक्षक वस्तु विशेष की स्थिति से उस स्थान या वस्तु की दिशा निकालता है जहाँ से खड़े होकर उसने पहिले कोणिक दिशा नापा था। इसे पीछे की कोणिक दिशा कहते हैं। दोनों को मिलाकर ३६०° पूरे हो जाते हैं।

Beaufort Notations (ब्यूफॉर्ट लाक्षणिक संकेत) आजकल वायु की गति को एनीमोमीटर नामक यन्त्र से नापा जाता है। परन्तु बहुत पहिले हवा की गति को पेड़ों की शाखा व पत्तियों पर पड़ने वाले प्रभाव से पता लगाया जाता था। यह अनुमान बड़ा ही अपूर्ण व संदिग्ध हुआ करता था। इसलिये सन् १८०६ में **Admiral Beaufort** ने हवा की गति जानने के लिये एक मानदण्ड निकाला और साथ-साथ लाक्षणिक संकेतों का भी हवाला दिया। वास्तव में ब्यूफार्ट साहब ने तो यह काम नाविकों की सुविधा के लिए ही किया था, परन्तु थोड़े-बहुत अन्तर के साथ आजकल इसे सभी राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया है।

ब्यूफार्ट साहेब ने भिन्न प्रकार की वायुशक्ति के लिये एक संख्या-क्रम निकाला था

जो आज भी काम में लाया जाता है। इस संकेत क्रम में ० से १२ तक की संख्याओं द्वारा सभी प्रकार की वायुगति का वर्णन किया गया है।

०—शान्त स्थिर वायु; १—हल्की पवन २ मील प्रति घण्टा; २—मन्द पवन ५ मील प्रति घण्टा; ३—शान्तमन्द पवन १० मील प्रति घण्टा; ४—साधारण पवन १५ मील प्रति घण्टा; ५—ताजा पवन २१ मील प्रति घण्टा; ६—तीक्ष्ण पवन २८ मील प्रति घण्टा; ७—साधारण आँधी ३५ मील प्रति घण्टा; ८—ताजी आँधी ४२ मील प्रति घण्टा; ९—तेज आँधी ५० मील प्रति घंटा; १०—पूर्ण आँधी ५९ मील प्रति घण्टा; ११—तूफान ६९ मील प्रति घण्टा; १२—भीषण तूफान ७५ मील प्रति घण्टा से भी अधिक।

इन विभिन्न वायुगतियों को धुयें की दिशा, पत्तियों व टहनियों के हिलने, नदी व झीलों की हिलोरों, पेड़ों के हिलने और इमारतों की टूट-फूट के आधार पर निर्धारित किया गया है। उदाहरण के लिये विभिन्न प्रकार की आँधी व तूफान को लिया जा सकता है। ६ नम्बर की वायुगति में जिसे तीक्ष्ण पवन कहा गया, पेड़ों की बड़ी-बडी डालें हिलने लगती हैं और तार सनसनाने लगते हैं। छाता खोलना कठिन हो जाता है। साधारण आँधी में सारे पेड़ हिलने लगते हैं और ताजी आँधी में पेड़ों की टहनियाँ आदि टूटने लगती हैं। तीक्ष्ण आँधी में इमारतों को थोड़ी-बहुत हानि होती है। चिमनियाँ टूट जाती हैं, खपरैल हट जाते हैं। पूर्ण आँधी से बड़े-बड़े पेड़ उखड़ जाते हैं, इमारतों को भारी नुकसान होता है और तूफान व भीषण तूफान से तो बस्ती की बस्ती बरवाद हो जाती है।

Bedding Plane (आधार शिला) जहाँ पर चट्टानों की परत बनाने वाली सामग्री का निक्षेप हुआ था उसे आधार शिला कहते हैं। साधारणतया प्राचीन आग्नेय चट्टानों के ऊपर ही पृथ्वी बनने से लेकर आज तक निक्षेप होता रहा है और इस ऊपरी निक्षेप से ही विभिन्न चट्टानें बनी हैं। अतः आधारभूत आग्नेय चट्टानों को आधार शिला कहते हैं।

Bed Rock (आधार चट्टान) पृथ्वी का स्थलखण्ड मिट्टी के आवरण से ढका हुआ है। पृथ्वी जिस पर हम चलते-फिरते हैं मिट्टी या चट्टानों की असंगठित चूर्ण से ढका हुआ है। यह मिट्टी की तह सैकड़ों व हजारों फीट गहरी है और इसके नीचे ठोस चट्टान का आधार है। मिट्टी की तह के नीचे पायी जाने वाली ठोस चट्टान को आधार चट्टान कहते हैं। कहीं तो यह आधार चट्टान कई सौ फीट नीचे मिलती है और कहीं थोड़ी सी गहराई के बाद ही मिल जाती है। ढालू प्रदेशों में आधार चट्टान पर कोई भी आवरण नहीं मिलता।

Beef Cattle (मांस के पशु) बहुत से पशु इसलिये ही पाले व मोटे-तगड़े किये जाते हैं कि उनको बाद में मारकर मांस प्राप्त किया जा सके। मांस के लिए मुख्यतः गाय, बैल, भेड़ तथा सुअर को पाला जाता है। घोड़ा और बकरी भी मांस के लिए पाले जाते हैं परन्तु इनका स्थान गौण है। इन सभी को मांस के पशु कहते हैं। इसका दूसरा अर्थ वह है जहाँ दूध के लिये नहीं बल्कि मांस के लिए पाले गये पशुओं—गाय, बैल को इशारा किया जाता है।

Beheading (नदी स्रोत हरण) यदि नदी की तलैटी के मुड़े हुए आकार को देखा जाय तो पता चलता है कि नदी द्वारा पीछे की ओर भी अनावृत्तीकरण होता रहता है। इसलिये तेज प्रवाह वाली बड़ी नदी अपने स्रोत की तरफ अपनी घाटी को बढ़ाती चलती है और उसके प्रहार के फलस्वरूप जलविभाजक कटछँट जाता है। इस कार्य में वर्षा के जल से भी उसे सहायता मिलती है और फल यह होता है कि जलविभाजक के पार दूसरी छोटी नदियों के स्रोत भी बड़ी नदी से मिल जाते हैं। जलविभाजक को काटते-काटते बड़ी नदी की

घाटी समीपस्थ नदी के स्रोत तक पहुँच जाती है और उस नदी के स्रोत को अपने में मिलाकर उस नदी के पानी को भी अपने में ही मिला लेती है। फल यह होता है कि दूसरी नदियों के स्रोत नष्ट हो जाते हैं और उनके जल के बड़ी नदी में मिल जाने के कारण उनकी घाटियों में जल की कमी हो जाती है। इसको नदी स्रोत हरण कहते हैं। और अँग्रेजी में River Capture या River piracy भी इसका नाम है। (देखिये River Capture)

Beheaded river (स्रोत हरित नदी) जब एक बड़ी व तेज प्रवाह वाली नदी अपने जलविभाजक को काट कर समीपस्थ दूसरी नदी के स्रोत को अपने में मिला लेती है तो उस छोटी नदी को जिसका स्रोत बड़ी नदी में मिलाया जा चुका होता है, स्रोत हरित नदी कहते हैं। स्रोत हरित नदी की विशेषता यह है कि तलैटी को देखते हुये उसमें जल की मात्रा कम होती है और जलधारा में कोई विशेष प्रवाह न होने से अनावृत्तीकरण, अपनयन व निक्षेप आदि नहीं होता।

Bench mark (पीठिका चिन्ह) भूमि निरीक्षण कार्य में बहुधा ऊँचाई निर्धारित करके संकेत के लिये एक चिन्ह-सा गाड़ दिया जाता है। इसे पीठिका चिन्ह कहते हैं और इससे यह पता चलता है कि कितनी ऊँचाई तक नापा जा चुका है या स्थान विशेष के निरीक्षण से कितनी ऊँचाई प्राप्त हुई। पीठिका चिन्ह प्रायः पत्थर को काट कर बनाया जाता है। इसका आकार एक तीर या बाण की तरह होता और ऊपरी सिरे पर एक समाकार या समानान्तर छड़ जुडा रहता है।

Benthos (समुद्रतली प्राणिक निक्षेप) समुद्र में दो प्रकार के प्राणी व वनस्पति पाये जाते हैं। एक तो वे जीवजन्तु होते हैं जो बहते हुए समुद्र की सतह पर चले जाते हैं। दूसरे प्रकार का वह प्राणिज निक्षेप होता है जो केवल समुद्र की तली पर पड़ा पाया जाता है। इसके अन्तर्गत समुद्रतल में पायी जानेवाली घासफूस, पतवार, एक अणु से बने हुये कीटाणु व मूँगा सम्मिलित हैं। यह प्राणिज निक्षेप बहुत गहराई पर ही मिलता है और इसीलिए इसे समुद्रतलीय प्राणिज निक्षेप कहते हैं।

Bergschrund (शीर्ष विवर) हिम नदी जैसे-जैसे आगे बढ़ती है उसमें हिम राशि भी बढ़ती जाती है। प्रत्येक वर्ष जो हिम गिरता या जो आस-पास की चोटियों से खिसक कर आ गिरता है वह हिम नदी की सतह पर एकट्ठा होता जाता है। फलतः कभी-कभी तो इस [illegible] दबाव से एक दूसरा [illegible]। परन्तु जब ऐसा नहीं होता तो हिमनदी की ऊपरी सतह पर विशेष [illegible] किनारों की ओर एक गड्ढा या दरार-सी बन जाती है। वास्तव में इस गड्ढे या दरार से बहता हुआ हिम किनारे पर रुके हुए हिम खंड से अलग हो जाता है। यह गड्ढा या दरार किनारे की चट्टान के समानान्तर होता है और इसके कारण बहुधा बर्फ के मैदान से पर्वत की चोटी पर पहुँचने के लिये किये गये प्रयत्नों में बड़ी अड़चन होती है। हिम नदी के प्रवाह की सतह पर किनारे की ओर पड़ी हुई दरार को शीर्ष विवर कहते हैं। इसी का फ्रांसीसी नाम रिमाये है और जर्मन भाषा में इसे वर्गस्चुरन्ड कहते हैं।

Berg wind (बर्ग वायु) पर्वत की ऊँची चोटियों और निचली घाटियों के बीच तापक्रम में अन्तर होने के कारण बहुधा स्थानीय हवायें चलने लगती हैं। जब ऊँचे पठारों से हवायें चलती हैं तो वे कभी तो ठंडी व शुष्क होती हैं और कभी गर्म व शुष्क। अगर पठार सूर्य की गर्मी से गर्म हो उठता है तो उसकी हवा भी गर्म हो जाती है और जब यह हवा निचले मैदानों में उतर कर आती है तो इसका स्वभाव शुष्क व गर्म होता है। दक्षिणी अफ्रीका के तटीय मैदानों में इस प्रकार से उतर कर आने वाली शुष्क व गर्म हवा को बर्ग वायु कहते हैं।

वर्ग वायु प्रायः ठंढे पश्चिमी किनारे पर बहती है और इसका प्रभाव जाड़े के मौसम में विशेष बढ़ा-चढ़ा रहता है। जाड़ों में अन्दर का पठार ठंढा होने के कारण उच्चभार केन्द्र होता है और समुद्र पर निम्न भार रहता है। इस प्रकार विरुद्ध चक्रवात की सी दशायें उपस्थित हो जाती हैं। पठार से समुद्र की ओर हवा चलने लगती है और चारों ओर को प्रवाहित होती है, पर उच्च प्रदेश से आने के कारण यह गर्म हो जाती है। कभी-कभी तो तापक्रम १००° से भी ऊँचा हो जाता है और इस प्रकार गर्मी के मौसम के तापमान को भी पार कर जाता है। लेकिन ये दशायें अस्थायी रहती हैं और जैसे ही बर्ग वायु का प्रभाव खतम हुआ, यह दिशायें भी बदल जाती हैं। बर्ग वायु प्रायः दो-तीन दिन तक बहती है और उस काल की ऋतु बड़ी ही परेशान करने वाली होती है। कभी-कभी तो खड़ी हुई फसलों को भारी नुकसान पहुँच जाता है। इस वायु की गति व दिशा निश्चित नहीं होती। किस मौसम में यह चलती है यह भी ठीक नहीं होता। स्थान विशेष की स्थिति के अनुसार ही इसकी दिशा व चलने का समय भी बदलता रहता है।

Beverage Crops **(पेय फसलें)** कृषि द्वारा उत्पन्न की जाने वाली फसलों को कई प्रकार या वर्गों में विभक्त किया जाता है। पेय फसलों के अन्तर्गत वे वस्तुयें आती हैं जिन्हें पिया जाता है या जिनसे भिन्न प्रकार के मिश्रण बनाकर पीने के लिये प्रयोग करते हैं। चाय, कहवा, कोको और तम्बाकू संसार की पेय फसलें हैं। इन्हें इनके उपज स्थान से दूर-दूर तक प्रयोग में लाया जाता है और इन सभी वस्तुओं की माँग इतनी अधिक बढ़ गई है कि इन्हें हम जीवन की आवश्यकता कह सकते हैं। यही कारण है कि इनमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत अधिक बढ़ गया है। परन्तु पेय फसलें खेत से सीधी बाजार में नहीं भेजी जा सकतीं क्योंकि इनका कच्चा रूप उपयोग के योग्य नहीं होता। इसलिये मंडियों में ले जाने से पहिले उन्हें सुखाकर या अन्य प्रकार से शोधना पड़ता है।

Bight **(पतली खाड़ी)** समुद्र तट पर खाड़ी की तरह का पतला कटाव जिसे पतली खाड़ी कहते हैं। कभी-कभी पतली खाड़ी का विस्तार व मोड़ साधारण खाड़ी से अधिक विस्तृत भी होता है। इसका मोड़ व कटाव प्रायः क्रमशः होता है।

Bill **(प्रायद्वीप खण्ड)** स्थल खंड का वह छोटा सँकरा भाग जो महाद्वीप से इस प्रकार आगे को बढ़ा रहता है कि उसके तीन ओर जल ही जल रहे, उसे प्रायद्वीप खंड कहते हैं। बहुधा इसका आकार तेज छुरी या चिड़िया की चोंच की तरह होता है।

Binary Star Theory **(द्विग्रह सिद्धान्त)** पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में लिटलटन महोदय की खोज व सिद्धान्त को द्विग्रह सिद्धान्त कहते हैं। कभी-कभी इसे आकर्षण सिद्धान्त (Enticement Theory) भी कहते हैं। इसके अनुसार सृष्टि के आरम्भ में सूर्य अकेला नहीं था बल्कि उसके साथ एक साथी तारा या ग्रह और था। इनके ग्रह पथ पर घूमते रहने [illegible] के इतने समीप आ गया कि साथी तारे में से ज्वार भाटे की तरह उभार आने लगे और दोनों के समीप होने से दूसरे व तीसरे तारे के उभार इस प्रकार मिल गये कि एक फीता बन गया। पर कुछ काल पश्चात् तीसरा तारा फिर दूर चला गया और साथ-साथ साथी ग्रह को भी लेता गया। परन्तु फीते का कुछ भाग सूर्य द्वारा पकड़ लिया गया और उसी से सौरमण्डल के विभिन्न ग्रह बने। इस सिद्धान्त के अनुसार तीसरा तारा सूर्य की अपेक्षा २० गुना अधिक भारी माना जाता है और उसकी चाल १०० मील प्रति सेकण्ड मानी जाती है।

इस सिद्धान्त के दो दोष हैं। प्रथम दोष को लिटलटन महोदय ने बतलाया और वह यह कि तीसरे तारे के खिंचाव से सूर्य में भी उभार उठने चाहिये और डा० भटनागर का विचार

हैं कि इस सिद्धान्त में वर्णित सूर्य और दोनों तारों के बीच टक्कर हो जानी चाहिये और फिर ग्रहों के बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव आजकल इस सिद्धान्त को विशेष महत्व नही दिया जाता।

Bioclimatology (**प्राणि जलवायु विज्ञान**) मानव जीवन व स्वास्थ्य से सम्बन्धित भूगोल अध्ययन को प्राणि जलवायु विज्ञान कहते हैं। इसका उद्देश्य जलवायु सम्बन्धी उन दशाओं का पता लगाना है जो मानव जीवन व स्वास्थ्य के लिए सबसे अधिक हितकर होती हैं। इसमें रोगियों का विशेष ध्यान रक्खा जाता है और उन स्थानों का विवरण दिया जाता है जहाँ ऐसी स्वास्थ्यवर्धक जलवायु पायी जाती है।

Biogeography (**प्राणि भूगोल**) भूप्रकृति और जलवायु पर जीवजन्तुओं का वितरण व पेड़-पौधों की वनस्पति निर्भर रहती है। प्राणि भूगोल के अन्तर्गत प्राकृतिक परिस्थितियों का ऐसा अध्ययन किया जाता है कि उनके सहारे पर आश्रित जीव-जन्तुओं व वनस्पति का वितरण स्पष्ट हो जाय। इस तरह प्राणिभूगोल जीव-जन्तुओं व वनस्पति का पृथ्वी पर वितरण अध्ययन करता है।

Biosphere (**प्राणि मण्डल**) कभी-कभी पृथ्वी के उस भाग को जिस पर भिन्न प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं, प्राणिमण्डल कहते हैं। विभिन्न प्रकार के प्राणी व वनस्पति स्थलमण्डल और जलमण्डल में रहते हैं परंतु सूक्ष्म अन्वेषक यंत्रों से पता चलता है कि वायु-मण्डल में भी कई प्रकार के कीटाणु रहते हैं। अतः प्राणिमण्डल के अंतर्गत स्थल, जल और वायुमण्डलों के वे सभी भाग सम्मिलित रहते हैं जहाँ पशु-पक्षी, वनस्पति या मनुष्य रहते हैं।

Bise (**बिस**) बिस वह स्थानीय वायु है जो दक्षिणी फ्रांस और स्विटज़रलैंड में उत्तर-पश्चिम, उत्तर व उत्तरपूर्व से आती है। यह ठन्डी व शुष्क होती है परन्तु अक्सर इसके साथ-साथ आकाश में भारी मेघ छा जाते हैं।

Bitter Lake (**खारी झील**) शुष्क प्रदेशों में बनी झीलों में न तो नदियाँ ही आकर मिलती हैं और न अन्य किसी प्रकार के स्रोतों का ही सम्बन्ध उससे रहता है। परन्तु भीषण गर्मी के कारण पानी भाप बन कर उड़ता ही रहता है। अतः इस प्रकार की झीलों का पानी खारा हो जाता है। उनके जल का घनत्व अधिक रहता है और उनमें कई प्रकार के रासाय-निक नमक मिले पाये जाते हैं। साधारण नमक, चूना, मैगनीसियम आदि पानी में घुले रहते हैं, इसलिये इसके जल का स्वाद खारा होता है। (देखिये Salt lake)

Bituminous Coal (**बिटुमिनस कोयला**) बिटुमिनस कोयला कभी-कभी घरेलू कोयले के नाम से भी पुकारा जाता है। यह अन्थ्रासाइट से तो निम्न होता है परन्तु इसमें भी कोयले या कार्बन का अंश बहुत अधिक होता है। इसमें कार्बन का अंश ७५ से ९० प्रतिशत होता है। इसे Steam Coal या भाप का कोयला भी कहते हैं और रेल के इंजनों में यही प्रयोग किया जाता है। जलने के पहिले यह धुआँ तो जरूर देता है परन्तु सुलग जाने पर इसकी लपटें सफेद होती हैं। यह जलता तो जल्दी है परन्तु धुआँ बहुत देता है और शीघ्र ही जल जाने के बाद राख बहुत छोड़ता है।

Black Cotton Earth (**काली कपास भूमि**) भारत के दक्षिण प्रायद्वीप के उत्तरी-पश्चिमी भाग में काली मिट्टी पायी जाती है। इसमें कपास की खेती खूब होती है, इसलिए इसे काली कपास भूमि कहते हैं। इसे ईगर भी कहते हैं। यह बहुत बढ़िया दानेदार और काली होती है। यह बहुधा गीली व चिकनी होती है। एक अच्छी वर्षा के थोड़े दिनों

बाद यह खेती के योग्य हो जाती है। गीली भूमि सूखने पर सिकुड़ जाती है और उसमें बहुत सी दरारें पड़ जाती हैं।

यह मिट्टी चिपचिपी होती है और इसमें नमी धारण करने की शक्ति अधिक होती है। इसलिए सिंचाई की कम जरूरत पड़ती है। गर्मियों में नमी के उड़ जाने पर इसमें दरारें पड़ जाती हैं जिनमें ऊपर की मिट्टी टूट-टूटकर या बहकर भर जाती है और ऊपर एक नई तह आ जाती है। इसलिए इस मिट्टी को खाद की आवश्यकता नहीं होती।

यह मिट्टी पुराने ज्वालामुखी पर्वतों के लावा से बनी है और इसीलिए इसमें अनेक खनिज तत्व पाये जाते हैं। लोहा, मैगनिशयम, चूना और अल्यूमिना की अधिकता है। परन्तु फासफोरस, नाइट्रोजन व पोटाश की कमी है। इसका काला रंग इसमें लोहा व चूना मिले होने के कारण है। यही इसका उपजाऊ होने का कारण है पर यह मिट्टी सब स्थानों पर न तो एक-सी गहरी है और न एक-सी उपजाऊ। पहाडियों के ऊपर यह भूमि कम गहरी और कम उपजाऊ है। घाटियों में पाई जानेवाली काली मिट्टी बहुत अधिक गहरी व उपजाऊ है।

यह जमीन करीब दो लाख वर्गमील में फैली हुई है और बम्बई और बरार, हैदराबाद व मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग तथा मद्रास के बिलारी, करनाल, कडापा, कोयम्बटूर और टिनीवेली जिलों में यह मिट्टी पायी जाती है।

Black Earth (काली मिट्टी) काले या गहरे भूरे रंग की यह महीन उपजाऊ मिट्टी रूस के दक्षिणी भाग और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उत्तरी डकोटा से टेकसास तक पाई जाती है। यूरोप में काले सागर के उत्तर में और हंगरी व रूमानिया के कुछ भागों में यह मिट्टी पायी जाती है। कनाडा के सस्केचवान रियासत से संयुक्त राष्ट्र अमरीका में टेकास तक यही मिट्टी पायी जाती है।

यह काली मिट्टी जीव व वनस्पति शेषांश के कारण काले रंग की है। यद्यपि इसमें चूने का भी कुछ अंश मिला हुआ पाया जाता है परन्तु जीववनस्पति शेषांश का अंश सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव में यह प्रदेश वायुद्वारा लाई हुई मिट्टी के अपार आवरण से ढके हुये हैं और उस लोयस मिट्टी में जीववनस्पति शेषांश के मिल जाने के कारण इसका रंग काला व उपज शक्ति प्रबल हो गई है। यह मिट्टी इतनी उपजाऊ है और इसमें पौधों का भोजन इतनी विशाल राशि में पाया जाता है कि इस पर बिना खाद की सहायता लिये कई फसलें बार-बार उगाई जा सकती हैं। इसी कारण रूस व अमेरिका के प्रदेश उपजाऊ कृषिक्षेत्र बन गये हैं। गेहूँ व अन्य खाद्यानों के दृष्टिकोण से तो यह भूमि सर्वोत्कृष्ट है।

Blind Valley (अन्धी घाटी) चूने व खड़िया मिट्टी से बने प्रदेशों में अन्धी घाटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। बहुधा भूपटल पर बहनेवाली नदियाँ एकाएक किसी छेद द्वारा भूमि के अन्दर प्रवेश कर जाती हैं और उनकी घाटी भी अचानक बन्द हो जाती है या वहीं पर अन्त हो जाती है। इस प्रकार की घाटी को अन्धी घाटी कहते हैं। यह कुछ दूर तक तो व्यवस्थित रूप से बनी रहती है पर एकाएक इसकी धारा के गायब हो जाने से इसका विस्तार रुक जाता है। कभी-कभी अधिक काट-छाँट वाले प्रदेशों में अनावृत्तीकरण द्वारा बने हुये छेदों में नदी के जल के लोप हो जाने पर भी इसी प्रकार की अन्धी घाटियाँ बनी रह जाती हैं।

Blizzard (बर्फीला तूफान) बर्फ के तूफान में बर्फ के पतले कण व तेज हवा के झोंकों के कारण किसी वस्तु का ठहरना बड़ा कठिन होता है। बर्फ के तूफान में कभी तो बर्फ का चूर्ण पाया जाता है, कभी बर्फ के पैने टुकडे और कभी केवल अति शीत वायु का झोंका ही रहता है। इसकी गति भी बड़ी तेज होती है। कभी-कभी तो हवा के ये बर्फीले झोंके

५०-६० मील प्रतिघण्टा की रफ्तार से भी तेज चलते हैं। बर्फ के कणों व हवा की तेजी के कारण कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता। ये तूफान पहाड़ों की ऊँची बर्फ से ढकी हुई चोटियो, अतिशीत ध्रुवीय प्रदेशों और उत्तरी आक्षांशों में स्थित बर्फीले मैदानों पर चलते रहते हैं। इनमें वर्फ कुछ तो बादलों से आती है पर अधिकतर हवा के झोंके से पृथ्वी पर से उठाकर उड़ा ली जाती हैं। ध्रुवीय प्रदेशों में बर्फीले तूफान अक्सर आया करते हैं और कभी-कभी तो इतने प्रचण्ड होते हैं कि इनका प्रकोप कई दिनों तक चलता रहता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में एडीलि लैन्ड को इन बर्फीले तूफानों की प्रचण्डता के कारण ही 'बर्फीले तूफानों का घर' कहा जाता है। कनाडा और उत्तरी संयुक्त राष्ट्र अमरीका में भी ये तूफान आते हैं और उनके साथ ही एक शीत लहर दौड़ जाती है। अमरीका के ये तूफान उत्तरी वायु के रूप में पूर्व की ओर जाते हुए चक्रवात में सम्मिलित रहते हैं और जाड़े की मौसम में विरुद्ध चक्रवात की शक्ति को भंग कर देते हैं। खुले हुए प्रेरी मैदानों में ये तूफान विशेष हानि करते हैं।

जाड़ों में इन तूफानों के आने से तापक्रम एकाएक बढ़ जाता है और गर्मियों में इन तूफानों के कारण तापक्रम एकदम से नीचा हो जाता है।

Block lava (**लावा निर्मित भूभाग**) ज्वालामुखी उद्गार से निकला हुआ लावा भूमि की सतह पर फैलने पर ठंढा होकर जम जाता है। फलतः इसका आकार कटा-फटा दरारों से भरा हुआ ऊबड़-खाबड़ सा लगने लगता है। इस प्रकार की लावा से बनी चद्दर को लावा निर्मित भूभाग कहते हैं।

Block mountain (**भूभाग निर्मित पर्वत**) पृथ्वी के भीतरी परिवर्तनों के कारण किसी विस्तृत चट्टान के टूटने से उसके कुछ भाग अपना स्थान छोड़ देते हैं। कभी-कभी अनेक दरारों के मध्य में एक बड़ा भूभाग ऊपर निकल आता है और पहाड़ का रूप धारण कर लेता है। कभी दरारों के बाहर का भूभाग अपना स्थान छोड़कर नीचे धँस जाते हैं और उनके बराबर के भूभाग वहीं स्थिर रहते हैं। इस प्रकार ऊँचाई पर खड़ा रह जानेवाला भाग पहाड़ बन जाता है। इस तरह से बने पर्वतों को भूभाग निर्मित पर्वत कहते हैं। इनकी विशेषता यह है कि यह प्रायः दो समानान्तर दरारों के बीच में स्थित होते हैं और इनका रूप मेज के समान रहता है।

Blood Rain (**रुधिरणीय वर्षा**) कभी-कभी वर्षा की जलबूँदों में हलका लाल रंग मिला रहता है और पृथ्वी पर गिरने पर वह हल्के लाल रंग का धब्बा छोड़ देता है। इस प्रकार की वर्षा को रुधिरणीय वर्षा कहते हैं।

जल की बूँदों में धूल के छोटे-छोटे कण जो रेगिस्तानों से उड़ाकर लाये गये होते हैं फँसे रहते हैं और उन्हीं के कारण जलविन्दुओं का रंग कुछ हलका लाल दिखाई पड़ने लगता है। धूल के ये कण हवा की ऊपरी तह में मिले रहते हैं और बहुधा वर्षा के जल के साथ पृथ्वी पर आने से पहिले बहुत दूर-दूर तक ले जाये जाते हैं। इटली में इस प्रकार की वर्षा अक्सर हुआ करती है और जलविन्दुओं में मिले धूल के कण सहारा से उड़ाकर लाये गये होते हैं। परन्तु कभी-कभी इस प्रकार के कण धूल के कण ग्रेट ब्रिटेन तक पहुँच जाते हैं और वहाँ पर भी रुधिरणीय वर्षा की एक-आध झड़ी कभी-कभी हो जाती है।

Block Diagrams (**खण्डवत् रेखाचित्र**) वस्तुओं के उत्पादन के आँकड़ों को दिखाने की कई विधियाँ हैं जिनमें से एक विधि खण्डवत् रेखाचित्रों द्वारा है। इस विधि के अन्तर्गत वस्तुओं की उत्पादन, उपभोग अथवा विनिमय सम्बन्धी मात्रा को एक खण्ड द्वारा अंकित करते हैं। यदि मात्रा अधिक हुई तो उसे उपयुक्त इकाइयों में बाँट लेते हैं और प्रत्येक

इकाई को एक खण्ड द्वारा अंकित करते हैं। इस प्रकार खंडों की संख्या से एक खण्ड द्वारा अंकित इकाई को गुणा करके पूर्ण मात्रा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

खण्डवत रेखाचित्र दो प्रकार के होते हैं---साधारण और जटिल। साधारण खण्डों में केवल लम्बाई व चौड़ाई ही होती है जैसे चतुर्भुज व समचतुर्भुज। जटिल खण्डों में लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई या गहराई भी होती है। ये प्रायः घनाकार अथवा बेलनाकार होते हैं। साधारण खण्डों का क्षेत्रफल मात्रा की इकाई के बराबर रक्खा जाता है और जटिल खण्डों में उनके घनत्व व मात्रा के बीच हुआ अनुपात रक्खा जाता है। कभी-कभी खण्डवत रेखाओं द्वारा स्थल रूपों को भी उपस्थित किया जाता है।

Blossom Showers (**उत्पत्ति प्रवर्द्धक वर्षा**) दक्षिणी पूर्वी एशिया के मानसूनी जलवायुवाले प्रदेशों में कहवा उत्पादक जिलों में मार्च से मई तक होने वाली वर्षा बड़ी ही लाभदायक होती है। इसके कारण कहवा के वृक्ष में फूल जल्दी निकल आते हैं और उत्पत्ति अच्छी हो जाती है। मार्च से मई तक होने वाली इस मानसूनी वर्षा को उत्पत्ति प्रवर्धक वर्षा कहते हैं। कहीं-कहीं इसे आम की वर्षा भी कहते हैं।

Blowhole (**वायुछिद्र**) लहरों के आघात-प्रघात जल द्वारा अनावृत्तीकरण के कारण बहुधा समुद्री किनारें पर स्थित चट्टानों में गुफायें व खोखली कन्दरायें बन जाती हैं। इन कन्दराओं के ऊपर व पीछे की चट्टानें लहरों के प्रहार से बराबर घिसती जाती हैं। इनके ऊपर की चट्टानी छत पर अनावृत्तीकरण का कार्य अन्य प्राकृतिक शक्तियों जैसे वायु और बहते हुए जल के कारण तीव्रतर होता है। फलतः अक्सर इन कन्दराओं की ऊपरी चट्टान में बड़ा सा छेद हो जाता है और जब कभी समुद्र में ज्वार-भाटा के कारण पानी की लहर उठने लगती है तो हवा और जल की धारा-सी इन छेदों से ऊपर की ओर निकलना शुरू हो जाती है। इनसे पानी के फव्वारे से छूटने लगते हैं जैसे कि कोई नीचे से फूँक रहा हो। इस प्रकार के छेदों को वायुछिद्र कहते हैं।

Blue mud (**नीला दलदली निक्षेप**) समुद्र की तली पर अनेक प्रकार का निक्षेप पाया जाता है। जीव और वनस्पति भी पाई जाती है। जब जीव व वनस्पति के कुछ अंश नष्ट होकर सड़ने लगते हैं तो समुद्र तल पर पाय जाने वाली ज्वालामुखी उद्गारवाली मिट्टी के साथ एक दलदल-सा बन जाता है। इस दलदल में लोहे का सलफाइड भी मिला पाया जाता है और इसी कारण इस दलदल का रंग गहरा नीला या स्लेटी हो जाता है। यह सम्पूर्ण निक्षेप बड़ा ही मुलायम व चिपचिपा होता है। प्रशान्त महासागर, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के समुद्री तली में यह नीला दलदली निक्षेप विशेष रूप से अधिक मात्रा में पाया जाता है।

Bluff (**ब्लफ**) जब नदी अनावृत्तीकरण द्वारा अपनी घाटी की दीवारों को काटना-छाँटना शुरू कर देती है तो उसके अगल-बगल से चट्टानें लम्ब रूप खड़ी रह जाती हैं। इनका ढाल बड़ा ही तीक्ष्ण होता है और इस प्रकार से बने चट्टान खंडों को ब्लफ कहते हैं।

Bog (**सड़ता हुआ दलदल**) बहुधा छिछले गड्ढों में ऐसी झीलें व तालाब बन जाते हैं जिनके जल में किसी प्रकार का निकास नहीं होता। न तो उनमें कोई नदी या नाला आकर गिरता है और नही उनसे कोई नदी निकलती है। फलतः इस बँधे पानी की तली में उगी हुई वनस्पति व कीटाणु नष्ट होकर सड़ने लगते हैं। इनके ऊपर किनारे पर उड़ी हुई झाड़-पतवार भी आ गिरती है और सबसे ऊपर की सतह पर मोटी किसी जम जाती है। यह कई पहिले तो तैरती रहती है परन्तु धीरे-धीरे पूरी सतह पर फैल जाती है और किसी की इस मोटी सतह के नीचे सड़ती हुई वनस्पति का विशाल ढेर जमा रहता है। इस प्रकार से

सड़ती-गलती हुई वनस्पतिराशि से ढकी हुई मुलायम गीली व लिपलिपी भूमि को सड़ता हुआ दलदल कहते हैं। इसको कभी-कभी 'हिलता हुआ दलदल' भी कहते हैं क्योंकि इस पैर रखने से यह सम्पूर्ण राशि हिलने लगती है। कालान्तर में इसी प्रकार के दलदलों में पीट बन जाता है।

इनकी एक विशेषता यह है कि ये अधिकतर सर्द व तर प्रदेशों में पाये जाते हैं। उन पर्वतीय प्रदेशों में जहाँ सर्दी के साथ-साथ नमी भी पायी जाती है, ये दलदल बन जाते हैं। साधारण दलदली भूमि या दलदल से दो बातों में ये भिन्न होते हैं। न तो इनमें पानी ही अधिक रहता है और न ही इनके ऊपर वनस्पति उगी हुई पाई जाती है।

Bogaz (**बॉगाज़**) चूने व खड़िया मिट्टी के क्षेत्रों में चूने के पत्थर के पानी में जल जाने के कारण अक्सर बड़ी-बड़ी कन्दरायें व गहरे-गहरे गड्ढे बन जाते हैं। ये कन्दरायें भूमि के अन्दर के जल के द्वारा बन जाती हैं और इनमें ऊपरी पटल पर बहने वाली नदियों का जल आकर गिरने लगता है। इस प्रकार की कन्दराओं को बॉगाज़ कहते हैं।

Bohorok (**बॉहओ रॉक**) सुमात्रा द्वीप के देली नामक मैदान में जाड़े के मौसम में उत्तरी-पूर्वी मौसमी हवायें चलती हैं। ये मौसमी हवायें पहाड़ों के सामने वाले ढालों पर वर्षा करती हैं। परन्तु पहाड़ों के वायुविमुख पार्श्व में पहाड़ी ढालों से गर्म व शुष्क वायु मैदानों में बहती है और उतार में और भी गर्म हो उठती है। इस वायु को बॉहओ रॉक कहते हैं और इसकी वजह से बहुधा तम्बाकू की फसल को बहुत हानि पहुँचती है।

Bolson (**आन्तरिक जल प्रवाह क्षेत्र**) शुष्क व अर्द्धशुष्क प्रदेशों में बहुधा नदियाँ किसी झील में जाकर गिरती हैं। वे इतनी लम्बी या जलपूर्ण नहीं होतीं कि समुद्र तक पहुँच सकें। ये नदियाँ अपने साथ बहाकर बहुत सी मिट्टी, बालू, व कंकड़-पत्थर लाती हैं और झील में प्रवेश करते समय अपने मुहाने पर जमा कर देती हैं। इस प्रकार कई मृत्तिकामय प्रदेश बन जाते हैं और झील के किनारों पर इनका विस्तार प्रति वर्ष बढ़ता ही जाता है। फल यह होता है कि इस प्रकार की झील का विस्तार दिन पर दिन कम होता जाता है और इसे आन्तरिक जलप्रवाह क्षेत्र कहते हैं। इस प्रकार के आन्तरिक जलप्रवाह क्षेत्र मेक्सिको और दक्षिणी पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र अमरीका में विशेष रूप से पाये जाते हैं।

Bonne's Projection (**बोन्स अंकन**) बोन्स अंकन साधारण शंक्वाकार अंकन का ही परिवर्त्तित व संशोधित रूप है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह समक्षेत्रफल होता है और इस पर खींचे गये मानचित्रों का क्षेत्रफल यथार्थ भूपटल के समान ही होता है इसीलिये यह अंकन विशेष लोकप्रिय है। परन्तु ध्रुवीय प्रदेशों के मानचित्र के लिये यह उपयुक्त नहीं है। जिन प्रदेशों का देशान्तरीय विस्तार या पूर्व से पश्चिम तक का विस्तार साधारण होता है उन्हें इस अंकन पर विशेष यथार्थता से खींचा जा सकता है। इसीलिये मानचित्रावली के यूरोप, एशिया और आस्ट्रेलिया ही के नक्शे इसी अंकन पर खींचे जाते हैं। प्रायः संगठित भूखंडों का मानचित्र ही इस पर अच्छा बनता है। महाद्वीपीय रेलमार्गों के नक्शे के लिये भी यही अंकन विशेष उपयुक्त रहता है। मध्यवर्त्ती अक्षांशों के बीच स्थित भूखंड भी इस अंकन पर ठीक-ठीक चित्रित किये जाते हैं।

वैसे तो साधारण शंकुआकार अंकन में एक ऐसे ग्लोब की कल्पना की जाती है जिसके मध्य में प्रकाश हो। और जो कागज के एक शंकु से घिरा हो जिसकी नोंक ध्रुव के ऊपर हो। यह शंकु ग्लोब को किसी अक्षांश रेखा पर स्पर्श करता है जो कि प्रामाणिक समानान्तर कहलाती है। बोन्स अंकन में कार्यविधि तो यही है पर दो बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है।

(१) मध्यवर्त्ती प्रामाणिक देशान्तर रेखा को यथार्थ मानदण्ड अथवा वास्तविक भूविस्तार के अनुसार विभाजित कर देते हैं।

(२) प्रामाणिक समानान्तर की तरह अन्य समानान्तर रेखाओं को भी यथार्थ रूप से मानदण्ड के अनुसार अंशों में बाँट दिया जाता है। इसमे पूर्व से पश्चिम तक का विस्तार विकृत नहीं होने पाता। इसकी विशेषताओं में निम्नलिखित विशेष प्रमुख हैं—

(१) इसकी केन्द्रीय मध्यान्ह रेखा और प्रामाणिक समानान्तर निश्चित होती है और दोनों को मानदण्ड के अनुसार अंशों में बाँट दिया जाता है।

(२) इसकी अक्षांश रेखाये समान केन्द्र वृत्तों के रूप में दिखाई पड़ती हैं। विविध अक्षांशों के बीच की दूरी और उन पर अंकित देशांतर के लिये अंश यथार्थ मानदण्ड के अनुसार होते हैं।

(३) केन्द्रीय मध्यान्ह रेखा को छोड़कर अन्य सब देशान्तर झूलाकार रेखायें होती हैं। केन्द्रीय देशान्तर सीधी रेखा होती है और उसके पूर्व व पश्चिम को किनारों की ओर यह मुड़ाव बढ़ता जाता है।

(४) रेखाओं के जाल के प्रत्येक खाने की आधार रेखा व ऊँचाई मानदण्ड के अनुसार सही होने के कारण इस पर खींचे गये मानचित्रों का क्षेत्रफल ठीक होता है।

(५) चूँकि देशान्तर व अक्षांश रेखायें एक दूसरे को लम्बरूप काटती हुई समकोण नहीं बनातीं, इसलिये इस पर दर्शित दिशायें ठीक नहीं होतीं। केवल केन्द्रीय मध्यान्ह रेखा पर की दिशायें ही ठीक रहती हैं। अन्य सभी जगह आकार बिगड़ जाता है। किनारों की ओर ली गई दूरी वास्तविक से बहुत फर्क होती है।

यह अंकन १८वीं शताब्दी में निकाला गया था और इसका जन्मदाता रिगवर्ट वोन नामक एक फ्रांसीसी था जिसके नाम के आधार पर ही इसे बोनस अंकन कहा जाता है।

Bora (बोरा) एड्रियाटिक सागर के पूर्वी किनारे पर और इटली के उत्तरी भाग में जाड़े में चलनेवाली ठंडी व शुष्क उत्तरी व उत्तर-पूर्वी वायु को बोरा कहते हैं। जाड़ों में मध्य यूरोप और बालकन प्रायद्वीप पर वायु का भार ऊँचा रहता है और इसकी अपेक्षा भूमध्य सागर पर वायुभार निम्न होता है। अतः महाद्वीपीय भागों से समुद्र की ओर वायु प्रवाह शुरू हो जाता है। स्थलखण्ड की ओर से बहने के कारण इसके साथ का मौसम साफ, शुष्क और ठंडा होता है। एड्रियाटिक सागर पर गुजरने पर इसमें कुछ नमी आ जाती है और कभी-कभी इसके साथ मेघ वर्षा या बर्फ से पूर्ण मौसम फैल जाता है।

महाद्वीपीय उच्चभार केन्द्र यदि स्थायी हुआ तो बोरा वायु कई दिनों तक चलती रहती है और बहुधा इसकी प्रचण्डता बहुत बढ़ जाती है। साधारणतया इसका वेग बहुत तेज होता है और इसमें बड़े भीषण झोंके व तूफान आते हैं। कभी-कभी तो इसकी गति १०० मील प्रति घण्टे से भी अधिक हो जाती है। इसका प्रभाव दक्षिणी फ्रांस की मिस्ट्राल से बहुत कुछ मिलता है। तीव्र गति व प्रचण्डता के कारण यह बहुधा अपने भाग में इमारतों आदि को बहुत हानि पहुँचाती है।

Bore (नदी जल भित्त) ज्वार-भाटा की ऊँची लहर जब नदी के सँकरे मुहाने में प्रवेश करती है तो कई फीट ऊँची हो जाती है और पानी की इस दीवार को नदी जलभित्त कहते हैं। खुले समुद्र में तो ज्वार-भाटा की लहर समाकार रहती है परंतु जब तट के समीप वाले छिछले जल में पहुँचती है तो इसके अगले भाग की गति धीमी पड़ जाती है और अग्रभाग दीवार की तरह सीधा खड़ा हो जाता है। वास्तव में नदी जलभित्त उस समय बनते हैं जब समुद्री लहर की गति को नदी के जल या किनारे के छिछले पानी से रुकावट मिलती है। फलतः नदी के

बहाव के आरपार पानी इकट्ठा हो जाता है और लहर का पिछला भाग ऊपर से गिर पड़ता है। नदी के मुहाने के भीतर इस प्रकार किसी बड़ी टक्कर मारती हुई लहर की तरह पानी आगे बढ़ता है परन्तु यह तभी होता है जब रुकावट बहुत अधिक होती है।

नदी जल भित्त प्रायः बड़ी नदियों के उन मुहानों में बनते हैं जहाँ ज्वार-भाटे के लिए रुकावट अधिक व आकस्मिक होती है। कुप्पीनुमा मुहाने की नदियों में तो ये भित्त अवसर बन जाया करते हैं। आगे बढ़ते हुए जलभित्त की गति २५ मील प्रति घंटा होती है। अमेजन, हुगली, सेवर्न, ट्रेन्ट, सलवे और यांगटीसी नदियों में यह भित्त अक्सर बन जाया करते हैं। सेवर्न में इनकी ऊँचाई ३-४ फीट होती है परन्तु यांगटिसीक्यांग में यह १२ फीट तक ऊँचे हो जाते हैं।

Boss (बॉस) छोटे गुम्बजाकार पर्वत को बॉस कहते हैं। ये छोटे गुम्बजाकार शिखर वृत्त की तरह गोल होते हैं और भूपटल पर गोली की तरह उभरे रहते हैं।

Bottom (बॉटम) यह एक ऐसा विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है जो केवल संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ही प्रयोग किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में काँप, गंगवार मिट्टी या नदी द्वारा बहाकर लाई हुयी मृत्तिकामय मैदान को बॉटम कहते हैं।

Boulder Clay (बोल्डर मिट्टी) हिम नदी के पिघलने पर दो प्रकार के निक्षेप हो जाते हैं। एक तो हिम नदी से निकली हुई जलधाराओं से और दूसरे स्वयं हिम ही से। हिमजल द्वारा जमा की हुई वस्तुयें परतदार व व्यवस्थित होती हैं। हिम द्वारा छोड़े गये निक्षेप ऊबड़-खाबड तथा मिले-जुले होते हैं और इन्हीं को बोल्डर मिट्टी कहते हैं। इस हिम निक्षेप को बहुधा टिल (Till) भी कहते हैं।

बोल्डर मिट्टी या टिल मोटी और बिना परतदार होती है। इसमें एकरूपता का भी अभाव रहता है। बीसों प्रकार की चट्टानों के टुकड़े, जिनकी बनावट व रंग दोनों ही विभिन्न होते हैं, इसमें मिले पाये जाते हैं। इस निक्षेप की विषमता का अनुमान तो इसी से लग सकता है कि इसमें महीन चूर्ण से लेकर बड़े-बड़े कंकड़ तक मिले रहते हैं। बहुधा तो ऐसे कंकड़ व पत्थर पाये जाते हैं जिनका व्यास कई फीट तक होता है। बोल्डर मिट्टी का निक्षेप कई फीट गहरा होता है परन्तु केवल ऊपरी कुछ इंच की गहराई तक की मिट्टी ही खेती योग्य होती है। इसमें पाये जानेवाले मिट्टी के ढोके रगड़ के कारण चिकने व धारीदार हो जाते हैं।

निक्षेप का स्वभाव, प्रकार और गहराई हिमनदी के प्रवाह क्षेत्र की चट्टानों के अनुसार विभिन्न होता है। जहाँ हिमनदी के नीचे की चट्टानें कमजोर होती हैं वहाँ निक्षेप की गहराई अधिक होती है और जहाँ नीचे की चट्टानें कठोर होती हैं वहाँ यह निक्षेप कम गहरा होता है। हिम की गति व प्रवाह की दिशा के अनुसार ही इसका वितरण बड़ा ही अव्यवस्थित होता है। जहाँ हिमनदी का प्रवाह तेज रहता है वहाँ यह निक्षेप नहीं हो पाता। साथ में बहाकर लाये हुये कंकड़-पत्थर साथ बहते चले जाते हैं। जहाँ गति धीमी हो जाती है वहाँ यह मिट्टी व कंकड़ बर्फ के नीचे जमे रह जाते हैं। इन्हें स्थली मोरेन भी कहते हैं। बर्फ युग में हिम प्रवाह द्वारा छोड़े गये ये स्थलीय मोरेन या बोल्डर मिट्टी उत्तरी यूरोप और उत्तरी ब्रिटिश द्वीप समूह के मैदानों पर बिखरी पायी जाती है।

Boundary (सीमा) पृथ्वी के विविध भूखण्ड व महाद्वीपों को राजनीतिक व प्राकृतिक हिस्सों में बाँट दिया गया है। जलवायु, वनस्पति और भूप्रकृति के अनुसार पृथ्वी को कई प्राकृतिक विभागों में बाँट दिया गया है। इसी प्रकार शासन व राजनीतिक नियन्त्रण के अनुसार विविध महाद्वीपों पर अनेक राष्ट्र स्थित हैं। विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों

या विभिन्न राष्ट्रों को एक दूसरे से अलग करने वाली रेखा को सीमा कहते हैं। सीमा द्वारा विविध क्षेत्रों व राष्ट्रों का विस्तार निर्धारित होता है।

सीमा दो प्रकार की होती है—(१) प्राकृतिक सीमा और (२) कृत्रिम या मानव सीमा। प्राकृतिक सीमा नदियों व पहाड़ों से बनती है और स्थायी होती है। इसके विपरीत कृत्रिम सीमा मनुष्य द्वारा निर्धारित कर दी जाती है और मानचित्रों पर एक रेखा द्वारा अंकित कर दी जाती है। यह कृत्रिम सीमा बहुधा बढ़ती-घटती रहती है और इसमें विविध युद्धों से हेर-फेर होता रहता है। वास्तव में रूप अनिश्चित होने के कारण यह बहुधा झगड़े की जड़ भी हो जाती है।

सीमाओं को निम्नलिखित तीन प्रकार का कहा जा सकता है (१) अन्तर्राष्ट्रीय, (२) प्रान्तीय अथवा देशीय और (३) जिले व नगर सम्बन्धी।

Bourne (लुप्त जलप्रवाह) चूने के पत्थर व खड़िया मिट्टी के प्रदेशों में नदी का प्रवाह सतत या निरन्तर नहीं होता। कभी तो नदी सतह पर बहती नजर आती है तो कभी भूगर्भ में प्रवेश कर जाती है और सतह पर से लुप्त हो जाती है। इस प्रकार की कभी बहने व कभी छिप जाने वाली नदी को लुप्त जलप्रवाह कहते हैं। इस प्रकार की नदी की तलैटी अधिकतर सूखी पड़ी रहती है क्योंकि नदी का मुख्य प्रवाह तो जमीन के नीचे होता रहता है। केवल बहुत अधिक वर्षा के मौसम में सतह पर स्थित लुप्त जलप्रवाह की तलैटी पानी से भर जाती है।

Brae (ब्रे) किसी घाटी के ऊपर से लटकता हुआ चट्टानी किनारा अथवा पहाड़ी भाग को स्काटलैंड में ब्रे कहते हैं।

Branch (नदी शाखा) पूर्ण तथा विकसिक नदी में बहुधा आस-पास से आकर बहुत सी सहायक नदियाँ मिल जाती हैं। इन सहायक नदियों का प्रवाह भी बराबर बढ़ता रहता है और उनमें भी कई छोटी-छोटी नदियों का जल आ मिलता है। सम्पूर्ण जल-प्रवाह पेड़ की टहनियों या शाखाओं के समान दीख पड़ता है और इस प्रकार की शाखाओं को उपसहायक नदियाँ भी कहते हैं।

Brave west winds (वीर पछुआ वायु) अपवन सीमाओं के बाहर शीतोष्ण कटिबन्ध में ३५° अक्षांश से लेकर ध्रुवीय वृत्तों तक पछुआ हवायें चला करती हैं। इस पश्चिमी वायु के साथ बड़ी-बड़ी आँधी व तूफान आते रहते हैं। उनकी गति कभी तो बहुत कम हो जाती है और कभी वे इतनी तेज बहने लगती हैं कि उन्हें तूफान कहा जा सकता है।

दक्षिणी गोलार्द्ध में ये अधिक नियमित रूप से चलती हैं। वहाँ उन्हें स्थान समूह से रुकावट भी नहीं पड़ती। इसलिये वहाँ वे इतनी अधिक तीव्र हो जाती हैं कि ४०° और ५०° दक्षिणी अक्षांशों के बीच में लोग इन्हें भीषण पछुआ वायु के नाम से पुकारते हैं। ये भीषण पछुआ हवायें दक्षिणी चिली; तसमानिया और न्यूजीलैंड के पहाड़ी तटों से टकरा कर उन तटीय प्रदेशों में भीषण वर्षा करती हैं। कभी-कभी तो वर्षा की मात्रा १०० इंच से भी अधिक हो जाती है। परन्तु वर्षा करने के बाद जब ये हवायें पर्वतों के पूर्वीय ढालों पर उतरती हैं तो इनकी आर्द्रता बहुत कुछ खतम हो चुकी होती है और इन प्रदेशों के पूर्वी भागों में २० इंच से भी कम वर्षा हो पाती है। (देखिये Roaring Forties)

Breaker (बिखरी हुई लहर) समुद्र की लहर जब किनारे की ओर बढ़ती है तो पानी की गहराई कम हो जाने से इसका लहर रूप बना नहीं रह पाता और यह झाग के रूप में बिखर जाती है। कभी-कभी समुद्री लहर किनारे पर स्थित चट्टान या अन्य किसी ठोस वस्तु

से टकराकर भी इसी प्रकार बिखर जाती है। इस प्रकार की लहर को बिखरी हुई लहर कहते हैं।

Break Water (**विध्वंसक बाँध**) उन समुद्री प्रदेशों में जहाँ समुद्र की लहरों का प्रकोप व प्रचण्डता इतनी अधिक होती है कि उनके प्रहार के डर से तटीय प्रदेशों पर जहाजों का रुकना अथवा अन्य किसी प्रकार का मानव प्रयत्न असंभव होता है वहाँ तट के समानान्तर बाँध बना दिया जाता है ताकि लहरें समुद्रतट तक न आ सकें। लहरों से तट को सुरक्षित रखने और लहरों की शक्तियों को विध्वंस करने के लिये इस प्रकार से बनाया गया बाँध विध्वंसक बाँध कहलाता है।

Breached Cone (**खंडित ज्वालामुखी शंकु**) ज्वालामुखी उद्गार से बराबर लावा निकला करता है और लावा निर्मित शंकु के मुँह और नली तक बराबर लावा भरा रहता है। यदि लावा निर्मित शंकु की नली में लावा बराबर नीचे से धक्का मारता रहे तो बिना विस्फोट हुये भी लावा पार्श्व के किसी कमजोर स्थल को फोड़ कर निकल पड़ता है। यह लावा प्रवाह आधार के समीप किसी बिन्दु पर होता है और वहाँ पर लावा के इकट्ठा होने से एक दूसरा छोटा शंकु बन जाता है। इस प्रकार से बने घोड़े की नाल के आकर वाले ज्वालामुखी पर्वत को खंडित ज्वालामुखी शंकु कहते हैं।

Breccia (**ब्रेसइआ**) यह इटाली भाषा का पारिभाषिक शब्द है। चट्टानों के पैने तिकोने टुकड़े अक्सर आपस में जुट कर एक मणि के समान या नग की तरह बन जाते हैं। इनके अन्दर जीव वनस्पति शेषांश भी दबे पड़े रहते हैं। इस प्रकार के चट्टानी ढोकों को ब्रेसइआ कहते हैं। ये किसी भी वस्तु के हो सकते हैं ओर इनके बनने की रीति व विधि अनेक तथा विभिन्न होती हैं।

Breeze (**पवन**) वायु की वह हल्की धारा जिसे हवा नहीं कहा जा सकता, पवन कहलाती है। पृथ्वी पर जल व स्थल के वितरण तथा पर्वत व घाटियों की स्थिति के कारण नियमित भार व्यवस्था में कुछ स्थानीय परिवर्त्तन हो जाते हैं जिनके फलस्वरूप पवन का प्रादुर्भाव हो जाता है।

पवन कई प्रकार का होता है जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—(१) हलका पवन जिसका अनुभव चेहरे पर लगने या पत्तियों के खड़खड़ाने से होता है। (२) मन्द पवन जिसकी गति १० मील प्रति घण्टा तक होती है जिसके प्रभाव से पेड़ की पत्तियाँ व टहनियाँ हिलने-डुलने लगती हैं। (३) साधारण पवन से धूल उठती है, छोटे-मोटे कागज के टुकड़े उड़ने लगते हैं और वृक्ष की छोटी-छोटी शाखायें हिलने लगती हैं। (४) ताजा पवन की चाल २० मील फी घंटे तक होती है और छोटे-छोटे पौधे लहराने लगते हैं तथा नदियों के जल पर हिलोरें उठने लगती हैं। (देखिये Land Breeze, Sea Breeze)

Brick fielder (**ब्रिक फील्डर**) दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया में गर्मी के मौसम में बहनेवाली अति गर्म हवा को ब्रिक फील्डर कहते हैं। उष्णकटिबंधीय वायु के दक्षिण की ओर चलने से इस हवा का प्रादुर्भाव होता है और इसके चलने पर धूल के बादल छा जाते हैं। जिस काल में ब्रिक फील्डर बहती रहती है उस समय कई दिनों तक लगातार भीषण गर्मी पड़ती रहती हैं और दैनिक तापक्रम बहुधा १००° से भी ऊपर चला जाता है।

Bridge (**बंध**) (देखिये Natural Bridge)

British Summer Time (**ग्रीष्मकालीन ब्रिटिश समय**) सन् १९१६ में ब्रिटिश द्वीप समूह में ग्रीष्मकाल के लिए प्रामाणिक समय का मानदण्ड निर्धारित किया

गया। ग्रीष्मकाल का यह प्रासंगिक समय ग्रीनविच के समय से १ घंटा आगे रहता है। इस प्रकार ग्रीनविच समय के अनुसार ठीक की गई घड़ियों में जिस समय ६ बजता है उस समय ग्रीष्मकालीन ब्रिटिश समय के अनुसार सात वजते हैं।

Broad (**जल प्रसार**) धीमे बहनेवाली नदी के प्रवाह में वहुधा ऐसा क्षेत्र बन जाता है जहाँ नदी का पानी फैल कर छिछला जलाशय बना देता है। इस प्रकार के जलपूर्ण क्षेत्रों को जल प्रसार कहते हैं। वास्तव में जल प्रसार नदी के खुले मुहाने के समीप नदी के किनारे पर पाये जाते हैं। इंगलैंड के पूर्वी एंग्लिया प्रदेश में इस प्रकार के जलप्रसार बहुत मिलते हैं।

Broad leaf forests (**चौड़ी पत्ती के जंगल**) चौड़ी पत्ती वाले जंगल दो प्रकार के होते हैं—सदाबहार और पतझड़। चौड़ी पत्तीवाले सदाबहार बन उष्णकटिबंधीय भागों के मैदानों में मिलते हैं। यहाँ वर्ष भर ताप तथा वर्षा की प्रचुरता रहती है। भूमध्यरेखा पर स्थित वन प्रदेशों के पेड़ वड़े सघन होते हैं और काफी ऊँचे होते हैं। महोगनी, गटापार्चा, संदल, बाँस, बेंत, रबड़, ताड़, सिनकोना आदि इनके प्रमुख वृक्ष हैं। इनकी लकड़ी कठोर होती है। (देखिये Equatorial Forest)

मानसूनी प्रदेश में जहाँ बहुत ज्यादा वर्षा होती है वहाँ भी सदाबहार चौड़ी पत्ती वाले वन मिलते हैं। यह बहुत सघन तो नहीं होते परन्तु इनसे बहुमूल्य लकड़ी प्राप्त होती है जैसे—देवदार, महोगनी आदि। चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वनों के क्षेत्र अमेजन बेसिन, कांगो बेसिन, पूर्वी द्वीप समूह, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, भारत, लंका आदि में फैले पाये जाते हैं।

उपरोक्त क्षेत्रों के अलावा भूमध्य सागरीय भागों में भी चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वन पाये जाते हैं। इन प्रदेशों में वर्षा केवल एक ही ऋतु में होती है—शीतकाल में परन्तु गर्मी की ऋतु इतनी छोटी होती है कि वृक्षों को शुष्कता से अपनी रक्षा करने के लिये अपनी पत्तियाँ नहीं गिरानी पड़ती। इन वृक्षों की जड़ें लम्बी, पत्ते मोटे व चिकने, छाल मोटे और शाखायें काँटेदार होती हैं। इन विशेषताओं के कारण ये वृक्ष शुष्क गर्मी में अपनी रक्षा कर लेते हैं। लारेल, कार्कओक, चेस्टनेट, वालनट, शहतूत, हिकरी, पाइन, यूकेलिपटस आदि यहाँ के प्रमुख वृक्ष हैं।

शीत कटिबंध के कुछ अधिक वर्षा वाले भागों की प्राकृतिक वनस्पति चौड़ी पत्ती के जंगल हैं। इन वनों के वृक्ष लम्बे व चौड़ी पत्ती वाले होते हैं। इनकी विशेषता यह है कि जब जाड़े की ऋतु प्रारम्भ होती है तो अत्यन्त शीत तथा कड़ी हवाओं के कारण इनकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। इसलिये इन्हें पतझड़ वाले वन भी कहते हैं। इन वनों का सबसे प्रमुख वृक्ष ओक है। इसके अलावा एल्म, मेप्ल, बीच और बर्च के भी वृक्ष पाये जाते हैं। इन सबकी लकड़ी कठोर होती है और भूमध्यरेखीय सदाबहार वनों के बाद कठोर लकड़ी के भंडार के दृष्टिकोण से इन्हीं चौड़ी पत्ती वाली वनों का स्थान आता है और इनमें आसानी से लकड़ी काटने का काम हो सकता है। परन्तु खेद की बात यह है कि उत्तरी-पश्चिमी और मध्य यूरोप में इन्हें काटकर खेती के लिये भूमि साफ कर ली गई है। (देखिये Deciduous Forests)

Broad gauge (**चौड़ी लाइनें**) प्रायः रेलों की पटरियों के बीच की जगह या चौड़ाई तीन प्रकार की होती है—५ फीट ६ इंच, ३ फीट ३॥ इंच और दो फीट ६ इंच। जहाँ पटरियों के बीच की चौड़ाई ५ फीट ६ इंच होती है वहाँ उसे चौड़ी लाइन कहते हैं। चौड़ी लाइन की गाड़ी के डिब्बे बड़े व उस पर चलने वाली गाड़ी की रफ्तार तेज होती है।

Brocken (ब्राकन) पर्वतीय प्रदेश में ऊँची चोटी पर खड़े निरीक्षक की परछाईं बहुधा बादलों के किनारों या धुंध के ऊपर पड़ती है और उसमें उसका आकार वास्तविकता से बहुत बड़ा हुआ मालूम पड़ता है। इस प्रकार के दृश्य को ब्राकन कहते हैं। इसका यह नाम जर्मनी के हार्ज पर्वत श्रेणी की ब्राकन नामक चोटी के आधार पर पड़ गया है क्योंकि इस चोटी में यह दृश्य अक्सर होता रहता है।

Bronze Age (काँस युग) मानव जाति व सभ्यता के विकास में काँस युग उस अवस्था का द्योतक है जब मनुष्य काँस यानी ताम्बा व टीन से मिलाकर बनी धातु के यन्त्र व शस्त्र प्रयोग करते थे। यह युग वास्तव में पाषाण व लौह युग के बीच के कालान्तर में था और संसार की विभिन्न जातियों को इस प्रकार की सभ्यता से गुजरना ही पड़ा।

Brook (नद) एक छोटी नदी या नाला को नद कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं—(१) [illegible] स्रोतों से निकलकर बहने लगता है। (२) बरसाती नद जो ब[illegible]नी के इकट्ठा होने पर बन जाता है। और (३) कृत्रिम नद जो सुन्दर बगीचों में सुंदरता बढ़ाने के लिए मनुष्य द्वारा बनाया जाता है और जिसमें कृत्रिम तरीकों से पानी भरा जाता है।

Brown Coal (भूरा कोयला) यह बड़ी ही निकृष्ट जाति का कोयला है। इसमें कार्बन का अंश बहुत कम होता है—४५ प्रतिशत से लेकर ६५ प्रतिशत तक। यह कड़ा बिलकुल भी नहीं होता। खान से बाहर निकलते ही चूर-चूर हो जाता है। इसमें गैस का अंश अधिक होने के कारण जलते समय काफी धुआँ निकलता है। यह कोयला अधिक समय तक भूगर्भ में नहीं रहता। इसकी आयु कम होती है। इसे लिगनाइट कहते हैं। (देखिये Lignite)

Bruckner Cycle (ब्रकनर चक्र) विविध प्रकार के जलवायु व भूप्रकृति सम्बन्धी परिवर्त्तन एक चक्र के रूप में पारी-पारी से आते रहते हैं परन्तु इनके आने-जाने का समय व कालान्तर बड़ा ही अनिश्चित है। कुछ काल तक या कुछ वर्षों तक गर्म व शुष्क मौसम रहता है और फिर उसके बाद कुछ सालों तक ठंढा व नम रहता है। इसी प्रकार कभी पहाड़ी हिम नदियाँ आगे बढ़ जाती हैं तो कभी पीछे हट जाती हैं। कैस्पियन सागर की तलैटी कभी तो नीचे धँस जाती है, कभी ऊपर उठ जाती है। इसके फलस्वरूप इस में बहकर आने वाली नदियों के प्रवाह में भी परिवर्त्तन हो जाता है। इसी प्रकार ऋतु सम्बन्धी और बहुत सी बातों में हेरफेर हो जाता है।

इस प्रकार की अनियमित व्यवस्था को प्राकृतिक दशाचक्र कहते हैं। इसके विषय में जानकारी तो बहुत दिनों से थी परन्तु सन् १८९० में ब्रकनर महोदय ने फिर से इसे खोज निकाला और तब से इसे ब्रकनर प्राकृतिक दशा चक्र कहते हैं। ब्रकनर महोदय ने यह भी पता लगाया कि इन चक्रों की औसत लम्बाई ३५ साल होती है यद्यपि कोई-कोई चक्र ५० साल तक रहते हैं और कोई इतने छोटे होते हैं कि २५ साल में ही समाप्त हो जाते हैं।

Buffer State (अन्तस्थ राज्य) रेल के डिब्बों में उनकी टक्कर से होने वाले धक्कों को बचाने के लिए एक अन्तस्थ यन्त्र लगा रहता है जिसमें से हवा निकाल कर खाली कर दिया जाता है। इसी प्रकार दो या दो से अधिक शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच में बसा हुआ स्वतंत्र राष्ट्र अन्तस्थ राज्य कहलाता है। इस अन्तस्थ राज्य की वजह से बहुधा शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच होने वाला युद्ध रुक जाता है परन्तु यदि फिर भी युद्ध हो गया तो यह शक्तिहीन छोटा राज्य गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस जाता है और इसको अपनी स्थिति के कारण बहुत भारी क्षति भी उठानी पड़ती है। इस दृष्टिकोण से बेल्जियम का

उदाहरण बड़ा सार्थक है जिसकी अन्तस्थ स्थिति का हवाला संसार के इतिहास में स्पष्टतया अंकित है।

Buran (बूरन) जाड़ों के मौसम में साइबेरिया और मध्य एशिया में उत्तर की ओर बड़ी ही प्रचण्ड व शीत वायु आने लगती है। यह वायु उत्तर या उत्तर-पूर्व से आती है और इसमें बर्फ व हिम के कण मिले रहते हैं। इसको बूरन कहते हैं और इसकी दशा व स्वभाव कनाडा के बर्फीले तूफानों से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

इसका प्रादुर्भाव प्रायः किसी चक्रवात के पीछे वाले भाग में होता है और इसके चलने पर महाद्वीप के बीच स्थित विरुद्ध चक्रवात की दशायें भंग हो जाती हैं। उनकी शांत, उच्च भार दशा में इस प्रचण्ड वायु के कारण बहुधा बड़े परिवर्त्तन हो जाते हैं। इसकी गति भीषण तूफान से भी अधिक तेज होती है और यह बहुधा ६०-७० मील से भी अधिक रफ्तार से चलती है। इसका तापमान इतना निम्न होता है कि बहुधा इसके चलने पर तापक्रम २०° या इससे भी नीचा हो जाता है। इस प्रकार खुले व विस्तृत स्टेपीज़ मैदानों पर इस वायु के कारण जन व पशु की बहुत हानि हो जाती है। खड़ी हुई फसलें तहस-नहस हो जाती हैं और वही हालत हो जाती है जो कनाडा में बर्फीले तूफानों के चलने पर होती है।

कभी-कभी गर्मी के मौसम में बूरन वायु चलने लगती है और उत्तर-पूर्व से ही बहती है परन्तु गर्मी के मौसम में यह न तो इतनी प्रचण्ड ही होती है और न ही इसका प्रभाव इतना विप्लवकारी होता है।

Burn (बर्न) स्काटलैंड में नद या छोटी नदी को बर्न कहते हैं। बर्न प्रायः पहाड़ी नद होते हैं जिनमें झरनों का पानी बहता रहता है।

Bush (झाड़ी प्रदेश) जहाँ की भूमि कंकड़ीली, पथरीली या रेतीली होती है तथा जहाँ वर्षा की मात्रा इतनी अधिक नहीं होती कि ऊँचे-ऊँचे पेड़ उग सकें वहाँ प्रायः छोटे कद के पौधों की झाड़ियाँ पायी जाती हैं। इस प्रकार के प्रदेश को झाड़ी प्रदेश कहते हैं।

झाड़ी प्रदेश में उगनेवाली वनस्पति निम्नलिखित तीन प्रकार की होती है—(१) गुच्छेदार घास—स्टेपी प्रदेशों की मरुस्थली सीमा पर बड़ी-बड़ी घास तो समाप्त हो जाती है पर हाँ थोड़ी-थोड़ी दूर पर गुच्छेदार घास की झाड़ियाँ जरूर दिखाई पड़ती हैं। (२) मोटी व चिकनी पत्ती वाली झाड़ियाँ वे होती हैं जिनके पौधे छोटे कद के तो जरूर होते हैं पर उनकी जड़ें लम्बी, उनकी पत्तियाँ मुड़ी हुई और उनके डण्ठल मोटे व चिकने होते हैं। ये झाड़ियाँ भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेश में बहुत मिलती हैं। (३) काँटेदार झाड़ी में ऐसे पेड़ पाये जाते हैं जिनमें काँटे अधिक और पत्तियाँ कम होती हैं। बबूल व जंगली बेर के पेड़ प्रमुख होते हैं। इनकी शाखायें टेढ़ी-मेढ़ी व आपस में फँसी हुई झंखाड़ का रूप प्रगट करती हैं।

Butte (बूटे) शुष्क प्रदेशों में चट्टानी भागों पर रेत के कणों से लदी हुई वायु बराबर आघात करती रहती है। यदि ऊपर की चट्टान नीचे की चट्टानों से कठोर व ठोस हुई तो नीचे की परतें जल्दी कट जाती हैं। और उनके ऊपर स्थित कठोर चट्टान मेज के ऊपरी तख्ते के समान रक्खी रह जाती है। फल यह होता है कि बाकी कमजोर चट्टानी परतें कटने-छँटने से बच जाती हैं और सम्पूर्ण स्थल समतल चबूतरे वाली पहाड़ी-सा दीख पड़ने लगता है। इस स्थल रूप को बूटे कहते हैं और यह वायु प्रहार शक्ति प्रधान शुष्क प्रदेशों में ही अधिकतर पायी जाती है।

बूटे मेसा की अपेक्षा विस्तार में छोटे होते हैं। बहुधा काट-छाँट तथा घर्षण के प्रभाव से मेसा ही इतने छोटे हो जाते हैं कि उन्हीं में से बूटे बन जाते हैं। वास्तव में बूटे शुष्क पठारी

भागों में विशेष रूप से पाये जाते हैं और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पश्चिमी भाग में इनकी बहुतायत है।

Buys Ballot's Law (**बाइस बैलट नियम**) चलते हुये पवन को वायु कहते हैं और भार में भेद होने से ही वायु की अनेक गतियाँ हो जाती हैं। वैसे तो वायु अधिक भार वाले प्रदेश से कम भार वाले प्रदेश की ओर ही जाया करती है परन्तु पृथ्वी की दैनिक गति के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न गति से घूमते हैं और सभी स्थान की वायु मुड़ जाती है, अपने मार्ग से विचलित हो जाती है। इसका निरीक्षण करके सन् १८५७ में वाइस बैलट साहेब ने एक नियम निकाला।

इस नियम से यह ज्ञात होता है कि यदि हम उत्तरी गोलार्द्ध में पीठ को वायु की ओर करके खड़े हो जाएँ तो दाहिनी ओर की अपेक्षा बायीं ओर वायु का भार कम होगा। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में वायु का भार दाहिनी ओर कम होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तरी गोलार्द्ध में वायु की दिशा के बायीं ओर निम्न भार रहता है और दक्षिणी गोलार्द्ध में वायु की दिशा के दायीं ओर।

दूसरे शब्दों में, वाइस बैलट के नियम से हमें यह ज्ञात होता है कि उत्तरी गोलार्द्ध में निम्न भार केन्द्र के चारों ओर हवा घड़ियों की सुइयों की विरुद्ध दिशा में घूमती है और उच्चभार केन्द्रों के चारों ओर वायु की दिशा घड़ी की सुइयों की तरह बायीं से दायीं ओर को रहती है। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में निम्न भार केन्द्र के चारों ओर वायु की दिशा बाएँ से दाएँ यानी घड़ी की सुइयों के समान होती है और उच्चभार केन्द्र के चारों ओर हवा की दिशा दाएँ से बायें या घड़ी की सुइयों के विपरीत रहती है।

Cacimbo (**कॉकिम्बो**) पश्चिमी अफ्रीका में स्थित पुर्त्तगाली उपनिवेशों में बड़ा घना धुंध पड़ता है और प्रायः सुबह व शाम को तो विशेष घना हो जाता है। इसे कॉकिम्बो कहते हैं और बहुधा इसमें से पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें झरती रहती हैं। यह धुंध शुष्क मौसम में विशेष रूप से पड़ता है और इसके कारण हवा में नमी बढ़ जाती है। कभी-कभी तो हवा हद से ऊपर आर्द्र हो जाती है। परन्तु वर्षा ऋतु के आते ही यह धुंध गायब हो जाता है। इसकी विशेषतायें गिनी तट के धुयें से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं।

Cainozoic Era (**अर्वाचीन युग**) भूगर्भ तत्व के अनुसार पृथ्वी के काल को ५ युगों में बाँट दिया गया है। इनमें से चौथा युग अर्वाचीन युग कहलाता है। इसे अँग्रेजी में Tertiary युग भी कहते हैं। पृथ्वी के इतिहास में अर्वाचीन युग को मध्यकालीन (Mesozoic) युग के अन्त से लेकर वर्त्तमान (Quaternary) युग के प्रारम्भ तक फैला हुआ कह सकते हैं। कुछ भूगर्भतत्ववेत्ताओं के अनुसार अर्वाचीन युग अब तक चला आ रहा है।

इस युग में अपने बच्चों को दूध पिलाने वाले पशुओं और मनुष्यों का आविर्भाव हुआ और उनकी ही बहुतायत रही। इस कारण यह युग दूध पिलाने वाले पशुओं और मनुष्य का युग कहलाता है। इस काल की वनस्पति भी उसी प्रकार की थी जैसी आजकल वर्त्तमान युग में पायी जाती है। इस काल में जो चट्टानें बनीं उनमें इस प्रकार की वनस्पति व जीव-शेषांश अभी भी पाये जाते हैं।

परंतु इस युग की चट्टानें धातुओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं, यद्यपि कहीं-कहीं कोयला व तेल अवश्य मिलता है। इस युग की चट्टानों का मिट्टी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

Cadastral maps (सीमा मानचित्र) ये मानचित्र दीर्घ मानदण्ड पर खींचे जाते हैं और विविध प्रकार की रियासत की सीमा दिखलाते हैं। वास्तव में इस प्रकार के मानचित्रों पर बड़ी सूक्ष्म बातें तक दिखलाई जा सकती है और इनका विशेष उपयोग स्थानीय शासन और कर-निर्धारण में किया जाता है। मनुष्यों की विस्तृत जमींदारी, जागीरों और रियासतों के कार्य संचालन में भी सीमा मानचित्रों की विशेष आवश्यकता पड़ती है। कानूनी कागज-पत्रों में जायदाद की वास्तविक सीमा आदि के प्रमाणस्वरूप भी यही मानचित्र पेश किये जाते हैं। सच तो यह है कि किसी भी प्रकार के विस्तृत ज्ञान के लिये सीमा मानचित्रों के बिना काम नहीं चल सकता।

इस मानचित्र में वास्तविक निरीक्षण द्वारा निर्धारित सीमा के पत्थर व उनके कोनों को विशेष रूप से चित्रित करना ही मुख्य ध्येय होता है। इसको मानदण्ड के आधार पर २५ इंच वाला मानचित्र भी कहते हैं। प्रायः हर देश में कार्य भार की सुविधा व संचालन के लिए इन मानचित्रों को हस्तलिपि के रूप में रखवाया जाता है। उन्हें छपवाना सम्भव नहीं होता। केवल ग्रेटब्रिटेन में ही इन मानचित्रों को छपवाया जाता है।

इन मानचित्रों में सीमा के पत्थरों के अलावा सीमा से लगी हुई दूसरी वस्तुओं को चित्रित
विशेषकर उन देशों में जहाँ सीमा पर न तो स्थायी झाड़ियाँ ही रहती हैं और न पक्की दीवार ही। उदाहरण के लिए मिश्र देश को लिया जा सकता है। वहाँ नील नदी का प्रवाह खेतिहर प्रदेशों की अस्पष्ट व अनिश्चित सीमा को बहुधा मिटा देता है। इसलिये ऐसे मानचित्रों पर सीमा से संलग्न दूसरी वस्तुओं को दिखाना बहुत ही जरूरी होता है।

Cairn (शिलाखण्ड) प्राचीन काल में स्मारक के तौर पर पत्थरों का एक ढेर लगा दिया जाता था जिसे शिलाखण्ड कहते हैं। आजकल शिलाखण्डों को स्मारक के लिये नहीं बल्कि स्थलरूप चिन्ह के लिये बनाया जाता है।

Caldera (निमग्न ज्वालामुख) ज्वालामुखी पर्वत का शिरोमुख जब कभी अन्दर को धँस जाता है तो उसके मुख की जगह पर एक बड़ा गहरा पात्र बन जाता है और उसमें कभी-कभी जल एकत्रित हो जाने पर झील बन जाती है। इस प्रकार की झील व गहरा मुखपात्र बहुधा बड़ी ढालू शिलाओं से घिरा रहता है। यदि ज्वालामुखी पर्वत मृत नहीं है तो इसी गहरी झील या मुखपात्र के अन्दर उसके चैतन्य उद्‌गार-मुख स्थित हो सकते हैं।

वास्तव में बड़े-बड़े और अधिक समय तक चैतन्य रहने वाले ज्वालामुखी पर्वत के शिखरों पर ही ज्वालामुखी निमज्न से कढ़ाई सी बन जाती है। और जरा सा उद्‌गार इधर-उधर हट कर हो जाने से बहुधा इनका मुख नष्ट हो जाता है। बार-बार इस प्रकार के नाश से ज्वालामुखी निमज्न से बनी कढ़ाई का विस्तार बढ़ता जाता है। इस समय संसार में सबसे अधिक विस्तृत कढ़ाईनुमा प्रदेश जापान में असो ज्वालामुखी पर स्थित है और १४ मील लम्बा व १० मील चौड़ा है। यह चैतन्य ज्वालामुखी है। परन्तु सबसे प्रसिद्ध ज्वालामुखी निमज्जन कढ़ाई भूखंड उत्तरी अमरीका में है। आरीगन रियासत में ज्वालामुखी झील इसी प्रकार के कढ़ाई प्रदेश में स्थित है और इसके बीच पाया जाने वाला द्वीप वास्तव में चैतन्य ज्वालामुखी शंकु है जो पहले ज्वालामुखी पर्वत के डूब जाने या अन्दर धँस जाने के बाद बना है।

की मन्द व आकस्मिक गतियाँ सक्रिय हो उठीं तो कुछ भाग मुड़ कर दोहरे हो गये और इस प्रकार घरेरेदार पर्वत बन गये। कठोर चट्टानों के ऊपर घरेरे बनना तो असंभव था, इसलिये उसमें दरारें पड़ गयीं और कहीं पृथ्वी के बड़े-बड़े भाग ऊपर उठ गये और कहीं नीचे धँस कर जलमग्न हो गये।

वास्तव में पृथ्वी के अन्दर की गतियों के फलस्वरूप इसी प्रकार के परिवर्तन सदा से ही होते रहे हैं। जो पर्वत सबसे पहिले बने उन्हें इसीलिये प्राचीन पर्वत कहते हैं और जो बाद में बने उन्हें नवीन पर्वत कहते हैं। पर्वत निर्माण के इतिहास में तीन गतियों का विशेष महत्व है और इस समय भूखंड पर स्थित विभिन्न पर्वत श्रेणियाँ इन्हीं की देन हैं। **कैलीडोनियन हलचल**, पर्वत निर्माण के इतिहास में सबसे पुरानी है। इसे हम पर्वत निर्माण की प्रथम गति भी कह सकते हैं। इस गति के प्रभाव से बनी सभी पर्वत श्रेणियाँ उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली हुई हैं। स्काटलैंड और नार्वे-स्वीडन की सभी पर्वत श्रेणियाँ इसी गति के प्रभावस्वरूप बनी हैं। अति प्राचीन होने के कारण इनमें ऋतुप्रहार व अनावृत्तीकरण के चिन्ह विशेषरूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यही कारण है कि इनकी ऊँचाई भी बहुत अधिक नहीं है। वास्तव में अनावृत्तीकरण के शक्तियों के प्रहार से ऊपरी कोमल चट्टानों का आवरण तो हट चुका है और अब केवल चट्टानें ही रह गयी हैं।

Calendar (जन्त्री) समय को निश्चित खण्डों में बाँटने की व्यवस्था को जन्त्री कहते हैं। इसमें साल, महीना और दिन आदि का विस्तारपूर्ण विवरण रहता है। वास्तव में साल, महीना और दिन प्राकृतिक व स्वाभाविक तत्व हैं और इनका सम्बन्ध क्रमशः सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की गति, पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा की गति और अपने अक्ष पर पृथ्वी की दैनिक गति से है।

सूर्य के चारों ओर एक चक्कर पृथ्वी ३६५ दिन, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४६ सेकण्ड में पूरा करती है। इस काल को वर्ष या साल कहते हैं। इस प्रकार सूर्य के अनुसार निर्धारित वर्ष ३६५¼ दिन का होता है। इसको जन्त्री में इस प्रकार दिखलाया जाता है कि हर तीन वर्ष तो ३६५ दिन के होते हैं परन्तु चौथा वर्ष ३६६ दिन का होता है। इस प्रकार का वर्ष वास्तविक वर्ष की अपेक्षा ११ मिनट ४४ सेकण्ड अधिक लम्बा होता है। इस भूल को दूर करने के लिए नयी रीति की ग्रीगारियन जन्त्री में संशोधन उपस्थित किया गया है। वे केवल उसी शताब्दी वर्ष को ३६६ दिन का मानते हैं जो ४०० से भाग देने पर पूरा-पूरा कट जाय। इस प्रकार १७००, १८००, १९०० तो साधारण शताब्दि वर्ष हुए और २००० वह शताब्दी वर्ष हुआ जिसमें ३६६ दिन होंगे। इस प्रकार से ३००० वर्षों में एक दिन से कम की भूल रह जाती है जो कि नगण्य है।

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर करीब २९½ दिन में लगा लेता है और इसी के आधार पर महीने का काल निश्चित किया गया है। इस दृष्टिकोण से एक बड़ी बाधा यह पड़ती है कि वर्ष का काल चन्द्रमा के वास्तविक चक्करों या दिन के वास्तविक समय को पूरा-पूरा सम्मिलित नहीं कर पाता। अतएव पृथ्वी के ग्रहपथ को १२ महीनों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक में दिनों की संख्या भी घटा-बढ़ा कर निश्चित कर दी जाती है। इसीलिए कुछ महीने ३० दिन के, कुछ ३१ दिन के और फरवरी २८ या २९ दिन का ही माना जाता है।

अपने अक्ष पर पृथ्वी एक चक्कर २३ घंटा ५६ मिनट और ४.०९ सेकण्ड में पूरा कर लेती है। इस काल को दिन कहते हैं और पृथ्वी के अक्ष के झुके होने के कारण दिन का कुछ भाग प्रकाशमय और कुछ भाग अन्धेरा या रात होता है।

Calina (कालीना) भूमध्य सागरीय जलवायु के प्रदेशों में जुलाई व अगस्त के

महीनों में प्रकाश बड़ा ही अस्पष्ट रहता है । इस अस्पष्ट व धुँधले प्रकाश को कालीना कहते हैं । इसके कारण दूर की वस्तुओं को कठिनाई से देखा जा सकता है और बहुत दूर पर स्थित वस्तुएँ तो किसी प्रकार भी दृष्टिगोचर नहीं होतीं । इस धुँधले प्रकाश के कारण आसमान का नीला रंग धीमा स्लेटी रंग में परिवर्त्तित हो जाता है ।

इसका कारण सहारा प्रदेश से बहाकर लाये हुए धूल-कण होते हैं । तेज हवाएँ इन धूल-कणों को इतनी मात्रा में उड़ा लाती हैं कि भूमध्यसागरीय प्रदेशों के वायुमण्डल में ये कण बिलकुल छा जाते हैं और प्रकाश को धीमा कर देते हैं । इन प्रदेशों में जुलाई और अगस्त के महीनों में प्रति दिन ही यही दशा रहती है ।

Calms of Cancer & Capricorn (**कर्क और मकर रेखीय शान्तमण्डल**) भूमध्य रेखा पर जो हवा गर्म होकर ऊपर उठती है वह ऊपर पहुँच कर फैल जाती है और ठंडी हो जाती है यहाँ तक कि १३-१४ मील की ऊँचाई पर पहुँच कर यह ऊपर की हवा के साथ मिल जाती है । तब यह उत्तर व दक्षिण की ओर चलने लगती है और उत्तरी गोलार्द्ध में ३०° अक्षांश पर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में २५° अक्षांश पर इस भूमध्यरेखीय वायु का कुछ भाग पृथ्वी की सतह पर पहुँच जाता है और यहाँ पर शान्तमण्डल-सा स्थित हो जाता है । उत्तरी गोलार्द्ध में इसे कर्क रेखीय शान्तमण्डल कहते हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखीय शान्तमण्डल कहलाता है ।

इन उच्च भार कटिबंधों में हवा के उतरते रहने के कारण वायुभार में अंतर नहीं हो पाता। फलतः मौसम शुष्क व साफ रहता है और हवाएँ हल्की मृदु व परिवर्त्तनशील होती है । इन्हें हम भूमध्य रेखा पर स्थित शान्तमण्डल (Doldrums) के समान नहीं कह सकते क्योंकि कर्क व मकर रेखीय शान्तमण्डल स्थायी नहीं होता । दूसरे यह बिल्कुल शान्त भी नहीं होता क्योंकि इसमें मन्द पवन चला करती है । कभी-कभी इसमें बड़े-बड़े तूफान भी आ जाते हैं । इसका कारण यह है कि वायु इकट्ठा नहीं उतरती और न एक निश्चित प्रकार से उतरती ही है । वायु की ये लम्ब रूप धाराएँ बराबर बदलती रहती हैं । कहीं यह तीव्र हो जाती है तो कहीं धीमी । (देखिये Horse Latitudes)

Calving (**हिमशैल पृथक्कीकरण**) जब हिमनदी बहती-बहती समुद्र के किनारे तक पहुँच जाती है तो हिम का बहुत बड़ा टुकड़ा मुख्य धारा से कट कर अलग हो जाता है और हिमशैल के रूप में समुद्र के जल में प्रवाहित होने लगता है । दूसरे समुद्रजल पर बहता हुआ हिमशैल कभी-कभी फट जाता है और उसका एक भाग मुख्य शैल से अलग होकर बहने लगता है । इन दोनों क्रियाओं को हिमशैल पृथक्कीकरण कहते हैं ।

Campos (**काम्पोज़**) अमेजन नदी की घाटी में स्थित भूमध्यरेखीय सदाबहार वनों के दक्षिण में स्थित उष्णकटिबंधीय घास के मैदानों को ब्राजील में काम्पोज कहते हैं । इनमें पानी तो कम बरसता है परन्तु साल के कुछ महीने अधिकतर और कुछ विशेष सूखे होते हैं । यहाँ व्यापारिक हवाएँ बडी तेजी से चला करती हैं । गर्मियों में वर्षा होती है और जाड़े के दिन शुष्क होते हैं । अतः काम्पोज में घास खूब उगती है और बीच-बीच में कहीं-कहीं छतरीनुमा छायादार वृक्ष पाये जाते हैं । घास खूब ऊँची, मोटी व घनी होती है । कभी-कभी और कहीं-कहीं तो घास इतनी ऊँची व घनी होती है कि उसमें से होकर जाना असम्भव होता है । इसमें भी लोग रहते हैं उनका मुख्य धंधा पशुओं को चराना है और उनका रहन-सहन खानाबदोश व बनजारों जैसा होता है । ब्राजील के पूर्वी प्रदेश में इनको साफ करके खेती की जाती है और अब इसके अधिकतर भाग को खेती के योग्य बना लिया गया है ।

Camel Track (ऊँटपथ) मरूस्थलों व शुष्क प्रदेशों में गमनागमन व यातायात का मुख्य साधन ऊँट ही होता है। रेलों व जहाजों के आविष्कार से पहिले यूरेशिया में स्थित विभिन्न सभ्यताओं के बीच सम्पर्क ऊँटों के सहारे ही सम्भव था। अतएव ऊँटों के काफिले के चलने के लिए कुछ मार्ग बन गये हैं जिन्हें ऊँटपथ कहते हैं। ऊँटपथ बनाने में मुख्य बात जो ध्यान में रक्खी जाती है वह यह है कि रास्ते में कुछ मरुद्यान अवश्य हों जहाँ उतर कर यात्री विश्राम कर सकें और दूसरे यह कि भीषण रेतीले हवाओं के मार्ग से दूर हों। फिर भी यह पथ कुछ स्थायी नहीं होता। रेतीले टीलों के आजाने से यह बहुधा ऐसा ढक जाता है कि पहचानना भी कठिन होता है।

Canal (नहर) पानी ले जाने की कृत्रिम नाली को नहर कहते हैं। नदियों को काट कर नहर निकालने के प्रायः दो अभिप्राय होते हैं। (१) जहाँ समय का विशेष ध्यान नहीं होता वहाँ भारी स्थूलकाय वस्तुओं की यातायात के लिए नावें सस्ती पड़ती हैं। अतः गमनागमन व यातायात की सुविधा बढ़ाने के लिए बहुधा दो नदी धाराओं को नहर द्वारा मिला दिया जाता है या नहर खोद कर जल को प्रदेश के आन्तरिक भाग तक पहुँचा दिया जाता है ताकि वे जलमार्ग की सुविधा उपस्थित कर सकें। (२) जहाँ वर्षा की मात्रा इतनी कम होती है कि उसके सहारे खेती का धंधा सम्भव नहीं वहाँ बड़ी-बड़ी जलपूरित नदियों से नहरें निकाल कर सिंचाई का प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार नहरें दो प्रकार की होती हैं—**नाव की** नहरें **और** सिंचाई की नहरें।

नाव्य नहरें प्रायः उन औद्योगिक प्रदेशों में हैं जहाँ वे विभिन्न नदियों को मिलाकर आन्तरिक जल मार्ग का एक जाल सा बिछा देती हैं और उनके द्वारा कच्चा माल और कोयले को सस्ते मूल्य पर लाने ले जाने की सुविधा रहती है। यूरोप में जर्मनी, फ्रांस, हालैंड और बेलजियम में सभी नदियाँ दक्षिण से उत्तर की ओर एक दूसरे के समानान्तर बहती हैं। इन विभिन्न नदियों को नहर द्वारा मोड़ दिया जाता है। राइन और डैन्यूब, वैसन और एल्ब सब एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। अमरीका में नदियों को झीलों के साथ नहरों द्वारा मिला दिया गया है। यही हाल रूस की नदियों का भी है।

सिंचाई की नहरें प्रधानतः खेतिहर प्रदेशों में पायी जाती हैं और उनको नदियों या तालाबों से निकाला जाता है। वर्त्तमान युग में नहरें सिंचाई का सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं। नदियों से निकलनेवाली नहरें दो प्रकार की होती हैं—(१) बाढ़ की नहरें जिनमें बाद के दिनों में तो पानी भर जाता है पर अन्य समय वे सूखी पड़ी रहती हैं। (२) सदा भरी रहने वाली नहरें उन नदियों से निकाली जाती हैं जिनमें साल भर बराबर पानी भरा रहता है। उनमें बाँध बनाकर पानी रोक लिया जाता है। इस प्रकार रोके गये जल से नहरें निकाल दी जाती हैं। पहाडी प्रदेशों में घाटी के मुँह पर बाँध बना कर वर्षा के पानी को इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर उसी कृत्रिम जलाशय से नहरें निकाल दी जाती हैं।

वास्तव में हर प्रकार की नहरें वहीं सुविधापूर्वक निकाली जा सकती हैं जहाँ उनकी आवश्यकता है, जहाँ भूमि समतल हो और जहाँ नदियाँ सदा पानी से लबालब भरी रहती हों।

Canalised river (नहर पूर्ण नदी) (१) जिस नदी से नहरें निकाली जाती हैं या जिस के दोनों किनारों पर सहायक व उप-सहायक नदियों का जाल बिछा रहता है उसे नहरपूर्ण नदी कहते हैं।

(२) इस पारिभाषिक शब्द का एक दूसरा अर्थ भी है। वह यह कि इसके द्वारा ऐसी नदी का बोध होता है जो पहले से बनी घाटी में प्रवाहित होती है।

Canyon (संकीर्ण नदी कन्दरा) संकीर्ण नदी कन्दरा बड़ी विशाल पर अपेक्षाकृत सँकरी होती है। इस नदी के दोनों ओर की चट्टानी दीवाल बड़ी ढालू व सीधी होती है और नदी के तल से बहुत ऊँची उठी होती है। शुष्क प्रदेशों में जब नदी मुलायम चट्टानों पर से होकर बहती है तो वह अपनी तलैटी को गहरा करती जाती है परन्तु ऋतु प्रहार के अभाव के कारण इसकी घाटी की दीवारों की काट-छाँट नहीं हो पाती। फलतः इसकी दीवारों का ढाल सीधा तीक्ष्ण बना रहता है। लेकिन बड़ी-बड़ी संकीर्ण नदी कन्दरा की दीवारें बिल्कुल लम्ब रूप नहीं रहतीं। इसका कारण यह है कि चट्टानों की कठोरता कहीं कम तो कहीं ज्यादा रहती है। इसलिए दीवारों का ढाल भी ऊबड़-खाबड़ रहता है।

यह नदी कन्दराएँ बड़ी गहरी होती हैं और ऊपर से देखने पर नदी की धारा केवल एक पतली सफेद रेखा के समान दीख पड़ती है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में कोलेरैडो नदी की कन्दरा संसार भर में प्रसिद्ध है। इसकी विशेषताएँ संकीर्ण नदी कन्दरा की द्योतक हैं। यह एक मील से अधिक गहरी है और यद्यपि इसकी चौड़ाई तली में तो बहुत कम है परन्तु ऊपर की तरफ इसकी चौड़ाई ७-८ मील तक है।

इस प्रकार की नदी की सहायक नदी भी गहरी कन्दरा बना लेती है और उसकी संकीर्ण घाटी को पार्श्व कन्दरा कहते हैं।

Cape (अन्तरीप) भूमि के उस टुकड़े को जो समुद्र के अन्दर फैला रहता है, अन्तरीप कहते हैं। अन्तरीप की दो विशेषताएँ होती हैं। प्रथम तो यह कि यह जल में जीभ या हाथ की तरह आगे को फैला रहता है। दूसरे यह कि इसका रूप आगे की ओर नुकीला रहता है।

Carbon Dioxide (कारबन डाइआक्साइड) कारबन डाइआक्साइड गैस का अंश वायुमण्डल में ·०३ प्रतिशत रहता है। इस गैस की एक इकाई में २ भाग आक्सीजन और एक भाग कारबन रहता है।

Carboniferous Period (कोयला युग) प्रारम्भिक युग का वह काल जब पृथ्वी पर दूर-दूर तक कोयले की परतें बनी थीं कोयला युग कहलाता है। वास्तव में आजकल पायी जाने वाली समस्त कोयला राशि उसी काल में बनी थी। इस युग में कई बार भूखंड उठ आया और कई बार नीचे धँस गया। इसके साथ-साथ और भी गतियाँ होती रहीं। जब भूखंड ऊपर उठा तो उस पर ताजे व खारी पानी के जलाशय बन गये और वैसी ही समुद्री दशाएँ उपस्थित हो गई जैसी आजकल हैं। जब भूखंड अंदर धँसने लगा तो दो प्रकार के परिवर्तन होने लगे। नदी के मुहाने व खाड़ी का पानी खारी हो गया और जहाँ शुष्क भूमि थी वहाँ दलदल बन गये। फलतः शुष्क भूमि के बड़े-बड़े क्षेत्र समुद्रतल तक धँस गये और इन पर पानी भर आया। वास्तव में इस प्रकार से जलमग्न क्षेत्रों में ही वर्त्तमान कोयले की चट्टानों का सूत्रपात हुआ।

इस जलमग्न प्रदेश में किनारे पर उगी हुई वनस्पति भी साथ-साथ डूब गई और बार-बार भूमि के निकलने, डूबने व दलदल बनने से इस प्रकार की वनस्पति की तह पर मिट्टी की तह जमती गई। भीतर ही भीतर यह वनस्पति व प्राणिज वनक्षेप सड़ता गया और अन्दर की गर्मी व ऊपर की परतों के दबाव से इसका रूप बिल्कुल ही बदल गया। जैसे-जैसे समय बीतता गया यह वनस्पति व प्राणिज निक्षेप दबता गया और साथ-साथ कठोर भी होता गया। जिस प्रकार कोल्हू में दबने पर तिलहन से तेल निकल कर अलग हो जाता है और एक मोटी खली की रोटी सी बची रह जाती है उसी प्रकार ऊपर की परतों के दबाव से इस निक्षेप का तैल पदार्थ अलग होकर खनिज तेल बन गया और बची हुई ठोस वस्तु से कोयला बन गया।

इस प्रकार कोयले की परतों के बीच में परतदार चट्टानें—चूने व बालू के पत्थर की तहें पायी जाती हैं।

Cardinal Points (**दिशा बिन्दु**) ध्रुव घड़ी पर अंकित चार मुख्य दिशाओं—उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम—के प्रतीक बिन्दुओं को दिशा बिन्दु कहते हैं।

Carse (**कार्स**) नदी के मुहाने के समीप में स्थित नदी के किनारे की निचली मृतिकामय भूमि को स्काटलैंड में कार्स कहते हैं।

Cart Track (**बैलगाड़ी पथ**) गावों में या उन अन्य स्थानों में जहाँ मोटर की सड़कें नहीं हैं प्रायः कच्ची सड़कों द्वारा यातायात होता है। इन कच्ची सड़कों पर बैलगाड़ियाँ चलती हैं और उनके पहिये के बार-बार घूमने से एक निश्चित पथ-सा बन जाता है। इसे बैल-गाड़ी पथ कहते हैं।

Cartography (**मानचित्रांकन**) मानचित्र बनाने व रेखाचित्र खींचने की कला को मानचित्रांकन कहते हैं। मानचित्रांकन का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है और इसके अन्तर्गत ज्ञान-विज्ञान की वे सभी शाखाएँ सम्मिलित व सम्बन्धित हैं जिनके अन्दर तथ्यों को चित्ररूप प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। इतिहास, गणित, कला, भूगोल भूगर्भतत्व आदि सभी में मानचित्रांकन की जरूरत पड़ती है।

मानचित्रांकन का ध्येय पृथ्वी के विभिन्न रूपों के विषय में तथ्यों को इकट्ठा करके उनका विश्लेषण करने के बाद उन्हें चित्र रूप इस मानदण्ड पर प्रस्तुत करना है कि सब विशेषताएँ पूर्णतया स्पष्ट हो जायँ। इस दृष्टिकोण से मानचित्रकार को निम्नलिखित तथ्यों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है :—(१) मानदण्ड, (२) अंकन विधि, (३) लाक्षणिक संकेत, (४) लिपि और (५) नाम, किनारा आदि।

मानचित्रांकन कला और विज्ञान दोनों ही हैं। मानचित्रकार में कलाकार व वैज्ञानिक का समन्वय होना चाहिये। उसें अपने विषय पृथ्वी के बारे में पूर्ण ज्ञान होना चाहिये और साथ-साथ उसमें यह भी योग्यता होनी जरूरी है कि किस बात को चित्रित करने के लिए चुना जाय और किस बात को छोड़ दिया जाय। मानचित्र पर रेखाओं, चिन्हों और रंगों की सहायता ली जाती है, इसलिए उपयुक्त चयन के लिए कलात्मक दृष्टि होना जरूरी है।

Cartogram (**विकृत चित्र**) विकृत चित्र पारिभाषिक शब्द को कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है। वैसे तो सभी मानचित्र वास्तविक वस्तु से कुछ भिन्न अवश्य होते हैं परन्तु जिस मानचित्र को इरादे से ही विकृत किया जाता है ताकि उसके द्वारा कुछ आँकड़ों या तथ्यों को स्पष्ट किया जा सके, उसे विकृत चित्र कहते हैं। विकृत चित्र रेखाचित्र से भिन्न होता है। रेखाचित्र में तो एक ही वस्तु या तथ्य को प्रधानता दी जाती है परन्तु विकृत चित्र में मानचित्र की अन्य बातों को इसलिए विकृत किया जाता है कि मुख्य तथ्य अधिक स्पष्ट व महत्वपूर्ण दीख पड़े। एक प्रकार से विकृत चित्रों की तुलना हम हास्यचित्र से कर सकते हैं। इन विकृत चित्रों का प्रयोग राजनीतिक व मानव भूगोल में विशेष रूप से किया जाता है। यद्यपि इनके द्वारा तथ्यों को समझने-समझाने में बड़ी सहायता मिलती है परन्तु इनका प्रचलन व प्रयोग अभी भी सीमित ही है। वैसे तो इनके कई प्रकार होते हैं परन्तु प्रमुख तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) आयताकार या मूल्य क्षेत्रफल सूचक, (२) गमनागमन निर्देशक और (३) यात्रागति निर्देशक।

Cascade (**प्रपाती**) छोटे प्रपात बहुधा नदी की तलैटी में भिन्न प्रकार की चट्टान होने के कारण बन जाते हैं। यदि नदी की तलैटी की बनावट इस प्रकार की हुई

कि उसमें लम्ब रूप से अथवा टेढ़े रूप से कठोर व मुलायम चट्टानों की परत पारी-पारी से पायी जाती है तो नदी के बहाव के कारण मुलायम परत तो कट जाती है परन्तु कठोर चट्टान वैसे ही रह जाती है। फलतः नदी की तलैटी में एक सीढ़ी-सी बन जाती है जिस पर पानी उछलता हुआ चलता है। इस प्रकार की प्राकृतिक जल-व्यवस्था को प्रपाती कहते हैं।

Caste (**जाति**) एक विशिष्ट सामाजिक समुदाय को जाति कहते हैं। प्रायः जन्म से ही शिशु एक विशेष समुदाय का सदस्य हो जाता है और उसे न केवल उस जाति के रीति-रिवाजों का पालन ही करना पड़ता है बल्कि उसका सदस्य वह जीवनपर्यन्त बना रहता है। हिन्दुओं में जाति व्यवस्था विशेष विकसित है। आदि काल से ही कार्य व उद्यम के अनुसार हिन्दू समाज को चार वर्णों में बाँट दिया गया था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण का काम पढ़ना-पढ़ाना, क्षत्रिय का काम लड़ना-भिड़ना और रक्षा करना, वैश्य का काम व्यापार करना और शूद्र का काम इन तीनों वर्णों की सेवा करना होता है। परन्तु आर्थिक समस्याओं के कारण अब यह जाति भेद कार्य पर आधारित नहीं रह पाया है। सभी वर्ण के लोग अपनी सुविधा के अनुसार जीविकोपार्जन के लिए भिन्न-भिन्न काम करते हैं। अतएव अब जाति-पाँति की कठोरता वैसी नहीं रह गई है जैसे पहिले थी। जन्मना जातियों के स्थान पर आर्थिक वर्गों ने स्थान ले लिया है।

Cash Crop (**व्यावसायिक फसल**) कुछ फसलें ऐसी होती हैं कि उनसे न तो हमें खाद्यान्य मिलता है और न पेय पदार्थ ही। परन्तु किसान उन्हें इसलिये उगाता है कि उनके द्वारा प्राप्त कच्चे माल की विभिन्न उद्योग-धन्धों में बड़ी माँग रहती है। कपास, पटसन, तिलहन आदि इसी प्रकार की फसलें हैं। बहुत से लोग रबड़ को भी इसी श्रेणी में सम्मिलित कर लेते हैं। अतएव उन सभी फसलों को जो खेत से दूर मंडियों में बिक्री के लिए उगायी जाती हैं और जिनका उपयोग न तो जानवरों के चारे के लिए हो सकता है और न किसान के घरवाले ही खा सकते हैं, उन्हें व्यावसायिक फसलें कहते हैं।

Cascade Glacier (**प्रपातपूर्ण हिमनदी**) पर्वतीय प्रदेशों की घाटी में प्रवाहित होने वाली हिम नदी कई प्रकार की होती है। जब घाटी में बहती हुई हिम नदी सी चट्टान के ऊपर या किसी शिलाखंड पर आकर इस प्रकार रुक जाती है कि उसकी जमी हुई बर्फ एक प्रपात के रूप में स्खलित हो जाता है उसे प्रपातपूर्ण हिमनदी कहते हैं।

इस प्रकार की हिम नदियाँ उन प्रदेशों में अधिक पायी जाती हैं जहाँ पर ऋतु प्रहार के कारण कुछ घाटियाँ कम गहरी और कुछ अधिक गहरी होती हैं। फलतः पर्वत के बीच से कटी हुई घाटी के दायें और बायें पार्श्व पर स्थित शिलाखंडों पर प्रवाहित हिम नदी जब घाटी के समीप पहुँचती है तो उसका हिम प्रपात के रूप में गिरने लगता है। बहुधा इन प्रपातपूर्ण हिमनदियों के फलस्वरूप लटकती हुई घाटियों का निर्माण हो जाता है।

Catch Crop (**मध्यस्थ फसल**) जिन प्रदेशों में कृषि क्षेत्र से साल में दो फसल उगाई जाती है या जहाँ साल के ९ या १० महीने तक एक ही फसल खड़ी रहती है वहाँ बीच के कुछ महीनों में या साल के १२ महीनों में भूमि को बेकार नहीं रहने देते बल्कि उस काल में कोई ऐसी फसल बो देते हैं जो जल्दी ही तैयार हो जाय। इस प्रकार की फसल को भी दो मुख्य फसलों के बीच में या मुख्य फसल के बाद बोई जाती है उसे मध्यस्थ फसल कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रायः वे हरी सब्जी आदि सम्मिलित हैं जिन्हें शीघ्र ही उगा लिया जाता है। कभी-कभी आलू और अरवी को बीच के प्रदेश में बो देते हैं और इधर-उधर की क्यारी पर मुख्य फसल खड़ी रहती है। जहाँ मुख्य फसल का रूप पेड़ या ऊँची झाड़ियों का सा

होता है वहाँ नीचे की भूमि पर छोटे-छोटे पौधों वाली फसल को साथ-साथ उगाते हैं। यह मध्यस्थ फसल भी कही जाती है। यह मध्यस्थ फसल उगाने की प्रणाली वहाँ प्रचलित है जहाँ आबादी अधिक और कृषि भूमि कम होती है और जहाँ गहरी खेती की जाती है।

Catalan maps (**काटालन मानचित्र**) १४वीं शताब्दी के अन्त में माजोरिका नामक स्थान पर काटालन यहूदियों ने दुनिया का एक मानचित्र बनाया जो १३७५ में बन कर तैयार हुआ। इसके अन्तर्गत मार्कोपोलो के अनुसार पूर्वी एशिया, दक्षिणी भारत और हिंद महासागर को चित्रित किया गया है। शुरू में यह मानचित्रावली फ्रांस के सम्राट पाँचवें चार्ल्स को भेंट करने के लिए तैयार की गई थी। यह अभी भी पेरिस के अजायबघर में संग्रहीत है।

Catchment Basin (**प्रवाह क्षेत्र**) वर्षा का जल पृथ्वी पर गिरने के बाद कुछ तो पृथ्वी के अन्दर सोख जाता है और कुछ भाप बन कर हवा में उड़ जाता है। इन दोनों प्रकार से लुप्त जल के अलावा सारा जल नदी की धारा के रूप में बन कर बहता हुआ समुद्र या झील में जा गिरता है। जिस प्रदेश की वर्षा का जल इस प्रकार किसी नदी में बहकर समुद्र में आ गिरता है उसे उस नदी का प्रवाहक्षेत्र कहते हैं। जलविभाजक या ऐसी उच्च भूमि जिनके दूसरी ओर का ढाल विपरीत या जहाँ का पानी दूसरी ओर बह जाता है, उसे प्रवाह क्षेत्र की हद कहते हैं। इस प्रकार जलविभाजक और समुद्र या झील के बीच में स्थित उस समस्त प्रदेश को प्रवाह क्षेत्र कहते हैं जिसका ढाल एक विशेष दिशा में प्रवाहित हो जाता है।

Cauliflower Cloud (**ज्वालामुखी उद्गार मेघ**) जब कभी ज्वालामुखी से विस्फोटक उद्गार होता है, तो उसमें से प्रायः तीन प्रकार की वस्तुएँ निकलती हैं। कुछ तो ठोस होती हैं, कुछ तरल और कुछ गैस के समान होती हैं। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जब ज्वालामुखी उद्गार विस्फोट के साथ होता है तो उद्गार के साथ-साथ ही घने धुँये का काला बादल उमड़ कर उसके मुख के ऊपर छा जाता है। इसका आकार गोभी के फूल के समान होता है और इसे ज्वालामुखी उद्गार मेघ कहते हैं। जैसे ही यह मेघ ऊपर को उठता है जमे हुए लावा के छोटे-छोटे टुकड़ों की वर्षा होने लगती है।

इस मेघ में प्रायः भाप ही भाप रहती है। साथ में जलवाष्प भी होता है जो बाहर निकलने पर द्रवीभूत होने लगती है और इसीलिए अक्सर इस मेघ के उठने के बाद भीषण वर्षा भी होती है। भाप और जलवाष्प के अतिरिक्त इस मेघ में अमोनियम क्लोराइड का अंश भी रहता है। हाइड्रोजन व उससे मिलकर बनी और दाहक गैसों के कारण इसमें वास्तविक लपटें निकलती दिखाई देती हैं। ये सब गैसें वायुमण्डल में मिलकर फैल जाती हैं और इसलिए ज्वालामुखी पर इनका कोई असर नहीं हो पाता परन्तु समीप में स्थित चट्टानों पर इनका प्रभाव जरूर पड़ता है।

Cave (**गुफा**) पृथ्वी के भूपटल के कटने-छटने पर बने हुए खोखले स्थान को गुफा कहते हैं। गुफाएँ कई प्रकार की होती हैं और कई प्रकार से बनती हैं—(१) समुद्री गुफा, (२) पर्वतीय गुफा और (३) भूगर्भवर्त्ती गुफा।

समुद्री गुफा लहरों के प्रहार के कारण बन जाती है। जब समुद्र तट की चट्टानें इतनी कमजोर व मुलायम होती हैं कि लहरों के बार-बार टकराने से वे टूट-फूट जाती हैं तो उनके भीतर एक खोखला स्थान बन जाता है। इस तरह की गुफाएँ तट के शुष्क व जलमग्न प्रदेश दोनों में ही रहती हैं। कभी-कभी लहरों के आने और वापस लौटने पर हवा के दबने व फैलने

से चट्टानों की दरारें बढ़ती जाती हैं और अधिक बढ़ जाने पर गुफाएँ बन जाती हैं। हर लहर के उठने पर हवा दबती है और जब लहर वापस होती है तो हवा फैल जाती है। इस प्रकार क्रिया के बार-बार होते रहने से गुफा की दीवारें व छत गिर जाती हैं और एक बड़ी कन्दरा बन जाती है। कभी-कभी उन समुद्री तटों पर जहाँ चट्टानें जल पर ऊपर से लटकी रहती हैं, समुद्री जल द्वारा छोड़े गये कंकड़ों व पत्थरों से भी गुफा बन जाती है। प्रत्येक लहर जब लौटती है तो अपने दोनों पार्श्वों पर कुछ निक्षेप कर देती है। इस प्रकार दोनों ओर दीवालें बन जाती हैं और बीच का भाग लहरों के आने-जाने के कारण खाली रहता है।

पर्वतीय प्रदेशों में पहाड़ों के पार्श्वों में ऋतुप्रहार व अनावृत्तीकरण के द्वारा खोखले बन जाते हैं। इसके अलावा पर्वतों के आधार पर ऊपर से लुढ़क कर गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थर इस प्रकार इकट्ठा हो जाते हैं कि उनके बीच का भाग खाली रहता है और बहुधा इस प्रकार से गुफाएँ बन जाती हैं।

चूने के पत्थर से बने प्रदेश में जब कारबन डाइआक्साइड घुला जल प्रवाहित होता है तो वह भूगर्भ में नालियाँ बना लेता है। यह जल प्रवाह की भूगर्भवर्त्ती नालियाँ कालान्तर में बीच की चट्टानों के घूमने से गुफा का रूप धारण कर लेती हैं जिनमें नदी की धारा बहती रहती है।

Celestial Equator (**सौर जगत मध्यरेखा**) सौर्य मण्डल और पृथ्वी के अक्ष के साथ समकोण बनाती हुई यदि हम एक समतल रेखा बनायें जो पृथ्वी के केन्द्र से होकर गुजरे तो इनके कटाव से जो वृत्त बनेगा उसे सौर जगत मध्यरेखा कहते हैं। यह एक काल्पनिक वृत्त है और सौर जगत में इसका वही स्थान है जो भूमध्य रेखा का पृथ्वी पर।

Celestial Sphere (**सौर मण्डल**) सौर जगत में किसी विन्दु या **ग्रह** को केन्द्र मान कर एक अनिश्चित अर्द्धव्यास से यदि एक वृत्त खींचा जाय तो वह सौर मण्डल कहलायेगा। उदाहरण के लिए हम पृथ्वी को केन्द्र मान कर ऐसा वृत्त खींच सकते हैं कि सौर जगत के सब ग्रह पृथ्वी से अंकित हो जायँ।

Cenozoic Era (**अर्वाचीन युग**) (देखिये Cainozoic Era)

Centigrade Scale (**सेन्टिग्रेट मानदण्ड**) अँग्रेजी भाषा-भाषी संसार को छोड़कर पृथ्वी के अधिकतर भाग में तापक्रम नापने के लिए जो मानदण्ड प्रयोग किया जाता है उसे सेन्टीग्रेड मानदण्ड कहते हैं। यह मानदण्ड बड़ा ही सरल व सुगम होता है। इसमें विन्दु निश्चित मान लिये गये हैं—बर्फ के पिघलाव का तापांश ०° और जल के उबाल का तापांश १००°। इन दोनों के मध्य में १०० अंश सेन्टिग्रेड के होते हैं।

इस मानदण्ड पर लिये गये तापांश को फार्नहीट मानदण्ड में परिणत करने के लिए १·८ से गुणा करके ३२° जोड़ा जाता है। अर्थात् फार्नहीट = (१·८ × सेन्टीग्रेड) + ३२

Central Eruption (**भीषण विस्फोट**) ज्वालामुखी उद्गार कई प्रकार के होते हैं। प्रारंभ में भूपटल की पपड़ी जब पतली थी तो अंदर का पिघला हुआ लावा कहीं से भी फूट निकलता और इधर-उधर फैल जाता। बाद में पृथ्वी के ठंडे होने से जैसे-जैसे पृथ्वी की तह मोटी होती गई लावा केवल उन स्थलों से बाहर निकल पाता जहाँ दरार हो। और जब अन्दर की यह पिघली हुई सामग्री धड़ाके से बाहर निकलती है तो उसे केन्द्रीय या भीषण विस्फोट कहते हैं। भीषण विस्फोट से जमे हुए लावा के छोटे-छोटे टुकड़े जिन्हें ज्वालामुखी बम कहते हैं बड़े जोरों से फूट निकलते हैं। साथ-साथ धुँये के बादल छा जाते हैं और सब ओर लपटें निकलती दिखलाई देती हैं। पिघली हुई चट्टान सबसे बाद में बह निकलती है।

भीषण विस्फोट में सबसे पहले धुँयें के बादल उसके बाद ठोस लावा के टुकड़े कंकड़-पत्थर और सबसे बाद में पिघली हुई चट्टान या लावा की धारा निकलती है।

Centrosphere (**परिमाणमण्डल**) (देखिये Banysphere)

Cepheid Theory (**सिफीइड सिद्धान्त**) पृथ्वी की उत्पत्ति और सौरजगत के आविर्भाव के विषय में सीफीयड सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्त्तक प्रोफेसर ए० सी० बैनर्जी हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार सीफीइड नामक तारा समूह में एक तारा है तो नियमित रूप से कभी बड़ा तेज और कभी बहुत धीमा हो जाता है। उसका यह प्रकाश क्रम से घटता-बढ़ता रहता है। इसमें सिकुड़न और फैलाव की क्रियाएँ बराबर हुआ करती थीं। यदि यह गति बहुत सूक्ष्म नहीं हो तो एक समय इसमें इतने विप्लव हुए कि भारी उलट-पलट हुई। फलतः यह आकार में उत्तरोत्तर बढ़ता गया और आन्तरिक प्रेरणा से इसका पदार्थ बाहर की ओर फेंका जाने लगा। इसी बीच में थोड़ी दूर पर एक दूसरा तारा आया और उससे थोड़ी दूर पर यह वस्तु ठंडी होकर इकट्ठा हो गई। विप्लव रुकने के बाद प्रथम तारा एक ओर चला गया और दूसरा दूसरी ओर। इस बीच के बने फीते का २/५ भाग सूर्य द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर लिया गया क्योंकि सूर्य की शक्ति अन्य सबसे २० गुना अधिक है।

इस सिद्धान्त से पृथ्वी की उत्पत्ति व सौर जगत के आविर्भाव का ज्ञान तो नहीं हो पाता पर हाँ नक्षत्र व्यवस्था जरूर स्पष्ट हो जाती है। निरीक्षण द्वारा पता भी चला है कि सौर-मण्डल के अतिरिक्त दो अन्य सौरमण्डल भी हैं। इसी प्रमाण के कारण इस सिद्धान्त का महत्व है।

Cereal Crops (**खाद्यान्न फसलें**) वे फसलें जिनसे भोजन की विविध सामग्री व अनाज प्राप्त होता है खाद्यान्न फसलें कही जाती हैं। इसके अन्तर्गत गेहूँ, जौ, जई, ज्वार-बाजरा चावल, मक्का, दालें आदि विभिन्न फसलें सम्मिलित हैं। खाद्यान्न और व्यावसायिक फसलों के बीच सदा से एक स्पर्धा रही है और नयी दुनिया में तथा पुरानी दुनिया के औद्योगिक क्षेत्रों में खाद्यान्न फसलों की अपेक्षा व्यावसायिक फसलों को अधिक प्रधानता दी गई। इसके फलस्वरूप और साथ-साथ दुनिया की आबादी बढ़ जाने [illegible]। अब विभिन्न राष्ट्र खाद्यान्न फसलों की ओर ध्यान दे रहे हैं और उनकी उपज को बढ़ाने के लिए नये-नये उपायों पर विचार कर रहे हैं।

Chain (**पर्वतमाला**) पर्वतों के विस्तार व उनकी श्रेणियों की विशेष व्यवस्था के अनुसार उनके कई नाम पड़ गये हैं। जब किसी पर्वत प्रदेश में कई श्रेणियाँ एक दूसरे के समानांतर स्थित होती हैं और उनके बीच में पठार होते हैं तो इस प्रकार की व्यवस्था को पर्वत माला कहते हैं। हाँ, एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि पर्वत श्रेणियाँ एक दूसरे के समानान्तर होनी चाहिये।

Chain Survey (**श्रृंखला निरीक्षण**) निरीक्षण या पैमाइश के काम में जब श्रृंखला या टेप का प्रयोग करते हैं तो उसे श्रृंखला निरीक्षण कहते हैं। वैसे तो यह रीति बड़ी ही अगूढ मालूम पड़ती है परन्तु वास्तव में इसमें बड़ी कुशलता व दक्षता की आवश्यकता होती है। इसमें प्रयोग किये जाने वाले यन्त्र दो प्रकार के होते हैं—जंजीर या टेप। जंजीर दो प्रकार की होती है—१०० फीट लम्बी और ६६ फीट लम्बी। टेप तीन प्रकार के होते हैं—कपड़े के, पीतल के, तार के और इस्पात के। इस प्रकार के निरीक्षण के कई लाभ व सुविधाएँ हैं। इसीलिए इसे कुछ विशेष अवसरों पर ही प्रयोग में लाते हैं जैसे: (१) जब छोटे विस्तार के स्थानों का सूक्ष्म निरीक्षण करना होता है, (२) जब भूमि व प्रदेश समतल व खुला हुआ हो, (३) जब ठीक-ठीक पैमाइश करना हो और (४) जब विस्तृत प्रदेशों की पैमा-

इश जल्दी करना हो। श्रृंखला निरीक्षण का मुख्य आधार प्रदेश को त्रिभुजों में बाँट लेना है और फिर उनके पार्श्वों को नापकर आगे बढ़ना होता है।

Chalk (खड़िया) सफेद या हल्का स्लेटी रंग वाला मुलायम चूने का पत्थर खड़िया कहलाता है। इसमें समुद्री कीटाणुओं का शेषांश, और घोंघों के टुकड़े होते हैं। इसमें चूने का अंश अधिक होता है और अपने शुद्ध रूप में इसका ९९ प्रतिशत भाग कैलसियम कारबोनेट का होता है।

Channel (जल मार्ग) जल प्रवाह मार्ग तीन अर्थों में प्रयोग किया जाता है—(१) वह संकरा समुद्र जो दो भूखंडों को अलग करता है तथा दो विस्तृत महासागरों को मिलाता है। (२) नदी की तलैटी। (३) खाड़ी या पोताश्रय का गहरा नाव्य जल प्रदेश।

Chamberlain and Moulton Theory (चेम्बरलेन मोल्टन सिद्धान्त) सौर मण्डल के आविर्भाव के विषय में चेम्बरलेन और मोल्टन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त यह मानता है कि सूर्य किसी कारणवश अपने अन्दर की वस्तुओं को उद्गार के रूप में बाहर फेंकता था। एक तारा इसके समीप पहुँचा और उसके खिचाव के फलस्वरूप ज्वार-भाटे की परिस्थिति पैदा हो गई। अतः उद्गार से निकली हुई वस्तुओं की शाखा लम्बी हो गई और जब यह तारा पीछे की ओर हट गया तो यह शाखा कुछ मुड़ गई। इसका रूप चक्करदार केन्द्र की भाँति हो गया।

उद्गार के समय ही कुछ ठोस टुकड़े बन गये थे। साधारण उद्गार के समय जो ठोस टुकड़े निकले उनसे तो छोटे नक्षत्र बन गये और बड़े उद्गारों से निकले हुये ठोस टुकड़ों से बड़े-बड़े ग्रह बने। इस प्रकार इस सिद्धान्त द्वारा ग्रहों का एक ही समतल में घूमना और ग्रहों की उत्पत्ति की बात तो स्पष्ट हो जाती है। परन्तु सूर्य और अन्य ग्रहों की कोणात्मक गति क्या होगी यह प्रश्न हल नहीं हो पाता।

इसकी दो विशेषताएँ ये हैं—(१) इसके अनुसार दूसरे तारे के पास पहुँचने के पहिले ही उद्गार होते हुए मान लिये गये हैं। (२) उद्गार से निकले पदार्थों को पहिले से ठोस मान लिया गया है और इसके अनुसार ग्रह शुरू से ही ठोस थे परन्तु अन्य सिद्धान्तों के अनुसार उनका रूप पहिले गैसपूर्ण, फिर तरल और अन्त में जमने पर ठोस हुआ।

Chaparral (घना झाड़ीवन) भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेशों में पायी जाने वाली नीची पर घनी वनस्पति को घना झाड़ीवन कहते हैं। यहाँ पर झाड़ी या छोटे पौधों के गिरोह पाये जाते हैं। इस जलवायु में जाड़े की ऋतु नम व आर्द्र होती है परन्तु गर्मी का मौसम गर्म और शुष्क होता है। अतः यहाँ पर उगने वाली वनस्पति को जाड़े की ऋतु की वर्षा का ही उपभोग करना पड़ता है। वे इस प्रकार बने होते हैं कि उनके अन्दर की नमी भाप बनकर न उड़ सके। अतः यहाँ छोटी ऊँचाई के सदाबहार वृक्ष पाये जाते हैं। ये सदाबहार झाड़ियाँ भूमध्यसागर के चारों ओर के प्रदेश में मक्वीस और कैलीफोर्निया में चैपरैल कहे जाते हैं। गर्मी के तीव्र व प्रचण्ड प्रकाश से बचाने के लिये इनकी पत्तियाँ मोटी व चिकनी होती हैं जैसे कि उन पर मोम चढ़ा हुआ हो। कुछ की पत्तियों पर महीन रोयें से होते हैं जैसे कि जैतून में और कुछ में जड़ें लम्बी होती हैं—उत्तर की ओर बढ़ने पर अधिक तरी के कारण यह झाड़ी वन ओक के जंगल में परिणत हो जाता है परन्तु जैसे-जैसे हम दक्षिण की ओर बढ़ते हैं और रेगिस्तान के किनारों पर पहुँचते हैं, यह मोटी पत्ती वाली सदाबहार झाड़ियाँ काँटेदार झाड़-झंखार में परिणत हो जाती हैं।

Characteristic Sheet (निर्देश पत्र) मानचित्र को भलीभाँति समझने के लिए उसमें विभिन्न प्रकार के लाक्षणिक संकेत व लिपि का प्रयोग किया जाता है। इन लाक्षणिक

संकेतों का प्रयोग प्राकृतिक मानचित्र में विशेष रूप से होता है। परन्तु प्रत्येक प्रकार के मानचित्र के लिए भिन्न प्रकार के लाक्षणिक संकेत प्रयोग में लाये जाते हैं। एक इंच मानदण्ड पर खींचे गये मानचित्र पर ६ इंच वाले मानचित्र की अपेक्षा अधिक लाक्षणिक संकेतों का प्रयोग किया जाता है। एक ही प्रकार की प्राकृतिक विशेषता के लिए बहुधा अलग-अलग प्रकार के चिन्ह प्रयोग किये जाते हैं। अतः मानचित्र के साथ अथवा अलग से एक ऐसा लेख जरूरी होता है जिसमें भिन्न प्रकार के लाक्षणिक संकेतों की व्याख्या की गई हो। इसे निर्देश पत्र कहते हैं।

Chart (**नक्शा**) नक्शा शब्द प्रायः ४ अर्थों में प्रयोग किया जाता है।—(१) जलवायु व ऋतु सम्बन्धी आँकड़ों को प्रदर्शित करने वाला मानचित्र, (२) समुद्री मार्गों व अन्य विशेषताओं को चित्रित करनेवाला समुद्री नक्शा। इस प्रकार के नक्शे की नाविकों को बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है और इस में समुद्री प्रकृति व उसकी गहराई का हवाला रहता है। (३) हवाई जहाजों की सूचना व सहायता के लिए बनाये गये वायुयानमार्गों के नक्शे। (४) ग्राफ द्वारा अंकित आर्थिक, वैज्ञानिक व सामाजिक तथ्यों का नक्शा। वास्तव में तटीय प्रदेशों व समुद्री मार्गों के नक्शे बहुत प्राचीन काल से बनते चले आ रहे हैं। सबसे पहिला नक्शा ५वीं शताब्दी बी० सी० में बना था।

Chasms (**दरार**) जब समुद्रतट की चट्टानें इस प्रकार व्यवस्थित हों कि उनकी कमजोर परतें लहरों के मार्ग में लम्बरूप पड़ती हों तो बहुधा लहरों के प्रहार व आघात से सँकरी कटान खोद ली जाती है। इन्हें दरार कहते हैं। अक्सर मुलायम, घुलनेवाली या मोड़वाली चट्टानी परत पर लहरों की क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ये दरारें बन जाती हैं। जब ये दरारें काफी बड़ी हो जाती हैं तो स्थलखंड की ओर कटाव सम्भव नहीं होता क्योंकि लहरें तलैटी और इधर-उधर की दीवालों से रगड़ खाकर अपनी शक्ति नष्ट कर देती हैं। इसलिये ये दरार केवल ऋतुप्रहार के फलस्वरूप ही बढ़ जाते हैं और कभी-कभी तो इतने बड़े हो जाते हैं कि इनमें अधिक पानी भर जाने से खाड़ियाँ बन जाती हैं।

Chernozem (**चेर-नोजेम**) रूस में काली भूमि को चेरनोज़ेम कहते हैं। (देखिये Black Earth)

Chili (**चिली**) सहारा मरुस्थल की ओर से चलने वाली गर्म व शुष्क वायु को उत्तरी अफ्रीका के टयूनिस राज्य में चिली कहते हैं। यह वायु दक्षिण से उत्तर को चलती है और अपने साथ बहुत रेत व धूल उड़ा कर लाती है।

Chimney (**चट्टान छिद्र**) बहुत से पर्वतीय प्रदेशों में ऋतुप्रहार की शक्ति में अन्तर होने के कारण बहुधा चट्टानों में दरार पड़ जाती है और फिर यही दरारें छेद का रूप धारण कर लेती हैं। इन छेदों की सहायता से ऊपर की चट्टानों पर चढ़ा जा सकता है। इन्हें चट्टान छिद्र कहते हैं और इंगलैंड के झील प्रदेश में इनकी बहुतायत है। दूर से देखने पर यह धुँआरे की तरह प्रतीत होते हैं।

Chinook (**चिनूक**) उत्तरी अमरीका की राकी पर्वत श्रेणी पर से जब कोई आर्द्र वायु या चक्रवात गुजरता है तो पर्वतीय प्रदेश की सारी वायु को अपनी ओर खींच लेता है। फलतः राकी पर्वत के पश्चिमी ढालों पर वर्षा करके जब यह वायु पूर्वी ढालों पर उतरती है तो यह गर्म व शुष्क हो जाती है। इस तरह की गर्म व शुष्क वायु को कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में चिनूक कहते हैं। यह राकी पर्वत श्रेणी से पूर्व की ओर बहती है। इनकी विशेषताएँ आल्प्स प्रदेश से बहने वाली फायन वायु से बहुत कुछ मिलती है।

वास्तव में चिनूक वायु अमरीका महाद्वीप पर पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित चक्रवात

के दक्षिणी पार्श्व में बहती है। यह चक्रवात दक्षिण-पश्चिम की ओर से आता है और यद्यपि प्रदेश की भूप्रकृति के कारण इसकी दिशा में काफी परिवर्तन हो जाता है परन्तु चिनूक हवाएँ दक्षिण मे ही चलती प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि जाड़े व वसन्त ऋतु में चिनूक हवाएँ विशेष रूप से चलती रहती हैं। पर्वतीय ढालों पर से उतरने के कारण ये गर्म व शुष्क हो जाती हैं और इनके आगमन से १०-१५ मिनट के अन्दर ही तापक्रम ३०-४० डिग्री बढ़ जाता है। अतएव कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पूर्वी मैदानों की बर्फ पिघलने लगती है परन्तु पिघलने पर पानी नहीं फैल पाता। इसका कारण यह है कि बर्फ के पिघलते ही पानी भाप बनकर इन्हीं हवाओं में मिल जाता है। इसलिए इस हवा को Snow Eaters या हिम हारिणी भी कहते हैं।

वास्तव में कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पूर्वी प्रदेशों के लिए तो यह वायु ईश्वरीय वरदान सी है। इसके द्वारा हिम आवरण नष्ट हो जाता है और जाड़े में भी पशुचारण हो सकता है। कनाडा में इस वायु द्वारा उत्पन्न तापक्रम व हिम नष्टीकरण से गेहूँ की खेती को बड़ा प्रोत्साहन मिलता है।

अतः चिनूक वायु का विशेष आर्थिक महत्व है। दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र से कोलेरैडो की घाटी से लेकर उत्तर-पूर्व में कनाडा की मैकन्जी नदी घाटी तक का क्षेत्र जाड़ों में बर्फ के नीचे दबा रहता है और बहुत ठंड पड़ने से न तो पशुचारण ही हो सकता है न अन्य कोई धन्धा। परन्तु जब चिनूक हवाएँ वेग से प्रवाहित होती हैं तो जाड़ा कम हो जाता है, बर्फ पिघल जाती है और साल भर बराबर पशुचारण हो सकता है। जिस साल चिनूक हवाओं का वेग कम हो जाता है उस साल जाड़ा अधिक पड़ता है और पशुओं को भारी क्षति पहुँचती है।

Chronometer (देशान्तर सूचक यन्त्र) समय और देशान्तर के बीच एक निश्चित सम्बन्ध होता है। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती हुई २४ घंटों में ३६०° पार करती है। अतः स्पष्ट है कि यह एक घंटे में १५° पूरा करती है। इस प्रकार देशान्तर के प्रत्येक अंश पर स्थानीय समय में ४ मिनट का अन्तर होगा। देशान्तर का पता चलाने के लिए और ग्रीनविच के निर्धारित समय को बतलाने वाली घड़ी को देशान्तर सूचक यन्त्र या क्रोनोमीटर कहते हैं। इनका प्रयोग समुद्र पर देशान्तर स्थिर करने में किया जाता है। इस काम के लिए इस यन्त्र को इस प्रकार रक्खा जाता है कि वह हर समय समतल स्थिति में रहे।

Choropleth (रेखाकंन) आर्थिक व मानव भूगोल के आँकड़ों को अंकित करने के लिए बहुधा भिन्न प्रकार के रेखाओं को खींचा जाता है। रेखाओं को समानान्तर, लम्ब-रूप या टेढ़ी बनाकर अथवा उनके चारखाने खींच कर आर्थिक व मानव आँकड़ों को स्पष्ट करने की विधि को रेखांकन कहते हैं। इस विधि से जनसंख्या का घनत्व, उद्योग-धन्धों की स्थिति व वनों के प्रकार आदि को चित्रित किया जाता है। वस्तु विशेष की अधिकता या घनत्व को इंगित करने के लिए भिन्न प्रकार की रेखाओं को प्रयोग करते हैं। रेखाओं के बीच के अन्तर को कम-ज्यादा कर के भी घनत्व की भिन्नता दिखलाते हैं। अतः इसे हम रंग भरने वाली विधि के समान कह सकते हैं। परन्तु रेखांकन विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा सूक्ष्म तथ्यों व क्षेत्रों का निरूपण नहीं किया जा सकता। इसके अलावा भूप्रकृति व स्थल रूपों तथा बंजर भूमियों को इस विधि से दिखलाना संभव नहीं होता।

Chorochomatic (रंगीन विधि) विभिन्न तथ्य सम्बन्धी आँकड़ों को अंकित करने की दूसरी विधि वह है जिसमें विविध तथ्यों के वितरण को रंगों की सहायता से मानचित्र

पर अंकित किया जाता है । वन प्रदेशों को हरे रंग से, घास के मैदानों को पीले रंग से और मरुस्थलों को भूरे रंग से दिखलाया जा सकता है । इसी प्रकार एक ही वस्तु के विभिन्न रूपों को अलग-अलग रंग से दिखलाया जा सकता है । रंगों को हल्का गहरा करके उनके घनत्व की विभिन्नता को भी स्पष्ट किया जाता है । प्राकृतिक मानचित्रों में ऊँचाई की भिन्नता को स्पष्ट करने के लिए बहुधा जो रंगीन तहों का प्रयोग किया जाता है वह भी इसी विधि का ही एक रूप है । इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा एक ही तथ्य का निरूपण हो सकता है । जनसंख्या का घनत्व दिखलाने के लिए यह विधि सब से अच्छी है ।

Choroshematic (संकेत चिन्ह विधि) एक से अधिक तथ्यों को एक ही मानचित्र पर अंकित करने के लिये संकेत चिन्ह विधि सबसे अधिक उपयोगी है । विभिन्न प्रकार के संकेत चिन्हों को अपना कर कई बातों का एक साथ चित्रण किया जा सकता है । परन्तु इस प्रकार के मानचित्र में दो दोष पाये जाते है––(१) इससे वस्तुओं के वितरण के विषय में सामान्य ज्ञान ही सम्भव है । इससे उनकी मात्रा की कमी या ज्यादती का ज्ञान नहीं हो सकता । (२) जब एक ही प्रकार के चिन्हों को छोटा-बड़ा करके दिखाया जाता है तो बहुधा मस्तिष्क व्यग्र हो जाता है और कुछ भी समझ में नहीं आता । इस विधि का केवल एक लाभ है कि एक ही मानचित्र पर कई तथ्यों को एक साथ ही दिखलाया जा सकता है ।

Chemical Erosion (रासायनिक अनावृत्तीकरण) अनावृत्तीकरण की प्रमुख शक्तियाँ सूर्य, वायु, मेघ, पाला, बहता हुआ जल, चलता हुआ हिम और समुद्र है । शुष्क स्थल के प्रकट होते ही यह शक्तियाँ उसे काट कर या उसके स्वभाव में परिवर्तन करके नष्ट कर देती हैं । हमारे भूपटल पर स्थित चट्टान के अन्दर कुछ खनिज वस्तुयें पायी जाती है । इन शक्तियों के प्रभाववश जब चट्टानों की खनिज प्रकृति बदल जाती है या उनके अन्दर पाये जाने वाले खनिज उलट-पुलट कर अलग हो जाते हैं तो इस प्रकार की अनावृत्तीकरण को रासायनिक अनावृत्तीकरण कहते हैं । इस प्रकार का आन्तरिक व रासायनिक अनावृत्ती-करण निम्नलिखित चार प्रकारों से होता है––(१) आक्सीजन गैस की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप, (२) पानी की क्रिया से, (३) कारबन डाइ आक्साइड से और (४) पानी में घुल जाने से । अतः स्पष्ट है कि रासायनिक अनावृत्तीकरण की मुख्य शक्तियाँ वायु, जल व सूर्य हैं । कभी-कभी अधिक गर्मी और अधिक दबाव से भी रासायनिक अनावृत्तीकरण शुरू हो जाता है ।

Chemical Manure (रासायनिक खाद) मिट्टी में नमकों की कमी को पूरा करने के लिये विविध रासायनिक पदार्थों को खाद के रूप में मिट्टी में पहुँचाते हैं । संयुक्त राष्ट्र अमरीका, योरप और रूस में सोडा नाइट्रेट, पोटाश नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट, सुपरफास-फेट, चूना आदि रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करते हैं । इन पदार्थों को चूर्ण के रूप में या पानी में घोल करके मिट्टी में डाला जाता है । और इन्हें उसी समय देते हैं जब खेत में पौधे खड़े होते हैं । इस प्रकार की खाद का असर तत्काल होता है परन्तु इसके प्रयोग में बड़ी कुशलता की आवश्यकता होती है । जरा-सी चूक हो जाने पर उल्टे हानि हो जाती है । अतः धन व वैज्ञानिक ज्ञान की कमी के कारण साधारण किसान इस प्रकार की खाद का प्रयोग नहीं कर सकता ।

Cinder Cone (ज्वालामुखी राख शंकु) (देखिये Ash Cone)

Cirque (सर्क या हिमगार) जो प्रदेश हिमनदी के प्रवाह से आच्छादित रह चुके हैं वहाँ बहुधा गहरे गोलाकार खोखले स्थान पाये जाते हैं । इन्हें सर्क कहते हैं और पर्वतीय

हिम नदियों का प्रवाह यहीं से शुरू होता है। परन्तु इस प्रकार के खोखले स्थान हिम व बर्फ के अनावृत्तीकरण से बन जाते हैं। चट्टानों के उन भागों में जहाँ बर्फ का पिघला हुआ पानी आता है, बहुत अधिक पाला पड़ता है। बर्फ के बार-बार जमने और पिघलने से हिम नदी का उद्‌गम स्थान एक खाई की तरह खोखली हो जाती है और धीरे-धीरे इसका विस्तार बढ़ता जाता है। इसमें ऊपरी ढालों पर गिरी हुई बर्फ आकर इकट्ठा होती रहती है और हिमनदी के प्रवाह को प्रगति प्रदान करती रहती है।

प्रारंभ में यह खोखला स्थान गोलाकार अथवा अर्द्ध गोलाकार रहता है परंतु धीरे-धीरे जब हिम नदी की क्रिया दोनों पार्श्वों पर अधिक बढ़ जाती है तो यह चौड़ा व सपाट हो जाता है। जब पर्वतखंड में इस प्रकार के कई एक गड्ढे बन जाते हैं तो इनका आकार गोलाकार न रहकर छिछले पात्र की तरह हो जाता है। जिन प्रदेशों में अति प्राचीन समय में बर्फ जमी हुई थी वहाँ इस प्रकार के सर्क में झीलें पायी जाती हैं और प्रदेश की शोभा बढ़ाती हैं।

Cirrus (सिरस मेघ) सिरस बादल सबसे अधिक ऊँचाई पर पाये जाते हैं और प्रायः ८००० से १२००० मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। वास्तव में वायु की धारायें जब ऊपर उठती हैं तो उनका तापांश कम होता जाता है और द्रवीभवन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। परन्तु ७००० फीट से अधिक ऊँचाई पर जलवाष्प की मात्रा बहुत कम होती है, फिर भी थोड़ी-बहुत जलवाष्प कूमूलस मेघ द्वारा ऊपर पहुँचा दी जाती है। यदि किसी कारणवश यह थोड़ी जलवाष्प द्रवीभूत हो गई तो सिरस मेघ बन जाते हैं। यह सफेद रेशम की तरह होते हैं और इनका रूप पक्षी के पंख के समान होता है। इसमें हिम के छोटे-छोटे कण पाये जाते हैं जिनमें से होकर सूर्य व चाँद की किरणें चमकती हैं। दिन में तो ये सफेद रहते हैं परन्तु सूर्यास्त के समय इनका रंग तीव्र हो जाता है। कभी-कभी चक्रवात के अग्र भाग में सिरस मेघ इतने अधिक हो जाते हैं कि सारे आसमान पर वे एक चादर-सी फैल जाते हैं और आकाश का रंग दुधिया हो जाता है। ऐसे समय सूर्य व चाँद के चारों ओर एक प्रकाश वृत्त बन जाता है। ५ से ७ मील की ऊँचाई पर फैले ये बादल कभी तो घुँघराले बाल की तरह दीख पड़ते हैं और कभी पतली महीन जाली की तरह। साधारणतः ये क्षितिज की ओर झुकते हुए मालूम पड़ते हैं और इसीलिए उन्हें घोड़े की पूँछ भी कहते हैं। आकाश में इस प्रकार बादलों के रहने पर खराब मौसम की चेतना समझनी चाहिए।

Cirro cumulus (सिराकूमूलस मेघ) यह भी अधिक ऊँचाई पर पाये जाने वाले मेघ हैं और सिरस तथा कूमूलस मेघों के मिलने पर बनते हैं। ये करीब २५००० फीट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं और इनका रूप कभी तो गोलाकार धब्बों की तरह और कभी समुद्रतट की बालू पर पड़ी लहरियों की तरह होता है।

Cirro stratus (सिरो स्ट्राटस मेघ) जब सिरस मेघ पक्षी के पंख के समान न रहकर बल्कि एक चादर की तरह सम्पूर्ण आकाश में फैल जाते हैं तो उन्हें सिरो स्ट्राटस कहते हैं। इस प्रकार के बादलों से सूर्य व चाँद का प्रकाश कम तो नहीं होता पर उनके चारों ओर प्रकाशवृत्त जरूर बन जाता है।

City (नगर) प्रायः १ लाख से अधिक जनसंख्या वाली बस्तियों को नगर कहते हैं। नगरों के बसने व बढ़ने के कई कारण होते हैं। प्रायः गमनागमन, उद्योगधन्धों, व्यापार व वाणिज्य की सुविधा वाले स्थान शीघ्र नगर बन जाते हैं। अतएव नगर निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—शासन केन्द्र, गमनागमन केन्द्र, औद्योगिक केन्द्र, व्यापारिक मंडियाँ धार्मिक केन्द्र, ऐतिहासिक केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र।

Civil Twilight (नगर गोधूलि प्रकाश) सूर्योदय व सूर्यास्त के समय दिखलाई

पड़ने वाला धुँधला प्रकाश गोधूलि प्रकाश कहलाता है। नगर गोधूलि प्रकाश वह है जो सूर्य के क्षितिज रेखा से ६° नीचे आने पर भी फैला रहता है और इसकी विशेषता व काल बाह्य कामों के लिये उपयुक्त दृष्टिगोचरता के अनुसार निर्धारित किया जाता है। उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में उच्च अक्षांशों की अपेक्षा गोधूलि प्रकाश कम समय तक रहता है। ध्रुवीय प्रदेशों में आर्कटिक या अन्टार्कटिक वृत्त से जैसे-जैसे हम उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते हैं तो यह गोधूलि प्रकाश रात-रात भर फैला मिलता है।

Clay (चिकनी मिट्टी) चिकनी मिट्टी शेल नामक मुलायम चट्टान से बनती है। इसके कण बहुत बारीक होते हैं। आपस में ये कण इतने संगठित होते हैं कि पानी में मिला देने पर यह चिपचिपी हो जाती है। यह मिट्टी, पानी धीरे-धीरे सोखती है क्योंकि कणों के बीच में बहुत कम स्थान होता है, परन्तु सोखा हुआ जल बहुत दिनों तक कायम रहता है। क्योंकि हवा गहराई तक अन्दर नहीं पहुँच सकती और वाष्पीकरण बहुत कम हो पाता है। बनावट व आविर्भाव के अनुसार चिकनी मिट्टी कई प्रकार की होती है परन्तु उन सभी प्रकारों को परतदार चट्टानों के वर्ग में रक्खा जाता है।

इस मिट्टी में पौधे के आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं किन्तु इसमें पौधे की जड़ें गहराई तक नहीं जा सकतीं। इसलिये यह घास के लिए बहुत उपयुक्त होती है। बहुत कम सिंचाई द्वारा भी फसल उगाई जा सकती है परन्तु ऐसी मिट्टी में हल चलाना कठिन होता, है इसलिये यह खेती के लिये उपयुक्त नहीं समझी जाती।

Clearing (साफ की गई भूमि) सभ्यता के आदिकाल में जब मनुष्य ने खेती का धंधा अपनाया ओर बस्तियाँ बनानी शुरू किया तो उस समय अधिकतर भूमि वनों से ढकी थी। अतः आदिम मनुष्य जंगल का कुछ प्रदेश जलाकर साफ कर लेता था। जले हुये वृक्षों की राख भूमि को उपजाऊ भी बना देती और उसमें फसलें भी पैदा होने लगतीं। दो-तीन वर्षों के बाद जब मिट्टी निर्बल हो जाती है तो जंगल का दूसरा प्रदेश साफ कर लिया जाता है। इस प्रकार के खेत को साफ की गई भूमि कहते हैं। परन्तु यह काम बड़ा हानिकारक होता है। इसमें बर्मा, मलाया पेनिनसुला और अन्य देशों के बहुमूल्य वनों के बड़े-बड़े प्रदेश नष्ट कर दिये गये हैं।

Cleavage (फटन) बहुत सी चट्टानें अन्य दिशाओं की अपेक्षा किसी एक दिशा में जल्दी टूट जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उनमें जोड़ होते हैं। इस प्रकार के जोड़ को फटन कहते हैं। यह फटन तल परतों के समानान्तर होता है और प्रायः उन चट्टानों में पाया जाता है जिन के ऊपर भारी दवाव पड़ा है। इस फटन तल पर से चट्टानों को पतली चद्दरों व पीठिकाओं में तोड़ा जा सकता है। आग्नेय चट्टानों में फटनतल समानांतर न होकर परतों के ऊपर लम्ब रूप रहता है। इसका कारण यह है कि परतदार चट्टानों में तो यह फटन सूखने पर बनता है परन्तु आग्नेय चट्टानों की फटन ठंडी होने पर पड़ती है। इस फटन तल में कोई आन्तरिक गति नहीं होती जैसे कि दरारों में होती है। ऊपर से देखने पर यह फटन मुड़ी हुई रहती है पर यह स्थान कमजोर व जल के लिए प्रवेश्य होता है। अतः फटन तल पर निम्नलिखित कार्य होते रहते हैं—(१) ऊपर का पानी अन्दर प्रवेश कर जाता है। (२) जल में चट्टानों के घुल जाने और रासायनिक अनावृत्तीकरण के लिये यही स्थान सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं। (३) हिम नदी ऐसे फटन तल से ही रोड़े काट कर ले जाते हैं और गड्ढा बना रह जाता है। स्लेट की चट्टानों में फटन सबसे अधिक होती है।

Cliff (पर्वतखंड) भीतरी या तटवर्ती प्रदेश में ऊँची तथा अति तीव्र ढाल वाली चट्टान की दीवार को पर्वत खंड कहते हैं। यह पर्वत खंड कभी-कभी तो बिल्कुल लम्ब रूप

खड़े रहते हैं। इस प्रकार के पर्वत खण्ड [illegible] अथवा चट्टानों की कठोरता के कारण बने रह जाते हैं।

Climate (जलवायु) "वायुमण्डल की दशाओं के अध्ययन को ही जलवायु कहते हैं।" यूनानी विद्वानों ने जलवायु की व्याख्या इस प्रकार की थी परन्तु किसी प्रदेश या स्थान पर पायी जाने वाली ऋतुदशा की औसत को जलवायु कहते हैं। वैसे तो ऋतु प्रतिदिन बदलती रहती है परंतु जब एक ही निश्चित समय पर लिये गये निरीक्षण का सामान्य रूप निकाल लिया जाता है तो उसे वहाँ की जलवायु कहते हैं। किसी स्थान की ऋतु वहाँ पर के ताप, वायुभार, वायु की गति व दिशा तथा वायु में जल की मात्रा पर निर्भर रहती है। और यही है जलवायु के मुख्य अंग।

किसी प्रदेश की जलवायु वहाँ के अक्षांश विस्तार व स्थिति, समुद्रतट से दूरी तथा स्थानीय भौगोलिक दशाओं पर निर्भर रहती है। स्थूल रूप मे यह कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े महाद्वीपों के आंतरिक व पूर्वी भागों में **विषम जलवायु** पायी जाती है। विषम जलवायु में वर्षा की मात्रा कम, आर्द्रता का अंश निम्न पर दैनिक व मौसमी तापक्रम का अन्तर बहुत अधिक होता है। जाड़ों में अधिक सर्दी और गर्मियों में अधिक गर्मी पड़ती है। इसके विपरीत समुद्री द्वीपों व महाद्वीपों के पश्चिमी तटीय प्रदेशों में सम जलवायु पायी जाती है। वर्षा अधिक होती है, आर्द्रता का अंश अधिक होता है और तापक्रम का अन्तर साधारण होता है। जाडों में कम सर्दी और गर्मियों में कम गर्मी पड़ती है। रात व दिन के तापक्रम में भी कोई विशेष फर्क नहीं होता।

परंतु स्थानीय रूप से जलवायु समुद्रतल से ऊँचाई, हवाओं की दिशा व प्रभाव तथा भू-प्रकृति के अनुसार बदलती रहती है। भूमध्यरेखा के समीप जलवायु और ऋतु में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता क्योंकि दिन प्रति दिन की ऋतु प्रायः एक सी ही रहती है। परन्तु अयन सीमाओं पर ध्रुवों के बीच के क्षेत्र में, विशेषकर उन प्रदेशों में जहाँ पछुवा हवायें चला करती हैं, ऋतु इतना परिवर्तनशील रहता है कि वहाँ की जलवायु की ठीक शब्दों में व्याख्या करना असम्भव-सा है।

जलवायु के क्षेत्र के अन्तर्गत केवल वायुमण्डल की उन दशाओं का अध्ययन किया जाता है जो मानव द्वारा अनुभव की जा सकती हैं। अतः वायुमण्डल की उन ऊपरी सतहों का अध्ययन जलवायु के अन्तर्गत नहीं किया जाता जो सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं। इसी प्रकार विज्ञान द्वारा उत्पन्न कृत्रिम दशाओं की ओर भी जलवायु के अध्ययन में ध्यान नहीं देते। इसमें तो केवल ऋतु सम्बन्धी उन्हीं दशाओं को लेते हैं जिनका हम अनुभव करते हैं।

जलवायु का अध्ययन बड़ा ही महत्वपूर्ण है। जलवायु का प्रभाव केवल भूप्रकृति या स्थल रूपों पर नहीं पड़ता बल्कि मानव जीवन के विविध अंगों का जलवायु के साथ बड़ा ही महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। मनुष्य का भोजन, पहनावा, मकान, रहन-सहन का ढंग, व्यवसाय व उद्यम, जनसंख्या का वितरण, उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण, गमनागमन व यातायात आदि जलवायु के अनुरूप ही बनते व परिवर्त्तित होते रहते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन पर जलवायु का बड़ा ही व्यापक व सार्वभौमिक प्रभाव पड़ता है। सच तो यह है कि मनुष्य की सभ्यता व सांस्कृतिक प्रगति बहुत कुछ अंश में जलवायु के अंगों द्वारा प्रभावित होती रही है।

Climatic Region (जलवायु विभाग) पृथ्वी साधारणतया भूमध्य रेखा के समीप अधिक गर्म है और ध्रुवों की ओर ठण्डी होती जाती है। अतएव यह देखा गया है कि विषुवत रेखा के समीप वाले स्थानों में चाहे वे अमरीका, अफ्रीका अथवा एशिया कहीं पर हों, एक ही

प्रकार की जलवायु मिलती है। इसी प्रकार ३५° अक्षांश के आसपास एक दूसरी प्रकार की जलवायु मिलती है। एक ही प्रकार की जलवायु वाले प्रदेश मिलकर एक मुख्य जलवायु का विभाग बनाते हैं। जलवायु के अनुसार पृथ्वी को चार कटिबंधों में बाँट दिया गया है——

(१) उष्ण कटिबंध, (२) उष्ण शीतोष्ण कटिबंध, (३) शीत शीतोष्ण कटिबंध और (४) शीत कटिबंध। प्रत्येक कटिबंध को जलवायु विभागों में बाँट दिया गया है। जलवायु और वनस्पति का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि किसी-किसी प्रदेश के वनस्पति के आधार पर वहाँ की जलवायु का नाम पड़ गया है। इस प्रकार पृथ्वी को १२ जलवायु विभागों में बाँटा गया है——

(१) **उष्ण कटिबंध**——(अ) भूमध्य रेखीय या उष्ण आर्द्र जलवायु, (ब) उष्ण कटि-बंधीय घास के मैदान की जलवायु अथवा सूडान तुल्य जलवायु, (स) मानसूनी जलवायु और (द) उष्ण मरुस्थलीय अथवा सहारा तुल्य जलवायु।

(२) **उष्ण शीतोष्ण कटिबंध**——(अ) शीतोष्ण मरुस्थलीय अथवा ईरान तुल्य जल-वायु, (ब) रूमसागरीय या शीतकालीन वर्षा की जलवायु और (स) उष्ण शीतोष्ण कटिबंध में पूर्वीय तट की अथवा चीन के प्रकार की जलवायु।

(३) **शीत शीतोष्ण कटिबंध**——(अ) पश्चिमी यूरोप तुल्य या समुद्रतटीय जलवायु, (ब) शीतोष्ण कटिबंध के आन्तरिक भाग की विषम जलवायु और (स) पूर्वी तट की अथवा सेंट लारेन्स तुल्य जलवायु।

(४) **शीत कटिबंध**——(अ) साइबेरिया तुल्य जलवायु और (ब) ध्रुवीय अथवा शीतल मरुस्थल की जलवायु।——जहाँ समुद्रतल से ऊँचाई के कारण प्रादेशिक जलवायु से भिन्नता आ जाती है वहाँ पर्वतीय जलवायु कही जाती है।

Climatology (**जलवायु विज्ञान**) पृथ्वी पर पायी जाने वाली विभिन्न जलवायु के अध्ययन को जलवायु विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत जलवायु और प्राकृतिक परिस्थिति के सम्बन्ध को भी अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार जलवायु विज्ञान को हम वह विद्या कह सकते हैं जिसके अन्तर्गत वायुमण्डल की प्राकृतिक दशाओं का मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव द्वारा अध्ययन करते हैं। वास्तव में इसे वायु सम्बन्धी प्रायोगिक भौतिक विज्ञान कह सकते हैं।

Climato therapy (**जलवायु चिकित्सा**) उपयुक्त जलवायु सम्बन्धी परिस्थिति को उपस्थित करके रोग की चिकित्सा करना जलवायु चिकित्सा कहलाता है। इस विधान के अन्तर्गत शरीर में पायी जाने वाली विभिन्न कमजोरियों को उपयुक्त जलवायु के वातावरण में रोगी को रखकर ठीक किया जाता है। अक्सर इस प्रकार की उपयुक्त जलवायु विभिन्न स्वास्थ्यवर्धक केन्द्रों में पायी जाती है। परन्तु जलवायु में मौसम के अनुसार हेर-फेर होता रहता है। इसलिये उपयुक्त या वांछित वातावरण एक स्थान पर नहीं पाया जा सकता। साल के विभिन्न महीनों में वैसा वातावरण पाने के लिये अलग-अलग जगहों का भ्रमण करना होगा।

Climograph (**जलवायु परिचायक चित्र**) विभिन्न प्रकार की जलवायु की पारस्परिक भिन्नता स्पष्ट करने के लिये बनाया गया चित्र जलवायु परिचायक चित्र कह-लाता है। एक वर्गाकार चारखाने के कागज पर तापक्रम का मासिक औसत निकाल कर अंकित कर दिया जाता है और साथ-साथ सम्बन्धित आर्द्रता की मात्रा को भी रखते जाते हैं। इस प्रकार दोनों प्रकार के बिन्दुओं से बना सब ओर से बन्द १२ भुजा वाले चित्र को जलवायु परिचायक चित्र कहते हैं।

इस प्रकार के चित्र पर एक नजर डालकर जलवायु के विशेष प्रकार का पता लगाया जा सकता है । यदि जलवायु परिचायक चित्र में अंकित तापक्रम का मध्यम मान व सम्बन्धित आर्द्रता की मात्रा उच्च है तो इसका मतलब यह है कि वहाँ की जलवायु सदा गर्म व तर रहने वाली है । (देखिये Hyther graph)

Clinometer (ढाल मापक यन्त्र) चट्टानी परत के झुकाव या किसी उच्च प्रदेश के ढाल को नापने के यन्त्र को ढाल मापक यन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र कई प्रकार का होता है परन्तु सभी का आधारभूत सिद्धान्त दृष्टिरेखा और एक समतल के बीच बनने वाले कोण को नापना है । प्रायः निरीक्षण कार्य में Abney level या भारतीय ढाल मापक यन्त्र को प्रयोग करते हैं ।

Clint (क्लिन्ट) चूने की चट्टानों के प्रदेश में कारबन डाइ आक्साइड मिला हुआ जल जब किसी दरार, जोड़ या फटने वाले स्थान पर गिरता या बहता है तो वहाँ एक गड्ढा बना देता है । इस प्रकार से चूने के पानी में घुल जाने के फलस्वरूप बने गड्ढे को क्लिन्ट कहते हैं । इसे ग्राइको (Griko) भी कहते हैं और ये उत्तरी-पश्चिमी इंगलैंड में बहुत पाये जाते हैं ।

Cloud (मेघ, बादल) सूर्य की गर्मी के कारण तरल जल भाप बन कर उड़ा करता है और यद्यपि जलवाष्प का अंश वायुमण्डल में बहुत कम होता है परंतु इसका प्रभाव व महत्व बहुत अधिक होता है । गर्म हवा में जलवाष्प ग्रहण करने की शक्ति अधिक होती है । अतः धरातल से गर्म और आर्द्र वायु उत्पन्न होकर सदा ऊपर को उठा करती है और ऊपर पहुँच कर यह हवा फैलकर ठण्डी होने लगती है । वास्तव में प्रत्येक १००० फीट की ऊँचाई पर वायु का तापक्रम ५.६° फार्नहीट की दर से कम होने लगता है । परिणाम यह होता है कि वह वायु पूर्णतया सम्पृक्त होकर उसका जलवाष्प जल के छोटे बिन्दु के रूप में द्रवीभूत होने लगता है । द्रवीभवन की यह क्रिया वायु में मिले धूल के कणों पर होती है और इस प्रकार द्रवीभूत जल-बिन्दुओं के समूह से ही मेघ या बादल बन जाते हैं ।

इस प्रकार बने मेघ या बादल वास्तव में धूल के कणों पर रुके जल-बिंदुओं या हिम कणों का समूह मात्र होते हैं । इन मेघों व बादलों की ऊँचाई अक्षांश के अनुसार भिन्न होती है । उष्ण कटिबंध में बादल अधिक ऊँचाई पर बन पाते हैं । परन्तु उनकी अपेक्षा शीतकटिबंध में कम ऊँचाई पर ही द्रवीभवन होने लगता है और कम ऊँचाई पर ही बादल बन जाते हैं । शीतोष्ण कटिबंध में ८००० फीट तक की ऊँचाई पर पाये जाने वाले बादलों को निम्न मेघ कहते हैं । ८००० से १५००० फीट की ऊँचाई तक मध्यम मेघ पाये जाते हैं और १५००० फीट से अधिक ऊँचाई पर बननेवाले बादल उच्च मेघ कहलाते हैं । निम्न, मध्यम और उच्च मेघों की ऊँचाई उष्ण कटिबंध में क्रमशः १०००० फीट से २५००० फीट और २५००० से ३५००० फीट तक होती है ।

निम्न मेघ अधिक घने, आकार रहित व गहरे भूरे या काले रंग के होते हैं । वास्तव में वृष्टि करने या तूफान लाने वाले ये ही बादल होते हैं । मध्यम मेघ आकार में रेखा या लहर की तरह होते हैं और इनका रंग हल्का मटमैला सफेद होता है । उच्च मेघ पंख या हल्की चादर की तरह फैले रहते हैं और उनका रंग सफेद रेशम की भाँति होता है । प्रायः तुषारपात व हिमवर्षा इन्हीं से होती है ।

Cloud burst (मेघ विस्फोट) थोड़े समय के भीतर हो जाने वाली भीषण वर्षा को मेघ विस्फोट कहते हैं । कभी-कभी ऐसा होता है कि आसमान तो साफ रहता है परन्तु न जाने कहाँ से एकाएक मेघ आ जाते हैं और थोड़ी सी देर में ही २०-२५ इंच पानी बरसा

जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मेघ फट गये हों। इसी कारण इस प्रकार की वर्षा को मेघ विस्फोट कहते हैं।

साधारणतया इस प्रकार की वर्षा का सम्बन्ध भीषण तूफान या चक्रवातों से रहता है। शीतोष्ण कटिबंध में मेघ विस्फोट क्षणिक होता है क्योंकि वहाँ की वायु में उपस्थिति जलवाष्प शीघ्र खतम हो जाती है। परन्तु केवल थोड़े समय के भीतर भी इससे भारी नुकसान हो जाता है। भूमि कटफट जाती है और बड़ी-बड़ी कन्दराओं में तीव्र जलधारायें बहने लगती हैं।

वैसे तो मेघ विस्फोट सभी स्थानों व अक्षांशों में हो सकते हैं परन्तु पर्वतीय व मरुस्थली प्रदेशो में इनकी बहुतायत है। पर्वतीय प्रदेशों में जब कोई तूफान आर-पार चलता होता है तो गर्म वाष्पपूर्ण वायु के एकाएक रुक जाने से मेघ विस्फोट हो जाते हैं। तूफान की तीव्र वायु के द्वारा रोके जाने पर नीचे से ऊपर चढ़ती हुई वायु के अन्दर पानी की बूँदों व ओलों को सँभालने की शक्ति नही रह जाती और जरा सी देर के अन्दर वह सब वृष्टि के रूप में नीचे आ पड़ती है।

मरुस्थली प्रदेशों में वैसे तो पानी कम बरसता है; परन्तु जब बरसता है तो बडे भीषण रूप से। अक्सर उष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों की तीव्र वायु रेगिस्तानों पर चली आती है और वहाँ की गर्मी के कारण और ऊपर उठ जाती है। बहुत अधिक ऊँचाई पर पहुँच कर द्रवीभूत होकर बादल बन जाते हैं और द्रवीभूत जल की बूँदें थोड़ी देर में ही बरस जाती हैं। वर्षा का काल तो कम होता है परन्तु उनकी भीषणता इतनी अधिक होती है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। रेगिस्तानों में विस्फोट इतना अक्सर होता रहता है कि यहाँ के आदि निवासियों को विश्वास हो गया कि आकाश चार खम्भों पर पृथ्वी के ऊपर टिका हुआ है और वर्षा आकाश मण्डल की खिड़कियों से होती है।

Cloudiness (मेघाच्छन्नता) आकाश में मेघों की दशा को मेघाच्छन्नता कहते हैं। ऋतु अध्ययन की भाषा में मेघाच्छन्नता के अर्थ हैं कि आकाश का कितना भाग बादलों से घिरा हुआ है। इसका अनुमान केवल देखकर ही लगाया जाता है और मेघाच्छन्न आकाश को दशमलव अंश द्वारा व्यक्त करते हैं। इस आधार पर ० से मेघ रहित आकाश का बोध होता है और १०/१० से पूर्णतया मेघाच्छन्न आकाश का।

मेघाच्छन्नता का वितरण अक्षांश के समानान्तर रहता है। भूमध्य रेखीय और ध्रुवीय निम्नभार प्रदेशों में मेघाच्छन्नता अधिक होती है। १५° से ३५° अक्षांश रेखाओं के बीच कर्क व मकर रेखाओं के प्रदेश में मेघाच्छन्नता सबसे कम रहती है। अयन सीमाओं और ध्रुवीय वृत्तों के मध्य के प्रदेश में भी मेघाच्छन्नता काफी रहती है, परन्तु इन उच्च अक्षांशों में (१) मेघाच्छन्नता समुद्री प्रदेशों की अपेक्षा भूखंडों व महाद्वीपों पर अधिक रहती है। (२) विरुद्ध चक्रवात की अपेक्षा चक्रवात में मेघाच्छन्नता की मात्रा अधिक होती है। (३) पर्वतीय प्रदेशों में हवा की तरफ वाले ढालों पर [illegible] की अपेक्षा अधिक मेघाच्छन्नता रहती है।

Cloud form (मेघाकृति) वायुमण्डल में द्रवीभवन क्रिया कई कारणों व प्रकारों से होती है। अतएव मेघ बनने की रीति व विधि की विभिन्नता के अनुसार मेघाकृति भी विभिन्न होती है और आकारों के दृष्टिकोण से उन्हें १० प्रकार का कहा गया है—सिरस, सिरोस्ट्राटस, [illegible] आल्टो कूमूलस, आल्टो स्ट्राटस, स्ट्राटो कूमूलस, निम्बो स्ट्राटस, कूमूलस निम्बस और स्ट्राटस। परन्तु रूप, आकृति व बनाने की विधि के अनुसार दो प्रकार की मेघाकृति प्रधान है—(१) एक तो Cumuliform या ढेर तुल्य मेघ। और (२) दूसरे Stratiform या परतदार मेघ।

ढेर तुल्य या Cumuliform मेघ हवा के ऊपर चढ़कर व ठंढा हो जाने पर बनते

हैं। हवा के बराबर ऊपर चढ़ते रहने के कारण यह मेघ एक राशि के रूप में लम्ब रूप फैला रहता है और इस प्रकार के दो बादलों के बीच में बहुधा नीला आकाश दिखलाई पड़ता रहता है। इन बादलों की लम्बरूप गहराई बहुत अधिक होती है और इनका आधार तो सपाट, पर इनका शिरोबिन्दु गोभी के फूल की सदृश होता है। Stratiform या परतदार बादल बहुधा वायु में उपस्थित धूल के कणों की गर्मी से फैल कर नष्ट हो जाने पर बनते हैं या गर्म व ठंडी वायुधाराओं के मिलने पर द्रवीभवन से उत्पन्न हो जाते हैं। इनका रूप एक पतली परत की तरह होता है और इस रूप के नीचे हवा की धारा एक दिशा में समानान्तर रूप से प्रवाहित होती रहती है और इसके ऊपर दूसरी हवा की धारा विपरीत दिशा में चलती रहती है। अन्य मेघाकृतियाँ इन्हीं मुख्य आकृतियों के मिलने से बनती हैं।

Cluse (**क्लूज**) पर्वत श्रेणी के मध्य से आरपार काटी हुई सँकरी पर गहरी घाटी को क्लूज कहते हैं। इस प्रकार की घाटियाँ भूरा पर्वत प्रदेश में बहुत पाई जाती हैं।

Coal (**कोयला**) कोयला भूगर्भ में होने वाले परिवर्तन की उपज है। इस प्रकार के परिवर्त्तन का कारण व तरीका तो बहुत कुछ स्पष्ट नहीं है परन्तु इतना जरूर निश्चित है कि कोयला पृथ्वी के भीतर होने वाली प्राणिज रासायनिक प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है। वनस्पति के सड़े-गले अंश पर छोटे-छोटे Bacteria कीटाणु अपना असर डालते रहते हैं और इन कीटाणुओं की क्रिया के फलस्वरूप अलम्बिक एसिड उत्पन्न हो जाती है। इस एसिड में कर्बन और हाइड्रोजन की मात्रा बहुत अधिक होती है। धीरे-धीरे आक्सीजन और हाइड्रोजन जल कारबन डाइ आक्साइड और दलदली गैस के रूप में इस वनस्पति व प्राणिज राशि से अलग होते रहते हैं और युग या काल के अनुसार बची हुई वस्तु में आक्सीजन और हाइड्रोजन की अपेक्षा कार्बन का अंश अधिक रहता है। इस प्रकार से वनस्पति व प्राणिज शेषांश एक भूरे चिपचिपे पदार्थ में परिणत हो जाता है और इस भाँति वनस्पति के अंश अलग न रहकर एक सम्बद्ध रूप धारण कर लेते हैं। इस भूरे चिपचिपे पदार्थ से कोयला बनना प्रादेशिक परिवर्त्तन पर निर्भर रहता है। भूखंड के पृथ्वी के अन्दर धँस जाने से वनस्पति के इस सड़े-गले अंश पर बालू, मिट्टी व दलदल की एक बड़ी राशि इकट्ठा हो जाती है और यह राशि दिन पर दिन बढ़ती जाती है। फलतः ऊपर के दबाव व अन्दर की गर्मी से इसका विस्तार व आकार दब जाता है तथा अन्य परिवर्त्तन भी हो जाते हैं।—कोयले के विषय में दो सिद्धान्त विशेष रूप से प्रचलित हैं—(१) **भूगर्भ सम्बन्धी सिद्धांत**—इसके अनुसार कोयला शुरू में वनस्पति शेषांश का चिपचिपा रूप था। धीरे-धीरे ऊपर के दबाव व गर्मी से यह भूरा कोयला बना, फिर विटूमिनस कोयला और अन्त में अन्थ्रासाइट कोयला बन गया। (२) **बहाव सिद्धान्त** के अनुसार वे सभी सामग्रियाँ जिससे कोयला बना है, बहाकर कहीं से लाई गई और बाद में उन्हीं से कोयला बना। कोयले की वर्त्तमान राशि को इन दोनों सिद्धान्तों मे समझा जा सकता है।

संसार की वर्त्तमान कोयला राशि कारबनीफेरस युग में बनी और इस समय पृथ्वीतल से ६००० फीट नीचे करीब ८००० करोड टन कोयले का अटूट भंडार निहित है। कोयले की खपत की वर्त्तमान दर से तथा गलत तरीके से खान खोदने में नाश के लिए चतुर्थांश को और जोड़ते हुए ऐसा अनुमान है कि वर्त्तमान भंडार संसार की आवश्यकता के लिये ४००० वर्ष तक काफी होगा।

Coaling Station (**इंधन केन्द्र**) ऐसा बन्दरगाह जहाँ जहाज ईंधन पानी के

लिये रुकते हैं, उन्हें ईंधन केन्द्र कहते हैं। संसार के प्रमुख समुद्री मार्गों पर ऐसे स्थानों की व्यवस्था है जहाँ जहाजों को कोयला या तेल मिल जाता है।

Coastline (समुद्रतट रेखा) समुद्र के किनारे के भूखंड की तटीय रेखा को समुद्र तट रेखा कहते हैं। समुद्रतट रेखा को निश्चित करते समय बड़ी-बड़ी खाड़ियों को तो बाहर छोड़ देते हैं परन्तु छोटे कटाव व नदियों के मुहाने को सम्मिलित कर लेते हैं। वास्तव में जलखंड और शुष्क स्थल के पारस्परिक उत्क्षेप व निमज्जन से समुद्रतट रेखा बन जाती है। वास्तव में जल के भीतर डूबा हुआ प्रदेश समतल मैदान, पठार अथवा पर्वतीय हो सकता है। अतः निमज्जन से बनी हुई तटरेखा कटी-फटी होती है। इसके विपरीत उत्क्षेप से बनी तट रेखा सीधी सपाट होती है। परन्तु समुद्री धाराओं, ज्वार-भाटे और लहरों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्क्षेप व निमज्जन से बनी तट रेखा के रूप में परिवर्त्तन होता रहता है।

तट रेखायें निम्नलिखित ४ प्रकार की होती हैं—(१) फीयार्ड, (२) रिया, (३) डालमेशियन और (४) हॉफ। फीयार्ड और रिया तटरेखायें तो भूखंड के निमज्जन से बनती हैं और इनका रूप बहुत कटा-फटा रहता है। वास्तव में डूबी हुई नदी घाटियाँ ही यह कटान का रूप धारण कर लेती हैं। डालमेशियन तटरेखा पर्वतीय प्रदेश के डूब जाने से बन जाती है और तट के समानान्तर पाये जाने वाले द्वीप पर्वतों की चोटियाँ होती हैं। हॉफ तट रेखा निचली और सपाट होती है। इसमें समुद्रतट के समानान्तर कई सँकरी पट्टियाँ होती हैं जो समुद्री धाराओं द्वारा निक्षिप्त रेत के टीले के ऊपरी सिरों के मिल जाने पर बन जाती हैं।

Coastal plain (समुद्र तटीय मैदान) समुद्रतट पर स्थित मैदान को समुद्रतटीय मैदान कहते हैं। इसका विस्तार समुद्रतट रेखा से निकटतम उच्च भूमि तक होता है। समुद्र तटीय मैदान दो प्रकार से बनता है। कभी-कभी तो समुद्री लहरों के अनावृत्तीकरण से और कभी निक्षेप से समुद्री तटीय मैदान बन जाता है। समुद्र की लहरें काट-छाँट करके तट प्रदेश को समतल करती रहती हैं और बाद में भूखंड के उठ जाने से यह ऊपर निकल आते हैं और समुद्र तटीय मैदान बन जाते हैं। कभी-कभी नदी द्वारा बहा कर लाई हुई सामग्री के मुहाने पर इकट्ठा हो जाने से भी समुद्र तटीय मैदान बन जाते हैं।

स्थलरूपों के आधार पर समुद्रतटीय मैदानों को दो प्रकार का कहा जा सकता है—(१) **उत्क्षेप से प्रकट नये तटीय मैदान**: इनमें स्थल रूपों का आकार स्पष्ट नहीं होता। यह ढीली रेत, मिट्टी व चूने की परतों के बने होते हैं और या तो ये बिलकुल समतल होते हैं या समुद्र की ओर कुछ जरा से झुके रहते हैं। इनमें दलदल व छोटी-छोटी झीलें पायी जाती हैं। नदियाँ जरूर प्रकट हो जाती हैं परन्तु उनका प्रवाह विशेष नहीं होता। (२) **अनावृत्तीकरण द्वारा विशिष्ट रूप वाले तटीय मैदान**: इनमें अधिकतर ऋतुप्रहार व अनावृत्तीकरण के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। परतदार चट्टानों की कठोरता व मृदुता जलवायु सम्बन्धी शक्तियों और नदियों के प्रवाह के कारण इनका रूप पेटियों में छिन्न-भिन्न हो जाता है। इनका धरातल कहीं ऊँचा-नीचा होता है और मिट्टी परतदार व संगठित होती है। नदियों के प्रवाह के कारण कहीं तो ऊँचे टीले दिखलाई पड़ते हैं और कहीं निचली घाटियाँ। इनका जलप्रवाह स्थल, रूप व मिट्टी का स्वभाव निश्चित होता है।

Coast Zone (समुद्रतट प्रदेश) प्रायः समुद्रतट के निकट का समुद्र छिछला रहता है और उसमें नदियों द्वारा बहाकर लाई हुई सामग्री इकट्ठा होती रहती है। जहाँ पर यह छिछला जल समुद्र से मिलता है उसे समुद्रतट प्रदेश कहते हैं। इसके अन्तर्गत

समुद्रतट का वह निचला भाग सम्मिलित रहता है जो अन्य समय तो सूखा पड़ा रहता है परन्तु ज्वार-भाटे के समय वह अक्सर जलमग्न हो जाता है ।

Coastal Rain (समुद्रतटीय वर्षा) जाड़े के मौसम में जब भूखंड की अपेक्षा जलखंड कम ठंढा रहता है तब महासागर पर की गर्म वायु स्थलखंड की ओर प्रवाहित होने लगती है। स्थलखंड तो अति शीत होता है । अतः स्थलखंड पर आते ही यह समुद्री या महासागरीय गर्म हवा ठंडी होकर द्रवीभूत हो जाती है और तटीय प्रदेशों में वर्षा कर देती है । इस प्रकार की वर्षा को समुद्रतटीय वर्षा या (Border Rain) सीमा की वर्षा कहते हैं। आस्ट्रेलिया के तटीय प्रदेशों में होनेवाली वर्षा इस विशिष्ट प्रकार का उदाहरण है ।

Coast (समुद्रतट) भूखंड का वह प्रदेश जो किसी समद्र या अन्य बड़े जलाशय के किनारे पर स्थित होता है और जहाँ तक समुद्री लहरें आ सकती हैं उसे समुद्रतट कहते हैं ।

Cols (विभाजक पात्र) (१) जब एक पहाड़ी के इधर-उधर नदी-प्रवाह होता है तो नदी जल द्वारा अनावृत्तीकरण से पहाड़ी के पार्श्व कटते जाते हैं । नदी के इस प्रकार उद्गम की ओर काटने-छाँटने से उसकी तलैटी पीछे की ओर बढ़ती जाती है और जलविभाजक की ऊँचाई कम हो जाती है और बीच में एक दर्रा या खाली स्थान बन जाता है जिसे विभाजक पात्र कहते हैं ।

यह क्रिया हिम नदी के क्षेत्रों में विशेष रूप से तीव्र रहती है । हिम नदियाँ पहाड़ी के पार्श्वों को काट-काटकर खोखला कर देती हैं और सर्क बन जाते हैं । जब एक पहाड़ी के दोनों ओर हिम नदी का यह कार्य चलता रहता है तो बहुधा दोनों ओर बने सर्क के बीच केवल एक पतली चट्टान का परदा मात्र रह जाता है । यदि हिम नदी फिर भी इन खोखले सर्क को पीछे की ओर काटती गई तो एक समय वह आता है जब बीच की चट्टानी दीवार नष्ट हो जाती है और एक दर्रा बन जाता है । इसे विभाजक पात्र कहते हैं । विभाजक पात्र का रूप व झुकाव हाइपरबोला की तरह होता है । कनाडियन पैसिफिक रेल इसी प्रकार के दर्रे से होकर गुजरती है । (२) आमने-सामने स्थित दो चक्रवात या विरुद्ध चक्रवातों के बीच के प्रदेश को विभाजक पात्र कहते हैं । वास्तव में जब समउच्चभार दर्शक रेखायें इस प्रकार स्थित हों कि उत्तर व दक्षिण में तो चक्रवात हो और पूर्व व पश्चिम में विरुद्ध चक्रवात तो इस प्रकार की भार व वायु व्यवस्था के बीच के स्थान को विभाजक पात्र कहते हैं । इसमें सम-उच्चभार दर्शक रेखाओं की व्यवस्था घोड़े की काठी के समान रहती है । वैसे तो इसमें वायु-भार साधारणतया सम होता है परन्तु फिर भी इसके इधर-उधर स्थित चक्रवातों से अधिक और विरुद्ध चक्रवातों के वायुभार से कम होता है । इस प्रकार दो उच्चभार प्रदेशों के बीच इसकी वही स्थिति होती है जो पहाड़ियों के बीच पहाड़ी दर्रे की ।

इन विभाजक पात्र के किनारों पर हवा की गति चक्रवात अथवा विरुद्ध चक्रवात के अनुसार होती है परन्तु बीच में हवा की गति हल्की और दिशा परिवर्तनशील होती है । इस विभाजक पात्र का मौसम भी वायु की दिशा के अनुसार बदलता रहता है । जब ध्रुवीय वायु आ जाती है तो ठंडक बढ़ जाती है और जब उष्ण कटिबंधीय वायु आ जाती है तो गर्मी की अधिकता हो जाती है । गर्मी के दिनों में मौसम साफ व चमकीला होता है परन्तु आँधी व तूफान आने की सम्भावना रहती है । इसके विपरीत जाड़े के दिनों में मौसम सुस्त व कुहरे से भरा हुआ रहता है । जाड़े में आकाश मेघों से ढका रहता है ।

Cold Desert (शीत मरुस्थल) उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों में इतना कठिन शीत पड़ता है कि वहाँ की हालत ठीक मरुस्थल जैसी हो जाती है और उन्हें शीत मरुस्थल कहते हैं। इन प्रदेशों में जाड़े का मौसम लम्बा और गर्मियाँ छोटी होती हैं। गर्मी के मौसम में कुछ महीने तो ऐसे होते हैं जब सूर्य क्षितिज पर बराबर स्थित रहता है । इसी प्रकार जाड़ों में

सूर्य निकलता ही नहीं। अधिकतर भाग में बर्फ जमी रहती है। दक्षिणी ध्रुव में शीत मरुस्थल का विस्तार बहुत कम है क्योंकि स्थल की अपेक्षा जल अधिक है। उत्तरी गोलार्द्ध में यूरेशिया और अमरीका के उत्तरी भाग में इसी प्रकार की मरुस्थली पेटी पायी जाती है। इसे टुन्ड्रा या लैपलैण्ड कहते हैं। इस प्रदेश में जाड़े का मौसम तो क्रिया रहित होता है। गर्मी में बर्फ पिघलती है और कुछ प्रकार के फूल, घास व काई उग आते हैं। इस वनस्पति का महत्व वैज्ञानिक दृष्टि से चाहे जो कुछ हो परन्तु आर्थिक दृष्टिकोण से ये बेकार हैं। यहाँ पर सफेद रोंयें अथवा फर वाले भालू, लोमड़ी, खरगोश, गिलहरी आदि तो पाये जाते हैं परन्तु इस प्रदेश की दक्षिणी सीमा पर बारहसिंघा, कस्तूरी बैल आदि पाले जाते हैं।

यहाँ के निवासी अधिकतर खानाबदोश हैं और समुद्रतट पर ही अधिक संख्या में रहते हैं। शिकार करना और मछली पकड़ना ही उनके मुख्य उद्यम हैं। लेकिन जिन एस्कीमो या लैप लोगों के पालतू जानवर होते हैं उनका रहन-सहन अधिक स्थायी होता है। यहाँ के लोग—मर्द व स्त्री—एक प्रकार से पहनते-ओढ़ते हैं और अधिकतर अपनी आवश्यकताओं को मारे हुए जानवरों के विभिन्न अंगों से पूरा करते हैं।

Cold Front (शीत सीमान्त) पृथ्वी की सतह पर जब एक ही दिशा से आती हुई शीतवायु व गर्म वायु की धारायें आपस में मिलती हैं तो उनके बीच की सीमा को शीतल वायु का किनारा कहते हैं। गर्म वायु ठण्डी वायु को अपने सामने पीछे से धक्का देती है और साथ-साथ इसके ऊपर उठ जाती है। गर्मवायु के नीचे से ठण्डी हवा आगे को जीभ की तरह बढ़ जाती है। शीतल वायु के किनारे का अगला हिस्सा अधिक तीव्र रूप से उठ जाता है।
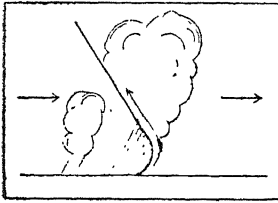
शीत सीमान्त

जब किसी स्थान से होकर शीत सीमान्त गुजरता है तो वहाँ के मौसम में उलट-फेर हो जाती है। वायुभार गिर जाता है, तापक्रम गिर जाता है, हवा की दिशा बायें से दाहिने ओर मुड़ जाती है, जलवृष्टि की मात्रा काफी हो जाती है और बहुआ आँधी आती है व साथ-साथ बिजली चमकती है।

Cold Pole (शीत ध्रुव) पूर्वी साईबेरिया के सुदूर उत्तर में स्थित वर्कोयान्स्क नामक स्थान को अक्सर शीत ध्रुव भी कहते हैं। यहाँ का तापक्रम संसार के सभी भागों से कम रहता है। इतने कम तापक्रम की वजह से इसे शीत ध्रुव कहते हैं। साधारणतया जाड़े के मौसम में तापांश ५८° फार्नहीट तक पहुँच जाता है और संसार में अब तक सबसे कम तापांश यहीं का रहा है। एक साल यहाँ का तापांश—९४° फार्नहीट हो गया था।

इस प्रकार अति निम्न तापांश अति शीत वायु के इकट्ठा हो जाने से हो जाता है। जाड़े में सम्पूर्ण साईबेरिया पर उच्च भारकेन्द्र वाला विरुद्ध चक्रवात स्थित रहता है और इसकी शान्त ऋतु दशा में अति शीत वायु की विस्तृत राशि बन जाती है। यह वायु राशि अपार ही नहीं वरन् अत्यधिक शीतल होती है। इस दृष्टिकोण से बर्कोहन्स्क गाँव की स्थिति भी ध्यान देने योग्य है। यह आर्कटिक वृत्त पर एक गहरी घाटी में बसा है। यह घाटी एक पठार के बीच कटने पर बनी है और इसके दोनों ओर की चट्टानी दीवालें बड़ी ही तीव्र ढालू हैं। पठार पर की वायु वैसे तो ठंढी होती है परन्तु पठार पर स्थित बर्फ के सम्पर्क में आकर यह और भी ठंढी हो जाती है। वास्तव में साफ व शुष्क वातावरण में यह और भी अधिक ठंडी हो जाती है और लम्बी ध्रुवीय रात के काल में इसके ठण्डी होने का काम जारी रहता है। इस प्रकार की

अतिशीत वायु घाटी में उतरती है और उसके फलस्वरूप बर्कोयान्स्क का तापक्रम बहुत नीचा हो जाता है।

Cold Wave (शीत लहर) बहुधा जब निचले अक्षांशों में ध्रुव प्रदेशों की अति शीत वायु का झोंका आ जाता है तो उसे शीत लहर कहते हैं। अक्सर चक्रवात के गुजर जाने पर शीतल वायु के किनारे के पीछे के भाग में शीत हवा का झोंका-सा आ जाता है। यह वायु आमतौर से ध्रुवीय प्रदेशों में उत्पन्न होती है और उत्तरी अमरीका व साइबेरिया में अक्सर प्रवाहित होती रहती है। जाड़े के मौसम में बड़े-बड़े महाद्वीप भूखंडों पर शीत वायु की विशाल राशि इकट्ठी हो जाती है। अतः शीत लहर के लिए विरुद्ध चक्रवात की दशायें और विस्तृत भूखंड का होना आवश्यक है। दक्षिणी गोलार्द्ध में भूखंडों का विस्तार भी कम है और साथ-साथ विरुद्ध चक्रवात की दशा भी उतनी विकट नहीं होती जितना कि उत्तरी गोलार्द्ध के विस्तृत भूखण्डों पर। फलतः दक्षिणी गोलार्द्ध में तीन लहरें अपेक्षाकृत कम तीव्र होती हैं। वहाँ छोटे स्थलखंड होने की वजह से शीत वायु की विशाल राशि नहीं बन पाती। इस प्रकार की शीत लहर बहुधा तापक्रम को नीचा करके तथा अपनी प्रचण्डता से खड़ी फसलों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसको भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न नाम से पुकारते हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ऋतु निरीक्षक मण्डल इस पारिभाषिक शब्द को एक विशिष्ट अर्थ में प्रयोग करता है। वहाँ जब चौबीस घंटे के भीतर तापक्रम एक निश्चित निम्न सीमा से भी नीचा हो जाता है तो वायुमण्डल की उस दशा को शीत लहर कहते हैं। तापक्रम का यह न्यूनीकरण तथा निश्चित सीमा सदैव एक-सी अथवा स्थायी नहीं रहती है। मौसम स्थान विशेष की स्थिति के अनुसार यह अलग-अलग होती है।

कभी-कभी जाड़े के मौसम में किसी विशेष प्रदेश में जब अत्यधिक सर्दी हो जाती है तो कहते हैं कि आजकल शीत लहर का प्रभाव है। यह शीत लहर वास्तव में समीपवर्त्ती पर्वतीय प्रदेशों की वायु होती है जो मैदानी भागों को आकर ठंढा कर देती है।

Colony (उपनिवेश) कम उन्नत अथवा अवनत और कम बसे भागों में जब दूर-दूर देश के लोग जाकर बस जाते हैं तो उन बस्तियों को उपनिवेश कहते हैं। वास्तव में समुद्री यातायात के आविष्कार के बाद की गई खोज से प्राप्त नवीन भूखण्ड अवनत व कम बसे हुये थे। उनके अधिकतर भाग में जंगल थे और उनमें वहाँ की जंगली जातियाँ रहा करती थीं। अतएव यूरोप के विभिन्न देशों के लोगों ने जिनमें अँग्रेज, फ्रांसीसी, डच, पुर्त्तगाली और स्पेनिश मुख्य थे, अपने देश को छोड़ कर इन प्रदेशों में जा बसे और वहाँ उपनिवेश बना लिये। एशिया, अफ्रीका, व दक्षिणी अमरीका में इस प्रकार के बहुत से उपनिवेश पाये जाते हैं। राजनीतिक दृष्टिकोण से ये उपनिवेश वहाँ पर बसने वालों के देश के अधीन होते हैं।

वास्तव में पृथ्वी की प्राकृतिक सम्पत्ति के उपभोग तथा उसके आधार पर आर्थिक उन्नति के दृष्टिकोण से उपनिवेशियों का कार्य सराहनीय है। संसार के सबसे अधिक उन्नति व प्रगतिशील देश संयुक्त राष्ट्र अमरीका और कनाडा शुरू में उपनिवेश ही थे।

Combe (काम्ब) जलखंड से निकली तटरेखा या पहाड़ी के पार्श्व में पायी जाने वाली छिछली व सँकरी छोटी घाटी को काम्ब कहते हैं। दक्षिणी-पश्चिमी इंगलैंड और वेल्स में यह बहुत पायी जाती है और इन्हें क्वम कहते हैं। वास्तव में हिम नदी अथवा नदी के जल के कार्य से यह बन जाती है।

पर्वती प्रदेशों में तो हिम नदी के द्वारा सम्पादित अनावृत्तीकरण से पहाड़ी श्रेणियों के इधर-उधर सर्क बन जाते हैं और इन्हीं के नीचे भूमि पर धारियाँ या नालियाँ बन जाती हैं। धीरे-धीरे इस प्रकार की नालियाँ बनते रहने से तेज नोंकवाले चट्टानी खंड-से बने रह जाते-

हैं। कंघे की तरह उनका रूप होता है और दो चट्टानी दाँतों के बीच, सँकरी छोटी घाटी होती है। इस प्रकार काम्ब बन जाते हैं।

जल के भीतर से निकली तटरेखा पर भी जल के इकट्ठा होने पर नदी बन जाती हैं या यूँ कहा जा सकता है कि कई छोटी-छोटी नदियाँ बन जाती हैं। तट प्रदेश में कोई विशिष्ट ढाल न होने से ये छोटी-छोटी नदियाँ भूमि को छोटी-छोटी सँकरी घाटियों में काट देती हैं और इस प्रकार काम्ब प्रदेश बन जाता है।

Comet (**पुच्छल तारा**) सूर्य के चारों ओर कई प्रकार के ग्रह, नक्षत्र व तारे भ्रमण किया करते हैं। इनमें से एक तारा ऐसा होता है जिसका मध्यवर्ती केन्द्र तो ठोस पदार्थ का बना होता है परन्तु साथ में गैस की एक पूँछ सी लगी रहती है जो हर समय चमकती रहती है। इसे पुच्छल तारा कहते हैं। सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने का इसका ग्रह-पथ अनिश्चित व अव्यवस्थित होता है और आकार व विस्तार में यह ग्रह की अपेक्षा छोटा होता है।

Common (**सार्वजनिक भूमिप्रदेश**) भूमि का वह भाग या क्षेत्रफल जो किसी स्थान की जनता के अधिकार में रहता है और जिसे जनता का हर आदमी स्वतंत्रता से उपभोग कर सकता है, उसे सार्वजनिक भूमि प्रदेश कहते हैं।

Commerce (**वाणिज्य**) वस्तुओं के क्रय-विक्रय, विनिमय और विविध मनुष्यों व राष्ट्रों के बीच होने वाले व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं को वाणिज्य कहते हैं। कृषि अथवा शिल्प सम्बन्धी उद्योग-धन्धों से उत्पन्न वस्तुयें क्रय-विक्रय के लिये मंडियों में लाई जाती हैं और वहाँ उत्पादकों व उपभोगियों के बीच वस्तुओं का हेर-फेर होता है। इसी प्रकार एक प्रदेश की वस्तुएँ दूसरे प्रदेश को ले जाई जाती हैं और विभिन्न राष्ट्रों के बीच आयात-निर्यात, व्यापार शुरू हो जाता है। इस सभी क्रियाओं में एक व्यवस्था व संगठन की आवश्यकता होती है। अतः वस्तुओं के क्रय-विक्रय, विनिमय और आयात-निर्यात व्यापार का संगठित व व्यवस्थित रूप ही वाणिज्य कहलाता है।

वर्त्तमान युग में वाणिज्य की बड़ी प्रधानता व महत्व है। वाणिज्य में उन्नतिशील व प्रगतिशील होने के कारण इंगलैंड व अमरीका इतनी सर्वोच्च गति को पहुँच गये हैं। वास्तव में जापान को महत्व व समृद्धि वाणिज्य के द्वारा ही प्राप्त हो सकी है। परन्तु कोई देश अथवा जाति तभी वाणिज्य में उन्नति कर सकता है जब वहाँ के लोग चतुरता व बुद्धिमानी से अपनी भौगोलिक परिस्थिति व प्राकृतिक सम्पत्ति का पूरा-पूरा उपभोग कर सकें। संसार के जिन देशों में भौगोलिक परिस्थिति व प्राकृतिक सम्पत्ति का पूरा-पूरा उपभोग नहीं हो पाया है वे देश वाणिज्य के दृष्टिकोण से पिछड़े हुये हैं।

Composite Cones (**मिश्रित ज्वालामुखी शंकु**) जब ज्वालामुखी से एक बार लावा निकलता है और दूसरी बार विस्फोट के साथ राख व कंकड़-पत्थर निकल पड़ते हैं तो ज्वालामुखी के उद्गार के चारों ओर जो शंकु बनता है, उसमें लावा व कंकड़-पत्थर दोनों ही मिले रहते हैं। इस प्रकार के पहाड को मिश्रित ज्वालामुखी शंकु कहते हैं। इस शंकु के पार्श्वों को यदि खोदा जाय तो उसमें कंकड़-पत्थर, राख और लावा की परतें एक के बाद एक इस प्रकार मिलेंगी कि ऊपर लावा की परत होगी तो नीचे कंकड़-पत्थर की और फिर लावा की। इस व्यवस्था से स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के मिश्रित शंकु विभिन्न शान्त व विस्फोट उद्गारों के फलस्वरूप बनते हैं और उनसे निकला लावा या कंकड़-पत्थर पारी-पारी से परतों में जमता रहता है। साधारणतया मिश्रित शंकु के चारों ओर ज्वालामुखी

मुख निमज्जन भूखंड की रेखा पायी जाती है और दूर से ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि गले में कालर पड़ी हो।

Compost (कम्पोस्ट खाद) गाँवों में घरों का कूड़ा-करकट एक गड्ढे में बराबर इकट्ठा करके सड़ाया जाता है और जब वह काफी मात्रा में हो जाता है तो इसे खाद के रूप में प्रयोग करते हैं। प्राय. यह खाद बरसात में बनाई जाती है क्योंकि वर्षा के पानी से सड़ने में आसानी होती है। परन्तु यदि गोबर और गोमूत्र के साथ कूड़े-करकट को सड़ाया जाय तथा उसे बराबर उलटते-पुलटते रहा जाय तो एक बड़ी उपयोगी खाद तैयार हो जाती है जिसे कम्पोस्ट कहते हैं।

कम्पोस्ट खाद बनाने की वैज्ञानिक रीति यह है कि एक गड्ढा खोदकर उसमें गोबर, कूड़ा-करकट और खरपतवार को इकट्ठा करते जाते हैं। गोशालाओं में पशुओं के खड़े होने के स्थान के फर्श पर मिट्टी की एक परत बिछा देते हैं और उनके मूत्र में जब यह तर हो जाती है तो इन पर्तों को उसी गड्ढे में डालकर पूरी राशि को कई बार उलट-पुलट देते हैं। इस प्रकार से सड़ाते रहने पर एक भुरभुरी खाद तैयार हो जाती है जिसे कम्पोस्ट कहते हैं।

Compact form (संगठित आकृति) जिन प्रदेशों में स्थलखंड का विस्तार पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक बहुत कुछ बराबर बना रहता है और जिनकी आकृति जलाशयों व समुद्री खाड़ियों के प्रवेश से छिन्न-भिन्न या कटी-फटी नहीं रहती उनकी आकृति को संगठित कहते हैं। रूस, रूमानियाँ, भारत और चीन के प्रदेश संगठित आकृति के हैं। इस प्रकार की आकृति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इन प्रदेशों में राजनीतिक एकीकरण हो सकता है और साथ-साथ यातायात के साधनों की व्यवस्था में सहायता मिलती है।

Composite Landscape (मिश्रित भूखंड) किसी भूखंड के प्रकट होते ही उस पर प्राकृतिक शक्तियों का प्रहार प्रारम्भ हो जाता है। ऋतुप्रहार और अनावृत्तीकरण द्वारा भूखंड पर कई प्रकार के स्थल रूप बन जाते हैं। जल, हिम और वायु की सहायता से इन स्थल रूपों की आकृति में हेर-फेर होता रहता है और प्रारंभिक अवस्था से लेकर अन्तिम अवस्था तक उनका विकास एक चक्र के समान चला करता है। और अनावृत्तीकरण के इस चक्र की प्रारम्भिक, मध्यम और अन्तिम दशाओं से होता हुआ स्थल खंड एक विशिष्ट रूप को प्राप्त होता है। जिस भूखंड पर एक से अधिक अनावृत्तीकरण चक्र चल चुके हैं वहाँ के स्थल रूप विभिन्न प्रकार के होते हैं और इस प्रकार के विभिन्न स्थलरूपों वाला भूखंड, मिश्रित भूखंड कहलाता है। इसका जल प्रवाह अव्यवस्थित व इसका रूप विभिन्न व अनिश्चित होता है।

Compass (ध्रुवघड़ी) ध्रुवतारा लगभग उत्तरी ध्रुव के शिरोविन्दु पर स्थित है। इसलिए यदि हम उत्तरी गोलार्द्ध में ध्रुवतारे की ओर चलें तो हम वास्तविक उत्तर की ओर चलते हैं। परन्तु ध्रुवतारा सदा तो दिखाई नहीं पडता रहता है। इसलिए हमें दिशा ज्ञान के लिए एक छोटे यन्त्र का प्रयोग करना पड़ता है, इसे ध्रुवघड़ी कहते हैं और इसमें एक महीन सिरे पर चुम्बकीय सुई स्थित रहती है। यह सुई इस महीन सिरे पर इस प्रकार रक्खी रहती है कि यह समतल पर चारों ओर घूम सकती है। इस सुई का एक सिरा सदैव पृथ्वी-पटल पर एक ऐसे बिन्दु की ओर संकेत किया करता है जो उत्तरी ध्रुव के समीप है। इस विन्दु को आकर्षक उत्तरी ध्रुव कहते हैं और यह वास्तविक उत्तर से थोड़ा हटकर रहता है। इससे वास्तविक भौगोलिक ध्रुव का ज्ञान नहीं होता। परन्तु नाविकों द्वारा प्रयुक्त ध्रुवघड़ी में इस सुई के नीचे एक समतल गोलाकार कार्ड लगा रहता है और उस कार्ड को ३२ अंशों में बाँट दिया गया होता है। प्रत्येक अंक ११¼° का होता है और इन पर घूमती हुई सुई से दिशा की डिग्री का या दिशा सम्बन्धी कोण का ज्ञान हो जाता है।

Concave Slope (नतोदर ढाल) जब किसी उच्च प्रदेश का ढाल ऐसा होता है कि ऊपर शिखर पर तो बड़ा तीव्र हो परंतु धीरे-धीरे आधार की ओर क्रमशः होता जाय तो उसे नतोदर ढाल कहते हैं। वास्तव में दूर से देखने पर इस प्रकार का ढाल बीच में दबा हुआ मालूम पड़ता है। प्रायः घाटियों के पार्श्वों का ढाल इसी प्रकार का होता है। इस प्रकार के ढाल की दो विशेषतायें होती हैः—

(१) नतोदर ढाल शिखर पर तीव्र और आधार पर बिल्कुल हल्का हो जाता है।

(२) नतोदर ढाल क्रमशः होता है और ढाल प्रदेश अधिक क्षेत्र में फैला रहता है। इस प्रकार के ढाल बनने के दो कारण होते हैं—प्रथम तो यह कि घाटी के पार्श्व के विभिन्न भागों में अनावृत्तीकरण की तीक्ष्णता में अन्तर होता है और दूसरा यह कि ऊपर की कठोर चट्टान के नीचे मुलायम चट्टान की परत होने से ऊपरी भाग कम कट पाता है और नीचे व बीच का भाग अधिक कट जाता है।

Condensation (द्रवीभवन) भाप से पानी बनने की क्रिया को द्रवीभवन कहते है। तरल जल के वाष्प रूप में परिवर्त्तित होने की क्रिया को वाष्पीभवन क्रिया कहते हैं और इसके विपरीत परिवर्त्तन को अर्थात् वाष्प के जल रूप में परिवर्तित होने की क्रिया को द्रवीभवन क्रिया कहते हैं। इस द्रवीभवन क्रिया के तीन रूप होते हैं—(१) जलवाष्प का घनत्व उतना ही रहे, केवल तापक्रम गिर जाये, (२) तापक्रम स्थिर रहे परन्तु जलवाष्प के घनत्व में कमी आ जाये और (३) तापक्रम और जलवाष्प का घनत्व दोनों में इस प्रकार परिवर्त्तन हो कि वायु में जलवाष्प ग्रहण करने की शक्ति कम हो जाये।

द्रवीभवन क्रिया कई प्रकार से होती है—(१) जलवाष्प से लदी वायु जब किसी ठंढे तल के सम्पर्क में आती है तो जलवाष्प पानी की बूँदों में परिणत हो जाता है। परन्तु इस प्रकार से अधिक पानी नहीं हो पाता और इसका असर केवल सतह पर ही रहता है। (२) ऊपर उठती हुई हवा फैलकर ठंढी हो जाती है और प्रति १००० फीट ऊँचाई के दर से ५-६° फार्नहीट तापक्रम गिरता जाता है। (३) जब नम हवा की विभिन्न तापक्रम वाली दो धाराएँ मिलती है तो वे दोनों मिलकर संतृप्त (Saturates) हो उठती हैं और द्रवीभवन क्रिया शुरू हो जाती है। (४) वायुमण्डल की विद्युत द्वारा भी द्रवीभवन क्रिया को सहायता मिलती है। (५) संतृप्त वायु के उच्च भूमियों या ठंढे प्रदेशों की ओर बढ़ने से भी द्रवीभवन होने लगता है।

द्रवीभवन के लिये कोई ऐसी वस्तु का होना जरूरी है जिस पर पानी की बूँदे ठहर सकें। बिना इस प्रकार की वस्तु के द्रवीभवन सम्भव ही नहीं है और वायुमंडल में पाये जाने वाले धूल के महीन कण यह काम करते हैं। धूल के ये कण २००० से ५००० और फीट तक खूब पाये जाते हैं। धुंध, कुहरा और बादल; ओस और पाला तथा वर्षा और हिम जलवाष्प के वे रूप हैं जो द्रवीभवन के बाद प्रकट होते हैं।

Condominium (द्विराजशासित राज्य) जिस प्रदेश पर दो राजाओं अथवा राष्ट्रों का शासन अथवा प्रभुत्व हो उसे द्विराजशासित राज्य कहते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण सूडान है जिस पर ग्रेट ब्रिटेन और मिश्र दोनों का मिला-जुला शासन है।

Configuration (प्राकृतिक बनावट) भूपटल के किसी विशेष भाग की समतल रूप रेखा तथा उसकी उच्च भूमियों की आकृति के बाह्यरूप को वहाँ की प्राकृतिक बनावट कहते हैं। इसके अन्तर्गत तीन बातें सम्मिलित हैं—(१) आकृति, (२) रूपरेखा और (३) भूप्रकृति की विशेषता।

Confluence (संगम) जिस स्थान या विन्दु पर एक नदी का जल दूसरी नदी में जा मिलता है अथवा जहाँ दो बराबर से बहने वाली नदियाँ एक दूसरे से मिलकर एक विशाल नद का रूप धारण कर लेती हैं, उसे संगम कहते हैं। संगम स्थान में नदी का फैलाव विस्तार व जल की गहराई सभी कुछ साधारण से अधिक रहती है।

Confluent (संयुक्त नदी) जो नदी दूसरी नदी में आकर मिल जाती है और तत्पश्चात् दूसरी नदी की धारा में एक होकर बहने लगती है उसे संयुक्त नदी कहते हैं।

Conglomerate (कंकड़ों की चट्टान) बहते हुए जल व चलते हुए हिम के प्रवाह में इधर-उधर से काटे-छाँटे चट्टानी टुकड़े घिसघिसाकर रगड़ खाकर गोल कंकड़ बन जाते हैं। इस प्रकार के गोल पत्थर व कंकड़ बलुही सामग्री में मिलकर बहुधा बड़े-बड़े ढेर या ढोके बना लेते हैं उसे कंकड़ों की चट्टान कहते हैं। वैसे तो कंकड़-पत्थर, बालू, मिट्टी की राशि नदी के किनारों या जहाँ नदी मैदानों में प्रवेश करती है पायी जाती है परन्तु यह ढीली व अलग-थलक होती है। जब ऊपर के दबाव से ये विभिन्न वस्तुएँ आपस में सट जाती हैं और इस प्रकार संगठित हो जाती हैं कि उनकी शिलाएँ भी बन जाती हैं तो उन्हें कंकड़ों की चट्टान कहते हैं। कंकड़ों की यह चट्टान बड़ी मुलायम होती है और इसके किनारे ऊबड़-खाबड़ होते हैं।

Conical mountains (शंक्वाकार पर्वत) शंक्वाकार पर्वत वह होते हैं जो निक्षेप से बनते हैं और जिनकी आकृति अनावृत्तीकरण व ऋतु प्रहार के कारण कट-छँट कर शंकु समान हो जाती है। वास्तव में किसी समय भूपटल इतना कमजोर था कि उसमें स्थान-स्थान से विस्फोट होकर पिघली हुई चट्टान निकला करती थी। बार-बार उद्गार होने से इस एकत्रित सामग्री का आकार एक ऊँचे टीले के समान हो गया। इस प्रकार के लावा से बड़े स्तूपाकार पर्वत बन गये। परन्तु इनके बनते ही प्राकृतिक शक्तियों ने इन्हें काटना-छाँटना भी शुरू कर दिया। फलतः इसके ऊपर का मुलायम आवरण तो हट गया और आग्नेय चट्टानों का बना बीच का भाग एक पहाड़ी सा खड़ा रह गया। इस प्रकार के पर्वतों को शंक्वाकार पर्वत कहते हैं और इनकी ऊँचाई आसपास की भूमि से साधारणतया ३००० फीट से अधिक नहीं होती।

शंक्वाकार पर्वत के वास्तव में चार भाग किये जा सकते हैं—आधार, मस्तक, शिरोमुख और शिखर। आधार पर ढाल क्रमशः होता है परन्तु मस्तक पर यह तीव्र हो जाता है। शिरोमुख पर यह फिर क्रमशः हो जाता है और शिखर पर फिर तीव्र हो जाता है। वास्तव में शिरोमुख इस प्रकार के पर्वत का सबसे ऊँचा स्थान होता है।

इसके अन्तर्गत बहुधा ज्वालामुखी शंकुओं को भी ले लेते हैं।

शंक्वाकार अंकन

Conical Projection (शंक्वाकार अंकन) यहाँ हम एक ऐसे ग्लोब की कल्पना करते हैं जिसके मध्य में प्रकाश हो और जो कागज के एक शंकु से घिरा हो और जिसकी नोक ध्रुव के ऊपर हो। यह शंकु ग्लोब को किसी अक्षांश रेखा पर स्पर्श करता है जो कि प्रामाणिक समानान्तर कहलाता है। जिस रेखा पर से शंकु को काट कर फैलाते हैं वह केन्द्रीय देशान्तर कहलाता है और शंकु के
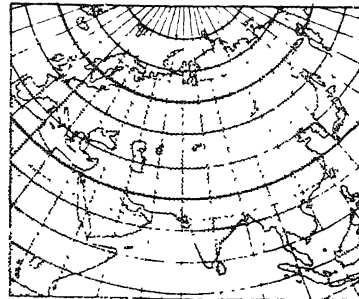
आधार से शंकु के शिखर तक जाती है। जब कागज खोलकर फैला दिया जाता है तो देशान्तर रेखाएँ समान केन्द्र वृत्तों के रूप में दिखाई पड़ती हैं। मध्यान्ह रेखाएँ सीधी प्रतीत होती है जो कि शंकु की चोटी से निकल कर फैली होती है।

यह अंकन बड़ा ही सरल होता है और इसीलिए बड़ा ही लोकप्रिय होता है। एटलस के मानचित्रों के लिए यह विशेष उपयुक्त रहता है क्योंकि इस अंकन पर खींचे गये मानचित्र को खंडों में बाँटा जा सकता है और फिर इस प्रकार के खंडों को मानचित्रावली के विभिन्न पृष्ठों पर छापा जा सकता है। वास्तव में मध्यवर्ती अक्षांश रेखाओं के बीच स्थित प्रदेशों के चित्रण के लिए उपयुक्त अंकन का मिलना कठिन होता है और शंक्वाकार अंकन इन मध्यवर्त्ती अक्षांश प्रदेशों के लिए ही विशेष उपयुक्त है। इसलिए और भी अधिक लोकप्रिय हैं।

शंक्वाकार अंकन के दो प्रकार होते है: (१) एक प्रामाणिक समानांतर वाला और (२) दो प्रामाणिक समानान्तर वाला। प्रथम में तो केवल एक प्रामाणिक समानान्तर को मानदण्ड के अनुसार अंशों में बाँटा जाता है। परंतु दूसरे में दो प्रामाणिक समानांतर ही को लेकर दोनों को ही मानदण्ड के अनुसार अंशों में बाँट देते हैं। इन दोनों ही प्रकारों में मध्यान्ह रेखायें सीधी और समानान्तर एक केन्द्रवृत्त होते हैं। केवल प्रामाणिक समानान्तर पर दूरियाँ यथार्थ व ठीक होनी हैं। किनारों की ओर मानदण्ड बढ़ता जाता है। अतएव एक प्रामाणिक समानान्तरवाला शंक्वाकार अंकन केवल छोटे-छोटे देशों जैसे डेनमार्क, पोलैंड और आयरलैंड के लिए ही उपयुक्त होता है। दो प्रामाणिक समानान्तर वाले अंकन में दो प्रामाणिक समानान्तर इस प्रकार खींचे जाते हैं कि एक मानचित्र के आधार पर रहे तो दूसरा मानचित्र के शिरे पर। दोनों को सही लम्बाई का बनाया जाता है और उनके बीच की दूरी भी यथार्थ होती है। अतः सभी मध्यान्ह रेखाओं और चुने हुए प्रामाणिक समानान्तर पर मानदण्ड ठीक रहता है। फलतः इस पर वे देश आसानी से चित्रित किये जा सकते हैं जिनका अक्षांश विस्तार अधिक है। शंक्वाकार अंकन न तो समाकार होता है और न समक्षेत्र ही।
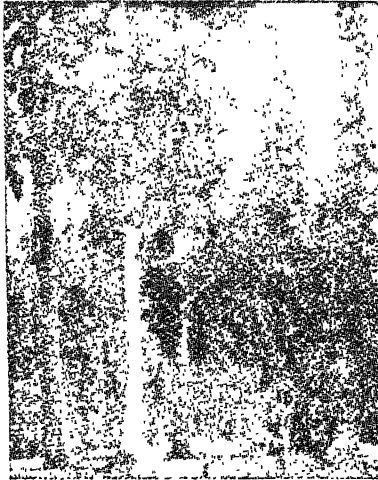
नुकीली पत्ती वाले वन

Coniferous Forest (नुकीली पत्तीवाले वन) शीत-शीतोष्ण कटिबन्ध में बड़ी ही विषम जलवायु पायी जाती है। वहाँ जाड़े की ऋतु अति शीत व बहुत लम्बी होती है और गर्मी का मौसम छोटा होता है। अतः उत्तरी अमेरिका तथा यूरेशिया महाद्वीपों में उत्तरी ध्रुव वृत्त के समीप नुकीली पत्ती वाले वनों की पेटी पूर्व से पश्चिम तक फैली है। ये वन उत्तरी एलास्का, कनाडा, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, उत्तरी व मध्य रूस, साइबेरिया इत्यादि देशों में मिलते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में

दक्षिणी अमरीका के धुर दक्षिणी भाग में तथा न्यूजीलैंड के दक्षिणी टापू में भी यही वन पाये जाते हैं। उष्ण व शीतोष्ण कटिबन्ध में उच्च पर्वतीय भागों में भी ऐसे वृक्ष मिलते हैं। यूरेशिया में इन वनों को 'टेगा' कहते हैं और इनका विस्तार ताप व वृष्टि के अनुसार ही उत्तर से दक्षिण तक रहता है। तापक्रम व वृष्टि की दशाओं में अन्तर आने से ये वन प्रदेश उत्तर में टुन्ड्रा प्रदेश में समा जाते हैं और दक्षिण में घास के मैदानों अथवा पतझड़ वन में परिणत हो जाते हैं।

इन वनों के मुख्य वृक्ष चीड़, स्प्रूस, लार्च, फर, सीडर, हेमलाक इत्यादि हैं। इनकी पत्तियाँ सुई की तरह नुकीली होती हैं। इनका ऊपरी पर्त मोटा तथा चिकना होता है ताकि बर्फ तथा ठंड से रक्षित रह सके। इनकी शाखाओं का फैलाव नीचे की ओर होता है ताकि बर्फ खिसककर नीचे गिरती रही। इन वृक्षों के तने मोटे तथा शिखर नुकीले होते हैं ताकि तीव्र वायु के झोंकों में सुरक्षित रह सकें। इन वृक्षों की ऊँचाई भी बहुत अधिक होती है और इनकी लकड़ी मुलायम होती है।

ये वन सदाबहार हैं और इनकी पत्तियाँ सदा बनी रहती हैं। परन्तु ये उतने सघन नहीं होते जितने कि भूमध्यरेखा के वन। इन वनों में जहाँ-तहाँ चौड़ी पत्तीवाले पतझड़ वृक्ष भी मिलते हैं। ये मुख्यतः नदी तटों पर अथवा दलदली भागों में पाये जाते हैं। इन वन प्रदेशों का विशेष आर्थिक महत्व है। इनसे मुलायम व्यापारिक लकड़ी प्राप्त होती है जो दियासलाई व कागज की लुग्दी तैयार करने में काम आती है। इन वन प्रदेशों में बहुत प्रकार के रोयेंदार अथवा फर वाले जानवर पाये जाते हैं। इसके अलावा बहुत प्रकार के रोयेंदार खनिज-पदार्थों का भंडार निहित है। जाड़े की ऋतु की बर्फ से यातायात में सहायता मिलती है। इसलिए यहाँ का मुख्य उद्यम लकड़ी काटना, फरदार जानवरों को मारना या फसाना और जहाँ कहीं संभव है वहाँ खनिज निकालना है। साइबेरिया के इन वन प्रदेशों का उपयोग नहीं हो पाया है क्योंकि वे दुर्गम हैं और वहाँ बीच-बीच में घास के मैदान व दलदल पाये जाते हैं। परन्तु उत्तरी अमरीका, यूरोप में यह प्रदेश राष्ट्र की सम्पत्ति है और जलविद्युत की सहायता से इस प्रदेश ने बहुत उन्नति कर लिया है।

Conjunction (सौर-सम्बन्ध) (१) दो नक्षत्रों व ग्रहों की दिखलाई पड़ने वाली समीपता को सौर सम्बन्ध कहते हैं। वास्तव में ये नक्षत्र एक दूसरे से दूर होते हैं परन्तु देखने में बड़े करीब मालूम पड़ते हैं।

(२) आकाश मण्डल की ओर पृथ्वी से देखने पर जब दो नक्षत्रों व तारों की स्थिति इस प्रकार मालूम पड़े कि वे बिल्कुल ही या करीब-करीब एक ही दिशा की ओर दिखलाई पड़ें तो उस स्थिति व दशा को भी सौर सम्बन्ध कहते हैं।

Consequent Drainge (उत्क्षेप अनुरूप जलप्रवाह) पृथ्वी के भूपटल पर कुछ भाग जल के भीतर से निकलकर शुष्क स्थल बन जाते हैं और कुछ भाग जो अब तक स्थल खंड थे वे अन्दर धँस जाते हैं और वहाँ जल ही जल हो जाता है। समुद्र के जल से जब कोई स्थल खंड बाहर निकलता है तो उसका ढाल एक विशेष प्रकार का होता है जो कि आसपास की पुरानी भूमि के विपरीत नहीं तो कम से कम भिन्न जरूर होता है। इस भूखंड के ऊपर प्रकट होने के बाद उस पर जलप्रवाह भी शुरू हो जाता है। यदि जलप्रवाह की दशा व गति उसी ओर रहे जिधर को उत्क्षेप का ढाल है तो
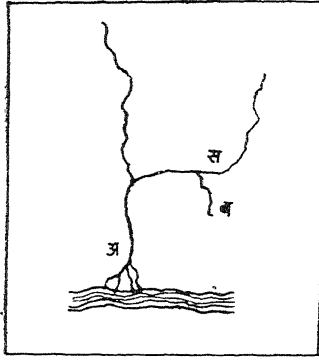
उत्क्षेप अनुरूप जलप्रवाह
(अ) Consequent river
(ब) Obsequent river
(स) Subsequent river

इस प्रकार के जलप्रवाह को उत्क्षेप अनुरूप जलप्रवाह कहते हैं। वास्तव में यह जलप्रवाह नये प्रकट हुए भूखंड के ढाल के फलस्वरूप होने लगता है। इस प्रकार की नदी को उत्क्षेप अनुरूप नदी कहते हैं। (देखिये Obsequent River, Subsequent River)

Continent (महाद्वीप) महाद्वीप शब्द का प्रयोग दो अर्थो में किया जाता है एक तो वास्तविक और दूसरा व्यावहारिक। (१) वास्तविक अर्थ में तो महाद्वीप पृथ्वी के वे महान् व विस्तृत भूखंड हैं जो सब मिल कर स्थल मण्डल बनाते हैं। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जा सकता है कि पृथ्वी का स्थलमंडल कई खंडों में बँटा हुआ है जैसे यूरोप, एशिया, अफ्रीका, अमरीका और आस्ट्रेलिया। स्थलमंडल के इन महान् व विस्तृत भूखंडों को ही महाद्वीप कहते हैं। कभी-कभी अमरीका को दो महाद्वीप मानते हैं एक उत्तरी अमरीका और दूसरा दक्षिणी अमरीका।

(२) व्यावहारिक अर्थ में महाद्वीप से प्रमुख भूखंड का बोध होता है और इंगलैंड में रहने वालों के दृष्टिकोण से यूरोप को महाद्वीप कह कर पुकारा जाता है।

Continental Climate (महाद्वीपीय जलवायु) शीतोष्ण कटिबंध में स्थित विशाल भूखंडों के आन्तरिक प्रदेशों की जलवायु को महाद्वीपीय जलवायु कहते हैं। ये प्रदेश बड़े-बड़े महाद्वीपों के बीच में स्थित होने के कारण समुद्र के समकारी प्रभाव से वंच्छित रह जाते हैं। अतः यह जलवायु बड़ी विषम होती है। जाड़े में खूब जाड़ा और गर्मी में काफी गर्म पड़ता है। मौसमी तापांश का अन्तर ही अधिक नहीं होता बलिक दिन-रात के तापक्रम में बड़ा फर्क पाया जाता है। वर्षा की मात्रा बहुत कम होती है क्योंकि पछुआ हवाएँ इन भागों तक पहुँचती-पहुँचती सब-कुछ बरसा कर के खाली हो चुकी होती है। इस जलवायु में वायु की आर्द्रता भी बहुत कम होती है। महाद्वीपीय जलवायु की विशेषताओं को संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है—(१) तापक्रम की विषमता दक्षिण से उत्तर की ओर और समुद्रतट से महाद्वीपों के आंतरिक भागों की ओर उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। जहाँ कहीं समुद्रतटों के समानान्तर पर्वत श्रेणियाँ स्थित हैं वहाँ यह परिवर्त्तन बड़ा ही आकस्मिक होता है। वर्षा की मात्रा समुद्रतट से अन्दर की ओर और दक्षिण से उत्तर की ओर घटती जाती है। परन्तु थोड़ी-बहुत वर्षा साल भर बराबर होती रहती है। जाड़ों की वर्षा चक्रवात सम्बन्धी होती है और अधिकतर बर्फ के रूप में रहती है। गर्मियों की वर्षा वाहनिक होती है और काफी मात्रा में होती है।

जलवायु की ये विशेषताएँ उत्तरी गोलार्द्ध में अधिक प्रबल व स्पष्ट हैं। इसका कारण यह है कि दक्षिणी गोलार्द्ध में तो महाद्वीपों का विस्तार शीतोष्ण कटिबंध में बहुत कम है। फलतः वे कहीं भी समुद्र से अधिक दूर नहीं हैं। परन्तु उत्तरी गोलार्द्ध में यूरोप और ऐशिया के भू-खंड का मध्य भाग तथा उत्तरी अमरीका में राकी पर्वत श्रेणी से पूर्व का भाग समुद्र के प्रभाव से बहुत दूर है। अतः वहाँ महाद्वीपीय जलवायु की सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं।

Continental location (महाद्वीपीय स्थिति) जो देश अथवा प्रदेश इस प्रकार

स्थित हो कि उसके चारों ओर स्थलखंड के अन्य भाग रहे उसकी महाद्वीपीय स्थिति कहते हैं। स्विट्जरलैंड, जेकोस्लवाकिया, आस्ट्रिया और हंगरी की स्थिति महाद्वीपीय है। इनके उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में अन्य देश स्थित हैं और इनका सम्पर्क कहीं भी समुद्र से नहीं है।

इस प्रकार की स्थिति के कई दोष हैं। प्रथम तो यह कि ऐसा राष्ट्र अपने विदेशी व्यापार की विशेष उन्नति नहीं कर सकता और दूसरा यह कि बाह्य संसार के साथ सम्बन्ध व सम्पर्क के लिए इसे दूसरे समीपवर्त्ती राष्ट्रों पर निर्भर रहना पड़ता है। तीसरे महाद्वीपीय स्थिति वाले देशों तक पहुँचना कठिन होता है और आर्थिक दृष्टिकोण से वे नवीन जागृति से अलग रह जाते हैं। बोलीविया इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

Continental Drift (**महाद्वीपीय प्रसार**) अति प्राचीन काल में पृथ्वी के भूपटल का सम्पूर्ण स्थलखंड एक ऐसा विस्तृत प्रदेश था जिसमें वर्त्तमान समय के सभी महाद्वीप सम्मिलित थे। इसको पानजिया कहते थे। पृथ्वी का अधिकांश भाग एक गहरे समुद्र से घिरा था और इस संयुक्त स्थलखंड पर भी कभी-कभी छिछला समुद्र चढ़ आया करता था। वास्तव में सम्पूर्ण स्थलखण्ड एक अधिक घनत्व वाली वस्तु पर तैरता रहता है और एक समय ऐसा हुआ कि इस स्थलखंड में प्रसार हुआ जिससे कि आस्ट्रेलिया व अन्टार्कटिका अलग हो गये, उत्तरी व दक्षिणी अमरीका भी पश्चिम की ओर खसक गये और भारत के दक्षिणी भाग व अफ्रीका प्रदेश के बीच भी समुद्र बन गया। इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक श्री अल्फ्रेड वेजनर हैं। महाद्वीपी प्रसार का सिद्धान्त कई बातों से साबित हो जाता है—(१) प्रसार के फलस्वरूप बने प्रदेश एक दूसरे की बाह्य रेखा में फिट किये जा सकते हैं। दक्षिणी अमरीका के ब्राजील का उभडा हुआ भाग अफ्रीका की गिनी की खाडी में बिल्कुल ठीक बैठ जाता है। (२) विभिन्न प्रदेशों में भूतल व भूगर्भ सम्बन्धी समानताएँ पायी जाती हैं। (३) अटलान्टिक महासागर के दोनों ओर के देशों में जीवजन्तु व उनके अवशेष एक ही प्रकार के हैं। (४) इसके अलावा स्थलखंड के खसकने का प्रमाण ग्रीनलैंड में पाया जाता है। प्रति वर्ष ३२ मीटर की गति से ग्रीनलैंड अमरीका महाद्वीप की ओर बढ़ रहा है।

Continental Platform (**महाद्वीपीय भूखंड**) पृथ्वी का ठोस आवरण स्थलमण्डल कहलाता है परन्तु इसका अधिकांश भाग जल से घिरा हुआ है। जहाँ यह जलमंडल जल से ऊपर निकला हुआ है वहाँ ही शुष्क भूखंड बन गये हैं और महाद्वीपों की सृष्टि हो गयी है। पृथ्वी के भूपटल का वह सभी समतल भाग जो महासागरों के जल से ऊपर निकला हुआ है, महाद्वीपीय भूखंड कहलाता है। इसके अन्तर्गत महाद्वीपों पर स्थित वे निम्न प्रदेश भी सम्मिलित हैं जो समुद्रतल से नीचे हैं और महाद्वीपों के किनारे का उथला समुद्र भी। अतः महाद्वीपीय भूखंड उस सम्पूर्ण क्षेत्र व स्थल भाग को कहते हैं जिसमें महाद्वीपीय सागर से लेकर महाद्वीपों के शुष्क उच्चभूमियों तक के सभी स्थल रूप आ जाते हैं।

Continental Shelf (**महाद्वीपीय सागर**) धरातल के गहरे गड्ढे महासागरों से भरे हुए हैं। इसकी गहराई सब जगह एक सी नहीं होती। कुछ ऐसे प्रदेश हैं जहाँ सागर बहुत गहरा है परन्तु महाद्वीपों को घेरे हुए समुद्र की गहराई केवल १०० फैदम या ६०० फीट है। समुद्रतल का यह उथला भाग महाद्वीपीय सागर कहलाता है। वैसे तो इसकी औसत गहराई ६०० फीट ही होती है परन्तु कहीं-कहीं यह कम भी होता है। इसका रूप ढालुआँ होता है और आकार में इसे आलमारी के खाने या चबूतरे के समान कह सकते हैं; इसका ढाल किनारे से समुद्र की ओर होता है।

कहीं-कहीं यह महाद्वीपीय सागर चौड़ा होता है और कहीं सँकरा। इसका नियम यह है कि जब महासागर के समीप पर्वत होते हैं तो यह सँकरा होता है और ऊँचे स्थल से एकदम जल की गहराई शुरू हो जाती है। आयरलैंड के तट से पश्चिम की ओर महाद्वीपीय सागर की चौड़ाई ५०.मील से भी अधिक है।

यह सम्भवतः महाद्वीपों के पहिले के विस्तार को सूचित करता है और इनके निर्माण अथवा उत्पत्ति के विषय में कई विचार हैं परन्तु सभी अनिश्चित हैं। या तो समुद्र का जल बढ़ जाने से किनारे के भाग डूब गये और इस प्रकार का उथला जलप्रदेश बन गया या भूखंड नीचे को धँस गया और उसके तटीय प्रदेशों के जलमग्न होने से महाद्वीपीय सागर बन गये। इसके अलावा और भी कारण हो सकते हैं। यदि जल व स्थल का तल वैसा ही बना रहे तो लहरों द्वारा अनावृत्तीकरण से स्थल को काट-काटकर के यह प्रदेश बन सकता है। आइसलैंड और फारो द्वीप के चारों ओर का महाद्वीपीय सागर इसी प्रकार बना है। जल के अन्दर नदियों द्वारा बहाकर लायी सामग्री के निक्षेप से भी यह बन जाते हैं। उत्तरी अटलांटिक महासागर में यूरोप और अमरीका के महाद्वीपीय सागरों का विस्तार सम्भवतः हिमनदियों के निक्षेप से बना है। साधारणतया अनावृत्तीकरण निक्षेप दोनों ही के फलस्वरूप विस्तृत महाद्वीपीय सागर बन जाते हैं और आजकल मछलियाँ मारने के उद्यम के प्रधान केन्द्र हो गये हैं।

Continental Slope (**महाद्वीपीय ढाल**) महाद्वीपीय सागर के किनारे से उतरते ही समुद्र का जलमग्न समतल ढलुआ हो जाता है। इस ढाल को **महाद्वीपीय ढाल** कहते हैं। इस ढाल का कोण १० से भी कम होता है और इसका किनारा तीव्र चट्टान खंड के समान सीधा होता है। फलतः इस ढाल के बाद समुद्र की गहराई एकदम से बढ़ जाती है। बहुधा महाद्वीपीय ढाल के बराबर समुद्र की गहराई ६०० फीट से भी अधिक हो जाती है।

Continental glaciation (**महाद्वीपीय हिम आवरण**) वर्त्तमान युग से बहुत पहिले एक वह समय था जब किसी भौतिक अथवा वायुमंडल के परिवर्त्तन के कारण उत्तरी अमरीका व उत्तरी योरप के प्रदेश इतने ठंडे हो गये कि उनका सम्पूर्ण स्थलखंड हिम आवरण से ढका हुआ था। उत्तरी अमरीका में मिसौरी और ओहिओ नदी घाटियों का सम्पूर्ण उत्तरी प्रदेश इसी प्रकार के हिम आवरण के नीचे दबा था। यूरोप में आल्प्स प्रदेश तक का उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश इसी प्रकार के आवरण से आच्छादित था। भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि यह आवरण विभिन्न हिमनदियों के संयोग से बना था और इसमें गति भी थी। जलवायु के परिवर्त्तन के अनुसार व अनुरूप ही यह हिमनदियाँ कभी आगे बढ़ती थीं और कभी पीछे हटती थीं।

महाद्वीपीय हिम आवरण के कारण के विषय में मतभेद है। कुछ का विचार है कि अधिक हिमपात से इस आवरण का आविर्भाव हुआ। कुछ विशेष स्थलखंड की ऊँचाई के एकदम बढ़ जाने से इन हिमनदियों का प्रवाह मानते हैं। कइयों का विचार है कि वायुमण्डल में कारबन डाइआक्साईड की कमी से ठंडक अधिक बढ़ गई। कुछ लोग महाद्वीपीय हिम आवरण को सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की गति के परिवर्त्तन के कारण मानते हैं। एक मत के अनुसार सूर्य में धब्बों की अधिकता के कारण तापक्रम कम हो जाता है और महाद्वीपों पर हिम का स्थायी आवरण जम जाता है। परन्तु इनमें से कोई भी विचार सम्यक, व्यापक व सार्वभौमिक नहीं है। सभी किसी न किसी अंश में अपूर्ण ठहरते हैं।

इस समय तो महाद्वीपीय हिम आवरण का ज्ञान व अनुमान उन प्रदेशों

में पाये जाने वाले चिन्हों से ही होता है। उत्तरी अमरीका और यूरोप के उत्तरी भागों में जलप्रवाह अव्यवस्थित, तथा झीलों व दलदलों की बहुलता पायी जाती है। ऊपर की ढीली मिट्टी अधिकतर स्थानों से बहा कर ले जायी जा चुकी है और नीचे की चट्टानों में हिमनदी द्वारा किये गये घर्षण और क्षय के चिन्ह मिलते हैं। साथ-साथ हिम आवरण के किनारे वाले भागों में हिमनदी निक्षेप पाया जाता है और विभिन्न प्रकार व विस्तार के कंकड़-पत्थर जो दूरस्थ स्थानों से बहाकर लाये गये हैं बिखरे दिखायी देते हैं। नार्वे की नदियों में पाये जाने वाले जलप्रपात इसी हिमआवरण की देन है और वहाँ की जलविद्युत इन्हीं के सहारे उन्नति कर सकी है।

यूरोप में इस हिम आवरण की तीन दशायें का पता चलती हैं। पहली तो वह है जब जलवायु इतनी ठंडी थी कि मध्य जर्मनी तक हिम आवरण फैला हुआ था। दूसरी दशा वह थी जब यह हिम आवरण बाल्टिक सागर तक ही रह गया और तीसरी दशा वह थी जब यह हट कर फिनलैंड तक ही रह गया। इन तीनों दशाओं के स्पष्ट चिन्ह इन भूप्रदेशों की प्रकृति, जल-प्रवाह व मिट्टी से दिखलाई पड़ते हैं।

Continental Plateau (**महाद्वीपीय पठार**) प्राचीन रवेदार चट्टानों के बने मैदानी भाग जब पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों द्वारा इस प्रकार ऊपर उठा दिये जाते हैं जैसे कि मेज तो इस प्रकार के प्रदेशों को महाद्वीपीय पठार कहते हैं। ये वास्तव में उत्क्षेप से बनते हैं और अफ्रीका, अरब, स्पेन, दक्षिणी भारत, आस्ट्रेलिया, ग्रीनलैंड अन्टार्कटिका के पठार इसी प्रकार के हैं। इन पठारों के चारों ओर किनारे पर पर्वत श्रेणियाँ नहीं होतीं। आस-पास की भिन्न भूमि या समुद्रतल से ये पठार एकदम तीव्र ढाल बनाते हुए उठते हैं। अक्सर इनका ढाल लम्बरूप होता है। महाद्वीपीय पठार कुछ तो छोटे व सपाट होते हैं और कुछ विशेष जटिल बनावट के होते हैं। इसी प्रकार इनमें से हाल ही में बने हैं। जहाँ इस कार के पठार समुद्र के समीप स्थित हैं वहाँ समुद्रों की सपाट तट रेखा से स्पष्ट है कि ये बहुत दिन पहले नहीं बने हैं। संसार के सबसे विस्तृत पठार ये ही हैं।

Contour (**समउच्च भूमि दर्शक रेखाएँ**) समउच्च भूमि दर्शक रेखा समुद्रतल से ऊपर समान ऊँचाई वाले स्थानों पर से जाने वाली एक कल्पित रेखा है। दीर्घ मानदण्ड के मानचित्रों में समउच्च भूमि दर्शक रेखाओं द्वारा ऊँचाई बड़ी साधारण रीति से दिखलाई जाती है। इसलिए सपाट कागज पर खींचे मानचित्र पर कई समउच्च भूमि दर्शक रेखाओं द्वारा भूप्रकृति का प्रदर्शन किया जाता है। इसके द्वारा उच्चभूमियों व ढाल को चित्रित किया जाता है। चूँकि उच्च भूमि की ऊँचाई व ढाल विभिन्न होता है इसलिए समउच्चभूमि दर्शक रेखाएँ भी टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं। मानचित्र पर ये मुड़ी हुई रेखाओं से रहते हैं। कभी तो इनकी आकृति बन्द घिरौंदों जैसी होती है और कभी ये रेखाएँ खुली रहती हैं जिनके सिरे मानचित्र की बाह्य सीमा पर अन्त हो जाते हैं। भूप्रकृति के विभिन्न स्थल रूपों के अनुसार समउच्च भूमि दर्शक रेखाओं की आकृति भी अलग-अलग होती है। प्रायः चार प्रकार की समउच्च भूमि दर्शक रेखाएँ पायी जाती हैं—(१) बन्द घिरौंदे की तरह की आकृति उन रेखाओं की होती है जो पहाड़ियाँ चित्रित करती हैं। (२) बन्द गोलाकार रेखाओं से दूर बाहर की ओर मुड़ती हुई रेखाएँ पर्वतशाखाओं को चित्रित करती हैं। (३) गोलाकार बन्द रेखाओं की ओर अन्दर को मुड़ती हुई समउच्च भूमि दर्शक रेखाएँ घाटियाँ चित्रित करती हैं। (४) पहाड़ी चित्रित करने वाली समउच्च भूमि-दर्शक रेखाओं को मिलाने वाली रेखाएँ दर्रे या दो पहाड़ियों के बीच का निम्न प्रदेश दिखलाती हैं।

दो समउच्च भूमि दर्शक रेखाओं के बीच की दूरी का वास्तविक दूरी से अनुपात होता है। कभी तो उनके बीच ५० फीट का अन्तर रक्खा जाता है और कभी कई हजार फीट का। वास्तव में यह दूरी लघु या दीर्घ मानदण्ड मानचित्रों के अनुसार कम-ज्यादा होती रहती है परन्तु विभिन्न रेखाओं के बीच की दूरी से भूखंड के ढाल का पता चलता है। जब ये रेखाएँ बहुत पास-पास हों तो इसके अर्थ यह है कि ढाल तीव्र है और जब इनके बीच की दूरी काफी हो तो संकेत है कि ढाल क्रमशः है। नतोदर ढाल को चित्रित करने वाली रेखायें अन्दर को [illegible] बाहर की तरफ दूर-दूर होती जाती हैं। जब ये रेखाएँ बराबर दूरी पर स्थित हों तो ढाल सम होता है। इसके विपरीत जब इनके बीच की दूरी कहीं कम और कहीं ज्यादा हो तो स्पष्ट है कि ढाल ऊँचा-नीचा है।

Contributory Hinterland (**सहायक पृष्ठ प्रदेश**) किसी बन्दरगाह का महत्व व व्यापार उसके पीछे के प्रदेश पर निर्भर रहता है। जब बन्दरगाह के पीछे का प्रदेश ऐसा हो कि वहाँ की उपज व शिल्प उद्योग के उत्पादन का निकास बन्दरगाह के जरिये होता हो तो उस पृष्ठ प्रदेश को सहायक पृष्ठ प्रदेश कहते हैं। वास्तव में जिस बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश सहायक होता है वहाँ के व्यापार में आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक होता है। सहायक पृष्ठ प्रदेश दो प्रकार का होता है—(१) खेतिहर और (२) औद्योगिक। खेतिहर सहायक पृष्ठ प्रदेश वाले बंदरगाह के आयात की मात्रा तो निर्यात से जरूर कम होती है परंतु आयात का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसके विपरीत औद्योगिक सहायक पृष्ठ प्रदेश वाले बन्दरगाह से निर्यात की जाने वाली सामग्री तो बनी हुई होती है और आयात के सामान का अधिकतर भाग कच्चा माल होता है। इसलिए मूल्य व मात्रा दोनों के ही दृष्टिकोण से निर्यात-आयात की अपेक्षा बढ़ा-चढ़ा होता है।

Convection (**संवाहन**) तरल व गैस पदार्थों में जब विभिन्न कणों के हिलने-डुलने से गर्मी फैलती है तो उसे संवाहन कहते हैं। तरल व वायु पदार्थ को जब नीचे से गर्म किया जाता है तो उसमें संवाहन धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं। नीचे के स्तर के कण गर्म होकर ऊपर उठते हैं और उनका स्थान लेने के लिए ऊपर के ठंडे व भारी कण नीचे आते हैं। इस प्रकार की उलट-फेर से सम्पूर्ण राशि गर्म हो जाती है। इस प्रकार गर्म होने को संवाहन कहते हैं। इसी प्रकार वायुमण्डल के विभिन्न स्तर भी गर्म हो जाते हैं। पृथ्वी का धरातल सूर्य की गर्मी से गरम हो जाता है। पृथ्वी के निकट वाली गर्म वायु हल्की होकर ऊपर उठती है और ऊपर वाली ठंडी तथा भारी हवा उसका स्थान लेने नीचे आती है। इस प्रकार वायु बहुत ऊँचाई तक गर्म हो जाती है। वायुमण्डल के इस प्रकार गर्म होने को संवाहन कहते हैं और हल्की व गर्म वायु के ऊपर उठने को संवाहन धारा कहते हैं।

Convectional Rain (**वाहनिक वर्षा**) पृथ्वी के सम्पर्क से गर्म होकर वायु हल्की हो जाती है और ऊपर को उठती है। इस प्रकार वायुमंडल में संवाहन धाराएँ बन जाती हैं। गर्म व हल्की वायु की यह संवाहन धारा जलवाष्प से लदी रहती है और ऊपर के स्तरों में पहुँचने पर फैलकर ठंडी हो जाती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि वायुमण्डल के ऊपरी भाग में प्रवाहित ठंडी वायु से मिलने पर नीचे से उठती हुई गर्म वायु का तापक्रम गिर जाता है और बादल बन जाते हैं। संवाहन धाराओं की प्रबलता के कारण ये बादल खम्भे की तरह होते हैं और बड़े घने व काले होते हैं। लम्बरूप से इनकी गहराई बहुत अधिक होती है। ये बादल कमलस होते हैं और इनके साथ बिजली चमकती है तथा घोर गर्जन होती है। इस प्रकार से होनेवाली वर्षा वाहनिक वर्षा कहलाती है।

वाहनिक वर्षा अधिकतर गर्मी के मौसम में या दिन के सबसे अधिक ताप वाले समय—

तीसरे पहर को होती है । वर्षा की मात्रा तो बहुत अधिक होती है परन्तु थोड़ी सी देर में ही खतम हो जाती है । बादल आकाश के एक हिस्से में ही रहते हैं और वहाँ पानी बरसा कर वे दूसरे भाग में चले जाते हैं । भूमध्यरेखीय प्रदेशों की वर्षा सम्पूर्णतया वाहनिक ही होती है । उष्ण कटिबन्ध की वर्षा का कुछ भाग ही वाहनिक होता है । मानसूनी प्रदेशों में भी स्थलखंड की वायु संवाहन धाराओं के रूप में ऊपर उठ जाती है और उसका स्थान लेने के लिए समुद्र की ओर से मौसमी हवायें आकर वर्षा करती हैं । शीतोष्ण कटिबन्ध में गर्मी के मौसम में दिन के तीसरे पहर घोर गर्जन के साथ होने वाली वर्षा वाहनिक ही होती है ।

Conventional Signs (**सामान्य लाक्षणिक संकेत**) मानचित्र पर प्रत्येक वस्तु व रूप को संकेत द्वारा अंकित करते हैं । यदि वास्तविक क्षेत्रों का प्रयोग किया जाय तो बहुत सी महत्वपूर्ण बातें बड़ी सूक्ष्म या छोटी प्रतीत होंगी । अच्छा संकेत वह होता है जिसे बिना किसी निर्देश की सहायता के अपने आप समझा जा सकें । लाक्षणिक संकेत ऐसे होने चाहिये कि वें छोटे पर स्पष्ट हों और आसानी से बनाये जा सके । इस दृष्टिकोण से कुछ सामान्य लाक्षणिक संकेतों को अपना लिया गया है । ये सामान्य लाक्षणिक संकेत पुराने मानचित्रों से या वस्तु विशेष की आकृति के अनुसार निर्धारित किये गये हैं । ये चार प्रकार के होते हैं—(१) मनुष्य द्वारा बनाये गये पदार्थों के लिये, (२) जल प्रवाह के रूपों के लिये, (३) प्राकृतिक स्थल रूपों के लिए और (४) वनस्पति के प्रकार के लिये । सामान्यत: नीला रंग जल के लिये, काला व लाल मनुष्य-निर्मित स्थानों के लिये, भूरा रंग प्राकृतिक स्थलरूपों के लिये और हरा रंग वनस्पति के लिये प्रयोग किया जाता है । इसी प्रकार के अन्य बहुत से लाक्षणिक संकेत सामान्य रूप से भूमिति मानचित्रों में सभी राष्ट्रों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं ।

Conventional Projection (**नियमित चाल अंकन**) कुछ उपयोगी अंकन छाया फेंकने की रीति से नहीं प्राप्त हो सकते । इसलिये उन्हें दूसरी रीतियों से बनाया जाता है । इनको नियमित चाल अंकन कहते हैं और इनमें समानान्तर व मध्यान्ह रेखाओं का चाल गणित सम्बन्धी सिद्धान्तों के आधार पर बनाया जाता है । इन अंकनों की रचना निश्चित रूप से दिये गये गणित सम्बन्धी विश्लेषण के आँकडों की सहायता से की जाती है । मोलवीड और लैम्बर्ट अंकन इस समुदाय में से सबसे प्रमुख व लोकप्रिय हैं । (देखिये Moleweide's Projection, Lambert's Projection)

Convex Slope (**तीव्र ढाल**) जब किसी उच्च भूमि प्रदेश का रूप बाहर को उभरा हुआ होता है तो उसका ढाल तीव्र होता है । तीव्र ढाल के अर्थ यह हैं कि शिखर व आधार के बीच ऊँचाई के अनुपात में दूरी बहुत कम है । तीव्र ढाल शिखर पर तो साधारण ही रहता है परन्तु आधार रेखा तक आते-आते यह बहुत तीव्र हो जाता है । प्राय: पर्वतशाखाओं का ढाल बड़ा ही तीव्र होता है । इस प्रकार के ढाल को उन्नतोदर ढाल भी कहते हैं । प्राय: स्तूपाकार व गुम्बजाकार पर्वतों का ढाल भी उन्नतोदर होता है । उन्नतोदर ढाल बनने का मुख्य कारण ऋतु प्रहार का अभाव है ।

Coppice (**नियमित वन प्रदेश**) एक छोटा वन प्रदेश अथवा वृक्षों का ऐसा बगीचा जिसको काट-छाँट कर नियमित रक्खा जाता है ताकि बाद में उसकी बाढ़ पूरी हो जाय और लकड़ी का प्रधान स्रोत बन जाये । इस प्रकार के वृक्षों के झुरमुट को नियमित वन प्रदेश कहते हैं ।

Coral Island (**मूँगे का द्वीप**) किसी भी प्रकार के भूखंड से दूर स्थिति मूँगे की शिलाखंड को मूँगे का द्वीप कहते हैं । मूँगे के द्वीपों की आकृति, रूपरेखा व विस्तार

विभिन्न होता है परन्तु सामान्यतः दो प्रकार के द्वीप विशेष रूप से पाये जाते हैं। जब मूँगे की सपाट दीवार या शिलाखंड पर बालू के टीले बन जायें या उसके सम्पूर्ण क्षेत्र पर बालू की राशि जमा हो जाये तो ये द्वीप बहुत विस्तृत हो जाते हैं। ऐसी दशा में वे कई मील लम्बे व चौड़े बन जाते हैं। परन्तु इनकी समुद्रतल से ऊँचाई अधिक नहीं रहती। इसके विपरीत जब भूखंड का उत्क्षेप हो जाता है, पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों के कारण वह ऊपर को उठ जाता है तो मूँगे के शिलाखंड जल के बाहर काफी ऊँचाई तक नजर आते हैं और उस दशा में मूँगे का द्वीप काफी ऊँचा हो सकता है।

यद्यपि मूँगे के ये द्वीप मानव क्रिया क्षेत्र वाले भूखंडों से बहुत दूर अलग बसे होते हैं परन्तु इनमें वायु द्वारा उड़ाकर अथवा समुद्री लहरों व धाराओं द्वारा बहाकर पौधों के बीज पहुँच जाते हैं। कालान्तर में ये बीज जम जाते हैं और बस्ती न होते हुए भी इन पर अच्छी भली वनस्पति उग आती है।

Coral Polyp (**मूँगे का कीटाणु**) मूँगे का कीटाणु समुद्री जल में पाये जाते हैं और स्वभाव व आकृति में अंग्रेजी महाद्वीपीय सागर में पाये जाने वाले एनीमान (Anemones) से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसकी शारीरिक बनावट बिल्कुल एनीमान जैसी होती है। इसका पिंजर कठोर होता है और शरीर के आधार व अगल-बगल की दीवारों के ठोस पड़ जाने पर बन जाता है। यह कीटाणु उष्ण कटिबंधीय समुद्रों के उथले जल में ही रह सकता है। इसके शरीर का पिंजर चूने का बना होता है जो कि समुद्री जल से ही इसे प्राप्त होता है। जब इसका आधार ठोस पड़ जाता है तो यह अपने रहने के स्थान की सतह से चिपक जाता है। या यूँ कहा जा सकता है कि इसका ठोस व पिंजर जो कि इसके शरीर का सबसे निचला भाग होता है, जल की सतह से चिपका रहता है। जब मूँगे का कीटाणु मरता है तो इसके शरीर के मुलायम भाग सड़ कर नष्ट हो जाते हैं या लहरों द्वारा इधर-उधर बहा ले जाये जाते हैं। परन्तु इसका पिंजर उसी भाँति स्थायी व स्थिर रूप से चिपका पड़ा रहता है। जैसे-जैसे ये कीड़े मरते जाते हैं, इनके पिंजर से बनी मूँगे की कठोर व ठोस राशि का विस्तार बढ़ता ही जाता है। समुद्र की सबसे नीची सतह से यह राशि बाहर को और ऊपर को उठने लगती है। मूँगे के कीटाणुओं की संख्या में वृद्धि होने से इस प्रकार एकत्रित ठोस राशि की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है और वे दीवार के समान समुद्र द्वीप व जल के ऊपर दिखलाई पड़ने लगते हैं।

मूँगे के कीटाणु गर्म जल में ही पनपते हैं। इनके लिये पानी उथला और जल स्वच्छ होना चाहिये क्योंकि मिट्टी, बालू जमा होते रहने से ये कीटाणु मर जाते हैं। इसलिये समुद्र के वे भाग जहाँ जल का तापक्रम ७०° हो, जहाँ जल की गहराई हद से हद ३० फैदम या १८० फीट हो और जहाँ नदियों द्वारा बहाकर लाई हुई मिट्टी आदि जमने की आशंका न हो, मूँगे के कीटाणुओं के लिए आदर्श होते हैं। यही कारण है कि ३०° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश रेखाओं के बीच के प्रदेश में महाद्वीपों के पूर्व की ओर के समुद्री भागों में मूँगे के कीटाणु विशेष रूप से पाये जाते हैं।

Coral Reef (**प्रवाल श्रेणी**) मूँगे के कीड़ों से बनी हुई चट्टानों की श्रृंखला जब समुद्र की सतह पर प्रगट हो जाती है या जल के भीतर सतह से थोड़ी दूर पर स्थित होती है तो उसे मूँगे की श्रृंखला कहते हैं। इस श्रृंखला के ऊपर के और पीछे लहरों व वायु द्वारा एकत्रित घोंघे, मूँगे और बालू पायी जाती है। कभी-कभी तो लहरों व वायु के द्वारा उड़ा

या बहाकर लाई हुई सामग्री इतनी विस्तृत होती है कि इन चट्टानों के ऊपर एक विशाल राशि बन जाती है और इस प्रकार नवीन भूखंड बन जाते हैं।

प्राय: मूँगे की श्रृंखला के तीन रूप अथवा प्रकार देखने में आते हैं—मूँगे की चहार-दीवार या अनुतटीय प्रवाल श्रेणी, मूँगे की अवरोधक दीवार या परातटीय प्रवाल श्रेणी; और मूँगे की गोलाकार श्रृंखला या वृत्ताकार प्रवाली कहते हैं।

मूँगे की चहारदीवार (Fringing Reef) जैसा नाम से भी स्पष्ट है किसी महाद्वीप या द्वीप के चारों ओर तटरेखा के समीप स्थित होती है। वास्तव में यह श्रृंखला मूँगे तथा अन्य चूना-प्रधान कीटाणुओं के शेषांगों से मिलकर बनती है और उथले महाद्वीपीय सागर में ही बनती है। मूँगे की चहर दीवार की चट्टानों की सतह ऊबड़-खाबड़ होती है और इस प्रकार का अनियमित चबूतरा उथले पानी की सतह के करीब तक उठा रहता है। इस चहार-दीवारी का बाहरी किनारा समुद्र की ओर ढालुआँ होता है। वास्तव में तट से बाहर की ओर मूँगों की कीड़े तीस फैदम की गहराई तक बढ़ते रहते हैं और साथ-साथ उनसे बनी चट्टान ऊपर की ओर भी उठती रहती हैं। इसलिये इस मूँगे की चहार-दीवार का बाहरी किनारा ३० फैदम की गहराई वाली रेखा पर स्थित रहता है। चूँकि बाहर की तरफ वाले मूँगे के कीड़े अधिक तेजी व स्वतंत्रता से बढ़ते हैं, अतएव वह सतह पर पहिले पहुँच जाते हैं और भूखंड की तट रेखा और इस चबूतरे के मध्य उथला जलाशय-सा बना रह जाता है। इसी कारण इनकी आकृति चहारदीवारी के समान बन जाती है। इन्हें अनतटीय प्रवाल श्रेणी भी कहते हैं।

मूँगे की अवरोधक दीवाल (Barrier Reef) महाद्वीपीय तट से कुछ दूरी पर स्थित होती है और इसके बाहरी किनारे पर समुद्र का जल एकदम से गहरा हो जाता है। या यूँ कह सकते हैं कि इसका बाहरी किनारा गहरे जल में से निकलता है जहाँ चट्टान बनाने वाले मूँगे के कीड़े पनप ही नहीं सकते। इस चट्टान श्रृंखला और महाद्वीपीय तट के बीच का समुद्र गहरा व चौड़ा होता है। इस प्रकार की चट्टान श्रृंखला बनने के दो कारण हो सकते हैं—या तो चट्टानों का आधार किसी और वस्तु का है या जब ये बनी थीं तो समुद्र उथला था और बाद में उसकी गहराई बढ़ गई। इसे परातटीय प्रवाल श्रेणी भी कहते हैं।

(मूँगे की गोलाकार श्रृंखला) (Atolls) देखिये (Atolls)

Cordillera **(पर्वत प्रदेश)** पहले विस्तार से फैली हुई पर्वत श्रृंखला या श्रेणी को पर्वत प्रदेश कहते थे परन्तु अब पर्वत श्रृखला या समुदाय को पर्वत प्रदेश कहते हैं। एक पर्वत प्रदेश में कई श्रृंखलाएँ हो सकती हैं और प्रत्येक श्रृंखला में कई श्रेणियाँ पाई जाती हैं। दक्षिणी अमरीका के एन्डीज़, उत्तरी अमरीका के राकी पहाड़, दक्षिणी व मध्य यूरोप के आल्प्स और एशिया की पर्वत श्रेणियाँ पर्वत प्रदेश हैं। उनमें अगणित शिखर, श्रेणियाँ व श्रृंखलाएँ सम्मिलित हैं। पर्वत प्रदेश में पर्वत श्रेणियों व शृंखलाओं की व्यवस्था कई प्रकार की हो सकती है। कहीं तो ये श्रेणियाँ समानान्तर स्थित हैं और कहीं पंखे की तरह केन्द्रीय गाँठ से चारों ओर को फैली हुई हैं। पर्वत प्रदेश में सम्मिलित श्रेणियों के बीच पठार अवश्य पाये जाते हैं।

Corn Belt **(मक्का प्रदेश)** संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मध्य में स्थित एक पेटी है जहाँ मक्का उगाया जाता है। इसे मक्का प्रदेश कहते हैं। आइओवा, इलीनाय और नेब्रास्का की रियासतें मक्का उत्पादन की पेटी में स्थित हैं और इन्हीं तीनों को मिलाकर मक्का प्रदेश बनता है। यह प्रदेश बड़ी झीलों के दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में स्थित

है । यहाँ का मुख्य व्यवसाय तो खेती है परन्तु मांस के लिये पशुचारण तथा दुग्धशाला का धंधा भी काफी विस्तृत रूप से पाया जाता है । मक्का खिलाकर गाय-बैल को मोटा किया जाता है ।

Cornbelt Climate (**मक्का प्रदेशीय जलवायु**) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मक्का प्रदेश, यूरोप में डैन्यूब की घाटी के मैदान और उत्तरी चीन में पायी जाने वाली जलवायु को मक्का प्रदेशीय जलवायु कहते हैं । इन प्रदेशों में संसार की मक्का का अधिकतर भाग उगाया जाता है, अत: उपज के आधार पर ही इसका नाम मक्का प्रदेशीय जलवायु पड़ गया है । वैसे यह शीतोष्ण कटिबंध की तर महाद्वीपीय जलवायु का ही एक उपविभाग है ।

इस जलवायु में गर्मी का मौसम काफी लम्बा होता है और औसत तापक्रम ७८° तक पहुँच जाता है । एक बार तो तापक्रम १०५° तक चढ़ गया था । दिन व रात दोनों ही गर्म होते हैं । जाड़े का मौसम छोटा परन्तु अति ठंढा होता है । परन्तु यहाँ का मौसम बड़ा ही परिवर्त्तनशील होता है । एक दिन यदि चमकीली धूप निकलती है तो दूसरे दिन बादल व धुँध के कारण अँधेरा छाया रहता है । गर्मी के मौसम में जाड़ों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है । जाड़ों में बर्फ भी गिर जाती है परन्तु वर्षा अनिश्चित है और इसलिये कभी-कभी सूखा भी पड़ जाता है ।

Cornica Glacier (**पर्वत शाखा की हिमनदी**) पर्वतीय घाटियों में बहने वाली हिम नदी का स्वरूप स्थल-रूप के अनुसार बन जाता है । विविध प्रकार के शिलाखंडों व पर्वत शाखाओं पर बहने वाली हिम नदियाँ वृत्ताकार अथवा अर्द्धवृत्ताकार होती हैं । कभी-कभी ये सीधी रेखा में चलती हैं । परन्तु अधिकतर इनका स्वरूप अव्यवस्थित ही होता है ।

Corona (**प्रकाश मंडप**) (१) सूर्य के चारों ओर तेज प्रकाश के वृत्त को प्रकाश मंडप कहते हैं । पूर्ण ग्रहण के समय चंद्रमा की काली रेखा के चारों ओर यह प्रकाश मंडप बड़ा ही स्पष्ट दिखलाई पड़ता है । (२) प्रकाश मंडप और प्रकाशवृत्त में बड़ा अन्तर है । प्रकाश मंडप में रंगों की व्यवस्था प्रकाशवृत्त से बिल्कुल विपरीत होती है । यह जल की बूँदों से छन कर आने वाले प्रकाश के कारण बनता है । प्रकाश मंडप के अंतर्गत सूर्य या चन्द्रमा के चारों ओर कई रंगवाले वृत्त या छल्ले रहते हैं । इन विविध रंगवाले वृत्तों का सबसे केन्द्रीय भाग नीला और बाहर का वृत्त लाल रंग का होता है । प्राय: केवल बाहरी व आन्तरिक वृत्त ही दिखलाई पडते हैं । परन्तु कभी-कभी पूर्ण प्रकाश मंडप दिखलाई पड़ने लगता है । बीच के नीले केन्द्र के चारों ओर बैंगनी, नीले, हरे पीले और लाल रंग के कई और वृत्त बने रहते हैं ।

Corrasion (**संघर्षण**) बहते हुए जल में अपनी तलैटी व किनारों को नष्ट करने की पर्याप्त शक्ति होती है । परन्तु जल के साथ भी कंकड़-पत्थर बहते हुए आते हैं । उनके द्वारा वह क्षति और भी बढ़ जाती है । चट्टानों के बड़े-बड़े टुकडे आपस में टकरा कर छोटे-छोटे गोल पत्थर व बालू में परिणत हो जाते हैं । ये पत्थर इन नदी नालों की तली में तथा दोनों किनारों पर कठिन चट्टानों से टकराते रहते हैं । इस प्रकार की रगड़ से जो काट-छाँट होती है उसे संघर्षण कहते हैं । यह संघर्षण क्रिया दो प्रकार की होती है । एक तो लम्ब रूप से जो तली के भाग को काट-छाँट करके नदी की तलैटी को गहरा करती जाती है और दूसरा समानांतर जो किनारों की ठोस व कठिन चट्टानों को काट कर नदी की घाटियों को चौड़ा करता जाता है । वास्तव में प्रारम्भ में नदी अपनी तलैटी को ही काटती है जिससे कि उसकी घाटी सँकरी पर गहरी होती जाती है । मैदानी भागों में प्रवेश करने पर नदी के पार्श्वों या किनारों

पर की काट-छाँट बढ़ जाती है और फलतः नदी में मोड़ पड़ जाते हैं तथा उसकी घाटी चौड़ी हो जाती है।

जब नदी पूरी तरह से कंकड़ों-पत्थरों से लदी नहीं होती तो काट-छाँट का यह काम अधिक तीव्रता से होता है परन्तु जैसे ही नदी जल में कंकड़ों-पत्थरों की यह राशि पूरी हो जाती है काट-छाँट का काम धीमा पड़ जाता है। यही कारण है कि स्वच्छ जलवाली नदी से काट-छाँट कम होती है। हाँ, जहाँ पर तलैटी व किनारे की मिट्टी ढीली व असंगठित होती है वहाँ स्वच्छ जल भी संघर्षण करता है। अतः स्पष्ट है कि नदी द्वारा संघर्षण के मुख्य यन्त्र या अस्त्र-शस्त्र उसकी तलैटी के साथ रगड़ खाकर चलने वाले कंकड़-पत्थर हैं। जहाँ नदी जल में भँवर पायी जाती है वहाँ यह संघर्षण सबसे अधिक होती है। इसी प्रकार संघर्षण की तीव्रता नदी घाटी के मध्य भाग में ही सबसे अधिक होता है। शुष्क मरुस्थली प्रदेशों में भी वायु द्वारा संघर्षण क्रिया होती रहती है। आँधियों में धूल के कण मिले रहते हैं और ये आँधियाँ जब चट्टानों से टकराती हैं तो इनमें मिले धूल के कण उन्हें रगड़ कर खंडित करते रहते हैं। चट्टानों के निचले भाग में यह क्षय तेजी से और अधिक होता है और इस प्रकार छतरी-नुमा गुम्बद बन जाते हैं।

Cotton Belt (कपास क्षेत्र) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के दक्षिणी-पूर्वी भाग में टेक्सास, मिसीसिपी और अल्बामा रियासतों की उपजाऊ काली मिट्टी में संसार की सबसे अधिक कपास उत्पन्न की जाती है। इस प्रदेश या पट्टी को कपास क्षेत्र कहते हैं। इसमें जार्जिया व केरोलीना रियासतें भी शामिल हैं। इस प्रदेश में कपास की खेती के लिए सभी सुविधायें मौजूद हैं परन्तु बालवीवल नामक कीड़े से बहुधा बड़ी हानि हो जाती है।

इस प्रदेश में उगाई जाने वाली कपास तीन प्रकार की होती है—पीजा, जो केलीफोर्निया और अरीजोना की शुष्क घाटियों में उगाई जाती है; समुद्रद्वीपीय कपास जो दक्षिणी केरोलीना और जार्जिया के दोमट या रेतीली भूमि में उगाई जाती है और मीड जो इस क्षेत्र के सभी भागों में उगती है। यह तीनों ही प्रकार की कपासें महीन लम्बे रेशों वाली होती हैं।

Cotton Belt Climate (कापस क्षेत्रीय जलवायु) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के कपास क्षेत्र में पायी जाने वाली जलवायु को कपास क्षेत्रीय जलवायु कहते हैं। यह उप-उष्ण कटिबंध का भाग है और इसी कटिबंध की दूसरी जलवायु रूमसागरीय जलवायु से कई बातों में भिन्न है। यह जलवायु महाद्वीपों के पूर्वी भाग में उन्हीं अक्षांशों के बीच पायी जाती है जिन अक्षांशों के बीच पश्चिमी भाग में रूमसागरीय जलवायु मिलती है। इसमें जलवृष्टि की मात्रा अधिक होती है और जलवृष्टि या तो सालभर बराबर होती है या गर्मी के मौसम में। इस जलवायु के प्रदेशों में समानान्तर गर्म जलधारायें प्रवाहित होती हैं, अतः गर्मी के मौसम में वर्षा अधिक होती है। इस जलवायु की औसत वार्षिक वर्षा ३५ इंच से लेकर ६५ इंच तक होती है। गर्मी के मौसम की वर्षा वाहनिक होती है और बहुधा बादलों की कड़क व बिजली की चमक भी साथ-साथ होती रहती है। इस समय बडे-बड़े तूफान आया करते हैं और भयंकर चक्रवात भी आकर वर्षा करते हैं। जाड़ों की वर्षा चक्रवातीय होती है और दिन के अधिकतर भाग में आकाश मेघों से घिरा रहता है। कभी-कभी बर्फ भी गिर जाती है।

गर्मी के मौसम का औसत तापक्रम ७५° से ८०° तक रहता है और वायु की आर्द्रता भी अधिक रहती है। फलतः दैनिक ऋतु बड़ी ही परेशान करनेवाली होती है। रात भी कुछ कम गर्म व नम नहीं होती। जाड़ों में सर्दी साधारण पड़ती है और औसत तापक्रम

४०° से ५५° तक रहता है। इस प्रकार इस जलवायु में पौधों को पकने के लिये काफी समय मिलता है और तुषारपात की कमी के कारण पौधों को पाला मार जाने का भी डर नहीं रहता।

यह जलवायु दक्षिणी चीन में भी पाई जाती है और कभी-कभी इसे चीन तुल्य जलवायु भी कहते हैं।

Coulee Lakes (लावा अवरोध झील) जिन प्रदेशों में ज्वालामुखी उद्‌गार आया करते हैं वहाँ लावा प्रवाह कभी-कभी नदी घाटियों के आरपार एक दीवाल या बाँध सा बना लेता है। फलतः इस अवरोध के पीछे नदी के प्रवाह के रुक जाने से जो झील बन जाती है उसे लावा अवरोध झील कहते हैं।

Country (राष्ट्र, देश, ग्राम) (१) पृथ्वी का भूपटल राजनीतिक दृष्टिकोण से कई भागों में बँटा हुआ है। प्रत्येक भाग में एक भिन्न प्रकार की सरकार होती है और वहाँ के लोग दूसरे भागों से कई मानों में भिन्न होते हैं। ऐसा प्रत्येक भाग राष्ट्र कहलाता है। (२) प्राकृतिक व कृत्रिम सीमा से विभाजित पृथ्वी के भूपटल के विभिन्न टुकड़ों को देश कहते हैं। (३) शहरों से बाहर खुले खेतों से युक्त बस्ती को ग्राम कहते हैं।

Cove (छोटी खाड़ी) भूखंड के तटीय प्रदेश में स्थित नदी घाटियों के डूब जाने से किनारे पर छोटे कटान व खाड़ी बन जाते हैं जिनमें समुद्र का जल प्रवेश कर जाता है। इन्हें छोटी खाड़ी कहते हैं।

Crag (चट्टान खंड) उच्च पर्वतीय प्रदेशों में चट्टानों की दरारों में भरे पानी के जम कर फैलने से दरारें चौड़ी हो जाती हैं। दिन में यह बर्फ पिघलने से सिकुड़ जाता है। इस प्रकार बार-बार जमने तथा पिघलने की क्रिया से दरारें निरन्तर चौड़ी होती जाती हैं और अन्त में चट्टानों के खंड-खंड हो जाते हैं। ये चट्टान खंड ऊबड़-खाबड़, ढालुआ व नुकीले होते हैं।

Crag-and-Tail (खंड व पुच्छल प्रदेश) बहुधा ऋतुप्रहार के अन्तर के कारण पहाड़ी व चट्टान खंड के एक ओर का ढाल तीव्र व सीधा होता है परन्तु दूसरी ओर का ढाल क्रमशः व नतोदर होता है। इस प्रकार के स्थल रूप को खंड व गुफा प्रदेश कहते हैं। वास्तव में ये हिम नदी के कार्य के फलस्वरूप बन जाते हैं। चट्टान खंड हिम नदी की तलैटी में पड़ा होने के कारण हिम नदी के प्रवाह के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है। अतः चलता हुआ हिम बहाव की ओर वाले भाग को काट-छाँट डालता है और इस प्रकार प्राप्त कंकड़-पत्थर को बहाव से विमुख वाले भाग पर इकट्ठा करता जाता है। फल यह होता है कि हिमनदी के प्रवाह के सामने वाले ढाल में एक खोखली गुफा बन जाती है या उसका ढाल बहुत तीव्र हो जाता है जब कि दूसरी तरफ टूटे-फूटे कंकड़-पत्थर इकट्ठा हो जाने से एक लम्बी पूँछ-सी बन जाती है। इस प्रकार के खंड व पुच्छल प्रदेशों का एक पार्श्व ठोस चट्टान का बना होता है और दूसरा असंगठित कंकड़-पत्थर का ढेर होता है। यह स्थल रूप वास्तव में अनावृत्तीकरण व निक्षेप के सामञ्जस्य से बन जाता है।

Crater (ज्वालामुख) ज्वालामुखी पर्वत शंकु के शिखर पर जो कुप्पीनुमा खोखला होता है, उसे उसका मुख कहते हैं। इस कुप्पीनुमा मुख का सबसे निचला भाग ज्वालामुखी पर्वत की उस नली से मिला रहता है जिसमें से होकर उद्‌गार के पदार्थ धरातल पर आते हैं। ज्वालामुखी पर्वत का मुख दो प्रकार का होता है। जिन पर्वतों में शांत उद्‌गार आते हैं वहाँ लावा आदि पदार्थ धीरे-धीरे मिलकर इस मुख के दोनों ओर बहते हैं और मुख के चारों ओर की दीवारों को ऊँचा करते जाते हैं। ऐसी दशा में मुख पर्वत की दीवारों से

नीचा रहता है। जिस ज्वालामुखी में विस्फोटक उद्‌गार आते हैं वहाँ लावा, गैस व कंकड़-पत्थर धड़ाके से ऊपर जाते हैं। फलतः इधर-उधर की दीवाल का ऊँचा रहना तो दूर रहा, कभी-कभी तो ऐसा होता है कि ज्वालामुखी पर्वत के कुछ अंशों को भी विध्वंस करता जाता है।
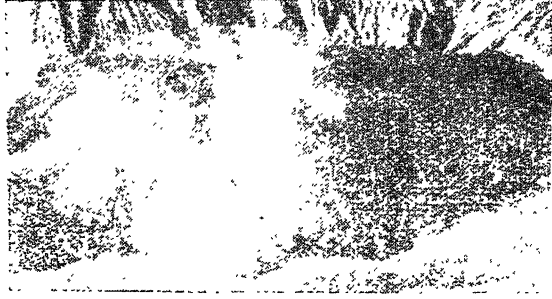
ज्वालामुख

ऐसी दशा में ज्वालामुखी पर्वत का मुख बड़ा और चारों ओर की दीवारों के ही तल पर होता है। शान्त उद्‌गार मुख तो गोलाकार होता है परन्तु विस्फोटक उद्‌गार मुख टूटा-फूटा व अव्यवस्थित होता है।

Crater Rings (ज्वालामुख छिद्र) ज्वालामुखी पर्वत के मुख पर प्रत्येक उद्‌गार के बाद कुछ लावा आदि एकत्रित रह जाता है और उद्‌गार के बाद वाले शान्ति-काल में यह बची-खुची सामग्री जमकर एक छल्ला-सा बन जाती है। बार-बार उद्‌गार होते रहने से इस प्रकार के छल्ले एक के ऊपर एक बनते जाते हैं और इस प्रकार एकत्रित छल्लों को मुख-छिद्र कहते हैं।
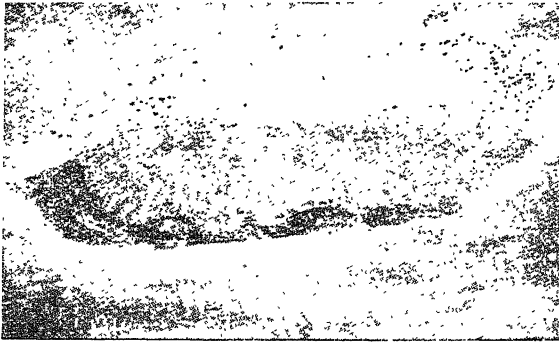
ज्वालामुख छिद्र

Crater Lake (ज्वालामुख झील) मृत ज्वालामुखी का मुख बहुधा जल से भर जाता है और उसमें एक झील बन जाती है। इस प्रकार की झील को ज्वालामुखी मुख झील कहते हैं और इसकी
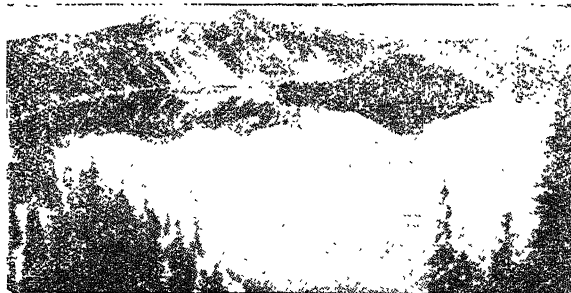
ज्वालामुख झील

विशेषता यह है कि यह गोलाकार होती है और इसमें जल की गहराई बहुत अधिक नहीं होती। इसके अलावा ये झीलें आसपास की भूमि से कुछ ऊँचाई पर स्थित होती हैं। इन झीलों का पता उस समय तक नहीं लगता जब तक ज्वालामुखी पर्वत के शिखर पर न पहुँचा जाये। परन्तु कभी-कभी जब मृत ज्वालामुखी में फिर से उद्गार आने लगते हैं तो ये झीलें नष्ट हो जाती हैं या इनके मध्य में एक नया ज्वालामुखी मुख बन जाता है और एक द्वीप के समान दिखलाई पड़ने लगता है ।

Creek (संकीर्ण तटीय खाड़ी उपसहायक नदी) (१) तट पर स्थित संकीर्ण कटाव जिसमें प्रवेश करके समुद्र का जल अन्दर तक पहुँच जाता है, उसे संकीर्ण तटीय खाड़ी कहते हैं।

(२) बहुधा बड़ी-बड़ी सहायक नदियों के बायें व दायें किनारे से अन्य छोटी-छोटी नदियाँ आकर मिल जाती हैं। पहाड़ी प्रदेशों में विशेष छोटी-छोटी धारायें इधर-उधर से बहने लगती हैं। उन्हें उपसहायक नदी कहते हैं।

Creole (क्रियोल) पश्चिमी द्वीप समूह में उत्पन्न व्यक्ति को क्रियोल कहते हैं परन्तु इसके अन्तर्गत वे लोग नहीं शामिल होते जो वहाँ की आदि जातियाँ हैं। वास्तव में अमरीका महाद्वीप के कुछ भागों में विशेषतया मध्य अमरीका और कुछ यूरोपीय उपनिवेशों के निवासियों के लिये भी यही शब्द प्रयोग करते हैं। अत: इन प्रदेशों में बाहर से आकर बस गये लोगों को, चाहे वे यूरोपीय हों या नीग्रो, क्रियोल कहते हैं।

Crevasse (हिमविवर) हिमनदी में गहरी लम्बवत् फटन को हिमविवर कहते हैं। वास्तव में ये दरार बर्फ की राशि में खिंचाव पड़ने के कारण बन जाते हैं। जब कभी हिमनदी की हिम राशि में इतना खिंचाव पड़ता है कि वह फटने लगती है तो उसमें छोटी-छोटी फटन या छेद बन जाते हैं। बार-बार जमने पर खिंचने व पिघलने से ये फटन बड़ी-बड़ी दरार में परिणत हो जाते हैं। ऊपरी हिम सतह के पिघलने से हिमनदी में हिम की पहाड़ियाँ व शिखर बन जाते हैं और इन स्तूपाकार हिमराशियों के बीच में बड़ी-बड़ी दरार रहती है। हिम राशि में यह खिंचाव गति के कम ज्यादा होने से भी उत्पन्न हो जाता है। यदि हिमनदी की तलैटी का ढाल तीव्रतर हो जाये तो हिम नदी तेज गति से चलने लगती है और इस प्रकार के दरार पड़ जाते हैं। यदि आगे बढ़कर यह ढाल फिर क्रमश: हो जाये तो दरारें बन्द हो जाती हैं परन्तु इनसे हिम नदी की सतह चौरस नहीं हो पाती। इसका कारण यह है कि जब दरार खुली थी तो सूर्य के ताप से हिम का कुछ अंश पिघल कर नष्ट हो गया। अतएव अब जब दरार के दोनों किनारे मिलते हैं तो वे क दूसरे के साथ बिल्कुल फिट नहीं हो पाते; थोड़ी सी फटन बाकी ही रह जाती है।

हिमविवर

इसी प्रकार जब हिमनदी को एकाएक मुड़ना पड़ता है तब भी इसी प्रकार की दरार बन जाती है। परन्तु ये दोनों प्रकार की दरारें हिमनदी प्रवाह की दिशा के समानान्तर और

हिमनदी घाटी के आरपार होते हैं । चूँकि हिमनदी का प्रवाह अगल-बगल की अपेक्षा मध्य में अधिक तेज होता है इसलिए प्रवाह की दिशा में ये दरारें मुड़ी रहती हैं ।

जब घाटी चौड़ी हो जाती है और हिम राशि को फैलना पड़ता है तो हिम नदी में लम्बी दरारें बन जाती हैं । ये दरारें घाटी की दीवालों के समानान्तर होती है । हिम नदी के मध्य और पार्श्व में के प्रवाह में अन्तर होता है । पार्श्व में हिमराशि कम होती है और साथ-साथ घाटी या तलैटी से रगड़ खाते रहने से उसकी गति मध्य की अपेक्षा कम होती है । अत: मध्य भाग तेज चलता है परन्तु पार्श्व का भाग उसका साथ नहीं दे पाता । फलत: तिरछी दरारें पड़ जाती हैं ।

Crescent Beach (**चन्द्राकार निक्षेप**) चट्टानी तटों पर कंकड़-पत्थर के निक्षेप बन जाते हैं और तटीय खाड़ियों व कटान के मुँह पर ये निक्षेप लहरों द्वारा बना दिये जाते हैं । इस प्रकार का निक्षेप लहरों के आने-जाने से अर्द्धवृत्ताकार या चन्द्राकार बन जाता है । वास्तव में जब लहरें किसी कटान में प्रवेश करती हैं तो उसकी अगल-बगल वाली दीवारों से रगड़ खाकर उनका रूप कुछ मुड़ सा जाता है । इस प्रकार की मुड़ी हुई लहरें जब कटान के शिरोविन्दु पर पहुँचती हैं तो उनकी शक्ति मध्य में अधिक होती है । अतएव निक्षेप का मध्य भाग चन्द्राकार रूप में मुड़ जाता है ।

यह चन्द्राकार निक्षेप छोटे-बड़े सभी प्रकार के होते हैं । इनका विस्तार निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहता है—(१) लहरों की शक्ति (२) कटान में जल की गहराई और (३) निक्षेप की सामग्री की मात्रा ।

Croft (**छोटा खेत**) रहने वाले मकान के साथ लगा हुआ मैदान जिस पर खेती या पशुचारण होता है उसे छोटा खेत कहते हैं । वास्तव में स्काटलैंड के उच्चभूमि प्रदेशों में छोटे-छोटे खेत होते हैं जिनके साथ ही किसान का मकान भी बना होता है । इस प्रकार छोटे खेत का औसत विस्तार केवल ५ एकड़ ही होता है परन्तु इससे एक गृहस्थी की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ प्राप्त कर ली जाती हैं । भोजन, वस्त्र और ईंधन सभी कुछ इन छोटे खेतों से प्राप्त होता है । हाँ, जिन मैदानों या खेतों में पशुचारण होता है उनका विस्तार कुछ भिन्न होता है कि उनमें थोड़े से गाय, बैल व भेड़ चर सकें ।

Crofting (**छोटे खेतों की खेती**) पर्वतीय प्रदेशों और विशेषकर स्काटलैंड में विस्तृत भूमि क्षेत्र तो होते नही । अतएव वहाँ की कृषियोग्य भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा पाया जाता है । इन छोटे-छोटे खेतों पर अपनी गृहस्थी की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने के लिए पहाड़ी लोग खेती करते हैं । इस धन्धे को छोटे खेतों की खेती कहते हैं । इस प्रकार की खेती में सभी प्रकार की वस्तुएँ थोड़ी-थोड़ी व हेर-फेर के साथ उगाई जाती हैं । और इस धन्धे के साथ अवकाश में किये जाने वाले अन्य बहुत से काम भी किसान करता रहता है ताकि छोटे खेतों की खेती से तो उसे भोजन, ईंधन व वस्त्र प्राप्त हो और अन्य कामों से धन मिलता रहे ।

Crop (**फसल-उपज**) फसल शब्द दो परस्पर सम्बन्धित अर्थों में प्रयोग किया जाता है ।

(१) भोजन, वस्त्र अथवा उद्योगधंधों के कच्चे माल के लिए उगाये गये उपयोगी पौधों को फसल कहते हैं । कभी-कभी पशुओं से प्राप्त दूध, मांस, ऊन आदि को भी फसल पुकारते हैं । परन्तु यह अनुचित है क्योंकि फसल का सम्बन्ध कृषि से है । खेतों पर उगाये गये उपयोगी पौधों को ही फसल कहते हैं ।

(२) उपयोगी पौधों की फसल तैयार हो जाने पर उन्हें काटकर इकट्ठा किया जाता है और इस प्रकार प्राप्त अनाज इत्यादि को उपज कहते हैं। कभी-कभी भूल से पशुओं से प्राप्त सामग्री को भी उनकी उपज कहते हैं।

Cromlech (**अति प्राचीन भूखंड**) बहुधा कई लम्बरूप पत्थरों पर टिका हुआ बड़ा चौरस पत्थर से बने स्थलरूप को अति प्राचीन भूखंड कहते हैं। इनकी उत्पत्ति और आविर्भाव के बारे में कुछ भी पता नहीं है। यह ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस में विशेषरूप से पाये जाते हैं।

Crustal Movement (**भूपटल की गति**) पृथ्वी के ठोस आवरण या स्थल मंडल पर होने वाली गतियों को भूपटल की गतियाँ कहते हैं। भूपटल की ये गतियाँ दो प्रकार की होती हैं——लम्बरूप से जिसके कारण कहीं का भूभाग ऊपर उठ जाता है और कहीं का भूभाग नीचे धँस जाता है। फलतः कहीं गुम्बजाकार पर्वत बन जाते हैं तो कहीं दरारों के बीच घाटियाँ बन जाती हैं। दूसरी गति समानान्तर होती है। इसमें पृथ्वी के धरातल पर लहरें उठने लगती हैं और अगल-बग़ल से दबाव पड़ने से या तो मोड़दार पर्वत बन जाते हैं या भूपटल में फैलाव व खिंचाव होने से दरार व फटन पड़ जाते हैं। (देखिये Eperiogenic, Orogenic)

Cuesta (**सायुइस्टा**) यह स्पेनी भाषा का पारिभाषिक शब्द है और अनावृत्तीकरण की शक्तियों व कठोर चट्टानों के संघर्ष के स्वरूप बन जाते हैं। क्रमशः ढालवाले प्रदेश में विशेषकर तटीय मैदानों में यह स्थलरूप विशेष रूप से दिखलाई पड़ता है। जल के भीतर से स्थल भाग के निकलते ही उस पर अनावृत्तीकरण की शक्तियाँ अपना आघात व प्रहार शुरू कर देती हैं। फलतः कमजोर या मुलायम चट्टानों के भाग टूट-फूट या कट-छँट जाते हैं परन्तु कठोर चट्टानों के भाग टीलों की तरह या पहाड़ी श्रेणी की तरह या एक पर्वतीय पेटी की तरह खड़े रह जाते हैं। इन्हें सायुइस्टा कहते हैं। इस प्रकार की बनी पर्वतीय पेटी का ढाल एक ओर को क्रमशः होता है और दूसरी ओर को बड़ा तीव्र। प्रायः इन सायुइस्टा का ढाल जो प्रधान स्थल खंड की ओर रहता है बड़ा ही तीव्र होता है परन्तु समुद्र की ओर का ढाल क्रमशः होता है। यही बात इनकी ऊँचाई का भी है। इनकी ऊँचाई तट के सामने वाले पार्श्व की अपेक्षा अन्दर की ओर अधिक होती है।

यह स्थल रूप पुराने तटीय मैदानों में विशेष रूप से पाया जाता है और ये टीले कठोर बलुहे पत्थर के बने होते हैं।

Cumulus (**कूमुलस मेघ**) बहुत अधिक ऊँचे लम्बरूप खम्भे की भाँति बने बादल को कूमुलस कहते हैं। प्रायः गर्म व तर मौसम में पृथ्वी से उठने वाली संवाहन धाराएँ वायुमण्डल में काफी ऊँचे पहुँचकर फैल जाती हैं और ठंडी होने लगती हैं। अतः उनमें द्रवीभवन होने लगता है और वायु की उठती हुई धारा के अनुरूप ही लम्बरूप बादल बन जाते हैं जिनके बीच-बीच में नीला आकाश दिखलाई पड़ता रहता है। इसका आधार तो समतल या समानान्तर होता है परन्तु इनका सिरा या शिखर हवा की ऊपर उठती हुई धाराओं के धक्के से गुम्बजाकार या गोभी के फूल की तरह बन जाता है। ये बादल बड़े घने होते हैं और इनकी मोटाई प्रायः एक मील तक होती है। इनके ऊपरी शिखर तो और भी ऊँचे होते हैं और कभी-कभी तीन मील की ऊँचाई पर स्थित रहते हैं। कभी-कभी इन्हीं से गरजने वाले बादल भी बन जाते हैं। ये प्रायः दो प्रकार के होते हैं——एक तो वे कूमुलस बादल जो साफ मौसम में दिखलाई पड़ते हैं। इनका रूप छोटा, सफेद व छितरे-बितरे रुई के पहले की

तरह होता है । दूसरे प्रकार के कूमूलस भारी होते हैं । इनका रूप गहरा व घना होता है । रंग में ये काले होते हैं ।

Cumulonimbus (कूमुलोनिम्बस मेघ) कूमुलोनिम्बस लम्बरूप अति गहरे काले रंग वाले भारी बादल होते हैं । ये नीचे से ऊपर को विशाल मीनार की तरह उठे रहते हैं और इनका विस्तार बहुत अधिक रहता है । इनकी आधार रेखा से कोई १५००० फीट या उससे भी अधिक ऊँचाई पर इनका ऊपरी सिरा रहता है । इसका आकार मोची या लोहार की निहाई की तरह होता है । परन्तु बादल का यह समूह सर्वत्र संयुक्त व संगठित नहीं होता । इसके आधार के नीचे व अत्यन्त नीचे कटे-फटे बादल तैरते रहते हैं । कूमुलोनिम्बस बादल तूफान लानेवाला होता है और इससे बहुधा पानी, वर्फ या ओले बरसते हैं ।

Current (धारा) जल या वायु के प्रवाह के निश्चित रूप को धारा कहते हैं । ये धाराएँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो वह जो लम्बरूप नीचे से ऊपर को चलती है और दूसरी वह जो समतल पर समानान्तर रूप से प्रवाहित होती है । प्रथम को संवाहन धारा कहते हैं और दूसरे का नाम समतल धारा है । इस प्रकार की धाराएँ जल व वायुमण्डल में प्रवाहित होती रहती हैं और उनके विभिन्न तापक्रम के अनुसार उन्हें ठण्डी या गर्म धारा कहते हैं । इन धाराओं का वायुमण्डल व जलमण्डल में तो असर पड़ता ही है परन्तु इनकी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये स्थल मण्डल के उन भागों पर विशेष प्रभाव डालती हैं जहाँ से होकर ये गुजरती हैं । (देखिये Ocean Currents)

Cuspate watershed (नतोदर जल विभाजक) बहता हुआ जल अपनी तलैटी व घाटी को बराबर काटता रहता है और अनावृत्तीकरण की इस क्रिया के फलस्वरूप उनकी घाटी या तलैटी का रूप झूलाकार अथवा अन्दर को झुका हुआ बन जाता है । परन्तु तलैटी को गहरा करने की यह क्रिया दो नदी प्रदेशों के बीच स्थित उच्चभूमि या जल विभाजक तलैटी को पीछे की ओर काटता जाता है और इस प्रकार जिनमें अनावृत्तीकरण की क्रिया उद्गम स्थान की ओर भी होती रहती है उनके जलविभाजक अछूते नहीं रह पाते । नदी जल के प्रभाव से जलविभाजक के पार्श्वों में काट-छाँट व टूट-फूट होने लगती है और एक समय वह आता है जब जल विभाजक के ढाल नतोदर हो जाते हैं ।

जब जलविभाजक के दोनों ओर की नदियाँ इसी प्रकार से अपने उद्गम की ओर अपनी तलैटी को काटती रहती है तो जलविभाजक के दोनों पार्श्व खोखले व उनका ढाल नतोदर हो जाता है । फलतः जलविभाजक का रूप गोलाकार से नुकीला बन जाता है और उसकी आकृति ऐसे त्रिभुज की तरह बन जाती है जिसकी दोनों भुजाएँ नतोदर या झूलाकार होती हैं । इस प्रकार के जलविभाजक को नतोदर जलविभाजक कहते हैं ।

Cycle of Erosion (अनावृत्तीकरण चक्र) प्रत्येक स्थलखंड जैसे ही जल के बाहर निकलता है या प्रत्येक स्थल रूप के बनते ही उस पर ऋतुप्रहार और अनावृत्तीकरण की प्राकृतिक शक्तियाँ अपना प्रहार शुरू कर देती हैं । बहते हुए जल, चलते हुए हिम और वायु की सतत क्रिया के फलस्वरूप स्थल रूप के आकार व प्रकार में कुछ परिवर्तन हो जाते हैं । लेकिन ये परिवर्तन एकाएक अथवा सब एक साथ ही नहीं हो जाते । परिवर्तन की कई दशाएँ होती हैं और प्रत्येक स्थलरूप का [illegible] होता है । जल, हिम और वायु की सहायता से प्रत्येक स्थल रूप प्रारम्भिक दशा से शुरू होकर मध्यम दशा से होता हुआ अन्तिम दशा को प्राप्त होता है । साधारण भाषा में इन तीनों दशाओं को स्थलरूप की जवानी, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था कहते हैं । इन अवस्थाओं से केवल स्थल रूप के विकास का ही

बोध होता है न कि उनके द्वारा बिताये गये वर्षों का। युवावस्था या प्रारम्भिक दशा में प्राकृतिक शक्तियों के कार्य का आविर्भाव ही हुआ रहता है। प्रौढ़ावस्था या मध्यम दशा में अनावृत्तीकरण का यह कार्य काफी बढ़ चुका होता है और वृद्धावस्था या अन्तिम दशा में स्थलरूप उस गति को पहुँच जाता है कि अनावृत्तीकरण की शक्तियों द्वारा और अधिक आवरण क्षय सम्भव ही नहीं होता।

जल के अन्दर से निकले हुए भूखंड के बाहर शुष्क दशा में उठते ही, प्राकृतिक शक्तियाँ अपना कार्य प्रारम्भ कर देती हैं और वर्षा का जल छोटी-छोटी धाराओं में एकत्रित होकर बहने लगता है। ये धाराएँ अपने मार्ग के लिए छोटी-छोटी नालियाँ बना लेतीं हैं। यह नालियाँ शुरू में गहरी व पतली होती है, परंतु समय के साथ नाली चौड़ी होती जाती है, जल विभाजक भंग होते जाते हैं और अन्त में सम्पूर्ण प्रदेश फिर से मैदान बन जाता है जिसमें अनावृत्तीकरण से बचे भूभाग उठे दिखलाई पड़ते रहते हैं। पठार ऊपर को उठता, काट-छाँट से उसमें पर्वत श्रेणियाँ व घाटियाँ बन जाती हैं और अन्त में सम्पूर्ण पठारीप्रदेश अनावृत्तीकरण के मैदान में परिणत हो जाता है। इस व्यवस्था को कार्य-विधि का अनावृत्तीकरण चक्र कहते हैं। यह पारिभाषिक शब्द नदी जल प्रवाह व घाटी के विषय में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। युवावस्था में नदी घाटी की दीवारें सीधी व उसका रूप **V** के आकार का होता है। नदी के जल से काटछाँट अधिक होता रहता है और नदी की तलैटी में जलप्रपात झीलें व झरने खूब पाये जाते हैं। मध्य दशा या प्रौढ़ावस्था में जब काट-छाँट का कार्य काफी बढ़ चुका होता है नदी घाटियाँ चौड़ी हो जाती हैं, उनका ढाल क्रमशः हो जाता है नदी और उनकी धाराप्रवाह में बहुत से मोड़ बन जाते हैं। अन्तिम दशा या वृद्धावस्था में घाटियाँ बहुत चौड़ी हो चुकी होती हैं, नदी का प्रवाह बहुत धीमा हो जाता है और सम्पूर्ण जल प्रवाह प्रदेश अनावृत्तीकरण का मैदान बन जाता है।

वास्तव में अनावृत्तीकरण चक्र में एक विशेष स्थलरूप की दशा व अवस्था उसकी चट्टानों की बनावट पर निर्भर रहती है। चट्टानों की बनावट के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें सम्मिलित रहती हैं--(१) चट्टानों का स्वभाव कठोर, मुलायम अवस्था घुलनेवाली है। (२) चट्टानों का झुकाव। (३) चट्टानों की पर्तों की व्यवस्था समानान्तर है व लम्बवत्। (४) कमजोर स्थल जैसे जोड़ व दरार। चट्टानों की बनावट के साथ-साथ जलवायु की दशा भी अनावृत्तीकरण चक्र की क्रियाशीलता पर प्रभाव डालती है।

Cyclone (**चक्रवात**) चक्रवात वायु के वे चक्र हैं जिनका केंद्र कम भार का होता है, इनमें वायु की दिशा अनिश्चित होती है और ये प्रायः प्रवाहित वायु की दशा के साथ-साथ चलते हैं। इसको चक्करदार वायु भँवर भी कह सकते हैं। चूँकि ये चक्रवात प्रचलित वायु के साथ ही बहते हैं, इसलिए उष्णकटिबंध में यह उत्तर से दक्षिण की ओर चलते हैं और शीतोष्ण कटिबंध में इनकी दिशा दक्षिण से उत्तर की ओर होती है। उष्णकटिबन्ध वाले और शीतोष्ण कटिबंध वाले दो प्रकार के चक्रवात पहिचाने जा सकते हैं। उष्णकटिबंध के चक्रवात स्थानीय तूफान होते हैं और इनमें वायु अति वेग से चलती है। शीतोष्ण कटिबंध के चक्रवात अधिक विस्तृत प्रदेश पर फैले होते हैं और इनमें वायु कम वेग से चलती है तथा इनसे शीतोष्ण कटिबंध में स्थित बहुत से प्रदेशों की दैनिक ऋतु का निश्चय किया जाता है।

चक्रवात का निम्नभार केन्द्र वास्तविक केन्द्र से थोड़ा हटकर पीछे को होता है। अग्रभाग की अपेक्षा पीछे की समभार दर्शक रेखाएँ भी पास-पास होती हैं। फलतः पीछे की ओर हवा की गति तीव्रतर होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में चक्रवात के अन्दर वायु दायें से बायें को

बहती है और इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में इसका रुख घड़ी की सुइयों की तरह बायें से दायें को होता है ।

चक्रवातों के आगमन की सूचना कई बातों से मिल जाती है । इनके आने के पहिले आकाश में सिरस बादलों की चादर सी छा जाती है और मौसम शान्त पर कष्टकारी होता है । बहुधा इनके प्रभाव से समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं और वायु की गति व दिशा में निरन्तर परिवर्त्तन होना शुरू हो जाता है । अगर आसमान में सूर्य व चाँद होता है तो उसके चारों ओर प्रकाशवृत्त बन जाता है ।

प्राय: दो चक्रवातों के बीच विरुद्ध चक्रवात होता है । अत: जब ये एक ही दिशा में प्रवाहित होते हैं तो बहुत दूर तक चक्रवात और विरुद्ध चक्रवात का जलूस सा बन जाता है । इनकी औसत चाल १८ मील प्रतिघंटा होती है । (देखिये Tropical Cyclone, Temperate Cyclone)

Cyclonic Rain (**चक्रवातीय वर्षा**) जब कभी चक्रवातों के गुजरने से वर्षा होती है तो उसे चक्रवातीय वर्षा कहते हैं । इसमें वायु बाहर के उच्चभार प्रदेशों से केन्द्रीय निम्नभार की ओर बहती है और इस चक्करदार गति के कारण ऊपर उठ जाती है तथा ठंडी होकर वर्षा कर देती है । चूँकि चक्रवात की वायु गर्म स्थानों से आती होती है, इसलिए वर्षा की मात्रा अधिक रहती है ।

जैसे-जैसे चक्रवात आगे बढते हैं उनकी गर्म व आर्द्र वायु पीछे से ठंडी व भारी वायु के ऊपर बहने लगती है और दो विभिन्न तापक्रमवाली वायुराशि के मिलने से वर्षा इसके अग्रभाग व पिछले भाग में ही होती है । चक्रवातीय वर्षा प्राय: दो झोकों में आती है––एक तो उस समय जब उसका अग्रभाग गुजरता होता है और दूसरा तब जब उसका पिछला भाग गुजरता है । इन दोनों झोंकों के बीच में मौसम प्राय: शुष्क रहता है । दूसरी विशेषता यह है कि चक्रवातीय वर्षा धीमे-धीमे होती रहती है । कभी भी घनघोर झड़ी नहीं लगती ।

Cylindrical Projection (**बेलेनाकार अंकन**) बेलनाकार अंकन में एक ऐसे ग्लोब की कल्पना की जाती है जो एक बेलन के आकार के चोंगे से ढका हुआ है और जिसके मध्य में एक प्रकाश रख दिया गया है । ग्लोब पर काले रंग से खिंची अक्षांश व देशान्तर रेखाएँ प्रकाश द्वारा अंकित कर दी जाती हैं । इसके बाद कागज का बेलनाकार चोंगा खोलकर या काट कर फैला दिया जाता है । ऐसा करने पर समानान्तर रेखाएँ सीधी दिखाई पड़ती हैं और यही हाल मध्यान्ह अथवा देशान्तर रेखाओं का भी होता है । मध्यान्ह रेखाएँ भी समान दूरी पर सीधी समानान्तर तथा एक दूसरे के बराबर प्रतीत होती हैं । ये अक्षांश रेखाओं को समकोण पर काटती हैं । अक्षांश रेखाएँ सब भूमध्य रेखा के बराबर और समानान्तर होती हैं । परन्तु उनके बीच की दूरी भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ती जाती है ।

ये [illegible] और मध्यान्ह रेखाएँ समकोण चतुर्भुजों का एक जाल बना देती हैं । ऐसे जाल पर सम्पूर्ण संसार का मानचित्र बनाया जा सकता है परन्तु इस पर ध्रुवों का प्रदर्शन असंभव है । ध्रुव के बिन्दु इस अंकन पर फैल कर इतना विकृत हो जाते हैं कि मानचित्र की पूरी चौड़ाई में फैल जाते हैं । अत: ध्रुव के समीप स्थित स्थानों का रूप व आकृति बहुत बिगड़ जाती है और उनका विस्तार बहुत बढ़ जाता है ।

बेलनाकार अंकन के कई प्रकार होते हैं :(१) समक्षेत्रफल बेलनाकार अंकन में अक्षांश रेखाओं के बीच की दूरी व ध्रुवों की तरफ चलने पर कम होती जाती है । (२) मरकेटर अंकन में जिसमें दिशाएँ ठीक रहती हैं, अक्षांशों के बीच की दूरी ध्रुवों की तरफ चलने पर बराबर बढ़ती जाती है ।

बेलनाकार कागज का चोंगा ग्लोब को भूमध्यरेखा, ध्रुवों या अन्य किन्हीं विन्दुओं पर छूता हुआ माना जा सकता है परन्तु सब से प्रचलित प्रणाली वह है जिसमें बेलनाकार चोंगा भूमध्यरेखा के विपरीत सिरों पर ग्लोब को छूता है।

Dale (**नदी मैदान**) एक नदी की चौड़ी व खुली घाटी को नदी मैदान कहते हैं। वास्तव में मैदानी भागों में बहती हुई नदी टेढ़ी-मेढ़ी होकर आगे बढ़ती जाती है। उसके अगल-बगल बाढ़ के विस्तृत मैदान बन जाते हैं जिन पर नदी द्वारा निक्षेप पाया जाता है। मार्ग के सारे अवरोधक नष्ट हो गये होते हैं और इस प्रकार के समतल नदी मैदान को हवाई जहाज से देखा जाय तो तीन विशेषताएँ विशेष रूप से नजर आयेंगी--(१) समतल व चौरस आकार। (२) नदियों व उसकी सहायक धाराओं का जाल जिसमें बीच-बीच में गोलाकार झीलें भी दृष्टिगोचर होती हैं। (३) विस्तृत बाढ़ के मैदान जिन पर विभिन्न प्रकार के वनस्पति लहलहाती होगी।

इन नदी मैदानों का देश के आर्थिक जीवन में विशेष महत्व है। वास्तव में ये ही नदी मैदान प्राचीन काल से सभ्यता के केन्द्र रहे हैं और आज भी जीवन की समस्या के हल के लिए तथा बस्तियों के बसने के लिए प्रमुख आकर्षण हैं।

Dalmatian Coastline (**पर्वतीय तट रेखा**) जब कभी पर्वतीय प्रदेशों के जलमग्न हो जाने से तट रेखा बन जाती है तो उसे पर्वतीय तट रेखा कहते हैं। यूरोप में एडिरायटिक सागर का पूर्वी भाग या यूगोस्लाविया की पश्चिमी तट रेखा और भारत में बम्बई राज्य की तट रेखा इसी प्रकार की है। यहाँ पर्वतश्रेणियाँ उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर फैली हुई हैं और तट रेखा के समानान्तर स्थित हैं। इस पर्वतीय प्रदेश के कुछ भाग डूब गये हैं। अतएव तट रेखा के समानान्तर छोटी-छोटी दरारों की श्रृंखला सी बन गई है और ये दरारें आगे बढ़कर चौड़े कटान बन जाते हैं। वास्तव में ये पर्वतीय प्रदेश की डूबी हुई कन्दराएँ, दर्रे व घाटियाँ ही हैं। इस प्रकार के तट थोड़ी दूर पर पाये जाने वाले द्वीप वास्तव में डूबे हुए पर्वतों के शिखर ही हैं। इसीलिए ये द्वीप पहाड़ी, लम्बे और सँकरे हैं तथा तट रेखा के समानान्तर एक टूटी हुई श्रृंखला के समान फैले हुए हैं।

इस प्रकार की तटरेखा कटी-फटी और सुरक्षित होती है परन्तु यदि पानी गहरा हुआ तो इस पर अच्छे पोताश्रय बन जाते हैं अथवा व्यापारिक व आर्थिक दृष्टिकोण से यह बेकार रह जाती है। प्रस्तुत उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की तटरेखा बड़ी उपयोगी है। पानी गहरा होने के कारण इस प्रकार की तटरेखा पर प्राकृतिक सुरक्षित पोताश्रय बन गये हैं।

Dairying (**दुग्धशाला व्यवसाय**) जब मनुष्य कुछ सभ्य हो चला और उसमें शांतिपूर्ण एवं सुव्यवस्थित जीवन बिताने की कामना जगी तो भोजन, वस्त्र इत्यादि की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसने पशुपालन का काम शुरू किया। दूध, मक्खन तथा पनीर के लिए पशु पालने को दुग्धशाला व्यवसाय कहते हैं।

दुग्धशाला व्यवसाय पूर्णतया गाय के दूध पर ही निर्भर रहता है और पशु चारण के लिए बहुत व्यवस्थित सामाजिक जीवन की आवश्यकता ही तो है। इसके लिए निम्नलिखित अनुकूल दशाओं की आवश्यकता होती है--(१) सम जलवायु वाले स्थानों में पशुपालन का व्यवसाय सुगमता से चल सकता है क्योंकि ऐसे स्थानों में पशुओं के लिए रहने के मकानों की आवश्यकता नहीं होती। अत: समशीतोष्ण प्रदेश इस व्यवसाय के लिए आदर्श होते हैं। (२) पशुओं को चराने के लिए घास के विस्तृत चरागाह होने चाहिये ताकि सस्ता चारा प्राप्त हो सके। इसीलिए प्रेरीज, स्टेप, वेल्ड, सवाना आदि घास के मैदान में यह उद्यम खूब बढ़ा-चढ़ा है। (३) परन्तु घास के विस्तृत मैदानों में स्वास्थ्यप्रद

वातावरण होना बहुत जरूरी है ताकि रोग न फैल सके। उष्ण प्रदेश में अनेक प्रकार के जहरीले कीड़े होते हैं जिनके काटने से पशु रोगी हो जाते हैं। इसी कारण वहाँ पशुचारण उद्यम विशेष प्रगति नहीं कर पाया है। (४) दूध को रखने के लिए काफी विस्तृत जगह की आवश्यकता होती है अन्यथा यह शीघ्र खट्टा हो जाता है। इसलिए यह व्यवसाय उन मंडियों के समीप ही होता है जहाँ इसे ताजा ही पहुँचाया जा सके। परन्तु शीत भंडार रीति के आविष्कार से यह पहेली भी बहुत कुछ हल हो चुकी है।

दूध को मक्खन व पनीर में परिणत करके या इसको सुखाकर या जमाकर दूर-दूर तक भेजते हैं। वास्तव में विज्ञान की प्रगति से इस व्यवसाय को विशेष लाभ हुआ है। अतः यह व्यवसाय गहरी खेती वाले क्षेत्रों में विशेष उन्नति कर गया है। विस्तृत खेती के क्षेत्रों में फसलों को उगाने और मांस के व्यवसाय की अपेक्षा दुग्धशाला व्यवसाय को अधिक अच्छा व लाभप्रद समझा जाने लगा है। दुग्धशाला व्यवसाय में चरागाह या खेत एक प्रकार का कारखाना बन जाता है जिसका कच्चा माल वहीं उपलब्ध होता है। अतः दुग्धशाला व्यवसाय पर आश्रित जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस समय कनाडा, उत्तरी-पश्चिमी यूरोप और आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड में यह व्यवसाय विशेष उन्नति कर गया है। उत्तरी फ्रांस, हालैंड, डेनमार्क, स्विटजरलैंड में तो यह धंधा आर्थिक जीवन का सबसे प्रमुख अंग है।

Dairy Cattle (दुग्धशाला पशु) गाय और भैंस को दुग्धशाला के पशु कहते हैं। वास्तव में शीतोष्ण कटिबंध में, यहाँ दुग्धशाला व्यवसाय विशेष उन्नति कर गया है गाय ही दूध का प्रमुख पशु है। वास्तव में मांस के लिए पाले गये पशु दूध के व्यवसाय के लिए बिलकुल बेकार होते हैं। दूध के लिए रक्खी गयी गायों को ऐसा भोजन दिया जाता है जिससे वे चाहे मोटी बहुत अधिक न हों परंतु उनके दूध की मात्रा जरूर बढ़ जाय। इंगलैंड, डेनमार्क, और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में वैज्ञानिक रीतियों से गायों को स्वस्थ रक्खा जाता है और उन्हें हर प्रकार का आराम दिया जाता है। इनको बड़ा अच्छा भोजन दिया जाता है और इनकी खूब देखभाल की जाती है। जाड़ों और वर्षा ऋतु में इनको कम्बल उढ़ा कर रक्खा जाता है। इनके दूध निकालने का भी विशेष प्रबन्ध होता है। यही कारण है इन पाश्चात्य देशों के मवेशी एक मन या इस से अधिक दूध प्रतिदिन देते हैं। इन देशों में मवेशी की नस्ल सुधारने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। इनके विपरीत भारत के मवेशी औसतन दो सेर दूध देते हैं। इसीलिए विदेशी लोग भारतीय गायों को Tea Cups Cows कहते हैं।

Dam (बाँध) नदी की धारा में जल के प्रवाह को रोकने के लिए बने अवरोध को बाँध कहते हैं। ये अवरोध प्रायः दो प्रकार के होते हैं--(१) प्राकृतिक और (२) कृत्रिम। प्राकृतिक अवरोध हिमनदी के निक्षेप या पर्वतीय प्रदेशों में नदी प्रवाह के बीच शैलखंडों के गिरने से बन जाते हैं। जब यह निक्षेप नदी जलप्रवाह के सामने घाटी के आरपार बन जाता है तो नदी का जल एक जलाशय के रूप में एकत्रित हो जाता है और झीलें बन जाती हैं।

कृत्रिम बाँध मनुष्य अपने परिश्रम से बनाता है और सदा जल से भरी रहने वाली या बाढ़ आने वाली नदियों के जल को रोकने के लिए चूना, मिट्टी, सिमेन्ट और लोहे व इस्पात से एक ऐसा अवरोध बनाया जाता है जो नदी के जल को एक ओर रोके रक्खे। इस प्रकार के कृत्रिम बाँध का उद्देश्य नदी के जल को नियन्त्रित करना होता है और बहुधा उन नदियों के जल को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है जो बाढ़ के दिनों में बेलाग होकर आस-पास के क्षेत्र में बड़ी हानि करती हैं। इन बाँधों द्वारा रोके गये पानी को अगल-बगल से नहरें व नालियाँ निकाल कर दूर-दूर तक पहुँचाकर सिंचाई की व्यवस्था की जाती है। दूसरे इस प्रकार के कृत्रिम जलाशय से पानी को नीचे गिराकर जल विद्युत पैदा की जाती है। और तीसरे

इन्हीं जलाशयों में मछली पालने का भी काम किया जाता है। इस प्रकार वर्त्तमान युग में इन कृत्रिम बाँधों का बड़ा महत्व है।

Datum line (**समुद्र तल**) भूमि के धरातल की ऊँचाई को नापने के लिए एक निश्चित समतल को आधार मानकर चला जाता है। उस समतल को जीरो या शून्य मान लेते हैं और फिर वहाँ से धरातल की ऊँचाई नापते हैं। प्रायः समुद्रतल को ही आधार मान कर उस से ऊँचाई का सम्बन्ध व्यक्त करते हुए फीट में ऊँचाई स्पष्ट करते हैं।

Dawn (**ऊषा**) यह पारिभाषिक शब्द तीन अर्थों में प्रयोग किया जाता है।—(१) सूर्योदय से पहिले पृथ्वी के बहुत से भागों में दिखलाई पड़ने वाला धुँधला प्रकाश।

(२) वह क्षण जब आकाश में प्रकाश की पहिली किरण चमकने लगती है।

(३) सूर्योदय के पहिले का वह सम्पूर्ण काल जब वायुमण्डल एक धुँधले प्रकाश से चमकता रहता है। (देखिये Civic Twilight, Twilight)

Day and Night (**दिन और रात**) पृथ्वी प्रकाशहीन पदार्थ होने के कारण इसे प्रकाश के लिए सूर्य पर निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु सूर्य से प्राप्त इस प्रकाश पर पृथ्वी की दैनिक गति व उसकी धुरी की झुकाव का बड़ा असर पड़ता है। यदि पृथ्वी अपनी धुरी पर न घूमती होती तो हमेशा इसके आधे भाग में रात और दूसरे आधे भाग में दिन बना रहता। इसी प्रकार यदि इसका अक्ष इसके ग्रहपथ पर लम्बरूप खड़ा होता तो साल भर हर स्थान पर दिन-रात बराबर होते। परन्तु यह अक्ष पृथ्वी के ग्रहपथ पर २३½% के कोण पर झुका हुआ है। अतः सूर्य केवल पृथ्वी के आधे भाग पर ही प्रकाश फेंक सकता है परन्तु पृथ्वी अपनी दैनिक गति द्वारा अपनी धुरी पर चक्कर लगाती हुई हर समय एक नये भाग को सूर्य के सम्मुख करती रहती है। इस प्रकार पृथ्वी का प्रत्येक अर्द्ध भाग पारी-पारी से सूर्य का प्रकाश पाता रहता है। जब उत्तरी गोलार्द्ध में दिन होता है तो दक्षिणी गोलार्द्ध में रात होती है और जब दक्षिणी गोलार्द्ध में दिन होता है तो उत्तरी गोलार्द्ध में रात होती है।

जब किसी स्थान पर सूर्य निकल आता है तो प्रकाश हो जाता है और सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय दिन कहलाता है। इसके विपरीत सूर्यास्त हो जाने पर प्रकाश का केन्द्र उस स्थान के परोक्ष हो जाता है और तब से लेकर सूर्योदय तक रात कही जाती है। पृथ्वी पर से हम लोगों को सूर्य प्रति-दिन पूर्व दिशा से निकलकर आकाश में ऊपर जाकर पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ जान पड़ता है। सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर चलता हुआ ज्ञात होता है। परन्तु सूर्य स्थायी है और पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। इसीलिए दिन-रात होते हैं।

पृथ्वी का अक्ष सदैव अपनी स्थिति के समानान्तर होता है। अतः साल भर के अन्दर ६ महीने यह सूर्य की ओर २३॥° के कोण पर झुका रहता है और दूसरे ६ महीनों में यह सूर्य से २३॥° के कोण पर दूर हट जाती है। वास्तव में सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की गति के कारण एक गोलार्द्ध की स्थिति ६ महीना सूर्य के समीप और दूसरे छः महीने उससे दूर रहती है। वास्तव में जब उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी पड़ती है, सूर्य की किरणें सीधी पडती हैं तो दिन बड़े और रात छोटी होती है। उसी काल में दक्षिणी गोलार्द्ध में शीत पडता है, सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं और दिन की अपेक्षा रातें बड़ी होती हैं। इसकी बिल्कुल विपरीत दशा उत्तरी गोलार्द्ध के शीतकाल होने पर हो जाती है। साल में केवल दो दिन ऐसे हैं—२१ मार्च और सितम्बर २३ जब कि सूर्य भूमध्य रेखा पर चमकता है और दिन-रात बराबर होते हैं।

जब पृथ्वी की स्थिति ग्रहपथ पर सूर्य की ओर झुकी होती है तो उत्तरी ध्रुव में गर्मी का मौसम होता है और ६ महीना दिन बना रहता है और जब यह सूर्य से विमुख होती है तो उत्तरी ध्रुव में छः महीना शीत होती है। इसकी विपरीत दशाएँ दक्षिणी ध्रुव में पायी जाती हैं।

Dead Valley (**मृत घाटी**) शुष्क घाटी को बहुत से फ्रांसीसी भूगोल विशारद मृतघाटी कहना पसंद करते हैं। वैसे मृत घाटी और शुष्क घाटी में कोई भी अन्तर नहीं है। (देखिये Dry Valley)

Debacle (**हिम आवरण क्षय**) जाड़े के दिनों घोर शीत के कारण रूस और उत्तरी अमरीका की नदियाँ जम जाती हैं। और उन पर वर्फ का एक आवरण सा पड़ जाता है। वसन्त या गर्मी की ऋतु में इस प्रकार जमी हुई वर्फ पिघलती है और इस प्रकार जाड़ों में तैयार हुआ हिम आवरण भंग होने लगता है। इसे हिम आवरण क्षय कहते हैं। हिम आवरण क्षय का काल व अवधि अलग-अलग स्थानों में भिन्न होता है। वास्तव में जैसे-जैसे हम भूमध्य रेखा से अधिक दूर पहुँचते जाते हैं, यह काल व अवधि भी बढती जाती है। दक्षिणी रूस में मार्च के महीने से ही हिम आवरण क्षय प्रारम्भ हो जाता है परन्तु धुर उत्तरी साईबेरिया में यह क्रिया जून मास के मध्य से पहिले नहीं शुरू होती।

हिम आवरण क्षय प्रायः दो से छः हफ्तों तक होता रहता है और इस कालान्तर में नदियों में बर्फ पिघलने से जल की मात्रा बढ़ जाती है, वे अपने किनारों पर से होकर बहने लगती हैं और आसपास की सारी भूमि जलमग्न हो जाती है।

Deciduous Forests (**पतझड़वाले वन**) जैसा नाम से ही स्पष्ट है इन वनों में वे वृक्ष पाये जाते हैं जो शुष्क या ठंडी ऋतु में बर्फ के कुछ समय के लिए पत्तियाँ गिरा देते हैं। ये वन ४५° से ६०° उत्तरी अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में मिलते हैं। पतझड़ वाले वन उष्ण कटिबंध में मानसूनी भागों के उन क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं जहाँ वर्षा का वार्षिक औसत ४०" से ८०" तक रहता है। इन्हें मानसून वन भी कहते हैं। इनमें साल सागौन के वृक्ष मुख्य हैं। भारत व वर्मा के मानसूनी वन प्रदेशों में वृक्ष गर्मी के मौसम में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं और इस प्रकार कठोर ग्रीष्म ऋतु के वाष्पीकरण से अपनी रक्षा करते हैं।

शीतोष्ण प्रदेशों के वन जो उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में बहुत अधिक विस्तृत प्रदेश में पाये जाते हैं जाड़े के शुरू में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। इसीलिए यूरोप और अमरीका में इस मौसम को पतझड़ कहते हैं। इस प्रकार पत्तियाँ गिराकर और सुप्त अवस्था में रह कर इन वनों के वृक्ष सर्दी व पाले से अपनी रक्षा करते हैं। परन्तु शीतोष्ण प्रदेशों के इन वनों के वृक्षों की ऊँचाई मानसनी वनों के वृक्षों की अपेक्षा कम होती है। ये वन उतने सघन भी नहीं होते। इनकी वृद्धि भी धीमी गति से होती है। इन वनों में ओक, एश, बीच, एल्म, मेपल, बर्च इत्यादि पतझड़वाले वृक्ष उगते हैं। इनकी लकडी कठोर होती है। इन प्रदेशों के पहाड़ी भागों में नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वृक्ष भी मिलते हैं। इसीलिए इन्हें बहुधा मिश्रित वन भी कहा जाता है।

पतझड़ वाले वनों का विशेष आर्थिक महत्व है। इन वनों से व्यापार की कठोर लकड़ी प्राप्त होती है। मानसूनी प्रदेशों की अति कठोर लकड़ी—सागौन और साल—इमारत, जहाजों व रेलों के स्लीपरों के काम आती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें दीमक नहीं लगते और न अन्य प्रकार की हानि ही होने पाती है। शीतोष्ण प्रदेशों की प्रमुख लकड़ी—

ओक, एल्म और बीच---से तरह-तरह की मेज, कुर्सी आदि बनाये जाते हैं। इसीलिए इन वनों से लकड़ी काटना यहाँ का प्राचीन उद्यम है।

परन्तु इस प्रदेश के उन्नत भागों में वनों को साफ करके भूमि को खेती के काम में लाया जा रहा है और वन प्राय: पर्वतीय भागों अथवा खेती के दृष्टिकोण से अन्य दुर्गम स्थानों में ही मिलते हैं।

Declination (**झुकाव, कोणिक दूरी**) (१) सौरजगत मध्य रेखा से किसी नक्षत्र की कोणिक दूरी उसका झुकाव कहलाता है। यह कोणिक दूरी नक्षत्र विशेष से होकर गुजरने वाली मध्यान्ह रेखा पर नापी जाती है।

(२) ध्रुवघड़ी की सुई सदैव पृथ्वी तल पर एक ऐसे बिन्दु की ओर संकेत करती है जो वास्तविक उत्तरीय ध्रुव के समीप है और इसे आकर्षक उत्तरीय ध्रुव कहते हैं। वास्तविक उत्तरीय ध्रुव वाली मध्यान्ह रेखा और आर्कषक उत्तरीय ध्रुव की ओर निर्देश करने वाली आकर्षक मध्यान्ह रेखा के बीच जो अन्तर होता है उसे कोणिक दूरी कहते हैं परन्तु अब भेद स्पष्ट करने और संदिग्धता दूर करने के लिए इस कोणिक दूरी को आर्कषक कोणिक दूरी कहते हैं। अधिकतर स्थानों पर ध्रुव घड़ी की सुई वास्तविक उत्तर से कुछ हटकर पूर्व या पश्चिम की ओर निर्देश करती है और इसलिए आकर्षक कोणिक दूरी को १०° पश्चिम या १०° पूर्व द्वारा व्यक्त करते हैं। आकर्षक कोणिक दूरी में कई प्रकार के परिर्वतन होते रहते हैं, नियमित दैनिक परिवर्त्तन, अव्यवस्थित कालान्तर परिवर्त्तन और वाह्य परिस्थिति परिवर्त्तन। (देखिये Terrestrial Magnetism)

Declination of the Sun (**सूर्य का कोणिक झुकाव**) भूमध्य रेखा के उत्तर या दक्षिण में सूर्य की कोणिक दूरी को, उसका कोणिक झुकाव कहते हैं। २१ मार्च और २३ सितम्बर को सूर्य भूमध्य रेखा पर अपनी किरणों को लम्बरूप डालता है और फलत: उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध में एक ही प्रकार का मौसम होता है और हर जगह दिन व रात बराबर होते हैं। इन दशाओं को समरात्रियाँ कहते हैं। २१ मार्च के बाद के तीन महीनों में सूर्य के प्रति पृथ्वी के अक्ष की दशा बदल जाती है और २१ जून को पृथ्वी की अक्ष या धूरी सूर्य की ओर २३।।° के कोण पर झुकी रहती है और सूर्य की किरणें उत्तरी ध्रुव से २३।।° के कोण पर हटकर लम्ब रूप चमकती हैं। इस दशा को उत्तरायण कहते हैं। इसी प्रकार २२ दिसम्बर के समीप पृथ्वी की धूरी सूर्य की ओर २३।।° दक्षिण के कोण पर झुकी रहती है या यूँ कह सकते हैं कि सूर्य की किरणें दक्षिणी ध्रुव से २३।।° कोण पर हट कर लम्बरूप गिरती हैं। इस दशा को दक्षिणायन कहते हैं। उत्तरायण में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर लम्बरूप पड़ती हैं और दक्षिणायन में मकर रेखा पर। सूर्य की किरणों के लम्ब रूप में इस परिवर्त्तन को सूर्य का कोणिक झुकाव कहते हैं। इसी के कारण मौसम के परिवर्त्तन होते हैं और इसके द्वारा समय का ज्ञान भी होता है। नाविक-गण सूर्य की सबसे ऊँची स्थिति को डिग्री में नापकर तथा उसके साथ सूर्य के कोणिक झुकाव को जोड़ या घटा कर किसी भी दिन दोपहर के समय अपने अक्षांश का पता लगा लेते हैं। यदि नाविक कर्करेखा के उत्तर में है और ग्रीष्म ऋतु के कारण सूर्य की स्थिति भी उत्तरायण है तो वह सूर्य की वास्तविक ऊँचाई के साथ उसके कोणिक झुकाव को जोड़ कर अपनी अक्षांश स्थिति का पता लगा लेगा। इसके विपरीत यदि वह कर्करेखा के उत्तर में हुआ और सूर्य की स्थिति दक्षिणायन हुई तो वह दोपहर में लिये गये सूर्य की ऊँचाई में से सूर्य के कोणिक झुकाव को घटाकर अपनी अक्षांश स्थिति निकाल लेगा।

Deep (अथाह सागर) समुद्री पेटे के अत्यन्त गहरे भाग अथाह सागर कहलाते हैं। वास्तव में समुद्री तल के थोड़े से भाग में ये सागर इस प्रकार स्थित होते हैं कि उनके पार्श्व का ढाल बड़ा ही तीक्ष्ण होता है और उनकी गहराई हजारों फैदम होती है। ये अथाह सागर महासागरों के मध्य में नहीं पाये जाते हैं बल्कि महासागरों के दायें व बायें किनारों की तरफ स्थित रहते हैं। इस प्रकार के अथाह सागर उन प्रदेशों में विशेषरूप से मिलते हैं जहाँ अक्सर भूकम्प आया करते हैं और जहाँ के ज्वालामुखी उद्गार अभी भी चैतन्य हैं।

अधिकतर अथाह सागर प्रशान्त महासागर के किनारों के समीप लम्बी घाटियों के रूप में स्थित हैं। इन में से जापान से कुछ दूर टसकारारा अथाह सागर और दक्षिणी अमरीका के तट से दूर आटाकामा अथाह सागर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार के अन्य अथाह सागर महासागरीय तल से ऊपर को उठे हुये पहाड़ों के समीप भी पाये जाते हैं। इन दूसरे प्रकार के अथाह सागरों में सबसे महत्वपूर्ण वह है जो टाँगा द्वीपसमूह से न्यूजीलैंड तक फैला हुआ है। इनकी गहराई का अन्दाजा इसी से लग सकता है कि फिलीपाइन द्वीप समूह में पिन्डानयो से ४० मील पूर्व को खड्ड की गहराई ५३४८ फैदम है। लडरोन द्वीप के समीप स्थित अथाह सागर की गहराई ५२६८ फैदम है।

अटलांटिक महासागर में अथाह सागर बहुत कम हैं। फिर भी पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्टोरिको द्वीप के उत्तर में स्थित ब्लैक अथाह सागर की गहराई ४५६१ फैदम है। इसके अलावा दूसरा अथाह सागर भूमध्यरेखा के पश्चिमी पार्श्व में स्थित है। इसकी गहराई ४००० फैदम है और इसे रोमान्स अथाह सागर कहते हैं।

Defile (दर्रा) दर्रा शब्द का अर्थ तो केवल दो पर्वतों के बीच ऐसे सकरे मार्ग से है जिसके द्वारा आना जाना हो सके। परन्तु आजकल गहरी घाटियों व नदी तलैटियों को भी दर्रा द्वारा ही निर्देश करते हैं।

Deflation (वायु अपनयन) बहते हुए जल और चलते हुए हिम की तरह वायु भी शुष्क प्रदेशों में स्थल को काटती व सूक्ष्म धूल को उड़ाकर बहुत दूर तक ले जाती है। चीन का भीतरी भाग इसी प्रकार की सूक्ष्म धूल की मोटी चादर से ढका हुआ है। उस धूल को लोयस (loess) कहते हैं। यह सूक्ष्म धूल वायु द्वारा ही इस प्रकार एकत्रित करके फैलायी गई है। वायु समुद्रतट से बालू को भी स्थल के आन्तरिक प्रदेशों में बहुत दूर तक उड़ा ले जाती है। वास्तव में सच तो यह है कि जहाँ वनस्पति का अभाव है और जहाँ वायु की गति विशेष तीव्र होती है वहाँ वायु अपनयन विशेष रूप से होता रहता है। अतएव समुद्रतटीय प्रदेशों और उससे भी अधिक मरुस्थलों में वायु अपनयन का रूप विशेष महत्व रखता है। रेगिस्तानों में वायु बालू या रेत को उड़ा कर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है। कहीं तो बालू के नीचे की चट्टान निकल आती है और कहीं बालू के टीले बन जाते हैं। इन बालू के टीलों के बीच सँकरी घाटियाँ सी बन जाती हैं। वास्तव में हवा की गति व दिशा के अनुकूल उड़ाई हुई बालू के इन रूपों में अन्तर होता रहता है।

Deforestation (वन नाश) जहाँ की भूमि उपजाऊ है और जहाँ पर भूमि पर आबादी का दबाव अधिक है वहाँ बहुधा वनाच्छादित प्रदेशों को साफ करके खेती का धन्धा शुरू किया जाता है। इस प्रकार वननाश का काम खेती के लिए ही होता है और प्रायः घने बसे हुए भागों में। वननाश का कार्य उन पिछड़े हुए प्रदेशों में भी होता रहता है जहाँ की असभ्य या कम सभ्य जातियाँ एक स्थान के जंगल को साफ करके खेती शुरू करती हैं और उस भूमि के क्षीण हो जाने पर दूसरे क्षेत्र के जंगल को इसी प्रकार जलाकर साफ कर लेती हैं। खेती के लिए वननाश का काम उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के राज्यों में विशेष उग्र हो गया

है। वहाँ के चौड़ी पत्ती वाले पतझड़ वन अब केवल खेती के अयोग्य भूमि पर ही बचे पायें जाते हैं। उष्णकटिबंध के देशों में वननाश संभव नहीं है क्योंकि साफ करते ही अनेक प्रकार की अन्य घासफूस उग आती है और इसके अलावा वहाँ की जलवायु में जहरीले कीड़े व रोगों से साफ की हुई भूमि का पर्याप्त उपयोग नहीं हो पाता।

Degradation (**नदी द्वारा आवरण क्षय**) जैसे ही कोई स्थलरूप प्रकट होता है उस पर वर्षा के जल की धाराएँ बहने लगती हैं। ये छोटी-छोटी धाराओं में काट-छाँट करने की शक्ति होती है और ये धारायें अपने मार्ग के लिए छोटी-छोटी नालियाँ काट लेती है। नदी द्वारा इस कार्य को नदी आवरणक्षय कहते हैं। वास्तव में नदी की धारा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वैसे-वैसे अपनी तलैटी को गहरा व चौड़ा करती जाती है। इस क्रिया के फलस्वरूप जलधारा में बहुत से कंकड़-पत्थर इकट्ठा हो जाते हैं जो बहाव के साथ-साथ आगे लुढ़कते रहते हैं। ये पत्थर इन नदी-नालों की तली में तथा दोनों किनारों पर कठिन चट्टानों से टकराते रहते हैं और यन्त्रों की सहायता से ही नदी अपने किनारों व तलैटी को काटने में सफल होती है। नदी आवरणक्षय दो प्रकार का होता है—(१) प्रत्यक्ष व काट-छाँट सम्बन्धी और (२) परोक्ष या रसायनिक घुलन क्रिया सम्बन्धी। नदी अपनी तलैटी की चट्टानों को तोड़-फोड़ तथा काट-छाँट करके ही नष्ट नहीं करती बल्कि घुलने योग्य चट्टानों को गलाकर भी नष्ट कर देती है। ये दोनों प्रकार के आवरणक्षय की तीव्रता निम्नलिखित चार बातों पर निर्भर रहती है। (१) जलराशि की कमी या अधिकता। (२) प्रवाह की गति व वेग। (३) साथ में बहाकर लाये हुए कंकड़-पत्थर और (४) प्रवाहक्षेत्र की चट्टानों का स्वभाव। जलराशि की मात्रा वर्षा पर निर्भर रहती है तथा प्रवाह की गति प्रदेश की भूमि के ढाल और जलराशि पर निर्भर रहती है। साथ में बहाकर लाये हुए कंकड़ों-पत्थरों की संख्या गति या वेग के अनुसार ही भिन्न हो जाती है। यदि गति को दूना कर दिया जाय तो कंकड़-पत्थर बहा ले जाने की शक्ति चौसठ गुनी हो जायगी। वास्तव में जब पूर्णराशि से कम कंकड़-पत्थर बहाकर लाये होते हैं तो नदी द्वारा आवरण क्षय बहुत तीव्र होता है। इसके अलावा नदी प्रवाह में जहाँ भँवर आदि होते हैं वहाँ आवरणक्षय अपेक्षाकृत बढ़ जाता है।

नदी द्वारा आवरण क्षय नदी घाटी के मध्य में अधिक रहता है। पहाड़ी प्रदेश या पहाड़ की चोटी पर जलराशि की कमी व कंकड-पत्थर की न्यूनता के कारण आवरण क्षय नगण्य होता है। इसी प्रकार नदी घाटी के निचले प्रदेश में जहाँ वह समुद्र से मिलती है उसमें जलराशि व बहाकर लाई हुई कंकड़-पत्थर, मिट्टी-बालू आदि की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। इसलिए वहाँ निक्षेप ही होता है। अत: नदी घाटी के मध्य भाग में ही आवरणक्षय अधिक तीव्र होता है। घाटी के ऊपरी व निचले भागों में यह अपेक्षाकृत बहुत कम होता है।

Degree (**अंश**) पारिभाषिक शब्द अंश कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है—

(१) तापांश या तापक्रम को नापते समय विभिन्न प्रकार के थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है। उनमें तापक्रम की प्रत्येक इकाई को अंश कहते हैं। चाहे फारेनहाइट हो चाहे सेन्टीग्रेड परन्तु उनमें अंकित व उनके द्वारा निर्देशित तापक्रम की एक इकाई को अंश कहते हैं।

(२) अक्षांश व देशान्तर दूरी नापने की इकाई को अंश कहते हैं। पृथ्वी पर स्थिति निश्चित करने के लिए नाप की प्रयुक्त इकाई को अंश कहते हैं। रेखागणित के दृष्टिकोण से एक वृत्त में ३६०° अंश होते हैं। अतएव भूमध्य रेखा से ध्रुव की दूरी जो कि सम्पूर्ण पृथ्वी की परिधि की एक-चौथाई ही है ९० अंश मान ली गई है। इस प्रकार अक्षांश की एक-इकाई

पृथ्वी की परिधि का १/३६०वाँ भाग होगी। इसी प्रकार पृथ्वी की पूर्वीय व पश्चिमी दूरी भी नापी जा सकती है। यदि हम भूमध्य रेखा तथा किसी अक्षांश रेखा पर चारों ओर चक्कर लगायें तो एक पूर्ण वृत्त अथवा ३६० अंश का चक्कर लगाना पड़ेगा। इसलिए भूमध्य रेखा को ३६० बराबर अंशों में बाँट देते हैं और फलत: देशान्तर का एक अंश भूमध्य रेखा पर पृथ्वी की सम्पूर्ण परिधि का १/३६० वाँ भाग होता है। परन्तु यह दूरी भूमध्य रेखा से ध्रुव की ओर जाने पर घटती जाती है और ध्रुवों पर जीरो अंश होती है। देशान्तर व अक्षांश रेखा के प्रत्येक अंश को समय के लिये ६० मिनटों में बाँट दिया जाता है।

(३) किसी प्रदेश के भूमि ढाल को नापने के लिए कोणिक दूरी ली जाती है और सामान्य भाषा में उसे भी ढाल का कोणिक अंश कहते हैं परन्तु अंश शब्द का यह प्रयोग गलत है।

Dell (वनाच्छादित घाटी) जैसा नाम से ही स्पष्ट है, वह छोटी घाटी भी जंगली पेड़ों से घिरी रहती है तथा जहाँ उच्च व निम्न स्थानों पर झाड़ीवन पाये जाते हैं, वनाच्छादित घाटी कहलाती है।

Delta (डेल्टा) नदी घाटी के निचले भाग में जहाँ नदी समुद्रतल से मिलती है, नदी में जलराशि व कंकड़-पत्थर, मिट्टी, बालू आदि के अंश की मात्रा इतनी बढ़ जाती है और साथ-साथ प्रवाह की गति इतनी धीमी हो जाती है कि आवरणक्षय, तथा अपनयन की अपेक्षा निक्षेप अधिक होता है। फलत: जहाँ ज्वार-भाटा या अन्य समुद्री धाराओं का अभाव होता है वहाँ नदी के मुहाने पर इस निक्षेप द्वारा एक पंखे की तरह का मैदान बन जाता है। इस विस्तृत चिपटे प्रदेश में नदी अनेक मार्गों में होती हुई बहने लगती है। उस प्रदेश को डेल्टा कहते हैं। नील नदी के मृत्तिकामय निक्षेप से बने मुहाने पर के मैदान के आकार को यूनानी भाषा के चतुर्थ वर्ण से मिलता-जुलता देखकर यूनानियों ने इस प्रकार के मैदानों का नाम डेल्टा रख दिया।

नदी के डेल्टा प्रदेश में जैसे निक्षेप होता जाता है नदी की धारा बढ़ती जाती है और निक्षेप के दोनों ओर दो धाराओं में बहने लगती है। इस प्रकार से बनी धाराएँ अपना निक्षेप करती हैं और विभिन्न छोटी-छोटी नालियों में बँट जाती हैं। इस प्रकार की निक्षेप की राशि बाहर की ओर बढ़ती जाती है और उसका आकार पंखे या त्रिभुज के समान बन जाता है। इस त्रिभुजाकार निक्षेप का शिरोबिन्दु डेल्टा का शिखर कहलाता है। कभी-कभी जब मिट्टी बालू से लदी तेज प्रवाहवाली नदी किसी मन्द प्रवाह नदी से मिलती है या जब कोई नदी किसी झील में प्रवेश करती है तो भी छोटे आकार के डेल्टा बन जाते हैं। जहाँ ज्वार-भाटा आते रहते हैं वहाँ पर भी बहुधा डेल्टा बन जाते हैं यदि नदी द्वारा लाई हुई सामग्री इतनी अधिक हुई कि ज्वार-भाटा द्वारा बहा ले जाने पर भी बची रह जाय। परन्तु इस प्रकार का डेल्टा अस्वाभाविक व अनियमित होगा जैसा कि राईन नदी का डेल्टा है।

नदियाँ बहाकर लाई हुई मोटी बालू व कंकड़ आदि मुहाने के बहुत पहिले ही जमा कर देती हैं। केवल मिश्रित पंक के सूक्ष्मकण ही समुद्र तक पहुँच पाते हैं। नदियों के ताजे पानी पर समुद्र के खारी पानी का यह प्रभाव पड़ता है कि नदियों के जल में मिश्रित मिट्टी अलग होकर समुद्रतल में बैठ जाती है। अत: डेल्टा प्रदेश के निक्षेप का सबसे निचला भाग चिकनी मिट्टी का होता है। उसके अग्र भाग में महीन मृत्तिका का निक्षेप पाया जाता है और उसके ऊपरी भाग में मोटी बालू मिलती है। यदि डेल्टा निक्षेप का लम्बरूप खण्ड करके देखा जाय तो सबसे पुराना निक्षेप जो तली पर होगा समानान्तर मिलेगा। इसी प्रकार सबसे

नवीन निक्षेप जो सतह पर मिलेगा वह भी समानान्तर होगा। परन्तु इन दोनों परतों के बीच की परत समुद्र की ओर झुकी हुई रहती है।

यद्यपि डेल्टा प्रदेश में निक्षेप हर स्थान पर होता रहता है परन्तु धारा के किनारों पर यह सब से अधिक होता है और फलत: दोनों तरफ समुद्र के अन्दर एक-एक दलदली किनारा सा बन जाता है। बराबर निक्षेप होते रहने से किनारे कुछ समय बाद ऊसर सतह तक उठ जाते हैं और नदी की धारा के इधर-उधर बाँध की तरह बने हुए समुद्र के जल में बहुत दूर तक निकले रहते हैं। जब नदी की धारा में बाढ़ आती है तो किसी कमजोर स्थान पर से जल इन्हें फोड़ देता है और इस प्रकार फूट कर निकली हुई धारा अपने किनारों पर अलग निक्षेप बनाने लगती है। फलत: चीन की तरह फैला हुआ डेल्टा काँटे की तरह कटा-फटा हो जाता है। डी नदी का डेल्टा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि दो उपशाखाओं द्वारा बनाये हुए दलदली निक्षेप के किनारे आपस में मिल जाते हैं।

नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से भी जो नवीन स्थल बनते हैं वे बडे ही उपजाऊ होते हैं और संसार के सबसे अधिक उपजाऊ व घने आबाद प्रदेशों में डेल्टा क्षेत्रों का विशेष महत्त्व है। नील, ह्वान्गहो, मिसीसिपी और गंगा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा संसार में प्रसिद्ध हैं। इन डेल्टा प्रदेशों में नदियों द्वारा इतनी अधिक मिट्टी आती है कि उसके मार्ग पूर्णतया भर जाते हैं और जल को दूसरी दिशा में नया मार्ग को बनाना पडता है। जब डेल्टा प्रदेश की धाराएँ अकस्मात अपनी दिशा बदलती हैं तो बहुधा बड़ी हानि हो जाती है। ह्वान्गहो में इस प्रकार के परिवर्तन से सन् १८८७ में करीब १० लाख आदमी बे घरबार के हो गये थे और सैकडों गाँव बरबाद हो गये थे।

Dendritic Drainage (वृक्ष सम प्रवाह) जब मुख्य नदी पेड़ के तने के समान होती है और उसके दोनों ओर से सहायक नदियाँ वृक्षों की शाखाओं की भाँति आकर मिलती रहती हैं तो इस प्रकार की जल प्रवाह व्यवस्था को वृक्षसम कहते हैं। इसमें मुख्य नदी व उसकी सहायक तथा उप-सहायक नदियों का जाल एक वृक्ष व उसकी शाखाओं तथा टहनियों की भाँति फैला रहता है। इस प्रकार की जल प्रवाह व्यवस्था में मुख्य नदी तो स्थलरूप के अनुरूप ही होती है परन्तु सहायक व उपसहायक शाखाएँ बाद के जलप्रवाह व्यवस्था से उत्पन्न होती हैं।

Dendritic Glacier (वृक्ष रूप हिमनदी) हिम आवरण जब पिघलने लगता है तो मुख्य हिमनदी में गिरने वाले छोटे-छोटे हिम प्रवाह में भी बर्फ पिघलने लगती है। फलत: मुख्य हिमनदी घाटी के दोनों पार्श्वों में लटकती हुई घाटियों में छोटे-छोटे हिम प्रवाह क्रमश: लटकते हुए दिखलाई पड़ते हैं। दूर से ऐसा मालूम पड़ता है कि हिम नदी की मुख्य घाटी तो पेड़ का तना है और उसके दोनों पार्श्वों में लटकते हुए हिमनद शाखाएँ हैं। इस प्रकार की हिमनदी को उसके आकार के आधार पर वृक्षसम हिमनदी कहते हैं।

उच्च अक्षांशों में वृक्षसम हिमनदी कटे-फटे तटों पर से होकर जब समुद्रतल पर बह आती है तो उस पर जल की धाराओं के आघात होने लगते हैं और इस प्रकार की हिमनदी को ज्वार-भाटा हिमनद कहते हैं। परन्तु यह वास्तव में वृक्षसम हिमनदी का एक उपभेद ही है।

इस प्रकार की हिम नदी की प्रथम दशा का भास हिमालय प्रदेश के बोल्टारो हिमनदी से होता है। इसकी अन्तिम दशा न्यूजीलैंड के तस्मान हिमनदी से ज्ञात होती है। इस प्रकार की हिमनदी पूरी घाटी को नहीं घेरे रहती परन्तु मुख्य हिमनदी के दोनों ओर सहायक हिमधाराएँ स्थित रहती हैं और हिमनदी के तल के समीप लटकती हुई हिम नदियाँ अलग हो जाती हैं।

Density of Population (जनसंख्या का घनत्व) किसी विशेष प्रदेश में क्षेत्रफल की एक इकाई में रहने वाले निवासियों की संख्या के औसत को जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। अँग्रेजी प्रभाव से आक्रान्त देशों में यह घनत्व प्रतिवर्गमील के आधार पर लिया जाता है। जनसंख्या का घनत्व बहुत कुछ प्रदेश विशेष की बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। जलवायु, भूमि के उपजाऊपन, प्राकृतिक सम्पत्ति और प्राकृतिक बनावट के अनुसार ही रहने वालों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। यही कारण है कि पर्वतीय प्रदेशों की अपेक्षा मैदानी भागों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है इसी प्रकार शुष्क प्रदेशों की अपेक्षा वर्षापूर्ण प्रदेशों में अधिक लोग निवास करते हैं। और अधिक गर्म या अधिक शीत प्रदेशों की अपेक्षा सम जलवायु के क्षेत्रों में रहना अधिक सुविधाजनक होता है।

Denudation (अनावृत्तीकरण) शुष्क स्थल के महासागरतल से ऊपर प्रकट होने पर कुछ प्राकृतिक शक्तियाँ उसको घिस या काट कर नष्ट करने के लिए प्रस्तुत रहती हैं। इस नाश या क्षय की क्रिया को अनावृत्तीकरण कहते हैं। स्थल को नष्ट करने वाली शक्तियों में निम्नलिखित विशेषरूप से प्रमुख है—सूर्य, वायु, मेघ, पाला, बहता हुआ जल, चलता हुआ हिम और समुद्र। उष्ण व शुष्क प्रदेशों में सूर्य की तेज गर्मी के कारण विभिन्न खनिज पदार्थों से बनी चट्टानें दिन में तो फैल जाती हैं, रात में ठंडे होने पर यही चट्टानें सिकुड़ जाती हैं और इस क्रिया के दिन प्रतिदिन होते रहने पर चट्टानें फट जाती हैं, धीरे-धीरे दरारें बड़ी हो जाती हैं और चट्टानों के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं। **वायु** अनावृत्तीकरण का कार्य दो प्रकार से करती है। तेज हवा मिट्टी व धूल के छोटे कणों को अपने साथ उड़ा ले जाती है। और दूसरे वायु स्थल को घिसकर काट देती है। तीव्र वायु में मिले बालू के नुकीले कण कड़ी चट्टानों से टकराते हैं तो उनके तल को घिसने लगते हैं और धीरे-धीरे कड़ी चट्टानें भी कटने लगती हैं। वायु का यह कार्य सूखे प्रदेशों तथा सागर तट के समीप अधिक होता है। **वर्षा** या मेघ का जल वृक्षों व घासों की जड़ों से सटी मिट्टी को ढीली करके बहा ले जाता है और वर्षा की तीव्रता व मात्रा के अनुसार भूमि कट-फट या महीन मिट्टी से हीन हो जाती है। अत्यन्त गर्म देशों में सूर्यताप से तपी हुई चट्टानों पर जब वर्षा होती है तो वे एक दम सिकुड़ने के कारण तड़क कर टूट जाती है। अतिशीत प्रधान देशों में चट्टानों की दरारों में एकत्रित जल के रात में जम कर फैलने और दिन में पिघलने से चट्टानों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इसे **पाले** की क्रिया कहते हैं। पाला पानी को जमाकर दरारों को चौड़ा करता है और फिर बार-बार इसी क्रिया के होते रहने पर चट्टानों को तोड़ डालता है। **नदी** व **हिम नदी** अपने प्रवाह की शक्ति के कारण अपनी तलैटी को व अपनी घाटी के पार्श्वों को काटती-छाँटती रहती है। वैसे तो बहते हुए जल अथवा चलते हुए हिम में तोड़ने-फोड़ने की पर्याप्त शक्ति होती है परन्तु प्रवाह के साथ भी कंकड़-पत्थर बहते हुए आते है उनके द्वारा क्षति और भी बढ़ जाती है। अनावृत्तीकरण का यह कार्य घाटी के ऊपरी भागों में विशेष रूप से तीव्र होता है क्योंकि वहाँ ढाल बड़ा ही तीव्र होता है। तटीय प्रदेशों के स्थल को नष्ट करने के लिए **समुद्र** विशेषकर तूफान के समय एक अति प्रबल साधन है। समुद्र की प्रत्येक लहर किनारे से टकरा कर उसके कोमल भागों को बहा ले जाती है। लहरों के समय साधारणतया छोटे-छोटे पत्थर के कण और बालू भी होते हैं। वे भी जल के साथ किनारे से टकराते हैं और उनकी अधिक हानि करते हैं। इन शक्तियों के अलावा जल के साथ मिश्रित आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड तथा हाइड्रोजन आदि गैसों के प्रभाव से चट्टानों की धातुओं व खनिज पदार्थों में रासायनिक परिवर्त्तन हो जाता है। फलतः कुछ ऐसी वस्तुएँ बन जाती हैं जो जल में पूर्णतया घुल जाती हैं। इसी प्रकार वनस्पति के पेड़ पौधों की जड़ों के नमी की तलाश में इधर-उधर

फैलने से भी चट्टानें कमजोर होकर तड़क जाती हैं। प्रवेश्य चट्टानों या जल में घुलने वाली चट्टानों के प्रदेश में तो वर्षा का जल पृथ्वी के अन्दर पहुँच कर बड़ी क्षति करता है।

अनावृत्तीकरण के कार्य के दो रूप होते हैं—(१) एक तो ऋतु प्रहार और (२) दूसरा आवरण क्षय। ऋतुप्रहार की मुख्य शक्तियाँ सूर्य, मेघ और पाला हैं। आवरणक्षय की प्रधान शक्तियाँ बहता हुआ जल, चलता हुआ हिम, वायु और समुद्र हैं। वास्तव में ऋतुप्रहार द्वारा की गई टूट-फूट या विखण्डन से ही वे कंकड़-पत्थर, बालू आदि प्राप्त होते हैं जिनके सहारे से नदी, वायु व हिम नदी भूपटल को घिस कर काटछाँट कर और खुरच कर विभिन्न स्थल रूप बनाने में सफल होती हैं। आवरण क्षय का कार्य प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों ही प्रकार से होता रहता है। प्रत्यक्ष तो घिसाई द्वारा और परोक्ष रासायनिक क्रिया द्वारा होता है। प्राकृतिक स्थल रूपों के निर्माण या जन्म के मुख्य कारण अनावृत्तीकरण व निक्षेप हैं। इसी के द्वारा पहाड़ व घाटियाँ बनते हैं।

Dependency (**आश्रित राज्य**) जो राज्य स्वतंत्र न हो और जहाँ स्वायत्त शासक व्यवस्था न होकर किसी दूरस्थ राष्ट्र का नियंत्रण हो उसे आश्रित राज्य कहते हैं। आश्रित राज्य में बहुधा प्राकृतिक सम्पत्ति का उचित उपयोग व उपभोग नहीं होता। बल्कि शासन राष्ट्र द्वारा शोषण होता रहता है। दूसरे आश्रित राज्य का वाणिज्य व्यापार व आर्थिक दशा सदा ही अवनत बना रहता है। परन्तु कभी-कभी लाभ भी होता है। उन्नत शासक राज्य के सम्पर्क व सम्बन्ध से पिछड़े हुए आश्रित राज्य में नवीन जागृति व स्फूर्ति की लहर दौड़ जाती है।

Deposition (**निक्षेप**) स्थलरूप निर्माण में अनावृत्तीकरण के बाद निक्षेप का स्थान आता है। वास्तव में किसी एक स्थान से काटे-छाँटे या नष्ट हुए पदार्थ वहाँ से ले जाकर दूसरी जगह निक्षिप्त हो जाते हैं। वास्तव में निक्षेप की प्रधान शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—वायु, नदी, हिम नदी और समुद्र। **वायु निक्षेप** दो प्रकार का होता है। एक तो यह कि शुष्क प्रदेशों में स्थल बहुधा वायु से उड़ाकर लाई हुई धूल के मोटे आवरण से ढका रहता है। समुद्रतट या रेगिस्तानों में उड़कर आई हुई बालू एक पहाड़ी या टीले के रूप में इकट्ठा हो जाती है। नदी, जब पहाड़ी प्रदेश को छोड़ कर किसी मैदान में, प्रवेश करती है तो वहाँ मिट्टी व पत्थरों की एक विशाल राशि इकट्ठा हो जाती है। जब नदी अपनी घाटी के अधिक चपटे भाग में प्रवेश करती है तो धारा के मन्द पड़ जाने से बालू उसी के तल में बैठ जाता है। इस कारण बालू के किनारे बन जाते हैं। बाढ़ के दिनों के बाद इधर उधर किनारों पर मिट्टी इकट्ठा रह जाती है। नदी के मुहाने पर सबसे प्रमुख निक्षेप बनता है जिसे डेल्टा कहते हैं। इसी प्रकार जब कोई नदी किसी झील में प्रवेश करती है तो उसकी मिट्टी तथा पंक उसमें बैठ जाता है, यहाँ तक कि धीरे-धीरे वह झील भर जाती है। **हिम नदी** जब पर्वत से नीचे की ओर सम स्थल पर जहाँ वायु गर्म रहती है उतरने लगती है तो हिम पिघलने लगता है और उसके द्वारा बहाकर लाये हुए कंकड़, पत्थर चट्टानों के बडे-बड़े ढोके रह जाते हैं। हिम नदी के प्रवाह व पिघलने के अनुसार इस निक्षेप का रूप विभिन्न होता है। समुद्रतट पर **समुद्र की लहरों** के द्वारा बालू तथा छोटे-छोटे रोड़ों के सूखे निक्षेप बन जाते हैं। इस प्रकार नदियाँ मिट्टी, पंक व कंकड़ इकट्ठा करती हैं; वायु द्वारा बालू व धूल के निक्षेप बनते हैं और हिम नदियाँ मिट्टी के ढोकों व चट्टानों के टुकड़ों का निक्षेप बनाती हैं। समुद्र की लहरों से बालू व कंकड़ का निक्षेप बनता है।

समुद्र, झील, और नदियों की तली पर जो मिट्टी, बालू तथा पत्थर संचित हो गये हैं उनके अतिरिक्त भी कुछ निक्षेप पाये जाते हैं, जो पौधों तथा जन्तुओं के शेष भाग से बन गये हैं।

ये निक्षेप उन प्रदेशों में पाये जाते हैं जहाँ के जंगल बहुत ही तर व सम भूमि पर उगे हुए हैं। इस प्राणिज निक्षेप से ही पीट चट्टानें बनती हैं जिनसे कालान्तर में कोयला व पेट्रोल प्राप्त होता है।

Depression (गर्तचक्र) जब किसी केन्द्र में आस-पास के प्रदेशों की अपेक्षा वायुभार निम्न होता है तो उसे गर्तचक्र कहते हैं। इसे चक्रवात भी कहते हैं। ऋतु मानचित्र पर गोलाकार समभार दर्शक रेखाओं द्वारा इसे चित्रित किया जाता है और इस वृत्ताकार व्यवस्था में निम्नतम भार की समभार दर्शक रेखाएँ अन्दर की ओर रहती हैं और केन्द्र से बाहर की ओर समभार दर्शक रेखाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं। निम्नभार केन्द्रों का विस्तार व गति विभिन्न होती है। वे १०० मील से लेकर २००० मील तक विस्तार में फैले हो सकते हैं और कभी तो वे बिलकुल स्थायी होते हैं और कभी उनकी रफ्तार ६००-७०० मील प्रति दिन होती है। ये निम्नभार केन्द्र शीतोष्ण कटिबन्ध में विशेष रूप से पाये जाते हैं। इसकी ऊँचाई समुद्रतल से प्रायः सात मील तक होती है।

निम्नभार केन्द्र दो प्रकार के होते हैं—गहरे और उथले। गहरे निम्नभार केन्द्र में केन्द्र का भार आस-पास के वायुभार की अपेक्षा बहुत कम होता है और उथले निम्नभार केन्द्र में केन्द्र व परिधि के भार में इतनी विषमता नहीं होती। उथले निम्नभार केन्द्र में बहुधा **गौण** चक्रवात उत्पन्न हो जाते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में केन्द्र के चारों ओर वायु की दिशा घड़ी की सुइयों से विपरीत होती है। भार का उतार-चढ़ाव अधिक तीव्रतर होने के कारण इसमें वायु की गति भी तेज रहती है।

आधुनिक ऋतु सम्बन्धी सिद्धान्त के अनुसार ये निम्नभार केन्द्र जो शीतोष्ण कटिबंध की ऋतु का प्रधान अंग हैं, वहाँ उत्पन्न होते हैं जहाँ उष्ण कटिबंध की गर्म हवा ध्रुवीय प्रदेशों की ठंढी हवा से मिलती है। गर्म हवा हल्की होने के कारण ठंडी वायु के ऊपर चढ़ जाती है और अग्रतल बन जाता है। (देखिये **Cold Front**) इस प्रकार बने निम्नभार केन्द्रों की जाड़े के मौसम में बहुतायत रहती है। इनसे सम्बन्धित मौसम बड़ा ही अनिश्चित होता है। वर्षा तो जरूर होती है परन्तु वर्षा का मुख्य कारण गर्म हवा का ठंढी हवा के ऊपर चढ़ जाना है जिसके फलस्वरूप विस्तृत बादल बन कर आकाश में छा जाते हैं। जाड़ों में कभी-कभी बर्फ भी गिरती है।

उत्तरी कनाडा व संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इस प्रकार के चक्रवात उत्तरी प्रशान्त सागर से आते हैं और उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में उत्तरी अटलान्टिक महासागर से। भूमध्य-सागर के ऊपर भी निम्नभार केन्द्र बनते हैं और पश्चिमी एशिया के देशों को पार करके भारतवर्ष तक आ जाते हैं। जाड़ों में इसी निम्नभार केन्द्र से पंजाब व उत्तर प्रदेश आदि में वर्षा होती है।

Desert (मरुस्थल) संसार की वे बन्जर भूमि जहाँ वर्षा की मात्रा इतनी कम या वितरण इतना अनिश्चित होता है कि किसी प्रकार की उपयोगी वनस्पति नहीं उग सकती मरुस्थल कहलाते हैं। जलवायु के आधार पर मरुस्थल दो प्रकार के होते हैं—गर्म व शीत। गर्म मरुस्थलों में तापक्रम बहुत अधिक रहता है और शीत मरुस्थलों में अधिक शीत के कारण सदा ही बर्फ जमी रहती है। संसार के सबसे प्रमुख व विस्तृत मरुस्थल गर्म मरुस्थल ही है। सहारा, कालाहारी, फारस, आस्ट्रेलिया का पश्चिमी भाग, अरब और दक्षिणी अमरीका का आटाकामा मरुस्थल सब गर्म मरुस्थल ही हैं। भारत से अफ्रीका तक यह कोई ४००० मील के विस्तार में फैले हुए हैं और पृथ्वी के ⅙ भाग को घेरे हुए है। शीत मरुस्थल ध्रुवीय

प्रदेशों में पाये जाते हैं और एशिया व उत्तरी अमेरिका के धुर उत्तर में एक पतली पट्टी से फैले हुये हैं। इसके अलावा महाद्वीपों के मध्य में शीतोष्ण मरुस्थल स्थित है और उनके दो उपभेद विशेष उल्लेखनीय हैं—तिब्बत और बोलीविया के पठार तथा गोबी, शामो के मरुस्थल। ये मरुस्थल पहाड़ों अथवा अत्यधिक दूरी के कारण समुद्र के प्रभाव से सर्वथा वंचित रह जाते हैं।

प्राकृतिक बनावट के आधार पर मरुस्थल चट्टानी, पथरीले या बलुहे हो सकते हैं। चट्टानी मरुस्थल वह है जहाँ बालू के तीव्र प्रहारों द्वारा इतना अधिक आवरण क्षय हुआ है कि तली की चट्टानें बाहर निकल आयी हैं। इन प्रदेशों में निक्षेप नहीं के बराबर होता है। पथरीली मरुस्थल में तापक्रम के परिवर्तन के कारण चट्टान टूट-फूट जाती है और भूमि पर कंकड़-पत्थर की एक तह या परत सी इकट्ठी हो जाती है। महीन कण तो वायु उड़ा ले जाती हैं परन्तु मोटे-मोटे कंकड़ बराबर पड़े रहते हैं। बलुहे मरुस्थल की सतह ऊँची-नीची होती है और उसमें निक्षिप्त बालू की अपार राशि कहीं तो टीले के समान दिखाई पड़ती है और कहीं निचली घाटी की तरह। बलुहे मरुस्थल में बालू के ये टीले श्रृंखला के रूप में फैले दिखाई देते हैं। प्राकृतिक बनावट के आधार पर संसार के गर्म मरुस्थल पठारी हैं और शीतोष्ण मरुस्थल पहाड़ी। सहारा, कालाहारी, अरब, दक्षिणी अमरीका, आस्ट्रेलिया और उत्तरी अमरीका के गर्म मरुस्थल पठार हैं जिन्हें कन्दराओं के रूप में कटा-फटा पाया जाता है। उच्च पठारी भाग हाम्दा कहलाते हैं, कन्दरायें अर्ग कहलाती हैं और बलुही निम्नभूमियाँ वादी कहलाती हैं। इसके विपरीत पहाड़ी मरुस्थलों में मरुस्थली भाग उच्च पहाड़ों से घिरा रहता है और इस प्रकार का घिरा क्षेत्र 'बोल्सन' कहलाता है। इन मध्यवर्त्ती क्षेत्रों या मरुस्थलों में खारी पानी की झीलें पायी जाती हैं जिन्हें प्लाया कहते हैं। फारस, तुर्कीस्तान, गोबी और शामों के मरुस्थल इसी प्रकार के हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से पठारी या हाम्दा मरुस्थलों का विशेष महत्व है। उनमें खनिज पदार्थों का भंडार निहित है—फासफेट, बोराबस शोरा, ताम्बा, लोहा व सोना पाया जाता है और जहाँ कहीं सुविधायें हैं वहाँ खानों से इन्हें निकाला भी जाता है।

मरुस्थलों की भूमि मोटी बालू की बनी होती है और जल की कमी के कारण यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति छोटी ऊँचान के काँटेदार वृक्ष होते हैं जिनकी पत्तियाँ मोटी, जिनकी छाल गहरी और जिनकी जड़ें लम्बी होती है। जहाँ कहीं भूगर्भ से जल के सोते फूट निकले हैं वहाँ मरुद्यान बन गये हैं और खजूर, ताड़ आदि के पेड़ पाये जाते हैं।

जलवायु की शुष्कता तथा पानी की कमी के कारण, यहाँ की आबादी बहुत कम होती है। प्राय: तीन प्रकार के निवासी यहाँ पाये जाते हैं—(१) **बन्जारे** जो अपने ऊँटों को लिये हुये एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते रहते हैं। इनका पेशा या तो सामान यहाँ से वहाँ पहुँचाना होता है या ये लोग डाका मारते चलते हैं। (२) **स्थायी निवासी** जो मरुस्थलों में रहते हैं और अनाज उत्पन्न करते हैं व पशुओं को चरा कर अपना पेट पालते हैं। (३) जहाँ कहीं खनिज पदार्थों को निकाला जा सकता है वहाँ बाहर से आकर खान खोदनेवाले बस गये हैं जैसे आस्ट्रेलिया में सोने के लिये और चिली में शोरे के लिये।

Desert Climate (मरुस्थलीय जलवायु) जिस जलवायु की प्रमुख विशेषता शुष्कता या नियमित जलवृष्टि का अभाव होता है उसे मरुस्थली जलवायु कहते हैं। इस प्रकार की जलवायु विभिन्न अक्षांशों में पायी जाती है और जलवायु के आधार पर इसे तीन प्रकार का कहा जा सकता है—उष्ण कटिबंध की गर्म मरुस्थलीय जलवायु, शीतोष्ण कटिबंध की शीतोष्ण मरुस्थली जलवायु और ध्रुवीय प्रदेशों की शीत मरुस्थलीय जलवायु। इन तीनों

में भेद केवल इतना है कि उष्ण कटिबंध से जैसे-जैसे हम उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, जाड़े का मौसम लम्बा व कठोर होता जाता है, यहाँ तक कि ध्रुवीय प्रदेशों में गर्मी का मौसम नहीं के बराबर होता है। वास्तव में १० इंच वर्षा की समवृष्टि रेखा को मरुस्थली जलवायु की हद समझना चाहिये, यद्यपि कनाडा और साइबेरिया के सुदूर उत्तर में १० इंच की वर्षा वनस्पति के लिये पर्याप्त है। वर्षा की मात्रा के साथ-साथ जलवृष्टि के विषय में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। वह है कि वर्षा की मात्रा व वितरण बड़ा ही अनियमित व अनिश्चित होता है। कुछ मरुस्थलों में वार्षिक वर्षा का औसत बीस से ३० इंच तक भी है परन्तु यह मात्रा इतने भीषण धारा के रूप में गिरती है जैसे कि किसी ने बादल फाड़कर बालू लुढ़का दिया हो। फलतः इस प्रकार की वर्षा के जल से, जिसे मेघविस्फोट कहते हैं, कोई विशेष लाभ नहीं हो पाता। कुछ तो बहकर निकल जाता है कुछ गर्म पृथ्वी में सोख जाता है और बहुत सा अंश फिर से भाप बनकर हवा में समा जाता है। कभी तो ऐसा होता है कि वर्षा की बूँदें पृथ्वी पर आने से पहिले ही भाप बन जाती हैं और वर्षा लटकती हुई मालूम पड़ती है।

मरुस्थली जलवायु के तापक्रम में बड़ी विषमता पाई जाती है। दिन बहुत गर्म और रातें बहुत ठंडी होती हैं। इसके अलावा तापक्रम का मौसमी व वार्षिक अन्तर भी बहुत अधिक होता है। आसमान प्रायः हमेशा ही साफ रहता है और मेघ कम दिखलाई पड़ते हैं परन्तु शीतोष्ण व शीत मरुस्थलों में ये बात नहीं होती। वहाँ अपेक्षाकृत मेघ अधिक होते हैं। वायु में आर्द्रता भी बहुत कम रहती है। मरुस्थली जलवायु में वाष्पीकरण ५५ इंच तक होती है और आर्द्रता का अंश २ प्रतिशत तक होता है।

इस प्रकार मरुस्थली जलवायु में जलवृष्टि, तापक्रम, धूप तथा प्राकृतिक बनावट सम्बन्धी विशेषताएँ इसे अन्य जलवायु से भिन्न कर देती है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रकार की जलवायु में उत्पादन असंभव होता है और इसलिये वहाँ पर आबादी का घनत्व भी बहुत कम होता है। वास्तव में मरुस्थली जलवायु की शुष्कता के कई कारण हैं। प्रथम तो यह कि इस प्रकार की जलवायु के प्रदेशों में समुद्र का प्रभाव नहीं पहुँच पाता। वे समुद्र से बहुत दूर महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में स्थित हैं। दूसरा यह कि उष्णकटिबंधीय मरुस्थल अधिकतर व्यापारिक हवाओं के प्रदेश में स्थित है और वहाँ से हवायें भूमध्य रेखा की ओर चलती रहती है। इसलिये वर्षा होती ही नहीं। तीसरी बात यह है कि अधिकतर मरुस्थल भाग उच्चभार प्रदेश है जहाँ मौसम साफ रहता है और जलवृष्टि नहीं होती, उच्च भार में जलवृष्टि नहीं हो सकती। इसके अलावा पास से गुजरती हुई ठंडी जलधाराओं के कारण भी इन प्रदेशों की ओर आती हुई हवायें शुष्क हो जाती हैं और उनमें वर्षा करने की शक्ति नहीं रह जाती। बहुत से मरुस्थली भाग पहाड़ी श्रेणियों से घिरे हुए हैं। इसलिये वे वृष्टि छाया में पड़ जाते हैं और वर्षा से वंचित रह जाते हैं।

मरुस्थलीय जलवायु की इन विशेषताओं के कारण ही यहाँ की प्राकृतिक बनावट, भूमि व वनस्पति भी भिन्न होती हैं। यहाँ पर वायु का विशेष जोर रहता है और यहाँ के लोग बालू मिली वायु से ही अपनी बचत करने का प्रयत्न करते हैं।

Desert Pavement (मरुस्थलीय चबूतरा) मरुस्थलीय प्रदेशों में चटानों के टूटने-फूटने पर कंकड़-पत्थरों की एक विशाल राशि इकट्ठी हो जाती है। वायु के चलने पर टूटे-फूटे छोटे-छोटे कण उड़ा ले जाते हैं और फलतः मोटे-मोटे टुकड़े आपस में सट कर इस प्रकार इकट्ठा हो जाते हैं कि एक चबूतरा-सा बन जाता है। यह चबूतरा काफी चिकना होता है और दूर से मुजैक का समतल मैदान-सा मालूम पड़ता है।

Desert Lake (मरुस्थलीय झील) मरुस्थलीय प्रदेशों में वर्षा का जल एकत्रित हो जाने से या कहीं पर भूगर्भ की जल के सोते के फूट निकलने से झीलें वन जाती हैं। ये झीलें तीन प्रकार की होती हैं—(१) प्लाया झील, (२) नमकीन झीलें और (३) मृत्तिकामय बाँध से बनी झीलें। पहाड़ी मरुस्थल में चारों ओर के पहाड़ों पर गिरा वर्षा का पानी बह कर आन्तरिक क्षेत्र में इकट्ठा हो जाता है और पहाड़ों से घिरे इस प्रदेश में तवे की तरह छिछले गड्ढों में पानी भर जाता है। इन्हें प्लाया झील कहते हैं। परन्तु यह थोड़े समय तक ही रहती है और शीघ्र ही सूख जाती है। नमकीन झीलें अधिक स्थायी होती हैं और उनमें जल का स्रोत भी अधिक स्थिर होता है। परन्तु जल के निकास का कोई रास्ता न होने से वराबर भाप बनते रहने के कारण उनका जल नमकीन या खारा हो जाता है और बहुधा उनके जल से नमक निकालने का धंधा भी शुरू कर लिया जाता है। मरुस्थलों के किनारों या सीमाओं पर स्थित पहाड़ों की घाटियों के मुँह पर मृत्तिकामय निक्षेप बन जाते हैं और इस प्रकार अवरुद्ध घाटियों में मेघ विस्फोट के जल के एकत्रित हो जाने से लम्बी व सँकरी झीलें वन जाती हैं।

Desert Shrub (मरुस्थलीय वनस्पति) वर्षा की कमी के कारण मरुस्थलों में बड़े-बड़े पेड़ तो उग नहीं सकते पर छोटी-छोटी घास व झाड़ी पायी जाती है। वनस्पति के दृष्टिकोण से मरुस्थली प्रदेशों को दो प्रकारों में बाँटा जाता है—गर्म मरुस्थल और ठण्ढे मरुस्थल। गर्म मरुस्थल प्रदेशों में छोटे-छोटे गुच्छेदार घास मिलती है जो दूर-दूर उगी रहती है और इनके बीच-बीच कहीं-कहीं मोटे पत्तों वाली और मोटी छालवाली झाड़ियाँ भी मिलती हैं। इनकी जड़ें बहुत लम्बी होती हैं। जहाँ-जहाँ जलाशयों के सहारे मरुस्थल मिलते हैं वहाँ खजूर के कुंज उग आते हैं और हरी-भरी घास भी दिखाई देती है। कभी-कभी संयोग से कुछ वर्षा हो जाने पर कुछ पौधे उग आते हैं जो बहुत अल्प आयु के होते हैं और नमी के खतम होते ही मर जाते हैं। ठण्ढे मरुस्थलों में बर्फ जमे रहने के कारण पौधों की जड़ें प्रवेश करके नमी नहीं प्राप्त कर पाती। यहाँ लिचिन, मौस, सैज आदि वनस्पतियाँ मिलती हैं। समुद्री किनारों पर कुछ छोटी-छोटी घास भी उग आती है।

Detrilus (विखण्ड राशि) चट्टानों की सतह पर से रासायनिक व विखण्डन क्रियाओं के फलस्वरूप कंकड़ के बहुत से टुकड़े टूट-फूट कर अलग हो जाते हैं। उनके समूह को विखण्ड राशि कहते हैं।

Dew (ओस) जब किसी ठण्ढी वस्तु को खुली हवा में रख देते हैं तो उसके सम्पर्क से संतृप्त वायु में द्रवीभवन होने लगता है और जल के कण उसके ऊपर इकट्ठा हो जाते हैं। इसे ओस कहते हैं। रात के समय पृथ्वी तथा उस पर स्थित वस्तु ठंढी होने लगती है और अपने ऊपर की वायु की अपेक्षा अधिक ठण्ढी हो जाती है। इस कारण वायु में व्याप्त वाष्प ठण्ढे धरातल पर द्रवीभूत होकर एकत्रित हो जाता है और सुबह के समय भूमि, घास आदि भीगी नजर आती है। वास्तव में ओस गिरने व बनने के लिए साफ आसमान तथा शांत मौसम आदर्श है। इसके अलावा वायु में जितनी अधिक भाप होगी तथा भूमि जितनी अधिक ठण्ढी होगी, ओस उतनी ही अधिक गिरेगी। ओस बनने के लिये जरूरी है कि वायु शान्त रहे ताकि उसका भूमि के साथ सम्पर्क अधिक समय तक हो सके। यदि दिन गर्म रहे तो भाप अधिक बनती है और वायु में वाष्प की मात्रा भी बढ़ जाती है तथा साफ आसमान होने से रात में ठण्ढा होने में आसानी होती है। इसलिये विरुद्ध चक्रवात की दशाओं में ओस खूब पड़ती है। जब भूमि की सतह तो ठण्ढी हो परन्तु उसके नीचे की भूमि अपेक्षाकृत गर्म रहे तो ओस अधिक बनती है। इसीलिए पतझड़ के मौसम के शुरू में वसन्त ऋतु की अपेक्षा अधिक ओस पड़ती

है। शीतल देशों में रात्रि में धरातल ३२° से भी अधिक ठण्डा हो जाता है और वह एकत्रित जल जम जाता है। तब उसे ओस न कह कर पाला कहते हैं। (देखिये Hoar Prost)

Dew Point (**ओस बिन्दु**) ओस बिन्दु तापक्रम की वह दशा है जब वायु ठंडी होकर जलवाष्प से संतृप्त हो उठती है और द्रवीभवन द्वारा भाप जल के कणों के रूप में ओस बनकर गिरती है।

Dew Pond (**ओस जलाशय**) दक्षिणी इंगलैंड में खड़िया मिट्टी से बनी ऊँची-नीची भूमि पर कुछ ऊँचाई पर बताये गये कृत्रिम जलाशय को ओस जलाशय कहते हैं। इन जलाशयों की विशेषता यह है कि इनमें काफी समय तक पानी ठहर सकता है और वर्षा के अभाव में भी पानी बना रहता है। इसलिए पशुओं को पानी देने के लिए ये विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। वैसे नाम से तो यह प्रतीत होता है कि इनमें जलराशि ओस से प्राप्त होती है परन्तु उपस्थित प्रमाण इस मत के खिलाफ है।

Diagonal Scale (**अर्धव्यास मानदण्ड**) साधारण मानदण्ड के गौण भागों को ठीक-ठीक दशमलव अंशों में बाँटने की विधि को अर्धव्यास मानदण्ड कहते हैं। अर्द्धव्यास मानदण्ड बनाने के लिए साधारण मानदण्ड रेखा से ऊपर बराबर दूरी पर दस समानान्तर रेखायें खीची जाती हैं। सबसे ऊपर और सबसे नीचे की रेखाओं के गौण भाग को दस बराबर अंशों में बाँट दिया जाता है। दाएँ से बाएँ को इन अंशों पर ० से ९ तक संख्यायें डाल देते हैं। फिर ऊपर के जीरो बिन्दु को नीचे के जीरो बिन्दु से मिला देते हैं और ऊपर के दशम बिन्दु को नीचे के दशम बिन्दु से मिला देने से गौण विभाग पर एक चतुर्भुज सा बन जाता है। इसके बाद ऊपर के प्रथम अंश बिन्दु को नीचे के जीरो बिन्दु से मिला देते हैं, ऊपर के दो को नीचे के एक से मिलाते हैं, ऊपर के तीन को नीचे के दो से मिलाते हैं और इस प्रकार रेखायें खींचते जाते हैं, जब तक कि सब अंश मिल न जायें। यही अर्द्धव्यास मानदण्ड होता है। इस मानदण्ड पर मूल मानदण्ड रेखा के अंश तो एक दशमलव अंश तक दूरी दिखाते हैं परन्तु अन्य रेखाओं पर दो दशमलव भिन्न तक दूरी का पता लगाया जा सकता है।

Diastrophism (**भौगर्भिक गतियाँ**) जैसा नाम से ही विदित है, भूपटल के अन्दर जन्म लेनेवाली गतियों को भौगर्भिक गतियाँ कहते हैं। पृथ्वी का मध्य भाग सम्भवतः लोहे की एक ठोस राशि है और काफी गर्म है। पृथ्वी की दैनिक गति में कुछ कमी या धीमापन आने से अथवा भूपटल के आन्तरिक भाग के सिकुड़ने से या पृथ्वी के संतुलन में कमी-ज्यादती होने से कुछ गतियाँ होने लगती हैं। भूपटल की ये आन्तरिक गतियाँ दो प्रकार की होती हैं——(१) **मन्द गतियाँ**——उत्क्षेप और निमज्जन तथा घरेरे पृथ्वी के कुछ भाग समुद्र के भीतर से धीरे-धीरे उठने के कारण शुष्क प्रदेश बन जाते हैं और कुछ भाग धीरे-धीरे बैठने के कारण समुद्र के पानी से ढक जाते हैं। उठे हुए समुद्रतट तथा समुद्री जीव-जन्तु के अवशेष से उत्क्षेप का ज्ञान होता है। इसी प्रकार पेड़ों के तले और दलदली भूमि तथा अव्यवस्थित तटरेखा से निमज्जन का पता चलता है। कुछ प्रदेश मुड़कर ऊँचे-नीचे बन जाते हैं। कहीं ऊँचे पहाड़ बन जाते हैं तो कहीं निचली घाटियाँ। मन्दगतियों के दो रूप हैं——लम्ब गति और दूसरी समानान्तर गति। लम्बगति से कुछ भाग ऊपर उठ जाते हैं और कुछ भाग नीचे धँस जाते हैं। फलतः नये महाद्वीप व पठार बन जाते हैं। दरारों के बीच का भाग उठ जाने से गुम्बजाकार पर्वत बन जाते हैं और धँस जाने से रिफ्ट घाटी उत्पन्न हो जाती है। समानान्तर गति भूपटल की परतों को जोड़कर घरेरे डाल देती है और पहाड़ों का निर्माण हो जाता है। समानान्तर गति के दो प्रकार होते हैं। एक तो वह जो भूपटल की परतों को दोनों पार्श्वों से दबाकर मोड़ देता है और दूसरा वह जो भूपटल की परतों को फैलाकर तड़का देता है।

इनसे पहाड़, घाटी व दरार बन जाती हैं। (२) **आकस्मिक गतियाँ**—भूकम्प व ज्वालामुखी उद्गार हैं जो भूपटल पर बड़े-बड़े परिवर्त्तन कर देती है।

Diathermancy (ताप संवहन) वायुमण्डल या जलमण्डल में, परन्तु विशेषकर वायुमण्डल में ताप को एक परत से दूसरी परत तक फैलने की क्रिया को ताप संवहन कहते हैं। गर्म वायु धारायें ठण्ढी वायुधाराओं से घिरे क्षेत्र में अपनी कुछ गर्मी त्याग कर उन्हें भी गर्म कर देती हैं। वास्तव में तापसंवहन निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहता है—(१) सूर्य की ऊँचाई और दिन की रोशनी का समय, (२) भूप्रकृति और समुद्रतल से ऊँचाई और (३) वायु की पारदर्शिता या घनत्व। वायु में जलवाष्प और धूल के कणों की उपस्थिति से भी ताप संवहन पर बड़ा असर पड़ता है।

Diatom Ooze (डायटम ऊज़) समुद्र जल के नीचे समुद्र की तली में ज्वालामुखी उद्गार और प्राणिज अथवा वनस्पति अवशेष से मिश्रित अर्द्धठोस राशि को ऊज कहते हैं। यह कई प्रकार का होता है। डायटम ऊज़ वनस्पति अवशेष से मिलकर बनता है और पृथ्वी के ठण्ढे सागरों में उगने वाले डायटम पौधे के अवशेष से बनता है। यह पौधे बहुत छोटे होते हैं और इनमें साइलीसिया की प्रधानता रहती है। इन पौधों में सिलिका (Silica) के छोटे-छोटे बिन्दु रहते हैं और उसी से ऊज बनता है। दक्षिणी महासागर में पृथ्वी के चारों ओर डायटम ऊज का निक्षेप एक चौड़ी पट्टी के रूप में फैला हुआ है।

Differential Weathering (विभिन्न मौसमी क्षति) सूर्य का ताप, मेघ और पाला चट्टानों को फोड़कर या रासायनिक परिवर्त्तन करके काट-छाँट के लिये तैयार करते हैं। ऋतुप्रहार द्वारा अनावृत्तीकरण की शक्तियों को कंकड़, पत्थर आदि यन्त्र मिल जाते हैं और काट-छाँट के काम में सुविधा मिलती है। परन्तु भिन्न प्रकार की चट्टानों पर ऋतुप्रहार का प्रभाव भी विभिन्न होता है। कठोर चट्टानों की अपेक्षा मुलायम चट्टानें जल्दी टूट-फूट जाती हैं। फलतः कुछ चट्टानें तो टूट-फूट कर नष्ट हो जाती है और उनका स्थान रिक्त हो जाता है परन्तु कठोर चट्टानों के भाग खड़े रह जाते हैं। इसका कारण विभिन्न ऋतुप्रहार हैं जो कि निम्नलिखित ५ बातों पर निर्भर रहता है—(१) चट्टानों का स्वभाव जिसके अन्दर उनकी प्रवेश्यता व अप्रवेश्यता, खनिज पदार्थों का घुलनशील अथवा स्थायी होना, सभी कुछ देखा जाता है। (२) जलवायु की विशेषता कि वह शुष्क है, अथवा तर है या ठण्ढी है। (३) प्राकृतिक बनावट—इसके अन्दर दरारों की स्थिति संख्या, पानी प्रवेश करने की फटन का समानान्तर या लम्बरूप होना तथा चट्टान का नग्न या धूल आदि से ढका रहना देखा जाता है। (४) ढाल की तीव्रता—यदि ढाल तीव्र है तो ऋतुप्रहार अधिक प्रखर होगा और यदि ढाल क्रमशः है तो ऋतुप्रहार भी साधारण होगा। (५) वनस्पति का आवरण जिसके द्वारा चट्टानों व मिट्टी की सुरक्षा होती रहती है।

Dike (बाँध) बाँध शब्द को दो अर्थों में प्रयोग करते हैं—(१) खाई और (२) समुद्र या नदी की बाढ़ से निचली भूमि को बचाने के लिये बनाये गये चूना व पत्थर के बाँध।
इसके अलावा जमी हुई आग्नेय चट्टानों के पुल को भी बाँध कहते हैं। (देखिये Dyke)

Dingle (डिन्गल) छोटी व सँकरी घाटी जो वृक्षों से खूब घिरी हो, डिन्गल कहलाती है।

Dip (झुकाव) (१) किसी चट्टान के झुके हुये परत का अधिकाधिक ढाल उसका झुकाव कहलाता है। इस झुकाव को समतल पर से नापा जाता है और इसे कोणिक अंशों में व्यक्त करते हैं तथा दिशा का ज्ञान ध्रुवघड़ी से प्राप्त करते हैं। अतएव किसी चट्टान का

झुकाव व्यक्त करने के लिये लिखते हैं—५° उत्तर पश्चिम। इसके अर्थ यह हुए कि वह चट्टान समतल से उत्तर पश्चिम की ओर ५° के कोण पर झुकी हुई है।

(२) पृथ्वी के किसी विन्दु या स्थान पर समतल और चुम्बकीय ध्रुव की दिशा के बीच की कोणिक दूरी को उसका झुकाव कहते हैं। यह भी अंशों में नापी जाती है।

Displacement Theory (बहाव सिद्धान्त) वर्त्तमान महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति व निर्माण के विषय में इस बहाव सिद्धान्त का मत है कि पहिले सभी महाद्वीप एक विशाल भूखण्ड के अंग थे परन्तु उस भूखण्ड में दरारें पड़ गई हैं और दरार के इधर-उधर स्थित भूभाग सरक कर या बह कर अलग हो गये। इस प्रकार विभिन्न महाद्वीपों का निर्माण हो गया है और उनके बीच के रिक्त स्थान में जल भर जाने से महासागर बन गये। (देखिये Continental Drift Theory)

Dissected Plateau (कटाफटा पठार) वह पठार जिसमें आवरण क्षय के कारण घाटियाँ व श्रेणियाँ बन जाती हैं उसे कटा-फटा पठार कहते हैं। वास्तव में पृथ्वी के भूभाग से निर्मित पठार अधिक वर्षावाले प्रदेशों में अधिक समय तक अपना सपाट रूप स्थिर नहीं रख पाता। यदि पठार की चट्टानें अति कठोर हुई तो उसका रूप सपाट रह जाता है परन्तु यदि पठार में कठोर व मुलायम चट्टानी परतों की क्रमिक व्यवस्था रही तो फल यह होता है कि वर्षा के जल से बनी धारायें मुलायम परतों को काट कर गहरा कर लेती हैं और कठोर चट्टानी भाग पहाड़ी श्रेणी की तरह खड़े रह जाते हैं। इस प्रकार पूरा पठार घाटियों व श्रेणियों में कट-फट जाता है। घाटियाँ बहुत गहरी व ढालू होती हैं। उन्हें आसानी से पार नहीं किया जा सकता। और इतनी काफी चौड़ी होती हैं कि उन पर पुल बनाना आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद नहीं होता। वास्तव में आवरण क्षय से पठारों की घाटी व श्रेणी में कटना-फटना निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है—(१) वर्षा की मात्रा व प्रकार, (२) ढाल, (३) पठार की समुद्रतल से ऊँचाई और (४) चट्टानों का स्वभाव। कटे-फटे पठार में घाटियों व पहाड़ियों की ऊँचाई बराबर होती है। या यूँ कह सकते हैं कि पहाड़ियों व घाटियों के शिखर एक समतल पर होते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि एक समय वह सम्पूर्ण राशि एक ही थी। घाटियों के बीच के शिखर चौड़े, गोलाकार और अव्यवस्थित होते हैं।

Distribution (वितरण) उपज का उपभोगियों के बीच फैलाना वितरण कहलाता है। अर्थशास्त्र में मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों में वितरण का प्रमुख स्थान है। उत्पादन और उपभोग के बीच की दशा वितरण कहलाती है। इसके द्वारा उत्पादन से प्राप्त सामग्री को उपभोगियों तक पहुँचाया जाता है।

आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उपज का किसी क्षेत्र में फैलाव व स्थिति को उसका वितरण कहते हैं। चाय का वितरण' का अर्थ है कि चाय का उत्पादन कहाँ-कहाँ होता है और उसके प्रमुख उत्पादक क्षेत्र कौन-कौन हैं।

Distribution Maps (वितरण मानचित्र) जिन मानचित्रों में किसी प्रदेश विशेष की प्रमुख वस्तु का वितरण दिखाया जाता है, उन्हें वितरण मानचित्र कहते हैं। इसमें किसी प्रदेश की कोई एक विशेष वस्तु का वितरण दिखलाया जाता है। वास्तविक स्थिति की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। इसका उद्देश्य तो केवल वस्तु विशेष का प्रसार चित्रित करना होता है। वितरण मानचित्र में दिखलाई गई वस्तु प्राकृतिक हो सकती है, जैसे तापक्रम, वायुभार, जलवृष्टि, वनस्पति व जीवजन्तु, या मानवी व औद्योगिक हो सकती है। इसी प्रकार कृषि व खनिज उपज के वितरण को भी वितरण मानचित्रों पर दिखाया जाता है। इन मानचित्रों से न तो वस्तु विशेष के उत्पादन की मात्रा का ही ज्ञान हो सकता है और न

उनके उत्पादन की वास्तविक स्थिति का ही पता चल सकता है। वितरण मानचित्रों में तथ्यों को दिखलाने की कई विधियाँ होती हैं। उनमें रंग, लाक्षणिक संकेत, समदर्शक रेखाओं, रंगीन तहों, विन्दुओं और रेखाचित्रों द्वारा तथ्य या वस्तु का वितरण दिखलाया जाता है। इसी प्रकार तथ्य विशेष के निरूपण के अनुसार वितरण मानचित्र निम्नलिखित ६ प्रकार के होते हैं—(१) जनसंख्या मानचित्र, (२) पशुचारण मानचित्र, (३) कृषि मानचित्र, (४) जलवायु मानचित्र, (५) औद्योगिक मानचित्र और (६) खनिज मानचित्र।

जनसंख्या के घनत्व, जंगलों के प्रकार, वृष्टि की मात्रा आदि को रंग द्वारा दिखाया जाता है। कृषि व खनिज उपजों के चित्रण के लिए लाक्षणिक संकेतों का प्रयोग किया जा सकता है। वर्षा, तापक्रम और वायुभार आदि को दिखाने के लिए समदर्शक रेखाओं का प्रयोग किया जा सकता है। भेड़, गाय बैल आदि का वितरण दिखलाने के लिये निर्धारित मूल्य की विन्दुओं का प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की रेखाओं व रेखाचित्रों द्वारा भी वितरण दिखलाया जा सकता है। ये रेखाएँ समानान्तर, लम्बरूप, टेढ़ी या चार-खाने के रूप में बनाई जा सकती हैं।

Distributory (**वितरक नदी**) नदी जल की वह शाखा या धारा जो मुख्य नदी को छोड़ कर अलग हो जाती है और मुख्य नदी से फिर जाकर नहीं मिलती बल्कि सीधे समुद्र या झील में जा गिरती है, उसे वितरक नदी कहते हैं। वितरक नदी डेल्टा प्रदेश में जहाँ नदी समुद्र से मिलती है या जहाँ नदी पहाड़ी प्रदेश को छोड़कर मैदान में प्रवेश करती है, विशेष रूप से मिलती है। डेल्टा प्रदेश में नदी के किनारों पर होने वाले मृत्तिकामय निक्षेप से मुख्य नदी की धारा कई नालियों में बँट जाती है और ये विभिन्न धारायें स्वतंत्र रूप से बहती हुई समुद्र में जा गिरती हैं। इसी प्रकार नदी तलैटी के उस ऊपरी भाग में जहाँ नदी पहाड़ी प्रदेश को छोडकर मैदान में प्रवेश करती है, वहाँ प्रवाह की गति के एक एक मन्द हो जाने से साथ में बहाकर लाये हुए कंकड़-पत्थर इकट्ठा हो जाते हैं और इस एकत्रित राशि के अवरोध के कारण नदी की मुख्य धारा कई छोटी-छोटी नालियों में बँट जाती है जिन्हें वितरक नदियाँ कहते हैं।

Distributory Hinterland (**वितरक पृष्ठ प्रदेश**) किसी बन्दरगाह से होने वाले व्यापार से ही उसके पृष्ठ प्रदेश की विशेषता का पता चलता है। जब बन्दरगाह से निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होता है तो इसके अर्थ हैं कि उसका पृष्ठप्रदेश आयात से प्राप्त सामग्री का उपयोग करने वाला है। आयात की हुई वस्तुयें पृष्ठप्रदेश के विविध कोनों में पहुँचा दी जाती हैं। यहाँ वहाँ की व्यापार की विशेषता होती है। इस प्रकार के पृष्ठप्रदेश को जिसके पास निर्यात करने के लिये सामान तो होता नहीं परन्तु आयात की जरूरत रहती है, उसे वितरक पृष्ठप्रदेश कहते हैं। साधारणतया पहाडी व अनपजाऊ प्रदेश या वे भाग जहाँ आवादी बहुत घनी तथा प्राकृतिक सम्पत्ति बहुत कम है, आदर्श वितरक पृष्ठप्रदेश बनाते हैं।

Diurnal Range (**दैनिक ताप विस्तार**) प्रत्येक दिन या २४ घंटों के अधिक से अधिक और न्यून से न्यून तापांश होते हैं। अधिक से अधिक और न्यून से न्यून तापांश का अन्तर तापांश का विस्तार—घटना-बढ़ना कहलाता है। एक दिन में तापांश के घटने-बढ़ने को दैनिक ताप विस्तार कहते हैं। कुछ स्थानों पर रात्रि अधिक ठण्ढी और दिन अधिक गर्म होते हैं। ऐसे स्थानों पर दैनिक तापांश का विस्तार बहुत अधिक होता है। दिन में अधिक से अधिक तापांश तीसरे पहर करीब-करीब २ बजे और ४ बजे के बीज में होता है।

न्यून से न्यून तापांश सूर्य निकलने से जरा पहिले रहता है। दैनिक ताप विस्तार के कई कारण हैं—(१) दिन की गर्मी और रात की ठंडक, (२) सूर्य की किरणों का दोपहर में तो सीधे पड़ना परन्तु शाम और सुबह को तिरछे पड़ना (३) मेघ तथा वायु का प्रवाह।

दैनिक तापविस्तार भूमध्यरेखा पर स्थित स्थानों पर अधिक होता है। जैसे-जैसे भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं, दैनिक तापविस्तार घटता जाता है और ध्रुव प्रदेशों में बहुत कम हो जाता है। महाद्वीपों के आन्तरिक भागों के समुद्रतटीय प्रदेशों की अपेक्षा दैनिक तापविस्तार अधिक रहता है। वास्तव में स्थान-विशेष की खुली स्थिति, भूमि के स्वभाव तथा समुद्रतल से ऊँचाई के कारण दैनिक तापविस्तार पर बड़ा असर पड़ता है। मेघ भी बड़ा असर डालते हैं। मेघाच्छादित दिनों में तापविस्तार अधिक नहीं होता। समुद्रतल से ऊँचे गति पर दैनिक तापक्रम विस्तार कम हो जाता है और खुले वायुमण्डल में ४००० फीट से अधिक ऊँचाई पर तापविस्तार बिलकुल नगण्य हो जाता है। जब भूमि पर बर्फ पड़ी हो तो दनिक तापविस्तार बढ़ जाता है।

Divide (**जल विभाजक**) (देखिये Watershed)

Dock (**डॉक**) बन्दरगाह में समुद्र के किनारे ऐसा क्षेत्र जिसमें पानी अन्दर भरने और पानी निकालने के लिए फाटक लगे रहते हैं और जहाँ जहाज ठहर कर माल लाद या उतार सकते हैं या जहाँ उनकी मरम्मत की जा सकती है, उन्हें डॉक कहते हैं। डॉक कई प्रकार के होते हैं। शुष्क डॉक जिनमें से पम्प द्वारा पानी निकाल देते हैं और वहाँ जहाजों को बनाते या मरम्मत करते हैं। पानी से भरे डॉक वे होते हैं जिन में कृत्रिम तरीकों से पानी को हमेशा ऊँचे ज्वार की स्थिति में रखते हैं ताकि जहाज अन्दर तक आ सके। तैरते हुये डॉक वे होते हैं जो पानी में तैरते रहते हैं और जिनमें बड़े-बडे जहाजों को लेकर बाद में पानी निकाल दिया जाता है ताकि उनकी मरम्मत हो सके। बन्दरगाहों में इस प्रकार के क्षेत्रों की पंक्ति बनी रहती है और प्रत्येक डॉक के समीप दफ्तर व भंडार होते हैं ताकि जहाज पर माल चढ़ाने-उतारने में आसानी हो।

Doctor (**डाक्टर**) संसार के विभिन्न भागों में कुछ स्वास्थ्यकारी वायु को डाक्टर कहकर पुकारते हैं। कुछ प्रदेशों में जलवायु व ऋतु सम्बन्धी दशाएँ इतनी अरुचिकर व अस्वास्थ्यकर रहती हैं कि मनुष्य के लिये उनका सहन करना कठिन होता है। परन्तु इन हवाओं के कारण वहाँ की दशाएँ सम व रुचिकर हो जाती हैं। पश्चिमी अफ्रीका की हारमाटन और पश्चिमी आस्ट्रेलिया के तट प्रदेश पर गर्मियों में बहने वाली समुद्री पवन को विशेष रूप से डाक्टर कहकर पुकारते हैं।

Doldrums (**शान्त मण्डल**) भूमध्य रेखा के चारों ओर निम्नभार कटिबंध शान्त प्रदेश है। वह निर्वात है और इसीलिये शान्त मण्डल कहलाता है। इस प्रदेश में वायुभार सदैव एक-सा रहता है और वायुभार का उतार-चढ़ाव नगण्य होता है। इसी कारण वायु क्षीण व परिवर्त्तनशील होती है तथा दिन के एक-तिहाई समय में बिल्कुल शांत व निर्वात वातावरण पाया जाता है। इस कटिबंध की ओर उत्तर-पूर्वी दक्षिणी व्यापारिक हवाएँ आकर मिलती हैं। इसीलिये वायुमण्डल शान्त रहता है और उच्च तापमान के कारण हवा की धारायें सदैव ऊपर को उठती रहती हैं। गर्म व हल्की वायु की इन संवाहनिक धाराओं के कारण यहाँ का मौसम तूफानी व भयानक रहता है। प्रति दिन तीसरे पहर बिजली की चमक और बादलों की कड़क के साथ घोर वर्षा होती है। मौसम बड़ा ही मिचलौना होता है और गर्म-तर तथा वायुरहित होने के कारण बड़ा ही अस्वास्थ्यप्रद होता है। इसी परेशानी के कारण माल के जहाज इस कटिबंध में प्रवेश नहीं करते थे क्योंकि एक बार इस प्रदेश

में आ जाने के बाद कई दिनों तक वे चल नहीं सकते थे। इस प्रदेश के तटीय भागों में समुद्री व स्थलीय पवन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

शान्त मण्डल की स्थिति व विस्तार दोनों ही अस्थायी व परिवर्त्तनशील होते हैं। भू-मध्यरेखा के उत्तर व दक्षिण में ५° अंश अक्षांश तक यह मण्डल फैला हुआ है परन्तु मौसम के परिवर्त्तन के साथ-साथ इनका विस्तार भी घटता-बढ़ता रहता है। फरवरी और मार्च के महीने में जब सूर्य मकर रेखा पर चमकता रहता है यह शान्त मण्डल बिल्कुल भूमध्य रेखा पर आ जाता है और इसके विपरीत जुलाई और अगस्त के महीने में जब सूर्य कर्क रेखा पर चमकता है तो इसका विस्तार इतना बढ़ जाता है कि यह उत्तर में ८° अक्षांश तक आ जाता है। शान्त मण्डल का अंश अटलान्टिक व प्रशान्त महासागर में विशेष रूप से तीव्र रहता है और इन क्षेत्रों के पश्चिमी किनारों पर शान्त मण्डल व्यापारिक हवाओं के कटिबंध में समा जाता है।

शान्त मण्डल में तापक्रम और वर्षा दोनों ही बहुत अधिक और साल भर बराबर होती रहती है। सालभर बराबर ही तापक्रम ७७° से ८०° तक रहता है और वार्षिक ताप विस्तार ५° से अधिक नहीं होता। दैनिक ताप विस्तार १०° से २५° तक रहता है। वर्षा अधिकतर वाहनिक होती है और सालभर बराबर होती रहती है। औसत वार्षिक वर्षा १०० इंच तक होती है। शान्त मण्डल में मेघों का आधिक्य रहता है और मेघाच्छन्नता ५८ प्रतिशत तक रहती है। जहाँ के बादल अधिकतर घने व काले कूमुलस मेघ होते हैं। साल का कोई भाग भी शुष्क नहीं होता। परन्तु जलवायु की इन दशाओं से मनुष्य के जीवन को कोई सुविधा नहीं मिलती। इसीलिये ये प्रदेश काफी पिछड़े हुये हैं।

Doline (डोलाइन) खड़िया मिट्टी या चूने की चट्टानों से बने प्रदेशों में जब जल की धारायें बहती हैं या जब वर्षा का पानी गिरता है तो सतह पर चूना पानी में घुल कर गायब होता है और इस प्रकार से नष्ट भाग बाद में नीचे को धँस जाता है। फलतः एक गड्ढा सा बन जाता है जो सब तरफ से बन्द रहता है और केवल सतह पर एक जलछिद्र सा बना रहता है। जिसके अन्दर होकर सतह का जल भूगर्भ में प्रवेश कर जाता है। यह गड्ढा गोलाकार अथवा अंडाकार होता है और इसे डोलाइन कहते हैं।

एड्रियाटिक सागर के पूर्व के प्रदेश में डोलाइन की बहुतायत है। ये कटोरे की तरह के खड्ड का ऊपरी छेद कुप्पी की तरह होता है और इनकी तली सपाट होती है। ये डोलाइन ३० से ३००० फीट तक चौड़ी होती हैं और ६ से ३०० फीट तक गहरी। वास्तव में बड़ी-बड़ी कन्दराओं की छत के टूट जाने से डोलाइन का निर्माण हो जाता है। इनकी तली पर लाल रंग की मिट्टी फैली पाई जाती है जो वास्तव में चूने के घुलने पर अवशेष रह जाती है। दो डोलाइन के बीच का भाग प्रायः बन्जर व कटा-फटा रहता है। इसमें चूने के कोण-से उठे रहते हैं और वनस्पति का तो नाम-निशान नहीं रहता।

Dolmen (डॉलमेन) डालमेन अतिपुरातन पत्थर के शिखर होते हैं। इसमें एक बहुत बड़े साबूत पत्थर को कई एक के ऊपर एक करके रक्खे हुए पत्थरों की लम्बरूप राशि पर रखते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में डालमेन को उसी अर्थ में प्रयोग करते हैं जिस अर्थ में क्रम्-लेच को।

Dolomite (डालमाइट) यह एक रवेदार कुछ-कुछ पारदर्शक खनिज पदार्थ होता है जिसके अन्दर कैलशियम और मैगनीशियम के कारबोनेट का मिश्रण रहता है।

Dome (गुम्बज) जब चट्टान की परत इस प्रकार मुड़ी हुई हो कि उसका

आकार अर्द्धवृत्त के समान हो और उसका ढाल मध्यवर्त्ती शिरोबिन्दु से बाहर की ओर सभी दिशाओं में फैला हो, तो इस प्रकार की चट्टान को गुम्बज कहते हैं। वास्तविक पर्वत शिखर से यह इस बात में भिन्न होता है कि मुडे हुये पर्वत के ऊर्ध्व शिखर का ढाल केन्द्रबिन्दु से बाहर की ओर नहीं होता बल्कि उसका ढाल धूरी या अक्ष रेखा के अनुसार होता है।

Dominion (राज्यतंत्र) ब्रिटिश साम्राज्य या कामनवेल्थ के अन्तर्गत अपना शासन प्रबन्ध आप करने वाले राज्य राज्यतंत्र कहलाते हैं। कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैंड, पाकिस्तान और लंका इसी प्रकार के राज्य तंत्र हैं।

Donga (डोंगा) दक्षिणी अफ्रीका में तीव्र ढाल वाले दीवार की घाटी या शुष्क नदी घाटी को डोंगा कहते हैं ; ये डोंगा वादी और नाला के ही समान होते हैं जो वर्षा के समय जलपूर्ण हो जाते है तथा अन्य समय सूखी पड़ी रहती है। वर्षाकाल को छोड़कर अन्य समय इनकी कंकड़-पत्थर रेत मिट्टी बिखरी पड़ी रहती है और लोग इनमें से होकर इधर-उधर आते जाते हैं।

Dorment Volcano (निद्रित ज्वालामुखी) जो ज्वालामुखी पर्वत बहुत समय से शान्त हैं किन्तु जिनमें फिर उद्गार होने की सम्भावना रहती है वे निद्रित ज्वालामुखी कहलाते है।

Dot method (बिन्दु प्रणाली) वितरण मानचित्रों में जनसंख्या, पशु, कृषि की उपज, खनिज पदार्थ व औद्योगिक वस्तुओं के वितरण को दिखलाने के वस्तु बराबर विस्तार की बिन्दुओं का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक बिन्दु द्वारा एक निश्चित संख्या या मात्रा का निर्देश होता है। इस प्रणाली की कई समस्यायें हैं। सर्वप्रथम तो मानदण्ड का प्रश्न उठता है—कि प्रत्येक बिन्दु द्वारा किसी संख्या या मात्रा को निर्देश किया जावेगा। बिन्दुओं को मानचित्र पर किस प्रकार अंकित किया जाय ताकि वे बराबर विस्तार की रहे। वास्तव में तथ्य विशेष के अनुसार और मानचित्र के मानदण्ड के अनुकूल ही बिन्दुओं को चुनना पड़ता है। लघुमान दण्ड मानचित्र पर अधिक बिन्दु रख देने से कोई लाभ नहीं होगा। इसी प्रकार दीर्घ मानदण्ड मानचित्र पर कम बिन्दु रखने से नकशा खाली-खाली लगेगा। इन समस्याओं का हल ध्यान से काम करने पर हो सकता है। फिर भी बिन्दु प्रणाली से बहुत-सी सुविधाएँ हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—(१) इस प्रणाली से वितरण की विशेषतायें अधिक स्पष्ट व यथार्थ रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। (२) इस प्रणाली पर खींचे गये मानचित्र को आसानी से समझा जा सकता है। (३) इस प्रणाली के आधार पर चित्रित तथ्यों को अन्य रूप से भी प्रगट किया जा सकता है। (४) इस प्रणाली से कहीं अधिक तथ्यों को मानचित्र पर दिग्दर्शित किया जा सकता है जो अन्य प्रणालियों द्वारा सम्भव नहीं है। जनसंख्या, पशु, कृषि, उपज, औद्योगिक वस्तुओं आदि के अलावा बिन्दु प्रणाली द्वारा बाजार, मेला स्थान, कारखाने आदि की स्थिति व मजदूरों की संख्या को भी दिखलाया जा सकता है। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, अध्ययन के लिये बिन्दु प्रणाली ही सबसे अधिक उपयोगी है।

Double Cropping (दुहरी फसल उगाना) जब खेती इस प्रकार की जाती है कि एक साल में उसी भूमि से दो फसले उत्पन्न की जायें तो उसे दुहरी फसल उगाना कहते हैं। भारत में कृषि द्वारा दो फसले उत्पन्न की जाती हैं। एक को खरीफ की फसल कहते हैं और दूसरी को रबी की फसल। वास्तव में दुहरी फसल उगाने में एक ही भूमि पर एक फसल काटने के बाद फौरन दूसरी फसल बो दी जाती है। परन्तु इसमें ध्यान देने योग्य विशेष बात यह है कि फसलों के चुनाव में विशेष चतुरता का प्रयोग किया जाना चाहिये। प्रायः निम्नलिखित बातों पर तो अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये—(१) यदि एक फसल देर में पकनेवाली है तो दूसरी फसल जल्दी तैयार होनेवाली होनी चाहिये। (२) यदि एक फसल

को एक प्रकार के नमकों की आवश्यकता होती है तो दूसरी फसल ऐसी चुनना चाहिये जिससे या तो उनकी क्षति पूर्ण हो जाये या जिन्हें दूसरे प्रकार के नमकों की आवश्यकता हो ताकि उस कालान्तर में नमकों की कमी अपने आप पूरी हो जाये। प्रायः अनाज या औद्योगिक कच्चे माल की एक फसल के बाद दूसरी फसल फलीदार पौधों की जैसे दाल, चना आदि हैं, होना लाभप्रद होता है। इसके अलावा दुहरी फसल उगाने के वास्ते सिंचाई व खाद की भी पर्याप्त योजना होनी जरूरी है।

Down (डाउन) दक्षिणी इंगलैंड में खड़िया मिट्टी के बने ऊँचे-नीचे टीलों से पूर्ण खुले क्षेत्र को डाउन कहते हैं। डाउन क्षेत्रों में ढाल कुछ निश्चित नहीं होता है। कहीं टीले होते हैं तो कहीं निम्न भूमियाँ। कहीं ढाल एक तरफ होता है तो कहीं दूसरी तरफ। दूर से देखने पर वृक्षरहित ये क्षेत्र लहर के समय ऊँचे-नीचे दिखाई पड़ते हैं। इन टीलों पर केवल छोटी-छोटी घास पायी जाती है जिस पर भेड़ें चराने का काम ही प्रमुख रूप से होता है।

Downland (डाउनलैंड) आस्ट्रेलिया में मरेडारलिंग नदियों की घाटी में पाये जाने वाले शीतोष्ण घास के मैदान डाउनलैंड कहलाते हैं। ये घास के मैदान यूरेशिया के स्टेपीज़, उत्तरी अमरीका के प्रेरीज, दक्षिणी अमेरिका के पेम्पाज़ के ही समान हैं। इन डाउनलैन्ड में तापांश का विस्तार बहुत अधिक होता है। यहाँ वर्षा का औसत १० इंच से ३० इंच तक रहता है। वसन्त ऋतु में हल्की बूँदाबाँदी से घास उगने में आसानी होती है और फिर बाद में गर्मी के शुरू में वर्षा होने पर घास के ये मैदान लहलहाने लगते हैं। परन्तु गर्मी के मौसम के अन्त का ताप और जाड़े की घोर सर्दी से यह घास मुरझा जाती है। यहाँ की घास छोटी और मुलायम होती है। मीलों तक केवल घास ही घास दिखाई पड़ती है यद्यपि बीच-बीच में इलायची के पेड़ों के कुंज या केवल इक्का-दुक्का पेड़ भी छितरे रहते हैं। इन मैदानों में घोड़ा जंगली तौर पर पाया जाता है और आस्ट्रेलियन किसान भेड़ चराने के वास्ते घोड़े व कुत्ते से विशेष काम लेते हैं। यहाँ का मुख्य पेशा भेड़ चराना है।

Drainage (परिवाह) किसी प्रदेश में नदियों की व्यवस्था को वहाँ का परिवाह कहते हैं। किसी जगह का परिवाह वहाँ की प्राकृतिक बनावट, वर्षा और चट्टानों के प्रकार पर निर्भर रहता है। वर्षा का जल छोटी-छोटी धाराओं में बहने लगता है और तलैटी की चट्टानों को काट कर नालियाँ बना लेता है। धीरे-धीरे ये नालियाँ गहरी व चौड़ी होती जाती हैं, उसमें सहायक नदियाँ आकर मिल जाती हैं और इस प्रकार से नदी व्यवस्था समुद्र या किसी झील में जाकर गिर जाती है। जब किसी प्रदेश की नदियाँ किसी विस्तृत समुद्र में न गिर कर बल्कि किसी झील में या आन्तरिक सब ओर से स्थल द्वारा घिरे हुए सागर में जा गिरती हैं तो ऐसे परिवाह को आन्तरिक परिवाह कहते हैं।

जब चट्टानों की व्यवस्था इस प्रकार की हो कि उसमें कठोर व मुलायम परतें एक के बाद क्रमशः स्थित हों तो ऐसे क्षेत्र का परिवाह झरना व जल प्रपातों से पूर्ण होगा। इसी प्रकार जहाँ चट्टानों में मुलायम व कठोर परत लम्ब रूप एक के बाद दूसरा स्थित हो वहाँ के परिवाह में घाटी कहीं चौड़ी और कहीं सँकरी होगी।

परिवाह कई प्रकार का होता है—एक तो वह कि भूमि के ढाल व बनावट के अनुकूल ही नदियाँ धाराओं में प्रवाहित हो जायँ और इस प्रकार सहायक व उपसहायक नदी भी बह निकले और मुख्य नदी से जा मिले। दूसरा वह कि भूपटल पर परिवर्त्तन होने पर भी नदी अपनी काट-छाँट को जारी रखकर भूमि को अपने अनुरूप कर ले और अपनी दिशा व परिवाह बनाये रक्खे। तीसरा वह कि जब किसी क्षेत्र में ऊपर की परत तो मुलायम हो पर उसके

नीचे कठोर चट्टानें रहें तो नदी परिवाह ऊपर की परत में अपनी घाटी बनाकर जब कठोर चट्टान तक पहुँचेगा तो फिर और परिवर्त्तन नहीं हो पावेगा। इस प्रकार के परिवाह को Superimposed कहते हैं। (देखिये Antecedent, Consequent और Superimposed river)

Dreikant (ड्रीकान्ट) उष्ण व शुष्क प्रदेशों में वायु की गति बड़ी प्रचंड होती है और उसमें बालू के कण मिले रहते हैं। बालू के कणों से लदी प्रचण्ड वायु केवल सतह की चट्टानों को घिसकर रूप प्रदान नहीं करती बल्कि टूटफूटकर गिरे हुये कंकड़ों-पत्थरों की एक राशि को भी घिसावट द्वारा नुकीली कर देती है। वायु के वेग के कारण ये कंकड़-पत्थर आपस में टकराते हैं और उनके ऊपर उठे हुये भाग घिस-घिस कर नुकीले हो जाते हैं। फलतः उन टेढ़े-मेढ़े पथरीले टुकड़ों का रूप त्रिकोण अथवा पिरामिड की तरह हो जाता है। इस प्रकार के चट्टानी टुकड़ों को ड्रीकान्ट कहते हैं।

Drift (बहाव) (१) समुद्र, झील या नदी में जल की सतह पर हवा के कारण उत्पन्न धीमी गति को बहाव कहते हैं। हवा के कारण बालू पर भी इसी प्रकार की गति उत्पन्न हो जाती है।

(२) पृथ्वीतल पर जल, हिम या वायु द्वारा बहाकर लाई हुई वस्तु के निक्षेप को बहाव कहते हैं। हवा के द्वारा उड़ाकर लाई हुई धूल या लोयस, नदी द्वारा बहाकर लाई हुई मृत्तिका और हिम द्वारा बहाकर लाई हुई बोल्डर मिट्टी को बहाव कहा जा सकता है परन्तु बहाव शब्द को विशेष रूप से केवल बोल्डर मिट्टी के निक्षेप के लिए प्रयोग करते हैं। हिमनदी का बहाव दो प्रकार का होता है—एक तो वह जो हिमनदी द्वारा निक्षेप किया जाय और दूसरा वह जो हिमनदी के नीचे से बहते हुए पानी द्वारा एकत्रित की जाय। प्रथम प्रकार का निक्षेप मिश्रित व ऊबड़-खाबड़ होता है। उसमें परत नहीं लगाई गई होती है। इसे बोल्डर मिट्टी कहते हैं जिसमें विभिन्न प्रदेशों से बहाकर लाये हुए विभिन्न रूप, आकार-प्रकार और विस्तार के ढोंके मिले पाये जाते हैं। दूसरे प्रकार का निक्षेप एक समान होता है और परतों में जमा किया जाता है। इसमें बालू व मोटी कंकड़ीली मिट्टी मिलती है। ये सभी प्रकार के बहाव भिन्न-भिन्न प्रकार के ढेर या राशि में छितरे मिलते हैं।

(३) दक्षिणी अफ्रीका में किसी नदी के उथले भाग को बहाव कहते हैं जहाँ नदी को आसानी से पार किया जा सके।

Drift-ice (प्रवाहित हिम) जिन प्रदेशों में हमेशा बर्फ जमी रहती है वहाँ बहती हुई हिमधारा समुद्र में आ गिरती है और उनसे कुछ भाग अलग होकर हिमशिला के रूप में समुद्र पर तैरने लगता है। समुद्री धाराओं के प्रवाह में पड़कर हिमधारा या हिमशिला के कुछ टुकड़े खुले समुद्र में बहुत दूर तक बह जाते हैं। इन्हें प्रवाहित हिम कहते हैं।

Driftless Area (प्रवाहहीन क्षेत्र) उत्तरी अमेरिका और उत्तरी पश्चिमी यूरोप के देशों में किसी समय हिम का आवरण पड़ा हुआ था। इन प्रदेशों में हिम आवरण के हटने पर अधिक प्रकार के परिवर्त्तन हुए जिनके चिन्ह आज भी दृष्टिगोचर होते हैं, विशेषकर पिघलते हुए हिम द्वारा छोडे गये निक्षेपों से। लेकिन इस क्षेत्र के कुछ भाग ऐसे हैं जहाँ हिम निक्षेप या बहाव के कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होते। इससे अनुमान किया जाता है कि शायद उस क्षेत्र विशेष में हिम प्रवाह का प्रभाव न रहा हो। इसका प्रमाण यह है कि वे क्षेत्र हिम परिवाह शून्य हैं। ऐसे क्षेत्रों को प्रवाहहीन क्षेत्र कहते हैं जैसा कि उत्तरी अमरीका की बड़ी झीलों के पश्चिम-दक्षिण में मिशिगन झील के समानान्तर एक छोटा-सा क्षेत्र है। इस प्रदेश में विसकानसिन, इलीनाय, मिनीसोटा और आइवो रियासतों के कुछ भाग शामिल हैं।

इसमें हिम आवरण के कोई भी चिन्ह नहीं मिलते। यह एक उँचा और कटा-फटा मैदान है जिसके दक्षिण पूर्व में नदी द्वारा आवरण-क्षय की पूर्ण अवस्था मिलती है। स्थानीय चट्टानों का चूर्ण यहाँ-वहाँ सभी जगह मिलता है। यहाँ का जल प्रवाह अस्त-व्यस्त नहीं होता बल्कि वृक्ष की तरह होता है। प्रवाहहीन क्षेत्र की रचना का निक्षेप से न होकर बल्कि काट-छाँट के द्वारा होती है।

प्रवाहहीन क्षेत्र में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं :—

(१) प्राकृतिक रचना निक्षेपात्मक न होकर आवरण क्षय के परिणाम-स्वरूप होती है। (२) जलप्रवाह पूर्णतया व्यवस्थित होता है। (३) चट्टानों का आकार ऊबड़-खाबड़ व अनियमित होता है। (४) चट्टानों का चूर्ण व शिलाखंड एक ही प्रकार के होते हैं और उन्हीं चट्टानों के होते हैं जो वहाँ पायी जाती हैं। ये शिलाखंड नुकीले होते हैं। यहाँ की मिट्टी पर पानी का असर दिखाई पड़ता है और इनमें कारबोनेट नहीं पाये जाते।

Driblet Cone (ड्रिबलेट शंकु) ज्वालामुखी उद्गार के समय ज्वालामुखी के मुख से निकलनेवाला लावा तरल दशा में होता है और विस्फोट या उद्गार की शक्ति के कारण काफी दूर ऊपर तक उठ जाता है। इस प्रकार उठी हुई लावाराशि जब नीचे गिरती है तो उसमें चिपकने की या सटने की शक्ति रहती है और वह चट्टानों पर बहने के बजाय चिपके रह जाते हैं। इस प्रकार काफी ढालू व नुकीले शंकु बन जाते हैं जिन्हें ड्रिबलैट या स्पाटर शंकु कहते हैं।

कभी-कभी मुख्य ज्वालामुखी पर्वत के पार्श्व की दीवारों से भी लावा फूट निकलता है और निकास के स्थल पर एक बड़े आकार का ड्रिबलेट शंकु बन जाता है। इनका रूप व आकार रीढ़ की हड्डी की तरह या ऊपर को उठाई हुई अंगुली के समान होता है।

Drizzle (जलफुहार) ऐसी जलवृष्टि जिसमें पानी की बूँदें इतनी छोटी हों कि फौव्वारे या झरने के जल से उड़ने वाली बौछार सी मालूम पड़े, उसे जल फुहार कहते हैं। इसका कारण क्या है इसे निश्चित रूप से तो नहीं जाना है परन्तु अनुमान है कि जब द्रवीभवन क्रिया अपूर्ण रह जाती है या जब वायु में धूल के कण कम संख्या में उपस्थित रहते हैं तभी जलफुहार पड़ती है।

Drought (जलवृष्टि अभाव; सूखा) शुष्क मौसम जब काफी दिनों तक बना रहे और पानी की कमी के कारण, वर्षा न होने के कारण मौसम बहुत सूखा रहे तो उस स्थिति को सूखा या जलवृष्टि अभाव कहते हैं। सूखा पड़ जाने से जन, कृषि और पशु की बड़ी हानि होती है और अकाल की दशाएँ उपस्थित हो जाती हैं। जहाँ वर्षा काफी होती है या जहाँ वर्षा की मात्रा व वितरण निश्चित है और वहाँ जहाँ वर्षा अधिकतर साल भर तो पर्याप्त होती है परन्तु कभी-कभी नहीं भी होती, इन दोनों प्रकार के प्रदेशों के बीच में स्थित क्षेत्र में जब कभी सूखा पड़ जाता है तो विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। वास्तव में अनिश्चित वर्षा वाले प्रदेशों में वर्षा के देर से होने, कम मात्रा में होने या बिल्कुल न होने से सूखा पड़ जाता है। भारत और चीन के कुछ घने बसे भागों में सूखा अक्सर पड़ जाता है और वहाँ के निवासियों को विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आस्ट्रेलिया व दक्षिणी अमरीका के कुछ आन्तरिक भागों में भी सूखा पड़ता रहता है परन्तु इन प्रदेशों में आबादी कम होने के कारण अधिकतर नुकसान पशुओं तक सीमित रह जाता है।

जलवृष्टि अभाव कई प्रकार का होता है। जब वर्षा देर से होती है तो इस प्रकार का सूखा दूसरे स्थानों से सहायता पहुँचाकर काबू में लाया जा सकता है। इसी प्रकार कम

मात्रा में वर्षा के होने से उत्पन्न सूखे का सामना भी सिंचाई आदि के साधनों द्वारा किया जा सकता है। परन्तु जब वर्षा बिल्कुल ही न हो तो उस पूर्ण शुष्कता का सामना करना बड़ा भयंकर होता है। इधर कुछ वैज्ञानिक इस खोज में लगे हुए हैं कि कृत्रिम रीति से जलवृष्टि कर ली जाय। यदि यह विस्तृत रूप से सम्भव हो सका तो सूखे से होने वाली क्षति को रोका जा सकेगा।

सूखे पड़ने की कोई विशेष अवधि नहीं होती। परन्तु साधारणतया १५ रोज से लेकर १ महीने तक वर्षा में हेर-फेर हो जाने से सूखा पड़ जाता है। वास्तव में वृष्टि अभाव का असर स्थान-विशेष की वर्षा पर निर्भरता, जनसंख्या का घनत्व, प्रमुख उद्यम आदि के अनुसार कम-ज्यादा होता रहता है।

Drowned Valley (निमग्न घाटी) समुद्रतट जब समुद्र में नीचे को धँस जाता है तो समुद्र का जल स्थली भाग में भीतर को घुसकर घाटियों में भर जाता है और इस प्रकार की घाटी को निमग्न घाटी कहते हैं। इन घाटियों के डूब जाने से तट रेखा कटी-फटी दिखलाई पड़ने लगती है। यदि ये घाटियाँ जिनमें पानी भर गया है लम्बी, पतली नदियों की घाटियाँ हैं तो इनका आकार वैसा ही हो जाता है जैसा कि पश्चिमी आयरलैंड का है और इन्हें रियास (**Rias**) कहते हैं। जहाँ हिम नदियों द्वारा बनाई गई प्राचीन चौड़ी घाटियों में समुद्रतट के धँस जाने और समुद्रजल के उन घाटियों में भर जाने से स्थल के बीच-बीच में समुद्र घुस गया है और यह जलभरी घाटियाँ फियार्डस कहलाती है।

Drumlin (ड्रमिलन) बोल्डर मिट्टी की लम्बी पहाड़ी जो कि आकार में आधे अंडे के समान होती है, ड्रमलिन कहलाती है। ड्रमलिन वहाँ पायी जाती है जहाँ पहले हिम-आवरण था और उनकी लम्बी धुरी हिम के प्रवाह की दिशा के समानान्तर होती है। इसका मोटा ढालू भाग उत्तर की ओर रहता है। दूर से देखने पर यह उल्टी नाव की तरह प्रतीत होते हैं। बोल्डर मिट्टी के बने इन टीलों का नाम ड्रमलिन आयरलैंड के लोगों ने डाल दिया है। आयरिश भाषा में ड्रमलिन के अर्थ एक छोटा टीला होता है। इनकी उत्पत्ति व निर्माण के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। अनुमान किया जाता है कि बोल्डर मिट्टी के ये निक्षेप या तो हिम प्रवाह के नीचे अनियमित रूप से निक्षेप के कारण बन गये जैसे कि नदियों में बालू के किनारे बन जाते हैं या बोल्डर मिट्टी के निक्षेप में से बाद में बने। पहले बोल्डर मिट्टी बराबर से इकट्ठा हो गई बाद में भिन्न-भिन्न प्राकृतिक शक्तियों द्वारा बोल्डर मिट्टी ने इन टीलों का रूप धारण कर लिया।

ड्रमलिन प्राय: समूह में पाये जाते हैं और उनकी श्रृंखला लम्बरूप स्थित रहती है। बाहरी मोरेन के प्रति ये ड्रमलिन समकोण से बनाते हैं। इससे स्पष्ट है कि ये टीले हिमनदी की सीमा के अन्दर ही बने थे परन्तु इनका वर्त्तमान रूप आखिरी हिम प्रवाह द्वारा प्रदान किया गया।

जहाँ कहीं भी ड्रमलिन पाये जाते हैं वहाँ वे बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं। उत्तरी अमरीका में सबसे प्रमुख ड्रमलिन निम्नलिखित तीन स्थानों में पाये जाते हैं—(१) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के विसकान्सन में मैडीसन के समीप, (२) मध्य न्यूयार्क राज्य में ओन्टेरियो झील के दक्षिण में और (३) बोस्टन के समीप।

Dry Farming (शुष्क खेती) कुछ प्रदेश तो ऐसे भी हैं जो बहुत ही सूखे हैं। जहाँ वर्षा तो कम होती है साथ ही सिंचाई के साधन भी नहीं होते। वहाँ न तो नहरों द्वारा पानी पहुँचाया जा सकता है और न ही पाताल फोड़ कुएँ ही खोदे जा सकते हैं। अत: उन प्रदेशों में खेती के धन्धे को वर्षा के थोड़े-बहुत पानी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ऐसे स्थानों में

शुष्क खेती के द्वारा फसल उत्पन्न की जाती है। सूखी खेती में किसान बाहर के पानी का उपयोग नहीं करता वरन् जो कुछ थोड़ा-बहुत जल वर्षा के दिनों में गिरता है उसका अधिक से अधिक उपयोग करने का प्रयत्न करता है।

सूखी खेती में किसान फसल काटने के बाद ही खेत को खूब गहरा जोत देता है जिससे जो भी वर्षा का जल गिरे वह इधर-उधर न बहकर पृथ्वी में सूख जाय। इसके अलावा किसान समय-समय पर खेत को जोतता रहता है जिससे व्यर्थ पौधे उग कर भूमि को नष्ट न कर दें। यही नहीं बल्कि वह भूमि की ऊपरी सतह की मिट्टी को बहुत ही बारीक कर देता है ताकि पानी भाप बन कर न उड सके। साथ-साथ भूमि को सीढ़ीदार खेतों में बाँट देते हैं ताकि खेत कई भागों में बँट जाये और वर्षा के जल का बहाव अधिक नियन्त्रण के साथ हो सके। सूखी खेती प्रति वर्ष नहीं होती। कहीं-कहीं एक वर्ष छोड़कर दूसरे वर्ष खेती की जाती है जिससे फसल भूमि में जमा किये हुये पानी का उपयोग कर सके। सूखी खेती में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि केवल वही फसल पैदा की जाय जो शुष्कता को सहन कर सके और जो कम खर्चीली हो। अतः सूखी खेती में जल्दी पकनेवाली फसलें ही अधिक उत्पन्न की जाती हैं।

सूखी खेती प्रणाली जलवायु व भूमि की भिन्नता के अनुसार विभिन्न देशों में भिन्न होती है। जलवायु तथा भूमि की भिन्नता के साथ सूखी खेती की पद्धति में भी हेर-फेर करना पड़ता है। कहीं-कहीं जहाँ धूप तेज पड़ती है वहाँ भूमि को अच्छी तरह से जोतकर वर्षा के पानी को उसमें सुखा कर ऊपर से पत्थर के टुकड़े बिछा दिये जाते हैं जिससे पानी भाप बनकर न उड़ सके। कहीं-कहीं जहाँ नीचे की तह में चिकनी मिट्टी की तह नहीं होती वहाँ एक या दो फुट मिट्टी हटाकर नीचे की भूमि को पीट कर कठोर कर दिया जाता है और मिट्टी को फिर उस पर डाल दिया जाता है ताकि वर्षा का पानी बहुत गहराई तक न जा सके।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में सूखी खेती प्रणाली का सबसे पहिले पता लगाकर उपयोग शुरू किया गया। वहाँ ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं जहाँ वार्षिक वर्षा का औसत २० इंच से कम है और साथ-साथ सिंचाई की सुविधायें भी उपलब्ध नहीं हैं। अतः संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पश्चिमी भाग में सूखी खेती का खूब उपयोग किया गया है। अब क्रमशः यह पद्धति भारत, रूस, कनाडा और आस्ट्रेलिया के शुष्क प्रदेशों में भी प्रयोग की जाती है। गेहूँ, कपास, जौ, ओट आदि फसलें सूखी खेती द्वारा खूब अच्छी तरह उत्पन्न की जा सकती हैं।

पत्थर बिछाकर पानी को भाप बनने से रोकने की पद्धति का चलन भूमध्य रेखीय जलवायु के क्षेत्रों में बहुत है। साइबेरिया में वसन्तकाल में बोई गई फसलों को बर्फ के पिघलने से जल प्राप्त होता है। अतः पतझड़ के मौसम में भूमि को जोत दिया जाता है और इस प्रकार जोती हुई नालियों में बर्फ फँस कर रह जाती है। फलतः जाड़े की प्रचण्ड हवायें बर्फ को उड़ा कर नहीं ले जा पातीं और वह वसन्तकाल तक बनी रहती है। इस प्रकार शुष्क खेती पद्धति से उन प्रदेशों में भी खेती करना सम्भव हो सकता है जहाँ पहिले यह समझा जाता था कि किसी प्रकार की फसल उग ही नहीं सकती। इससे इस पद्धति का कृषि जगत में महत्व स्पष्ट है।

Dry Spell (सूखा मौसम) यह पारिभाषिक शब्द संसार के सभी राष्ट्रों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है और इसका प्रयोग ब्रिटिश द्वीप समूह तक ही सीमित है। ब्रिटिश द्वीप समूह में जब १५ दिन तक लगातार दैनिक जलवृष्टि का औसत .०४ इंच से कम रहता है तो उस समय को सूखा मौसम कहते हैं। परंतु 'सूखे मौसम' की व्याख्या किसी ऋतु संबंधी

विशेषताओं द्वारा नहीं की जा सकती। इसका ज्ञान केवल पौधों पर पड़ने वाले प्रभाव से ही हो पाता है।

Dry Valley (शुष्क घाटी) जब किसी नदी घाटी में से जलधारा का लोप हो जाय और वहाँ पर कंकड़-पत्थर व रेत-मिट्टी ही पड़ी दिखाई दे तो उसे शुष्क घाटी कहते हैं। शुष्क घाटी बनने के दो कारण होते हैं—प्रथम तो यह कि किसी दूसरी बड़ी नदी द्वारा उस विशेष नदी की जलधारा या स्रोत का हरण कर लिया गया हो (देखिये River Capture) और दूसरा यह है कि घाटी की मिट्टी प्रवेश्य या घुलनशील हो। प्रथम दशा में तो जलधारा का एक अति पतला रूप घाटी में बचा रह जाता है और कालान्तर में वह भी सूख जाता है। दूसरी दशा में घाटी की तलैटी में मिट्टी के घुल जाने से एक छिद्र बन जाता है जिसमें से होकर नदी की सम्पूर्ण धारा भूगर्भ में प्रवेश कर जाती है और घाटी का बाकी भाग सूखा रह जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शुष्क घाटी पूर्णतया शुष्क तो कभी भी नहीं होती, उसमें छोटी-मोटी जलधारा अवश्य ही रहती है। यह दूसरी बात है कि स्रोत हरण के पश्चात वह पानी की छिछली तलैया सी रह जाय या भूगर्भ में प्रवेश करने के वाद आगे प्रवाहित न हो। इसीलिये फ्रांसीसी भूगोल शास्त्री इस प्रकार की घाटी को 'मृतघाटी' कहना पसन्द करते हैं जो अधिक उपयुक्त भी है।

Dune (बालू टीला) शुष्क मरुस्थल में वायु द्वारा आवरणक्षय और अपनयन द्वारा निर्मित बालू की पहाड़ियों को बालू टीला कहते हैं। वायु बालू के कणों को उड़ाकर ले जाती है और जहाँ कहीं उसे कोई रुकावट मिलती है वहाँ वह बालू के कणों को इकट्ठा करने लगती है। यहाँ तक कि थोडे समय में यह बालू निक्षेप टीलों के आकार के हो जाते हैं। बालू के कणों से लदी वायु के मार्ग में उमड़ी हुई चट्टान, झाड़ी, घास के गुच्छे या नगर की इमारतों के आ जाने से उसकी गति में बाधा पड़ जाती है और बालू टीले वहीं पर बन जाते हैं। अवरोध के सामने हवा टकराती है और बालू इकट्ठा कर देती है। धीरे-धीरे रेत की यह राशि इतनी ऊँची हो जाती है कि वह अवरोध को ढक कर दूसरी ओर भी गिरने लगती है। हवा की तरफ वाला ढाल क्रमश: होता है और टीले का वह पार्श्व जो हवा से विमुख होता है उसका ढाल बड़ा ही तीव्र होता है। परन्तु जव बालू टीले हवा के रुख के समानान्तर लम्बी सँकरी पहाड़ियों या श्रेणियों के रूप में स्थित होते हैं तो उनके दोनों पार्श्वों का ढाल बड़ा ही तीव्र होता है।

वास्तव में बालू टीलों का आकार व निर्माण निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है—(१) रेत का स्रोत, (२) वायु की प्रचंडता, (३) रेत के इकट्ठा होने के लिए स्थान, (४) जलवायु व वनस्पति जिनके आधार पर अवरोध का स्राव निश्चित होता है और (५) भूप्रकृति। जहाँ वायु की गति और भूप्रकृति की रूपरेखा सदैव एक सी रहती है वहाँ बालू के टीलों का निर्माण जलवायु व बालू की मात्रा पर निर्भर रहता है। जब बालू के कणों से लदी वायु किसी कठोर अवरोध से टक्कर लेती है तो जो बालू टीला बनता है उसका रूप व आकार सम होता है; परन्तु जब मार्ग में किसी पेड़, झाड़ी आदि लचीले अवरोधों के कारण बालू टीले बनते हैं तो उनका रूप व आकार विषम होता है। वायु के सामने वाला ढाल तीव्र होता है और वायु से विमुख ढाल पर स्रोत की मात्रा बहुत अधिक रहती है।

बालू के टीले प्राय: तीन आकार-प्रकार के होते हैं—(१) **लम्बरूप टीले**—ये वायु की दिशा पर लम्बरूप स्थित होते हैं और इनका आकार अर्द्धचन्द्र के समान होता है। इन पर कोई वनस्पति नहीं होती। इनकी शक्ल बहुत कुछ हँसिया के समान होती है और खोखला

भाग वायु की दिशा की ओर स्थित होता है परंतु इनकी पूँछ या सिरा वायु से विमुख दिशा की ओर रहता है। इस पर रेत की बड़ी-बड़ी लहरें पड़ी होती हैं। इस प्रकार के टीले जहाँ बन जाते हैं जहाँ बालू तो खूब उड़ाकर ले जाई जाती है परन्तु वनस्पति का अभाव रहता है। (२) **खोखले टीले**--वायु की दिशा के सामने इन टीलों का भीतरी भाग खोखला होता है और दोनों ओर के पार्श्व के विन्दु वायु की प्रवाह के सामने रहते हैं। वायु से विमुख दिशा के ढाल की अपेक्षा वायु के सम्मुख पार्श्व का ढाल अधिक तीक्ष्ण होता है। वास्तव में प्रचण्ड वायु अपने सामने के पार्श्व से बालू उड़ा ले जाती है और फलतः खोखले बन जाते हैं। यह बालू वायु से विमुख पार्श्व पर इकट्ठा कर दी जाती है। इन पर कहीं-कहीं छोटी झाड़ियाँ पाई जाती हैं। (३) **समानान्तर टीले**--वायु के प्रवाह की दिशा के समानान्तर पहाड़ी श्रेणी के रूप में बन जाते हैं। इस प्रकार के दो टीलों के बीच की निम्न भूमि और इनके पार्श्व पर बहुधा वनस्पति पायी जाती है।

परन्तु बालू के टीलों की स्थिति व आकार स्थायी नहीं होता। वायु की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बालू टीलों का रूप व विस्तार घटता-बढ़ता रहता है और साथ-साथ इनकी स्थिति में भी परिवर्त्तन होता रहता है। वास्तव में ये बालू टीले एक स्थान से दूसरे स्थान को भ्रमण किया करते हैं। जब हवा की दिशा व गति परिवर्त्तनशील होती है तो इनका रूप व भ्रमण भी अनियमित व विषम होता है। परन्तु जहाँ वायु बहुत कुछ सम गति से बहती है वहाँ बालू टीलों का भ्रमण भी धीमा होता है। प्रवाहित वायु के साथ-साथ ये टीले बराबर आगे बढ़ते रहते हैं और रेतीले रेगिस्तानों के किनारों पर बालू टीलों के भ्रमण से बहुधा बड़ी हानि होती है, बड़े-बडे शहर बालू के नीचे दब जाते हैं। मिश्र और सीरिया में यह हानि बहुत होती है और उपजाऊ भूमि हमेशा के लिए नष्ट हो जाती है। बाल्टिक सागर के किनारों पर बहुधा इस प्रकार के बालू टीलों से गाँव के गाँव दब जाते हैं। दक्षिणी-पश्चिमी फ्रांस के लान्डेस प्रदेश में पौधों व नुकीले पत्ती वाले जंगलों को लगाकर बालू टीलों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण रोक दिया गया है। साधारणतया बालू के छोटे टीले ही एक स्थान से दूसरे स्थान को आते-जाते रहते हैं जब कभी रेगिस्तानों में वर्षा होती है तो बड़े टीलों के गहरे भागों में पानी इकट्ठा रह जाता है क्योंकि केवल सतह की परतों का पानी ही भाप बन कर उड़ सकता है। अतः निचली परतों की नमी के कारण बड़े-बडे बालू टीले बहुत कुछ स्थायी-से हो जाते हैं।

Dust (धूल) अति सूक्ष्म कणों से बने ठोस पदार्थ को धूल कहते हैं। धूल के कण रेत के कण से छोटे होते हैं और समस्त वायुमण्डल में मिले पाये जाते हैं। वायु धूल के इन कणों को उड़ाकर बहुत दूर तक ले जाती है और पृथ्वी पर हर जगह इनका निक्षेप होता रहता है। वास्तव में द्रवीभवन के पश्चात् जल की बूँदें वायु में मिले इन्हीं धूल के कणों पर टिकी रहती है। वायुमण्डल में धूल के कण प्रायः तीन प्रकार से आते हैं--औद्योगिक क्षेत्रों में या उनके समीपवर्त्ती प्रदेशों में कारखानों व घरों की चिमनियों से निकलने वाला धुँआ बराबर वायुमण्डल में कोयले तथा अन्य वस्तुओं के कणों को मिलाता रहता है। रेगिस्तान में हवा की प्रचण्ड धारायें पृथ्वी से धूल को उड़ाकर वायुमण्डल में मिलाती रहती है। (देखिये Dust Storm) इसी प्रकार ज्वालामुखी पर्वतों के प्रदेश में ज्वालामुखी उदगार के समय ज्वालामुखी से निकली हुई धूल के कण वायुमण्डल में मिलते रहते हैं।

वायुमंडल में मिले धूल के कण तापक्रम, दृश्यता और जलवृष्टि को प्रभावित करते हैं। परन्तु धूल के कण सब जगह एक-से नहीं होते हैं। कहीं के वायुमण्डल में धूल के कण अधिक होते हैं तो कहीं बहुत कम।

Dust Counter (धूल मापक यंत्र) वायु की एक निश्चित राशि में धूल के कणों की संख्या को गिनने का यन्त्र धूलमापक यन्त्र कहलाता है।

Dust Devil (धूल का भूत) किसी प्रदेश में सूर्य की अत्यधिक गर्मी के कारण एक अति प्रचण्ड संवाहन धारा बन जाती है और वायु गर्म होने पर हल्की होकर बड़ी तेजी से ऊपर को उठने लगती है। फलतः धूल का एक चक्र-सा बन कर ऊपर की ओर उठने लगता है। इसका रूप भँवर की तरह होता है और इसे बवंडर कहते हैं। ये बवंडर स्थानीय प्रभाव से उत्पन्न होते हैं और स्थान-विशेष तक सीमित रहते हैं। इन बवंडरों का व्यास कुछ यंत्र से अधिक नहीं होता। केवल २–४–५ गज तक ही में ये धूलचक्र रहते हैं परन्तु केन्द्र के चारों ओर धूल के कण उठते-उठते कभी-कभी तो पृथ्वी से २००० या ३००० फीट की ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं।

ये बवंडर या धूल के भूत रेगिस्तानों में ५ से १५ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से आगे बढ़ते हैं और कभी-कभी इनकी रफ्तार ३० मील प्रति घण्टे तक हो जाती है। स्थानीय दशाओं के अनुरूप कभी-कभी रेगिस्तानों में ५-६ बवंडर एक साथ उठते हुये नजर आते हैं। चूँकि उनका विस्तार सीमित होता है, इसलिये ये धूलचक्र या बवंडर हवाई जहाजों के लिये घातक नहीं होते।

Dust Storm (धूल की आँधी) धूल की आँधी में वायुमंडल धूल से भर जाता है और चारों तरफ अँधेरा छा जाता है, कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता और आसमान बिल्कुल छिप जाता है। इसमें साँस लेने में बड़ी तकलीफ होती है और ऐसे मौसम में वायुयान चलाना खतरे से खाली नहीं। जब सूखे धूल से भरे क्षेत्र के ऊपर से भीषण प्रचण्ड वायु चलती है तो धूल की आँधी आ जाती है और इसके आने से पहिले कोई १०००० फीट की ऊँचाई तक धूल की दीवार-सी बन जाती है। आँधी आने से पहिले वायु हल्की व परिवर्त्तनशील होती है लेकिन धीरे-धीरे वह प्रचण्ड होती जाती है। ईराक, उत्तरी अफ्रीका और उत्तरी पश्चिमी भारत के शुष्क मरुस्थली मैदानों में धूल की आँधी अक्सर आया करती है और बादलों की कड़क वाले मौसम में इनकी बहुतायत रहती है। उस काल में मौसम इतना शुष्क रहता है कि वर्षा का पानी भूमि तक आने से पहिले फिर वापस भाप बन कर उड़ जाता है। अगर वर्षा हो गई तो धूल साफ हो जाती है और धूल की आँधी अधिक काल तक टिक नहीं पाती।

धूल की आँधी दो प्रकार की होती है—काली और पीली। काली आँधी में धूल के कण ऐसे घने होते हैं कि हाथ से हाथ नहीं सूझता और वायु की गति इतनी प्रचण्ड होती है कि बड़े-बड़े पेड़ गिर जाते हैं और इमारतों की छतें उड़ जाती हैं। पीली आँधी इतनी भीषण नहीं होती। उसमें वायुमण्डल का प्रकाश बड़ा धुँधला पड़ जाता है और इसकी अवधि व प्रचण्डता भी कम होती है।

Dust Well (धूल कूप) हिमनदी की सतह पर वायु द्वारा उड़ा कर लाई हुई धूल इकट्ठा हो जाती है। इस प्रकार से एकत्रित धूल पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो सतह गर्म हो जाती है और धूल के नीचे का हिम पिघलने लगता है। इस प्रकार हिमनदी के बीच-बीच में कहीं-कहीं गड्ढे व कुएँ-से बन जाते हैं। इन्हें धूल कूप कहते हैं।

Dyke (डाइक) पृथ्वी के भीतर से पिघली हुई चट्टान का लावा जब नीचे से जोर मारकर किसी कमजोर स्थान या किसी दरार के द्वारा भूपटल की ओर बहने लगता है तो मार्ग में ठंढा हो जाने के कारण भूपटल के नीचे ही जम जाता है और फलतः ठोस चट्टान का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार से बनी लम्बरूप अथवा काफी झुकी हुई स्थिति

की आग्नेय चट्टान को डाइक कहते हैं। यह डाइक आग्नेय चट्टान की चादर-सी होते हैं और इनकी मोटाई एक इंच के अंश मात्र से लेकर कई सौ फीट तक होती है। इनके रूप भी विभिन्न होते हैं। कभी तो यह डाइक अपनी दिशा बदल लेते हैं और कभी मुख्य चादर से कई छोटी-छोटी शाखायें फूट निकलती हैं। कभी-कभी जब चट्टानों का पिघला लावा नीचे से ऊपर आने की चेष्टा करता है और मार्ग में स्थित चट्टानें कमजोर या मुलायम होती हैं तो यह पिघला लावा उनको गलाकर या नष्ट करके अपना मार्ग बना लेता है। इस क्रिया में लावा के मार्ग के अगल-बगल लम्बरूप दीवारें-सी बन जाती हैं जो कि इसी लावा के ठंढे होने से तैयार होती हैं। ये लम्बरूप चट्टानें भूपटल की परतों के बराबर लम्बरूप स्थित हो जाती हैं। इन आग्नेय चट्टानों का रूप भ्गर्भ स्थित आग्नेय चट्टानों की अपेक्षा कम रवेदार होता है।
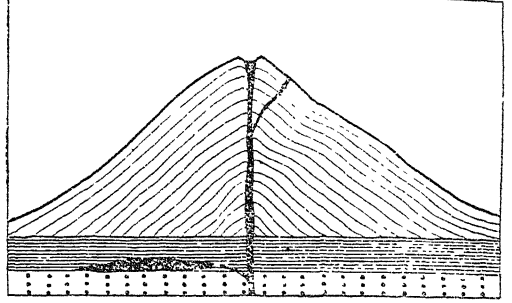
डाइक

Eagre (ईगर) ज्वार-भाटे की लहरें खुले समुद्र मे कभी-कभी ७०० मील की रफ्तार से चलती हैं परन्तु जब कोई रुकावट आ जाती है तो इनकी रफ्तार कम हो जाती है। इस प्रकार की लहर जब किसी उथले जल क्षेत्र में प्रवेश करती है तो उसका अग्रभाग धीमा पड़ जाता है परन्तु अपेक्षाकृत पीछे का भाग तेज रहता है और खुले मुहाने की नदी के कुप्पीनुमा मुख में प्रवेश करने पर पानी की एक दीवार-सी खड़ी हो जाती है। इस प्रकार की ज्वार-भाटा लहर को ईगर कहते हैं और जब यह मुहाने के समीप के समुद्र में चलती है तो इसकी औसत चाल २५ मील प्रति घण्टा होती है। ऊँचाई ३ फीट से लेकर १२ फीट तक रहती है।

Earth (पृथ्वी) सौर मण्डल के ९ महत्वपूर्ण बड़े नक्षत्रों में से पृथ्वी का स्थान पाँचवाँ है। विस्तार के दृष्टिकोण से यह पाँचवाँ बड़ा नक्षत्र है और सूर्य से दूरी में इसका स्थान तीसरा है। भूमध्यरेखा पर इसका व्यास ७९२७ मील है और भूमध्यरेखा पर इसकी परिधि २४९०२ मील है। यदि एक हवाई जहाज २०० मील की रफ्तार से उड़ता हुआ इसका चक्कर लगाये तो उसे १२५ घंटे लगेंगे। पृथ्वी का कुल क्षेत्रफल १९६,९५०,००० वर्गमील है।

पृथ्वी का आकार अंडे जैसा है। या यूँ कहा जा सकता है कि पृथ्वी की शक्ल नारंगी से मिलती-जुलती है। भूमध्यरेखा पर यह कुछ फूली हुई है और ध्रुवों पर चिपटी। यही कारण है कि भूमध्यरेखा व्यास की अपेक्षा ध्रुवीय व्यास २७ मील कम लम्बा है। परन्तु पृथ्वी के क्षेत्रफल व विस्तार को देखते हुए, यह चिपटापन नगण्य सा है।

पृथ्वी गतिशील है। यह अपनी धुरी पर, जो कि ६६॥° के कोण पर झुकी हुई है, बराबर घूमती रहती है और साथ-साथ अपने ग्रहपथ पर सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती रहती है। इन्हीं गतियों के कारण दिन-रात व मौसम का परिवर्त्तन होता है।

पृथ्वी की रचना पर विचार करने पर पता चलता है कि इसका भार बहुत अधिक है। अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि इसका वजन पानी की गेंद की अपेक्षा ५॥ गुना अधिक

है। पृथ्वी तीन पटलों का समूह है। ये पटल एक अत्यन्त भारी तथा ठोस केन्द्र को, जिसे हम परिमाण मण्डल कहते हैं, क्रमशः ढके हुए हैं। इस परिमाण मण्डल के ऊपर चट्टानों का एक ठोस पटल है जिस पर हम लोग रहते हैं और इसे स्थलमण्डल कहते हैं। उसके बाद पानी का एक पटल है जिसको जलमण्डल कहते हैं। जलमण्डल का विस्तार स्थलमण्डल की अपेक्षा चार गुना अधिक है और यह स्थलमण्डल की अपेक्षा अधिक पतला है। इसलिये स्थलमण्डल के कुछ भाग ऊपर निकलकर महाद्वीप बन गये हैं जिन पर हम रहते हैं। इन सब के ऊपर वायुमण्डल का आवरण है।

Earth movement (**पृथ्वी की गति**) पृथ्वी अन्य नक्षत्रों या ग्रहों की तरह सौरमण्डल में सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है। साथ-साथ यह अपनी धुरी पर भी घूमती रहती है। इसी को पृथ्वी की गति कहते हैं। पृथ्वी की दो गतियाँ हैं—(१) **दैनिक गति** और (२) **वार्षिक गति**। पृथ्वी अपनी धुरी पर प्रति दिन एक बार भ्रमण करती है, जिस कारण दिन-रात होते हैं और वह प्रति वर्ष एक बार सूर्य की परिक्रमा करती है, जिस कारण मौसम में भेद हुआ करता है।

पृथ्वी की दैनिक गति—पृथ्वी अपनी धुरी पर २३ घंटा, ५६ मिनट और ४·८ सेकण्ड में एक पूरा चक्कर सूर्य के सामने लगाती है। अस्तु, जो भाग सूर्य के सामने रहता है वहाँ दिन और जो भाग अँधेरे में रहता है वहाँ रात रहती है। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व को घूमती है, इसलिये प्रत्येक स्थान पर सूर्योदय पूर्व की ओर होता है। पृथ्वी की दैनिक गति ध्रुवों पर तो जीरो या शून्य रहती है परन्तु ध्रुवों से दक्षिण की ओर चलने पर यह उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और भूमध्यरेखा पर इसकी दैनिक रफ्तार १०३८ मील प्रति घंटा हो जाती है। पृथ्वी की धुरी जिस पर वह घूमती है, क्षितिज पर लम्बवत् नहीं है बल्कि ६६॥° के कोण पर झुकी हुई है। इसीलिये दिन-रात कहीं बड़े और कहीं छोटे होते हैं। (देखिये Day and Night)

पृथ्वी की वार्षिक गति—पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अंडाकार पथ पर ३६५ दिन, ५ घंटे और ४८ मिनट में पूरा चक्कर लगाती है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा का मार्ग ग्रहपथ कहलाता है। इस ग्रहपथ पर पृथ्वी दाएँ से बाएँ को १००० मील प्रति मिनट की रफ्तार से चलती रहती है। चूँकि यह मार्ग अंडाकार है, इस कारण और समयों की अपेक्षा वर्ष के एक भाग में पृथ्वी सूर्य के अति सन्निकट हो जाती है। एक बात और भी ध्यान देने की है कि यद्यपि पृथ्वी प्रति वर्ष एक बार सूर्य की परिक्रमा करती है परन्तु पृथ्वी का अक्ष सदैव एक ही तरफ झुका रहता है। इस गति के फलस्वरूप ऋतु परिवर्तन हुआ करते हैं। पृथ्वी की वार्षिक गति में चार मुख्य स्थितियाँ विशेष रूप से अध्ययन करने योग्य हैं। **२१ जून** को उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य के निकट और दक्षिणी गोलार्द्ध दूर हो जाता है। इसलिये उत्तरी गोलार्द्ध को अधिक प्रकाश और गर्मी सूर्य से मिलती है। फलतः उत्तरी गोलार्द्ध में **गर्मी** का मौसम और दक्षिणी गोलार्द्ध में जाड़े की ऋतु होती है। इसे **उत्तरायन स्थिति** कहते हैं। **२३ सितम्बर** को पृथ्वी की स्थिति इस तरह रहती है कि सूर्य की गर्मी पृथ्वी के सब भागों को एक सा मिलता है। उत्तरी गोलार्द्ध में पतझड़ और दक्षिणी गोलार्द्ध में बसन्त का मौसम रहता है। रात-दिन बराबर होते हैं। इस स्थिति को **समरात्रि** कहते हैं। **२३ दिसम्बर** को दक्षिणी गोलार्द्ध सूर्य के निकट और उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य से दूर हो जाता है। अस्तु, दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम और उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े का मौसम रहता है। इसे **दक्षिणायन स्थिति** कहते हैं। २१ **मार्च** को सूर्य विषुवत रेखा पर सीधा चमकता है। अस्तु, सब भागों को बराबर गर्मी व प्रकाश मिलता है। दिन-रात बराबर होते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में बसन्त ऋतु और दक्षिणी गोलार्द्ध में शरद ऋतु रहती है। इस स्थिति को भी **समरात्रि** कहते हैं। (देखिये Seasons)

Earth Pillar (भूखंड) पृथ्वी की मिट्टी व पत्थर का एक ऊँचा खम्भा जो कि २०-३० फीट ऊँचा होता है और जिस पर टोपी की तरह मोटा बड़ा ढोका रक्खा रहता है, इस प्रकार के स्थल रूप को भूखंड कहते हैं। खंभ के शिखर पर स्थित ढोका किसी समय भूमि पर पड़ा था परन्तु वर्षा की धाराओं से उसके आस-पास की कोमल मिट्टी कट कर बह गई, परन्तु जहाँ ढोका था वहाँ की मिट्टी कटने नहीं पाई। इस प्रकार जब ढोके के नीचे की मिट्टी को छोड़कर आस-पास की समस्त मिट्टी कटकर बह जाती है तो मिट्टी का एक बड़ा सा खम्भा बचा रह जाता है और उसके ऊपर उसका रक्षक विशाल ढोका टोपी की भाँति जमा रहता है। इस प्रकार के भूस्तम्भ पहाड़ी घाटियों में बहुत पाये जाते हैं और टिरॉल में नकी विशेष बहुतायत है। बर्मा की शुष्क पेटी में भी इस प्रकार के भूस्तम्भ मिलते हैं परन्तु उनके निर्माण का कारण वर्षा का जल नहीं बल्कि प्रचण्ड वायु होता है।

Earthquake (भूकम्प) भूपटल के अधिक नीचे के भागमें तरल या पिघली हुई चट्टानों की गति से धरातल हिलने लगता है और धरातल निवासी हम लोगों को भूकम्प का अनुभव हो जाता है। कुछ भूकम्पों का सम्बन्ध ज्वालामुखी उदगार से होता है परन्तु अधिक मुख्य भूकम्प पृथ्वी के अन्दर के द्रव्य पदार्थों की गति से होते हैं। साधारणतया यह भी देखा जाता है कि जहाँ ज्वालामुखी पर्वत है वहीं भूकम्प भी अधिक आते हैं और ज्वालामखी उद्गार के पहिले और बाद में तो भूकम्प अवश्य ही आता है। इसके अलावा हिम खण्डों के गिरने, भूमि के सरकने, पहाड़ी प्रदेशों में पर्वत्तों के मुड़ने व चट्टानों के तड़कने और खड़िया-मिट्टी से बने प्रदेशों में भूमि के अन्दर की कन्दराओं के टूट पड़ने से भी पृथ्वी काँपने लगती है परन्तु इनको भूकम्प नहीं कहा जा सकता है।

असली भूकम्पों का सम्बन्ध भूपटल की दरारों से होता है। जब भूपटल पर स्थित चट्टानों, मिट्टी आदि का भार किसी विशेष स्थान पर बढ़ जाता है तो ऊपर की विशाल राशि कोई दरार या फटन पाकर नीचे की ओर दबती है। फलतः ऊपर के भार से नीचे की चट्टानें टूट जाती हैं और स्वाभाविक लोच के कारण फिर अपने स्थान पर वापस आना चाहती हैं। इसी क्रिया-प्रतिक्रिया से भूकम्प आ जाते हैं। इस प्रकार भूकम्प दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो चट्टानों के कटने, दरारों या पर्वतों के मोड आदि से सम्बन्धित होते हैं और जिनका कारण भूपटल की उत्क्षेप व निमज्जन से उत्पन्न होता है। दूसरे वे जो ज्वालामुखी उद्गार या भूपटल पर भार संतुलन के कम-ज्यादा हो जाने से हो जाते हैं। भूकम्पों का सम्बन्ध दरारों से इतना अधिक है कि प्रायः देखा जाता है कि ऐसी दरार के एक किनारे की चट्टानें ऊपर की ओर हट जाती हैं और दूसरे किनारे की चट्टानें नीचे की ओर बैठ जाती हैं।

भूकम्प आने से पहिले कुछ क्षण के लिए पृथ्वी के अन्दर गड़गड़ाहट का शब्द सुनाई पड़ता है और फिर पृथ्वी इस प्रकार काँपने या हिलने लगती है जैसे कि उसमें लहरें आ गई हैं। वास्तव में भूकम्प आने पर ३ भिन्न प्रकार की लहरें भूपटल पर उत्पन्न हो जाती हैं। इन लहरों का प्रादुर्भाव तो अनुभव के स्थान से बहुत दूर कहीं हुआ होता है परन्तु ये प्रायः तीन प्रकार की होती हैं यद्यपि इन्हें नग्न आँखों से कदापि नहीं देखा जा सकता। समानान्तर लहरें, लम्बरूप लहरें और सतह की लहरें। यही कारण है कि भूकम्प में प्रायः जरा से अन्तर के बाद तीन बार कम्पन का अनुभव होता है। प्रथम दो प्रकार की लहरें पृथ्वी के अन्दर बहुत गहराई पर उत्पन्न होकर पृथ्वी के अन्दर ही अन्दर चलती हैं। तीसरी कम्पन सतह की लहरों से उत्पन्न होता है। जब भूकम्प की लहरें आती हैं तो पृथ्वी हिलने लगती है और इमारतें आगे-पीछे को झूमने-सी लगती हैं। परंतु इन लहरों के प्रादुर्भाव-केन्द्र के समीप इनकी गति ऊपर-नीचे को रहती है इसलिये वहाँ अपेक्षाकृत कम हानि होती है। जहाँ ये लहरें

टेढ़ी होकर पहुँचती है और जो स्थान केन्द्र से बहुत अधिक दूर भी नहीं होते वहाँ भूकम्प का प्रादुर्भाव बड़ा ही प्रलयंकारी होता है। भीषण भूकम्प के बाद कई और छोटे कम्पन भी होते रहते हैं। समुद्र के नीचे या समीप जब ये लहरें उत्पन्न होती हैं तो पानी पर बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं और बहुत दूर तक चली जाती हैं। इनसे तटीय भागों पर पानी भर जाता है और जहाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

भूकम्प अधिक समय तक नहीं रहता है पर इनसे या तो धरातल में स्थायी परिवर्त्तन हो जाते हैं या जन, धन आदि की हानि ही होकर रह जाती है। परन्तु प्रधानतः इससे इमारतों आदि को हानि ही अधिक होती है। भूकम्प से होने वाले प्रभावों को हम निम्न-लिखित प्रकार का कह सकते हैं:—

(१) **फैलाव सम्बन्धी**—भूमि में दरारें हो जाती हैं और इन दरारों के किनारे कहीं तो ऊपर उठ जाते हैं और कहीं नीचे बैठ जाते हैं, कहीं वे बगल में खिसक जाते हैं तो कहीं वे फैलकर मुँह बा देते हैं। सन् १८९१ में जापान के भीषण भूकम्प और आसाम की चेड ांग घाटी में १८९७ के भूकम्प के बाद पृथ्वी ४७ फीट तक आगे-पीछे खसक गई थी। सन् १९०६ में सैनफ्रान्सिस्को के प्रचण्ड भूकम्प के बाद वहाँ की कुछ सडकों पर दरारें बन गई थीं। और दरारों से कट कर वे एकाएक ६ से १० फीट तक नीचे बैठ गई थी। कभी-कभी दरारें दिखलाई नहीं पड़तीं क्योंकि ऊपर से पड़ी मिट्टी उन्हें ढके रहती है।

(२) **खिचाव सम्बन्धी**—फैलाव से अधिक खिचाव ही भूकम्प का परिणाम होता है। रेल की पटरियाँ, तेल के पाइप मुड जाते हैं और टूट जाते हैं। कभी-कभी नदी के किनारे एक दूसरे के समीप आ जाते हैं और उन पर स्थित पुल टेढ़े-मेढ़े हो जाते है। रेल की पटरियाँ व तार मेहराबदार हो जाते हैं।

(३) **उत्क्षेप निमज्जन सम्बन्धी**—भूकम्प के बाद कहीं नई भूमि निकल जाती है और कहीं समुद्र के जल के अन्दर धँस जाती है। सन् १९२३ में जापान में जो बड़ा भूकम्प आया था उसके कारण जो स्थल प्रदेश पहिले जल निमग्न था वह ऊपर उठ आया परन्तु कुछ प्रदेश भी जो पहिले सूखे थे समुद्र में डूब गये। भूकम्प से पहिले टोकियो की खाड़ी की गहराई २५०० थी परन्तु बाढ़ में ५०० फीट रह गई। सन् १८१९ में भारत के भूकम्प के बाद इसी प्रकार कच्छ का बहुत बड़ा भाग समुद्रतल के कुछ नीचे घुस गया था।

(४) **परिवाह सम्बन्धी**—भूकम्प से जलप्रवाह में भी बड़े परिवर्त्तन हो जाते हैं। कहीं तो जलस्रोत फूट निकलते हैं और कहीं तालाब व नदियों व झीलें सूख जाती है।

पृथ्वी के बहुत अधिक विस्तार में भूकम्प कभी भी नहीं आते और यदि आते भी हैं तो बहुत क्षीण होते हैं। पृथ्वी के चारों ओर तीन ऐसी पट्टियाँ हैं जहाँ भूकम्प अक्सर आते रहते हैं—(१) उत्तरी व दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तटीय प्रदेश, (२) दक्षिणी यूरोप और दक्षिणी एशिया से होती हुई पट्टी, (३) प्रशान्त महासागर की पट्टी जिसके अन्तर्गत जापान, फिलीपाइन और इन्डोनेशिया के प्रदेश सम्मिलित हैं। इन प्रदेशों में जो कि ज्वालामुखी उद्गार के भी केन्द्र हैं प्रायः नित्यप्रति ही कोई न कोई भूकम्प आया ही करता है और प्रति-वर्ष हजारों की संख्या में भूकम्प आते हैं, परन्तु इनमें से कोई सौ ही ऐसे होते हैं जो हानि करते हैं।

Earthquake Period (**भूकम्प अवधि**) वह समय जिसमें एक विशेष प्रदेश में लगातार भूकम्प आते रहते हैं, उसे भूकम्प अवधि कहते हैं।

Earthquake Lake (**भूकम्प निर्मित झील**) भूकम्प के कारण पृथ्वी के धरातल की सम स्थिति में बहुत परिवर्तन आ जाता है और फलस्वरूप कहीं गड्ढे तो कहीं झीलें बन जाती

हैं। सन् १९११ में मिसीसिपी नदी की घाटी में भूकम्प आया था और उसके फलस्वरूप टेनीसी राज्य में एक झील बन गई थी जिसका रील फुट है। वास्तव में कभी-कभी नदी प्रवाह के बदल जाने से भी झील बन जाती है। परन्तु वास्तविक भूकम्प निर्मित झील वह होती है जो दरार के कुप्पीनुमा फटन में पानी भर आने से बन जाये।

Earth's Surface (**धरातल**) पृथ्वी का सबसे ऊपरी छिलका जिस पर हम रहते व चलते-फिरते हैं, पृथ्वी का धरातल कहलाता है। यह धरातल ठण्ढा और पतला है। इसकी मोटाई औसतन ४०-५० मील के लगभग है। इस धरातल के तीन-चौथाई भाग में महासागर व समुद्र पाये जाते हैं। सूखी भूमि का लगभग दो-तिहाई भाग उत्तरी गोलार्द्ध में है और शेष एक-तिहाई दक्षिणी गोलार्द्ध में। धरातल का रूप सब जगह एक-सा नहीं है। कहीं ऊँचे पहाड़ हैं तो कहीं ऊँचे पठार, कहीं नदियों की घाटियाँ तो कहीं नीचे व चौरस मैदान इस प्रकार धरातल ऊँचा-नीचा है और इस पर तीन स्वरूप विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं—पहाड, पठार और मैदान। (देखिये Mountain, Plateau, Plain)

पृथ्वी का धरातल कहीं मुलायम है, कहीं कड़ा, कहीं किसी रंग का है और कहीं किसी रंग का। इसका कारण है अनेक प्रकार की चट्टानों का पाया जाना। चट्टानों के टूटने से ही मिट्टी बनती है और चट्टानों की बनावट पर ही धातुओं का होना भी निर्भर है। धरातल पर पायी जाने वाली चट्टानें तीन प्रधान कोटियों में बाँटी जा सकती हैं—**पर्तदार चट्टान** जो जल, हवा और हिमनदी द्वारा बनती हैं, **आग्नेय चट्टान** जो पिघले हुए पदार्थों के जमने से बनती हैं और **परिवर्त्तित चट्टान** जो प्रथम दोनों प्रकार की चट्टानों पर अत्यन्त गर्मी व दबाव के कारण उनके रूप व बनावट में अन्तर आने पर बन जाती हैं। (देखिये Igneous Rock, Sedimentary Rock, Metamorphic Rock, Soil)

धरातल के ये स्वरूप पृथ्वी में होने वाले परिवर्त्तनों तथा जलवायु के कारण बने हैं और इन्हीं पर मनुष्य का जीवन व आर्थिक क्रियायें निर्भर रहती हैं।

Ebbtide (**भाटा**) चन्द्रमा के आकर्षण के कारण जब सागरों का जल ऊपर उठता हुआ तट या मुहाने की ओर बढ़ता है तो वह वहाँ पर वेग से प्रवेश करता है। परन्तु शीघ्र ही वह जल गिरने लगता है और प्रबल धारा बनाता हुआ बन्दरगाहों तथा मुहानों से समुद्र की ओर प्रायः बड़े वेग से लौटता है। इस लौटती हुई प्रबल धारा को भाटा कहते हैं। उच्च ज्वार के बाद और लघुज्वार के पहिले भाटा आता है।

Eclipse (**ग्रहण**) पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूम रही है और चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है। इनकी गतियों के फलस्वरूप कभी ऐसा होता है कि चन्द्रमा और सूरज के बीच पृथ्वी के आ जाने से चन्द्रमा को सूर्य से प्रकाश नहीं मिल पाता और चन्द्रमा पर पृथ्वी की परछाई पड़ जाती है। इसी प्रकार चन्द्रमा अपने गतिपथ पर चलता-चलता कभी सूर्य और पृथ्वी के बीच आ जाता है, जिससे सूर्य का प्रकाश धुँधला पड़ जाता है और चन्द्रमा की परछाईं पृथ्वी पर पड़ने लगती हैं। इन दोनों परिस्थितियों में प्रकाश के धुँधला हो जाने और एक की परछाईं दूसरे पर पड़ने को ग्रहण कहते हैं। जब चन्द्रमा की रोशनी धुँधली पड़ जाती है तो उसे चन्द्रग्रहण कहते हैं और जब सूर्य की रोशनी छिप जाती है तो उसे सूर्य ग्रहण कहते हैं।
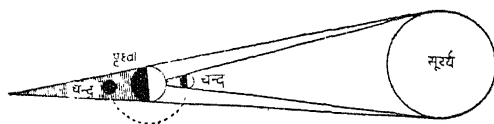
ग्रहण

जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है तो सूरज के प्रकाश से पड़ी पृथ्वी की परछाईं चन्द्रमा को बिल्कुल ही या उसके कुछ अंश को ढक लेती है। यह चन्द्रग्रहण होता है। चन्द्रग्रहण केवल पूर्णमासी के दिन पड़ सकता है जब चन्द्रमा अपनी पूर्ण कला में होता है। पूर्ण कलावाला चन्द्रमा सूर्य के ठीक सामने आ जाता है, इसलिये तभी चन्द्रग्रहण सम्भव होता है। परन्तु इसके यह अर्थ कदापि नहीं कि प्रत्येक पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण पड़ेगा। चन्द्रमा का ग्रहपथ सूर्य के पथ के समानान्तर नहीं है बल्कि सूर्यपथ की ओर करीब ५° के कोण पर झुका हुआ है। जब चन्द्रमा पूर्णतया पृथ्वी की परछाईं से ढक जाता है तो उसे पूर्ण चन्द्रग्रहण कहते हैं और यदि उसका कुछ अंश ही छिप जाता है तो उसे अर्द्ध चन्द्रग्रहण कहते हैं। सूर्य-ग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण कम पड़ते हैं परन्तु सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण को देख सकना अधिक सम्भव होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रहण के समय जहाँ कहीं भी चन्द्रमा क्षितिज के ऊपर होगा वहाँ चन्द्रग्रहण देखा जा सकेगा, परन्तु सूर्यग्रहण केवल सीमित क्षेत्र में ही दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा का गोल चक्र दिखलाई नहीं पड़ता। इसका मुख्य कारण यह है कि पृथ्वी की परछाईं जो उसे ढक लेती है, चन्द्रमा से कहीं अधिक बड़ी होती है। पूर्ण चन्द्रग्रहण दो घंटे तक रह सकता है। सूर्य और पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा के आ जाने से सूर्य का प्रकाश धुँधला पड़ जाता है और सूर्य ग्रहण पड़ जाता है। वास्तव में सूर्य ग्रहण तभी हो सकता है जब सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी एक समतल पर आ जायें। ऐसा दुइज के दिन ही हो सकता है, परन्तु चन्द्रमा के ग्रहपथ के सूर्यपथ पर ५° के कोण पर झुके होने के कारण सूर्य ग्रहण हर दुइज को नहीं होता। जब सूर्य बिल्कुल ही छिप जाये तब उसे पूर्ण सूर्यग्रहण कहते हैं। लेकिन जब सूर्यग्रहण में सूर्य की रोशनी केवल कुछ अंश में ही ढक जाती है तो उसे अंश सूर्यग्रहण कहते हैं। जब चन्द्रमा की परछाईं पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाती तो केवल चन्द्रमा के चारों ओर एक प्रकाश वृत्त सा बन जाता है। इस प्रकार के ग्रहण को सूक्ष्म सूर्य-ग्रहण कहते हैं।

चन्द्रग्रहण की अपेक्षा सूर्यग्रहण अधिक बार पड़ते हैं परन्तु उन्हें केवल सीमित क्षेत्र में ही देखा जा सकता है। चन्द्रमा की परछाईं का शंकु पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच के विस्तार के कारण इतना छोटा हो जाता है कि पूर्ण सूर्यग्रहण केवल थोड़े से सीमित क्षेत्र में ही दिख-लाई पड़ता है। पूर्ण ग्रहण में परछाईं का औसत व्यास ९० मील होता है। चन्द्रग्रहण के विपरीत सूर्य का गोल वृत्त दिखलाई पड़ता रहता है। अतः अंश मान ग्रहण बहुत दूर-दूर तक दिखलाई पड़ता रहता है। चूँकि पूर्ण सूर्यग्रहण हर जगह से नहीं दिखलाई पड़ता बल्कि कोई एक सीमित क्षेत्र से ही दृष्टिगोचर होता है, इसलिये इसको देखने के लिये लोग व विशेषज्ञ दूर-दूर से उस विशेष स्थान को जाते हैं। परन्तु सूर्य ग्रहण की अवधि केवल कुछ मिनट तक ही रहती है।

पृथ्वी की परछाईं जो चंद्रग्रहण में चंद्रमा पर पड़ती है, चन्द्रमा की परछाईं से बहुत बड़ी होती है जो सूर्य ग्रहण के समय पृथ्वी पर पड़ती है। अतएव निम्नलिखित तथ्य ग्रहणों के विषय में ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) सूर्यग्रहण का पूर्ण रूप पृथ्वी के किसी एक बिन्दु मात्र से ही दृष्टिगोचर होता है।

(२) सूर्य का अंशमान ग्रहण केवल विशेष स्थानों से ही देखा जा सकता है। वह किसी एक गोलार्द्ध के सभी स्थानों से दिखलाई नहीं पड़ता।

(३) चन्द्रमा का पूर्ण व अंशमान ग्रहण एक ही समय में पृथ्वी के किसी भी स्थान से देखा जा सकता है और इस प्रकार पृथ्वी के गोलार्द्ध से अधिक भाग में दिखलाई पड़ता है। जहाँ कहीं से चन्द्रमा देखा जा सकता है, उन सभी जगहों से चन्द्रग्रहण भी दिखलाई पड़ता

है और पृथ्वी की दैनिक गति के कारण दिखलाई पड़ने का यह क्षेत्र एक गोलार्द्ध से अधिक रहता है। (देखिये Solar Eclipse, Lunar Eclipse)

Ecliptic (**सूर्यपथ**) पृथ्वी के ग्रहपथ के समतल को सूर्यपथ कहते हैं। इसका आकार एक अंडे के समान होता है और यद्यपि सूर्य तो स्थिर रहता है परन्तु पृथ्वी पर रहने वालों को सूर्य चलता हुआ दिखलाई देता है। इसी दृश्यता के आधार पर पृथ्वी के गृहपथ के समतल को जिस पर पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, सूर्यपथ कहा जाता है।

ग्लोब पर सूर्यपथ को एक बड़े वृत्त द्वारा दिखलाया जाता है और इसको १२ बराबर अंगों में बाँट दिया जाता है। इस वृत्त के प्रत्येक ३०° अंश वाले भाग पर राशियों के नाम लिख दिये जाते हैं। ये चिन्ह व राशियाँ आकाशमण्डल के बारह तारा समूह की ओर निर्देश करती हैं और ऐसा अनुमान है कि सूर्य भ्रमण करता हुआ इन राशियों के बीच से होकर गुजरता है। इस प्रकार सूर्यपथ यद्यपि सौर जगत का एक विशाल काल्पनिक वृत्त है परन्तु यह और पृथ्वी के ग्रहपथ का समतल एक ही है। इस प्रकार सूर्यपथ में पृथ्वी का ग्रहपथ सौर जगत से मिलता है।

Ecology (**परिस्थिति शास्त्र**) जो विज्ञान प्राणियों व पौधों को उनकी परिस्थिति से सम्बन्धित करके अध्ययन करता है वह परिस्थिति शास्त्र कहलाता है। इसके अन्तर्गत मनुष्य, जीवजन्तु, पौधे आदि का उनकी विशेष परिस्थितियों में अध्ययन किया जाता है। और तदानुरूप इसकी कई शाखायें हो जाती हैं जैसे मानव परिस्थिति शास्त्र, जीव-जन्तु परिस्थिति शास्त्र और वनस्पति परिस्थिति शास्त्र। इनके अलावा एक और शास्त्र प्राणि परिस्थिति शास्त्र है जिसके अन्तर्गत जीवजन्तु व वनस्पति जीवनों के सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। परिस्थिति शास्त्र वास्तव में कई विषयों और भूगोल विज्ञान की कई शाखाओं की सीमा पर स्थित है और इसमें उन विविध शास्त्रों व विषयों के कुछ अंश मिले पाये जाते हैं। अतएव इस परिस्थिति शास्त्र की सीमा व क्षेत्र की व्यापक परिभाषा असंभव है।

Economy (**आर्थिक दशा**) किसी देश, प्रदेश अथवा समाज की आर्थिक क्रियाओं व व्यवस्था को वहाँ की आर्थिक दशा कहते हैं। परिस्थिति के अनुसार मनुष्य के उद्यम अलग-अलग देशों में भिन्न होते हैं और विशेष प्रदेश में मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों के अनुसार ही प्रदेश की आर्थिक दशा कृषिप्रधान अथवा शिल्पप्रधान कही जाती है। धरातल की बनावट, जलवायु और स्थिति के अनुसार ही प्राकृतिक साधन होते हैं और इन सभी पर निर्भर रहता है मनुष्य द्वारा उस प्राकृतिक सम्पत्ति का उपभोग। अतएव कहीं की आर्थिक दशा के अध्ययन के लिये वहाँ के लोगों के व्यवसाय का अध्ययन करना पड़ता है और इसी के अन्तर्गत उनका रहन-सहन भी आ जाता है।

Economic (**आर्थिक**) धन व सम्पत्ति से सम्बन्धित ज्ञान व तथ्य आर्थिक कहलाते हैं। धन-सम्पत्ति का उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग आदि सभी क्रियायें व प्रयत्न आर्थिक कहलाती हैं।

Economic Geography (**आर्थिक भूगोल**) धन-सम्पत्ति के उत्पादन, वितरण विनिमय और उपभोग सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन करने वाली भूगोल की शाखा को आर्थिक भूगोल कहते हैं। इसके अन्तर्गत हम मनुष्य की भौगोलिक परिस्थिति का उसके आर्थिक प्रयत्नों पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं। इस विषय में उन सब भौगोलिक परिस्थितियों का विवरण होना चाहिये जो वस्तुओं की उत्पत्ति, उनके चलन तथा क्रय-विक्रय पर प्रभाव डालती हैं। अतएव आर्थिक भूगोल मनुष्य की आर्थिक

स्थिति तथा उसके निवास-स्थान का घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाता है। भौगोलिक परिस्थिति के अन्तर्गत धरातल की बनावट, जलवायु तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश का भौगोलिक सम्बन्ध इत्यादि सभी बातें आ जाती हैं। और यह सर्वथा सच है कि मनुष्य की आर्थिक उन्नति का आधार उसके निवास स्थान की भौगोलिक परिस्थिति ही है। किसी देश की पैदावार कैसी होगी, कौन-कौन सी फसलें उत्पन्न की जावेंगी, वहाँ कौन-कौन से धंधे चल सकेंगे, शक्ति का कितना उपयोग हो सकेगा, मजदूरों की कार्य-क्षमता कैसी होगी, व्यापार व उसके मार्गों आदि की दशा देश की भौगोलिक परिस्थिति पर ही निर्भर है। यही आर्थिक भूगोल का क्षेत्र है।

आर्थिक भूगोल के मुख्य दो कार्य हैं। पहला कार्य तो यह है कि उसके अन्तर्गत पृथ्वी के आर्थिक साधनों का ठीक-ठीक विवरण दिया रहता है और दूसरा मुख्य कार्य यह है कि इसके अध्ययन द्वारा हमें पता चलता है कि उन आर्थिक साधनों को किस प्रकार उपयोग में लाया जा सकता है।

यह आर्थिक भूगोल, भूगोल शास्त्र की एक शाखा है और इसका सम्बन्ध भूगोल शास्त्र की अन्य सभी शाखाओं से है। इनके अतिरिक्त आर्थिक भूगोल को अर्थशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, प्राणितत्व शास्त्र आदि से भी काफी सहायता लेनी पड़ती है।

Edaphic (**भूमिज**) भूमि या मिट्टी सम्बन्धी बातों को भूमिज कहते हैं। किसी प्रदेश की भूमिज शक्ति व प्रकार निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहता है—(१) जिस चट्टान के टूटने से वह मिट्टी बनी है, (२) जलवायु और (३) उस चट्टान पर होने वाली वनस्पति। भूमि की उर्वराशक्ति उसमें उपस्थित नमकों पर निर्भर रहती है। इसलिये २ भूमिज समस्यायें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—(१) भूमिका कटाव और (२) भूमि में नमकों का कम होना। (देखिये Soil)

Eddies (**भँवर**) जब किसी तरल या द्रव्य पदार्थ की तीव्र धारा किसी तंग स्थान में प्रवेश करती है तो वह तरल या द्रव पदार्थ गोल चक्कर में जोर-जोर घूमने लगता है। इन गोल चक्करों को भँवर कहते हैं। ये वायुभँवर स्थानीय ताप के कारण उत्पन्न हो जाते हैं और प्रातःकाल की अपेक्षा तीसरे पहर तथा जाड़े के मौसम की अपेक्षा गर्मी में इनकी बहुतायत रहती है। ये वायुभँवर जलाशयों या वनस्पति से ढकी भूमियों की अपेक्षा बंजर भूमि पर अधिक उठते हैं। ऊँची-नीची या टूटी-फटी भूमि क्षेत्रों की अपेक्षा समतल व चौरस मैदानों में वायुभँवर अक्सर आते रहते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थानीय दशाओं के अनुरूप ही इन वायुभँवर की अवधि, तीव्रता व ऊँचाई भी अलग-अलग होती है। वायु में एक इसी प्रकार के भँवर चक्रवात व विरुद्ध चक्रवात कहलाते हैं। (देखिये Cyclone और Anticyclone) तंग समुद्रों में प्रवेश करती हुई ज्वार धारा बड़ी वेगपूर्ण हो जाती है और यदि यह तंग समुद्र सीधा न हुआ तो अति भयानक भँवर उत्पन्न हो जाते हैं। यदि छोटे-छोटे जहाज इस भँवर में पड़ जाते हैं तो वे अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं। नदियों में भी अक्सर भँवर पाये जाते हैं और जहाँ भँवर होते हैं वहाँ तली में गड्ढे बन जाते हैं।

Effusive Vulcanism (**शान्त उद्गार**) ज्वालामुखी से दो प्रकार से तरल पदार्थ आदि निकलता है। जब ज्वालामुखी पर्वत के कमजोर स्थलों पर पिघली हुई चट्टानों का लावा जोर मारता है तो दरारें फट जाती हैं और बड़ी शान्ति के साथ लावा उबल-उबलकर बाहर निकल कर फैलता जाता है। इसे शान्त उद्गार कहते हैं। शान्त उद्गारों में लावा धीरे-धीरे और शान्तिपूर्वक निकलता है। भारत का दक्षिणी पठारी भाग और संयुक्त राष्ट्र अमरीका की स्नेक नदी घाटी इसी प्रकार के शान्त उद्गारों के फलस्वरूप

लावा से ढक गये हैं। हवाई द्वीप समूह में आजकल भी शान्त उद्गार ही आते हैं। शान्त उद्गार से निकलने वाले पदार्थों में गैस व कंकड़-पत्थर का अंश बहुत ही कम रहता है। इसमें जो लावा बाहर निकलता है वह काले गहरे रंग का होता है और रंग में वैसा ही होता है जैसे कि ठंढी पड़ी हुई चट्टान। वजन में यह भारी होता है और अपेक्षाकृत कम तापक्रम पर ही पिघल जाता है। यह विस्फोटक उद्गार के लावा की अपेक्षा तरल होता है और बाहर निकलने पर जल्दी-जल्दी या तेजी से इधर-उधर फैलता है।

Elevation (**उत्क्षेप**) (१) भूपटल के किसी भाग के अपने आस-पास की भूमि की अपेक्षा ऊँचे उठ जाने को उत्क्षेप कहते हैं। संसार के कुछ भाग जो किसी समय समुद्र के किनारे थे, धीरे-धीरे उठने के कारण समुद्र के धरातल से ऊँचे होकर शुष्क प्रदेश बन गये हैं। इसका आभास हमें इस प्रकार मिलता है कि बहुत से देशों के भीतरी भाग में जो समुद्र से दूर है, सीप, घोंघे आदि समुद्र के धरातल से ऊँचे प्रदेशों में पाये जाते हैं। साथ-साथ उत्क्षेप से बने तट प्रदेशों की तट रेखा बिलकुल सपाट होती है और प्राय: जल की गहराई कम होती है। उत्क्षेप से जो शिलाखंड बन जाते हैं वे तीव्र ढाल के नहीं होते हैं और उनका विस्तार भी बहुत अधिक नहीं होता। संसार के प्रमुख परतदार पर्वत इसी प्रकार के उत्क्षेप से बने हैं और आज भी हिमालय पर्वत प्रदेश में मछलियों के अवशेष मिलते हैं।

उत्क्षेप से महाद्वीप या पठार बनते हैं और पठार वाले प्रदेशों में दो दरारों के बीच का भाग ऊपर उठ जाने से गुम्बजाकार पर्वत बन जाते हैं। इस प्रकार के उत्क्षेप से चट्टानों की परतों की व्यवस्था में कोई फरक नहीं आता। वे समानान्तर ही बनी रहती हैं। (२) किसी वस्तु की समुद्रतल से ऊँचाई या कोणिक उच्चता को इसी पारिभाषिक शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं। क्षितिज से किसी ग्रह, नक्षत्र या तारे की ऊँचाई को उसका उत्क्षेप कहते हैं।

Elastic Reround Rheory (**लोच के कारण दुबारा चलने का सिद्धान्त**) इस सिद्धान्त का आधार अपने जीवन का एक बड़ा ही साधारण सा अनुभव है। जब हम जमीन पर किसी वस्तु को जोर से पटकते हैं तो वह सीधी जा कर नहीं गिर पड़ती बल्कि एक बार जमीन से टक्कर खाने के बाद फिर उछलती है। उस वस्तु की उछलने की ऊँचाई उसकी लोच व ऊपर से फेंकने की शक्ति पर निर्भर रहती है। जो वस्तु जितनी जोर से फेंकी जायेगी और वह जितनी अधिक लोचदार होगी वह उतनी ही अधिक बार और अधिक ऊँचाई तक उछलेगी। यही बात भूपटल के विषय में भी सच है। भूपटल पर जब किसी स्थान पर ऊपरी चट्टानों व मिट्टी आदि का भार बहुत अधिक हो जाता है तो वह नीचे की ओर दबाव डालने लगता है। फलत: कहीं दरार या कमजोर स्थल पाकर यह सम्पूर्ण राशि नीचे की ओर धड़ाके के साथ धक्का देती हुई प्रवेश करती है। यदि धरातल के नीचे की चट्टानें कमजोर हैं तो यह ऊपरी राशि भूपटल की मुलायम चट्टानों को तोड़ती हुई अन्दर चली जाती है। ऊपर के धड़ाके और धक्के से नीचे की ओर दबाई या तोड़ी हुई ये चट्टानें अपनी लोच के कारण अपनी पूर्व स्थिति पर पहुँचने के लिये झटका देती हैं। इस धक्के व दबाव तथा झटके के साथ ऊपर की तरफ उछलने के कारण पृथ्वी काँपने लगती है और भूकम्प आ जाता है। इसका प्रमाण यह है कि प्रत्येक भूकम्प से पहिले भूपटल के अन्दर एक भीषण गड़गड़ाहट उत्पन्न होती है और यद्यपि इस गड़गड़ाहट की तीव्रता से बाद में आने वाले भूकम्प से कोई भी सम्बन्ध नहीं, परन्तु फिर भी यह गड़गड़ाहट चट्टानों के उछलने व दबाये जाने की क्रिया की द्योतक है। दूसरे यह कि भूकम्प आने पर पृथ्वी पर लहरें उठने लगती हैं और तीन प्रकार की लहरों—समानान्तर, लम्बाकार और सतहवाली—के कारण ही भूकम्प आने पर प्राय: थोड़ी देर का

अन्तर देकर पृथ्वी तीन बार काँपती है। ये लहरें और यह कम्पन अन्दर की लोचदार चट्टानों के दुबारा उछलने का प्रतीक है।

Electrical Phenomena (**विद्युत रूप**) वायुमण्डल में विभिन्न गैसों के सम्मिश्रण के कारण तथा जलवाष्प और धूल के कणों की उपस्थिति के फलस्वरूप कई प्रकार के विद्युत रूप प्रकट हो जाते हैं जो वर्षाकालीन ऋतु से विशेषतया सम्बन्धित हैं। बादलों की कड़क, बिजली की चमक और कड़क वाला तूफान विद्युत रूप के तीन प्रकार हैं।

Emigration (**प्रवास**) जब मनुष्य अपने जन्म के स्थान या देश को छोड़कर दूसरे स्थान या देश में जा बसता है तो उसकी इस क्रिया को प्रवास कहते हैं और वह मनुष्य प्रवासी कहलाता है। वर्त्तमान युग में जनसंख्या के वितरण व विन्यास में प्रवास का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रायः प्रत्येक देश में लोग गाँवों को छोड़कर शहरों व औद्योगिक क्षेत्रों में जा बसते हैं। इसी प्रकार अधिक घने बसे देशों से कम बसे देशों में लोग प्रवास किया करते हैं। अस्तु, प्रवास दो प्रकार का होता है—(१) राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय। राष्ट्रीय प्रवास में लोग देश के एक भाग को छोड़ कर दूसरे भाग में जा बसते हैं। इसका प्राथमिक रूप तो गाँवों को छोड़कर उद्योग केन्द्रों या नगरों में प्रवास करना है और इसका अन्तिम रूप वह है कि लोग अपने जन्म के राज्य या प्रान्त को छोड़कर उसी देश के अन्य भागों में जाकर बस जायें। भारत में बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और मद्रास से प्रति वर्ष हजारों आदमी आसाम के चाय के बगीचों, बम्बई की मिलों तथा पश्चिमी बंगाल और मध्य प्रदेश के विभिन्न व्यवसाओं की लालच में वहाँ चले जाते हैं। परन्तु इस प्रकार का प्रवास अस्थायी होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास अधिक महत्वपूर्ण है और अधिक घने बसे देशों के लोग कम बसे देशों में जाकर बसना पसन्द करते हैं। परन्तु यह प्रवास उनकी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं रहता। इसमें देखने की बात यह होती है कि कम से कम भागों की सरकार व जनता उनका बाहर से आकर बसना पसन्द करती है या नहीं। साथ-साथ देखने की बात यह भी है कि उन प्रदेशों में बसने की सभी सुविधायें हैं या नहीं। आजकल कम बसे भागों की सरकारों ने प्रवास पर नियन्त्रण लगा दिया है और जहाँ प्रवासी जनता है वहाँ उनका जीवन असुविधाजनक बनाया जा रहा है।

अतएव प्रवास निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहता है—(१) सम व सुविधाजनक जलवायु, (२) जीविकोपार्जन के साधन और जनसंख्या का घनत्व और (३) भिन्न राष्ट्रों का इस समस्या के प्रति दृष्टिकोण।

Enclave (**विदेशी अधिकार**) जब किसी देश के क्षेत्र के अन्दर कुछ ऐसे हिस्से स्थित हों जो विदेशियों के पास हों तो उन हिस्सों को विदेशी अधिकार कहते हैं। भारत में गोआ, डामन, ड्यू इसी प्रकार के क्षेत्र हैं जो पुर्त्तगाली अधिकार में हैं। वर्त्तमान युग में इन विदेशी अधिकारों को विभिन्न प्रदेशों की राष्ट्रीय भावना से टक्कर लेनी पड़ती है और अब के जमाने में उनकी स्थिति डावाँडोल हो गई है। कभी-कभी तो इन विदेशी अधिकारों के कारण मुफ्त का झगड़ा उत्पन्न हो जाता है और ये अधिकार अन्त्तर्राट्रीय अशान्ति के कारण बन जाते हैं।

Entrenched Meander (**पुनः गहरे नदी घुमाव**) नदी की जलधारा मैदान में पहुँचने पर धीमी हो जाती है और उसका अधिक समय तक सीधा रहना कठिन हो जाता है। अतएव मध्य भाग में नदी अपनी तलैटी में इधर-उधर हटती रहती है। मार्ग में अनियमित निक्षेप के कारण नदी प्रवाह में घुमाव बन जाते हैं। इन घुमावों को काट-छाँट कर नदी की

धारा बराबर चौड़ा करती रहती है और एक समय वह आता है कि इन घुमावों में न तो काट-छाँट ही होता है और न आवरण-क्षय ही। फलतः ये बहुत कुछ स्थायी-से हो जाते हैं और निक्षेप होते रहने से इनकी तलैटी धीरे-धीरे कम गहरी होती जाती है। ऐसी दशा में यदि किसी कारणवश नदी-प्रवाह क्षेत्र का तल उभार को उठ जाय तो काट-छाँट और आवरण-क्षय की क्रियायें पुनः प्रारम्भ हो जाती हैं और ये उथले घुमाव फिर से गहरे होने लगते हैं। इस प्रकार के घुमाव को पुनः गहरे नदी घुमाव कहते हैं।

Entrepot (**पुनः निर्यात केन्द्र**) वह स्थान या प्रदेश जो विभिन्न विदेशी राष्ट्रों के बीच मध्यस्थ केन्द्र का काम करता है, उसे पुनः निर्यात केन्द्र कहते हैं। ऐसे क्षेत्रों में बाहर से माल मँगवा लिया जाता है परन्तु उस प्रदेश-विशेष की जनता के उपभोग के लिए नहीं बल्कि दूसरे समीपस्थ देशों को पुनः निर्यात के लिए। इस प्रकार के व्यापार को जहाँ आयात की हुई वस्तुयें फिर से निर्यात कर दी जाती है, पुनः निर्यात व्यापार कहते हैं। पुनः निर्यात व्यापार के दृष्टिकोण से हाँगकांग, सिंगापुर और पोर्ट सईद के बन्दरगाह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति भी पुनः निर्यात व्यापार के लिए आदर्श है। पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य में स्थित भारत अपने आस-पास के प्रदेशों से यातायात के विभिन्न साधनों द्वारा सम्बद्ध है। इसीलिये यहाँ यूरोप व अमरीका से बहुत सा माल केवल इसलिए मँगाया जाता है कि उसे उसी प्रकार केनिया, पूर्वी अफ्रीका, जापान, चीन और मलाया को भेज दिया जाये।

पुनः निर्यात केन्द्र बनने के लिये निम्नलिखित बातें अवश्य होनी चाहिये—(१) केन्द्रीय स्थिति, (२) प्राकृतिक बन्दरगाह, (३) यातायात की सुविधायें, (४) माल भरने के गोदामों का प्रबन्ध और (५) आस-पास में पिछड़े हुये देशों या महाद्वीपीय प्रदेशों की समीप स्थिति।

Environment (**परिस्थिति**) मनुष्य जिस स्थान में निवास करता है वहाँ के अनुसार ही उसे अपना जीवन बनाना पड़ता है। "जातियाँ व मनुष्य अपने निवास स्थान की उपज हैं।" किसी प्रदेश के लोगों का रहन-सहन, उद्यम व आर्थिक दशा संयोग या दैव योग की बात नहीं बल्कि उसकी आस-पास की दशा की उपज है। मनुष्य की आस-पास की दशा को परिस्थिति कहते हैं। मनुष्य पर प्रभाव डालने वाली परिस्थिति दो प्रकार की होती है—**(१) प्राकृतिक या भौगोलिक परिस्थिति** जिसके अन्तर्गत किसी विशेष प्रदेश की स्थिति, जलवायु, तटरेखा, भूप्रकृति, प्राकृतिक साधन और परिवाह का अध्ययन किया जाता है। किसी देश की पैदावार वहाँ की फसलें, उद्योगधन्धे, शक्ति के साधन, मजदूरों की कार्यक्षमता तथा वाणिज्य-व्यापार की सुविधा आदि सभी बातें देश की भौगोलिक परिस्थिति पर ही अवलम्बित रहती है। **(२) सामाजिक अथवा मानवीय परिस्थिति** का भी मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों व उसके वाणिज्य-व्यापार पर बड़ा असर पड़ता है। सामाजिक परिस्थिति के अन्तर्गत जाति, धर्म, जनसंख्या का घनत्व और शासन व्यवस्था के तथ्य सम्मिलित हैं।

इन परिस्थितियों से मनुष्य को अपनी क्रियाओं व प्रयत्नों में कभी तो सहायता मिलती है और कभी बाधा उपस्थित हो जाती है। यही कारण है कि सहायक परिस्थितियों के मिल जाने से कुछ प्रदेशों के लोग सभ्यता व आर्थिक उन्नति के दृष्टिकोण से बहुत आगे बढ़ गये हैं और उनकी अपेक्षा असुविधाजनक परिस्थिति वाले देश पिछड़े हुये रह गये हैं। अतएव मनुष्य का अपनी परिस्थिति के साथ दो प्रकार का संबंध होता है—अनुकूल और प्रतिकूल। दूसरे शब्दों में, इस सम्बन्ध को सहायक व विरोधी कहकर व्यक्त कर सकते हैं। मनुष्य और उसकी परिस्थिति के बीच सम्बन्ध की इस भिन्नता के कारण ही कुछ देशों के लोग सक्रिय,

समृद्ध, मेहनती व व्यवसायी हैं और कुछ के आलसी, सुस्त तथा पिछड़े हुये। कहीं उद्योग-धन्धों की प्रधानता है तो कहीं कृषि ही लोगों का एकमात्र सहारा है। परन्तु एक ही प्रकार की परिस्थिति से समान रहन-सहन या आर्थिक दशा का प्रादुर्भाव नहीं होता। इसका कारण यह है कि परिस्थिति का उपभोग करना बहुत कुछ मनुष्य के स्वभाव पर भी निर्भर रहता है।

परिस्थिति तो केवल कुछ साधनों को हमारे सामने उपस्थित कर देती है। उन साधनों का लाभप्रद ढंग से उपभोग करना मनुष्य की बुद्धि, ज्ञान और संस्कार पर निर्भर रहता है। और मनुष्य के अन्दर इन गुणों का आविर्भाव या अभाव का सम्बन्ध उस प्रदेश-विशेष की सामाजिक व्यवस्था पर अवलम्बित है जहाँ वे रहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य और उसकी परिस्थिति एक दूसरे से इतना ओत-प्रोत है कि दोनों में से एक को भी अकेले अध्ययन नहीं किया जा सकता।

Epeirogenesis (**उत्क्षेप निर्माण**) पृथ्वी के अन्दर कुछ शक्तियाँ काम करती रहती हैं जो भूपटल पर लम्बरूप आघात करके कुछ भागों को ऊपर उठा देती हैं और इसी के फलस्वरूप कुछ भाग नीचे को धँस जाते हैं। इनमें भूपटल पर स्थित चट्टानों की समानान्तर परत व्यवस्था में तनिक भी अन्तर नहीं आने पाता है। इस उत्क्षेप निर्माण से महाद्वीप व पठार बन जाते हैं। इनके द्वारा केवल भूपटल के तल पर महान् परिवर्तन हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप महाद्वीपों के धरातल केवल जल से ऊपर निकल आकर शुष्क भूखंड बन गये हैं या जल के नीचे धँस जाने से उनकी तटरेखा सपाट हो गई है। इस प्रकार के निर्माण में परतों में न तो मोड़ ही पड़ते हैं और न घरेरेदार पर्वत व घाटियों की ही सृष्टि हो पाती है। (देखिये Elevation)

Epicentre (**भूकम्प केन्द्र**) भूकम्प की लहरें भूपटल के नीचे किसी बहुत गहरे स्थान से शुरू होती हैं और धरातल पर समानान्तर व लम्बाकार रूप से आती हैं। पृथ्वी के भीतर भूकम्प के प्रारम्भ बिन्दु से ठीक ऊपर धरातल पर ये लहरें सबसे प्रथम आकर टकराती हैं और तब वहाँ से इधर-उधर फैलती हैं। धरातल के इन बिन्दुओं को भूकम्प केन्द्र कहते हैं। यहाँ पर भूकम्प का अनुभव प्रथम तो जरूर होता है परन्तु उसका रूप प्रचण्ड नहीं होता क्योंकि यहाँ पर भूकम्प द्वारा पृथ्वी केवल ऊपर-नीचे होती रहती है। इस भूकम्प केन्द्र से हम जितना ही दूर जाते हैं उतना ही भूकम्प प्रचण्ड होता जाता है और भूकम्प की लहरें थोड़े-थोड़े अन्तर पर आती प्रतीत होती हैं। परन्तु भूकम्प केन्द्र पर इस अन्तर का भास बिल्कुल ही नहीं होता। यदि भिन्न-भिन्न स्थानों पर भूकम्प होने का समय निरीक्षण किया जावे तो उस आँकडे के आधार पर भूकम्प केन्द्र की स्थिति निर्धारित की जा सकती है। मुड़े हुये घरेरेदार या परतदार प्रदेशों में भूकम्पकेन्द्र साधारणतया समानान्तर दरारों पर ही स्थित होता है।

Epicontinental Sea (**महाद्वीपीय समुद्र**) महाद्वीपीय सागर प्रदेशों का उथला समुद्र महाद्वीपीय समुद्र कहलाता है। (देखिये Continental Shelf)

Epiphyte (**हवाई पौधे**) वे पौधे जो दूसरे वृक्षों पर तो जरूर उगते हैं परन्तु भोजन के लिए उन बड़े वृक्षों पर आश्रित नही रहते बल्कि अन्य वृक्षों की भाँति अपना आवश्यक भोजन वायुमण्डल से प्राप्त करते हैं उन्हें हवाई पौधे कहते हैं। इस प्रकार के हवाई पौधे भूमध्यरेखीय वन प्रदेशों में विशेष रूप से पाये जाते हैं और उनके अन्दर लता जैसे मुलायम तने के पौधों की बहुतायत है।

Equal Area Projection (**सम क्षेत्रफल अंकन**) जिस अंकन में प्रत्येक दिशा

का मानदंड यथार्थ होता है, उस पर खींचे गये मानचित्रों में पृथ्वी के विभिन्न भागों का क्षेत्रफल वास्तविक क्षेत्रफल के समान ही होता है। इसके अंकन को समक्षेत्रफल अंकन कहते हैं। इस प्रकार के अंकन में दो अक्षांश और दो देशांतर रेखाओं के बीच के प्रदेश का बहुधा क्षेत्रफल यथार्थ धरातल के क्षेत्रफल के अनुपात में बिल्कुल ठीक होता है। परन्तु बहुधा क्षेत्रफल तो ठीक रहता है परन्तु प्रदेशों की आकृति या आकार बिगड़ जाता है। बानीज, मॉलवीड्स और सानसन फ्लानस्टीड अंकन इसी प्रकार के हैं।

Equator (भूमध्य रेखा) भूमध्य रेखा वह काल्पनिक रेखा है जो उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों के बिल्कुल बीच में पृथ्वी को पूर्व से पश्चिम तक घेरे हुये है। यह रेखा पृथ्वी के केन्द्र से गुजरती है और पृथ्वी के अक्ष के साथ समकोण बनाती है। चूँकि इसका केन्द्र और पृथ्वी का केन्द्र एक ही है इसलिये इसका आकार एक विशाल वृत्त के समान है। भूमध्यरेखा पृथ्वी की सबसे बड़ी परिधि बनाती है और भूमध्य रेखा पर पृथ्वी की परिधि का विस्तार २४,९०२ मील है। भूमध्य रेखा से ही अक्षांश रेखाओं को गिना जाता है और इस दृष्टिकोण से भूमध्यरेखा को शून्य या जीरो अक्षांश रेखा मान लिया गया है।

भूमध्यरेखा पृथ्वी को दो बराबर भागों में बाँटती है। इसके उत्तर का भाग उत्तरी गोलार्द्ध कहलाता है और इसके दक्षिण का भाग दक्षिणी गोलार्द्ध। इस रेखा पर सूर्य की किरणें साल भर बराबर सीधी पड़ती रहती हैं, इसलिये इस रेखा पर स्थित प्रदेशों में साल भर खूब गर्मी पड़ती है और साथ-साथ खूब वर्षा भी होती है। (देखिये Equatorial Forest)

Equatorial Forest (भूमध्य रेखीय वनप्रदेश) भूमध्य रेखा के १०° उत्तरी अक्षांश और १०° दक्षिणी अक्षांश के बीच साल भर बराबर खूब गर्मी पड़ती है। वार्षिक तापक्रम का औसत ७८° से ८०° तक रहता है। इन प्रदेशों में वार्षिक व दैनिक तापांश विस्तार भी बहुत अधिक नहीं होता। गर्मी के साथ वर्षा भी साल भर बराबर होती रहती है और प्रति दिन तीसरे पहर बादलों की कड़क के साथ घनघोर वर्षा होती है। वस्तुतः इन प्रदेशों में शुष्क मौसम तो होता ही नहीं। अधिक वर्षा व अधिक गर्मी के कारण यहाँ का मौसम गर्म व तर हो जाता है। वार्षिक वर्षा का औसत ८० इंच होता है।

अत्यधिक गर्मी व वर्षा के कारण इन प्रदेशों की वनस्पति भी खूब घनी होती है। यहाँ पर पेड़-पौधे बहुत जल्दी उग आते हैं। अतः इन प्रदेशों में बड़े सघन बन पाये जाते हैं जिनके अन्दर धँसना नामुमकिन होता है। ये वन इतने घने होते हैं कि हाथी जैसा शक्तिशाली जीव भी इनमें प्राचीन पददलित मार्गों पर ही गुजरता है। इनमें हवा व रोशनी की भी कमी रहती है। इसलिये इसमें २०० से ३०० फुट तक लम्बे वृक्ष मिलते हैं। इनके शिखर छतरी-नुमा होते हैं और सूर्य का प्रकाश भी छन कर नीचे नहीं पहुँच पाता। अनेक प्रकार की लतायें व बेलें उगकर वृक्षों से लिपट जाती हैं और उनसे विभिन्न वृक्षों के बीच एक घना जाल-सा बन जाता है। चूँकि भूमि तक सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पातीं, इसलिये इन वन प्रदेशों की भूमि दलदली रहती है जिनमें वृक्ष आदि गिरकर सड़ा करते हैं और उस सड़ती हुई वनस्पति पर अन्य बहुत से पौधे उग आते हैं। भूमि पर इस प्रकार सड़ी-गली वनस्पति की एक विशाल राशि बन जाती है।

इन वन प्रदेशों को सेल्वाज भी कहते हैं और इनमें पाये जाने वाले वृक्ष सदाबहार होते ह। उनकी लकड़ी कठोर होती है और महोगनी, आबनूस, गटापार्चा, बाँस, बेंत, रबड़, ताड़, सिन्कोना, आइवरी और रोजवुड जैसी बहुमूल्य लकड़ी के वृक्ष इन प्रदेशों में पाये जाते हैं। परन्तु इन वन प्रदेशों की दुर्गमता के कारण इनमें पायी जाने वाली लकड़ी का कोई विशेष

उपयोग नहीं हो पाया है। लकड़ी प्राप्त करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि एक ही प्रकार के वृक्ष दूर-दूर तक छितरे हुए मिलते हैं। एक ही स्थान पर कई प्रकार के वृक्ष मिले-जुले उगने के कारण उनका उपयोग आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं होता।

इन प्रदेशों में पेड़ की डालों पर रहने वाले पशु-पक्षी बहुत मिलते हैं। बन्दर तथा पेड़ पर फुदकने वाले मेढक यहाँ के मुख्य पशु हैं। इनके अलावा बहुत प्रकार के पक्षी तथा जहरीले कीड़े-मकोड़े भी पाये जाते हैं। खुले जंगलों में हाथी भी पाया जाता है। भूमध्यरेखीय वन प्रदेशों में अमेजन का बेसिन, कान्गो नदी की घाटी और इन्डोनेशिया के प्रदेश सम्मिलित हैं परन्तु अमेजन का बेसिन सबसे अधिक घना वन प्रदेश है। एशिया व अफ्रीका के जंगल इसकी अपेक्षा काफी खुले हुए हैं। यहाँ के लोग छोटे कद के होते हैं और दिमाग के सुस्त होते हैं। इसीलिए ये लोग आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत पिछड़े हुये हैं। इनका पेशा शिकार करना है और ये लोग प्रायः मचान पर मकान बना कर रहते हैं।

Equinox (समरात्रि) साल में दो दिन ग्रहपथ पर पृथ्वी की स्थिति इस प्रकार होती है कि सूर्य की किरणें सीधी भूमध्यरेखा पर पड़ती हैं और इसके फलस्वरूप उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध में एक ही प्रकार के मौसम होते हैं। इस स्थिति में पृथ्वी के प्रकाशयुक्त अर्द्धभाग में दोनों ध्रुव ही सम्मिलित रहते हैं और पृथ्वी की हरएक अन्य जगह में दिन-रात बराबर होती है। दिन और रात प्रत्येक १२ घंटे के होते हैं। हर जगह सूर्य बिल्कुल ठीक पूर्व से निकलता है और हर जगह ठीक पश्चिम में छिप जाता है।

यह स्थिति समरात्रि कहलाती है और प्रत्येक वर्ष दो समरात्रियाँ पड़ती हैं। एक तो २३ सितम्बर को और दूसरी २१ मार्च को। २३ सितम्बर वाली स्थिति में उत्तरी गोलार्द्ध में पतझड़ का मौसम रहता है और दक्षिणी गोलार्द्ध में वसन्त ऋतु रहती है। २१ मार्च वाली स्थिति में उत्तरी गोलार्द्ध में वसन्त ऋतु और दक्षिणी गोलार्द्ध में शरद ऋतु रहती है। इसी लिये २१ मार्च वाली समरात्रि को वसन्त समरात्रि और २३ सितम्बर वाली समरात्रि को पतझड़ समरात्रि कहते हैं।

Equipluve (ईक्वीप्लूव) बराबर जलवृष्टि के औसत वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा ईक्वीप्लूव कहलाती है। इन रेखाओं को चित्रित करनेवाले मानचित्र से किसी विशेष महीने या काल में जलवृष्टि की मात्रा का पता चलता है।

Erg (अर्ग) बालू से भरी घाटी या मैदानों को अर्ग कहते हैं। इन अर्ग प्रदेशों में भूमि तो निम्न होती है और उस पर बालू के टीले फैले रहते हैं। संसार के मरुस्थलीय प्रदेशों में से बहुत कम मरुस्थल ऐसे हैं जो घाटी या मैदानों में स्थित हों। सिन्ध और लीबिया के रेगिस्तान इसी प्रकार के अर्ग प्रदेशों में स्थित हैं।

Erosion (आवरण क्षय) विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों द्वारा भूपटल की काट-छाँट व घिसावट को आवरण क्षय कहते हैं। भूतल के अनावृत्तीकरण में आवरण क्षय का विशेष महत्त्व है। जल, हिम और वायु अपनी प्रवाह शक्ति व इधर-उधर से टूट-फूट के गिरे हुए कंकड़ों-पत्थरों की सहायता से धरातल को काटा-छाँटा करते हैं और आवरण क्षय का कार्य इन्हीं तीन शक्तियों द्वारा होता रहता है।

जल द्वारा आवरण क्षय—जल की शक्ति का प्रभाव निम्नलिखित तीन रूपों में होता है : नदी-नालों द्वारा, भूगर्भवती जल द्वारा और समुद्र के द्वारा। वर्षा के बाद जल का कुछ भाग तो पृथ्वी म सूख जाता है परन्तु बहुत अधिक भाग छोटी-छोटी धाराओं में बहने लगता

हैं। ये छोटी-छोटी धाराएँ अपनी तली को काट कर अपने लिए नालियाँ बना लेती हैं। धीरे-धीरे इन पतली व संकरी नालियों की चौडाई बढ़ती जाती है। साथ में बहकर आये हुए कंकड़-पत्थर इस क्षति में विशेष सहायक होते हैं। चट्टानों के ये टुकडे आपस में टकराते हैं और धीरे-धीरे गोल पत्थर या बालू में परिणत हो जाते हैं। नदी के जल में कंकड़-पत्थरों की यह राशि दो प्रकार से आवरण क्षय करती है—एक तो काट-छाँट करके और दूसरे खनिज नमकों को घला करके। नदी द्वारा काट-छाँट की यह क्रिया उन प्रदेशों में अधिक होती है जहाँ नदी में जल राशि अधिक तथा प्रवाह तीव्र हो। काट-छाँट के द्वारा नदी अपनी तलैटी को गहरा तथा अपनी घाटी को चौड़ा करती जाती है। जहाँ चट्टानें कडी होती हैं वहाँ नदी की घाटी तंग व सँकरी होती है और उसमें जल प्रपात पाये जाते हैं।

भूगर्भवती जल द्वारा आवरणक्षय का कार्य मुलायम घुलनेवाली चट्टानों के प्रदेश में विशेष तीव्र होता है। यह जल भूमि के नीचे की चट्टानों को मुलायम व खोखला कर देता है और ऊपर की चट्टानें धँस जाती हैं। भूमि की निचली सतहों में इकट्ठा जल के सम्पर्क में आने से चूने व खडिया मिट्टी की चट्टानें घल-घुलकर बह जाती हैं जिससे गुफाएँ तथा धरातल के विचित्र आकार व स्वरूप बन जाते हैं।

समुद्री जल द्वारा आवरण क्षय का कार्य व प्रभाव समुद्री तटों तक ही सीमित रहता है। ज्वार-भाटा व जलधाराएँ तो निक्षेप का काम करती हैं। इसलिए काट-छाँट का काम समुद्री लहरों द्वारा होता है। गहरे समुद्र से जब लहरें उथले तटीय प्रदेश की ओर आती हैं तो तटीय भूखंड से जोर से टकराती हैं। इन लहरों में नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी आदि के कण मिले रहते हैं जो घिसावट द्वारा काट-छाँट के कार्य में सहायता पहुँचाते हैं। लहरों द्वारा आवरण क्षय के परिणाम स्वरूप सागर का क्षेत्र बढ़ता जाता है। बलुही भूमि वाले तटों पर तो इसका प्रभाव बहुत तेज रफ्तार से होता है। कड़ी चट्टानों पर क्षयकार्य होता ही है। उनके बीच मुलायम भागों को घिसकर दरारें, गुम्बजनुमा गुफाएँ, छेद व खाड़ियाँ बन जाते हैं। वास्तव में समुद्री लहरों द्वारा आवरण क्षय ४ प्रकार का होता है—काट-छाँट, खनिज नमकों का घुलना या अन्य रासायनिक प्रतिक्रिया जल के दबाव से और चट्टानों की दरारों में वायु के दबने व फैलने से।

वर्षा का जल भी काफी आवरणक्षय करता है। कहीं तो ऊपर की मिट्टी की सतह की सतह बहा ले जाता है और कहीं भूमि को काट-छाँट कर उसमें गड्ढे व नालियाँ बना देता है।

हिम द्वारा आवरण क्षय—शीत प्रदेशों तथा पहाड़ी उच्च प्रदेशों में हिम द्वारा आवरण क्षय का कार्य होता है। हिम नदी जब किसी प्रदेश से होकर बहती है तो इधर-उधर से पाले आदि के कारण टूटे-फूटे कंकड़-पत्थर इस पर आकर गिरते रहते हैं और किनारे व मध्य में प्रवाह के साथ-साथ घसिटते रहते हैं। हिमनदी को इन कंकडों-पत्थरों से आवरणक्षय करने में बड़ी सहायता मिलती है। ये कंकड़-पत्थर तलैटी से रगड़ खाते रहने तथा आपस में टकराते रहने के कारण घिसघिसाकर चिकने, चौरस व खरोंचदार बन जाते हैं। इनके क्षय कार्य से हिमनदी के पेटे में गड्ढे, खरोंच आदि बन जाते हैं। अतः हिमनदी द्वारा आवरण क्षय कार्य के दो रूप व प्रकार होते हैं—तलैटी से रोड़े आदि नोचकर गड्ढे बना देना और घिस-घिसाकर खरोंच डाल देना। फलतः हिमनदी का पेटा कट-छँटकर सपाट, चिकना व चौरस हो जाता है। चूँकि काट-छाँट का कार्य पार्श्वों में कम होता है इसलिए हिमनदी की घाटियों का आकार अँग्रेजी के U अक्षर के समान हो जाता है। वास्तव में हिमनदी आवरण क्षय द्वारा ढाल की तीव्रता को कम कर देती है और चट्टानों पर घिरौंदे से बना देती है। इस दृष्टिकोण से एक विशेष बात ध्यान में रखने की यह है कि चलता हुआ हिम ही आवरण क्षय

करता है। हिम द्वारा आवरणक्षय का नियम यह है कि यदि हिम नदी का ढाल भिन्न हुआ, जैसा कि सामान्यत: होता ही है तो तलैटी की काट-छाँट हिम प्रवाह में दरारों से ऊपर और नीचे की ओर सब से अधिक होगी। आवरण क्षय के कार्य की तीव्रता हिमनदी के अग्रभाग की ओर कम होती जाती है और अग्रभाग में बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है।

वायु द्वारा आवरण क्षय—शुष्क उजाड़ मरु प्रदेशों में अधिक होता है। वायु द्वारा आवरण क्षय दो प्रकार से होता रहता है। हवा मिट्टी व धूल के कणों को उड़ाकर ले जाती है और इस प्रकार चट्टानें नग्न हो जाती हैं। दूसरे यह कि जब धूल व रेत के कणों से लदी आँधियाँ चलती हैं तो वे स्थल को घिसकर काट देती हैं। और चट्टानों के निचले भाग में यह क्षय तेजी से और अधिक होता है। छतरीनुमा चट्टानें बन जाती हैं।

इन सभी प्रकार की शक्तियों द्वारा आवरण क्षय निम्न लिखित ४ बातों पर निर्भर रहता है—(१) शक्ति विशेष का विस्तार व तीव्रता, (२) चट्टानों का स्वभाव व बनावट, (३) बहाकर या उड़ाकर लाये हुए कंकड़-पत्थर व कणों की राशि की मात्रा व विस्तार और (४) प्रदेश विशेष का ढाल व स्थिति।

Erratic Block (**विदेशीय रोड़ा**) हिम नदी के साथ बहुत से रोड़े बहते या घसिटते चले आते हैं। कभी-कभी स्रोत से बहुत दूर तक ये रोड़े चले आते हैं और हिम नदी के पिघलने पर वहीं पड़े रह जाते हैं। फलत: आस-पास की चट्टानों से ये रोड़े सर्वथा भिन्न होते हैं। इनको विदेशी रोड़ा कहते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के उत्तरी राज्यों और दक्षिणी डकोटा, मेनीसोटा में इस प्रकार के विदेशीय रोड़ों की संख्या इतनी अधिक है कि उनके कारण खेती के धन्धे में बड़ी बाधा होती है।

Eruption (**उद्गार**) ज्वालामुखी द्वारा पृथ्वी के भीतर के ठोस, तरल व द्रव पदार्थ का धरातल के ऊपर फेंका जाना उद्गार कहलाता है। पृथ्वी के भीतर की गैस, जल और पिघली हुई चट्टानों का लावा भूपटल के नीचे घूमा करता है और जहाँ-कहीं भी उसे कमजोर जगह मिल जाती है वहीं से वह फट निकलता है। ये उद्गार कभी बहुत तीव्र होते हैं और कभी धीमे। इनकी तीव्रता के आधार पर इन्हें निम्नलिखित दो प्रकार का कहा जा सकता है—**शान्त उद्गार** जिसमें लावा धीरे-धीरे व शान्तिपूर्वक धरातल पर आता है और मुख छिद्र के इधर-उधर फैल जाता है। **विस्फोटक उद्गार** जिसमें जल, गैस व लावा आदि पदार्थ धड़ाके के साथ निकलते हैं और ज्वालामुखी के मुख को विध्वंस करते हुए दूर-दूर तक फैल जाते हैं। (देखिये Effusive Eruption और Explosive Eruption)

उद्गार से मिश्रित सामग्री के फैलाव व विस्तार के आधार पर इनको निम्नलिखित तीन दशाओं में विभक्त किया जा सकता है—(१) जब भूपटल की पपडी कमजोर थी, उस समय पृथ्वी के भीतर की पिघली हुई चट्टानों का लावा इसको कहीं से भी तोड कर फूट निकलता था और अपनी गर्मी से बहुत बडे भाग तक को गला देता था। (२) जब भूपटल की पपड़ी मोटी व कठोर हो गई तो उद्गार के क्षेत्र सीमित हो गये और वहीं से दरारों या अन्य छिद्रों द्वारा लावा निकल कर इधर-उधर फैल गया और जम गया। भारत का दक्षिणी प्राय-द्वीप और संयुक्त राष्ट्र अमरीका की स्नेक नदी घाटी इसी प्रकार के उद्गार से निकले लावा से ढके हैं। (३) जब ऊपर की यह पपड़ी ठंडी होकर व निक्षेप के दबाव से दब कर और भी अधिक कडी हो गई तो भीतर की सामग्री को आसानी से निकास मिलना बन्द हो गया और कुछ विशेष प्रदेश के केन्द्र से ही उद्गार होते हैं और समान विस्फोट के साथ बाहर आते हैं।

Escarpment (**पर्वत खंड**) किसी प्रदेश में भूपटल की गतियों के फलस्वरूप

चट्टानों में दरारें पड़ जाती हैं और इन दरारों के एक ओर के धरातल ऊपर उठ जाने या दूसरी ओर के धरातल के नीचे बैठ जाने से बहुत तीव्र ढाल हो जाता है। इस प्रकार के बने तीव्र ढालू चट्टान प्रदेशों को पर्वत खंड कहते हैं। पर्वत खंड बहुधा आवरणक्षय से भी उत्पन्न हो जाते हैं। जब किसी प्रदेश की चट्टानें कड़ी हों और साथ-साथ आगे को झुकी हुई हों तो उन पर आवरण क्षय की शक्तियाँ केवल घिसावट द्वारा ही प्रभाव डाल सकती हैं। फल यह होता है कि इस चट्टान प्रदेश का ढाल और भी तीव्र हो जाता है और पर्वत प्रदेश में तीव्र ढाल या चट्टान की दीवार-सी बनी रह जाती है। इसे भी पर्वत खंड कहते हैं।

Esker (एस्कर) हिमनदी के नीचे जल की धारा से बने हुए निक्षेप की लम्बी संकरी श्रेणी को एस्कर कहते हैं। ये एस्कर बालू व कंकड़ के बने होते हैं और एक समय हिमनदी के नीचे प्रवाहित जलधारा की तलैटी थे परन्तु हिम के पिघलने पर बाहर निकल आये हैं। मिट्टी, कंकड़ और बालू की ये श्रेणियाँ साँप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं और इनकी चौड़ाई व ऊँचाई कोई विशेष अधिक नहीं होती। चौड़ाई तो कुछ फीट से अधिक नहीं होती हाँ ऊँचाई कभी-कभी २०-३० फीट तक हो जाती है। परन्तु इनकी पंक्ति टेढ़े-मेढ़े साँप की तरह कई मील तक फैली रहती है। ये एस्कर हिमनदी के किनारों के समीप बनते हैं और बहुधा मध्य व किनारों के मोरेन के बीच में स्थित होते हैं। इनमें परतें ठीक से जमी नहीं होतीं और बालू की मोटी राशि के बीच में कंकड़ तथा घिसे हुये पत्थर पाए जाते हैं। एस्कर उन्हीं क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ हिम के पिघलने पर जलधाराएँ नहीं बनतीं क्योंकि यदि जलधाराएँ बन गइ तो उनका प्रवाह हिम के पिघलने पर इतना तेज होता है कि इन एस्कर की मिट्टी व बालू बहकर तितर-बितर हो जाती है। स्केन्डिनेविया में इनको ओस कहते हैं।

Estuary (इस्चुरी) प्रत्येक नदी जब समुद्र में गिरती है तो अपनी मिट्टी को जो कि वह अपने साथ बहाकर ले जाती है छोड़ देती है। वह मिट्टी मुँहाने के निकट इकट्ठी नहीं रहने पाती क्योंकि समुद्र में जहाँ वह गिरती है ज्वार-भाटों के कारण बड़ी-बड़ी लहरें आती हैं और उन लहरों द्वारा नदी द्वारा लाई हुई मिट्टी समुद्र में बह जाती है। तब नदी का मुहाना चौड़ा हो जाता है। इस चौड़े मुहाने को इस्चुरी कहते हैं।

इस प्रकार इस्चुरी नदी का वह मुहाना है जहाँ ज्वार-भाटे का प्रभाव पड़ता रहता है और जहाँ नदी का ताजा जल और समुद्र का खारा पानी एक-दूसरे से मिलते रहते हैं। यदि भूमि मुलायम चट्टानों की बनी हुई हो तो नदी की धारा व ज्वार-भाटे की काट-छाँट से इसका मुँह कुप्पी के सदृश बन जाता है। परन्तु सामान्यत: यह कुप्पीनुमा मुहाना भूखंड के जलमग्न होने से बन जाता है। इस्चुरी के विषय में सत्य तो यह है कि नदी घाटी तो समुद्री जल से भर जाती है और इस्चुरी का रूप ज्वार-भाटा की लहरों द्वारा ही कायम रह पाता है। इस्चुरी का विशेष गुण यह है कि इसके अन्दर तक जहाज आ-जा सकते हैं। टेम्स, एल्ब और प्लेट नदियों की इस्चुरी पर महत्वपूर्ण बन्दरगाह स्थापित हो गये हैं। भारत में इस्चुरी बनाने वाली नदियाँ नर्बदा व ताप्ती हैं। परन्तु इंगलैंड में टेम्स व दक्षिणी अमरीका में अमेजन की इस्चुरी प्रसिद्ध है।

Esutatic (निमज्जन सम्बन्धी) जब भूपटल पर मिट्टी, कंकड़-पत्थर व चट्टानों के भार के अधिक हो जाने से पृथ्वी असंतुलित हो उठती है तो पृथ्वी के समतल में परिवर्त्तन हो जाता है। इस तल परिवर्त्तन में पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों से भी सहायता मिलती है। फलत: कुछ भाग नीचे धँस जाते हैं और कुछ भाग समुद्रतल से ऊपर उठ कर शुष्क स्थलखंड बन जाते हैं। नीचे धँसने या निमज्जन से संबंधित क्रिया निमज्जन सम्बन्धित क्रिया कहलाती है। निमज्जन सम्बन्धी क्रिया दो प्रकार से होती है—एक मन्द गति और दूसरी

आकस्मिक गति। मन्द गति में तो केवल यह होता है कि ऊपर के भार के कारण शुष्क प्रदेश धीरे-धीरे बैठने या धँसते जाते हैं और एक समय वह आता है जब कि वे पानी से ढँक जाते हैं। स बात का ज्ञान हमें इस प्रकार होता है कि समुद्रतल पर वनों के कुछ शेष भाग अब भी पाये जाते हैं। साथ-साथ नदी घाटियों के डूब जाने से कटी-फटी तट रेखा बन जाती है।

आकस्मिक निमज्जन गति का सम्बन्ध भूकम्प व ज्वालामुखी उद्गार से है। भूकम्प आने और ज्वालामुखी फटने से अवसर देखा जाता है कि द्वीप के द्वीप समुद्र में डूब जाते हैं। इन्डोनेशिया और प्रशान्त महासागर में कई द्वीप इसी प्रकार के ज्वालामुखी उद्गार से हमेशा के लिए जलनिमग्न हो गये। भूकम्प से पृथ्वी तल पर दरारें पड़ जाती हैं और दरारों के ओर का भाग खसक कर नीचे धँस जाता है या बगल में हट जाता है। इससे एकाएक बड़े भीषण परिवर्त्तन हो जाते हैं।

Etang (इटांग) मरुस्थली प्रदेशों में या अर्द्धरेगिस्तानी शुष्क भागों में बालू की टीलों के बीच स्थित उथला जलाशय पाया जाता है। इस उथले जलाशय में वर्षा का ही पानी रहता है और वह भी दिन प्रतिदिन मिट्टी व बालू गिरते रहने से सूखता व जलाशय भरता जाता है। इस प्रकार के स्थान रूप को इटांग कहते हैं और ये फ्रांस के भूमध्यसागरीय तट पर स्थित लान्गडॉक प्रदेश में बहुत मिलते हैं। इसीलिए इनके लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द 'इटांग' भी फ्रांसीसी भाषा का है।

Etesian winds (इटीसियन वायु) गर्मी के मौसम में उत्तरी-पश्चिमी भारत का निम्नभार प्रदेश पश्चिम की ओर भूमध्य सागर तक फैला रहता है। अतएव इस निम्न भार केन्द्र के चारों ओर उत्तर की ओर से तेज हवायें बराबर चला करती हैं। इन हवाओं को इटीसियन वायु या मेलटेमी कहते हैं। इनका प्रभुत्व भूमध्यसागर के पर्वी भाग में बहुत अधिक रहता है। मई के मध्य से लेकर अक्टूबर के मध्य तक हवाएँ नियमित रूप से १० से ३० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से बराबर चलती रहती हैं। कभी-कभी इनकी गति चालीस मील प्रति घण्टे तक हो जाती है। दिन में दक्षिण और पूर्व में स्थित स्थल भाग बहुत गर्म हो जाते हैं, इससे अस्थायी रूप से वायभार अन्तर बढ़ जाता है। फलतः इन हवाओं की गति व प्रचण्डता दिन में काफी बढ़ जाती है परन्तु रात के समय इनकी गति बहुत धीमी पड़ जाती है और ये खतम हो जाती हैं। जब ये हवाएँ स्थल भाग पर हो कर बहती हैं तो अपने साथ काफी धूल उडाकर लाती हैं। यद्यपि इनके बहने के समय काफी गर्मी पड़ती रहती है फिर भी उनकी शुष्कता से दिल वहल जाता है और तबियत ताजी हो जाती है। वास्तव में इन हवाओं की गति इतनी तीव्र होती है और ये इतनी शुष्क होती हैं कि फलों के बगीचों के उत्तरी पार्श्व में साइप्रेस के पेड़ लगा कर फलदार वृक्षों की रक्षा करनी पड़ती है।

Ethnography (जाति विज्ञान) संसार की विभिन्न जातियों के प्रादेशिक वितरण से सम्बन्ध रखने वाली विद्या को जाति विज्ञान कहते हैं।

Ethnology (वर्ण विज्ञान) मनुष्यों के जीवन व रहन-सहन के स्तर के विषय में उनके वर्णों व जातियों के अनुसार अध्ययन को वर्ण विज्ञान कहते हैं।

Eustatic Movement (समुद्रतल परिवर्त्तन गति) कभी-कभी समुद्र तल में विस्तृत रूप से परिवर्तन होने लगता है। कभी तो समुद्रतल पहिले से कम हो जाता है और कभी अपेक्षाकृत अधिक ऊपर उठ जाता है। इस परिवर्त्तन को समुद्रतल परिवर्त्तन गति कहते हैं। इसका प्रधान कारण हिम नदी या हिम आवरण का पिघलना होता है। हिम आवरण के बनने और पिघलने पर समुद्रतल बदल जाता है।

Evaporation (वाष्पीभवन) किसी तरल पदार्थ को गर्म करने से वह भाप बन जाता है। इस क्रिया को वाष्पीभवन कहते हैं। सूर्य की गर्मी के कारण महासागरों, नदियों, झीलों व छोटे जलाशयों का जल भाप बन कर वायुमण्डल में समा जाता है। वनस्पति जगत में भी सूर्य की गर्मी के कारण पेड़-पौधों का रस भाप बना करता है। यह भाप वायुभार के आधे से कुछ ही अधिक भारी होता है। इसलिए पवन द्वारा यह शीघ्र ही इधर-उधर फैल जाता है। चूँकि वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा कभी-कभी ही पूर्ण हो जाती है इसलिए प्रायः हर समय ही वाष्पीकरण हुआ करता है। वाष्पीकरण की तीव्रता निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहती है––(१) वायुमण्डल में उपस्थित नमी व आर्द्रता, (२) जल की सतह की विशेषता और (३) वायु या पवन। चूँकि वाष्पीकरण का मुख्य कारण गर्मी है, इसलिए भूमध्यरेखा के समीप वाष्पीभवन क्रिया बहुत तेजी से हुआ करती है।

Evergreen Forests (सदाबहार वन) जहाँ पर्याप्त वर्षा और पर्याप्त तापक्रम पाया जाता है वहाँ के वनों के वृक्ष सदाबहार रहते हैं। सदाबहार वनों के वृक्ष साल भर हरे-भरे रहते हैं और इनमें पाये जाने वाले वृक्ष दो प्रकार के होते हैं––चौड़ी पत्ती वाले और नुकीली पत्ती वाले।

चौडी पत्ती वाले सदाबहार बन––उष्ण कटिबन्धीय भागों के मैदानों में मिलते हैं जहाँ वर्ष भर ताप तथा वर्षा की प्रचुरता रहती है। प्रादेशिक वितरण के आधार पर इन्हें तीन प्रकार का कहा जा सकता है :––

(१) **भूमध्यरेखीय वन**––जो बहुत ही सघन होते हैं और जिनमें कठोर लकड़ी के वृक्ष पाये जाते हैं। इन प्रदेशों के वृक्ष बहुत ऊँचे होते हैं और उनकी टहनियों व शाखाओं में लताओं व बेलों का जाल सा बिछा रहता है (देखिये Equatorial Forest)

(२) **मानसूनी वन**––मानसूनी प्रदेशों में बहुत ज्यादा वर्षा होती है ऐसे ही सदाबहार बन पाये जाते हैं। भारत में आसाम, बंगाल तथा पश्चिमी घाट में ये बन पाये जाते हैं। ये भूमध्यरेखीय बनों की तरह सघन नहीं होते। इनमें देवदार, ताड और महोगनी के वृक्ष मुख्यतः उगते हैं। सुन्दरी और रोजवुड के वृक्ष भी पाये जाते हैं। इन वनों से लकडी प्राप्त करना आसान है।

(३) **भूमध्यसागरीय वन**––भूमध्यसागरीय प्रदेशों में वर्षा केवल जाड़े के मौसम में ही होती है परन्तु गर्मियों की शुष्क ऋतु इतनी छोटी होती है कि यहाँ के वृक्षों को शुष्कता से रक्षा करने के लिए पत्तियाँ नहीं गिरानी पड़ती। इन वृक्षों की जड़ें लम्बी, पत्ते मोटे और चिकने छाल गुदाली और शाखायें काँटेदार होती हैं। लारेल, कार्क ओक, चेस्टनट, शहतूत, पाइन और यूकेलिप्टस इत्यादि के वृक्ष विशेषतया प्रमुख हैं। अंजीर और जैतून के भी वृक्ष बहुतायत से उगते हैं।

नुकीली पत्तेवाले सदाबहार बन––शीत शीतोष्ण कटिबन्ध में पाये जाते हैं। उत्तरी अमेरिका तथा यूरेशिया महाद्वीपों में उत्तरी ध्रुव के समीप नुकीली पत्ती वाले वनों की पेटी पूर्व से पश्चिम को फैली है। दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी भाग और न्यूजीलैंड के दक्षिणी टापू में भी ये बन पाये जाते हैं। उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबंध के उच्च पर्वतीय भागों में भी ऐसे वृक्ष मिलते हैं। इन वनों के मुख्य पेड़ चीड़, स्प्रूस, लार्ज, फर, सीडर, हेमलाक इत्यादि हैं। ये वन उतने सघन नहीं हैं जितने कि भूमध्यरेखीय वन क्योंकि यहाँ वर्षा तथा ताप दोनों की कमी है। इनसे कोमल लकड़ी प्राप्त होती है और इन्हीं के सहारे दियासलाई, कागज आदि के उद्योग चल निकले हैं। केवल साइबेरिया को छोड़ कर अन्य सभी जगह

इनसे लकड़ी प्राप्त करना सुगम है और इसीलिए चौड़ी पत्ती वाले वनों की अपेक्षा इनका अधिक उपयोग हो पाया है। (देखिये Coniferous forests)

Evolutionary Cycle (**विकास चक्र**) भूपटल पर दो प्रकार की शक्तियाँ काम करती रहती हैं। एक तो वे वाह्य शक्तियाँ हैं जो वायुमण्डल से सम्बन्धित हैं और जो बाहर से पृथ्वी के धरातल को काटती-छाँटती रहती हैं। दूसरी वे आन्तरिक शक्तियाँ हैं जो पृथ्वी के भीतर से चट्टानों को ऊपर की ओर उभाड़ती रहती हैं। इन दोनों प्रकार की शक्तियाँ की सतत क्रिया-प्रतिक्रिया से विभिन्न प्रकार के स्थल रूपों का प्रादुर्भाव होता है। भूखंड ऊपर को उठता है, घिसावट या आवरण क्षय द्वारा फिर निम्नदशा को प्राप्त होता है और आवरणक्षय द्वारा प्राप्त मिट्टी, बालू, कंकड़, पत्थरों से नये भूखंडों का निर्माण होता है। इस कार्य चक्र को विकास चक्र कहते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक प्रकार के स्थलरूप का एक जीवन इतिहास होता है और इस कालान्तर में क्रमिक परिवर्त्तन द्वारा इसके रूप व आकार का विकास होता रहता है। प्रत्येक भूखंड के विकासचक्र में तीन दशाएँ होती हैं—पठार का उत्क्षेप, पठार की काट-छाँट और अन्त में अनावृत्तीकरण द्वारा मैदान में परिणत होना। स्थलरूप की प्रारंभिक दशाएँ एक मध्यवर्त्ती स्थिति से होती हुई अन्त में एक आखिरी दशा को प्राप्त हो जाती है जहाँ और अधिक आवरण क्षय होने की सम्भावना ही नहीं होती। स्थलरूपों के जीवन विकास में इन दशाओं को उनकी युवा, प्रौढ़ा और वृद्धा अवस्थाएँ कह सकते है। जब स्थलरूप विकास की पहिली सीढ़ी पर होते हैं तो युवा कहते हैं, जब उनका रूप व आकार काफी निखर चुकता है तो उन्हें प्रौढ़ कहते है और जब वह बिलकुल ही बदल चुके होते हैं तो उन्हें वृद्ध कहते हैं।

जब कोई भूखंड समुद्रतल से निकलकर शुष्क स्थलभाग बन जाता है तो प्रगट स्थलरूप इन तीनों अवस्थाओं से क्रमशः गुजरता है और प्रत्येक दशा व काल में प्राकृतिक शक्तियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। स्थल खंड के प्रगट होते ही उस पर ऋतु प्रहार द्वारा टूट-फूट शुरू हो जाती है। वर्षा का जल धारा रूप में बहना शुरू कर देता है और सँकरी, व पतली व गहरी घाटियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार की घाटियों की धाराओं में झरने व जल प्रपात पाये जाते हैं। धीरे-धीरे घाटियाँ चौड़ी होती जाती हैं और जलविभाजकों की चौड़ाई कम होती जाती है। नदियों में झरने व जल प्रपात नहीं होते और उसकी धारा में घुमाव पड़ जाते हैं। धीरे-धीरे किनारे पर की पर्वत शाखाओं को भी नदी की धारा काटती जाती है और कालान्तर में एक चौड़ी तथा विस्तृत तलैटी बन जाती है, जिसमे नदी इधर-उधर घूमती हुई बहती रहती है। इस प्रकार युवावस्था व प्रौढ़ावस्था के आदि में स्थलखंड की बनावट पहाड़ व घाटी की होती है। परन्तु प्रौढ़ावस्था के अन्त तक यह भू-भाग बिल्कुल ही चौरस हो जाता है और काट-छाँट की क्रिया के फलस्वरूप घाटियाँ व पहाड़ियाँ मैदान की दशा को पहुँच जाते हैं और अनावृत्तीकरण के इस मैदान में छोटे-छोटे टीले से दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इस प्रकार का पूर्ण विकास कभी-कभी या कहीं ही होता है। अधिकतर क्षेत्रों में किसी दशा या अवस्था के बीच में भूखंड के उत्क्षेप द्वारा स्थलरूप फिर से युवावस्था को प्राप्त हो जाता है। इसको आवरणक्षय चक्र भी कहते है। (देखिये Cycle of Erosion)

Exfoliation (Etching) (**वायु आवरण क्षय**) (१) शुष्क व गर्म प्रदेशों में वायु द्वारा ही आवरण क्षय होता है। वायु धूल के कणों को उड़ाकर ले जाती है और धूल के नुकीले कणों से लदी हुई यह वायु जब किसी चट्टान से टकराती है तो घिसकर उन्हें काट देती है। वायु द्वारा इस क्रिया को वायुआवरण क्षय कहते हैं और प्रायः इसके दो रूप

होते हैं—(१) काट-छाँट या उड़ाकर ले जाना (२) रासायनिक विखंडन। परन्तु रासायनिक प्रभावों द्वारा विखंडन का स्थान नगण्य-सा है।

(२) (परत उखड़ना) ऋतुप्रहार की वह दशा जब चट्टानों की सतह पर की परतें इस प्रकार उखड़ने लगती हैं जैसे कि छिलका छीला जा रहा हो। गर्म मरुस्थलों में चट्टानों के दिन में गर्म होकर फैलने और रात में ठंडी होकर सिकुड़ने पर परत उखड़ने की क्रिया बहुत होती रहती है। चट्टान खंडों के किनारे विशेष रूप से टूट-फूट जाते है और उनका रूप गोलाकार हो जाता है। बाहरी परतों पर रासायनिक विखंडन से इसे सहायता मिलती है। कभी-कभी इस प्रकार के परत उखड़ने को प्याज सदृश्य ऋतुप्रहार भी कहते हैं।

Exports (निर्यात) जिस प्रदेश में वहाँ की आवश्यकता से अधिक मात्रा में किसी वस्तु का उत्पादन होता है वहाँ से वह वस्तु अधिक माँग पर अपेक्षाकृत कम उत्पादन वाले प्रदेशों को भेज दी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस प्रकार की वस्तु को उस देश का निर्यात कहते हैं जहाँ से वह बाहर भेजा जाता है। प्राकृतिक परिस्थितियों की विभिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के धंधे स्थापित होते हैं। अतएव जहाँ जो चीज नहीं होती या कम मात्रा में होती है वहाँ वह वस्तु दूसरे देशों से मँगाई जाती है। निर्यात् करनेवाले देश वे होते हैं जहाँ उस वस्तु की पैदावार जरूरत से ज्यादा होती है। प्रत्येक देश बाहर से मँगाये हुए पदार्थो का मूल्य अपने यहाँ के पदार्थों का निर्यात करके चुकाता है। परन्तु यह सर्वथा सम्भव नहीं होता। इसलिए निर्यात व्यापार के दो रूप होते हैं—एक तो वह जब निर्यात के बदले में उतने ही मूल्य की सामग्री दे दी जाय। इस प्रकार के पारस्परिक विनिमय को विनिमय व्यापार कहते हैं। दूसरा वह जब निर्यात का मूल्य मुद्रा, बिल या बैंक द्वारा अदा किया जाय।

किसी देश का निर्यात व्यापार ही वहाँ की समृद्धि व उन्नति का आधार होता है। इसलिए प्रत्येक देश अपने निर्यात व्यापार को बढ़ाने की चेष्टा में रहता है। दो विशेष प्रकार के निर्यात व्यापार ध्यान देने योग्य हैं। एक तो पुन: निर्यात् व्यापार जिसमें उत्पादक देश से वस्तु उपभोग के लिए नहीं मँगाई जाती बल्कि इसलिए मँगाई जाती है कि वह आस-पास के प्रदेशों को फिर से निर्यात कर दी जाय। (देखिये Entrepot)। दूसरा व्यापार वह होता है जिस में स्थूल वस्तुओं को एक जगह से दूसरी जगह नहीं भेजा जाता बल्कि निर्यात वस्तुओं के स्थान पर विदेशों के प्रति माल ढोने आदि का काम करके मुद्रा अर्जित कर ली जाती है। इस प्रकार के निर्यात में वस्तुओं को बाहर नहीं भेजा जाता बल्कि विदेशों के व्यापार के लिए अपने जहाजों को काम में लाकर, विदेशी सैर करने वालों को अपने देश में बुलाकर तथा विदेशों में लगी पूँजी पर व्याज के रूप में वही धन अर्जित कर लिया जाता है जो वस्तुओं को निर्यात करके होता है। इस प्रकार के निर्यात को अदृश्य निर्यात कहते हैं।

Explosive Eruption (विस्फोटक उद्गार) कभी-कभी ज्वालामुखी से उद्गार बड़े धड़ाके के साथ होता है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि ज्वालामुखी फट गया हो। इस प्रकार के उद्गार को विस्फोटक उद्गार कहते हैं। विस्फोट उद्गार से ठोस, तरल व द्रव सभी प्रकार के पदार्थ निकलते हैं। जब विस्फोटक होता है तो बहुत अधिक धुँये के साथ कंकड़-पत्थर लावा के जमे हुए टुकड़ों की बौछार-सी होने लगती है। ज्वालामुखी के मुख से विस्फोट होते ही धुयें का एक बादल ज्वालामुखी पर्वत के शिखर पर छा जाता है और दूर से इसकी आकृति बिल्कुल गोभी के फल की तरह मालूम पड़ती है। इस बादल में अधिकतर जलवाष्प होता है परन्तु कुछ ऐसी गैसें भी पायी जाती हैं जो झट आग पकड़ लेती है। (देखिये Cauliflower Cloud)

इस धुँये के बादल के उठने के बाद जमे हुए लावा के छोटे-छोटे टुकड़ों की वर्षा-सी होने लगती है। ये टुकड़े लम्बे व नुकीले होते हैं और इन्हें ज्वालामुखी बम कह कर पुकारते हैं। सब से अन्त में तरल लावा निकलता है और पिघली हुई चट्टान की यह राशि ज्वालामुखी के मुख के इधर-उधर धारा के रूप में प्रवाहित होने लगती है। विस्फोटक उद्गार से निकला हुआ लावा हल्के भूरे रंग का होता है और शान्त उद्गार के लावा की अपेक्षा हल्का होता है। यह धीरे-धीरे बहता है और ठंडा होने पर जम जाता है तथा उसमें रस्सी की ऐसी धारियाँ पड़ जाती हैं।

Extensive agriculture (विस्तृत खेती) कभी-कभी विशाल भूमि क्षेत्रों पर किये जाने वाले खेती के धन्धे को मूल विस्तृत खेती कहते हैं। इस अर्थ में कम बसे हुए भागों की खेती को लिया जा सकता है जैसे कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और आस्ट्रेलिया में। परन्तु आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत विस्तृत खेती से उस कृषि कार्य का बोध होता है जिसमे अपेक्षाकृत कम पूँजी व कम मेहनत से फसल उगाई जाय। इस प्रकार की खेती में विशाल भूमि क्षेत्र पर कम से कम पूँजी और श्रम लगाकर उत्पत्ति का प्रयत्न किया जाता है। किसान को प्रति एकड़ उपज या उसके बढ़ाने का ध्यान ही नहीं होता। विस्तृत खेती कृषि उद्यम का प्रारम्भिक स्वरूप है जब मनुष्य जंगलों को जला कर साफ कर लेते और फिर कुछ वर्षों तक लगातार उस पर फसल पैदा करते थे। जब इस प्रकार खेती करने से भूमि निर्बल हो जाती तो वे उस टुकड़े को छोड़ कर दूसरे टुकड़े को साफ करते और उस पर खेती करने लगते। आज भी कुछ पिछड़े हुए भूभागों में जंगली जातियाँ इसी प्रकार खेती करती हैं। परन्तु जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ती गई और भूमि की कमी होती गई इस प्रकार की खेती करना असम्भव होता गया। आजकल तो विस्तृत भूमि क्षेत्रों पर की जाने वाली खेती में भी वैज्ञानिक ढंगों का प्रयोग होता है और किसान अधिक से अधिक पूँजी व श्रम द्वारा अपनी उत्पत्ति बढ़ाने की चेष्टा करता है।

Extinct Volcano (शान्त ज्वालामुखी) वैसे तो ज्वालामुखी पर्वत में बराबर उद्गार हुआ करते हैं परन्तु जो ज्वालामुखी अब बिल्कुल कार्य नहीं करते वे शान्त ज्वालामुखी कहलाते हैं। बर्मा का पोपा पर्वत मृत ज्वालामुखी है। इस प्रकार के बहुत से मृत ज्वालामुखी पर्वतों के मुख से गर्म जलस्रोत निकलते रहते हैं। कभी-कभी मृतज्वालामुखी के मुख में जल भर जाने से झील बन जाती है। मध्य अफ्रीका की कई झीलें और दक्षिणी अमरीका की टीटीकाका झील इसी प्रकार से बनी है। परन्तु ज्वालामुखी के मृत हो जाने पर भी अक्सर उद्गार हो जाने की सम्भावना रहती है और देखा गया है कि १०-१५ वर्ष के बाद भी मृत ज्वालामुखी कभी-कभी फिर से सक्रिय हो जाते हैं।

वैसे मृत ज्वालामुखी के पार्श्व रस्सीदार लावा निक्षेप से ढके रहते हैं और उनके मुख का भाग खाली रहता है परन्तु झाँक कर तली में देखने से लावा का खंभा-सा जमा हुआ नजर आता है जो कि उद्गार बन्द होने के बाद जम गया और मार्ग को हमेशा के लिए बन्द कर दिया।

Extractive Industry (भूगर्भ अपहरण का धंधा) यह वह मुख्य धंधा है जिसमें मनुष्य भूगर्भ में निहित प्राकृतिक सम्पत्ति के भंडार को खोदकर प्राप्त करता है। खान खोदना और पत्थर निकालना इसी प्रकार के धंधे हैं। वनस्पति की भाँति खनिज पदार्थ भिन्न-भिन्न स्थानों पर उपजाये नहीं जा सकते। वे पृथ्वी के गर्भ में प्रकृति के द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। यदि मनुष्य खनिज पदार्थों या इमारती पत्थरों को खोदकर न निकाले तो वे अनन्त काल तक पृथ्वी के गर्भ में ही पड़े रहें। मनुष्य लाख प्रयत्न करने पर भी धातुओं को उत्पन्न नहीं कर

सकता। और एक बार खनिज पदार्थ को निकाल लेने पर उन खानों में फिर से धातु उत्पन्न नहीं की जा सकती। इस कारण खान को खोदना प्रकृति के जुटाये हुए धन को निकाल लेना है। इसीलिए इस धन्धे को भूगर्भ अपहरण का धंधा कहते हैं। आजकल बहुत से विद्वानों का कहना है कि आवश्यक धातुओं का उपयोग बहुत किफायत के साथ होना चाहिये क्योंकि बराबर निकाली जाती रहने पर धातुएँ, खनिज पदार्थ और इमारती पत्थर खतम भी हो सकते हैं।

Extrusive Rocks (**धरातलीय आग्नेय चट्टान**) ज्वालामुखी उद्गारों से निकले लावा के ठंडा पड़ जाने पर जो चट्टानें बन जाती हैं उन्हें धरातलीय आग्नेय चट्टान कहते हैं। ये चट्टानें लहरियादार व रस्सी की तरह उमठी हुई परतों से पूर्ण होती हैं। चूँकि धरातल पर ठंडे होने का काम जल्दी होता है इसलिए ये चट्टानें शीशे की तरह होती हैं और इनमें छोटे-छोटे गड्ढे व छेद भी पाये जाते हैं। यदि ठंडी होते समय लावा चट्टानों में जलवाष्प दबी रह जाय तो उसमें छोटे-छोटे गढ़े बहुत होंगे। इसे बसाल्ट भी कहते हैं। (देखिये Basalt)

ये दो प्रकार की होती हैं—एक तो वह जिसमें सिलीशिया का अंश ८० प्रतिशत होता है और दूसरी वह जिसमें ४० प्रतिशत सिलीशिया और ४० प्रतिशत मेगनीशिया होता है। अधिक सिलीशिया पूर्ण चट्टान का रंग भूरा, भार हल्का और इनको बनाने वाले लावा का रूप गाढ़ा होता है। अतएव ये चट्टानें विस्फोट के स्थान के समीप ही पायी जाती हैं और इनका धरातल चौरस होता है। इसके विपरीत कम सिलीशिया वाली चट्टान का रंग गहरा काला और इसके बनानेवाले लावा तरल, तेज बहने वाला तथा भारी होता है। इसलिए इस प्रकार की चट्टानों की सतह ऊबड़-खाबड़ होती है।

Fahrenheit Scale (**फार्नहायट मानदण्ड**) संसार के सभी अँग्रेजी भाषा-भाषी देशों में तापक्रम नापने के लिए फार्नहायट मानदण्ड का प्रयोग किया जाता है। फार्नहायट मानदंड में दो नियत बिन्दु होते हैं—जल के जमने का तापांश ३२° होता है और जल के उबाल का तापांश २१२० होता है। फार्नहायट मानदण्ड द्वारा प्राप्त तापक्रम को सेन्टीग्रेड मानदण्ड के अनुरूप करने या सेन्टीग्रेड मानदण्ड में परिणत करने के लिए ३२ को घटा कर १·८ से भाग दिया जाना चाहिये। इसका नियम इस प्रकार है सेन्टीग्रेड = (फार्नहायट—३२) ÷ १.८.

Fall (**झड़**) संयुक्त राष्ट्र अमरीका में पतझड़ का मौसम झड़ कहलाता है। पत्तों के गिरने को झड़ना कहते हैं।

Fall line (**जलप्रपात रेखा**) करीब-करीब समानान्तर नदियों की धारा में पाये जाने वाले जल प्रपातों को मिलाने वाली काल्पनिक रेखा को जल प्रपात रेखा कहते हैं। यह पारिभाषिक शब्द संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पूर्वी भाग में अटलान्टिक महासागर के तटीय मैदान से लेकर अपलेचियन पहाड़ तक एक रेखा के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस रेखा पर भूमि का ढाल एकाएक बढ़ जाता है और जलप्रपात रेखा से उस बिन्दु का ज्ञान होता है जहाँ प्रत्येक नदी पर्वत प्रदेश को छोड़कर मैदान में प्रवेश करती है। इस प्रकार जलप्रपात रेखा नदी की नाव्यता की सीमा बतलाती है। चूँकि जलप्रपात रेखा तक नदी पर जहाज चल सकते हैं, इसलिए और दूसरे वहाँ जलविद्युत उत्पन्न करने की सुविधा के कारण बहुत से महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो गये हैं। फिलाडेलफिया, बाल्टीमोर और रिचमान्ड नगर जल-प्रपात रेखा पर ही बसे हैं।

Fata Morgana (**फेटा मॉरगॉना**) एक विशेष प्रकार की मृगतृष्णा जिसमें

दृश्यवस्तु लम्बरूप से खिंची हुई मालूम पड़े, उसे फेटा मॉरगॉना कहते हैं। इसका कारण यह है कि वस्तु और दर्शक के बीच में स्थित वायुमण्डल की बहुत सी समानान्तर पर्त्तों से प्रकाश विकेन्द्रीकरण का कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। प्रकाश विकेन्द्रीकरण में इस भिन्नता के कारण ही दृश्य वस्तु का आकार लम्बरूप में अधिक विस्तृत दिखलाई पड़ता है।

Fathom (**फॉदम**) समुद्र की गहराई नापने की एक माप जिसकी एक इकाई ६ फीट के बराबर होती है।

Fathometer (**फॉदो मीटर**) समुद्र की गहराई नापने के यन्त्र को फॉदोमीटर कहते हैं। जल के भीतर ध्वनि की लहरों की गति के विषय का ज्ञान ही इस यन्त्र का आधार है। ध्वनि की लहर समुद्र जल की सतह से समुद्र की तलैटी तक जाती है और समुद्र की तलैटी से टकराकर फिर सतह की ओर वापस आती है। इस कार्य अथवा आवागमन में जितना समय लगता है उसका पता लग जाने पर समुद्रजल की गहराई को आसानी से निकाला जा सकता है।

Fault (**दरार**) भूपटल की गति के प्रभाव से जहाँ भूपटल की पपड़ी में दरार बन जाती है और फलतः जहाँ चट्टान का धरातल समतल न रह कर कुछ ऊँचा-नीचा हो जाता है, उसे दरार कहते हैं। वैसे तो भूपटल की आन्तरिक गति नीचे से लम्बरूप में धरातल पर आघात करती है परंतु ये दरारें किसी भी दिशा में बन सकती हैं और कभी-कभी तो लम्बरूप गति के आघात से समानान्तर दरारें-भी बन जाती है। वास्तव में भूपटल की समानान्तर गति से भी दरारें बन जाती हैं। वैसे तो समानान्तर गति भूपटल को दोनों ओर से दबाकर मोड़ देती हैं और चट्टानों को धरेरेदार कर देती हैं परन्तु यदि एक जगह दबाव होगा तो दूसरी जगह खिंचाव होना स्वाभाविक है। इस खिंचाव के फलस्वरूप चट्टानें तड़क जाती हैं और दरार के दोनों ओर का तल परस्पर ऊँचा-नीचा हो जाता है। चट्टान के तल का यह सरकना एक इंच के अंशमान से लेकर हजारों फीट तक होता है। इस प्रकार के तल अन्तर को फेंक या Thoson कहते हैं। दरार के दोनों तरफ की चट्टानें केवल ऊपर उठ या नीचे धँस कर ही नहीं रह जाती है बल्कि वे अक्सर अगल-बगल भी हट जाती हैं जिससे कि दरार का मुँह चौड़ा हो जाता है। इस प्रकार के तल परिवर्तन को हीव कहते हैं। दरार के बगल का वह भाग जो नीचे धँस जाता है उसे नीचे फेंका हुआ पार्श्व कहते हैं और जो भाग ऊपर उट जाता है उसे फेंका हुआ पार्श्व कहते हैं।
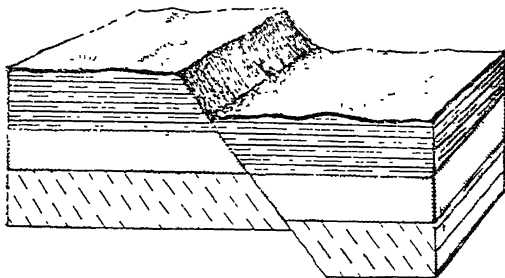
(दरार)

दरारें कई प्रकार की होती हैं जिनमें निम्नलिखित विशेष रूप से प्रमुख है—(१) **सीढ़ीदार दरार**—इसमें ऊपर व नीचे फेंके हुए पार्श्व एक सीढ़ी के पायदान की भाँति एक दूसरे से सटे रहते हैं। (२) **समानान्तर दरार,** (३) **इक्का-दुक्का दरार,** (४) **ऊपर से लटकी हुई दरार** प्रायः समानान्तर होती है परन्तु साथ-साथ दबाव पड़ जाने से दरार के एक ओर की उठी हुई चट्टान दूसरी ओर से धँसी हुई चट्टान के ऊपर सरक कर फैल जाती है। इस प्रकार की दरार को धक्का दी हुई दरार भी कहते हैं। (५) **साधारण या स्वाभाविक दरार**

जो केवल खिंचाव के कारण बन जाती है और इसमें चट्टानें फटकर एक ओर तो ऊपर उठ जाती हैं या दूसरी ओर नीचे धँस जाती हैं।

Faulting (दरार पड़ना) जब भूपटल की मन्द आकस्मिक गतियों की क्रिया बहुत तीव्र होती है या जब किसी प्रदेश की चट्टानों का स्वभाव चिटखना होता है या जहाँ भूपटल पर मिट्टी व चट्टान के चूर्ण की राशि का दबाव अधिक नहीं होता, तो पृथ्वी पर होने वाले दबाव, खिंचाव या उत्क्षेप आदि प्रभाव से भूपटल पर मोड़ या घरेरे पड़ने के बजाय चट्टानें तड़क जायँगी। इस प्रकार से चट्टानों के फटने या तड़कने को दरार पड़ना कहते हैं। वास्तव में दरारें दबाव व खिंचाव दोनों से ही पड़ जाती है। यदि भूपटल के दो भागों के मध्य का क्षेत्र जो एक दूसरे के समीप होते जाते हैं, कोमल नहीं है बल्कि कठोर है तो इस क्षेत्र में घरेरे न पड़ सकेंगे और वह स्थान-स्थान पर टूट जायगा, उसमें बहुत-सी दरारें हो जायँगी। यदि भूपटल का एक भाग दूसरी ओर जाने की अपेक्षा उससे दूर हटता जाता है तो इससे भी भूपटल में कुछ स्थानों पर दरारें हो जाती हैं। इस प्रकार की दरारें पड जाने से कई प्रकार के स्थलरूप बन जाते है। दरार की एक ओर का भाग नीचे धँस जाने से एक ओर का भाग ऊपर उठी हुई शिलाखंड-सा बन जाता है। इन दरारों के बीच में कुछ भाग ऊपर उठ जाते हैं। और कुछ चट्टानों के धरातल से नीचे वैठ जाते हैं जिससे कि रिफ्ट घाटी और गुम्बजाकार पर्वत बन जाते हैं।

Fault Plane (दरार तल) चट्टान के जिस सतह पर दरार बनती है उसे दरार तल कहते हैं। इसी दरार तल के इधर-उधर भूमि उठ जाती है या धँस जाती है। बहुधा एक दरार तल पर एक दूसरे के समानान्तर बहुत-सी दरारें पायी जाती हैं जिससे कि उस प्रदेश की चट्टानें चकनाचूर हो जाती हैं। इस प्रकार की पंक्ति को दरारतल रेखा कहते हैं।

Fault Scarp (दरार खंड) जहाँ दरार के एक ओर का भाग नीचे धँस जाता है वहाँ उसके दूसरी ओर का भाग एक शिला खंड के समान तीव्र ढाल वाला बन जाता है। इस प्रकार से बने तीव्र ढाल के शिलाखंड को दरार खंड कहते है।

Fauna (पशु जीवन या जीव जन्तु) किसी प्रदेश या किसी काल में विशेष प्रकार के जीवजन्तुओं को वहाँ या उस समय का पशु जीवन कहते हैं।

Feldspar (फेलस्पार) [illegible] के सिलीकेट पोटाश, चूना और बेरिअम जैसे खनिज नमकों से मिलकर बने कई प्रकार के खनिज पदार्थों को फेलसपार कहते हैं। यह खनिज दूर-दूर तक फैला पाया जाता है और भूपटल का अर्ध आधे से अधिक भाग इसी प्रकार के खनिज का बना है। यद्यपि फेलसपार पानी में घुलनशील नहीं होता परन्तु हवा या जल में रख देने से यह नष्ट हो जाता है। इसके चूर हो जाने पर एक सफेद रंग की चिकनी मिट्टी बन जाती है।

Fell (बन्जर उच्च भूमि) जिस पहाड़ी या पर्वत पर खेती नहीं हो सकती और जो बिना किसी वनस्पति के आवरण के नग्न रूप में खड़ा रहता है उसे बन्जर उच्च भूमि कहते हैं।

Fellah (फेलाँ) यह अरबी भाषा का शब्द है और इसके द्वारा खेत जोतने वाले या हल चलाने वाले का बोध होता है। लेकिन अरबी भाषाभाषी राष्ट्रों में जैसे मिश्रप्रदेश में किसान को फेलाँ कहते हैं।

Fen (फेन) यह पारिभाषिक शब्द पूर्वी इंगलैंड में विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है। साधारण धरातल से निम्न दलदली भूमि को फेन कहते हैं। पूर्वी इंगलैंड में वाश के चारों ओर का प्रदेश इसी प्रकार का फेन है।

Ferrel's Law (फेरल सिद्धान्त) पृथ्वी की दैनिक गति के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न गति से घूमते हैं और सभी स्थान की वायु अपने मार्ग से विचलित होकर मुड़

जाती है। इस परिवर्त्तन का नियम यह है कि वायु उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर और दक्षिणीय गोलार्द्ध में बाँयी ओर मुड़ जाती है। इस नियम के सिद्धान्त को इसके आविष्कारक के नाम पर फेरल सिद्धान्त कहते हैं। वैसे तो यह नियम चलनशील प्रत्येक वस्तु को लागू होता है परन्तु इसका प्रयोग विशेष रूप से वायु के लिए किया जाता है। इस प्रकार वह वायु जो उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है यदि पृथ्वी स्थिर होती, पृथ्वी की दैनिक गति के कारण उत्तर पूर्व से बहने लगती हैं। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण से उत्तर की ओर बहने वाली व्यापारिक हवाएँ दक्षिण-पश्चिम से बहती हैं। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर हम जितना ही अधिक बढ़ते जायँगे मार्ग से विचलित होना उतना ही अधिक बढ़ता जायगा। फेरल नियम को निर्धारित करने से पहिले एक घूमते हुए ग्लोब पर ध्रुव से गर्म कोलतार प्रवाहित करके प्रयोग किया गया था। इससे स्पष्ट हो गया कि भूमध्यरेखा के समीप हवाओं का मुड़ना या अपने मार्ग से विचलित होना ध्रुव प्रदेशों की अपेक्षा बहुत कम रहता है और चक्रवात व विरुद्ध चक्रवातों का आविर्भाव भी इस सिद्धान्त के आधार पर होता है।

Ferry (तरणी) नदी पर वह स्थान जहाँ एक किनारे से दूसरे किनारे को नाव में बैठकर जाया जा सकता है, तरणी कहलाता है।

Fertilizer (खाद) प्रत्येक बार खेती करने के बाद भूमि में स्थित कुछ खनिज नमक कम हो जाते हैं और उनके अभाव से भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। अतएव उपभोग किये हुए इन खनिज नमकों को पूरा करने के लिए और भूमि को क्षीण होने से रोके रहने के लिए, कुछ पदार्थों को मिट्टी में बाहर से पहुँचाया जाता है। भूमि की उर्वरा-शक्ति को कायम रखने या बढ़ाने के लिए मिलाये गये पदार्थों को खाद कहते हैं। खाद स्वाभाविक व कृत्रिम दोनों प्रकार की हो सकती है और इसका मुख्य ध्येय भूमि में उन रासायनिक तत्वों का प्रादुर्भाव करना है जिन पर पौधों का जीवन निर्भर रहता है। बाहर से पौधों को खाद्य सामग्री पहुँचा कर हम दो विशेष लाभ पाते हैं। एक तो बार-बार फसलों के बाद भूमि कमजोर नहीं होने पाती और दूसरे उपज प्रति एकड़ बढ़ जाती है। खाद मुख्यतः दो प्रकार की होती है—(१) वह जो वनस्पति के सड़े-गले अंश की पूर्ति करे और (२) वह जो नमकों के अनुपात को ठीक करे। वनस्पति का सड़ा-गला अंश, जिससे पौधों को नाइट्रोजन, कारबन आदि मिलता है पहुँचाने के तरीके निम्नलिखित हैं—(अ) कूड़ा-करकट की खाद; गोबर मलमूत्र की खाद; हड्डी की खाद और कम्पोस्ट की खाद (ब) हरी खाद, जिसमें दो दाल के बीज वाले व सनई के पौधों को उगाकर उन्हें जड़, डंठल और पत्ते सहित खेत में मिला दिया जाता है।

दूसरे प्रकार की खाद वह होती है जिसके द्वारा नमकों की घटी को पूरा किया जाता है। यह काम दो प्रकार से होता है—(अ) **रासायनिक खाद** द्वारा जैसे सोडा नाइट्रेट, पोटाश, अमोनियम सल्फेट, सुपर फासफेट, चूना आदि पदार्थों को पाउडर रूप में या पानी में घोलकर दिया जाता है और उसी समय जब खेत में पौधे रहते हैं। इस प्रकार की खाद का प्रभाव तत्काल होता है परन्तु इनके प्रयोग के लिए धन व वैज्ञाननिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। (ब) **खली की खाद** तिलहन से तेल निकलने के बाद जो शुष्क गूदा बना रहता है उसके अन्दर अनेक रासायनिक गुण पाये जाते हैं विशेष रूप से नाइट्रोजन। वास्तव में कम धन में यह सबसे उत्तम खाद है।

Fetch (प्रवाह सीमा) समुद्र पर खुली जल राशि के उस विस्तार को, जिस पर हवा बह रही हो, प्रवाह सीमा कहते हैं। प्रवाह सीमा से ऋतु विशेष में समुद्रतट से दूरी का भास होता है और इस दूरी या प्रवाह सीमा के इस विस्तार पर ही लहरों की ऊँचाई निर्भर रहती है।

Field Survey (**पैमाइश**) भूमि पर विविध वस्तुओं की स्थिति को निर्धारित करने को पैमाइश कहते हैं। पैमाइश के बाद भूमि पर स्थित विविध वस्तुओं का पारस्परिक सम्बन्ध का पता चल जाता है और मानचित्र पर उन्हें अंकित किया जा सकता है। विविध वस्तुओं की पारस्परिक स्थिति को निश्चित करने के लिए कुछ नाप-जोख करनी पड़ती है। यह नाप दो प्रकार की होती है--एक तो दिशा की नाप जिस तरफ वस्तुएँ स्थित हैं और दूसरी दूरी की नाप, कि वस्तुएँ एक दूसरे से कितने दूर हैं। इस प्रकार विविध वस्तुओं की स्थिति की पारस्परिक दूरी व दिशा का पता चल जाता है और पैमाइश की सफलता इस नाप-जोख की यथार्थता पर निर्भर रहती है। नाप-जोख में जितनी सावधानी रखी जायगी, पैमाइश भी उतनी ही अधिक सच्ची होगी। परन्तु इस प्रकार के सच्चे भूमिनाप में काफी समय लग जाता है और खर्चा भी बहुत बैठता है।

फिर भी यह कार्य इतना आवश्यक है कि लगभग सभी प्रकार के विस्तृत मानचित्र बनाने के लिए भूमि की वास्तविक नाप की आवश्यकता पड़ती है। मानचित्र कई प्रकार के होते हैं और विभिन्न उद्देश्यों के लिए विभिन्न प्रकार के मानचित्र बनाये जाते हैं। कुछ मानचित्र तो बहुत विस्तृत होते हैं और उनके लिए बड़ी सावधानी से नाप जोख करना पड़ता है। परन्तु कुछ मानचित्र सामान्य होते हैं और उनके लिए कुछ कम सच्ची नाप-जोख से भी काम चल जाता है। इस प्रकार यथार्थता के आधार पर पैमाइश के काम को दो प्रकार का कहा जा सकता है--(१) शीघ्र नाप जिसे ट्रावर्सिंग कहते हैं और जिसमें पैमाइश का काम कुछ कम सावधानी से किया जाता है। (२) त्रिभजीकरण (Triangulation) जिसमें विशेष विस्तार से पैमाइश की जाती है और यथार्थता पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है। ट्रावर्सिंग का काम तो जंजीर या टेप से किया जाता है परन्तु त्रिभुजीकरण में अधिक सूक्ष्म यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। (देखिये Traversing Triangulation)

Fiord (**फियार्ड**) समुद्र तट में लम्बी सँकरी कटान को फियार्ड कहते हैं। इन कटानों की दीवार बड़ी सीधी व तीव्र ढाल की होती है। वास्तव में हिमनदियों द्वारा बनाई हुई चौड़ी घाटियों में समुद्र तट के धँस जाने और समुद्रजल के उन घाटियों में भर जाने से स्थली भाग में बीच-बीच समुद्र घुस गया है वहीं चौड़ी हिमनदियों से निर्मित जलभरी घाटियाँ फियार्डस कहलाती हैं। चूँकि फियार्ड प्रायः उन पर्वतीय प्रदेशों के तट पर पाये जाते हैं जो एक समय हिम के आवरण के नीचे दबे हुए थे, इसीलिए यह समझा जाता है कि फियार्ड हिम नदी भरी घाटियाँ ही हैं। नारवे और ग्रीनलैंड के तट पर फियार्ड की बहुतायत है। ये उस समय बने जब समुद्र जल से आकर हिम निदियाँ मिलीं। वैसे तो ये घाटियाँ जलधाराओं द्वारा बन चकी थीं परन्तु जब इनमें से होकर हिम नदियों ने समुद्र में प्रवेश किया तो ये और गहरी हो गई और इनका आकार भी नाँद की तरह हो गया। इस प्रकार फियार्ड वे जलमग्न घाटियाँ हैं जो हिम द्वारा आवरणक्षय से बन गई थी। परन्तु कभी-कभी दरारों के पड़ने और दो दरारों के बीच की रिफ्ट घाटी के डूबने से भी ये फियार्ड बन जाते हैं।

साधारणतया फियार्ड में जल की गहराई बहुत अधिक होती है परन्तु समुद्र की तरफ वाले भाग की अपेक्षा भूमि के तरफवाले भाग में जल अधिक गहरा रहता है। इसका कारण यह हो सकता है कि अग्र भाग में जहाँ हिम पिघला वहाँ आवरणक्षय इतना तीव्र नहीं था या वहाँ पर अन्तिम मोरेन के इकट्ठा हो जाने से तल ऊँचा हो गया। इन फियार्ड का विशेष आर्थिक महत्व है। इनमें बड़े सुरंक्षित बन्दरगाह बन जाते हैं और मछली पकड़ने का उद्यम अच्छी तरह हो सकता है।

Firn (**फर्न**) हिमनदी के ऊपरी भाग के दानेदार हिमक्षेत्र को फर्न कहते हैं। इस

क्षेत्र में बर्फ हिम में परिणत होता रहता है और इसे जर्मन भाषा में फर्न कहते हैं। (देखिये Neve)

Firth (फर्थ) यह पारिभाषिक शब्द केवल स्काटलैंड में प्रयोग किया जाता है और कभी-कभी इसे फियार्ड या इस्चुरी के निचले भाग के लिए भी प्रयोग करते हैं। वास्तव में फर्थ समुद्रतट में लम्बी पतली व सँकरी कटान को कहते हैं।

Fishing (मछली पकड़ना) मनुष्य के भोजन प्राप्त करने के साधनों में आदि-काल से ही मछली पकड़ने का व्यवसाय बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। आजकल पकड़ी हुई मछलियों में काफी व्यापार होता है। मछलियों को प्राप्त करने के दो मुख्य साधन हैं—(१) मीठे पानी की नदियाँ झीलें व तालाब और (२) खारे पानी के समुद्र व खाड़ियां। मीठे पानी की मछलियों का केवल स्थानीय महत्व है परंतु समुद्र से पाई जाने वाली मछलियों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है।

नदियों. झीलों व तालाबों से तो लोग जाल अथवा बन्शी द्वारा मछली पकड़ते हैं परन्तु समुद्र से मछली पकड़ने का काम मछुवे जहाजों द्वारा होता है। वर्तमान समय में अधिकतर देशों में ड्रिफ्टर या ट्रॉलर जहाजों की सहायता से मछली पकड़ी जाती है। ये जहाज समुद्र में बहुत दूर जा सकते हैं और मौसम की अदल-बदल इन पर अधिक असर नहीं डालती है। इस कारण इनकी सहायता से काफी अधिक संख्या में और दूर-दूर से मछ-लियाँ पकड़ी जा सकती हैं।

मछली प्रायः समुद्र की तलैटी में या ऊपरी सतह से थोड़ी दूर नीचे किनारों पर कम गहरे पानी में पाई जाती है। समुद्र की तलैटी के गहरे पानी में पाई जाने वाली मछलियों को ट्रालर जहाजों की सहायता से पकड़ा जाता है। इन जहाजों से मछली पकडने का जाल पानी में लटका दिया जाता है और फिर समुद्र की तलैटी के सहारे से ६ मील फी घंटे की रफ्तार से घसीटते हैं। इस प्रकार उसमें मछलियाँ फँस जाती हैं और तब जाल को ट्रालर जहाज में ऊपर खींच लेते हैं। कम गहरे पानी में ड्रिफ्टर जहाज द्वारा मछलियाँ पकड़ी जाती हैं इसमें करीब ९० जाल होते हैं जिन्हें ऊपर व नीचे से छोटी-छोटी रस्सियों द्वारा बाँध देते हैं, फिर जहाज से नीचे लटका कर पानी में हिलोरते हैं।

वास्तव में कई कारणों से छिछले पानी में मछलियों का आधिक्य होता है। किनारे के पास के छिछले पानी में नदियों द्वारा लाई हुई सामग्री इकट्ठा होती रहती है। इसे खाकर या इनके सहारे कई प्रकार के छोटे कीडे पैदा हो जाते है और इन्हीं कीडों व जन्तुओं को खाने के लिए दूर-दूर से चलकर मछलियाँ किनारे के पास के छिछले पानी में आती हैं। इसके अलावा मछलियाँ आमतौर से छिछले पानी में ही अंडे देती हैं। यही कारण है कि संसार के सभी मुख्य मछली पकड़ने के प्रदेश महाद्वीपीय सागर में स्थित है जो किनारे से कुछ सौ मील के भीतर ही स्थित है। मछली पकड़ने के कुछ मुख्य प्रदेश किनारे से दूर समुद्र के उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ समुद्र की पेंटी अन्य प्रदेशों की अपेक्षा ऊँची है। उत्तर सागर के डागर-बैंड और अटलान्टिक महासागर के ग्रान्ड बैंक इस दृष्टिकोण से विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

मछली पकड़ने का धन्धा शीतोष्ण कटिबंध में विशेष रूप से समृद्ध है। उष्ण कटिबन्धीय समुद्रों में अनेक प्रकार की मछलियाँ तो जरूर पायी जाती हैं पर उनमें से बहुत-सी जहरीली व खाने के लिए सर्वथा अयोग्य होती हैं। इसके विपरीत शीतोष्ण कटिबन्ध में पायी जाने वाली मछलियों के प्रकार व जाति तो कम होती है, परन्तु जो थोड़ी जातियाँ मिलती हैं उनमें मछ-लियों की संख्या अधिक रहती है, वे खाने के उपयुक्त होती हैं और उन्हें निम्न तापक्रम के कारण अधिक समय तक रक्खा भी जा सकता है। इसीलिए शीतोष्ण कटिबंध के प्रदेशों में मछली का व्यापार भी अधिक है। भूमंडल पर मछली पकड़ने के मुख्य प्रदेश निम्नलिखित चार हैं:—

(१) न्यूफाऊंडलैंड, कनाडा और न्यूजीलैंड का उत्तरी अटलांटिक किनारा (२) उत्तरी पश्चिमी यूरोप का किनारा, (३) जापान और उसके आस-पास का समुद्री किनारा और (४) उत्तरी अमरीका का उत्तरी पैसिफिक किनारा। इन प्रदेशों का किनारा कटा-फटा है, सामने द्वीप है, भूखंड पर से बहती हुई बहुत सी नदियाँ गिरती हैं तथा गर्म या ठंडी जल धाराएँ किनारों के समीप ही बहती हैं। इन प्रदेशों के कुछ मछुये उत्तर में गहरे समुद्रों से ह्वेल व सील को पकड़ने भी जाते हैं। इस प्रकार पकड़ी हुई मछलियों को नमक लगाकर, सुखाकर या शराब में ताजी भर कर बाहर भेजा जाता है। काड मछली से तेल प्राप्त किया जाता है और इसी प्रकार सील से चमड़ा प्राप्त किया जाता है। कुछ मछलियों से तेल निकालने के बाद अवशेषांश का खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा ह्वेल से चर्बी निकाल कर उस तेल को दवाइयों में प्रयोग करते हैं। सील से प्राप्त तेल साबुन बनाने में प्रयोग किया जाता है। ये मछलियाँ आर्कटिक व अन्टार्कटिक सागर में विशेष रूप से पायी जाती हैं और न्यूफाउंडलैंड, नार्वे और रूस में इनको पकड़ने का धंधा बहुत उन्नत है।

Fissure (संध) कमजोर पपड़ीवाले प्रदेशों में पृथ्वी के भीतर की पिघली हुई चट्टानों के लावा, जलवाष्प तथा अन्य गैसों के आघात से ऊपर का भूपटल फट जाता है और उसमें फटन या दरारें बन जाती हैं। इस प्रकार से बनी दरारों को संध कहते हैं और इनसे लावा प्रवाह होता है। कहीं-कहीं इस प्रकार के फटन से केवल गर्म जल अथवा गैस ही निकलती रहती है। कभी-कभी ज्वालामुखी पर्वतों के पार्श्वों में भी इस प्रकार के फटन बन जाते हैं और उनके अन्दर से भी लावा आदि बहता रहता है।

Fissure Eruption (संध से उद्‌गार) जिस पृथ्वी के ऊपर की पपड़ी पतली व कमजोर थी उस समय भीतरी लावा, गैस व जलवाष्प यहाँ-वहाँ जहाँ-कहीं भी कमजोर स्थल पाता था फूटकर निकल पड़ता था और फलतः भूमि पर एक दरार सी बन जाती थी जिसके चारों ओर की भूमि पर लावा फैल जाता था। इस प्रकार के उद्‌गार को संध के उद्‌गार कहते हैं और ये बड़े ही शान्त होते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका की स्नेक नदी घाटी और दक्षिणी भारत में इस प्रकार के उद्‌गारों से निकले हुए लावा से सम्पूर्ण भूमि ढकी हुई है। (देखिये Effusive Eruption)

Floe (फ्लो) ध्रुवीय प्रदेशों में हिम का आवरण छाया रहता है। यह ध्रुवीय हिमराशि के कुछ भाग समुद्रतल पर अलग होकर बहने लगते हैं और इस प्रकार कटकर बहती हुई विशाल हिमराशि को फ्लो कहते हैं। वास्तव में मुख्य ध्रुवीय हिमराशि जिससे कटकर यह बहती है उसकी सीमा साफ दिखलाई पड़ती रहती है। यह फ्लो दो प्रकार का होता है— एक तो हल्का फ्लो जिसमें बर्फ सिर्फ दो या तीन फीट ही मोटी होती है। भारी फ्लो में बर्फ की मोटाई काफी होती है।

Flood plain (बाढ़ का मैदान) नदियों की धारा की घाटी के दोनों किनारों पर नदी के निक्षेप द्वारा बने मैदान को बाढ़ का मैदान कहते हैं। वास्तव में नदी जब अपने किनारों को काटती हुई अपनी घाटी को चौड़ा करती रहती है और जब कभी उसमें पानी बढ़ जाने से वह अपने किनारों पर से होकर बहने लगती है तो उस समय नदी की धारा धीमी पड़ जाती है और उसमें मिले मिट्टी के कणों के बैठ जाने से बाढ़ के मैदान बन जाते हैं। जिन नदियों में प्रति वर्ष बाढ़ आती है उनके बाढ़ के मैदान प्रत्येक बाढ़ के बाद कुछ न कुछ ऊँचे हो जाते हैं और हर बाढ़ के बाद मिट्टी की एक परत जमी रह जाती है। इस प्रकार नदी धारा की अपेक्षा उसके किनारों पर स्थित बाढ़ के मैदान अधिक ऊँचे हो जाते हैं। प्रायः बाढ़ का मैदान नदी के किनारों के समीप सबसे अधिक ऊँचा रहता है। वहाँ पर मिट्टी व रेत का एक प्राकृतिक चबूतरा सा बना नजर आता है।

बाढ़ के मैदान समतल भूमि पर नदी के घुमाओं के इधर-उधर पाये जाते हैं और नदी की निचली घाटी में इनकी बहुतायत रहती है । वास्तव में डेल्टा निक्षेप धीरे-धीरे जब नदी के स्रोत की दिशा में फैलने लगता है तो यह कहना कठिन हो जाता है कि कहाँ से डेल्टा शुरू होता है और कहाँ पर बाढ़ का मैदान खतम होता है । डेल्टा से हम जितना ही नदीघाटी में स्रोत की ओर बढ़ते जाते हैं ये बाद के मैदान अपेक्षाकृत सँकरे व कम चौड़े होते जाते हैं ।

बाढ़ के मैदान के बनते समय इसमें दलदली भूमि घुमावदार जलधाराओं व नालाकार झीलों की बहुतायत रहती है । यदि जलप्रवाह की दिशा एकाएक किसी कारणवश बदल जाय तो बाढ़ के मैदान चौरस समतल उपजाऊ क्षेत्र की तरह बने रह जाते हैं । जहाँ नदी की धारा व तलैटी में परिवर्त्तन होता रहता है वहाँ पुराने बाढ़ के मैदानों की भूमि सीढ़ीदार दिखलाई पड़ती है । ये सीढ़ियाँ उन पुराने बाढ़ के मैदानों के अवशेष हैं जिन्हें काटकर नदी ने नया बाढ़ का मैदान बना लिया है ।

Flood tide (ज्वार धारा) जब सागरों में जल ऊपर उठने लगता है तो उसे ज्वार कहते हैं और यह जल एक प्रबल ज्वार की धारा बनाता हुआ नदियों के मुहानों में वेग से प्रवेश करता है । जब यह ज्वार की धारा बहती रहती है तो समुद्र की मुहाने की ओर बहती हुई नदी के शुद्ध जल के प्रभाव का अनुभव करना असम्भव हो जाता है । लघु ज्वार के बाद और दीर्घ ज्वार के पहिले ज्वारधारा का अनुभव होता है ।

Flora (वनस्पति मंडल) किसी प्रदेश या किसी काल विशेष की वनस्पति, पेड़ पौधों आदि को उस प्रदेश या उस युग का वनस्पति मंडल कहते हैं ।

Fog (कोहरा) वायुमण्डल की निचली तहों में जलवाष्प के द्रवीभूत कणों की घनी राशि या धुँये व धूल के कणों के समूह को कुहरा कहते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय ऋतु विज्ञान के अनुसार कुहरा तभी मानते हैं जब दशक से १ किलोमीटर दूरी की वस्तु को देखना भी दुर्लभ हो जाय । यदि ऐसा नहीं होता तो उसे धुंध या धुँधलापन ही कहते हैं । (देखिये **Mist, Haze**)

वास्तव में वायुमण्डल की निचली तहों में जलवाष्प का द्रवीभवन ही कुहरे का कारण है । परन्तु कुहरा उत्पन्न करनेवाली द्रवीभवन क्रिया किसी ठंडे तल या वस्तु के सम्पर्क से कदापि नहीं होती । ओस या पाले में तो किसी ठंडी वस्तु से वायु का सम्पर्क हो जाने से जल की बूँदें बन जाती हैं । परन्तु कुहरे व धुन्ध में वायु का द्रवीभवन अपने भीतर ही हो जाता है और इस प्रकार द्रवीभूत जलवाष्प से पूर्ण वायु जब पृथ्वी के समीप से गुजरती है तो कुहरा या धुंध पड़ने लगता है । परन्तु कुहरा धुन्ध से भी एक ओर आने में भिन्न है । धुन्ध तो गर्म व ठंढी हवाओं के मिलने या गर्म हवा के ठंढे स्तर पर से गुजरने के कारण बन जाते हैं । इसके विपरीत कुहरा तो एक प्रकार का छोटा मेघ है । इस में जलवाष्प के कण धूल या धुँये पर द्रवीभूत होकर जाते हैं । परन्तु यह केवल स्थलीय कुहरे के विषय में ही सत्य है । समुद्री कुहरे में द्रवीभूत जलवाष्प के कण नमक के कणों पर लटके रहते हैं ।

कुहरा या तो शीतल व स्वच्छ रात में पृथ्वी से ताप विकेन्द्रीकरण के कारण बन जाते हैं या किसी ठंडे धरातल के स्पर्श से । प्रथम कारण से बने कुहरा को **विकेन्द्रीकरण कुहरा** कहते हैं और दूसरे को **स्पर्शण कुहरा** कहते हैं । वास्तव में विकेन्द्रीकरण से ही कुहरा अधिक पड़ता है । स्पर्शण कुहरा तो केवल समुद्र तटीय प्रदेशों तक सीमित रहता है । वहाँ जल की अपेक्षा स्थलखंड अधिक ठंडा रहता है, अतएव जल के ऊपर की जलवाष्पमय हवा थल के ठंडे धरातल पर से गुजरते समय द्रवीभूत हो जाती है और कुहरा बन जाता है । परन्तु थल का

कुहरा प्रायः विकेन्द्रीकरण द्वारा ही बनता है। पृथ्वी तो गर्म रहती है परन्तु उसकी वास्तविक सतह ताप विकेन्द्रीकरण के द्वारा ठंडी हो चुकी होती है। अतः इस पर से गुजरने वाली वायु में उपस्थित जलवाष्प के कण धूल के कणों पर द्रवीभूत हो जाते हैं। इस प्रकार से बने कुहरा को **स्थलीय कुहरा** भी कहते हैं। इसके विपरीत ठंडी हवा के अपेक्षाकृत गर्म समुद्री या स्थलीय प्रदेश में प्रवेश करने से बने कुहरा को **समुद्रीय कुहरा** कहते हैं।

कुहरा बनने के लिये शान्त वायु और रात में साफ आसमान होना चाहिये। यदि हवा तेज हुई तो जलवाष्प की द्रवीभूत राशि इधर-उधर फैल जायगी और स्थान विशेष पर घनी न रह सकेगी। इसीलिये सूर्योदय के थोड़ा बाद कुहरा बहुत घना रहता है और तीसरे पहर के पहिले-पहिले गायब हो जाता है। जाड़ों में कुहरा कभी-कभी कई दिनों तक बना रहता है। स्थलीय कुहरा प्रायः पतझड़ व जाड़े के मौसम में होता है और समुद्री कुहरा वसन्त व गर्मी के मौसम में। समुद्री कुहरा वहीं घना होता है जहाँ हवा तेज नहीं और दूसरे जहाँ हिमशैलखंड बहते हों। इसलिये अमरीका के समीप ग्रान्ड बैंक में कुहरा खूब पड़ता है।

कुहरे की गहराई जगह-जगह अलग होती है। साधारणतया कुहरा १००० फीट से नीचे ही दिखलाई पड़ता है परन्तु समुद्र पर कुहरा कभी इतना कम घना व नीचे तक रहता है कि चट्टानों का मस्तूल भी इसके बाहर ऊपर को निकला रहता है। धुन्ध की अपेक्षा कुहरा सूखा रहता है और इसके घनत्व के अनुसार ही विभिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं। जब कुहरा घना होता है तो उसके प्रभाव के कारण आँख व गले में जलन होने लगती है। औद्योगिक केन्द्रों में कभी-कभी **धुँयें का कुहरा** बन जाता है। इसमें अदृश्यता का मुख्य कारण धुएँ के कण होते हैं और यह वहीं होता है जहाँ कारखानों व घरों की चिमनियों से बहुत धुँआ निकला करता है। लेकिन इन प्रदेशों में जब जल की बूँदों व धुँये के मिश्रण से कुहरा पड़ता है तो वह बड़ा ही भीषण होता है। मरुस्थलीय प्रदेशों में इसी प्रकार **धूल का कुहरा** बन जाता है।

Fog Bow (कुहरा धनुष) कुहरे के समय सूर्य के सामने की दिशा में दिखलाई पड़ने वाले धनुषाकार श्वेत प्रकाश को कुहरा धनुष कहते हैं। वास्तव में कुहरा धनुष का आकार व कारण वही होता है जो इन्द्र धनुष का परन्तु जल की बूँदों के छोटा होने के कारण रंग अलग-अलग नहीं दिखलाई पड़ते और इसीलिये उसका रंग सफेद दिखलाई पड़ता है। फिर भी कुहरा धनुष के आन्तरिक किनारे का रंग हलका नीला होता है और उसका बाहरी किनारा कुछ हल्का काला लिए रहता है। कभी-कभी एक कुहरा धनुष के अन्दर दूसरा धनुष भी दिखलाई पड़ता है पर दूसरे धनुष में रंग की व्यवस्था प्रथम बड़े धनुष से बिल्कुल विपरीत होती है।

Fohn wind (फोहन वायु) आल्प्स पर्वत श्रेणी के उच्च शिखरों से उस पर्वत प्रदेश की उत्तरी घाटियों में प्रवाहित होने वाली गर्म व शुष्क वायु को फोहन कहते हैं। जब कभी मध्य यूरोप से होकर एक प्रबल चक्रवात गुजरता है तो वह वायु की प्रबल धारा को अपनी ओर खींच लेता है। आल्प्स पर्वत श्रेणी के दक्षिणी ढालों पर वह वायुराशि जैसे ऊपर उठती है, फैल कर ठंडी हो जाती है और जल या हिम बरसा देती है। जल या हिम वृष्टि के बाद यही हवा जब उत्तरी ढालों पर उतरती है तो दबाव के कारण गर्म व शुष्क हो जाती है। इसके चलने से आल्प्स प्रदेश की उत्तरी घाटियों में तापक्रम १५° से २०° तक बढ़ जाता है। बर्फ पिघल जाती है और पौधे, मकान आदि अत्यन्त सूख जाते हैं।

स्विटजरलैंड के उत्तरी भाग में फोहन हवायें वसन्त ऋतु में सबसे अधिक चला करती हैं और उस समय इनके प्रभाव से घास के मैदानों पर जमी बर्फ पिघल जाती है। पतझड़

के मौसम में भी ये हवायें खूब चलती हैं। इसकी शुष्कता व ताप के कारण फसलों के पकने में सहायता मिलती है और विशेष रूप से अंगूर की बेल लाभ में रहती है।

फोहन हवायें पहाड़ी घाटियों की दिशाओं में ही बहती हैं परन्तु सामान्यतः यह दक्षिण की ओर से चलती प्रतीत होती है। उत्तर से दक्षिण की ओर इसकी फैली हुई घाटियों में यह हवा सबसे प्रबल रहती है।

फोहन की तरह की हवा का सूत्रपात उस समय या वहाँ हो जाता है जहाँ आर्द्रवायु किसी पर्वत श्रेणी पर से होकर गुजरती है। यह आर्द्रवायु यदि चक्रवात के रूप में हुई तो फोहन की तरह प्रबल वायु बहने लगती है। चिनूक, नार्थवेस्टर्न और सभून इसी प्रकार की वायु हैं जो विभिन्न प्रदेशों में प्रवाहित होती हैं।

Fold (मोड़ या घरेरा) भूपटल पर होने वाली आकस्मिक व मन्द गतियों के फलस्वरूप ऊपरी पटल इस प्रकार मुड़ जाता है जैसे कि परत दुहरी हो गई हो। वास्तव में जब भूपटल का एक कठोर भाग दूसरे भाग के विरुद्ध चलता है तो इन दोनों के बीच का क्षेत्र दोहरा हो जाता है और इस पर मोड़ या घरेरे बन जाते हैं। भूपटल का कुछ भाग ऊपर और कुछ नीचे की ओर मुड़ जाता है, जिससे कहीं-कहीं धनुषाकार और झूलाकार स्थान बन जाते हैं।

भूपटल की समानान्तर गति से घरेरे बनते हैं। जब भूपटल की परतों पर दोनों पार्श्वों से दबाव अधिक रहता है तो धनुषाकार पर्वत श्रेणी और झूलाकार घाटियाँ नहीं बन पातीं बल्कि सारा धरातल पंखे की तरह सभी ओर से मुड़ कर उभड़ आता है। जहाँ भूपटल कमजोर होता है वहाँ अधिक दबाव पड़ने पर दरारें बन जाती हैं। ऐसी हालत में जो घरेरे पड़ते हैं वे चोटी पर ऊपर को उभड़े रहते हैं परन्तु नीचे की ओर आकर दो तरफ से अन्दर की ओर झुके रहते हैं। इस प्रकार के मोड़ या घरेरों को **पंखे के समान मोड़ कहते हैं**। इसके विपरीत जब समानान्तर गति का दबाव अपेक्षाकृत साधारण होता है तो साधारण पर्वत व घाटियों की सृष्टि हो जाती है। धनुषाकार और झूलाकार घरेरे की एक क्रमिक पंक्ति सी बन जाती है और इस प्रकार की व्यवस्था को **भूरा पर्वत सम मोड़** कहते हैं।

ऊँचाई व विस्तार के दृष्टिकोण से मोड़ या घरेरे निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं। यदि परतों पर बड़े घरेरों के धनुषाकार शिखर और झूलाकार घाटियों के मोड़ कम ऊँचे व चौड़े हों तो उन्हें खुले हुए मोड़ कहते हैं। इसके विपरीत यदि ये धनुषाकार व झूलाकार मोड़ ऊँचे व सँकरे हों तो उन्हें **संकीर्ण मोड़** कहते हैं।

प्रत्येक मोड़ या घरेरे की अक्ष रेखा पर से उसको दो भागों में बाँटा जाता है और इस प्रकार के प्रत्येक भाग या पार्श्व को मोड़ का अंग या शाखा कहते हैं। मोड़ों की ये शाखायें विभिन्न कोण पर झुकी या खड़ी रहती हैं। उनके इस झुकाव के आधार पर मोड़ या घरेरे को निम्नलिखित ५ प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) **लम्बरूप या सम घरेरे** वे होते हैं जिनकी दोनों शाखायें समान झुकाव पर स्थित हों और जिनकी अक्षरेखा लम्ब रूप अथवा धरातल के साथ समकोण बनाती हो।

(२) **विषम अथवा असमान घरेरे** वे होते हैं जिनकी एक शाखा बहुत झुकी हुई हो पर दूसरी शाखा करीब-करीब लम्बरूप खड़ी हो।

(३) तीसरे प्रकार के घरेरों की एक शाखा धरातल पर बिल्कुल लम्बरूप खड़ी होती है परन्तु दूसरी बहुत झुकी रहती है। इस प्रकार के घरेरों का एक ढाल बहुत तीव्र होता है और दूसरा अत्यन्त कम। एक ओर का हिस्सा सीधी दीवार की तरह खड़ा होता है दूसरी तरफ की शाखा दूर तक फैली रहती है।

(४) **उलटा हुआ मोड़**—जब मोड़ या घरेरे की लम्ब रूप शाखा का ढाल भी उसी ओर को हो जाता है जिस ओर कम ढालू शाखा है तो इस प्रकार के मोड़ को उलटा हुआ मोड़ कहते हैं। इसे कभी-कभी एकदिशावर्त्ती मोड़ भी कहते हैं।

(५) **लेटा हुआ मोड़**—वह होता है जिसकी अक्ष रेखा बिलकुल समतल पर होती है। इसकी दोनों शाखायें इस प्रकार एक ही दिशा में जमीन पर लेटी हुई सी प्रतीत होती हैं।

Folding (घरेरे पड़ना) भूपटल की परतों के धनुषाकार व झूलाकार रूप में मुड़ जाने को घरेरे पड़ना कहते हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप स्तरीय घरेरेदार पर्वत बन जाते हैं। भूपटल की परतों में घरेरे निम्नलिखित कारणों से पड़ जाते हैं : (१) पृथ्वी का आन्तरिक भाग धीरे-धीरे ठण्डा होकर सिकुड़ रहा है। अतएव ऊपर की पपड़ी पर इसी परिवर्तन के कारण झुर्रियाँ या सिकुड़न पड़ जाती हैं। (२) पृथ्वी की दैनिक गति में परिवर्तन होने से भी भूपटल दुहरा हो सकता है परन्तु इस तथ्य को साबित करने के कोई चिन्ह नहीं मिलते। (३) समानान्तर रूप से स्थित कंकड़-पत्थर की परतों पर दोनों पार्श्वों से दबाव पड़ने के कारण मोड़ बन जाते हैं और पर्वत व घाटियों का निर्माण हो जाता है। धरातल में घरेरे पड़ने का काम दो प्रकार से होता है—(१) धरातल का उभड़ना जिससे मुड़े हुए धनुषाकार पर्वत बन जाते हैं। (२) धरातल पर झुर्री पड़ना। इससे विन्टा प्रकार के स्थलरूप बन जाते हैं।
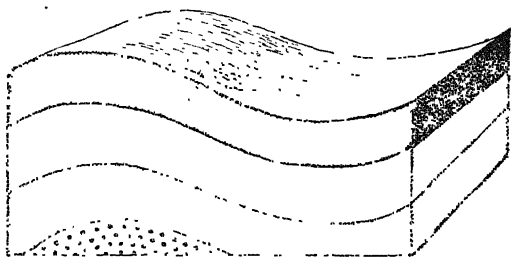
घरेरे पड़ना

Folded mountain (मुड़े हुए पर्वत) नदियाँ मिट्टी अपने साथ बहा ले जाती हैं और उसे समुद्र अथवा झीलों में जहाँ वे गिरती हैं परत के ऊपर परत में इकट्ठा करती जाती हैं। ये परतें पानी द्वारा कड़ी हो जाती हैं। फिर इन्हीं परतों पर कुछ भूकम्पों के आते रहने या चिरकाल से होती हुई पृथ्वी की मन्द गतियों के फलस्वरूप ऊपरी भूपटल पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। इसके बाद इन गतियों की तारतम्यता के कारण घरेरे और मुड़ जाते हैं और उनका स्वरूप धनुषाकार व झूलाकार हो जाता है। इस प्रकार से मुड़ा हुआ घरेरेदार भूभाग जब पृथ्वी की आन्तरिक गति के फलस्वरूप ऊपर उठ जाता है तो सम्पूर्ण प्रदेश में धनुषाकार मोड़ पर्वत श्रेणी बन जाते हैं और झूलाकार मोड़ घाटियाँ बन जाते हैं। इस प्रकार से निर्मित पर्वत प्रदेश को मुड़े हुए पर्वत कहते हैं। ये साधारणतः लम्बी पंक्तियाँ अथवा पर्वतमालायें बना देते हैं। संसार की प्रमुख पर्वत मालायें मुड़े हुये पर्वतों की ही बनी हैं। हिमालय, आल्प्स, राकीज, एण्डीज, पेरीनीस और सेपीनाइन पर्वत श्रेणियाँ इसी प्रकार के मुड़े हुये पर्वत हैं।

मुड़ी हुई पर्वत श्रेणियाँ पृथ्वी की समानान्तर गति द्वारा दिये गये दबाव या धक्के से बन जाती हैं। जिस ओर से यह आघात या धक्का आता है उस ओर का पर्वतीय ढाल नोकदार हो जाता है। आल्पस में सीलिये दक्षिणी श्रेणियों का ढाल नतोदर है और इसके विपरीत हिमालय पर्वत की श्रेणियों की उत्तरी ढाल नतोदर है। जब इस प्रकार की समानान्तर गति की दबाव डालने वाली लहरें आयीं तो उनके मार्ग में कठोर चट्टान की बनी कुछ ढाल

आ गई और फलस्वरूप परतदार चट्टानों में मोड़ उसी अवरोध के हिसाब से पड़ गये। भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप ने जो किसी समय एक विस्तृत चोंचवाला लैंड का भाग था इसी प्रकार की ढाल का काम किया था। इसी गोंडवाना लैंड से टकरा कर परतदार चट्टानें दुहरी हो गईं और हिमालय जैसे विशाल मुड़े हुये पर्वत बन गये।

शुरू में मुड़े हुये पर्वत प्रदेशों का आकार धनुषाकार शिखरों व झूलाकार घाटियों की क्रमिक व्यवस्था से ओतप्रोत रहता है। परन्तु मुड़े हुये पर्वत के बनते ही उन पर आवरणक्षय की शक्तियाँ काम करने लगती हैं। और मुड़े हुये पर्वतों के रूप में बड़ा परिवर्तन कर देती हैं। जल, हिम, वायु द्वारा काट-छाँट होती रहती है। इसलिये जिन पर्वत प्रदेशों में काट-छाँट का काम बहुत दिन तक होता रहता है वहाँ के धनुषाकार शिखर तो झूलाकार घाटियाँ बन जाती हैं और झूलाकार घाटियों की तलैटी पहाड़ी के शिखरों की भाँति खड़ी रह जाती है। इस प्रकार की हालत बहुत पुराने मुड़े हुये पर्वतों में पायी जाती है। अपलेशियन पर्वत प्रदेश में यह खूब उन्नत है और जूरा पर्वत प्रदेश में भी इस प्रकार की गति का सूत्रपात हो गया है। इस प्रकार मुड़े हुये पर्वतों में शुरू-शुरू में तो ऊँचे नुकीले शिखर व श्रेणियाँ तथा सँकरी घाटियाँ पायी जाती हैं परन्तु आवरण क्षय द्वारा अन्त में सम्पूर्ण पर्वत प्रदेश ऊबड़-खाबड़ टीलों से युक्त मैदान सा ही रह जाता है। परन्तु यह सब चट्टानों की प्रकृति आवरणक्षय की शक्ति और प्रदेश विशेष में भूपटल की गति पर निर्भर रहता है।

Ford (फोर्ड) नदी या अन्य जलाशय के उस सँकरे व उथले जलभाग को फोर्ड कहते हैं जहाँ पैदल ही पानी में घुस कर उसे पार किया जा सकता है।

Forest (वन) जहाँ वृक्ष अधिक संख्या में और इतने पास-पास उगते हैं कि उनके शिखर एक दूसरे से मिल जावें तो उन्हें वन कहा जाता है। वृक्षों की सघनता वनों का प्रधान लक्षण है। वन ऐसी सघन वनस्पति के लिए पर्याप्त वर्षा तथा तापक्रम चाहिये। मिट्टी का स्वभाव भी आर्द्रता की आवश्यकता को प्रभावित करता है। वनों के अनुकूल प्राकृतिक परिस्थिति वह है जिसमें वृद्धि के समय पर्याप्त वर्षा तथा तापक्रम मिलकर के मिट्टी नमी को रोके रहनेवाली हो और प्रचलित वायु का वेग बहुत तेज न हो। ये सुविधायें जहाँ जितनी सुलभ होती हैं वहाँ वन उतने ही सघन होते हैं।

पंक्तियों के आकार, लकड़ी की विशेषता और हरीतिमा के काल के आधार पर वनों को निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है--(१) चौड़ी पत्तीवाले तथा नुकीली पत्तीवाले, (२) कठोर लकड़ी वाले और मुलायम लकड़ी वाले, (३) सदाबहार और पतझड़वाले। (देखिये **Coniferous Forest, Deciduous Forest, Equatorial Forest, Evergreen Forest**)

वन राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं और इनसे बहुत से लाभ हैं। अप्रत्यक्ष रूप से तो ये देश के तापक्रम तथा वर्षा पर असर डालते हैं। तापक्रम कम हो जाता है और वर्षा की मात्रा बढ़ जाती है। वन के वृक्ष मिट्टी को बहने से रोकते हैं और वर्षा के पानी का प्रभाव कम करते हैं। पेड़ों के पत्ते तथा अन्य पौधे सड़कर मिट्टी में मिल जाते हैं तथा उसको उपजाऊ बनाते हैं। वनों से देश-प्रदेश की प्राकृतिक शोभा भी बढ़ती है। इसके अलावा वनों से हमें बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ मिलती हैं जिन पर बहुत से उद्योग-धन्धे निर्भर रहते हैं। दियासलाई, कागज और कृत्रिम रेशम का उद्योग वन की लकड़ी पर ही निर्भर है। इसके अलावा वनों से बहुत प्रकार की व्यापारिक लकड़ी प्राप्त होती है जो बहुत कामों में आती है। इसके अलावा बहुत से गौण पदार्थ भी पाये जाते हैं जो गोंद, तेल आदि के रूप में प्रयोग किये जाते हैं परन्तु वनों

की गौण उपज उष्ण कटिबन्धीय वनों में विशेष रूप से पायी जाती हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय वनों से बहुमूल्य व्यापारिक लकड़ी प्राप्त होती है।

Form Lines (आकार रेखाएँ) अन्दाज से खींची गई समोच्च भूमि दर्शक रेखाओं को आकार रेखाएँ कहते हैं। यन्त्र द्वारा निर्धारित समोच्च भूमि दर्शक रेखाओं के बीच आँख द्वारा अनुमानित ऊँचाई के आधार पर आकार रेखाएँ खींच दी जाती हैं। प्रायः आकार रेखाओं को विन्दुओं द्वारा चित्रित करते हैं और वास्तविक समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं को पूर्ण रेखाओं द्वारा । इन आकार रेखाओं के सहारे भूप्रकृति की बनावट के विषय में सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना सम्भव होता है। इसलिये उन मानचित्रों में जहाँ निम्न भूमि का चित्रण किया जाता है और जहाँ विभिन्न समोच्च भूमिदर्शक रेखाओं के बीच अन्तर अधिक रहता है वहाँ ही ये आकार रेखायें खींची जाती हैं।

Fosse (फॉस) पानी मे भरे गड्ढे या खाई को फॉस कहते हैं। फॉस वर्षा के जल के कारण मुलायम मिट्टी के क्षेत्र में या हिम पिघलने पर पर्वतीय स्थानों में अपने आप बन जाते हैं।

Fossil (अवशेषांश) भिन्न युगों व प्रदेशों के जीव-जन्तु तथा वनस्पति के वे अंश जो चट्टानों के बीच दबे पाये जाते हैं, उन्हें अवशेषांश कहते हैं। ये जीवजन्तु व वनस्पति के पेड़, पौधे आदि किसी स्थान पर उगे हुये थे या रहते थे। पृथ्वी की किसी गति प्रभाव से उस प्रदेश में तल परिवर्त्तन हो गया जिससे कि वनस्पति व जीवजन्तु के सहित वह सम्पूर्ण भूभाग समुद्र में समा गया। कालान्तर में समुद्र में लाये गये नदी निक्षेप की परतों के नीचे ये सब दब गये और जब वह भूभाग ऊपर उठ आया या उसमें घरेरे पड़ गये तो साथ-साथ ये अवशेषांश भी चट्टानों की परतों में दबे रहे। यही कारण है कि अवशेषांश परतदार चट्टानों में ही पाये जाते हैं।

ये अवशेषांश दो प्रकार के होते हैं—एक तो जीव अवशेषांश और दूसरे वनस्पति अवशेषांश। इनमें से कुछ तो नष्ट होने के बाद चट्टानों की परत में दबे रह गये और फलतः दबाव के कारण बिल्कुल सूख गये। दूसरे कुछ ऐसे होते हैं जो सम्भवतः किसी ऐसी जगह धँस गये जहाँ वे नाश व घातक जन्तुओं के हमले से सुरक्षित बने रहे।

इन अवशेषांशों के अध्ययन से उस काल या प्रदेश के जीवन का पता लगता है और इससे चट्टानों के इतिहास का भी ज्ञान हो जाता है। हिमालय प्रदेश में पाये जाने वाले मछली अवशेषांश से यह प्रमाण मिलता है कि यह पर्वत प्रदेश किसी समुद्र की तलेटी के उठने से बना है। इन अवशेषांशों से बहुत से ऐसे जीव व वनस्पति का ज्ञान होता है जिनका चिन्ह तक आजकल उपलब्ध नहीं है। अतएव ये अवशेषांश भूगर्भवेत्ता के लिये विशेष महत्व के हैं।

Foucault's Pendulum (फोकल्ट का पेन्डुलम) सन् १८५१ में फोकल्ट ने पृथ्वी की दैनिक गति को प्रमाणित करने के लिये एक बड़े पतले तार में लगे भारी गेंद को प्रयोग किया था। उसके इस यन्त्र को फोकल्ट का पेन्डुलम कहते हैं। पेरिस में पैन्थयिन के गुम्बज को ऊपर से इस यन्त्र को इस प्रकार लटकाया गया कि यह सभी दिशाओं में झूल या घूम सकता था। इस प्रकार लटकाने के बाद इस गेंद से लगे तार को हिला दिया गया। धीरे-धीरे यह देखा गया कि हिलने की दिशा में परिवर्त्तन होने लगा। चूँकि लटकते हुये गेंद में कोई बाहरी शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया था इससे स्पष्ट हो गया कि भूमि या पृथ्वी के घूमने से ही हिलने की दिशा में परिवर्त्तन हो गया। अतएव प्रमाणित हुआ कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है।

इसी प्रकार का एक पेन्डुलम दक्षिणी केनसिंगटन अजायबघर की छत से लटकाया गया। तार को शिखर पर इस प्रकार बाँधा गया कि पेन्डुलम आसानी से हिलडुल सके। एक दफे पेन्डुलम को हिला देने पर वह एक ही दिशा या तल पर रहता है। लेकिन पेन्डुलम के नीचे रक्खी हुई टेबल के घूमने से पेन्डुलम द्वारा अंकित रेखायें एक दूसरे को काटती हुई जाती हैं। इस से प्रमाणित होता है कि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व को घूमती रहती है।

Fragmented Form (**कटी-फटी आकृति**) जिन देशों की स्थिति इस प्रकार होती है कि उनके अन्दर दूर तक समुद्र जीभ की तरह निकला रहता है, उनकी आकृति कटी-फटी कही जाती है। कटी-फटी आकृति के देश का सब से बड़ा दोष यह होता है कि वहाँ गमनागमन व यातायात की बड़ी असुविधा रहती है। संदेशवाहन में भी कठिनाई होती है। यूनान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

Frazile Ice (**टूटने वाला हिम**) यह पारिभाषिक शब्द कनाडा से उत्पन्न हुआ है। नदियों की सतह पर जमने वाली हिम राशि को टूटने वाला हिम कहते हैं। इसका कारण यह है कि तेज बहने वाली नदी धाराओं पर जल के वेग के कारण बर्फ की एक चादर तो बन नहीं पाती बल्कि हिम छोटे-छोटे नुकीले ढेलों की भाँति बहता रहता है। इसे टूटने वाला हिम कहते हैं।

Free Port (**स्वतंत्र बन्दरगाह**) जिस बन्दरगाह या बन्दरगाह के जिस भाग में आयात-निर्यात का माल जहाजों में चढ़ाया या उन से उतारा जाता है परन्तु उन पर आयात या निर्यात कर नहीं लिया जाता है, उसे स्वतंत्र बन्दरगाह कहते हैं। साधारणतया इस प्रकार के बन्दरगाह पुनः निर्यात केन्द्र होते हैं।

Freshet (**प्रवाह**) (१) स्वच्छ जल की धारा को प्रवाह कहते हैं। (२) भारी वर्षा या तेजी से पिघलने वाली बर्फ के पिघलने पर नदी में जो बाढ़ आ जाती है उसे प्रवाह कहते हैं।

Fresh Breeze (**ताजा पवन**) हवाओं की गति के विषय में ब्यूफार्ट मानदण्ड के अनुसार ताजा पवन २१ मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलती है। पत्तीदार छोटे-छोटे पेड़-पौधे इधर-उधर झूमने लगते हैं और आन्तरिक जलाशयों पर छोटी-छोटी हिलोरें उठने लगती हैं।

Fresh Gale (**तेज आँधी**) जब हवा ४२ मील प्रतिघंटा के रफ्तार से चलती है तो तेज आँधी कहते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि पेड़ों की टहनियाँ टूट जाती हैं और सके सामने आगे बढ़ना दुष्कर हो जाता है।

Frigid zone (**शीत कटिबंध**) आर्कटिक और अन्टार्कटिक वृत्त के अन्दर के प्रदेशों को शीत कटिबंध कहते हैं। इस कटिबंध में सूर्य की किरणें हमेशा तिरछी पड़ती हैं। फलतः मौसम कभी भी गर्म नहीं रहता और जब उसी गोलार्द्ध में सब जगह गर्मी का मौसम रहता है उस समय भी यहाँ साधारण सर्दी पड़ती रहती है। जाड़ों में तो यहाँ का मौसम अत्यन्त ठंडा होता है। साल क अधिकतर भाग में बर्फ जमी रहती है।

Friagem (**फ्राइयाँजम**) ब्राजील में स्थित कॉम्पोस नामक उष्णकटिबंधीय घास के मैदानों में जाड़े के मौसम में एक अत्यन्त ठंडी लहर दौड़ जाती है जिसके फलस्वरूप वायुमंडल का तापक्रम बहुत गिर जाता है। इस ठंडक की लहर को फ्राइयाँजम कहते हैं। वास्तव में ब्राजील के ऊपर विरुद्ध चक्रवात की दशायें उपस्थित हो जाने से यह ठंडक की लहर दौड़ जाती है। अमेजन प्रदेश के मध्य भाग में मई या जून के महीने में कभी-कभी

काफी ठंडक हो जाती है और कई दिनों तक बनी रहती है । अक्सर तापक्रम ५०° फार्नहैट से भी कम हो जाता है जिससे कि बड़ी परेशानी हो जाती है और यहाँ के मूल निवासी अक्सर ठंड या सर्दी का शिकार बन जाते हैं ।

Front (सीमान्त) पृथ्वी के धरातल पर ठंडी व गर्म वायु की राशि को अलग करने वाली रेखा को सीमान्त कहते हैं । जब दो भिन्न तापक्रम वाली हवा समानान्तर धाराओं में बहती है तो इस प्रकार का अग्रभाग बन जाता है । वास्तव में उष्णकटिबंध की गर्म हवा और ध्रुवीय प्रदेशों की ठंडी हवा जब एक दूसरे के समानान्तर बहने लगती है तो उनके बीच की विभाजक रेखा पर सीमान्त बन जाता है । इस अग्रभाग के द्वारा दोनों धारायें या वायुराशि एक दूसरे के सम्पर्क में आती है । भूमि पर अग्र भाग की रेखा से एक सीमान्त तल बन जाता है । यह तल या विभाजक रेखा ठंडी वायु के ऊपर से होती हुई ऊपर को उठ जाती है । इस प्रदेश में गर्म वायु हल्की होने के कारण हमेशा ठंडी वायु के ऊपर उठती रहती है । साधारणतया इस प्रकार का सीमान्त चक्रवात में पाया जाता है ।

प्रत्येक के दो विभाग होते हैं—एक गर्म और दूसरा ठंडा । गर्म हवा, ठंडी हवा को अपने सामने ढकेलती ही नहीं है बल्कि साथ-साथ उसके ऊपर भी उठ जाती है और गर्म विभाग के पीछे की ठंडी हवा गर्म हवा के नीचे घुस जाती है । इस प्रकार गर्म विभाग का विस्तार छोटा हो जाता है और कुछ ऊँचा भी उठ जाता है । इस पर ही चक्रवात बन जाते हैं ।

प्रत्येक सीमान्त के दो हिस्से होते हैं—एक को गर्म सीमान्त कहते हैं और दूसरे को शीत सीमान्त कहते हैं । गर्म सीमान्त दाहिनी ओर रहता है और ठंडा सीमान्त बायीं ओर । ऊपर को उठती हुई गर्म हवा फैलकर ठंडी हो जाती है और उसकी आर्द्रता द्रवीभूत हो जाती है । फलत: बादल छा जाते हैं और वर्षा होती है । इन दोनों अग्र भागों के बीच के प्रदेश में मौसम मेघाच्छादित रहता है और तबियत परेशान रहती है । वर्षा का विशिष्ट समय होता है । ठंडे सीमान्त में खूब वर्षा होती है, अक्सर बादल छा जाते हैं, तापक्रम निम्न रहता है और मेघों के बाद फौरन ही आसमान साफ होकर प्रकाशयुक्त हो जाता है । (देखिये **Depression, Cold Front, Warm Front**)

Frontier (सीमा) किसी देश का वह भाग जो दूसरे भाग के किनारे पर स्थित है या दूसरे देश से मिला हुआ रहता है वह सीमा कहलाता है । दो देशों के मिलन स्थान से लगा हुआ प्रदेश सीमा कहलाता है । सुरक्षा, व्यापार-वाणिज्य और राष्ट्रीयता के दृष्टि-कोण से सीमा का विशेष महत्व है । सीमा दो प्रकार की होती है—स्वाभाविक व कृत्रिम । समुद्र, पर्वत, मरुस्थल, दलदल और नदियों से स्वाभाविक सीमा बनती है । स्वाभाविक सीमा वाले देशों पर आक्रमण करना कठिन होता है और इस प्रकार उन देशों में स्वतंत्रता की भावना रहती है । उदाहरण के लिये ब्रिटिश द्वीप समूह की सीमा उसके चारों ओर का समुद्र है और इसलिये वह अभेद्य है । उसमें युद्ध अथवा विप्लव से परिवर्त्तन भी नहीं किया जा सकता । इस कारण देश की आर्थिक स्थिति में स्थिरता आ जाती है । यूरोप के महाद्वीप पर स्थित विविध राष्ट्रों के बीच नदियाँ सीमा बनाती हैं । राइन नदी का मध्य भाग फ्रांस को जर्मनी से अलग करता है; डैन्यूब नदी का मध्य भाग हंगरी और चेकोस्लावाकिया के बीच सीमा बनाता है । इसी प्रकार ड्रेव नदी हंगरी को यूगोस्लाविया से और निम्न डैन्यूब रूमा-निया को बलगेरिया से अलग करती है । वे नदियाँ जो आसानी से पार की जा सकती हैं अच्छी सीमा नहीं बनातीं ।

कृत्रिम सीमा वहाँ होती है जहाँ पर्वत, मरुस्थल जैसे स्पष्ट प्राकृतिक रूपों के अभाव में स्थल पर ऐतिहासिक परिस्थिति व परम्परा, समझौता, सन्धि या युद्ध द्वारा दो देशों के बीच

एक विभाजक रेखा निर्धारित कर ली जाय। कृत्रिम सीमा में राजनीटितक विप्लवों या विश्व युद्धों से बहुत बदल जाती है। यूरोप में दो विश्व युद्धों के फलस्वरूप पोलैंड, चेकोस्लावेकिया, रूमानियाँ आदि की कृत्रिम सीमाओं में समय-समय पर परिवर्त्तन होते रहे हैं। दूसरे महायुद्ध के फलस्वरूप पोलैंड में जर्मनी का ३९,००० वर्गमील प्रदेश शामिल कर दिया गया है। इसी प्रकार रूस की सीमा में भी बाल्टिक राज्यों, तथा रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड और फिनलैंड के कुछ भागों के मिल जाने से काफी परिवर्त्तन हो गया है। कृत्रिम सीमा होने से दोनों देशों में झगड़ा भी अक्सर होता रहता है। सीमा के हेरफेर से इन दोनों देशों का व्यापार व उद्योग-धंधे भी उन्नति अथवा अवनति करते रहते हैं। (देखिये **Boundary**)

Frost (पाला) (१) रात्रि में पृथ्वी जब अपने ऊपर की वायु की अपेक्षा इतनी अधिक ठंडी हो जाती है कि उसका तापांश ३२° से भी निम्न हो जाता है तब वायु में व्याप्त जलवाष्प धरातल पर द्रवीभूत होकर इकट्ठा हो जाता है और तापांश के कम होने के कारण यह एकत्रित जल जम जाता है। इसे पाला कहते हैं।

(२) वायु का तापक्रम जब ३२° फार्नहीट या उससे भी कम रहता है जिस कारण कि पानी जम जाता है तो उसे पाला कहते हैं। पानी के जमने का तापांश ३२° फार्नहीट है और वायु का तापक्रम इस से जितना ही कम होता जाता है उसे पाले की तीव्रता कहते हैं। शीतोष्ण कटिबंध मे ताप विकेन्द्रीकरण के कारण पाला स्थानीय होता है और थोड़े समय तक ही ठहरता है। कभी-कभी विस्तृत क्षेत्र में यह पाला कई रोज तक बना रहता है। पाले की यह दशा ब्रिटिश द्वीप समूह में बहुत देखने में आती है।

Fruit Belt (फल प्रदेश) संयुक्त राष्ट्र अमरीका में मिशीगन झील के पूर्वी किनारे पर ३० मील चौड़ी पट्टी को फल प्रदेश कहते हैं। यहाँ पर झील के कारण जलवायु ऐसी सम हो जाती है कि अंगूर तथा अन्य उसी प्रकार के फल आसानी से उगाये जा सकते हैं। वैसे इन अक्षांशों में स्थित अन्य जगहों में इस प्रकार के फलों का उत्पादन सम्भव नहीं है परन्तु इस फल प्रदेश में झील के प्रभाव से फल उग सकते हैं।

Fuel (ईंधन) मनुष्य समाज में जैसे-जैसे अपनी सभ्यता का विकास करता गया वैसे-वैसे वह प्रकृति के अधिक लाभ उठाता गया। धीरे-धीरे मनुष्य ने प्रकृति पर अपना अधिकार जमाकर उससे बहुत से पदार्थ बनाना शुरू कर दिया। इसके लिये उसे शक्ति की आवश्यकता पड़ती थी और शक्ति उत्पन्न करने के लिये उसने जिन चीजों का प्रयोग किया या जिनके द्वारा उसे शक्ति मिली, उन्हें ईंधन कहते हैं।

वास्तव में शक्ति के साधन या ईंधन का स्वरूप समय के अनुसार बदलता रहा है। आरम्भ में मनुष्य स्वयं अपनी शारीरिक शक्ति द्वारा ही सारे उत्पादन कार्य करता था। धीरे-धीरे उसे ज्ञात हुआ कि पशुओं की शक्ति उससे कहीं अधिक है। इसलिए भारी कामों में पशुओं से सहायता ली जाने लगी। आज भी माल ढोने या मेहनत के काम में पशुओं व मनुष्यशक्ति का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इन्हें हम ईंधन नही कह सकते क्योंकि इनका प्रयोग चालकशक्ति उत्पादन में नहीं होता। वास्तव में चालकशक्ति के ये ही स्रोत हैं। अतएव ईंधन, जिसके द्वारा चालक शक्ति उत्पन्न होती है वह निम्नलिखित हैं :—

(१) **हवा**—का प्रयोग सब जगह नहीं हो सकता परन्तु जब भी हवा तेज चलती है वहाँ हवा से ही कारखाने चलाये गये हैं। हवा में बड़ी शक्ति होती है। उन्नीसवीं सदी तक जहाज चलाने में भी हवा का प्रयोग किया जाता था। हालैंड और बैलजियम के समुद्रतट पर आज भी आटा पीसने के कारखाने हवा से ही चलते हैं।

(२) **लकड़ी** का ईंधन के रूप में उपयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है। जहाँ कोयला नहीं मिलता वहाँ आज भी लकड़ी के कोयले का उपयोग होता है। स्वीडन की रेलों के इंजनों में लकड़ी जलाई जाती है: कांगो नदी के बेसिन में स्टीमबोट लकड़ी का ही उपयोग करती है। परन्तु लकड़ी भारी होने के कारण अधिक व्ययशील होती हैं और यदि लकड़ी का अधिक उपयोग किया जाने लगे तो वन प्रदेश के खतम हो जाने का डर है।

(३) **जल**—का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आया है। जहाँ जल बराबर तेजी से बहता रहता है वहाँ आज भी आटे की चक्कियाँ पानी की शक्ति से ही चलाई जाती हैं। आजकल उच्च जलप्रपातों से गिरते हुए पानी से जलविद्युत उत्पन्न करके उसे कारखानों में प्रयोग करते हैं। नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, कनाडा आदि में जलविद्युत के प्रयोग से ही लकड़ी चीरने के कारखाने चलते हैं। (देखिये Hydroelectricity)

(४) **कोयला** का ईंधन के रूप में प्रयोग पिछले डेढ़ सौ बरषों से होता है। यन्त्रों के आविष्कार के साथ ही कोयले का भी उपयोग होने लगा है और आजकल के युग में कोयला अत्यन्त महत्वपूर्ण ईंधन हो गया है। (देखिये Coal)

(५) **तेल** जलाने में, मशीनों तथा इंजनों के चलाने में काम आता है। डेसिल इंजन के आविष्कार के कारण तेल की माँग बहुत बढ़ गई है। (देखिये Petroleum)

Fuelling Station (ईंधन केन्द्र) जो जहाज अपनी पूर्ण यात्रा के लिये पर्याप्त कोयला या खनिज तेल लेकर नहीं चलते, उन्हें अपने लिये ईंधन का प्रबन्ध करने के लिये बीच में स्थित बन्दरगाहों पर रुककर कोयला या तेल लेना पड़ता है। इस प्रकार से ईंधन का प्रबन्ध करने वाले बन्दरगाह ईंधन केन्द्र कहलाते हैं। (देखिये Coaling Station)

Fumarole (धुँआरे) पृथ्वी के भूपटल पर अक्सर ऐसे छेद पाये जाते हैं जिनमें नीचे के दबाव के कारण कई प्रकार की गैसें व भाप निकला करती हैं। इस प्रकार के छिद्रों को धुँआरे कहते हैं। इनसे प्रधानत: कारबन डाइआक्साइड गैस निकलती रहती हैं। ये साधारणतया ज्वालामुखी प्रदेशों में पाये जाते हैं। जब ज्वालामुखी के धुँआरे उद्गार वन्द हो जाते हैं तो पृथ्वी के नीचे की पिघली हुई चट्टानों से भाप बनने लगती है। यही भाप इन छिद्रों से बाहर निकलती रहती है। अलास्का में काटभाई ज्वालामुखी के समीप कई वर्ग-मील क्षेत्र में जगह-जगह इस प्रकार के धुँआ से भरा हुआ है और दूर से देखने पर हर जगह से धुँआ निकलता दिखलाई देता है। इसीलिये इस प्रदेश का दस हजार धुँये की घाटी कह कर पुकारते हैं।

Funnel Cloud (कुप्पीनुमा बादल) किसी समुद्र पर चक्रदकार हवा के बहने से कभी-कभी जल का खम्भा-सा बन जाता है और इस जल खम्भ के ऊपर कुप्पीनुमा बादल बन जाते हैं जो कभी-कभी इतने लम्बे होते हैं कि उनका निचला भाग पृथ्वी के धरातल तक पहुँच जाता है। इस प्रकार कुप्पीनुमा बादल जिनका ऊपरी भाग चौड़ा व घना तथा निचला भाग पतला व छितरा हुआ होता है बहुधा टारनैडो के बहने पर भी बन जाते हैं। इनका रंग काला और इनकी गति बड़ी तेजी से होती है। परन्तु इन का विस्तार, विशेषतया धरती के समीप अधिक नहीं रहता। अधिक से अधिक ये कुछ फीट या गज चौड़े होते हैं। चूँकि ये कुप्पीनुमा बादल चक्करदार हवाओं के फलस्वरूप बन जाते हैं, इनके साथ में बड़ी गर्जना होती रहती है।

Gale (आँधी) जब हवा बड़ी तेज चलती है तो उसे आँधी कहते हैं। यह आँधी ३५ मील प्रति घण्टा से लेकर ५९ मील प्रति घंटा तक चलती है और ऋतु विशेषज्ञों के अनुसार इस के चार प्रकार होते हैं :—

(१) **साधारणआँधी**––में वायु की गति करीब ३५ मील प्रति घण्टा होती है और इसके प्रभाव से पूरे पेड़ हिलने लगते हैं। जब सामने से आँधी चलनी हो तो विशेष कठिनाई होती है।

(२) **तेज आँधी**––में वायु की गति करीब ४२ मील प्रति घण्टा होती है और इसका प्रभाव यह होता है कि पेड़ों की टहनियाँ टूट जाती हैं तथा इसके सन्मुख आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

(३) **अति तीव्र आँधी**––की वायु गति ५० मील प्रति घण्टे तक होती है और इससे इमारतों को हानि पहुँचती है। इमारतों की खपरैल व चिमनी का ढक्कन वगैरह उड़ जाते हैं।

(४) **भीषण आँधी**––का अनुभव स्थल भागों में तो कभी-कभी ही होता है। अधिकतर समुद्री खुले प्रदेशों में ही यह भीषण आँधी चलती है और इसकी गति ५९ मील प्रति घण्टा तक होती है। इसके प्रभाव से बड़े-बड़े पेड़ जड़ से उखड़ जाते हैं और इमारतें टूट-फूट कर ढह जाती हैं।

Gall's projection (गाल्स अंकन) गाल्स अंकन सामान्य बेलनाकार अंकन का ही एक भेद होता है। इसमें और अन्य बेलनाकार अंकन में केवल इतना ही भेद है कि जब कि अन्य-अन्य बेलनाकार अंकनों में कागज का बेलनाकार चोंगा भूमध्य रेखा पर ग्लोब को छूता है इसमें कागज का बेलनाकार चोंगा ग्लोब को ४५° दक्षिणी व उत्तरी अक्षांश रेखायें काटता हुआ गुजरता है। प्रकाश ग्लोब के व्यास के अन्तिम विन्दु से डाला जाता है।

इसमें देशान्तर रेखायें समान अन्तर पर खींची गई लम्बरूप रेखायें होती हैं। ४५° दक्षिणी व उत्तरी अक्षांश रेखाओं को यथार्थ मानदण्ड के अनुसार खींचा जाता है और अन्य सभी अक्षांश रेखायें इन दोनों अक्षांशों के बराबर लम्बाई की होती हैं। इन दोनों समानान्तरों से भूमध्य रेखा की ओर जाने पर देशान्तर अक्षांश मानदण्ड घटता जाता है और इसके विपरीत इनको ध्रुव प्रदेशों की ओर जाने पर यह मानदण्ड में उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

वैसे तो यह अंकन मरकेटर अंकन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है परन्तु इसमें न तो दिशायें व क्षेत्रफल ही ठीक रहता है और न देश प्रदेशों के आकार ही दुरुस्त रह पाते हैं। परन्तु चूँकि उच्च अक्षांशों में विषमता व विकृतीकरण अधिक नहीं होता इसलिये इसे सामान्य संसार मानचित्रों के लिये प्रयोग करते हैं।

Gangue (गॉन्ग) जब पृथ्वी के अन्दर से धातुयें निकाली जाती हैं तो वे कच्चे रूप में रहती हैं और बहुत-सी अन्य व्यर्थ वस्तुओं के साथ मिले हुये ढोंकों में निकलती हैं। किसी परत या ढोके में कच्ची धातु के चारों ओर लगा हुआ या उसके साथ मिला हुआ कम मूल्य का साधारण पदार्थ गॉन्ग कहलाता है। यह गॉन्ग प्रायः अधातुरूप पदार्थ होता है और इस में से ही धातु को अलग करने पर वास्तविक धातु प्राप्त होती है। क्वार्टज इसी प्रकार का एक पदार्थ है। बहुत-सी धातुओं व खनिज पदार्थों के साथ लगी हुई अनेक प्रकार की चूना मिट्टी को भी इसी नाम से पुकारा जाता है।

Garigue (गॅरिग) जिस प्रदेश की भूमि या तो इतनी अनुपजाऊ हो या वहाँ वर्षा की मात्रा इतनी कम हो कि झाड़ी तक लगातार न उग सके, वहाँ दूर पर इधर-उधर छोटी-छोटी झाड़ियाँ पायी जाती हैं और दो झाड़ियों के बीच बंजर भूमि पड़ी रहती है। स प्रकार की वनस्पति व्यवस्था को गॅरिज कहते हैं। अधिकतर चूने की चट्टानों से बनी भूमि के क्षेत्रों में गॅरिग पाये जाते हैं। खेती के दृष्टिकोण से या आर्थिक उपयोग के अनुसार

इनका कुछ भी महत्व नहीं है। इनके सहारे केवल कुछ बकरियाँ ही पाली जा सकती हैं। गौरिग में पाये जाने वाले पौधे दो प्रकार के होते हैं--एक तो वे जिन में शीघ्र मुरझा जाने वाले फूल निकलते हैं जैसे ब्रूम और गोर्स। दूसरे वे जिनसे सुगन्धि निकला करती है जैसे लेवन्डर और थाइम।

Garden Crop (बगीचे की फसल) छोटे भूमि क्षेत्र में अधिक पूँजी व परिश्रम लगाकर उत्पन्न की गई फसलों को बगीचे की फसल कहते हैं। फल, तरकारी और फूल इसी प्रकार के बगीचे की फसलें हैं जो उपभोग के स्थान के समीप ही छोटे-छोटे भूमिक्षेत्रों जिन्हें बगीचे कहते हैं, वहाँ उगाये जाते हैं। सेव, अंगूर, नींबू, नारंगी, केला, अन्नास व खजूर आदि इसी प्रकार की फसलें हैं। चाय, कहवा और कोको को भी बगीचों में ही उगाया जाता है। तरकारी व फूल भी बड़े-बड़े नगरों के समीप के छोटे-छोटे बगीचों में ही उगाये जाते हैं। इनमें केवल एक बात का ध्यान रखना होता है कि उत्पादन की मात्रा को जितना अधिक बढ़ाया जा सके उतना अच्छा है। साथ-साथ उपभोग के केन्द्रों के समीप ही उगाते हैं। परन्तु शीत भण्डार रीति के आविष्कार होने से अब बगीचे की फसलों को दूरस्थ प्रदेशों में भी उगाना शुरू कर दिया गया है। तरकारियाँ अभी भी उपयोग के केन्द्रों के समीप ही उगाई जाती हैं।

Garua (गरुआ) पीरू के पश्चिमी भाग में जाडे के दिनों में बडा घना धुंध पड़ता है और कभी-कभी जलफुहार भी पड़ने लगती है। इसे गरुआ कहते हैं। पीरू के तटीय प्रदेशों में तो यह धुंध व जलफुहार इतना घना हो जाता है कि सम्पूण प्रदेश बादल के एक मोटे कम्बल से ढक जाता है। इसी से पीरू को जलवृद्धि प्राप्त होती है और थोड़ी-बहुत जो कुछ भी वर्षा होती है वह इसी धुंध रूप बादल गरुआ से प्राप्त होती है।

Gauge (रेल प्रान्तर) किसी रेल मार्ग में रेल की दोनों पटरियों के आन्तरिक पार्श्वों के बीच के अन्तर को रेल प्रान्तर कहते हैं। अलग-अलग देशों में रेल प्रान्तर भी भिन्न होता है। साधारणतया रेल प्रान्तर तीन प्रकार के होते हैं :--

(१) **चौड़े रेल प्रान्तर**--जिनमें रेल की दोनों पटरियों के बीच का फासला ५ फीट या उससे अधिक होता है। भारत में चौडे रेल प्रान्तर की चौड़ाई ५ फीट ६ इंच होती है।

(२) **आदर्श रेल प्रान्तर**--में दोनों रेल की पटरियों के बीच की दूरी ४ फीट ८॥ इंच होती है।

(३) **सँकरी रेल प्रान्तर**--में वे सभी रेल मार्ग आ जाते हैं जिन की रेल की पटरियों के बीच की चौड़ाई ३ फीट ६ इंच या उससे कम होती है।

Geest (गीस्ट) स्थल खंड पर पाया जाने वाला अति पुराना मृत्तिकामय निक्षेप गीस्ट कहलाता है। गीस्ट नदियों द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी-बालू के पुराने निक्षेप से बन जाती है। उत्तर सागर के तटीय प्रदेशों पर स्थित उत्तरी जर्मन मैदान में स्थित झाड़ी से घिरे हुए वन क्षेत्रों को गीस्ट कहते हैं और यह पारिभाषिक शब्द उसी प्रदेश के लिये विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

General Geography (सामान्य भूगोल) सम्पूर्ण संसार और पृथ्वी के भौगोलिक अध्ययन को सामान्य भूगोल कहते हैं। इसके अन्दर पृथ्वी के जीवन व सम्पूर्ण संसार को प्रभावित करनेवाली प्राकृतिक परिस्थियों का अध्ययन किया जाता है। इस सामान्य भूगोल में पृथ्वी के सभी तथ्यों का सामान्यत: निरूपण व विवरण दिया जाता है। इसमें कोई बात भी छोड़ी नहीं जाती और न किसी बात का सूक्ष्म वर्णन ही दिया जाता है। इसमें पृथ्वी

सम्बन्धी सभी साधारण बातों का स्थूल विवेचन मात्र रहता है। इसका न तो कोई विशेष दृष्टिकोण ही होता है और न कोई विशेष उद्देश्य ही। सामान्य भूगोल का एक मात्र ध्येय पाठकों को पृथ्वी के सभी अंगों का परिचय कराना रहता है।

Gentle Breeze (मन्द पवन) जब हवा की गति करीब-करीब १० मील प्रतिघंटा होती है और जब उसके प्रभाव से पेड़ों की पत्तियाँ व टहनियाँ बराबर हिलती रहती हैं तब उसे मन्द पवन कहते हैं। मन्द पवन चलने से हल्के कपड़े का झण्डा भी फहर जाता है।

Geoanticline (भूश्रृंग या भूप्रतिनति) अति विस्तृत क्षेत्र पर बने धनुषाकार मोड़ को भूश्रृंग कहते हैं। यह भूश्रृंग कई मीलों तक फैला रहता है और इसका निर्माण भूपटल पर घरेरे पड़ते रहने से क्रमशः हो जाता है। वास्तव में जब कोई पर्तदार चट्टान का मुलायम भूभाग दो दृढ़ चट्टानों के बीच में होता है तो एक ओर की चट्टान भीतरी शक्ति से प्रभावित होकर उसको ढकेलती है। दूसरे ओर की दृढ़ चट्टान अपने स्थान पर अचल रहती है और यदि यह दबाव डालने वाली समानान्तर गति क्रमशः चलती रही तो यह बीच का विस्तृत भूभाग एक बार ही दुहरा होकर रह जाता है। उसमें कई लहरदार मोड़ नहीं बन पाते। इस प्रकार से दुहरे हुये भू भाग को ही भूश्रृंग कहते हैं और इस पर आवरण क्षय के बराबर साथ-साथ होते रहने से ये भूश्रृंग विस्तृत पर क्रमशः ढालवाले हो जाते हैं।

Geodesy (भूपरिमाण विज्ञान) भूपटल की आकृति, विस्तार, भार व घनत्व आदि के माप सम्बन्धी अध्ययन को भूपरिमाण कहते हैं। इसके अन्तर्गत पृथ्वी के धरातल के उन विस्तृत भागों की पैमाइश को भी सम्मिलित करते हैं जिससे पृथ्वी के मुड़ाव व घुमाव पर ध्यान दिया जाता है।

Geographical Mile (भौगोलिक मील) एक डिग्री के साठवें भाग या अक्षांश के एक मिनट के बराबर दूरी को भौगोलिक मील कहते हैं। इस प्रकार भौगोलिक मील का विस्तार अक्षांश पर निर्भर रहता है और अक्षांश रेखा के अनुसार भौगोलिक मील का विस्तार भी घटता-बढ़ता रहता है। अनुमानतः भौगोलिक मील का सामान्य विस्तार ६,०८० फीट होता है। (देखिये **Statute Mile, Nautical Mile**)

Geography (भूगोल शास्त्र) पृथ्वी के धरातल की प्राकृतिक बनावट जलवायु, उपज, निवासी आदि के वर्णन व वितरण सम्बन्धी विषय को भूगोल शास्त्र कहते हैं। भूगोल विज्ञान में समन्वित तथ्य भूगर्भ शास्त्र, ऋतु विज्ञान, सौर विज्ञान, प्राणि विज्ञान आदि से प्राप्त होते हैं।

अपने आसपास की बातों को जानने के लिये उत्सुक होना मानव स्वभाव है। प्रत्येक मनुष्य यह जानना चाहता है कि अमुक बात उसके इर्द-गिर्द कैसे और क्यों होती है? यही स्वाभाविक जिज्ञासा भूगोलविज्ञान एवं अध्ययन की जननी है। जब मनुष्य इन प्रश्नों के उत्तर पाने की खोज करता है तभी उसका भूगोल सम्बन्धी अध्ययन प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भूगोल उस शास्त्र या विद्या का नाम है जो मनुष्य को उसकी प्राकृतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के बीच अध्ययन कराती है। इसके अन्तर्गत पृथ्वी के धरातल का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि पृथ्वी पर स्थित विभिन्न क्षेत्रों के बीच अन्तर व सम्बन्ध स्पष्ट हो जाय।

भूगोल विज्ञान इतना व्यापक व विस्तृत विषय है कि इसके अन्तर्गत मनुष्य व प्रकृति के समस्त पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। सामान्यतः इसके चार प्रकार या विभाग

माने गये हैं--(१) **गणित भूगोल** जिसके अन्तर्गत पृथ्वी के विस्तार, आकार, व गतियों का विवेचन होता है।

(२) **प्राकृतिक भूगोल**--जिसके अंतर्गत पृथ्वी के धरातल की बनावट का अध्ययन होता है। सामान्यतः इसी के अन्तर्गत भूप्रकृति विज्ञान को भी शामिल कर लेते हैं।

(३) **मानव भूगोल**--इसके अन्तर्गत मनुष्य उसके जीवन व रहन-सहन तथा उसकी परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

(४) **आर्थिक भूगोल**--इसके अन्तर्गत मनुष्य की आर्थिक प्रयत्नों--वस्तुओं के उत्पादन वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन किया जाता है।

Geographical momentum (भौगोलिक प्रगति) जिन प्रदेशों में प्राकृतिक परिस्थितियाँ--स्थिति, विस्तार, जलवायु, वनस्पति--ऐसी होती है जो मनुष्य को सहायता पहुँचाती है और जिसका विरोध करके मनुष्य को अपना मार्ग नहीं बनाना होता, वहाँ के लोग अपेक्षाकृत जल्दी उन्नति कर पाते हैं। इस प्रकार की सहायक परिस्थितियों के कारण की गई उन्नति को भौगोलिक प्रगति कहते हैं।

सामान्यतः यह देखा जाता है कि जिस प्रदेश में मनुष्य अपनी परिस्थिति को अपने बुद्धि-बल से जितना अधिक बदल सका है उनकी संस्कृति व सभ्यता उतनी ही अधिक उच्चतर हो गई है। विज्ञान के सहारे मनुष्य को अपनी विरोधी परिस्थितियों पर काबू पाने में बड़ी सहायता मिली है। परन्तु जहाँ परिस्थितियाँ सहायक या सुविधाजनक रहीं वहाँ मनुष्य को परिस्थितियों के साथ विरोध या लड़ने में समय नष्ट नहीं करना पड़ा। फलतः वह इस भौगोलिक प्रगति के कारण अधिक जल्दी तरक्की कर गया।

Geoid (भूआकृति) पृथ्वी की आकृति के विषय में आरम्भ से ही बड़ा मतभेद रहा है और यद्यपि सामान्यतः इसे अंडाकार कह देते हैं परन्तु इससे पृथ्वी की वास्तविक आकृति का ज्ञान नहीं हो पाता। कितनी ही ऐसी विशेषतायें हैं तो अंडाकार शब्द द्वारा स्पष्ट नहीं होतीं। इस कठिनाई के कारण बहुधा पृथ्वी के आकार को भूआकृति कहते हैं। इसका अर्थ यह कि पृथ्वी का आकार पृथ्वी की ही तरह है।

Geology (भूगर्भतत्व विज्ञान) पृथ्वी की रचना, बनावट और इतिहास सम्बन्धी अध्ययन को भूगर्भ तत्व विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्यों का विवेचन किया जाता है--पृथ्वी किन वस्तुओं से मिलकर बनी है, इन पदार्थों पर कौन-कौन सी शक्तियाँ प्रभाव डाला करती हैं? भूपटल पर कौन सी चट्टानें पायी जाती हैं और वे कहाँ-कहाँ स्थित हैं? पृथ्वी का आदि रूप क्या था और किस प्रकार वह अपने वर्त्तमान रूप में आई? पृथ्वी किस प्रकार बनी और उस पर शुरू से कैसे जीव-जन्तुओं व वनस्पति का प्रादुर्भाव हुआ? विभिन्न युगों में पृथ्वी की क्या दशा रही इसका इतिहास भी इसी विज्ञान के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार चट्टानों के बीच पाये जाने वाले जीव व वनस्पति अवशेषांशों का भूगर्भतल विज्ञान में बड़ा महत्व है।

भूगर्भ तत्व विज्ञान को अध्ययन की विशेषता के अनुसार दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:--

(१) **प्राकृतिक या रचनात्मक भूगर्भतल विज्ञान**--इसके अन्तर्गत चट्टानों की उत्पत्ति, बनावट, खनिजपदार्थों की विशेषता व वितरण, और भूगर्भ की रचना का अध्ययन किया जाता है।

(२) **ऐतिहासिक भूगर्भतत्व विज्ञान**--इसके अन्तर्गत भूपटल पर पाये जाने वाले निक्षेप

की विविध परतों के स्वभाव व विशेषता का अध्ययन किया जाता है। विविध पर्त्तों के बीच पाये जाने वाले जीव व वनस्पति अवशेषांशों द्वारा उनकी अवस्था, विशेष युगो में पृथ्वी की दशा आदि का ऐतिहासिक अध्ययन भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आता है। इस अध्ययन के आधार पर पृथ्वी की अवस्था व उसके विभिन्न युगों की प्राकृतिक दशा का पता लगाया जाता है।

Geological Map (**भूगर्भ मानचित्र**) जिन मानचित्रों में भूपटल पर पायी जाने वाली चट्टानों तथा उनकी उत्पत्ति व उनकी विशेषताओं का चित्रण किया जाता है उन्हें भूगर्भ मानचित्र कहते हैं। अधिकतर भूगर्भ मानचित्र रंगीन होते हैं और एक विशेष प्रकार के तथ्य को एक विशेष प्रकार के रंग द्वारा चित्रित किया जाता है। यदि ठीक तरह से चुनाव किया जाय तो काले व सफेद लाक्षणिक संकेतों द्वारा भी भूगर्भ मानचित्र बनाये जा सकते हैं।

भूगर्भ मानचित्र निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) **भूगर्भ खंड**—लम्बरूप खींचे जाते हैं और इनको दीर्घ मानदण्ड पर बनाया जाता है जिससे कि भूगर्भ सम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषतायें भी स्पष्ट हो जायँ।

(२) **भूगर्भ स्तंभ**—में किसी प्रदेश की चट्टानों की मोटाई, युग और प्रकार के अनुसार एक स्तम्भ के रूप में चित्रित कर देते हैं। सबसे पुरानी चट्टान सबसे नीचे रहती है और प्रत्येक अंश को उतना ही मोटा रक्खा जाता है कि जितना वह वास्तव में उस प्रदेश में होती है।

(३) **प्राचीन युग सम्बन्धी मानचित्र**—में प्राचीन युगों में पृथ्वी की दिशा व बनावट का चित्र उपस्थित किया जाता है। इनमें वर्त्तमान सीमाओं को विन्दु रेखा द्वारा अंकित कर दिया जाता है ताकि तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके।

Geomorphology (**भूप्रकृति विज्ञान**) पृथ्वी के धरातल की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ स्थल के रूप कहलाती हैं। मैदान, पठार और पर्वत संसार के मुख्य स्थल रूप हैं। इन विभिन्न स्थलरूपों के अन्तर्गत पृथ्वी के बड़े-बडे रचनात्मक विभाग शामिल हैं। इन सभी स्थलरूपों व उनसे सम्बन्धित रचनात्मक विभागों के उत्पत्ति विषयक अध्ययन को भूप्रकृति विज्ञान कहते हैं।

इस विज्ञान के अन्तर्गत पृथ्वी की प्राकृतिक बनावट, भूपटल का आकार व व्यवस्था तथा वाह्य स्थल रूपों का भूगर्भ रचना से सम्बन्ध आदि सम्बन्धी तथ्यों का विवेचन किया जाता है। स्थूलरूप से हम भूप्रकृति को स्थलरूपों का वर्णनात्मक व विवेचनात्मक अध्ययन कह सकते हैं।

Geophysics (**पृथ्वी के भौतिक विज्ञान**) पृथ्वी के तीन विभाग या छिलके हैं, स्थल मंडल, जल मंडल और वायुमंडल और इनकी रचना व बनावट में अनेक भौतिक क्रियाओं तथा गतियों का हाथ रहता है। पृथ्वी से सम्बन्धित इस भौतिक क्रियाओं व गतियों के अध्ययन को पृथ्वी का भौतिक विज्ञान कहते हैं। इस प्रकार यह शास्त्र या विद्या प्रयोगिक भौतिक विज्ञान का ही एक अंग है और इसके अन्तर्गत भूगर्भ तत्व शास्त्र और भौतिक शास्त्र का समन्वय पाया जाता है। पृथ्वी भौतिक विज्ञान की तीन शाखायें हैं:—

(१) **ऋतु विज्ञान**—जिसके अन्तर्गत वायुमण्डल के परिवर्त्तनों का अध्ययन किया जाता है।

(२) **जल विज्ञान**—इसके अन्तर्गत जल पर होने वाली गतियों व भौतिक परिवर्त्तनों का अध्ययन किया जाता है।

(३) **भूकम्प विज्ञान**—इसके अन्तर्गत भूपटल पर होने वाली आन्तरिक व बाह्य गतियों के आकस्मिक व मन्द रूपों का विवेचन होता है।

Geostrophic wind (भूमिति वायु) जब पृथ्वी की दैनिक गति के कारण वायु की दिशा में परिवर्तन हो जाता है या वह अपने मार्ग से विचलित होकर दायें या बायें को मुड़ जाती है तो इस प्रकार की वायु को भूमिति वायु कहते हैं। इस प्रकार की वायु में निम्नलिखित तीन विशेषतायें पायी जाती हैं:—

(१) भूमध्य रेखीय प्रदेश में वायुभार का विस्तार तो अधिक नहीं रहता परन्तु फिर भी दिशा परिवर्त्तन की कमी के कारण वायु की गति बड़ी तीव्र रहती है। १०° अक्षांश के समीप वायु की गति ८८ मील प्रति घंटा तक होती है जब कि ८०° अक्षांश के समीप इसकी गति १६ मील प्रति घंटा हो जाती है।

(२) भूमिति वायु की गति वायुभार के विस्तार के बढ़ने पर अपने आप बढ़ती जाती है। जैसे-जैसे वायुभार की निम्न व उच्च दशाओं के बीच का अन्तर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे भूमिति वायु की गति भी तीव्रतर होती जाती है।

(३) ध्रुव प्रदेशों से भूमध्य रेखा की ओर हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं, भूमितिवायु की गति तीव्रतर होती जाती है।

Geosyncline (भूखंड या संनति) चट्टानों की परत में लम्बे विस्तृत गड्ढे या वृहत झूलाकार घरेरे को भूखंड कहते हैं। बहुधा यह भूखंड कई सौ मील तक फैला रहता है। इस भूखंड की विशेषता यह है कि जैसे-जैसे इसकी तली नीचे को धँसती जाती है वैसे-वैसे इसमें मिट्टी बालू का निक्षेप होता जाता है। इस प्रकार यह खड्ड थोड़े दिनों में भर जाता है और इसके अन्तर्गत बहुत मोटी परतदार चट्टानों की एक अपार राशि बन जाती है। परन्तु इन भूखंडों में लचकदार तलैटी होने के कारण सदा ही उथला जल बना रहता है। ऊपर से निक्षेप का भार जितना ही अधिक होता है, उनकी तलैटी उतनी ही नीचे को मुड़ती जाती है। इस समय ऐसे भूखंड पृथ्वी पर नहीं पाये जाते हैं परन्तु वर्त्तमान मुड़ी हुई पर्वतमालायें इसी प्रकार के भूखंडों में बनी परतदार चट्टानों में घरेरे पड़ने व ऊपर उठ आने से बन गयी हैं।

Geosynclinal stage (भूखड्ड या संनति स्थिति) मोड़दार पर्वतों का निर्माण व विकास क्रमशः होता है। ऐसा नहीं होता कि अकस्मात पर्वत शिखर भूपटल पर उठ कर खड़े हो जायँ। वास्तव में पर्वत निर्माण की तीन स्थितियाँ होती हैं और उनकी सर्व प्रथम स्थिति को भूखड्ड स्थिति कहते हैं। इस स्थिति में उथले जल से पूर्ण भूखड्डों में मिट्टी, बालू आदि का निक्षेप होता रहता है और एक प्रकार से पर्वत निर्माण की नींव पड़ती रहती है। इसीलिये कभी-कभी इस दशा को प्रवेशिका स्थिति भी कहते हैं।

दूसरी स्थिति वह होती है जब भूभाग के किसी अंश के चलने से यह भूभाग दुहरा होकर मोड़दार या लहरदार बन जाता है और तीसरी स्थिति वह होती है जब यह समस्त मोड़दार भूभाग एक विशाल पर्वत माला के रूप में ऊपर उठ आता है।

Geyser (गेसर) गेसर एक प्रकार के गर्म जलस्रोत होते हैं जिनसे विभिन्न कालान्तर पर गर्म पानी और भाप की धारा धड़ाके के साथ निकलती रहती है। धड़ाके के साथ हवा में ऊपर को फेंकी हुई जल धारा तो कभी-कभी १०० या २०० फीट तक ऊँची रहती है। प्रायः गेसर ज्वालामुखी प्रदेशों में ही पाये जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि सिलिका मिश्रित लावा जहाँ कहीं भी गर्म अवस्था में रह गया है या अभी तक ठंढा नहीं हो पाया है वहीं ये गेसर

गेसर

उत्पन्न हो गये हैं। इसीलिये शायद गेसर परिवाह की धाराओं के समानान्तर निम्न-भूमि पर ही पाये जाते हैं।

गेसर के मुख में से पृथ्वी की बहुत गहराई तक एक नली सी बनी रहती है जो ऊपरी सतह से छन-छन कर जाने वाले वर्षा के जल से भर जाती है। इस नली के आधार के समीप का जल गर्म लावा के सम्पर्क से काफी गर्म हो जाता है परन्तु यह नली इतनी गहरी व सँकरी होती है कि इसमें संवाहनिक धाराएँ उठना सम्भव नहीं होता। इस प्रकार आधार तल पर पानी खूब गर्म होता जाता है परन्तु ऊपरी सतह का जल अपेक्षाकृत ठंढा ही बना रहता है। साथ-साथ ऊपर के जल के दवाव से आधार तल का पानी निश्चित रूप से अधिक तापांश पर पहुँचने पर उबलना शुरू करता है। अतः इसके पहिले कि पानी उबले और भाप बने, तापांश को २१२° फार्नहीट से अधिक हो जाना चाहिये। इसलिये भाप बनने और पानी उबलने में देर तो लगती है परन्तु जब ऐसा होता है तो ऊपरी सतह का पानी ऊपर की तरफ ढकेल कर इधर-उधर बह जाता है। पानी के इस प्रकार बह जाने से आधार तल पर ऊपर का दवाव कम हो जाता है और उबलने का काम कम तापांश पर ही शुरू हो जाता है। अतएव पानी जल्दी से भाप बनने लगता है और शीघ्र ही इतनी अधिक भाप बन जाती है कि वह ऊपर को जब निकलने की चेष्टा करती है तो आधार तल से ऊपर जल गेसर के मुख से निकल कर हवा में उड़ जाता है। इस प्रकार गेसर से जलधारा धड़ाके से पिचकारी के समान निकलती है। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे किसी ने तोप की नली में से जल की फुहार उड़ा दी हो। परन्तु यह फुहार बराबर नहीं निकलती रहती है। दो धड़ाके के बीच कुछ समय तक गेसर शान्त रहता है।

गेसर के अन्दर से ऊपर फेंका हुआ पानी हवा में जाकर ठंढा हो जाता है और नली में वापस आने पर उसे फिर से उबलना या गर्म होना पड़ता है। पानी कितना ठण्ढा हो जाता है, वापस होने पर गेसर की नली कितनी देर में फिर भर जाती है और नीचे से उठने वाली भाप कितनी मात्रा में आती है; इन सभी बातों पर दो धड़ाकों के बीच का कालान्तर या अवधि अवलम्बित रहती है।

गेसर के मुख से ऊपर को फेंके हुए जल में कुछ खनिज नमक मिले रहते हैं जिनमें सिलका का स्थान सब से महत्वपूर्ण है। सिलका जल में घुला रहता है और गेसर के मुख के इधर-उधर सिलका मिली हुई मिट्टी का निक्षेप बन जाता है। कभी-कभी तो यह निक्षेप इतना अधिक होता है कि मुख के चारों ओर एक शंकु सा बन जाता है और यदि सिलका खनिज अधिक मात्रा में आता रहा तो एक समय वह आता है कि गेसर मुख बन्द हो जाता है। इसके बाद इस निक्षेप का रंग भी कम हो जाता है और आवरणक्षय की शक्तियों के आघातों से खड़िया मिट्टी का सफेद चूर्ण-सा बना रह जाता है।

संसार के प्रसिद्ध गेसर न्यूज़ीलैंड, आइसलैंड और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के यलोस्टोन नेशनल पार्क में पाये जाते हैं। यलोस्टोन नेशनल पार्क का प्रसिद्ध ओल्ड फेथफुल गेसर से ठीक ६६$\frac{1}{2}$ मिनट के अन्तर पर धड़ाके से जल का फुहारा छूटा करता था परन्तु अब यह कालान्तर में कुछ अधिक व अनियमित हो गया है। इसी प्रकार कुछ प्रदेशों में गेसरों से पानी निकलना बन्द हो गया है परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि वहाँ से गेसर लोप हो रहा है। यदि एक गेसर बन्द होता है तो कहीं पास में ही दूसरा गेसर बनता रहता है। (देखिये Hot Springs)

Gibli (गिबली) लीबिया और उत्तरी अफ्रीका में प्रवाहित होने वाली गर्म व शुष्क सिरक्को वायु को गिबली कहते हैं। वह दक्षिण की ओर से बहती है।

Glaciation (हिमाच्छादन) किसी प्रदेश में हिम आवरण का छा जाना या हिमनदियों के प्रवाहित होने से भूप्रकृति में परिवर्त्तन हो जाना हिमाच्छादन कहलाता है। किसी प्रदेश में हिमाच्छादन के कई कारण होते हैं जिनमें निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं--(१) अधिक हिम गिरना, (२) वायुमण्डल में जलवाष्प और कारबन डाइआक्साइड की कमी हो जाना, (३) सूर्य के प्रति पृथ्वी की गति व स्थिति में परिवर्त्तन, (४) पृथ्वी के अक्ष का खिसक जाना तथा (५) सूर्य में धब्बों का बढ़ जाना। परन्तु इन में से कोई भी कारण ऐसा नहीं जिसे व्यापक व विश्वसनीय जान कर अपना लिया जाय। कारण चाहे कुछ भी हो परन्तु यह नितान्त सत्य है कि पृथ्वी के बहुत विस्तृत भाग इसी प्रकार के हिमाच्छादन से प्रभावित हुए हैं और आज भी ध्रुवीय वृत्तों में स्थित ग्रीनलैंड जैसे प्रदेशों में हिम आवरण पड़ा हुआ है। इसके अलावा पर्वतीय प्रदेशों में हिम नदियाँ प्रवाहित होती ही रहती हैं। इस हिमाच्छादन के प्रभाव से विशेष प्रदेशों की भूप्रकृति में अधिक परिवर्त्तन हो जाते हैं। उच्च भूमियों में तो पैनी पहाड़ियाँ, गड्ढे, दर्रे व कंघे की तरह की श्रेणियाँ बन जाती हैं। ऐसे प्रदेश की घाटियों का आकार अँग्रेज़ी के **U** अक्षर के समान होता है और मुख्य घाटी के इधर-उधर लटकती हुई घाटियाँ उपस्थित रहती हैं। इन घाटियों का फर्श धारी पडा हुआ व खरौंचदार होता है। हिमाच्छादित प्रदेश में कंकड-पत्थर, बालू, मिट्टी आदि अनेक प्रकार के रूपों में बिखरी दिखाई देती है। बोल्डर मिट्टी में दूर-दूर से बहाकर लाये हुए कंकड़ व ढोके मिले पाये जाते हैं। हिमाच्छादित प्रदेश में घाटी की तलैटी में अनेक जगह गड्ढे बन जाने से हिम पिघलने पर मीलों झीलें बन जाती हैं और उपस्थित परिवाह अस्तव्यस्त हो जाता है। जगह जगह दलदल पाये जाते हैं। चट्टानों के ऊपर की मिट्टी बह जाती है और नीचे की चट्टानें नंगी होकर निकल आती हैं और उन पर इधर-उधर अनेक छोटे-बड़े कंकड़-पत्थर पाये जाते हैं जो आधार चट्टानों से बिल्कुल विभिन्न होते हैं। भूमि पर धारियाँ व गड्ढे बन जाते हैं। बीच में स्थित उभड़ी हुई चट्टानें चिकनी हो जाती हैं। इस प्रकार भूप्रकृति में आवरण-क्षय के चिन्ह बहुत कम मिले हैं।

Glacier (हिमनदी) ऊँचे पर्वत प्रदेशों और शीत कटिबन्धों में जो हिम गिरता है वह बराबर इकट्ठा होता जाता है और धीरे-धीरे मोटी बर्फ की तेह-सा बन जाता है। इस प्रकार बर्फ की विशाल राशि बनते रहने से ऊपरी तहों के दबाव से इनके नीचे की बर्फ निम्नभूमियों या समुद्रतल की ओर एक धारा के रूप में प्रवाहित होने लगता है। इन्हें हिमनदी कहते हैं। इन हिम नदियों की गति प्रवाह बड़ा धीमा हो जाता है। साधारणतः प्रति दिन आधा गज तक इसकी औसत चाल होती है। परन्तु विभिन्न हिमनदियों की गति भी अलग-अलग होती है। दूसरी बात यह है कि हिम नदी का प्रवाह मध्य में सब से तेज और किनारों पर घर्षण आदि अवरोधों की वजह से सबसे कम होता है।

ऊपर स्थित बर्फ के मैदान जहाँ से हिमनदी शुरू होती है लेकर हिमनदी का विस्तार हिम रेखा से बहुत नीचे तक होता है। ऊपर स्रोत या उद्गम स्थान पर पिघलना कम होता है परन्तु बर्फ की मात्रा बहुत अधिक होती है। अतएव वहाँ पर हिमनदी गहरी व चौड़ी होती है। जैसे-जैसे हिमनदी उच्च शिखरों से उतर कर निम्न भूमि या निम्नतर प्रदेशों में आती है इसको बर्फ कम मिलती है और साथ-साथ तापक्रम उच्च होते जाने से पिघलना भी अधिक होता है। अतएव हिमनदी का विस्तार कम होता जाता है यहाँ तक कि एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ ऊपर से बर्फ का आना और पिघलना बराबर हो जाता है। बस वहीं यह हिम नदी समाप्त हो जाती है। हिम नदी के पिघलने पर सारे क्षेत्र में पानी ही पानी हो जाता है और जलधाराएँ निकलकर बहने लगती हैं।

हिम नदी

इस प्रकार हिम नदी का आकार मनुष्य की जीभ की तरह होता है। उद्गम स्थान के समीप सबसे अधिक चौड़ा और अन्त के बिन्दु के समीप सबसे पतला। परंतु हिमनदी का आकार बहुत कुछ उस घाटी या प्रदेश के ऊपर निर्भर रहता है जिसमें से होकर यह बहता है। घाटी के मोड़ के साथ ही हिमनदी भी घूम जाती है और इसकी सतह भी घाटी की तलैटी के अनुरूप ही बन जाती है। साधारणतः हिमनदी का मध्य भाग किनारों की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँचा होता है और इस प्रकार हिमनदी की सतह उन्नतोदर होती है। हिमनदी की सतह अधिकतर विषम या असमान होती है और बहाव की गति विभिन्नता से उत्पन्न खिंचाव या गर्मी में ऊपरी सतह पर धूल के कणों आदि के कारण पिघलने से उसमें अनेक दरारें पड़ जाती हैं। परन्तु हिमनदी के नीचे की सतह उसी तरह कायम रहती है। वास्तव में इधर-उधर की चट्टानों से टूट-फूट कर गिरने वाले कंकड़-पत्थर इन दरारों में से होकर नीचे की सतह के ऊपर एक सुरक्षा पटल सा बना लेते हैं। इसके अलावा हिमनदी अपने प्रवाह में अपनी घाटी के अन्दर से टुकड़े नोच कर इकट्ठा कर लेती है और इन्हें पिघलने पर इकट्ठा छोड़ देता है। इस तट से बहाकर लाये हुए कंकड़-पत्थरों को मोरेन कहते हैं। ये मोरेन हिमनदी के किनारे पर इधर-उधर से गिर कर इकट्ठा होते रहते हैं। जब कभी दो हिम नदियाँ मिलती हैं तो दोनों के मोरेन मध्य में एक साथ मिलकर इकट्ठा हो जाते हैं। ये सब कंकड़-पत्थर की राशि हिम नदी की सतह पर बहती हुई वहाँ तक पहुँच जाती है जहाँ हिम नदी समाप्त होती है। यदि हिमनदी समुद्र से जाकर मिल गई तो ये मोरेन समुद्र के जल में समा ही जाते हैं और नहीं तो पिघलने वाले क्षेत्र में इधर-उधर फैल जाते हैं। बहुत से कंकड़-पत्थर दरारों के भीतर जाकर घाटी की तलैटी के साथ घसिटते चलते हैं। फलतः घाटी की तलैटी में धारी व खरोंच पड़ जाते हैं और घर्षण द्वारा कंकड़-पत्थर गोल चिकने हो जाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिम नदियाँ तीन कार्य करती हैं—आवरण क्षय, अपनयन और निक्षेप। हिम नदी अपनी तलैटियों को धीरे-धीरे खुरचती और गहरी करती रहती है। इसीलिये इसकी तलैटी कहीं गहरी और कहीं उथली होती है। साथ में इस प्रकार प्राप्त कंकड़-पत्थर को बहा कर ले जाती है और जहाँ पिघलती है वहाँ इकट्ठा छोड़ देती है। इन तीनों क्रियाओं के फलस्वरूप हिमाच्छादित प्रदेशों की भूप्रकृति बड़ी विचित्र या एक विशेष प्रकार की हो जाती है। (देखिये Glaciation)

हिम नदियाँ कई प्रकार की होती हैं जिनमें से निम्नलिखित विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) **घाटी की हिमनदी**—जिसे अल्प प्रदेशीय हिम नदी भी कहते हैं। इस प्रकार की हिमनदी गिरी हुई बर्फ, हिम शैल और हवा द्वारा उड़ाकर लाई हुई बर्फ से बनती है। पर्वतीय प्रदेश की विशेषताओं के अनुरूप ही इसके और उप-विभाग किये जा सकते हैं।

(२) जब घाटी की हिम नदी पर्वत प्रदेश से निकलकर मैदान में प्रवेश करती है तो वहाँ फैल जाती है और यदि इसी प्रकार की दो-तीन हिम नदी के प्रवाह फैलकर मिल गये तो **पर्वत तल हिमनदी** बन जाती है।

(३) यदि बर्फ का आवरण इतना अधिक रहा कि सम्पूर्ण प्रदेश उसी की मोटी तह के नीचे दबा रहा तो इसे **बर्फ की टोपी** या **हिम आवरण** कहते हैं।

(४) **महाद्वीपीय हिम नदी** वह होती है जब किसी महाद्वीप के विस्तृत भूभाग पर ताप-क्रम निम्न हो जाने से बर्फ की टोपी सी छा जाती है। इसके नीचे भूखंड की ऊँची-नीची सभी भूमि ढंक जाती है और यह मैदानों से होता हुआ समुद्र की ओर जाता है। इसमें कई हिम नदियाँ मिली होती हैं जो कभी आगे बढ़ती हैं और कभी पिघल कर पीछे हट जाती हैं।

Glacier Breeze (हिम नदी पवन) हिम नदी के ऊपर से प्रवाहित होने वाली ठंडी हवा को हिम नदी पवन कहते हैं। हिम आवरण के ऊपर ताप विकेन्द्रीकरण के कारण वायु बहुत ठंडी हो जाती है और भार के दबाव से नीचे की ओर बहने लगती है।

Glacial Cycle (हिमचक्र) यद्यपि आजकल ग्रीनलैंड एक हिमआवरण के नीचे दबा हुआ है परन्तु यह प्रमाणित हो चुका है कि कई युगों में ग्रीनलैंड की जलवायु आज की अपेक्षा कम ठण्डी थी। अन्य प्रदेशों में भी चिन्ह मिलते हैं कि जलवायु के परिवर्त्तन का एक चक्र सा चला करता है। जिसके फलस्वरूप ठण्डक में उत्तरोत्तर वृद्धि होते रहने से एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब प्रदेश अत्यन्त ठण्डा हो जाता है। इस स्थिति पर पहुँच जाने के बाद जलवायु की दशा दिन पर दिन कम होती जाती है और जलवायु साधारण ठण्डी या गर्म हो जाती है। इस प्रकार के जलवायु परिवर्त्तन का पूर्ण काल हिम चक्र कहलाता है।

जब जलवायु धीरे-धीरे ठण्डी होती रहती है तो इसको **प्रगतिमय हिमचक्र** (advancing Hemicycle) कहते हैं परन्तु ठण्डक की अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच जाने के बाद जब ठण्डक में उत्तरोत्तर कमी होने लगती है तो उसे **वापसी चक्र** (receding Hemicycle) कहते हैं। प्रगतिमय हिमचक्र के चिन्ह इस बात से प्रगट होते हैं कि जाड़े में गिरी हुई बर्फ अधिक समय तक जमी पड़ी रहती है। ऐसी स्थिति में हिम प्रवाह गर्मी के मौसम में भी होता रहता है और इस प्रकार अगले वर्ष के जाड़े तक बर्फ की एक राशि इकट्ठा हो जाती है। इस तरह की राशि बन जाने पर हिम नदियाँ बन जाती हैं। एक बार हिम नदियों के बन जाने पर चाहे फिर तापक्रम और न घटे परन्तु हिम नदियों में ऊपरी हिम क्षेत्र

के दबाव से प्रवाह होता रहता है। पहले ये हिम नदियाँ छोटे-छोटे गड्ढों में ही बनती हैं परन्तु बाद में हिम राशि और प्रवाह में वृद्धि हो जाने से उच्च भूमि का सम्पूर्ण विस्तार हिमाच्छादित हो जाता है। बाद में तापक्रम के बढ़ जाने या जलवायु की तीव्रता में कमी आ जाने से ये हिम नदियाँ पिघल कर विलीन होने लगती हैं।

इस प्रकार के प्रगति और वापसी हिम चक्र के अस्तित्व का ज्ञान उनके द्वारा छोडी हुई मिट्टी, बालू आदि के निक्षेप से होता है। हिमचक्र पर्वतीय व महाद्वीपीय दोनों ही क्षेत्रों में होते रहते हैं और भूगर्भ तत्ववेत्ताओं का कहना है कि उत्तरी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में इस प्रकार के हिमचक्र की पाँच प्रगतियों के वापसी के चिन्ह अभी भी मिलते हैं।

Glacial mill (हिमनदी भँवर) (१) जब पिघली हुई हिम से बनी जलधाराएँ हिमनदी की दरार के समीप पहुँचती हैं तो सामने गड्ढा पाकर उसमें एक दम प्रवेश कर जाती हैं। ऐसा होने पर हिमनदी के बीच एक लम्बरूप नली सी बन जाती है। इस नली में प्रवेश करती हुई जलधारा के साथ कंकड़-पत्थर व चट्टानों के टुकडे भी चले जाते हैं। पानी की यह धारा नली में प्रवेश करते समय जल चक्र या भवँर का रूप धारण कर लेती है और उसमें बहकर आये हुये कंकड़-पत्थर के टुकड़े साथ-साथ चक्कर काटने लगते हैं। इसको हिम नदी भँवर कहते हैं। फ्रांसीसी विद्वान् इसको मोलिन के नाम से पुकारते हैं। यह हिमनदी भँवर का घूमना हुआ जल हिमनदी की तलैटी तक पहुँच जाता है और नीचे की चट्टान पर भी असर डालता है।

(हिमनदी आवरण क्षय) हिम नदी का ऊपरी भाग श्वेत होता है, उसमें चट्टानों के टुकडे बिखरे नहीं पाये जाते। नीचे की परतों का रंग काला होता है और उसमें कंकड़-पत्थर व चट्टानी ढोंकों की भरमार रहती है। ये सब वस्तुयें या तो हवा द्वारा उड़ाकर लाये गये होते हैं या ऋतु प्रहार के कारण घाटी की दीवारों से कटकर गिरे होते हैं या हिमशैल खंडों के साथ खिसक कर आते हैं या तलैटी से काट-छाँट कर इकट्ठा कर लिये जाते हैं। इस प्रकार से प्राप्त कंकड़-पत्थर हमनदी घाटी की तलैटी के साथ घसिटते हुए, ऊपरी सतह के किनारे पर या दरारों से बीच के भाग में फँसे हुए आगे बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार हिमनदी द्वारा घसीट कर या बहाकर लाये हुये कंकड़-पत्थरों से हिम नदी की तलैटी खरचती जाती है और गहरी भी होती जाती है। कंकड़-पत्थर व चट्टानों के ये टुकड़े भी घर्षण के कारण, चिकने सपाट व धारीदार बन जाते हैं। इसको हिमनदी आवरण क्षय कहते हैं और इस के दो रूप होते हैं—घिसावट द्वारा और नोच-खसोट द्वारा। घिसावट द्वारा तो साथ में पड़े कंकड़-पत्थरों का रूप बदलता रहता है और नोच-खसोट द्वारा हिम नदी की तलैटी गहरी होती जाती है। उसमें जगह-जगह गड्ढे बन जाते हैं जिनमें हिम नदी के पिघलने पर झीलें बन जाती हैं।

Glacial nourishment (हिमनदी स्रोत) हिमनदी का जीवन व प्रवाह की अवधि हिमनदी स्रोत पर निर्भर रहती है। हिम का इस प्रकार और इतनी अधिक मात्रा में गिरना कि पिघलने व भाप बन कर नष्ट हो जाने के बाद भी हिम राशि इतनी मात्रा में इकट्ठा रहे कि ऊपर के दबाव से नीचे की हिम परतें बराबर खसक कर हिम नदी के प्रवाह में योग देती रहे, इसको हिम नदी स्रोत कहते हैं। जब कभी हिमनदी स्रोत में हिम का नाश अधिक होता है तभी हिम नदी क्षीण होकर अन्त में पूर्णतया विलीन हो जाती है।

हिमनदी स्रोत में हिम. महासागरों से बन कर उठी भाप से ही प्राप्त होता है परन्तु यह स्रोत पर्वत व महाद्वीपीय हिम नदियों के लिये अलग-अलग होता है। वास्तव में वायुमण्डल में हवा की दो पेटियाँ हैं. एक ऊँची और दूसरी नीची। ऊपर की पेटी की वायु में जल वाष्प सुई की भाँति वर्फ के टुकड़ों में स्थित रहती है और निचली पेटी की जलवाष्प स्ट्रेट्सी व क्यूमुलस

बादलों के रूप में वर्तमान रहती है। निचली पेटी में बने बादलों के जलवाष्प से तो पर्वतीय हिमनदियों को हिम प्राप्त होता है और ऊपरी पेटी के सिरस बादलों के जमे हुये जलकणों से महाद्वीपीय हिमनदियों का सतत प्रवाह रहता है।

Glacial reservoir (**हिमराशि**) हिमरेखा के ऊपर के प्रदेश में बर्फ के बराबर इकट्ठा होते रहने से हिमराशि बन जाती है। ऊपर से बराबर वर्फ गिरते रहने के कारण वर्फ इतनी अधिक मात्रा में इकट्ठा हो जाती है कि ऊपर की सतहों के दबाव के कारण नीचे की सतहें हिम में परिणत हो जाती हैं। इस हिमराशि से भी हिम नदियाँ बनती हैं उनमें निचली सतह ही शामिल हो पाती है और इसीलिये उनमें पाया जाने वाला हिम रवेदार होता है।

Glacial Soil (**हिमनदी मिट्टी**) जिन प्रदेशों में हिमनदी का प्रवाह हुआ है वहाँ ऊपर की मिट्टी बह गई है और नीचे की आधार चट्टानों पर हिम नदियों द्वारा बहाकर लाई हुई मिट्टी फैल गई है। इस मिट्टी में छोटे-बड़े चट्टानों के टुकड़े मिले पाये जाते हैं और वे विभिन्न प्रकार की चट्टानों तथा दूर-दूर के प्रदेशों से बहाकर लाये गये होते हैं। इन चट्टानी टुकड़ों व बोल्डर मिट्टी के ढोकों के साथ बालू, चिकनी मिट्टी व ककड़ीली मिट्टी भी फैली पायी जाती है। इस प्रकार के निक्षेप को हिम नदी मिट्टी ही कहते हैं। इस मिट्टी से कुछ प्रदेश तो अत्यन्त अनुपजाऊ हो गये हैं जैसे फिनलैंड परन्तु न्यूजीलैंड में इस मिट्टी के निक्षेप से भूमि अधिक उपजाऊ हो गई है। (देखिये बोल्डर मिट्टी)

Glacial Snout (**हिमनदी जीभ**) हिमनदी के अन्तिम सिरे उन्नतोदर भाग को हिमनदी जीभ कहते हैं। इस मेहराबदार या अर्द्धवृत्ताकार भाग से पिघलते हुए बर्फ की जल धाराएँ बहती रहती हैं।

Glacial Table (**हिमनदीय मेज**) हिम नदी की सतह पर चट्टान का चौरस टुकड़ा कभी-कभी इस प्रकार स्थित हो जाता है जैसे कि पत्थर की मेज रक्खी है और उसके पाये बर्फ के हों। इस प्रकार के हिम रूप को हिमनदीय मेज कहते हैं। वास्तव में जब ऊपर से आकर सपाट पत्थर हिम पर स्थित हो जाता है तो उसके नीचे की हिमराशि सूर्य की किरणों से पिघल नहीं पाती और इस प्रकार हिम नदीय मेज बन जाती है। आस-पास की वर्फ के पिघल जाने पर पत्थर के ठीक नीचे एक हिम स्तम्भ सा रह जाता है जो पत्थर की मेज का पाया सा मालूम पड़ता है।

हिमनदीय मेज

Glacis (**ग्लेशिस**) क्रमशः ढाल वाली चट्टान या किनारे को ग्लेशिस कहते हैं।

Glade (**वनमार्ग**) वन में स्वभावतः या पेड़ों को गिरा कर बनाया गया खुला मार्ग या खुली भूमि को वन मार्ग कहते हैं।

Glazed Frost (**समाकार तुषार स्थल**) जब धरातल के समीप का तापक्रम पानी के जमने के बिन्दु से नीचे पहुँच चुका होता है तो ऊपर के मेघों से गिरता हुआ वर्षा का जल धरातल पर पहुँचते ही जम जाता है और फलतः चिकनी बर्फ की एक शिला-सी बन जाती है। इसको समाकार तुषार स्थल कहते हैं और इसमें बर्फ की मोटाई काफी होती है। कभी-

कभी जब अत्यन्त सर्दी के मौसम में गर्म व आद्र हवा बहती है तो उसके अन्दर का जलवाष्प ३२° फार्नहीट से नीचे तापक्रम वाले धरातल से सम्पर्क में आकर बीभूत हो जाता है और बर्फ के रूप में जम जाता है। इस तरह भी समाकार तुषार स्थल बन जाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में इस प्रकार तुषार स्थल कभी-कभी बनते हैं परन्तु जब बनते हैं तब उनके कारण तार व टेलीफून के खम्भे टूट जाते हैं।

Glei Soil (ग्लई मिट्टी) जिन प्रदेशों में जल का परिवाह अच्छा नहीं वहाँ पर ग्लई मिट्टी बन जाती है। भूमि के सतह के बिल्कुल समीप या उससे नीचे जरा दूर पर ही जल इकट्ठा रहता है। इस प्रकार की जल से संतृप्त भूमि के ऊपरी भाग में भूरे रंग का निक्षेप नजर आने लगता है और इस के बीच में लाल-भूरे रंग के फेरिक हाइड्रोक्साइड के कण बिखरे रहते हैं। साधारणतया अधिक सिंचाई करने पर भी भूमि पर ऐसी मिट्टी की तह जम जाती है। ग्लई मिट्टी के प्रदेश प्रायः बहुत कम उपजाऊ होते हैं।

Glen (ग्लेन) स्काटलैंड में बहुत लम्बी व सँकरी घाटी को ग्लेन कहते हैं। ग्लेन की दीवारें बड़ी तीव्र ढालू व सीधी खड़ी होती हैं और इसकी तलैटी में नदी की जलधारा या झील स्थित पाई जाती है।

Glint Lake (ग्लिन्ट झील) जब कोई हिम नदी बहते-बहते ऐसी चट्टान पर होकर गुजरती है जो मुलायम और निर्बल है तो वह भाग हिम प्रवाह से खुद जाता है और विस्तृत खड्ड बन जाता है जो झील का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार की झील को ग्लिन्ट झील कहते हैं। अक्सर ऐसा देखा गया है कि जब महाद्वीपीय हिमनदियों की प्रगति किसी पहाड़ी दीवार के कारण रुक जाती है तो उनकी धारा उनके इधर-उधर के भाग में बड़ी तीव्र हो जाती है। इस प्रदेश में ऊपरी सतह तो चाहे एक दिन में एक इंच ही आगे बढ़े परन्तु निकास के समीप हिम प्रवाह की गति ७०० से १००० गुना अधिक होती है। इस तीव्र गति के कारण तलैटी की चट्टानों में गड्ढे बन जाते हैं और उनमें ग्लिन्ट नामक झीलें बन जाती हैं। हालैंड में बाँध की दरारों में गड्ढे बन जाने से इस प्रकार की अनेक झीलें बन गई हैं।

Globe (ग्लोब) यूनानी सभ्यता के काल में विद्वानों द्वारा पृथ्वी की आकृति विस्तार आदि के विषय में खोज की जाने लगी। इस वैज्ञानिक खोज के परिणामस्वरूप दूसरी शताब्दी बी० सी० में दुनिया का एक नमूना तैयार किया गया जो गोल कार था। इसे ग्लोब कहते हैं। उस समय बने ग्लोब का व्यास १० फीट था और जलपूर्ण महासागरों द्वारा चार महाद्वीपों में विभक्त था। वास्तव में वर्त्तमान काल के ग्लोब का आविर्भाव १६वीं शताब्दी में हुआ जब कि २ फीट व्यास के ग्लोब बनाये गये। ये ग्लोब एक कीली पर टिके या खड़े थे और इनके चारों ओर लकड़ी का एक विस्तृत क्षितिज बना हुआ था। यह घेरा भूमध्य रेखा पर समकोण बनाता था।

वास्तव में पृथ्वी के सभी प्रतिरूपों में ग्लोब का महत्व सबसे अधिक है। ग्लोब पर विविध देशों व महाद्वीपों का विस्तार ठीक-ठीक अंकित होता है और जल-थल के बीच का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है। सपाट मानचित्र पर गोलाकार धरातल को चित्रित करने पर जरूर कुछ न कुछ त्रुटि आ जाती है। कहीं क्षेत्रफल गलत हो जाता है तो कहीं आकार बिगड़ जाता है। फिर भी बिना समतल मानचित्रों के भूगोल की शिक्षा नहीं दी जा सकती। परन्तु जहाँ तक सम्पूर्ण संसार का पृथ्वी के अध्ययन और पृथ्वी व सौरमण्डल के सम्बन्ध

विषयक ज्ञान का सवाल है केवल ग्लोब का ही सहारा लेना होगा। ग्लोब के सहारे पृथ्वी सम्बन्धी आधारभूत तथ्यों को स्पष्ट किया जा सकता है।

Globigerina Ooze (ग्लोबइजइरीना ऊज) महासागर तल में पाया जाने वाला एक प्रकार का खड़िया मिला हुआ निक्षेप ग्लोबइजइरीना ऊज़ कहलाता है। वास्तव में ग्लोबइजइरीना एक प्रकार का जन्तु होता है जो १५०० से २००० फैदम की गहराई तक पाया जाता है और फोरामिनिफाँरा जाति या वंश का कीड़ा होता है। इस कीड़े के शरीर में चूने का अंश बहुत होता है और इसकी बाढ़ भी खूब होती है। इन कीड़ों के शरीर सूक्ष्म होते हैं। साधारणतः वे आलपीन के सिर से बड़े नहीं होते। इन कीड़ों के शरीर के साथ अन्य बहुत से जीव-जन्तुओं के अवशेष भी मिलकर इकट्ठा हो जाते हैं। इस निक्षेप में भूखंड से प्राप्त पदार्थ का अंश बहुत कम होता है। अटलान्टिक और हिन्दमहासागरों में यह ऊज़ विस्तृत रूप मे पाया जाता है और दक्षिणी प्रशान्त महासागर का अधिकतर भाग इसी मे ढका हुआ है। यह ऊज १५०० से २५०० फैदम की गहराई तक खूब पाया जाता है।

Gneiss (नीस) नीस एक प्रकार की तहदार चट्टान होती है और इसके कई प्रकार व रूप होते हैं। यह चट्टान या तो पिघली हुई चट्टानों के ठण्डा पड़ने से बनती है या दबाव व गर्मी के प्रभाव से परिवर्त्तित हो जाने पर यह रूप धारण कर लेती है। इसके अन्दर पट्टियाँ-सी पायी जाती है और इनकी रासायनिक रचना विभिन्न प्रकार की होती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक प्रकार का काला खनिज उपस्थित पाया जाता है। इसी कारण इसके कुछ प्रकार को सींग मिली नीस भी कहते हैं। असली नीस में हल्के व काले खनिजों की स्थूल पट्टियाँ अलग-अलग पायी जाती हैं।

Gnomonic Projection (ग्नोमोनिक अंकन) जेनिथल अंकन में ग्लोब पर अंकित समानान्तर व देशान्तर रेखाओं को प्रकाश द्वारा एक कागज पर छायांकित कर लेते हैं और यह कागज ग्लोब को किसी ध्रुव, भूमध्यरेखा या अन्य किसी बिन्दु पर छूता रहता है। प्रकाश ग्लोब के मध्य से, उसके व्यास के सिरे से या कहीं दूर बाहर से भी फेंका जा सकता है। जब प्रकाश ग्लोब के केन्द्र में स्थित रहता है तो उसे ग्नोमोनिक अंकन कहते हैं। इसमें क्षेत्रफल व आकार दोनों ही इतने बिगड़ जाते हैं कि ये पूर्णतया बेकार हो जाते हैं परन्तु इनमें एक गुण यह होता है कि ग्लोब के विस्तृत वृत्तों की छाया रेखाओं के रूप में अंकित होती है। इसलिये संसार के बड़े वृत्ताकार पथों को आसानी से अंकित किया जा सकता है। (१) किन्हीं बिंदुओं के बीच की दूरी नापने से उन स्थानों के बीच का सबसे छोटा मार्ग का पता लग जाता है। (२) मानचित्र के केन्द्र से सभी ओर दिशायें बिल्कुल ठीक होती हैं। (३) जब कागज ध्रुव प्रदेशों को छूता रहे तो ग्नोमोनिक अंकन में देशान्तर रेखायें केन्द्र से बाहर को फैलती हुई सीधी रेखायें ही होती हैं और समानान्तर समकेन्द्र वृत्त होते हैं। परन्तु जब कागज भूमध्यरेखा पर ग्लोब को छूता रहता है तो समानान्तर तो अर्द्धवृत्त होते हैं। केवल भूमध्यरेखा ही सीधी रेखा द्वारा अंकित होती है। (४) इस अंकन में पूर्ण गोलार्द्ध का मानचित्र नहीं बताया जा सकता और फिर इसको बनाना काफी कठिन है क्योंकि गणित का भी प्रयोग करना होता है। इसके दो रूप प्रधान हैं :—

(१) ध्रुवीय ग्नोमोनिक अंकन और
(२) भूमध्यरेखीय ग्नोमोनिक अंकन

Goode's Interrupted Homolosine Projection (गुडस इन्टरप्टेड होमोलोसाइन अंकन) यह एक क्षेत्रफल अंकन है जिसमें महासागर तो घटे हुए दिखलाई

पड़ते हैं परन्तु महाद्वीपों की आकृति ठीक व स्पष्ट रहती है। महासागर तो विखंडित दिखलाई देते हैं पर महाद्वीपों का आकार सुव्यवस्थित होता है। इसमें अक्षांश वृत्त सीधी रेखाओं द्वारा अंकित होते हैं। इस प्रकार के समक्षेत्रफल अंकन पर पूर्ण पृथ्वी के मानचित्र बनाये जा सकते हैं। और इस पर खींचे गये मानचित्रों पर आर्थिक तथ्यों तथा जलवायु विभागों को भली-भाँति दिखलाया जा सकता है।

Gorge (गॉर्ज) बहुत गहरी और सँकरी घाटी को गॉर्ज कहते हैं। इसके दोनों ओर की दीवारें तीव्र ढालू और सीधी खड़ी होती हैं। यद्यपि गॉर्ज और नदी कन्दरा में कोई विशेष अन्तर नहीं है परन्तु नदी कन्दरा की गहराई व विस्तार गॉर्ज से कहीं अधिक होता है। छोटे गॉर्ज की दीवारें कभी-कभी बिल्कुल लम्बरूप स्थित होती हैं।

Graben (ग्रॉबन) यह जर्मन भाषा का पारिभाषिक शब्द है और इसके द्वारा उस घाटी का या नाँद नुमा गड्ढे का बोध होता है जो दरारों के बीच की भूमि के धँस जाने पर बन जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दोनों दरारों के बीच की भूमि तो अपने ही स्थान पर रह जाती है और दोनों किनारों की भूमि ऊँची उठ जाती है तो भी इसी प्रकार की नाँद सदृश्य खड्ड बन जाते हैं, इन्हें ग्रॉबन कहते हैं। अन्य सभी स्थानों में इन्हें दरार घाटी भी कहते हैं (देखिये Rift valley)

Gradient (विस्तार) वास्तव में भूमि की उच्चता के उतार-चढ़ाव और वायुभार की कमी-बेशी को उनका विस्तार कहते हैं। इस प्रकार विस्तार दो प्रकार का होता है—(१)**वायुभार विस्तार** और (२) **उच्चभूमि विस्तार** पृथ्वी के धरातल पर समतल रूप से किसी दिशा में वायुभार में परिवर्त्तन की गति को वायुभार विस्तार कहते हैं। ऋतु मानचित्रों पर अंकित सम भार दर्शक रेखाओं से वायुभार विस्तार की दशा स्पष्ट हो जाती है। जब समभार दर्शक रेखायें बहुत पास-पास स्थित हो तो स्पष्ट है कि वायु का भार समभार दर्शक रेखाओं के समकोणिक विन्दुओं पर बराबर बदलता रहेगा। इस प्रकार के वायुभार विस्तार को तीव्र कहते हैं। इसके विपरीत जब समभार दर्शक रेखायें एक दूसरें से काफी दूर होती हैं तो वायुभार विस्तार क्रमशः होता है। वायुभार विस्तार पर ही हवाओं की गति व दिशा निर्भर रहती है। जब वायुभार विस्तार तीव्र होता है तो हवायें भी तीव्र, वेगशील और उनकी दिशा बदलती हुई रहती है। इसके विपरीत जब वायुभार विस्तार क्रमशः होता है तो हवा हल्की व मन्द बहती है। हवा का रुख भी इसी पर निर्भर रहता है। प्रायः भारी भार प्रदेश से हल्के भार प्रदेश की ओर ही हवायें बहती है।

भूमिति मानचित्रों में अंकित समोच्च भूमिदर्शक रेखाओं से उच्च भूमि विस्तार का पता चलता है। यदि समोच्च भूमिदर्शक रेखायें पास-पास हैं तो इसके अर्थ हुआ कि उच्च भूमि विस्तार तीव्र है और यदि वे रेखायें दूर-दूर हैं तो इसके अर्थ है कि उच्चभूमि विस्तार क्रमशः हैं। इस प्रकार के उच्चभूमि विस्तार को चित्र द्वारा स्पष्ट करते हैं। जैसे $\frac{१}{५}$ के अर्थ हैं कि पाँच फीट के समतल विस्तार में भूमि का ढाल समस्थिति—उतार-चढ़ाव—१ फीट है।

Grade (अन्तरस्थल) (देखिये) (Base level)

Granite (ग्रॉनाइट) मोटे दाने वाली आग्नेय चट्टानों में से ग्रॉनाइट एक मुख्य प्रकार है जिसमें दो खनिज प्रधान रूप से पाये जाते हैं। ये खनिज क्वार्ट्ज़ और फेल्सपार हैं। इनके अलावा और भी बहुत से खनिज पाये जाते हैं परन्तु ये सबसे प्रमुख होते हैं। ग्रॉनाइट की बनावट इतनी मोटी, भद्दी व स्थूल होती है कि इसमें उपस्थित सभी खनिज के दाने बाहर से ही साफ दिखाई पड़ते रहते हैं और एक दूसरे से अलग किये जा सकते

हैं। ग्रेनाइट संसार की सबसे कठोर व मजबूत चट्टानों में से है और भूपटल पर विस्तृत रूप से फैली पायी जाती है।

ग्रेनाइट पूर्णतया रवेदार होती है और इसमें जीव व वनस्पति अवशेषांश बिल्कुल नहीं मिलते हैं। सफेद या गुलाबी फेल्सपार के टुकड़े जो चीनी की तरह दिखाई पड़ते हैं काले व सफेद अभ्रक की रवेदार पट्टियों के बीच मिले पाये जाते हैं और इस सम्पूर्ण राशि के चारों ओर कठोर शीशे के समान क्वार्टज की तह या रवे स्थित रहते हैं।

Grape belt (अँगूर पट्टी) संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इरी झील के दक्षिणी किनारे पर ६० मील लम्बी और कई मील चौड़ी यह पट्टी अँगूर पट्टी कहलाती है। इस पट्टी में पतझड़ का मौसम लम्बा पर साधारण ठण्ढा होता है और काफी पीछे को पाला पड़ता है। समान अक्षांशों में स्थित अन्य प्रदेशों की अपेक्षा इस प्रदेश में बहुत कम सर्दी पड़ती है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ पर झील का समकारी प्रभाव अपना असर डालकर जलवायु को सम बनाता है। इस कारण यह प्रदेश अंगूर जैसी कोमल फसल के लिये बड़ा ही उपयुक्त रहता है। इसीलिये इसे अँगूर पट्टी कहकर पुकारते हैं।

Graphs (रेखांकन) आर्थिक व सामाजिक तथ्यों और आँकड़ों को रेखाओं द्वारा चित्रण की विधि रेखांकन कहलाती है। इस में सीधी या झुकी हुई रेखाओं को खींचा जाता है। उन रेखाओं पर प्रत्येक विन्दु दो समस्थित विन्दुओं द्वारा निर्धारित किया जाता है। सुविधा के लिए समचतुर्भुजाकार चारखाने का कागज प्रयोग में लाया जाता है और उसे रेखांकन पत्र कहते हैं। रेखांकन विधि की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस विधि द्वारा निर्देशित तथ्य बड़े ही यथार्थ होते हैं। इनका खींचना भी कोई विशेष कठिन नहीं। इसके अलावा रेखांकन द्वारा दो तथ्यों व आँकड़ों के बीच का सम्बन्ध साथ-साथ चित्रित किया जा सकता है। एक तथ्य को तो समतल अक्ष पर दिखलाते हैं और दूसरे को लम्बाकार अक्ष पर। साधारणतया रेखांकन द्वारा समय और कुछ विशेष तथ्यों के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार दिन या महीने में तापक्रम, वायुभार आदि को दिखलाने का सबसे सुलभ तरीका रेखांकन ही है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्ष या प्रतिदश वर्ष में जनसंख्या की बढ़ोत्तरी तथा उपज का दैनिक व मासिक विस्तार भी रेखांकन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

जब रेखांकन द्वारा केवल दो तथ्यों के सम्बन्ध को ही स्पष्ट किया जाता है तो उसे **सरल या साधारण रेखांकन** कहते हैं। तापक्रम रेखांकन, वर्षा रेखांकन इसी वर्ग में आते हैं। कभी-कभी दो से अधिक तथ्यों के बीच के सम्बन्ध को भी रेखांकन द्वारा प्रकट करते हैं। इन्हें **जटिल रेखांकन** कहते हैं। जटिल रेखांकन में निम्नलिखित प्रकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:—

(१) **क्लाइमोग्राफ**—इसमें किसी प्रदेश से सम्बन्धित तापक्रम व आर्द्रता की दशाओं को प्रत्येक महीने के लिये अलग विन्दु द्वारा अंकित करते हैं और फिर बारह बिन्दुओं को मिला देने पर एक बारह भुजाकार आकृति बन जाती है जिसके द्वारा किसी स्थान की जलवायु का ज्ञान होता है।

(२) **ड्राइदर ग्राफ**—भी बारह भुजा की आकृति होती है और इसके अन्दर किसी स्थान का तापक्रम व बर्फ के मासिक औसत को अंकित कर के बारह विन्दु प्राप्त करते हैं।

(३) **अरगोग्राफ** में किसी प्रदेश के मौसम, जलवायु और उपज की फसलों के बीच का सम्बन्ध स्पष्ट किया जाता है।

(४) **इकॉनोग्राफ** में किसी प्रदेश के आर्थिक तत्वों व मुद्रा सम्बन्धी दशाओं का उपभोगियों व उत्पादकों से सम्बन्ध दिखलाते हैं।

Graphic Triangulation (रेखांकित त्रिभुजीकरण) पैमाइश का काम किसी वस्तु को आधार मानकर किया जाता है। चपटी भूमि पर एक सीधी रेखा, जो कि आधार रेखा का काम देती है बड़ी सावधानी से खींच दी जाती है। आधार रेखा की सुविधाजनक लम्बाई एक या दो मील होती है। इस के दोनों सिरों से इस प्रकार कोण बनाते हैं कि उनकी भुजा कहीं दूर पर जाकर मिल जायँ। इस प्रकार बने त्रिभुज की तीनों भुजाओं को आधार मानकर और त्रिभुजों की रचना करते हैं यहाँ तक कि समस्त भूमि त्रिकोण के जाल से ढक जाती है। इसे रेखांकित त्रिभुजीकरण कहते हैं। इसमें विभिन्न त्रिभुजाकर क्षेत्रों का निरीक्षण प्लेन टेबल द्वारा किया जाता है। इसमें केवल आधार रेखा को तो नापते हैं परन्तु अन्य सभी बातें जैसे कोण आदि को गणना करके निकाल लेते हैं। इस प्रकार के त्रिभुजीकरण में यन्त्र द्वारा किये हुये त्रिभुजीकरण की अपेक्षा त्रुटि का अंश अधिक रहता है।

Grass land (तृण भूमि) भूमंडल पर जिन भागों में कम वर्षा होती है वहाँ वनों के स्थान पर घास के मैदान मिलते हैं। इन्हें तृण भूमियाँ कहते हैं। ये तृण भूमियाँ मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं :—

(१) उष्ण प्रदेशीय तृण भूमि जिन्हें सवाना कहते हैं और (२) शीतोष्ण प्रदेशीय तृण-भूमि जिन्हें स्टेप तथा प्रेरीज कहते हैं।

उष्ण प्रदेशीय घास के मैदान (तृण भूमि) ये तृण भूमियाँ मोटे तौर पर दक्षिणी व उत्तरी गोलार्द्ध में ५° से ३०° अक्षांश तक उष्ण मरुस्थलों तथा मानसूनी भागों के मध्य में पाये जाते हैं। ये अफरीका के सूडान प्रदेश, जंजीबार और जम्बेसी बेसिन; दक्षिणी अमरीका में ओरीनिको बेसिन और ब्राजील तथा आस्ट्रेलिया के उत्तरी भीतरी भागों में मिलते हैं। इन भागों में ५ से १० फुट तक लम्बी घास उगती है। यह घास इतनी मोटी व घनी होती है कि जमीन पर एक मोटी चटाई सी बिछी रहती है। कहीं-कहीं इस घास की ऊँचाई १५ फीट तक पहुँच जाती है। घास के बीच-बीच में यूकेलिपट्स, टैमेरिंड, ताड़ आदि वृक्ष इक्का-दुक्का दिखाई पड़ते हैं। इनके ऊपर पत्तियाँ छतरीनुमा होती हैं। जहाँ वर्षा कुछ कम हो जाती है वहाँ घास की मोटाई व घनापन और ऊँचाई भी कम हो जाती है। कम वर्षा वाले प्रदेशों में घास का रंग खाकी हरा होता है और पत्तियाँ कड़ी होती हैं। इन्हें सवाना कहते हैं परन्तु अलग-अलग प्रदेशों में इनके विभिन्न नाम पड़ गये हैं। अफ्रीका में इन्हें पार्कलैंड, वेनेजुला में मेलेनास, ब्राजील में काम्पोस और आस्ट्रेलिया में डाउनलैण्ड्स कहते हैं। इन प्रदेशों में घास खाने वाले जीव-जन्तु जैसे बारह सिंहा, जेबरा, गाजीला, जिराफ, कंगारू आदि पाये जाते हैं। ये बहुत तेज दौड़नेवाले होते हैं और इनका शिकार कर के शेर, चीता, तेंदुआ आदि हिंसक जीव आदि भी घूमा करते हैं।

शीतोष्ण प्रदेशीय तृण भूमि—इनमें उगनेवाली घास कोमल, हरी और छोटी होती है। जहाँ छोटी गुच्छेदार घास उगती है वहाँ इन तृण भूमियों को स्टेप कहते हैं और जहाँ लम्बी घास होती है वहाँ ये प्रेरीज कहकर पुकारे जाते हैं। वास्तव में ये दोनों उपविभागों का वितरण वर्षा पर निर्भर रहता है। स्टेप प्रदेश के भीतरी शुष्क भागों में मिलती है। इनकी छोटी गुच्छेदार घास की जड़ें कम लम्बी होती हैं। यह प्रदेश कालासागर से लेकर बालकश झील तक फैला है। उत्तरी अमरीका में मध्य के बड़े-बड़े मैदान के पश्चिमी भाग में भी इसका विस्तार है। दक्षिणी अमरीका में एन्डीज पर्वत माला के सहारे पूर्व की ओर आर्जेन्टाइना में भी यह घास का प्रदेश मिलता है।

प्रेरीज प्रदेश में लम्बी घास मिलती है और इनकी जड़ें भी बहुत लम्बी व गहरी होती हैं। ये मैदान उत्तरी मध्य संयुक्त राष्ट्र अमरीका, दक्षिणी मध्य कनाडा, पूर्वी आर्जेन्टाइना, युरुग्वे,

दक्षिणी-पूर्वी ब्राजील, मध्य यूरोप आदि में पाये जाते हैं। परन्तु इन प्रदेशों की अधिकतर घास साफ कर डाली गई हैं और अब वहाँ उपयोगी फसलें उगायी जाती हैं। स्टेप और प्रेरीज दोनों ही संसार के खाद्यान्न भंडार बन गये हैं।

Gravel (पथरीली मिट्टी) पथरीली मिट्टी एक प्रकार की ढीली परतदार चट्टान है जो नदियों के निक्षेप से बनती है। इसमें कंकड़-पत्थर के गोल टुकड़े और बालू का मिश्रण रहता है। ये पत्थर व कंकड़ नदी के प्रवाह के कारण गोल हो जाते हैं। इनमें क्वार्ट्ज तथा अन्य प्रकार के सिलिका का अंग बहुत अधिक रहता है। पथरीली मिट्टी का निक्षेप नदी, झील या समुद्री धाराओं द्वारा होता है। यह प्रायः ढीली रहती है परन्तु जब बालू के स्थान पर चिकनी मिट्टी का अंग अधिक होता है तो कभी-कभी इसके ढोके या दबी हुई संयुक्त परतें बन जाती हैं जिन्हें कांगलो मिरेट कहते हैं।

Grazing (चरागाह) जिस भूमि क्षेत्र को पशु चराने के काम में लाया जाता है, उन्हें चरागाह कहते हैं। प्रायः घास के मैदान व पर्वतीय ढाल पर ही इस प्रकार के चरागाह बन जाते हैं और वहाँ के लोगों का प्रधान धन्धा पशुचारण हो जाता है। इन चरागाहों की विशेष देख-भाल करनी पड़ती है और कहीं-कहीं तो वैज्ञानिक खोजों के उपरान्त पशुओं को लाभ पहुँचाने वाली घास को उगाया जाता है। परन्तु कहीं-कहीं चरागाह अवनत दशा में पड़े रहते हैं और छोटी-छोटी झाडियों के प्रदेशों, नमकीन दलदलों या पर्वतीय ढालों पर बिना किसी योजना के चराई का काम शुरू कर दिया जाता है। इस प्रकार के क्षेत्रों को **अव्यवस्थित चरागाह** (Rough Grazing) कहते हैं।

Great Circle (दीर्घ वृत्त) पृथ्वी के धरातल पर अंकित वृत्त जो पृथ्वी के केन्द्र पर से होकर जाता है और पृथ्वी को दो गोलार्द्ध में विभाजित करता है। उसे दीर्घ वृत्त कहते हैं। पृथ्वी पर दो दीर्घवृत्त पाये जाते हैं—एक तो वह जो ध्रुवों से होकर गुजरता है और विपरीत देशान्तर रेखाओं द्वारा बनता है। इसे **मध्याग्ह दीर्घ वृत्त** कहते हैं। इसके द्वारा पृथ्वी पूर्वी व पश्चिमी दो भागों में बँट जाती है। दूसरा दीर्घ वृत्त भूमध्यरेखा है जो पृथ्वी को उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध में विभाजित करता है। वास्तव में पृथ्वी के किन्हीं दो बिन्दुओं के बीच सबसे छोटी दूरी इस प्रकार के दीर्घवृत्त का कोई अंग ही होता है।

Great Circle route (दीर्घ वृत्ताकार मार्ग) पृथ्वी के धरातल पर स्थित वह मार्ग जो दीर्घ वृत्तों के अनुसार चलता है, उसे दीर्घ वृत्ताकार मार्ग कहते हैं। इस प्रकार दो बिन्दुओं के बीच की सब से कम दूरी का पता चल जाता है। समुद्र पर जहाज प्रायः दीर्घ वृत्ताकार मार्ग के अनुसार चलते हैं परन्तु यह ध्यान रखते हुये कि कहीं खतरनाक स्थान तो नहीं है। जहाँ भँवर आदि होते हैं वहाँ वे इस मार्ग से विचलित हो जाते हैं। जो स्थान एक दूसरे से उत्तर या दक्षिण में स्थित है उनका दीर्घ वृत्ताकार मार्ग उनसे होकर गुजरने वाली मध्यान्ह रेखा से बनता है। जो स्थान पूर्व व पश्चिम में स्थित है उनसे होकर जानेवाले दीर्घ वृत्त का पता गणना द्वारा लगाया जा सकता है। साधारणतया ऐसा देखा जाता है कि एक ही अक्षांश में स्थित दो स्थानों के बीच का दीर्घ वृत्ताकार मार्ग उत्तरी गोलार्द्ध में अक्षांश रेखा हटकर थोड़ा उत्तर में और दक्षिणी गोलार्द्ध में अक्षांश रेखा के थोड़ा दक्षिण में स्थित होता है।

इन मार्गों से सफर करने पर काफी समय की बचत हो जाती है। सपाट मानचित्र पर ये दीर्घ वृत्ताकार मार्ग झूलाकार रेखाओं द्वारा चित्रित किये जाते हैं। ग्लोब पर ये सीधी रेखायें होती हैं और तब वास्तविक दूरी को नापा जा सकता है।

दो बिन्दुओं के बीच की दीर्घ वृत्ताकार दूरी को पहिले एक डोरे से नापते हैं। दो बिन्दुओं के बीच की सबसे छोटी दूरी को डोरे से नापकर फिर भूमध्यरेखा पर रखते हैं और तागे के

दोनों सिरों के बीच की डिग्री गिन लेते हैं। फिर डिग्री की उपसंख्या को ६९.१६ से गुणा कर देने पर वास्तविक दूरी मीलों में पता चल जाती है।

Green Flash (**हरी चमक**) सूर्योदय और सूर्यास्त के समय यदि आसमान व वायुमंडल साफ रहा तो दो-तीन सेकन्ड तक सूर्य से एक हरी रोशनी सी निकलती दिखलाई पड़ती है। इसे हरी चमक कहते हैं। वास्तव में सूर्य की किरणों में मिली नीली व हरी रोशनी लाल व पीली रोशनी की अपेक्षा अधिक बिखरती है। जब सूर्य क्षितिज से इतना नीचा होता है कि उसकी किरणों की लाल रोशनी दर्शक तक पहुँच ही नहीं पाती तो केवल हरी रोशनी ही दिखलाई पड़ती है। हरी रोशनी के साथ-साथ नीला प्रकाश भी निकलता है परन्तु नीला प्रकाश वायुमण्डल में समाकर लोप हो जाता है और केवल हरी चमक ही हमारे पास तक पहुँच पाती है।

Green mud (**हरित पंक**) समुद्र की तली पर एक प्रकार का निक्षेप पाया जाता है जिस का रूप दलदली व रंग हरा होता है। इसे हरित पंक कहते हैं। इसमें महीन चिकनी मिट्टी का अंश बहुत होता है और साथ-साथ कुछ खनिज के टुकड़े मिले पाये जाते हैं। इसमें ग्लूकोनाइट, लोहे का सिलिकेट और पोटेशियम का अंश काफी रहता है और इन्हीं की उपस्थिति के कारण इस निक्षेप का रंग भी हरा रहता है। हरितपंक में फोरानिफेरा जाति के जन्तुओं के अवशेष शरीर भी मिले रहते हैं और इनके अन्दर ग्लूशिनेट खनिज भरा मिलता है।

यह हरित पंक उपउष्ण कटिबंधीय भागों के तटीय प्रदेशों के समीप स्थित महाद्वीपीय ढाल के समुद्री पार्श्व पर अधिक पाया जाता है। इन प्रदेशों में कुछ बड़ी-बड़ी नदियाँ गिरती हैं। दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र तट, कैलीफोर्निया और पोर्त्तुगाल के समीपवर्त्ती महाद्वीपीय ढाल पर यह निक्षेप खूब मिलता है।

Green sand (**हरित बालू**) हरित पंक के समान यह भी एक समुद्री निक्षेप है जो समुद्र की तलैटी में पाया जाता है। हरित बालू में ग्लूशिनेट का अंश अधिक होता है और यह उन्हीं स्थानों पर पाया जाता है जहाँ हरित पंक मिलता है।

Gre enwich meantime (**ग्रीनविच माध्यमिक समय**) ग्रीनविच माध्यमिक समय एक अत्यावश्यक प्रामाणिक समय है जो कि इंगलैंड व पश्चिमी यूरोप का प्रामाणिक समय माना जाता है। इसको ग्रीनविच वेधशाला के निरीक्षणों के आधार पर प्राप्त किया जाता है। वास्तव में यह ग्रीनविच वेधशाला का स्थानीय समय है और ग्रीनविच देशान्तर शून्य अंश पर स्थित है। अन्तर्राष्ट्रीय ऋतुविज्ञप्तियों को तैयार करने में तथा हवाई मार्ग की समय जन्त्री बनाने में ग्रीनविच माध्यमिक समय को ही आधार मानते हैं चाहे वे प्रदेश शून्यांश देशान्तर से कितने ही दूर स्थित क्यों न हों। भारतवर्ष का प्रामाणिक समय ग्रीनविच के माध्यमिक समय से ५॥ घंटे बढ़ाकर माना गया है। इस प्रकार जब ग्रीनविच में १२ बजे दोपहर होगा तब भारतवर्ष में शाम के ५॥ बजे का समय होगा।

Gregale (**ग्रिगेल**) दक्षिणी मध्यवर्त्ती भूमध्यसागरीय प्रदेश में जाड़े के दिनों में उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व की ओर से प्रवाहित होने वाली वायु को ग्रिगेल कहते हैं। यह वायु उस समय चलने लगती है जब उत्तर में मध्य यूरोप और बाल्कान प्रायद्वीप में वायुभार उच्च हो जाता है और दक्षिण में स्थित लीबिया पर वायुभार अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। इस वायु के चलने पर वर्षा बिल्कुल ही नहीं होती और तापक्रम भी साधारण से नीचे नहीं गिरता। भूमध्य सागरीय प्रदेश में अन्य प्रकार की वायु को जो इसी दिशा से आती है, इसी नाम से पुकारते हैं।

Grike (Clint) (ग्राइक) चूने की चट्टानों से बने प्रदेशों में चट्टान की सतह पर से होकर जब वर्षा जलधारा गिरती है तो उसमें मिले कारबन डाइआक्साइड के कारण चूने की चट्टान घुल जाती है और स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े गहरे खोखले या गड्ढे बन जाते हैं। साधारणतया इस प्रकार के खोखले वहीं बनते हैं जहाँ चट्टानों में जोड़ होता है क्योंकि घुलकर नष्ट करने की शक्ति जोड़ वाले स्थानों पर अधिक प्रभाव दिखलाती है। जब कोई खुला हुआ जोड़ घुलने से और बड़ा व चौड़ा हो जाता है तो उन्हें ग्राइक कहते हैं। इस प्रकार के गड्ढे व खोखले उत्तर पश्चिमी इंगलैंड में बहुत पाये जाते हैं।

Grit (ग्रिट) मोटे दानेवाले एक बलुहे पत्थर को ग्रिट कहते हैं। इनका रंग गहरा भूरा या काला होता है और कठोर व मजबूत होने के कारण इन्हें इमारतों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। इसमें बालू के दाने स्वाभाविक सिरमिट द्वारा आपस में संयुक्त रहते हैं। बालू के दानों को संयुक्त करने वाली वस्तु क्वार्टज या सिलिका हो सकती है। कभी-कभी यह ग्रिटपत्थर लुहारी पत्थर, चिकनी मिट्टी और बुझाये हुये चूने मिलकर भी बनते हैं। यह एक प्रकार का कठोर बलुहा पत्थर होता है।

Grotto (ग्रोटो) चूने की चट्टानों से बने प्रदेशों में भूगर्भ निहित जल और ऊपर से छन-छन कर आने वाले वर्षा के जल के प्रभाव से चट्टानें जब घुल कर नष्ट हो जाती हैं और एक बड़ी कन्दरा या गुफा बन जाती है तो उसे ग्रोटो कहते हैं। कभी-कभी भूल से इस पारिभाषिक शब्द का अन्य प्रकार की गुफाओं के लिये भी प्रयोग कर देते हैं।

Ground Phenomena (भूमि स्थित रूप) वायुमण्डल में विद्यमान अंशों के द्रवीभूत होने पर जो रूप भूमि पर नजर आता है उसे भूमिस्थित रूप कहते हैं। इसके अन्दर ओस और पाला या तुषारपात को लिया जाता है। (देखिये Dew और Frost)

Ground Water (भूगर्भ निहित जल) पृथ्वी पर जो वर्षा होती है उसका कुछ अंश पृथ्वी के अन्दर की चट्टानों में प्रवेश कर जाता है। पृथ्वी के अन्दर जल के प्रवेश करने की मात्रा चट्टान की प्रकृति पर निर्भर रहती है। कुछ चट्टानें प्रवेश्य होती हैं परन्तु प्रवेश्य चट्टानों से बने प्रदेश में भी एक हद के बाद पानी का और नीचे जाना कठिन हो जाता है क्योंकि ऊपर के दबाव के कारण छेद छोटे होते जाते हैं। इस प्रकार भूपटल की चट्टानों के छिद्रों व दरारों में वर्त्तमान जल को भूगर्भ निहित जल कहते हैं। यही कारण है कि अधिकतर भूगर्भवर्ती जल सतह से कुछ सौ फीट नीचे ही रहता है। यह जल झरनों, खेतों, कुओं आदि के रूप में सतह पर प्राप्त होता रहता है। इस भूगर्भवर्ती जल में चट्टानों के कुछ अंशों को घुमा देने की शक्ति होती है। वास्तव में यह भूगर्भवर्त्ती जल तीन प्रकार के काम करता है—(१) चूने के पत्थर वाले देशों में पृथ्वी के नीचे का जल चूने के कुछ भाग को गला देता है, (२) जब इसमें घुली हुई वस्तुओं की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है तो यह उस घोल की मात्रा को कहीं जमा भी कर देता है और (३) रासायनिक क्रिया द्वारा कुछ चट्टानों की खनिज रचना को परिवर्त्तित भी कर देता है। इस प्रकार भूगर्भ निहित जल का विशेष महत्व है खासतौर से घुलनशील चट्टानों से बने भूभागों में।

Ground water Lakes (भूगर्भवर्ती जल निर्मित झीलें) प्रायः चूने या खड़िया मिट्टी से बने भूभागों में ही भूगर्भवर्ती जल की क्रिया विशेष रूप से प्रखर रहती है। अतएव इस प्रकार की झीलें चूने की चट्टानों के प्रदेश में बन जाती हैं। ये प्रायः दो प्रकार की होती हैं—(१) खड्ड की झीलें (Sink lakes) और (२) कन्दरा के बाढ़ की झीलें (Karst lakes) चूने की चट्टानवाले प्रदेशों में भूमि के नीचे वाले जल प्रवाह से गुफा सी बन जाती हैं क्योंकि चूना धुल-धुलकर बहता रहता है ऊपरी सतह पर स्थित छिद्रों से

छन-छन कर आने वाला वर्षा का पानी इस घुलन कार्य में और भी सहायता करता है और भूगर्भ में स्थित ये गुफायें सब ओर से घिर कर टूटने लगती हैं—इनकी छत बैठ जाती है और ऊपर सतह पर एक गड्ढा या खड्ड-सा बन जाता है। इन में छोटी-छोटी झीलें बन जाती हैं। इन्हें खड्ड की झीलें कहते हैं। चूने की चट्टानों वाले प्रदेशों में अधिकतर जलप्रवाह भूमि के नीचे की कन्दराओं व गुफाओं में होता रहता है। ये कन्दारायें और गुफायें जल में चूने की चट्टानों के घुलने से बन जाती हैं। इनमें से होकर जलधारायें बहती रहती हैं और ऊपर सतह पर स्थित प्रारम्भिक जलप्रवाह क्षेत्र सूखा पड़ा रहता है। कभी-कभी जब भूगर्भ में स्थित जलप्रवाह का मार्ग किसी कारण से अवरुद्ध हो जाता है तो इन ऊपरी जलप्रवाह क्षेत्रों में जल भर जाता है और कुछ समय के लिये झीलें बन जाती हैं। इन्हें कन्दरा के बाढ़ की झीलें कहते हैं। परन्तु इनका अस्तित्व स्थायी नहीं होता। यह झील मौसमी होती है और जैसे ही भूगर्भवर्त्ती जलधारा का मार्ग फिर से साफ हो जाता है, ये झीलें विलीन हो जाती हैं।

Ground Frost (**स्थलीय पाला**) वास्तव में स्थलखण्ड पर पड़ने वाले पाले को स्थलीय पाला कहते हैं। परन्तु यह पारिभाषिक शब्द ब्रिटिश द्वीपसमूह में एक विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है। वहाँ जब घास का तापक्रम ३०° फार्नहीट या इससे भी कम हो जाता है तो उस दशा को स्थलीय पाला कहते हैं। वास्तव में तापांश के ३०.४ डिग्री से नीचे तक पहुँच जाने पर स्थलीय पाला पड़ता है। इसको स्थलीय वनस्पति के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इसीलिये पानी जमने के तापांश ३२° फार्नहीट को स्थलीय पाले का आधार नहीं माना जाता क्योंकि उगी हुई वनस्पति के अंशों को उस समय तक हानि नहीं पहुँचती जब तक कि पानी जमने के बिन्दु से काफी नीचा ताप क्रम नहीं हो जाय। इसी लिये स्थलीय पाले का आधार ३०.४° से कम तापांश को माना जाता है।

Group (**पर्वत समुदाय**) विभिन्न विस्तार व व्यवस्था के अनुसार पर्वतों का नाम व वर्ग भी अलग-अलग हो जाता है। जब किसी प्रदेश के शिखर व श्रेणियाँ पर्वत माला की तरह विस्तृत तो हों परन्तु पर्वतमाला के समान लम्बी रेखा में स्थित न हों तो उन्हें पर्वत समुदाय कहते हैं। पर्वत समुदाय में साधारणतया शिखर व श्रेणियाँ गोलाकार रूप में व्यवस्थित होती हैं। वास्तव में जब किसी गुम्बजाकार पर्वत में आवरण क्षय के प्रभाव से इधर-उधर का भाग कट जाता है पर बीच का आग्नेय चट्टानी प्रदेश वैसा ही बना रहता है तो पर्वत समुदाय बन जाता है।

Grove (**वृक्षकुंज**) एक छोटे छायादार वन को वृक्ष कुंज कहते हैं। किसी खुली जगह में वृक्षों के झुरमुट को वृक्ष कुंज कहते हैं।

Growing season (**उपज काल**) किसी प्रदेश में साल का वह भाग जब तापक्रम और वर्षा की दशा ऐसी उपयुक्त होती है कि प्राकृतिक वनस्पति को उगने में पूरी सहायता मिलती है, उसे उपज काल कहते हैं। वास्तव में प्रत्येक फसल के लिये अलग-अलग तापक्रम व वर्षा की आवश्यकता होती है और इसलिये प्रत्येक फसल का उपजकाल अलग-अलग होता है। फिर भी वनस्पति के उगने व पनपने के लिये एक विशेष तापक्रम और वर्षा की न्यूनातिन्यून आवश्यकता होती है। इसीलिये साधारणतया यह देखा जाता है कि भूमध्यरेखा से हम जितना ही ध्रुवों की तरफ चलते हैं उतना ही उपजकाल छोटा होता जाता है। भूमध्य रेखीय वन प्रदेशों में तापक्रम और वर्षा की अधिकता के कारण पूर्ण वर्ष ही उपजकाल बना रहता है। इसके विपरीत टुन्ड्रा प्रदेश में उपजकाल हद से हद दो-तीन महीने तक रहता है। वास्तव में उपजकाल की अवधि तापक्रम व वर्षा की मात्रा पर निर्भर रहती है। जैसे-जैसे

तापक्रम घटता जाता है वैसे-वैसे उपजकाल छोटा होता जाता है। उसी प्रकार जैसे-जैसे वर्षा की मात्रा घटती जाती है उपजकाल की अवधि कम होती जाती है। वास्तव में उपजकाल की अवधि में यह घटोत्तरी भूमध्यरेखा से उत्तर व दक्षिण की तरफ आगे बढ़ने पर प्रकट होती है। समुद्रतट से महाद्वीपों के आन्तरिक भागों की तरफ बढ़ने पर वर्षा की कमी होती जाती है और फलतः उपजकाल छोटा होता जाता है।

बहुत-सी फसलों के लिये विशेष प्रकार या अवधि के उपजकाल की आवश्यकता होती है, जैसे कपास को कम से कम २०० तुषारपातहीन दिन का उपजकाल चाहिये। इसी प्रकार मक्के की फसल को तैयार होने के लिए कम से कम १५० तुषारपातहीन दिनों के उपजकाल की आवश्यकता होती है।

Groyne (ग्रायन) समुद्र के जल के भीतर तटरेखा के साथ समकोण स्थिति पर बनाई गई निचली दीवार को ग्रायन कहते हैं। इसके बनाने का तात्पर्य प्राय: यह होता है कि लहर के साथ बालू व मिट्टी के बहाव को रोका जा सके। सामान्यतः ग्रायन वहाँ पर बनाई जाती है जहाँ समुद्र द्वारा तट प्रदेश का आवरण-क्षय बहुत होने लगता है। अतः इसके द्वारा समुद्र की लहरों के आवरण-क्षय को कम करना होता है।

Gulch (गल्श) तेज प्रवाह से बहने वाली नदी की सँकरी, गहरी व तीव्र ढालवाली घाटी को गल्श कहते हैं। यह गल्श प्रायः शुष्क प्रदेशों में बन जाते हैं क्योंकि नदी अपनी तलैटी को गहराती करती जाती है परन्तु उसके पार्श्वों पर वर्षा की कमी के कारण अधिक काट-छाँट नहीं हो पाती। फलतः नदी घाटी गहरी व सँकरी होती है और उसके पार्श्वों की चौड़ाई अधिक नहीं होती। दोनों ओर चट्टानें दीवार-सी खड़ी रहती हैं। इस प्रकार के गल्श पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र अमरीका में बहुत पाये जाते हैं।

Gulf (खलीज) एक विस्तृत व गहरी खाड़ी को खलीज कहते हैं। वास्तव में समुद्र के भूखंड के विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करके फैल जाने से खलीज का निर्माण हो जाता है। इसके बनने के दो कारण हैं—(१) या तो भूपटल के किसी भाग में दरार हो जाने से विस्तृत भूखंड समुद्रतल के अन्दर समा जाता है या (२) समुद्रतल के उठ जाने से निम्न भूमियों में पानी भर जाता है और खलीज बन जाते हैं।

Gulf stream (गल्फस्ट्रीम) उत्तरी व दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारायें पश्चिमी द्वीप समूह में होकर मेक्सिको की खाड़ी तक पहुँचती हैं और खाड़ी के तट से टकराकर एक समुद्री धारा उत्पन्न हो जाती है जो फ्लोरिडा चेनल में होकर संयुक्त राज्य के तट के सहारे बहने लगती है। इस समुद्री धारा को गल्फ स्ट्रीम कहते हैं। अटलान्टिक महासागर की सब से महत्वपूर्ण धारा यही है। फ्लोरिडा के तटीय प्रदेश को छोड़ने के बाद यह आधी मील गहरी और तीस मील चौड़ी रहती है। ऐसा अनुमान किया गया है कि इस धारा में मिसीसिपी नदी की अपेक्षा ७०० गुना अधिक पानी प्रवाहित होता रहता है। चूँकि यह स्थलखंडों से घिरे समुद्रों से होकर आती है और चूँकि यह खुले समुद्र की अपेक्षा अधिक छिछले जलभागों से होकर आती है, इसलिए इसकी सतह पर लिया गया तापक्रम उष्णकटिबंधीय जल के औसत तापांश से अधिक ही रहता है। इसकी चाल तीन से ५ मील प्रति घंटा तक होती है। परन्तु यह तेजी से अधिक चौड़ी होती जाती है और जैसे-जैसे इसकी चौड़ाई अधिक होती है वैसे-वैसे इसकी धारा अपेक्षाकृत अधिक छिछली, ठण्ढी व धीमी पड़ती जाती है। फलतः यह स्ट्रीम का रूप छोड़ कर ड्रिफ्ट हो जाती है।

उत्तर में ४०° अक्षांश के निकट लैबरेडोर की ठंडी धारा से टकरा कर इसकी दिशा

पछुवा वायु से प्रभावित होकर उत्तर-पूर्व की ओर हो जाती है और वेस्ट विंड ड्रिफ्ट के नाम से यह धारा ब्रिटेन के पश्चिमी तटों तथा नार्वे की ओर चली जाती है। इसकी एक शाखा दक्षिण की ओर मुड़ कर स्पेन के तट के समानान्तर बहती हुई उत्तरी पूर्वी व्यापारिक हवाओं के प्रभाव से पश्चिम की ओर बहने वाली भूमध्यरेखीय धारा से मिल जाती है। नार्वे की ओर बहने वाली शाखा उत्तर में आर्कटिक धारा से जा मिलती है।

इस धारा पर से गुजरने वाली हवायें गर्म व जलपूर्ण हो जाती हैं और फलतः पश्चिमी यूरोप पर यह निम्नलिखित दो प्रभाव डालती हैं।—(१) गर्म पछुवा हवाओं और गर्म-जलधारा के प्रभाव से यूरोप के पश्चिमी तटीय प्रदेशों का तापक्रम बढ़ जाता है और इसी अक्षांश में स्थित अन्य प्रदेशों की अपेक्षा ये प्रदेश अधिक गर्म रहते हैं। (२) इन पर से गुजरने वाली पछुआ हवाओं में पानी ग्रहण करने की शक्ति बढ़ जाती है और फलतः पश्चिमी यूरोप में वर्षा काफी होती है।

Gully (गली) वर्षा के जल के मूसलधार पड़ने से कोमल मिट्टी में लम्बी व पतली नालियाँ बन जाती हैं। यह क्रिया पहाड़ी प्रदेशों के पार्श्वों पर बहुत प्रखर रहती है। इस प्रकार से बनी नालियों को गली कहते हैं। यह गली नदी तलैटी से छोटी होती है और घाटी के विस्तार के मुकाबले तो यह बहुत ही छोटी होती है। अक्सर भूमि के कटाव से बनी नालियों को भी गली कहते हैं। इस प्रकार की नली प्रायः शुष्क पड़ी रहती है। केवल वर्षा के समय या बर्फ के पिघलने पर इन से होकर जल बहने लगता है। जहाँ भूमि के गहरे कटाव से भी एक विस्तृत प्रदेश में गलियाँ बन जाती हैं, प्रति वर्ष ये नाले और खाइयाँ बढ़ती ही जाती हैं और कुछ ही वर्षों में यह एक बहुत बड़े क्षेत्र को काटकर नष्ट कर देता है। प्रायः पानी द्वारा कटाव से गलियाँ निम्नलिखित दशाओं में अधिक होती हैं—(१) यदि मिट्टी ऐसी हो जो पानी को अधिक न सोख सके, (२) यदि मिट्टी ढाल पर स्थित हो, (३) यदि पानी थोड़ा-थोड़ा न बरसकर मूसलाधार बरसे, (४) जहाँ पहाड़ों के ढालों पर जंगलों को काट कर साफ कर दिया गया है और (५) जहाँ खेती करने का ढंग अवैज्ञानिक हो।

Haar (हार) ग्रेट ब्रिटेन के पूर्वी तटीय प्रदेशों में पूर्वी वायु द्वारा प्रेषित समुद्री कुहरा छा जाता है। इसे हार कहते हैं। यह हार गर्मी के मौसम में अधिक होता है।

Habitat (निवास क्षेत्र) किसी पौधे या जीव की स्वाभाविक परिस्थिति को उसका निवास क्षेत्र कहते हैं। भूगोल के अन्तर्गत प्रमुख प्राकृतिक विभागों व उनके उप-विभागों को निवास क्षेत्र कहा जा सकता है। भूमध्यरेखीय वन प्रदेश टुन्ड्रा आदि इसी प्रकार के निवास क्षेत्र हैं।

Haboob (हबूब) सूडान के उत्तरी व उत्तरी-पूर्वी भाग में अक्सर आने वाली धूल की आँधी को हबूब कहते हैं। ये हबूब खारतूम के समीप बहुत आते हैं। सुबह के समय ये आँधियाँ नहीं आतीं पर शाम को व तीसरे पहर ये खूब आती हैं। प्रायः ये आँधी हबूब—मई से सितम्बर तक के महीनों में खूब आती हैं। परन्तु साल के किसी भी समय यदि हबूब आ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं।

जब हबूब चलती है तो वायु की दिशा में तीव्र परिवर्त्तन होने लगता है और वायु की शक्ति एकाएक बढ़ जाती है। इसके आने पर तापक्रम एकदम गिर जाता है और धूल के बादल उड़ने के कारण आमने-सामने कुछ भी दिखलाई नहीं देता। अक्सर हबूब के बाद बादलों की कड़क और बिजली की चमक के साथ भारी वर्षा भी होती है।

Hachures (छायाकरण) मानचित्रों पर ऊँचाई दिखलाने के लिये कभी-कभी छोटी-छोटी रेखाओं का प्रयोग करते हैं। इन रेखाओं को ढालदर्शक छाया कहते हैं और इस विधि को छायाकरण कहते हैं। दीर्घ मानदण्ड के आधार पर बने हुये मानचित्रों में ढाल ऊँचाई छायाकरण की भिन्न-भिन्न मात्राओं द्वारा प्रकट किये जा सकते हैं। धीमी या क्रमश: ढाल हलकी छाया से और तीव्र ढाल गहरी छाया से प्रकट किया जाता है। लघुमान-दण्ड के आधार पर खींचे गये मानचित्रों में पर्वतमाला दिखलाने के लिये इन रेखाओं के अनेक भेदों का प्रयोग किया जाता है। उसमें पर्वत कनखजूरे की भाँति दिखलाये जाते हैं। परन्तु इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इससे लम्बी व पतली श्रृंखलाओं तथा ऊँची भूमि पर के विस्तृत मैदानों में विशेष भेद नहीं मालूम होता। इसके अलावा इन छायाओं से स्थानों के नाप छिप जाते हैं। इनसे केवल प्रदेश के विषय में सामान्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि यह विधि आधुनिक मानचित्रों में प्रयोग नहीं की जाती।

Hade (हेड) किसी दरारतल और लम्बस्थिति के बीच के कोण को हेड कहते हैं।

Haff (हॉफ) किसी नदी के मुहाने पर बालू की दीवार या चबूतरे के कारण बना हुआ छिछला जलाशय हॉफ कहलाता है। इस हॉफ में जल इतना छिछला होता है कि इसमें केवल छोटे-छोटे जहाज ही आ सकते हैं। जर्मनी के बाल्टिक सागरीय किनारे पर इस प्रकार के हॉफ बहुत पाये जाते हैं।

Hail (ओले) जब कड़क के साथ बादल चमकते हैं और क्रम्यूलोनिम्बस बादल से बर्फ के कठोर पत्थर गिरते हैं तो उन्हें ओले कहते हैं। ये ओले कई प्रकार व आकार के होते हैं और कभी-कभी बहुत बड़े-बड़े हो जाते हैं। कोई-कोई ओला तो दो पौण्ड तक का होता है।

जब नम व आर्द्र हवा तेजी से ऊपर को उठती है तो द्रवीभूत हुये जलकण जम जाते हैं। इन छोटे-छोटे बर्फ के टुकड़ों के सम्पर्क में आकर और जलवाष्प भी द्रवीभूत होकर हिम के रूप में इकट्ठा होता जाता है और इनका आकार व विस्तार बढ़ता जाता है। इस प्रकार के ओले जब काफी भारी हो जाते हैं और ऊपर उठती हुई वायुधारा इन्हें सँभाल नहीं पाती तो ये नीचे गिर पड़ते हैं। जब ये ओले नीचे की ओर गिरते रहते हैं तो वायु की आर्द्रता के द्रवीभूत होते रहने से इनका विस्तार और भी अधिक होता जाता है। इस प्रकार के ओले गिरने पर कभी-कभी भारी नुकसान हो जाता है और खड़ी हुई फसलें तबाह हो जाती हैं। जब मुलायम ओले पड़ते हैं तो उनका रूप हिम की तहों के समान प्रतीत होता है।

Halo (प्रकाश वृत्त) जब आकाश में सिरो स्ट्रॉटस बादलों की पतली चद्दर फैली रहती है तो सूर्य व चन्द्रमा के चारों ओर रोशनी का एक गोल दायरा सा छा जाता है। इसे प्रकाशवृत्त कहते हैं। जब सूर्य के चारों ओर प्रकाशवृत्त बन जाता है तो आँखों से उसे देखना कठिन होता है, कारण यह है कि आँखें चकाचौंध होने लगती हैं। इसलिये धुँआये हुये शीशे से देखते हैं। सबसे साधारण प्रकाशवृत्त वह होता है जिसमें चन्द्रमा और प्रकाश वृत्त के बीच २२° डिग्री का कोण बना होता है। जब बादल में स्थित बर्फ के कणों पर सूर्य का प्रकाश पड़कर बिखर जाता है तो यह प्रकाश वृत्त बन जाता है। प्रकाश वृत्त प्राय: सफेद होता है परन्तु यदि वृत्त बिल्कुल स्पष्ट है तो यह रंगीन नजर आता है। उस समय उसके भीतर के किनारे पर हल्का लाल रंग दृष्टिगोचर होता है।

Halophyte (हालोफाइट) नमकीन दलदल या अन्य समुद्री वातावरण में स्वभावत: आने वाली वनस्पति हालोफाइट कहलाती है। इसमें पानी देर तक रोके रहने की प्राकृतिक शक्ति होती है।

Hamlet (ग्राम) एक छोटे गाँव या मकानों के समूह को ग्राम कहते हैं।

Hammada (हामदा) मरुस्थलीय प्रदेशों में वे चट्टानी उच्च प्रदेश जिन पर की धूल उड़ाकर ले जाई गई हो उन्हें हामदा कहते हैं। सहारा में इस प्रकार के अनेक उच्च प्रदेश हैं।

Hanging Valley (लटकती हुई घाटी) जब एक नदी घाटी में कोई सहायक नदी अपेक्षाकृत ऊँचे तल पर से आकर मिलती है तो मिलन बिन्दु अथवा संगम पर झरने व जलप्रपात बन जाते हैं। इस प्रकार की उच्चतल पर स्थित घाटी को लटकती हुई घाटी कहते हैं। हिमाच्छादित प्रदेशों में इस प्रकार की लटकती हुयी घाटियाँ विशेष रूप से पायी जाती हैं। जब मुख्य नदी घाटी किसी हिम प्रवाह द्वारा सहायक नदियों की घाटी से अधिक गहरी हो जाती है तो सहायक और मुख्य नदी का संगम कुछ ऊँचा हो जाता है और ऊँची सहायक घाटियों को लटकती हुई घाटी कहते हैं। लेकिन केवल हिम नदियों के कारण ही लटकती हुई घाटियाँ नहीं बनतीं। जब कभी मुख्य हिमनदी घाटी में आवरण क्षय अधिक तीव्रतर गति से होता है तो सहायक नदी की घाटियों की अपेक्षा यह अधिक गहरी हो जाती है और सहायक नदी घाटी लटकती हुई प्रतीत होती है। लटकती घाटी के प्रदेश में प्राकृतिक शोभा विशेष दर्शनीय होती है।

Harbour (पोताश्रय) समुद्र तट के समीप का जल प्रदेश जहाँ समुद्री जहाजों के ठहरने की सुविधा रहती है उसे पोताश्रय कहते हैं। पोताश्रय दो प्रकार के होते हैं—स्वाभाविक और कृत्रिम। स्वाभाविक पोताश्रय साधारणतया तटरेखा में भूमि की विशेष बनावट के कारण घिरा हुआ सुरक्षित स्थान होता है जिसमें जहाजों के ठहरने के लिये शान्त जल मिल जाता है। कृत्रिम पोताश्रय उन स्थानों पर बनाये जाते हैं जहाँ भूमि की बनावट व अन्य स्वाभाविक दशायें अनुकूल नहीं होतीं। यहाँ पर तरंग-भंगी दीवारों तथा झामों से सदा ही काम लिया जाता है। ये दीवारें पोताश्रय क्षेत्र के अन्दर प्रवेश करने वाली जल तरंगों के वेग को रोकने के लिये बनाई जाती हैं। जहाँ समुद्र का जल छिछला होता है वहाँ झामों द्वारा गहरा रक्खा जाता है।

आदर्श पोताश्रय के लिये निम्नलिखित बातें होनी चाहिये—(१) समुद्री तूफानों तथा लहरों से सुरक्षा। (२) शीतकाल में हिम से मुक्ति। (३) तट के पास जल की काफी गहराई। (४) बड़े-बड़े जहाजों के मुड़ने के लिये काफी चौड़ाई। (५) सामान उतारने व चढ़ाने के लिए पर्याप्त प्रदेश। (६) पृष्ठ प्रदेश का समृद्ध होना। (७) सीधे व समतल मार्गों द्वारा पृष्ठ प्रदेश से सम्बन्ध होना।

Hard pan (कठोर परत) भूमि की सतह से नीचे मिट्टी व चट्टान की वह परत जो अप्रवेश्य हो, उसे कठोर परत कहते हैं।

Hard Woods (कठोर लकड़ी के वन) प्रायः चौड़ी पत्ती वाले पेड़ों की लकड़ी कठोर होती है और महोगनी, गटापार्चा, संदल, बाँस, आबनूस, देवदार, सागौन, जो भूमध्य-रेखीय व मानसूनी प्रदेशों में पाये जाते हैं और ओक, एश, बीज, एल्म, चेस्ट नट, आदि जो शीतोष्ण कटिबंध में पाये जाते हैं, इसी श्रेणी में आते हैं। कठोर लकड़ी के वन दो प्रकार के होते हैं—

(१) **Ever green Hard woods** (कठोर लकड़ी के सदा बहार वन) (देखिये Equatorial Forest)

(२) **Deciduous Hard woods** (कठोर लकड़ी के पतझड़ वन) (देखिये Deciduous Forest)

इन वनों की लकड़ी इमारती कामों, जहाजों आदि के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है परन्तु भूमध्यरेखीय प्रदेशों में इनका प्राप्त करना कठिन है और शीतोष्ण प्रदेशों में इन्हें अधिकतर साफ़ करके खेती का धन्धा शुरू किया गया है। वहाँ केवल ये पर्वत शिखरों पर बचे पाये जाते हैं। इनकी लकड़ी से मेज, कुर्सी आदि बनाई जाती है।

Harmattan (हारमाटन) पश्चिमी अफ्रीका में पूर्व या उत्तर-पूर्व से बहने वाली हवा को हारमाटन कहते हैं। चूँकि यह हवा सीधे सहारा रेगिस्तान की ओर से आती है, इसलिए यह हवा गर्म-शुष्क व धूल से भरी रहती है। यह इतनी गर्म व सूखी होती है कि कभी-कभी इसके बहने पर पेड़ों के तने फट जाते हैं। जब यह हवा गिनी तट पर पहुँचती है तो वहाँ की तर-गर्मी में इस शुष्कता से बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है। उस प्रदेश में यह वायु स्वास्थ्यप्रद समझी जाती है। एक विशेष बात यह भी है कि गिनी तट पर यह वायु अपेक्षाकृत ठण्डी हो जाती है। इसका कारण यह है कि शुष्क होने के कारण यह वाष्पीभवन में सहायक होती है और इसलिये इसमें ठण्डक आ जाती है। इसीलिये उस प्रदेश में इसे डाक्टर कहते हैं।

अपने साथ यह बहुत सी धूल उड़ाकर लाती है और उसके कारण सम्पूर्ण वातावरण में बड़ा धुँधलापन छा जाता है। नदी पर नाव चलाना भी दूभर हो जाता है। इससे खड़ी हुई फसलों को भारी हानि पहुँचती है और काफी आन्तरिक प्रदेशों में इतनी गर्म व शुष्क हो जाती है कि बहुधा इससे स्वास्थ्य को हानि होने की आशंका रहती है।

विस्तार के दृष्टिकोण से जाड़े की ऋतु में इसका विस्तार भूमध्य रेखा से ५° अंश उत्तरी अक्षांश तक रहता है। उस समय भूमध्यरेखीय निम्न भार प्रदेश भी एक बहुत संकीर्ण पट्टी में स्थित रहता है। गर्मी के मौसम में इसके प्रवाह का विस्तार फैलकर १९° उत्तरी अक्षांश तक फैल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस वायु की प्रचण्डता दक्षिण की अपेक्षा उत्तर में अधिक रहती है।

Haze (धुँधलापन) जब धूल, धुँये या अन्य किसी प्रकार के सूक्ष्म पर ठोस कणों के वायुमण्डल में फैल जाने से दृश्यता का क्षेत्र संकीर्ण हो जाता है तो उसे धुँधलापन कहते हैं। इसमें २ किलोमीटर से अधिक दूर की वस्तु नहीं दिखलाई पड़ती। (देखिये **Fog, Mist**)

Head land (शिला खंड) समुद्र में जब कोई चट्टान या स्थलखंड काफी भीतर तक निकला रहता है तो उसे शिलाखंड कहते हैं। ये शिलाखंड लहरों की कटान से बन जाते हैं। किनारे पर की चट्टानों का निचला भाग लहरों के थपेड़ से कमजोर होता रहता है और इस प्रकार कट जाने से ऊपर का भाग समुद्र के जल के ऊपर दूर तक निकला रह जाता है। इस प्रकार के शिलाखंड प्रायः बहुत ढालू होते हैं और उनकी आकृति ऊबड़-खाबड़ रहती है। इनकी चट्टानें भी प्रायः कठोर ही होती हैं। इनसे नौका संचालन में बड़ी मदद मिलती है और इनके ऊपर प्रकाश गृह बनाकर जहाजों को मार्ग प्रदर्शन तक किया जाता है।

Head of navigation (नाव्य शिखर) किसी नदी में जहाजों द्वारा पहुँचने के बिन्दु को नाव्य शिखर कहते हैं। प्रायः व्यापार के लिए ही नदियों पर जहाज आते-जाते हैं। नाव्य शिखर की स्थिति नदी की गहराई, जल प्रपातों के अभाव, बाढ़ या बर्फ जमने से धूल तथा प्रदेश विशेष की आर्थिक व औद्योगिक उन्नति पर निर्भर रहती है। साथ-साथ यातायात के अन्य साधनों से प्रतिस्पर्धा भी इस नाव्य शिखर पर असर डालती है। गंगा नदी में पहले काफी दूर तक जहाज आ-जा सकते थे परन्तु रेल व सड़कों के निर्माण के बाद से नाव्य

शिखर काफी पीछे हट गया है। पहले कानपुर इसका नाव्य शिखर था परन्तु अब पटना हो गया है।

Headward Erosion (उद्गम की ओर आवरण क्षय) नदी द्वारा आवरणक्षय के मोड़ को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि नदी न केवल अपनी तली व किनारों को ही काटती है बल्कि साथ-साथ अपनी घाटी को पीछे की ओर भी काटती जाती है। कई बार दो नदियाँ अपने उद्गम की ओर काटते-काटते अपने बीच के जल-विभाजक या पर्वत को बिल्कुल साफ कर देती हैं और दोनों का प्रवाह मिल जाता है। परन्तु नदी में उद्गम के आगे क्षय करने की शक्ति नहीं होती। फिर भी उद्गम की ओर आवरणक्षय से नदी की घाटी का विस्तार बढ़ जाता है। बहुधा नदी की घाटी उद्गम से और पीछे तक हो जाती है। इसका कारण यह है कि क्षय से उत्पन्न ढाल उद्गम स्थान पर सबसे ज्यादा तीव्र होता है। अतः वहाँ पर नदी के प्रवाह के अलावा वर्षा के जल के आघात से उद्गम स्थान का ढाल नदी के प्रवाह की दिशा में कटता जाता है और फल यह होता है कि स्थायी नदी घाटी उद्गम से पीछे तक बढ़ जाती है। अक्सर उद्गम मरुस्थल भी पीछे को हट जाता है। इस सम्पूर्ण क्रिया को उद्गम की ओर आवरण क्षय कहते हैं।

Heath (हीथ) किसी विस्तृत, खुले तथा खाली पड़े हुये भूमि क्षेत्र को हीथ कहते हैं। साधारणतया हीथ प्रदेश चौरस तथा खेती के अनुपयुक्त होता है और उस पर छोटी-छोटी झाड़ियाँ फैली पाई जाती हैं। जलवायु के अनुसार ये झाड़ियाँ या तो मोटे पत्ते वाली काँटेदार होती हैं जिनकी जड़ें बहुत लम्बी होती हैं या छोटी-छोटी गुच्छेदार पैनी घास के झुरमुट-से रहते हैं।

Heat wave (ताप लहर) जब कि अत्यधिक गर्मी पड़ने लगती है तो उसे ताप प्रवाह कहते हैं। ब्रिटिश द्वीप समूह में कई दिन तक लगातार ८०° फार्नहीट से अधिक तापक्रम रहता है और इस अति गर्म काल को ताप प्रवाह कहते हैं। उत्तर भारत में मई-जून के महीनों में अक्सर ताप प्रवाह का अनुभव होता है। उस समय औसत दैनिक तापक्रम १२०° तक पहुँच जाता है और दिन-रात लू चला करती है।

Heavy Industry (भारी उद्योग) वे शिल्प उद्योग जो भारी वस्तुओं का निर्माण करते हैं, भारी उद्योग कहलाते हैं। इसके अन्तर्गत जहाजों का बनाना, मशीनों का निर्माण और इस्पात उद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वास्तव में किसी उद्योग को 'भारी' कहने के लिए निम्नलिखित आधारों में रखना अनिवार्य है--(१) कच्चे माल का भारीपन, (२) बनाई हुई तैयार वस्तु का भारीपन, (३) निर्मित उपज के मूल्य और तौल का संबन्ध, (४) काम में लगे हुए मजदूरों में आदमियों की संख्या और (५) औद्योगिक शक्ति विशेष की हय शक्ति मात्रा (Horse Power)।

Helium (हीलियम) हीलियम वायुमण्डल में पायी जाने वाली एक गौण गैस है जिसका अंश शुष्क वायु में .०१ प्रतिशत से भी कहीं कम रहता है। साधारणतः प्रत्येक दो लाख इकाई वायु में हीलियन का अंश केवल एक इकाई मात्र होता है।

Helm Wind (हेल्म वायु) उत्तरी इंगलैंड में कम्बरलैंड और वेस्टमोरलैण्ड प्रदेशों में क्रासफेल श्रेणी के पश्चिमी ढालों पर से उतर कर उत्तर-पूर्व से आने वाली तेज ठंढी हवा को हेल्म वायु कहते हैं। जब यह वायु बहती है तो क्रास फेल श्रेणी के ऊपर एक घना छतरीदार बादल छा जाता है। और इससे कुछ मील दूर बादल के समानान्तर बादल की एक दूसरी चद्दर नजर आती है। वह यही हेल्म वायु के प्रवाह की सीमा है। सामान्यतः हेल्म वायु जाड़े के मौसम के पिछले भाग तथा वसन्त ऋतु में विशेष रूप से बहती

है और इसका बहना उस समय और भी अधिक निश्चित हो जाता है जब प्रवाहित वायु का आम रुख पूर्व या उत्तर-पूर्व से हो ।

Hemisphere (**गोलार्द्ध**) पृथ्वी के धरातल पर यदि केन्द्र से होती हुई रेखा खींची जाय तो इसके दो भाग हो जाते हैं । इन दोनों भागों को गोलार्द्ध कहते हैं । इस प्रकार पृथ्वी के धरातल को उत्तर से दक्षिण तक गुजरने वाली देशान्तर रेखा द्वारा पूर्वी व पश्चिमी गोलार्द्ध में बाँटा जा सकता है, परन्तु साधारणतया पृथ्वी के धरातल को भूमध्य रेखा के आधार पर उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध में बाँटते हैं । भूमध्य रेखा के उत्तर का आधा भाग उत्तरी गोलार्द्ध कहलाता है और इस रेखा के दक्षिण का भाग दक्षिणी गोलार्द्ध कहलाता है । कभी-कभी उत्तरी गोलार्द्ध को स्थलीय गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्ध को जलीय गोलार्द्ध भी कहते हैं । इसका कारण यह है कि पृथ्वी का ६/७ स्थल खंड उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है । यदि उत्तरी गोलार्द्ध का मानचित्र लन्दन, बर्लिन या उत्तरी यूरोप के अन्य किसी समीपवर्त्ती नगर को केन्द्र मान कर खींचा जाय तो इस सम्पूर्ण स्थलखंड का विस्तार व स्थिति स्पष्ट हो जायगी । इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध का अधिकांश भाग जलाशयों व महासागरों से घिरा हुआ है । इसमें सम्पूर्ण पृथ्वी के स्थलखंड का १/७ हिस्सा ही पाया जाता है और न्यूजीलैंड के समीप के किसी विन्दु को इसका केन्द्र माना जा सकता है ।

वास्तव में उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध में एक दूसरे से विपरीत दशायें पायी जाती हैं । जब उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम होता है तब दक्षिणी गोलार्द्ध में जाड़े की ऋतु रहती है और जब उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़ा पड़ता है तो दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम रहता है । इसके फलस्वरूप पृथ्वी की वायु भार व्यवस्था पर भी बड़ा असर पड़ता है और प्रवाहित वायु की दिशा व गति भी दोनों गोलार्द्धों में अलग-अलग पायी जाती है । स्थलखंड की कमी के कारण दक्षिणी गोलार्द्ध में व्यवस्थित वायु की गति उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा तीव्रतर रहती है ।

Hercynian movement (**हरसीनियन पर्वत निर्माण युग**) संसार के पर्वतों के निर्माण का मध्यकाल हरसीनियन पर्वत निर्माण युग कहलाता है । इस युग में भूगर्भ की समानान्तर गतियों के कारण उत्तर-पूर्व फ्रांस, मध्य जर्मनी और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अपलेशियन पर्वतों का निर्माण हुआ । इन पर्वत प्रदेशों के मोड साधारण उत्श्रृंग या घाटी के रूप में ही हैं । उनमें कोई जटिलता नहीं पायी जाती है । इसके अलावा समय के अन्तर के कारण बाहरी शक्तियों के आघात-प्रघात से कट-कटा कर इनकी ऊँचाई अब बहुत कम हो गई है और इनकी आधार चट्टानें तक कहीं-कहीं ऊपर दिखलाई पड़ने लगी हैं ।

High (**उच्च भार प्रदेश**) जब आस-पास के स्थानों की अपेक्षा कहीं का वायुभार अधिक रहता है तो उसे उच्चभार प्रदेश कहते हैं । ऐसे प्रदेश से हवायें केन्द्र से बाहर की ओर दौड़ती हैं । इस प्रकार इनके चारों ओर विपरीत चक्रवात की सी दशायें उत्पन्न हो जाती हैं । जिन भूभागों में बहुत अधिक ठण्ढ पड़ती है वहाँ जाड़े के कारण वायुभार अधिक हो जाता है । यह दशा साइबेरिया में और जाडे के मौसम में मध्य एशिया में उत्पन्न हो जाया करती है । इस उच्चभार प्रदेश के चारों ओर विपरीत चक्रवात बन जाता है । इसी प्रकार कर्क और मकर रेखा के समीप हवा ऊपर से नीचे उतरती रहती है और फलतः इन प्रदेशों का वायुभार बढ़ जाता है । अतः इन प्रदेशों में गर्मी होने पर भी उच्चभार प्रदेश स्थापित हो जाते हैं और उनके चारों ओर गरम शुष्क विपरीत चक्रवात बन जाता है ।

Hill (**पहाड़ी**) भूखंड का उठा हुआ भूभाग जो पर्वत से ऊँचाई में कम होता है, पहाड़ी कहलाता है। साधारणतया १००० फीट से कम ऊँचाई के सभी उच्च प्रदेशों को पहाड़ी कहते हैं परन्तु पर्वत और पहाड़ी के बीच यह अन्तर बहुत कुछ अनियमित सा है। प्रायः पहाड़ियाँ दो प्रकार की होती हैं एक तो वे जो कंकड़-पत्थर के ढाल के इकट्ठा होते रहने से बन जाती हैं और दूसरी वे जो ज्वालामुखी उद्गार से निकले लावा के ज्वालामुखी के इधर-उधर एकत्रित होने से बनती हैं। बनावट व उत्पत्ति के अनुसार इनका रूप गोलाकार या शंक्वाकार होता है। साथ ही इनका ढाल क्रमशः या तीव्र होता है।

प्रत्येक पहाड़ी के चार भाग होते हैं—आधार, जहाँ मैदान का भाग धीरे-धीरे ऊपर को उठने लगता है। यहाँ पर मैदान का क्रमशः ढाल एकाएक तीव्र हो जाता है और इसी लिए बहुधा दलदली व फिसले हुए भूखंडों से घिरा रहता है। इसके बाद के उन्नतोदर भाग के सबसे ऊपरी बिन्दु को इसका मुख या मस्तक कहते हैं। इसका बस्तियों की स्थिति और सैनिक चौकियों के लिए विशेष महत्व होता है। मस्तक और चोटी के बीच निचले तीव्र ढाल और ऊपरी क्रमशः ढाल का मिलन बिन्दु शीर्ष कहलाता है। पहाड़ी का सबसे ऊँचा भाग यही शीर्ष होता है।

Hillock (**टीला**) चूना, मिट्टी, कंकड़ आदि का बना हुआ उच्च भूभाग टीला कहलाता है और इसकी ऊँचाई प्रायः दो-तीन सौ फीट से अधिक नहीं होती। इसका आकार साधारणतया गोल होता है। मैदानी भागों में इन टीलों पर बस्तियाँ बन जाती है।

Hill shading (**रंगीन तहें**) प्रायः मानचित्र पर दिखलाये गये विभिन्न ऊँचाई के प्रदेशों के मध्य के भागों को भिन्न-भिन्न रंगों से रँग देते हैं। यह प्रणाली सभी प्रकार के मानदण्ड के आधार पर बने हुये मानचित्रों में प्रयुक्त हो सकती है। प्रायः निम्न भूमि प्रदेश को हरे रंग से रँग देते हैं। और ऊँचे भाग हल्के अथवा गहरे भूरे रंग से रँगे होते हैं। भूरापन जितना ही गहरा होगा वह स्थान उतना ही अधिक ऊँचा होगा। वास्तव में रंगीन तहों की प्रणाली पर बने मानचित्र की आकृति छायाकरण द्वारा उपस्थित प्रभाव से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसका मुख्य दोष यह है कि विशिष्ट ऊँचाई या ढाल का बिल्कुल ही पता नहीं चलता। कभी-कभी रंगीन तहों की जगह घने व खुले बिन्दुओं द्वारा भी काम लिया जाता है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि यह प्रणाली आसान, द्रुतगामी, सस्ती है और इससे मानचित्र आकर्षक बन जाता है। अतः आजकल अधिकतर मानचित्रों में समोच्च भूमि दर्शक रेखाओं के साथ-साथ रंगीन तहों का प्रयोग करते हैं। जब विभिन्न समोच्च भूमि दर्शक रेखाओं के बीच अन्तर अधिक होता है तो बीच के प्रदेश को रंगीन तहों द्वारा चित्रित करते हैं।

Hinterland (**पृष्ठप्रदेश**) किसी बन्दरगाह या समुद्रतट के पीछे बसा हुआ स्थल भाग उसका पृष्ठ प्रदेश कहलाता है। इस पृष्ठ प्रदेश में आयात का माल वितरित किया जाता है और बन्दरगाह से होने वाले निर्यात यहाँ से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार किसी बन्दरगाह के पृष्ठ प्रदेश को उसका व्यापार क्षेत्र कहा जा सकता है। अतएव जैसा नाम से ही स्पष्ट है, पृष्ठ प्रदेश का अर्थ वह प्रदेश है जिसके लिए बन्दरगाह द्वार का काम करता है। किस पृष्ठ प्रदेश का व्यापार कौन से बन्दरगाह से होगा यह देश की तटरेखा व प्रदेश के विस्तार पर निर्भर रहता है। इंगलैंड में यार्कशायर का वेस्टराइडिंग प्रदेश अमरीका के साथ व्यापार के लिये लिवरपूल बन्दरगाह पर निर्भर रहता है परन्तु उत्तरी सागर से व्यापार के लिए इसी प्रदेश की वस्तुयें हल, गूल और ग्रिन्सबी बन्दरगाहों से आती-जाती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि विभिन्न बन्दरगाहों का पृष्ठ प्रदेश एक ही होता है। यह विभिन्न बन्दरगाहों पर

उपस्थित सुविधाओं तथा भीतर के भागों के साथ यातायात के साधनों की सुव्यवस्था पर निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए हल और गूल बन्दरगाहों को लिया जा सकता है। हल बन्दरगाह में बड़े-बड़े व्यापारी जहाज आसानी से आ-जा सकते हैं परन्तु गूल बन्दरगाह केवल छोटे-छोटे जहाजों के ही योग्य है परन्तु पृष्ठ प्रदेश के सन्निकट स्थित होने के कारण यह उत्तर सागरीय व्यापार का केन्द्र बन गया है।

जिस प्रकार पृष्ठ प्रदेश के व्यापार के लिए सुविधाजनक बन्दरगाह का होना जरूरी होता है उसी प्रकार बन्दरगाह की उन्नति के लिए पृष्ठ प्रदेश का सम्पन्न व [illegible] होना आवश्यक है। घनी आबादी, बहुमूल्य आर्थिक उपज और [illegible] से पृष्ठ प्रदेश सम्पन्न कहलाता है। पृष्ठ प्रदेश में व्यापार के लिए आकर्षण होना चाहिये। सच तो यह है कि चाहे प्राकृतिक बन्दरगाह कितना ही सुविधाजनक क्यों न हो, यदि उसका पृष्ठ प्रदेश हीन व गरीब है तो वह उन्नति नहीं कर सकता। माल्टा द्वीप में बलेट्टा और लंका द्वीप में ट्रिकोमाली बहुत ही अच्छे प्राकृतिक बन्दरगाह हैं परन्तु उनका कोई भी व्यापारिक महत्व नहीं क्योंकि उनका पृष्ठ प्रदेश धनी नहीं है और यातायात के साधनों की असुविधा है। फिर भी यातायात की सुविधाओं और बन्दरगाह में उन्नति करके पृष्ठ प्रदेश का विस्तार व महत्व बढ़ाया जा सकता है।

आदर्श पृष्ठ प्रदेश को इतना उत्पादक व धनी होना चाहिए कि वहाँ से काफी माल बाहर जा सके और बाहरी देशों से आया हुआ माल खरीदा जा सके। इस आधार पर पृष्ठ प्रदेश दो प्रकार के होते हैं—वितरक (Distributory) और सहायक (Contributory)। वितरक पृष्ठ प्रदेश अपनी घनी आबादी के लिए या तो भोजन सामग्री आयात करता है या उन्हीं निवासियों के लिए आवश्यक अथवा विलास की सामग्री जुटाता है। यह कारखानों के लिए कच्चा माल भी मँगवाता है। इसके विपरीत जिस पृष्ठ प्रदेश से माल निर्यात होता है वह सहायक कहलाता है। ये वस्तुयें भोग्य पदार्थ, कच्चे माल अथवा बने हुये माल के रूप में हो सकती हैं। अतएव किसी भी बन्दरगाह के व्यापार के आँकड़ों से उसके पृष्ठ प्रदेश का उत्पादन, उपभोग तथा यातायात व्यवस्था का पता लग जाता है।

Historical geography (ऐतिहासिक भूगोल) विभिन्न ऐतिहासिक युगों के प्राकृतिक व मानव भौगोलिक परिस्थितियों व दशाओं के अध्ययन को ऐतिहासिक भूगोल कहते हैं।

History of Geography (भूगोल इतिहास) भूगोल का अध्ययन व तत्सम्बन्धी विचार किस प्रकार विकसित होते गये, इसका इतिहास भूगोल इतिहास कहलाता है।

Hoar frost (पाला) जलकणों से लदी हवा जब पृथ्वी तल की किन्हीं ठण्डी वस्तुओं के संसर्ग में आती है तो भाप को ओस की बूँदों के रूप में छोड़ देती है। यदि ओस बिन्दु ३२° फा० से निम्न तापक्रम पर हुआ तो भाप जलकणों के रूप में बिना परिवर्तित हुये सीधे हिमकणों के रूप में जम जाती है। इसे पाला कहते हैं। पाले में कुछ अंश तो जमी हुई ओस का होता है और कुछ हिमकणों का। यह पाला खड़ी हुई फसलों के लिए बड़ा ही घातक होता है और बहुधा पाला गिरने से फसलें बरबाद हो जाती हैं।

Hogback (हागबॉक) हागबॉक उस लम्बी, पतली व सँकरी श्रेणी को कहते हैं जिसके दोनों ओर के ढाल बड़े ही तीव्र होते हैं।

Holding (कृषि क्षेत्र) खेती के धंधे में उस भूमि के टुकड़े को कृषिक्षेत्र कहते हैं जहाँ खेती का धंधा चल रहा हो। यह कदापि जरूरी नहीं है कि एक कृषि क्षेत्र एक ही

किसान के कब्जे में रहे। कभी-कभी तो एक कृषि क्षेत्र कई टुकड़ों में विभक्त इधर-उधर स्थित मिलता है। वास्तव में कृषिक्षेत्र भूमि से उपज प्राप्त करने के प्रयत्न की आधार-भूत इकाई है और इसका पूर्ण व विस्तृत होना वर्त्तमान कृषि उद्योग के लिए बहुत आवश्यक है।

Homolographic projection (सम क्षेत्र अंकन) जब अंकन जाल इस प्रकार बनाया जाय कि उस पर खींचे गये मानचित्र का क्षेत्रफल वास्तविक ही बना रहे तो उसे सम-क्षेत्र अंकन कहते हैं। इस प्रकार के अंकन में देशान्तर व अक्षांश का जाल इस प्रकार बनाया जाता है कि मानचित्र के किसी प्रदेश का क्षेत्रफल पृथ्वी के उस भाग के वास्तविक क्षेत्रफल के अनुपात में रहे। तात्पर्य यह है कि मानचित्र और ग्लोब के किसी समान क्षेत्र के क्षेत्रफल का अनुपात घटता-बढ़ता नहीं बल्कि सदैव एक-सा बना रहता है। इस अंकन में क्षेत्रफल के सामने आकृति व दिशा की बिल्कुल अपेक्षा कर दी जाती है। फलत: इस प्रकार प्रस्तत मानचित्र का क्षेत्रफल तो ठीक रहता है परन्तु आकार व दिशा में बड़ा अन्तर आ जाता है। इसलिए इस अंकन को राजनीतिक, आर्थिक आंकड़ों व वितरण सम्बन्धी मानचित्रों के बनाने में प्रयोग करते हैं। इसका बनाना भी आसान होता है क्योंकि एक चतुर्भजाकार भूमिक्षेत्र को समान या बराबर आधार व समान अक्षांश रेखाओं के बीच में रखकर क्षेत्रफल की वास्त-विकता को प्राप्त किया जा सकता है।

Homoseismal lines (सम भूकम्प रेखायें) जिन स्थानों पर भूकम्प का प्रकोप एक ही समय पर होता है उनको यदि रेखा द्वारा मिला दिया जाय तो इस प्रकार की रेखायें सम भूकम्प रेखाएँ कहलाती हैं। ये रेखाएँ प्राय: अण्डाकार होती हैं और इन रेखाओं से बने अण्डाकार आकृति का केन्द्र भूकम्प केन्द्र होता है।

Hook (अंकुश) किनारों पर से लहरों द्वारा काटी हुई मिट्टी, बालू और बजरी लहरों के साथ बहकर किसी खाड़ी के द्वार पर जमा होती रहती है। धीरे-धीरे इस प्रकार इकट्ठा होते रहने से एक टीला-सा बन जाता है जिसकी शक्ल हँसियाँ के सदृश्य होती है। यदि ज्वार-भाटे की लहरें इस टीले को घसीट कर किनारे की तरफ कुछ टेढ़ा-मेढ़ा-सा कर दें तो इस प्रकार के फिर से मुड़े हुए टीले को अंकुश कहते हैं। अंकुश का बनना इस बात को स्पष्ट करता है कि किनारे पर से लाई हुई मिट्टी-बालू की अपेक्षा समुद्री धारायें व लहरें अधिक जोरदार हैं। वैसे तो टीलों का सिर मुड़ जाने से अंकुश कभी भी और कहीं भी बन सकते हैं परन्तु प्राय: यह देखा जाता है कि अंकुश तभी बनते हैं जब (१) टीले का सिरा किनारे से इतना दूर तक बढ़ गया होता है कि वहाँ पर लहरें व धारायें उस पर मनमाना आघात कर सकती हैं या जब (२) इन टीलों का अग्रभाग इतना पतला हो जाता है कि उस पर धाराओं-प्रतिधाराओं का असर खब पड़ सकता है या जब (३) कोई नवीन प्रवेश द्वार टीले में से होकर बन जाता है ताकि प्रतिधाराओं की गति इतनी तीव्र हो जाती है कि वे मिट्टी व बजरी के प्रवाह को मोड़ने में सफल होतीं हैं।

Horizon (क्षितिज) जब कभी हम पृथ्वी या समुद्र की ओर देखते हैं, तो हमारी दृष्टि एक जगह जाकर खतम हो जाती है। उसका देखना असम्भव हो जाता है और हम उसी को पृथ्वी या समुद्र के विस्तार का अन्त समझ लेते हैं। निरीक्षक की दृष्टि को सीमित करने वाली यह वृत्ताकार रेखा ही क्षितिज कहलाती है। क्षितिज पर आकाश और पृथ्वी एक-दूसरे से मिले हुए नजर आते हैं। भूमि पर तो यह वृत्ताकार रेखा बीच में पड़ जाने वाले भू प्रकृति के रूपों के कारण कुछ टूट-सी जाती है परंतु समुद्र पर यह

क्षितिज रेखा पूर्ण वृत्त बनाती है और निरीक्षक की स्थिति ही उस वृत्त परिधि रेखा का केन्द्र होती है। यह क्षितिज दृश्य या अनुभूत क्षितिज कहलाता है। इस रेखा के बिल्कुल समानान्तर जो दूसरा बड़ा वृत्त बनता है वह वास्तविक क्षितिज के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु प्रायः सभी जगह हम जब क्षितिज शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा अर्थ दृश्य या अनुभूत क्षितिज से ही रहता है।

क्षितिज की दूरी निरीक्षक की स्थिति की ऊँचाई पर निर्भर रहती है। यदि हम प्रकाश विकीरण को उचित अनुपात में स्वीकार कर लें और साथ-साथ मार्ग में आने वाले भूप्रकृति रूपों की उपेक्षा कर दें तो १०० फीट की ऊँचाई पर स्थित निरीक्षक से दृश्य क्षितिज की दूरी करीब-करीब १४ मील होगी यह दूरी निरीक्षक की ऊँचाई के वर्गफल के अनुसार व अनुपात में घटती-बढ़ती रहती है।

Horse latitudes (घोड़े का अक्षांश) कर्क और मकर रेखाओं के समीप हवा बराबर नीचे को उतरा करती है। अतः इस प्रदेश में न केवल वायुभार उच्च हो जाता है बल्कि शान्त पेटियाँ स्थापित हो जाती हैं। चूँकि इस प्रदेश में हवायें ऊपर से धरातल पर उतरती हैं अतः यहाँ मौसम शुष्क और आसमान साफ रहता है। उच्च भार की ये शान्त पेटियाँ दोनों गोलार्द्धों में पछुआ हवाओं और व्यापारिक हवाओं के क्षेत्र के मध्य स्थित हैं। इस शान्त प्रदेश में वायुभार का ढाल बहुत ही धीमा रहता है अतः यहाँ पर धरातल की हवायें या तो बिल्कुल शान्त रहती हैं अथवा बहुत धीमी और अनिश्चित रहती हैं। मौसम शुष्क और साफ रहता है। हवायें सभी दिशाओं में चलती हैं और फलतः ये शान्त पेटियाँ भूमध्य रेखा की शान्त पेटी की तरह स्थायी नहीं होतीं। प्रायः ये शान्त पेटियाँ भूखंड से अधिक जल खंडों पर प्रखर व निश्चित रहती हैं। यद्यपि इनमें कभी-कभी तूफान आ जाने से इनका विस्तार इधर-उधर हो जाता है परन्तु एक बात बहुत-कुछ स्थिर-सी है कि इन प्रदेशों में हवा धरातल के समानान्तर न बहकर लम्बरूप धाराओं में ऊपर से नीचे उतरा करती है। इसी कारण प्राचीन काल में इन शान्त पेटियों में नौका संचालन बड़ा कठिन होता था, हवा के अभाव में भारी नावें आगे नहीं बढ़ पाती थीं। फलतः जहाजों को हल्का करने के वास्ते अमरीका या पश्चिमी द्वीप समूह को ले जाये जाने वाले घोड़ों को जहाज पर से फेंक कर मल्लाह लोग अपनी यात्रा पूरी करते थे। इसीलिए इन प्रदेशों के जलाशय वाले भागों को घोड़े का अक्षांश कहते हैं।

Horse Shoe Lake (धनुषाकार झीलें) नदियाँ जब चौरस मैदान से होकर बहती हैं तो उनका मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा घुमावदार हो जाता है। घुमाव में से होकर बहती हुई नदी का पानी एक ओर की चट्टानों की जड़ों को तेजी से काटता है। धीरे-धीरे नदी का घुमाव नये चाँद के आकार का हो जाता है और फिर कुछ दिनों के बाद घुमाव के दोनों कोनों पर रेत जमा हो जाने से दोनों सिरों के बीच का स्थल कट जाता है और नदी घुमाव को छोड़ कर सीधी बहने लगती है। फल यह होता है कि पुराने घुमाव में घोड़े की नाल के आकार की झील बन जाती है। इस प्रकार की झील को धनुषाकार झील कहते हैं। प्रायः इस प्रकार की झीलें बाढ़ के मैदानों में पाई जाती हैं और जल का उद्गम कट जाने से ये झीलें बहुत अधिक समय तक जलपूरित नहीं रह पाती हैं। इस प्रकार की झीलों का कोई विशेष आर्थिक महत्व नहीं है। हाँ, इस प्रकार की झीलों के आस-पास बहुधा लोग सैर-सपाटे के लिए जरूर जाते हैं।

Horse Shoe Glacier (धनुषाकार हिमनदी) हिमनदी का अन्तिम छोर कुछ समय तक आगे बढ़ता है, परन्तु फिर कुछ समय को पीछे भी हट सकता है। इसका कारण जलवायु की तीव्रता में कमी या हिम क्षेत्र में एकत्रित हिमराशि की मात्रा में कमी हो जाना है। फल

होता है [illegible] का अन्तिम छोर जो प्रायः जीभ की शक्ल का रहता है, खोखला होकर अर्द्धचन्द्राकार या घोड़े की नाल की तरह हो जाता है। इस प्रकार की हिमनदी को धनुषाकार हिमनदी कहते हैं और पूर्णतया लोप हो जाने तक यह सिर्क (Cirque) या हिमसागर में लिपटी पड़ी रहती है।

Horst (**अवरोधी पिण्ड**) जब कभी भूपटल में गहरी दरारें बन जाती हैं तो दो समानान्तर दरारों के बीच का भाग या तो ऊँचा उठ जाता है या समानान्तर दरारों के बाहर का भूखंड धँस जाने से यह बीच का भाग ऊँचा खड़ा रह जाता है और पर्वत का रूप धारण कर लेता है। महत्व की दृष्टि से इस प्रकार के अवरोधी पिण्ड का स्थान नगण्य है। (देखिये Block Mountains)

Horticulture (**उद्यान कृषि**) सब्जी, फलों और फूलों का उगाना उद्यान कृषि कहलाता है। अक्सर उद्यान कृषि भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों पर की जाती है जो मकान के साथ लगे मिले स्थित रहते हैं। इस प्रकार की भूमि पर अन्य और किसी प्रकार की फसल नहीं उगाई जाती। इसके अलावा अन्य सभी प्रकार की कृषि की अपेक्षा उद्यान कृषि में अधिक पूँजी, ध्यान और मेहनत की आवश्यकता होती है। इससे प्राप्त उपज प्रायः घरेलू उपयोग के लिये ही रख ली जाती है, परन्तु आजकल विकसित वैज्ञानिक तरीकों की सहायता से उद्यान कृषि की उपज को दूर-दूर की मण्डियों तक भेजा जा सकता है। फिर भी अधिकांश उद्यानों में उत्पादन केवल स्थानीय मंडियों के लिए ही किया जाता है। कभी-कभी उद्यानकृषि के अन्तर्गत फल-फूल के बीजों के बगीचों को भी शामिल कर लिया जाता है।

Hot Spring (**गरम जल के फुहारे**) भूकम्पों द्वारा भूपटल में बड़े-बड़े अन्तर पैदा हो जाते हैं। कहीं-कहीं भूपटल में छेद बन जाते हैं जिनसे भूमि के भीतरी भागों का गरम पानी पिचकारी की तरह निकला करता है। इन्हीं सोतों को गरम जल के फुहारे कहते हैं और इनसे निकला हुआ पानी कभी-कभी तो सैकड़ों फीट ऊँचा पिचकारी की तरह निकलता है। ये फुहारे प्रायः ज्वालामुखी उद्गार के क्षेत्रों में पाये जाते हैं और पानी के गर्म होने का कारण गर्म पिघली हुई चट्टानों से होकर आना है। परन्तु इसके अलावा मार्ग की रगड़ तथा पृथ्वी के भीतर के रासायनिक परिवर्त्तन से भी पानी की गर्मी बहुत बढ़ जाती है। गर्म जल के फुहारे उन ज्वालामुखी प्रदेशों में पाये जाते हैं जहाँ उद्गार होना बन्द हो गये हैं, परन्तु कभी-कभी ये उन प्रदेशों में भी पाये जाते हैं जहाँ ज्वालामुखी उद्गार न तो हुए और न होते हैं। उन दूसरे प्रदेशों में वर्षा का जल पृथ्वी में सोख कर बहुत नीचे पहुँच जाता है और वहाँ की गर्मी से गर्म होकर सोते की तरह बाहर निकलने लगता है।

गर्म जल फुहारे में बहुधा खनिज पदार्थ घुले पाये जाते हैं और साथ-साथ कुछ रसायनिक नमक भी मिले रहते हैं। ये खनिज नमक फुहारे के मुँह के चारों ओर जमे रह जाते हैं। इस खनिज नमक निक्षेप का आकार या तो धारियों की तरह होता है या सीढ़ियों की तरह। इस निक्षेप का रंग कई प्रकार का और चमकता हुआ रहता है और इनमें चूने का अंश बहुत अधिक रहता है। इन गर्म जलफुहारों के विभिन्न प्रदेशों में नाम अलग-अलग हैं।

Hot Desert (**गर्म रेगिस्तान**) गर्म रेगिस्तान या उष्ण मरुस्थलीय भाग महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में २०° और ३०° अक्षांशों के बीच में पाये जाते हैं। संसार के प्रसिद्ध गर्म मरुस्थल थार, अरब, सहारा, कालाहारी, अरीजोना, कोलेराडो, आटाकामा और पश्चिमी आस्ट्रेलिया हैं। ये गर्म मरुस्थल दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो पठारों पर स्थित होते हैं जिन्हें हामदा रेगिस्तान कहते हैं और दूसरे वे जो घाटी में स्थित होते हैं जैसे लीबिया जिन्हें वादी रेगिस्तान कहते हैं। इन प्रदेशों में ठण्ढी जलधाराओं तथा हवाओं के ठंढे अक्षांशों से गर्म

अक्षांशों की ओर बहने मे वर्षा बिल्कुल नहीं होती। यहाँ जो हवायें ऊपर से नीचे की ओर आती हैं वे भी सूखी होती हैं। अतः इन प्रदेशों की जलवायु सूखी व विषम होती है। दिन बहुत गर्म और रातें बहुत ठंढी होती हैं। प्राकृतिक वनस्पति तो झाड़ियाँ हैं परन्तु जहाँ कहीं भूमि के नीचे का पानी सोतों या कुओं के रूप में प्राप्त हो जाता है वहाँ नखलिस्तान बन जाते हैं। यहाँ के निवासी खानाबदोश होते हैं। परन्तु जहाँ कहीं खेती सम्भव है या जहाँ खनिज पदार्थ मिलते हैं वहाँ स्थायी जनसंख्या भी पाई जाती है। (देखिये Desert)

Huerta (हयूरटा) यह स्थानीय पारिभाषिक शब्द है और स्पेन की उस भूमि के लिये प्रयोग किया जाता है जहाँ उच्च तापक्रम और सिंचाई के सहारे साल में दो फसलें उगाई जाती हैं। यह ह्यूरटा प्रदेश प्रायः दक्षिण पूर्व में पाया जाता है और इसके अन्तर्गत वैलेनसिया, मरसिया और ग्रॅनाडा के प्रान्त सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में सन्तरे, लुखाट, अंजीर और बादाम की फसल उगाई जाती है। कभी-कभी गन्ना और कपास भी उपजाया जाता है। केवल ह्यूरटा प्रदेश को छोड़कल स्पेन का अन्य सभी पठारी भाग ऊसर पड़ा हुआ है। अतः ह्यूरटा प्रदेश में खेती की विलक्षण प्रगति विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

Hum (हम) चूने के पत्थर से बने हुए कार्स्ट प्रदेश में जब चूने के पत्थर का कोई टुकड़ा आस-पास के क्षेत्र की अपेक्षा अधिक कठोर होने के कारण खड़ा रह जाता है तो उसे 'हम' कहते हैं। 'हम' की उत्पत्ति का मुख्य कारण यह होता है कि कठोर होने के कारण उसे आवरण-क्षय की शक्तियाँ देर में काट पाती हैं। जब कभी साधारण व गैर चूने वाली चट्टान पर चूने का पत्थर आकर टिक जाय और धीरे-धीरे जल में घुल कर नष्ट होता रहे तो उसे भी 'हम' के ही नाम से पुकारते हैं।

Humidity (आर्द्रता) सूर्य की गर्मी से जल भाप के रूप में बदलकर हवा में मिला रहता है और हवा को नम या आर्द्र बनाता रहता है। हवा में भाप की मात्रा उसकी आर्द्रता कहलाती है। वायु में भाप को धारण करने की शक्ति उसके तापक्रम पर निर्भर होती है। वायु जितनी ही अधिक गर्म होती जाती है उसमें भाप ग्रहण करने की शक्ति उतनी ही बढ़ती जाती है। इसीलिये गर्म हवा में ठण्ढी हवा की अपेक्षा भाप ग्रहण करने और वर्षा करने की शक्ति अधिक होती है।

यह आर्द्रता दो प्रकार या रूप में व्यक्त की जाती है एक तो केवल आर्द्रता जिससे वायु में उपस्थित भाप की मात्रा का पता चलता है और दूसरी सापेक्ष आर्द्रता। हवा में किसी तापक्रम पर कुल जितनी भाप रह सकती है उसका जितना प्रतिशत हवा में मौजूद है उसे हवा की सापेक्ष आर्द्रता कहते हैं। (देखिये Absolute Humidity, Relative Humidity)

Humus (वनस्पति का अंश) मिट्टी की उर्वराशक्ति और उपजाऊपन उसके कणों की बनावट, उसमें उपस्थित नमकों के अनुपात तथा उसमें मिली कुछ गैसों पर निर्भर रहती है। उपजाऊपन के लिए नाइट्रोजन और कारबन गैसों की बड़ी ही जरूरत होती है और ये गैसें वनस्पति के सड़े-गले अंश से प्राप्त होती हैं। इस प्रकार पशु व वनस्पति जगत से प्राप्त सड़े-गले अंश को वनस्पति का अंश कहते हैं। जिस भूमि पर खेती न की गई हो वहाँ पहले से निकले हुये तथा कुचले गये पौधों द्वारा वनस्पति का अंश पूरा होता रहता है। इस सिलसिले में यह भी बात ध्यान देने योग्य है कि बहुत सी घास व पौधे अपने आप उगते और नष्ट होते रहते हैं। अतः जहाँ पर वनस्पति जितनी घनी रही हो तथा जहाँ उसके सड़कर नष्ट होने के लिये भी पर्याप्त सुविधा मिली हो वहाँ की भूमि में स्वभावतः वनस्पति के अंश की अधिकता रहती है। रूस के यूक्रेन प्रदेश और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के प्रेरी प्रदेश में पाई जाने वाली काली भूरी मिट्टी का रंग वनस्पति के अंश के कारण ही इतना गहरा है। जहाँ

इस प्रकार प्राकृतिक रूप से वनस्पति का अंश भूमि में उपलब्ध नहीं होता वहाँ की खेतिहर भूमि में विभिन्न प्रकार की खाद देकर वनस्पति के सड़े-गले अंश को पहुँचाया जाता है। गोबर तथा मलमूत्र की खाद, पिसी हुई हड्डी तथा कम्पोस्ट की खाद इस दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा हरी खाद में कुछ फसलों को उगाकर फिर मिट्टी के अन्दर ही कुचल कर उलट-पुलट दिया जाता है। इसके लिए दो दाल के बीज वाले या फली वाले पौधे और सनई सबसे अच्छी रहती है। उग आने पर इनके पेड़ों की जड़, डंठल और पत्ते सहित खेत में मिला दिया जाता है। जुताई करने पर यह जल्दी टूटकर मिट्टी में मिल जाती है।

साधारण मिट्टी में वनस्पति के अंश का रंग काला होता है और भूमि को उपजाऊ बनाने में इसका बड़ा ही कठिन पर महत्वपूर्ण भाग रहता है। विभिन्न प्रकार की मिट्टी में वनस्पति के अंश की मात्रा अलग-अलग होती है। पीट मिट्टी में वनस्पति का अंश तो जरूर रहता है परन्तु वह पूरी तरह से सड़-गल नहीं पाता।

Human Geography (मानव भूगोल) मानव भूगोल, भूगोल शास्त्र की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत हम पृथ्वी के उन प्राकृतिक रूपों, वस्तुओं और तथ्यों का अध्ययन करते हैं जो मनुष्य के जीवन से सीधा सम्बन्ध रखती है या जो मनुष्य और उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप बने हैं। इस प्रकार मानव भूगोल प्राकृतिक भूगोल की पूरक व सहायक शाखा है।

Human settlements (बस्ती) जहाँ पर मनुष्य घर बनाकर रहता है, उसके घरों के समूह को बस्ती कहते हैं। भूप्रकृति की रूपरेखा के अनुसार ही बस्तियाँ बनती हैं। साधारणतया बस्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—गाँव की और शहर की। गाँव की बस्ती प्रायः चार रूप में पाई जाती है—कहीं तो मकान पास-पास रहते हैं और कहीं दूर-दूर छितरे हुए। इसी तरह कभी तो बस्ती एक पंक्ति में नदी या नहर के किनारे-किनारे बनी होती है और कभी बस्ती गोलाकार रूप में तालाब या बाग के चारों ओर बन जाती है। शहर की बस्ती शहर-विशेष के व्यवसाय के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। यदि शहर सड़कों का केन्द्र है तो उसकी बस्ती का आकार पंखे के समान होगा। उद्योग धन्धों के केन्द्र की बस्ती घनी व अव्यवस्थित होगी। इसी प्रकार धार्मिक, शासन और स्वास्थ्यकेन्द्रों की बस्ती का आकार विभिन्न होता है।

इस वर्गीकरण के अलावा बस्ती को (१) घनी, (२) छितरी और (३) खाली कहा जा सकता है। चौड़ी नदी घाटियों और उपजाऊ मैदानों में घनी बस्ती पाई जाती है। अनुपजाऊ पठारी भागों, जंगलों, चारागाहों, तटीय प्रदेशों, पहाड़ी ढालों और रेगिस्तानी भागों में बस्ती स्वभावतः छितरी हुई रहती है। और दलदली भाग, घने वन प्रदेश, बलुहे रेगिस्तान और कठोर पहाड़ी प्रदेश हमेशा खाली पड़े रहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि बस्ती का स्थापित होना निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है—(१) पीने के पानी की व्यवस्था, (२) भोजन का इन्तजाम, (३) व्यवसाय की रूपरेखा, (४) भूप्रकृति तथा (५) सुरक्षा का प्रबन्ध। बस्तियों का घनत्व भोजन की व्यवस्था पर निर्भर रहता है परन्तु भूप्रकृति और व्यवसाय की रूपरेखा के अनुसार ही बस्तियों की बनावट विभिन्न होती जाती हैं।

Humid Farming (आर्द्र कृषि) आद्र प्रदेश में अर्थात् जहाँ वार्षिक वर्षा का औसत २० इंच से अधिक होता है वहाँ बिना सिंचाई की सहायता के भी खेती की जाती है। इस प्रकार की खेती को आर्द्र कृषि कहते हैं और संसार की कृषियोग्य भूमि के अधिकांश भाग

पर इसी प्रकार की खेती की जाती है । इस प्रणाली के अनुसार किसान प्रकृति और विशेषकर वर्षा पर पूर्णतया निर्भर रहता है । वह उन्हीं फसलों को उगाता है जो प्राकृतिक वर्षा के सहारे उग सकती हैं । परन्तु इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें न तो प्रति एकड़ उपज की ओर ही ध्यान दिया जा सकता है और न साल में दो फसलें ही उगाई जा सकती हैं । फलतः वर्षा पर आश्रित एक फसल उगा लेने के बाद भूमि और किसान दोनों ही साल के काफी भाग तक के लिये बेकार हो जाते हैं । फल यह होता है कि आर्द्र कृषि के उद्यम को गौण घरेलू उद्योगों का सहारा लेना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है ।

Hurricane (हरीकेन आँधी) (१) ब्यूफॉर्ट मानदण्ड के अनुसार हरीकेन आँधी वह प्रचण्ड वायु या तूफान है जो औसतन ७५ मील प्रति घंटे से भी अधिक तेज रफ्तार से चलती है और मार्ग में आने वाली वस्तुओं को बड़ी हानि पहुँचाती है ।

(२) पश्चिमी द्वीपसमूह और मेक्सिको की खाड़ी के समीप जो उष्ण कटिबंधीय चक्रवात विकसित होते हैं वे तूफान का रूप धारण कर लेते हैं । वे हरीकेन आँधी कहलाते हैं और दक्षिणी पूर्वी कैरीबियन सागर इनका प्रधान क्षेत्र है । इस प्रकार पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्व में विकसित होकर ये आँधियाँ पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं और भिन्न-भिन्न द्वीपों से होकर गुजरती हैं और उन्हें विस्तृत हानि पहुँचाती हैं । पश्चिम की ओर बहने के बाद ये आँधियाँ उत्तरपूर्व की ओर मुड़ जाती हैं । फलतः इन आँधियों से पश्चिमी द्वीप समूह, फ्लोरीडा प्रायद्वीप, संयुक्त राष्ट्र अमरीका का गल्फ तट और मध्य अमरीका के पूर्वी भाग को काफी विस्तृत हानि पहुँचती है । हरीकेन आँधी का प्रसार क्षेत्र दक्षिण में निकारागुआ के मासकिटो तट तक फैला हुआ है । हाँ कोस्टारीका, पनामा और दक्षिणी अमरीका का उत्तरी तटीय प्रदेश इसके क्षेत्र के बाहर पड़ता है । प्रायः सितम्बर-अक्तूबर के महीनों में हरीकेन आँधियाँ बहुत आती हैं ।

कभी-कभी आस्ट्रेलिया के क्वीन्सलैंड तटीय प्रदेश के पास आने वाले तूफानों को भी हरीकेन आँधी कहते हैं ।

Hydro Electricity (जल विद्युत) प्राकृतिक अथवा बनाये गये जल प्रपातों से गिरने वाले पानी से उत्पन्न विद्युत शक्ति को जलविद्युत कहते हैं । इन झरनों के नीचे टरबाइन द्वारा प्रचलित विद्युत उत्पादक मशीनों द्वारा शक्ति उत्पन्न की जाती है । औद्योगिक शक्ति का यह अपार स्रोत है और इससे उद्योग धन्धों को एक नया सहारा मिल गया है । कोयले और पेट्रोलियम के विपरीत इसका भंडार कभी समाप्त होने वाला नहीं है । फिर जल विद्युत के द्वारा एक हय शक्ति के उत्पादन में ४ टन कोयले की बचत होती है । इसके सहारे से अनेक देशों, जहाँ कोयला नहीं पाया जाता, औद्योगिक उन्नति सम्भव हो सकी है । नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, स्विटजरलैंड और कनाडा इस दृष्टिकोण से विशेष उल्लेखनीय हैं ।

जलविद्युत के उत्पादन के लिए कुछ विशेष भौगोलिक दशाओं का होना बडा ही जरूरी है । वे दशाएँ निम्नलिखित हैं—(१) भारी व सुविस्तृत जलवृष्टि, (२) प्राकृतिक झीलों, वन प्रदेशीय जलविभाजकों और बाँध द्वारा बनाई गई बनावटी झीलों से निकलनेवाली जलधाराओं में जल का सतत प्रवाह, (३) जलधारा से शक्ति उत्पन्न करने के लिये जलप्रपात का होना, (४) जल में मिट्टी, कंकड़ आदि का अभाव, (५) जाड़े में सामान्य ठंढ पडना ताकि जलाशय जम न जायँ और (६) उत्पादक केन्द्र का पहुँच के भीतर होना और उपयोगी प्रदेश से समीपतर इन सब दशाओं के होते हुये भी जलविद्युत उत्पादन के प्रारम्भिक खर्चे बहुत अधिक होते हैं । इसलिये यह वहीं सफल हो सकता है जहाँ कोयला व खनिज तेल आसानी से व सस्ते मूल्य पर उपलब्ध न हों । प्रारम्भिक खर्चे को पूरा करने के लिए बहुधा जल विद्युत

उत्पादन के बाद का पानी सिंचाई में प्रयोग कर लेते हैं। अतएव जलविद्युत के लिए आदर्श स्थिति वह है जब उपर्युक्त भौगोलिक दशायें किसी घने बसे भाग के समीप उपस्थित हों और साथ-साथ सिंचाई के लिए पर्याप्त क्षेत्र हो। यही कारण है कि जलविद्युत के उत्पादन में दो प्रदेश बहुत प्रमुख हैं—(१) संयुक्त राष्ट्र व कनाडा का पूर्वी भाग और (२) यूरोप का मध्यवर्ती व पश्चिमी प्रदेश। इसके अलावा जलविद्युत के विकास की विशेष सम्भावनाएँ हैं और आजकल छोटे-बड़े सभी देश इस ओर ध्यान दे रहे हैं।

Hydrography (**जल विज्ञान**) पृथ्वी के धरातल पर पाये जाने वाले जलाशयों की स्थिति, प्राकृतिक दशा और आयतन आदि के अध्ययन व विवरण को जल विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत समुद्रों, झीलों व नदियों के रेखाचित्र बनाये जाते हैं और उनमें समुद्र की तली, महासागरीय खड्ड व धाराओं आदि को अंकित किया जाता है।

Hydrology (**जल विद्या**) नदी, झीलों व कुओं आदि में जल की स्थिति के अध्ययन तथा तुषार व हिम की दशाओं के विषय में खोज को जल विद्या कहते हैं। इसके अन्तर्गत जल की खोज, उपभोग, नियन्त्रण और रक्षा आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। इस क्षेत्र में सतह और भूगर्भ दोनों पर मिलने वाली जलराशि को लेते हैं। हाँ, समुद्र व महासागरों को अवश्य छोड़ देते हैं।

Hydrosphere (**जलमण्डल**) जलमण्डल जल के उस आवरण का नाम है जो धरातल के अधिकतर भाग को घेरे हुए है। यूँ तो भूतल पर जल का एक ही विशाल परत फैला हुआ है परन्तु मनुष्य ने अपनी सुविधा के विचार से इसको कई भागों में विभक्त कर दिया है जिन्हें विस्तार व प्रसार के अनुसार महासागर, सागर, खाड़ी व झील कहते हैं। ये जलाशय समस्त धरातल के $\frac{3}{4}$ भाग में फैले हुए हैं और यदि सम्पूर्ण बड़े-बड़े महाद्वीपों को एकत्रित कर लिया जाय तो भी इनका विस्तार महाद्वीपों के विस्तार से ढाई गुना अधिक होगा। दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा जल क्षेत्र का विस्तार अधिक है।

जलमण्डल एक ओर तो विभिन्न स्थलखंडों को अलग करता है और दूसरी ओर उन्हें एक दूसरे से सम्बद्ध करता है। पृथ्वी तल के विभिन्न भागों पर जल का वितरण इन्हीं के कारण हुआ करता है। दूसरे जलवायु की विषमता के लिए भी जलमण्डल का यह विस्तार आवश्यक है।

Hyetograph (**हाइटोग्राफ**) यह रेन गाज की तरह का एक मापक यन्त्र है जिसमें वर्षा के आँकड़े अपने आप दर्ज होते रहते हैं। इकट्ठा किये हुए वर्षा के जल की राशि में एक नाव तैराई जाती है और इस नाव से लगी हुई एक कलम होती है जो घूम-घूम कर एक रेखा चित्र पर वर्षा की मात्रा दर्ज करती जाती है। यह रेखाचित्र एक ढोल पर लिपटा रहता है जो घड़ी के यन्त्र द्वारा संचालित होता रहता है।

Hygrogram (**हिगरोग्राम**) सापेक्ष आर्द्रता को हिगरोग्राफ से नापते हैं और इस प्रकार उपलब्ध आँकड़ों को एक तालिका में दर्ज करते जाते हैं। साधारणतया एक हफ्ते तक की दैनिक सापेक्ष आर्द्रता के सतत ब्यौरे को हिगरोग्राम कहते हैं।

Hygrograph (**हिगरोग्राफ**) सापेक्ष आर्द्रता नापने और अपने आप दर्ज करने वाले यन्त्र को हिगरोग्राफ कहते हैं। इसमें सापेक्ष आर्द्रता के आँकड़े अपने आप एक चार्ट या तालिका पर दर्ज होते जाते हैं। यह तालिका एक घूमते हुए ढोल पर लगी रहती है और घड़ी के यन्त्र विधान द्वारा ढोल के साथ-साथ घूमती रहती है। प्रायः सभी वेधशालाओं में साधारण बाल वाले हिगरोग्राफ को प्रयोग करते हैं। जैसे-जैसे सापेक्ष आर्द्रता घटती-बढ़ती है वैसे ही यह महीन बाल की लम्बाई भी कम व ज्यादा होती जाती

है। बाल के सिकुड़ने और फैलने के साथ-साथ होनेवाले अन्तर एक कलम के सहारे घूमती हुई तालिका में दर्ज होते जाते हैं। यद्यपि यह यन्त्र बहुत सच्चा नहीं होता परन्तु इसके द्वारा वायुमण्डल में नमी की मात्रा से सम्बन्धित बड़े-बड़े आकस्मिक परिवर्त्तन उसी समय ज्ञात हो जाते हैं जैसे ही कि वे घटित होते हैं। यही इसकी सुविधा व विशेषता है।

Hygrometer (हिगरोमीटर) वायु की आर्द्रता नापने के लिए एक विशेष ढंग के यन्त्र को प्रयोग करते हैं जिसे हिगरोमीटर कहते हैं। इसमें दो थर्मामीटर लगे रहते हैं। एक थर्मामीटर की घुंडी खुली हवा में रहती है और दूसरे थर्मामीटर की घुंडी को हमेशा भीगा हुआ रखते हैं। साधारणतया दूसरे थर्मामीटर की घुंडी पर बारीक मलमल को भिगोकर लपेट देते हैं और उसका एक शिरा नीचे पानी में डुबा देते हैं। इस प्रकार थर्मामीटर की घुंडी हमेशा तर बनी रहती है। पानी के बराबर भाप बन कर उड़ते रहने से गीली घुंडी वाले थर्मामीटर का तापक्रम खुली हुई घुंडी वाले थर्मामीटर से सदैव कम रहता है। इस अन्तर के सहारे सापेक्ष आर्द्रता का पता चल जाता है।

कुछ अधिक जटिल मेल के हिगरोमीटर ईजाद किये गये हैं परन्तु वे अधिक प्रयोग में नहीं लाये जाते हैं।

Hygrophyte (हिगरोफाइट) एक ऐसा पौधा है जो कि अधिक नमी में ही उगता है और इसीलिये या तो पानी में उगा हुआ पाया जाता है या बहुत तर प्रदेशों में होता है। इसका डंठल काफी लम्बा होता है और अन्य पौधों की अपेक्षा जल्दी टूट जाता है। इसमें लकड़ी का अंश बहुत कम या बिल्कुल नहीं होता। इसकी पत्तियाँ लम्बी और पतली होती हैं तथा इसकी जड़ें खोखली होती हैं। इसका तना रेशेदार तथा इसके पत्ते बड़े होते हैं। केले का पौधा इस जाति का उदाहरण है।

Hygroscope (हिगरोस्कोप) वायुमंडल की आर्द्रता या नमी में परिवर्त्तन को बतलाने वाला यंत्र हिगरोस्कोप कहलाता है। इसमें किसी पदार्थ के विस्तार व आकार में आने वाले फर्क से नमी की कमी या वृद्धि का पता चलता है। यह एक प्रकार का भद्दा यन्त्र होता है जिसे दीवाल पर टाँगा जा सकता है और इसमें एक स्त्री और एक पुरुष की आकृति बनी रहती है। हवा में नमी की दशा का ज्ञान ताँत के एक टुकड़े से होता रहता है जो कभी ऐंठ जाता है तो कभी खुल जाता है। इस यन्त्र को 'ऋतुमहल' (Weather House) भी कहते हैं।

Hypabyssal Rocks (मध्यवर्त्ती आग्नेय चट्टानें) कुछ लावा पृथ्वी के भीतरी भाग से तो निकल पडता है परन्तु ज्वालामुखी में से होकर बाहर नहीं निकल पाता। चट्टानों की दरारों में फँसा-फँसा ही जम जाता है। इस लावा के जमने से जो चट्टानें बनती हैं उन्हें मध्यवर्त्ती चट्टानें कहते हैं और ये या तो पुल के रूप में होती हैं या मेहराब के आकार की या दीवाल के किनारे-किनारे लगी पथरीले सिल की तरह होती हैं। इन सभी चट्टानों में थोड़ा-बहुत सिलिका का मिश्रण अवश्य रहता है।

Hypsographic Curve (उच्चतादर्शक वक्र रेखा) यह विभिन्न क्षेत्रों की ऊँचाई दिखलाने की एक विधि है जिससे पृथ्वी के धरातल का सामान्य आकार स्पष्ट हो जाता है। इसमें एक समानान्तर रेखा खींची जाती है और इस समतल रेखा को सामान्य समुद्रतल मान लेते हैं। इसके ऊपर और नीचे लम्बरूप रेखाओं द्वारा भूमि की विभिन्न ऊँचाई और समुद्रों की गहराई को चित्रित किया जाता है। इन लम्बरूप रेखाओं को समतल रेखा पर निश्चित बिन्दुओं से बनाते हैं जो कि पृथ्वी पर विभिन्न ऊँचे-नीचे क्षेत्रों को निर्देश करते हैं। इसीलिये उन क्षेत्रों के बीच की वास्तविक दूरी को नापकर तथा मापदण्ड के अनुसार घटाकर

समतल रेखा पर काट लेते हैं और इस प्रकार प्राप्त विन्दुओं पर लम्बरूप रेखायें खींच देते हैं। यद्यपि ऊँचाई और गहराई काफी बढ़ जाती है परन्तु फिर भी इस विधि में कुछ विशेष गुण हैं। पहली बात तो यह है कि स्थलखंड की ऊँचाई और समुद्रतल की गहराई का सापेक्ष रूप प्रस्तुत हो जाने से उनका महत्व एक साथ स्पष्ट हो जाता है। दूसरे यह कि दोनों प्रकार के स्थल व जल सतह का पता लग जाने पर उनको मिलाने वाले महाद्वीपीय ढाल का कोणिक झुकाव भी स्पष्ट हो जाता है ।

Hypsometer (**हिप्सोमीटर**) यह एक विशेष प्रकार का उच्चता मापक यन्त्र है। इसमें पहिले जल के उवाल वाले तापविन्दु को सही तरीके से पता लगा लेते हैं। चूँकि पानी में उबाल लाने वाला तापविन्दु वायुभार के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है, इसलिए उस तापविन्दु के सहारे वायुभार का पता लगा लेते हैं और फिर उससे भूमि की ऊँचाई निकाल लेते हैं। १० फीट के हेर-फेर में ऊँचाई पता लगाने के लिए पानी के उबलने के तापक्रम को शतांश तक नापा जाना चाहिये तभी ठीक ऊँचाई का ज्ञान हो सकता है।

Hythergraph (**हिदरग्राफ**) विभिन्न प्रकार की जलवायु के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए हिदरग्राफ का प्रयोग करते हैं। यह एक प्रकार का रेखांकन है जिसमें किसी विशेष स्थान का मासिक तापक्रम और वर्षा का औसत एक बारह भुजाओं वाली आकृति के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। इसको बनाने के लिये एक चारखाने का कागज लेते हैं और उसमें एक ओर तो मासिक तापक्रम और दूसरी ओर वर्षा के अंक अंकित करते हैं। इनकी आधाररेखा में १२ महीने अलग-अलग विन्दुओं द्वारा अंकित कर दिये जाते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक मास के विन्दु को मिला देने से बारह भुजाओं वाला हिदरग्राफ प्राप्त हो जाता है। इस पर केवल दृष्टि डालने मात्र से जलवायु की दशा का ज्ञान हो जाता है। हिदरग्राफ को इसलिए बनाते हैं कि इसके द्वारा गेहूँ, कपास, चावल इत्यादि वस्तुओं की खेती के लिये विभिन्न प्रदेशों की जलवायु की अनुकूलता स्पष्ट हो जाती है।

Ice Age (**हिम युग**) भूपटल के इतिहास में वह काल जब महाद्वीपों के विस्तृत भाग बर्फ की चादर के नीचे दबे हुये थे, हिम युग कहलाता है। वास्तव में विशेष काल व युग में तुषारपात की अधिकता, ठंढक में वृद्धि, समुद्री धाराओं में हेर-फेर या भूमि के ऊँचा हो जाने के कारण पृथ्वी के बहुत बड़े भाग में हिमनदियों के प्रवाह के फलस्वरूप बर्फ की वैसी ही चद्दर बिछी हुई थी जैसी कि आजकल ग्रीनलैंड या अन्टार्कटिका में पाई जाती हैं। वास्तव में ग्रीनलैंड और अन्टार्कटिका में बर्फ की टोपियाँ पिछले हिमयुग की ही अवशेषांश हैं।

भूपटल की चट्टानों के रूप-रंग के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पृथ्वी के इतिहास में कम से कम तीन विशिष्ट युगों में पृथ्वी के विस्तृत भूभाग बर्फ की मोटी तह के नीचे दबे हुये थे। इनमें से सबसे हाल का हिमयुग नवकल्प में मौजूद था और आज हिमयुग से तात्पर्य इसी हाल के तीसरे युग से माना जाता है। हिमयुग में हिम नदियाँ कनाडा और स्कैन्डिनेविया के गुम्बद से निकल कर उत्तरी अमरीका और यूरोप के बहुत बड़े भाग में फैल गईं। हिम नदियों का आगे बढ़ना और पीछे हटना बहुत दिनों तक जारी रहा। जब कभी जलवायु की तीव्रता कुछ कम हो जाती थी तब ही ये हिम नदियाँ क्षीण होकर पीछे हटने लगती थीं। इस प्रकार कुल चार बार हिम चक्र चलता रहा और उसके फलस्वरूप उत्तरी-पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका के उत्तरी भाग में बहुत से चिन्ह मिलते हैं।

फिनलैंड में हिम नदियों के प्रवाह के कारण ऊपर की उपजाऊ मिट्टी बह गई है और जगह-जगह पर ऊबड़-खाबड़ निक्षेप पाये जाते हैं। वहाँ पर इसी के कारण बहुत से दलदल व झीलें

बन गई हैं तथा नदियों में जलप्रपात पड़ गये हैं। नार्वे और स्वीडन में इसी हिमयुग की हिम नदियों के कारण हजारों बड़ी झीलें बन गई हैं और साथ-साथ भूमि भी अनुपजाऊ हो गई है। परन्तु नदियों के जलप्रपात विजली उत्पन्न करने के बहुत बड़े साधन बन गये हैं। उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में बाल्टिक सागर के दक्षिणी तट तक इसके चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ पर विभिन्न आकार के मोरेन निक्षेप पाये जाते हैं। वहुत सी झीलें अव सूखकर केवल दलदल मात्र रह गई हैं। जर्मनी के उत्तरी मैदान और डेनमार्क में इसी प्रकार के वहुत से टीले मिलते हैं जिनके वीच की भूमि अनुपजाऊ है। इसी प्रकार के चिन्ह उत्तरी अमरीका में कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका के उत्तरी भाग में भी मिलते हैं और इस वात को प्रमाणित करते हैं कि यह भाग वर्फ के नीचे दवा था और इसीलिए वहाँ अव्यवस्थित जल प्रवाह तथा सैकड़ों झीलें मिलती हैं।

Iceberg (हिम शैल) जब किसी प्रदेश का हिम आवरण या किसी घाटी की हिमनदी बहते-वहते समुद्र तक पहुँच जाते हैं तो समुद्र की लहरों से टूटकर उनके कुछ भाग समुद्र में तैरते रहते हैं। इस प्रकार तैरते हुये हिम के बड़े-बड़े टुकड़ों को हिम शैल कहते हैं। हिम नदी से टूटा हुआ हिम शैल आकार में टेढ़ा-मेढ़ा होता है परन्तु इसके विपरीत हिम आवरण के कटने से उत्पन्न हिम शैल चतुर्भुजाकार होता है और उसका ऊपरी भाग सपाट, मेज के तख्ते के समान होता है। दूसरी प्रकार के हिम शैल बहुत बड़े-बड़े होते हैं और अन्टार्कटिक प्रदेश में तैरते मिलते हैं।

इन हिम शैलों का प्रधान स्रोत ग्रीनलैंड और अन्टार्कटिका के हिम आवरण ही हैं। ग्रीनलैंड की ओर से आने वाले हिम शैल हिमनदियों से छूटकर आते हैं और लैब्रोडर की ठण्ढी धारा इनको न्यूफाउन्डलैण्ड तक बहा लाती है। ये हिम शैल सैकड़ों गज लम्बे होते हैं और जल की सतह से दो-तीन सौ फीट ऊपर तक उठे रहते हैं। वहुत से जहाज इन हिम खण्डों से टकरा कर टूट चुके हैं और कुहरे के मौसम में ग्राण्ड बैंक्स के समीप तो ये या तो यात्री व मछुआ जहाजों के लिये बड़े घातक हो जाते हैं।

अन्टार्कटिक प्रदेश में पचास लाख वर्गमील से भी अधिक भाग हिम आवरण से ढका है और इनसे टूटने वाले हिम शैल ४० मील से भी अधिक लम्बे तथा तीन-चार सौ फीट तक जल के ऊपर निकले रहते हैं। दूर से देखने पर यह बर्फ की चट्टान की तरह प्रतीत होते हैं। परन्तु इन हिम शैलों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। जिस साल इनकी संख्या अधिक होती है तो ये हिम शैल तैरते हुये बहुत दूर-दूर तक चले जाते हैं।

देखने में हिम शैल तो केवल तीन सौ फीट ऊँचे तक ही दिखलाई पड़ते हैं परन्तु वास्तव में सत्य यह है कि उनका केवल १/९ भाग ही जल के ऊपर दिखलाई देता है। यदि कोई हिम-शैल सतह के ऊपर २५० फीट ऊँचा हो तो उसका १८०० से २५०० फीट अंश पानी के नीचे होगा। यही कारण है कि यह तैरते हुये हिम शैल जहाजों के लिए इतने घातक होते हैं। परन्तु इनका यह विस्तार सदैव एक सा नहीं बना रहता। बहते-बहते इनका कुछ भाग पिघल जाता है, कुछ भाग लहरों द्वारा कट कर अलग हो जाता है और कुछ अंश आवरण-क्षय की शक्तियों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। सूर्य की रोशनी और निचले अक्षांशों का गर्म जल इन्हें पिघला देता है। लहरों, वर्षा तथा पानी के उठने व गिरने से इनकी बराबर काट-छाँट होती रहती है। जव कभी कोई बड़ा ढोका इससे कट कर अलग हो जाता है तो इसके संतुलन में फर्क आ जाता है और बहुधा तो शेष हिम शैल लुढ़कता हुआ बहने लगता है। इस प्रकार प्रकृति के आघात-प्रतिघात से हिम शैल कई छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाता है और पिघलने के साथ-साथ उसके साथ मिश्रित कंकड़-पत्थर तथा अन्य चट्टानी अंश समुद्र की तली में बैठता जाता है।

Iceblink (**हिम प्रकाश**) उत्तरी अक्षांशों में या हिमाच्छादित प्रदेशों में जमी हुई बर्फ पर पड़ने के बाद विकीर्ण हुई सूर्य की रोशनी से क्षितिज पर एक सफेद चमक सी छा जाती है। इसे हिम प्रकाश कहते हैं। बहुधा तो केवल हिम प्रकाश दृष्टिगोचर होता है परन्तु वह हिमराशि जहाँ से वह प्रकाश विकीर्ण होता रहता है, दिखलाई नहीं पड़ता।

Ice cap (**हिम आवरण**) ध्रुवीय प्रदेशों में जाड़ों में बहुत अधिक बर्फ गिरती है और गर्मी में बहुत थोड़ी पिघल पाती है। अतः ऐसे प्रदेशों में प्रतिवर्ष बढ़ते-बढ़ते इतनी अधिक मात्रा में बर्फ इकट्ठा हो जाती है कि वहाँ के पर्वतों, घाटियों और मैदानों सभी को ढक लेती है। चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखलाई पड़ती है और ऊपर से देखने पर उसकी सतह बिल्कुल चौरस शिला की भाँति मालूम पड़ती है। इस प्रकार से छाई हुई बर्फ की चद्दर को हिम आवरण कहते हैं। ग्रीनलैंड और अन्टार्कटिका में वर्तमान युग के हिम आवरण स्थित हैं।

ग्रीनलैण्ड का हिम आवरण केवल एक सँकरी तटीय पट्टी को छोड़ बाकी सारे द्वीप को अपने नीचे दबाये हुये हैं। इस सँकरी तटीय पट्टी से ही उसकी नग्न चट्टानें दिखलाई पड़ती है। यह हिम आवरण सात लाख वर्ग मील में फैला हुआ है परन्तु इसकी मोटाई हर जगह एक-सी नहीं है। केन्द्रीय भाग की मोटाई एक मील से भी अधिक है यद्यपि औसत मोटाई १००० फीट से किसी भी भाँति कम होने का अनुभव नहीं है। यह हिम आवरण सब दिशाओं में फैलता है जिससे तटीय भागों पर घाटियों में चलनेवाली हिम नदियाँ बन जाती हैं।

अन्टार्कटिका का हिम आवरण ग्रीनलैण्ड की अपेक्षा कहीं अधिक मोटा है और विस्तार में भी कहीं अधिक है। अन्टार्कटिका महाद्वीप में पचास लाख वर्गमील से भी अधिक भाग हिम आवरण से ढका हुआ है। यह हिम आवरण भूखंड से परे भी फैला हुआ है और इसके नीचे आसपास के समुद्री भाग भी दबे हुये हैं।

इन प्रदेशों में जैसे-जैसे हम किनारे से अन्दर की ओर बढ़ते हैं, हिम आवरण अधिक पक्का होता जाता है। किनारे पर तो इसके सिरे कटे-फटे रहते हैं क्योंकि हिम शैल टूटते रहने से इसका सिरा सपाट व सीधा नहीं रह पाता। परन्तु अन्दर की ओर न केवल इनकी मोटाई ही अधिक होती जाती है बल्कि कुछ बहुत ही ऊँची चोटी को छोड़ कर अन्य सभी जगह बर्फ ही बर्फ दिखलाई पड़ती है। बर्फ के आवरण के ऊपर उभरी हुई इन चोटियों को नुनाटक कहते हैं और इनके चारों ओर सूर्य की किरणों के विकीरण से बर्फ गली हुई मिलती है। दूर से देखने में ये इक्का-दुक्का चोटियाँ खाई से घिरे हुये किले के समान प्रतीत होती हैं। इन प्रदेशों में किसी प्रकार की वनस्पति व जीवन सम्भव नहीं। इसीलिए इन्हें ठंढे मरुस्थल कहकर पुकारते हैं।

Ice cap climate (**हिम मंडित प्रदेशीय जलवायु**) इस प्रकार की जलवायु ध्रुवीय प्रदेशों में—ग्रीनलैण्ड और अन्टार्कटिका में जहाँ साल भर लगातार बर्फ की एक मोटी चद्दर बिछी रहती है, पायी जाती है। वास्तव में यह प्रदेश बर्फ और हिम के रेगिस्तान हैं और इनकी जलवायु के विषय में कोई विशेष आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। साल भर बराबर मासिक तापक्रम का औसत हिमांक के नीचे ही रहता है। तापक्रम ३२° फार्नहीट से कभी भी अधिक नहीं हो पाता। ग्रीनलैण्ड के आन्तरिक भाग में वर्षभर का औसत तापक्रम —२५° फार्नहीट ही रहता है और अन्टार्कटिका में इससे भी कम तापक्रम रहता है। जो थोड़ी-बहुत वर्षा होती है वह सूखी हुई रवेदार तुषार के रूप में ही होती है। यहाँ पर और

विशेषकर अन्टार्कटिका के बाहरी किनारों की ओर बर्फ के भीषण तूफान चला करते हैं। इनकी चाल ७० मील प्रति घंटे से भी अधिक रहती है।

फलतः यहाँ स्थलीय जीवों का अभाव है। अधिकतर समुद्री जानवर ही पाये जाते हैं और कुछ पक्षी भी पहुँच जाते हैं। ग्रीनलैण्ड के दक्षिणी तटों को छोड़कर जहाँ कुछ एस्कीमों लोग रहते हैं, शेष सभी भाग एक विस्तृत उजाड़ खण्ड है।

Ice Field (हिमशिला) अधिक ऊँचाईवाले भागों में और ऊँचे अक्षांशों में इतनी अधिक बर्फ गिरती है कि गरमी में सब की सब पिघल नहीं पाती। जिन स्थानों पर इतनी अधिक बर्फ गिरती है कि पिघल जाने के बाद भी काफी मात्रा बची रह जाती है। वह बर्फ की एक चादर सी सदैव पड़ी रहती है। वास्तव में पहिले जो बर्फ गिरती है वह रुई की भाँति हल्की और फूली हुई रहती है। परन्तु कई बार बर्फ गिरने से उसकी मोटाई अधिक हो जाती है और वह अपने बोझ से दबने लगता है। सूर्य की गरमी से ऊपरी भाग की बरफ का कुछ हिस्सा पिघल कर जल बन जाता है और जैसे ही बर्फ की परतों में से होकर नीचे को बहता है, ठण्ढ के कारण फिर जम जाता है। इस प्रकार दबाव तथा दुबारा जम जाने से नीचे के परत की बर्फ घना हिम पिण्ड का रूप धारण कर लेती है और धीरे-धीरे हिम के परत मोटे होते जाते हैं। इस प्रकार की हिम परतों के घने विस्तृत व अटूट फैलाव को हिम शिला कहते हैं। यह हिम शिलायें हिम की छोटी परतों के पिण्ड रूप में घनीभूत होकर एक विस्तृत चादर का रूप धारण कर लेती हैं और फिर इन्हीं के सरकने पर हिम नदियाँ प्रवाहित हो पड़ती हैं। इन हिमशिलाओं में हिम के जमे हुये परत स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

Ice Floe (हिम प्रवाह) ध्रुवीय हिम आवरण के मुख्य भाग से अलग हुई तैरती हुई हिमराशि के विस्तृत परत को हिम प्रवाह कहते हैं। हिम प्रवाह बहुत अधिक दूर तक बह नहीं पाता और उसके प्रवाह क्षेत्र से विस्तृत हिम आवरण के किनारे स्पष्ट दिखलाई पड़ते रहते हैं। हिम प्रवाह प्रायः दो प्रकार का होता है—(१) लघु हिम प्रवाह जिसमें हिम की परतों की मोटाई केवल दो-तीन फीट ही होती है और (२) गुरु हिम प्रवाह जिसमें हिम की परतों की मोटाई काफी अधिक रहती है।

Ice Foot (हिम पद) आर्कटिक अथवा अन्टार्कटिक प्रदेश में हिम आवरण का जो भाग किनारे से बाहर समुद्र में निकला रहता है उसे हिम पद कहते हैं। इसका आकार बिल्कुल मनुष्य के पैर की भाँति होता है और इसीलिए इसका नाम हिम पद पड़ गया है। कभी-कभी यह बाहर को निकला हुआ हिम पद काफी मोटा होता ही जाता है और इसका ऊपरी किनारा समुद्रतल से कई फीट ऊपर को उठा रहता है। हिम पद के बनने का श्रीगणेश पतझड़ के मौसम में होता है जब तट के समीप बर्फ की एक राशि इकट्ठा हो जाती है और बर्फ की इस राशि पर लहरों द्वारा फेंका हुआ पानी जमकर इकट्ठा हो जाता है। फलतः हिम का एक पिण्ड सा बन जाता है। बाद में इसका आकार व विस्तार लहरों व ज्वार के द्वारा फेंके गये समुद्री हिम के टुकड़ों के इकट्ठा होते रहने से और भी अधिक बढ़ जाता है। अक्सर हिम-पद पर चट्टानों के टुकड़े इकट्ठा हो जाते हैं और अपने आवरण से हिम को पिघलने नहीं देते। फलतः हिम पद के कुछ अंश एक साल तक बने रह जाते हैं और दूसरे पतझड़ में हिम पद के अवशेषांश पर फिर से परतें व पिण्ड बनने लगते हैं।

Ice Pyramid (हिम पिरामिड) कभी-कभी हिमराशि की ऊपरी सतह पर गोलाकार चट्टान खंड आकर टिक जाते हैं। हिम परत पर चट्टान खंड के स्थित हो जाने से सूर्य की प्रखर किरणें उसके नीचे की हिम परत को उतना गला नहीं पातीं जितना कि दूसरी तरफ

के भाग को। फल यह होता है कि हिमराशि धीरे-धीरे दक्षिण की ओर अधिकाधिक झुकता जाता है। एक समय ऐसा आता है जब पूर्ण हिमराशि दक्षिण दिशा की ओर बिल्कुल ही ढुलक जाती है और फलस्वरूप एक पिरामिड सा बन जाता है जिसके इस तरफ नालियाँ बनी रहती हैं। इस प्रकार के पिंड को हिम पिरामिड कहते हैं।

Ice sheet (हिम आवरण) (देखिये Ice Cap)

Igneous Rocks (आग्नेय चट्टान) जैसा नाम से ही विदित है, जो चट्टानें अग्नि की दशा से होकर बनीं उन्हें आग्नेय चट्टान कहते हैं। पहले पृथ्वी जलता हुआ अग्नि का गोला था और सब पदार्थ पिघली दशा में थे। जब पृथ्वी के ठंढी होने के कारण वह पिघला हुआ पदार्थ जम गया उस समय ये चट्टानें बनीं। इस कारण कभी-कभी इन चट्टानों को मुख्य चट्टानें भी कहते हैं। इस प्रकार जो चट्टानें पिघली हुई अवस्था से ठंढी होकर बनी हैं उन्हें आग्नेय चट्टानें कहते हैं। इनका उत्पत्ति स्थान पृथ्वी का भीतरी भाग है जहाँ से ये ऊपर की ओर ठेली गई हैं और धरातल के ऊपर आकर अथवा पृथ्वी के भीतर ही भीतर इधर-उधर दरारों में फैलकर ठंढी हो जाने से बनी हैं। ठंढे होने के स्थान के अनुसार इनके दो भेद हैं—आन्तरिक (**Intrusive**) जो अन्दर ही ठंढी होकर बन गई हैं और वाह्य (**Extrusive**) जो बाहर निकल आने के बाद धरातल पर ठंढी होकर बनी है। इन दो सामान्य श्रेणी के अलावा ठंढे होने के स्थान और लगने वाले समय के आधार पर आग्नेय चट्टानें निम्नलिखित तीन प्रकार की मानी गई हैं:—

(१) **पातालीय आग्नेय चट्टानें**—लावा के पृथ्वी के नीचे अति गहरे भागों में धीरे-धीरे ठंढा होने पर बन जाती हैं और इनके ठंढे होने में काफी समय लगता है। इसीलिये इनके रवे काफी बड़े-बड़े होते हैं। ग्रैनाइट चट्टान इसका उदाहरण है।

(२) **मध्यवर्त्ती आग्नेय चट्टानें**—लावा के ऊपर आने के दौरान में चट्टानों की दरार में ठण्ढा हो जाने से बन जाती हैं। ये उस लावा से बनती हैं जो ऊपर नहीं निकल पाता बल्कि चट्टानों में फँसा-फँसा ही जम जाता है। इसके ठंढा होने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है और इसी कारण इसके रवे बहुत बड़े नहीं होते।

(३) **ऊपरी लावा चट्टानें**—ज्वालामुखी के मुख से निकलकर धरातल पर आकर ठंढे हुये लावा के जमने से बनती हैं। इनकी बनावट बिना रवेदार होती है क्योंकि ऊपर पहुँचकर लावा बहुत जल्दी ठंढा हो जाता है। इनकी बनावट शीशे के भाँति होती है और जब कभी इसमें भाप का अंश फँसा रह जाता है तो इनमें छेद व गड्ढे बन जाते हैं। बसाल्ट इसी प्रकार की चट्टान है।

सभी प्रकार की आग्नेय चट्टानों में सिलिका का अंश मौजूद रहता है। जिनमें सिलिका अंश ८० प्रतिशत से अधिक होता है उन्हें अग्नि चट्टान कहते हैं और जिनमें सिलिका का अंश ४० प्रतिशत तक ही होता है इन्हें पैठिक चट्टान कहते हैं। आग्नेय चट्टानों के चाहे कितने या कैसे भेद भी क्यों न हों, इनका महत्व बहुत अधिक है। अन्य दूसरी प्रकार की चट्टानें इन्हीं चट्टानों से बनी हैं। इन चट्टानों में बहुमूल्य धातुयें अधिकता से पाई जाती हैं। ग्रैनाइट और बसाल्ट तथा डियोराइट महत्वपूर्ण इमारती पत्थर के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। यह बहुत चिकना और सुन्दर होता है और वर्षा तथा धूप में सैकड़ों वर्ष रह सकता है, इसीलिए इमारतों में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

आग्नेय चट्टानें भूपटल पर बनी प्रथम चट्टानें हैं। इसीलिए इनमें वनस्पति या जीवों के अवशेषांश बिल्कुल भी नहीं मिलते। इन चट्टानों में न तो परतें ही पाई जाती हैं और न ही ये अलग-अलग तहों में जमी हुई मिलती हैं। आग्नेय चट्टानें वास्तव में बहुत से रवे व स्फट के

पिण्डस्वरूप हैं। इन चट्टानों में स्फट, दाने और रवे तो जरूर होते हैं परन्तु वे रवे बेतरतीब इधर-उधर फैले रहते हैं। रवों के आकार, संख्या आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। इनमें गोल कण नहीं होते और ये बड़ी कठोर होते हैं। आवरणक्षय या विखण्डन की शक्तियों का असर इन पर बहुत काफी देर में होता है। यही मजबूती इनकी विशेषता है और इसीलिये इन्हें चट्टान जगत का आधार माना जाता है यद्यपि वर्त्तमान आर्थिक जगत में परतदार चट्टानों का इनसे कहीं अधिक महत्व है।

Impermeable Rocks (असोख्य चट्टानें) साधारणतया पृथ्वी पर जो वर्षा होती है उसका कुछ अंश पृथ्वी के अन्दर की चट्टानों में सोख जाता है या प्रवेश कर जाता है, परन्तु पृथ्वी के अन्दर जल के प्रवेश करने की या सोखे जाने की मात्रा चट्टान की प्रकृति पर निर्भर रहती है। कुछ चट्टानें ऐसी होती हैं जिनमें जोड़ व दरारें अवश्य होती हैं परन्तु फिर भी वे अपने अन्दर जल को सोखने नहीं देतीं। ऐसी चट्टान को असोख्य चट्टान कहते हैं। यह प्रवेश्य होते हुए भी असोख्य रह सकती हैं। ग्रैनाइट चट्टान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसमें जोड़ व दरारों से होकर चाहे जल प्रवेश कर जाय, परन्तु उसमें सोखा नहीं जा सकता।

Impervious Rocks (अप्रवेश्य चट्टानें) जिन चट्टानों में वर्षा का जल चाहे सोख लिया जाय परन्तु आगे प्रवेश न कर सके उन्हें अप्रवेश्य चट्टान कहते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अप्रवेश्य चट्टान असोख्य भी होती है जैसे बिना दरारों वाला ग्रैनाइट। इसके विपरीत छोटे-छोटे छेदों वाली चट्टानें पानी को चाहे अपने में सोख ले परन्तु यदि वह आगे प्रवेश नहीं करने देती तो उसे अप्रवेश्य ही कहेंगे। चिकनी मिट्टी में छेद तो जरूर होते हैं परन्तु उसके मध्य जल प्रविष्ट नहीं हो सकता।

Imports (आयात) संसार के विभिन्न प्रदेशों में भौगोलिक व मानव परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार की वस्तुयें उत्पन्न की जाती हैं। इसी प्रकार कहीं किसी वस्तु की जरूरत या उपभोग तो रहता है परन्तु उसकी उपज या तो बिल्कुल ही नहीं होती या जरूरत से कम मात्रा में होती है। अतः प्रदेश-विशेष को अधिक उत्पादन वाले क्षेत्र से वह वस्तु मँगवाकर अपनी माँग की पूर्ति करनी पड़ती है। इस प्रकार अपनी माँग की पूर्ति के लिए बाहर के देश से मँगवाये हुये सामान को आयात कहते हैं। आयात करने की जरूरत निम्नलिखित परिस्थितियों व दशाओं के कारण पड़ जाती है—(१) या तो उस वस्तु का उगाना वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों में असम्भव है या (२) उसके सफल और पर्याप्त उत्पादन में कुछ कठिनाइयाँ हैं या (३) घर पर उस वस्तु का उत्पादन लाभप्रद नहीं है। सच तो यह है कि प्रकृति की देन तथा किसी भी देश की सभ्यता का वहाँ के धंधों पर मुख्य प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो जलवायु के कारण घरेलू उत्पादन हो ही नहीं सकता या जरूरत से कम हो सकता है। उदाहरण के लिए, उष्णकटिबंधीय फलों को ही लीजिये। शीतोष्ण कटिबंध में उनको नहीं उगाया जा सकता। अतएव आयात आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी ऐसा देखा जा सकता है कि पदार्थों के उत्पादन की अपेक्षा यदि भूमि व परिश्रम को शिल्प उद्योग में लगाया जावे तो अधिक लाभ रहेगा पर साथ-साथ पेट भी भरना जरूरी है, इसलिये भोज्य पदार्थों को बाहर से आयात किया जावेगा जैसे ग्रेट ब्रिटेन करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उद्योग-प्रधान देशों को कच्चा माल और भोज्य पदार्थ आयात करने पड़ते हैं तथा कृषि-प्रधान देशों को बना हुआ माल आयात करना होता है।

प्रत्येक देश आयात का मूल्य निर्यात द्वारा चुकाता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि आयात निर्यात का मूल्य बराबर ही हो। वास्तव में इस प्रकार के विनिमय से ही व्यापार का सूत्रपात होता है।

Incised meander (गहिर घुमाव) जब नदी अपनी तलैटी को काटते-काटते आधारतल तक पहुँच जाती है तो उस समय न तो उसके द्वारा काट-छाँट का काम ही होता है और न ही तलछट का अपनयन। पानी की गति मन्द हो जाती है और वह इधर-उधर घुमावदार पथ से होती हुई बहती रहती है। इस समय यदि धरातल की किसी उथल-पुथल के कारण प्रदेश ऊँचा-नीचा हो जाये या जलवायु के परिवर्तन के कारण नदी में जल की मात्रा बढ़ जाये तो नदी फिर नवीन अवस्था जैसा काम करने लगती है। उसके द्वारा काट-छाँट का काम फिर शुरू हो जाता है। फल यह होता है कि उसके घुमाव जो अन्तिम अवस्था में निक्षेप के कारण उथले व सँकरे होते जा रहे थे, फिर से गहरे और चौड़े बन जाते हैं। इस प्रकार के पुनः काटे व गहरे किये हुये नदी घुमाव को गहिर घुमाव कहते हैं और यह नदी में नवजीवन का द्योतक है। (देखिये Entrenched Meander)

Indian Summer (इण्डियन ग्रीष्मकाल) ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उत्तरी भाग में पतझड़ के मौसम के पिछले दिनों में कभी-कभी शान्त व मातदिल मौसम छा जाता है। इस मौसमी तरंग को इन्डियन ग्रीष्मकाल कहते है।

यह पारिभाषिक शब्द अट्ठारहवीं सदी के अन्त में उत्तरी अमेरिका से ही निकला और इसको इन्डियन ग्रीष्मकाल कहने का मुख्य कारण यह था कि जहाँ इस दशा का पहिले-पहल अनुभव किया गया। उस प्रदेश में रेड इन्डियन लोग तब तक बसे हुये थे। इसलिये उन्हीं के नाम के आधार पर इस मौसमी तरंग को इन्डियन ग्रीष्मकाल का नाम दे दिया गया जो अभी तक चला आ रहा है।

Industrial Crops (औद्योगिक फसलें) जो फसलें इसलिये उगाई जाती हैं कि उनसे विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चा माल मिलता है, उन्हें औद्योगिक फसलें कहते हैं। कपास, जूट, सन, पटुवा तथा विभिन्न प्रकार के तिलहन इसी प्रकार की फसलें हैं। इनसे प्राप्त उपज सूती वस्त्र, टाट तथा तेल उद्योग में प्रयोग की जाती हैं। यही कारण है कि इन फसलों की खेती घरेलू उपभोग पर अधिक निर्भर नहीं रहती बल्कि उस पर अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग व व्यावसायिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।

Industry (धंधा) (१) विस्तृत अर्थ में सम्पत्ति की उत्पत्ति करने तथा आर्थिक लाभ की क्रियाओं को ही धंधा कहते हैं। इस दृष्टिकोण से धंधे दो प्रकार के होते हैं—एक तो मुख्य धंधे और दूसरे गौण धंधे। मुख्य धंधों में प्रकृति का भाग मुख्य होता है और श्रम तथा पूँजी का भाग गौण होता है। इसके विपरीत गौण धंधों में मुख्य धंधों से उत्पन्न किये हुये कच्चे माल को शिल्प द्वारा पक्के माल में परिणत किया जाता है। इनमें श्रम और पूँजी का भाग मुख्य रहता है। इसके अलावा कुछ व्यावसायिक धंधे होते हैं जो प्रथम दोनों प्रकार के धंधों की सहायता करते हैं। व्यापार, यातायात, शासन व वाणिज्य संचालन इसी प्रकार के व्यावसायिक धंधे हैं।

(२) संकीर्ण या विशिष्ट अर्थ में खान खोदने, कारखानों में माल तैयार करने या दस्तकारी की वस्तुयें बनाने को उद्योग-धंधा कहते हैं और इसके विपरीत कृषि, व्यापार व वाणिज्य को साधारण उद्यम मानते हैं।

Industries (उद्योग-धंधे) कुछ विशेष कार्य में लगे हुये मिलों व कारखानों के समूह को शिल्प उद्योग कहते हैं।

Industrial inertia (औद्योगिक स्थिरता) जब कभी स्थान-विशेष की परिस्थितियों व प्राकृतिक दशाओं के बिल्कुल बदल जाने के बाद भी कोई विशेष उद्योग-धंधे अपने निजी गुणों या सुविधाओं या पुरानी स्थिति के सहारे पहिले की ही तरह उसी स्थान

में चलते रहते हैं तो इस दशा को औद्योगिक स्थिरता कहते हैं। इसको पूर्वारम्भ से होनेवाला लाभ भी कहते हैं। ऐसे स्थानों के कारीगरों और मजदूरों के कौशल के कारण धंधा वहीं बना रहता है।

Inherited Basin glacier (पूर्व आरोपित हिम नदी) जब कोई हिमनदी किसी पहिले से बनी नदी घाटी में होकर बहती है तो उसके निजी क्षयात्मक कार्य की भी अपेक्षा नदी-घाटी का रूप व आकार अधिक प्रमुख बना रहता है। इस प्रकार की हिमनदी को पूर्व आरोपित हिमनदी कहते हैं। इस प्रकार की हिमनदी व्यवस्था वापस होते हुये हिम चक्र में अक्सर उत्पन्न हो जाती है।

Initial form (प्राथमिक रूप) प्रत्येक प्रकार के भू आकृति में विकास का एक चक्र चलता रहता है। स्थल की ये विभिन्न आकृतियाँ परिवर्त्तनशील हैं और प्रकृति की विभिन्न शक्तियाँ इन पर प्रहार किया करती हैं। शुष्क स्थल के महासागर तल से ऊपर प्रकट होने पर जब उसका आकार बहुत कुछ सुव्यवस्थित होता है और जब प्राकृतिक शक्तियों का आवरण क्षय प्रारम्भ ही हुआ होता है, उस समय भूखंड पर केवल छोटी-छोटी नालियाँ ही काटी गई होती हैं और प्रधानतः काट-छाँट ही अधिक होती रहती है। भू आकृति की इस दशा को उसका प्राथमिक रूप कहते हैं और इसमें वे सभी विशेषतायें उपस्थित रहती हैं जो उसके अन्दर महासागरतल में निमग्न रहने के कारण पैदा हो गई थी। कभी-कभी इस दशा को नवीन अवस्था भी कहते हैं। संक्षेप में हम यूँ कह सकते हैं कि भूआकृति के प्राथमिक रूप या नवीन अवस्था में उसको ढालने वाली शक्तियों का काम बस शुरू ही हुआ होता है। इस रूप में बनी घाटियाँ सँकरी, ऊँची-नीची तथा कम गहरी होती हैं।

Inland Transport (आन्तरिक यातायात) देश के अन्दर के विभिन्न भागों के बीच माल लाने-ले जाने की व्यवस्था को आन्तरिक यातायात कहते हैं। प्रत्येक देश में खेत व गाँव से शहर को या कारखानों को कच्चा माल लाया जाता है और फिर कारखानों से बने हुये माल को केन्द्रिय मण्डियों तक पहुँचाना होता है। इसके अलावा देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की वस्तुयें उत्पन्न होती हैं और उनको इधर से उधर पहुँचाने या भीतर के भागों से बन्दरगाह तक ले जाने या बन्दरगाह से भीतर के भागों को वितरण करने के लिए तरह-तरह के साधनों की जरूरत पड़ती है। वैसे तो मनुष्य व पशु माल ढोने का काम बहुत प्राचीन काल से करते आ रहे हैं परन्तु आजकल आन्तरिक यातायात के सबसे महत्वपूर्ण साधन रेल, सड़कें और नहरें व नदियाँ हैं। इधर वायु यातायात भी कुछ दिनों से जोर पकड़ रहा है। वास्तव में प्रत्येक समृद्ध व उन्नत देश में रेलों, सड़कों और जलमार्गों का एक जाल सा बिछा रहता है जिसके द्वारा देश के विभिन्न भागों के बीच माल की अदला-बदली आसानी से होती रहती है।

Inlet (कटान) किसी देश की तटरेखा या नदी व झील के किनारे में छोटे कटाव को कटान कहते हैं।

Inlier (अन्तस्थ) जब कभी पुरानी परतदार चट्टानों के पिण्ड के चारों ओर नई परतें इकट्ठा हो जाती हैं तो इस प्रकार नई परतों से ढके हुये पुरानी परतों के पिण्ड को अन्तस्थ कहते हैं।

Insets (अन्तस्थ चित्र) किसी मानचित्र को घेरनेवाली सीमा के भीतर बची हुई जगह को कई प्रकार से काम में ले आते हैं। कभी-कभी उसमें निर्देश अंकित कर देते हैं। इसके अलावा अक्सर मुख्य मानचित्र के किसी महत्वपूर्ण हिस्से को दीर्घ मानदण्ड पर खींच

कर एक कोने में डाल देते हैं या लघुमानदण्ड पर मुख्य मानचित्र की स्थिति का सामान्य चित्र एक कोने में खींच देते हैं। इसे अन्तर्स्थ चित्र कहते हैं।

यह अन्तर्स्थ चित्र मुख्य मानचित्र से बिल्कुल स्वतंत्र होता है। इसकी सीमा, केन्द्रीय देशान्तर व नाम इत्यादि सब अलग होते है।

परन्तु कभी-कभी मुख्य मानचित्र के कुछ हिस्से को काटकर अन्तर्स्थ चित्र द्वारा दिखलाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य कागज पर मानचित्र के लिये उपलब्ध जगह को बचाना होता है। इस प्रकार का अन्तर्स्थ चित्र मुख्य मानचित्र को दुबारा खींचा हुआ भाग मात्र होता है। इसलिये इस प्रकार के अन्तर्स्थ चित्र का मानदण्ड वही होता है जो मुख्य मानचित्र का और इसके अक्षांश व देशान्तर उसी दिशा व अन्तर पर बने होते हैं जैसे कि मुख्य मानचित्र पर।

Insequent Stream (आकस्मिक नदी) प्रायः हर प्रदेश की नदी-नद व्यवस्था के कुछ भौगोलिक कारण होते हैं और प्राकृतिक बनावट या शक्तियों के प्रभाव के अनुसार ही नदियों का प्रवाह क्षेत्र बनता है। परन्तु कभी-कभी एकाएक किसी आकस्मिक नियन्त्रण के वशीभूत होकर कोई नदी बहने लगती है। इसके प्रवाहित होने का कोई विशेष कारण नहीं पता चल पाता। इस प्रकार से उत्पन्न नदी प्रवाह को आकस्मिक नदी कहते हैं।

आकस्मिक नदियाँ चट्टानों की रचना के अनुसार अपनी घाटी बनाकर अपना प्रवाह व्यवस्थित करने में सर्वथा विफल रहती हैं। साथ-साथ उनकी कोई सहायक नदियाँ भी नहीं होतीं। इसके दो कारण हैं—(१) मिट्टी, बालू, बजरी की विस्तृत राशि दूर तक समतल रूप मे फैली रहती है, (२) तलैटी की व जलप्रवाह क्षेत्र की चट्टानें कठोर ठोस ग्रेनाइट की होती हैं।

Insolation (सूर्यताप) पृथ्वी पर रहने वाले जीवों को ताप का कुछ भाग तो भूगर्भ से प्राप्त होता है परन्तु अधिकांश सूर्य से ही मिलता है। सूर्य बहुत गर्म है और उससे निकल कर किरणें बराबर वायुमण्डल में फैलती रहती हैं। गर्मी की इन किरणों के विशाल समूह को सूर्यताप कहते हैं और यही वायुमण्डल को गरम करने का सबसे प्रधान साधन है। सूर्यताप की प्रचंड गर्मी प्रति मिनट एक करोड़ मील से भी अधिक तेजी से चलती है और सूर्य के ९,३०,००,००० मील दूर स्थित होने पर भी केवल नौ मिनट में पृथ्वी तक पहुँच जाती है। परन्तु सूर्य ताप केवल पृथ्वी को ही नहीं प्राप्त होता बल्कि अन्य ग्रहों को भी मिलता है। फलतः इसका केवल दो अरबवाँ भाग ही पृथ्वी को प्राप्त होता है और वह भी पूर्णतः कदापि नहीं।

वायुमण्डल को पार करने में सूर्यताप का ३७ प्रतिशत अंश तो बादलों व धूलकणों द्वारा प्रतिबिम्बित होकर नष्ट हो जाता है और अन्य ६ प्रतिशत गैसों द्वारा सोख लिया जाता है। फलतः केवल ५७ प्रतिशत भाग ही पृथ्वी तक पहुँच पाता है। इस सूर्यताप की औसत मात्रा प्रति मिनट प्रति वर्ग तक सेन्टीमीटर जगह पर १.९४ कैलोरीज होती है। इसे सूर्यताप स्थायी कहते हैं। यद्यपि सूर्यताप की मात्रा बहुत कुछ स्थायी होती है परन्तु किसी स्थान विशेष पर सूर्यताप पहुँचने की मात्रा निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहती है—(१) धरातल से सूर्य की ऊँचाई, (२) वायुमंडल जिसमें से होकर किरणें आती हैं उसका घनत्व, (३) दिन और रात की लम्बाई का अन्तर या २४ घण्टों में सूर्य का प्रकाश प्राप्त होने के घंटे। साधारणतया यह देखा जाता है कि सीधी किरणों से तिरछी किरणों की अपेक्षा अधिक ताप प्राप्त होता है क्योंकि तिरछी किरणों को सीधी किरणों की अपेक्षा अधिक भूभाग गरम करना पड़ता है और साथ ही वायुमंडल का अधिक भाग पार करके आना पड़ता है। इसी कारण

प्रतिदिन सूर्यताप की मात्रा सूर्य की किरणों के झुकाव के अनुसार बदलती रहती है और दिन के कितने भाग तक सूर्य चमकता रहा, यही इस मात्रा को निश्चय करता है ।

पृथ्वी के समरात्रि स्थित में तो दिन-रात बराबर होते हैं और इसलिए सम्पूर्ण पृथ्वी पर १२ घंटों तक सूर्य चमकता रहता है । लेकिन पृथ्वी की उत्तरायण स्थिति में हम भूमध्यरेखा से जितने ही ऊपरी अक्षांशों की ओर बढ़ते हैं सूर्य के प्रकाश की अवधि उतनी ही अधिक होती जाती है । फलतः उच्च अक्षांशों में सूर्यताप की किरणों के तिरछा पड़ने पर भी दिन की अवधि की अधिकता के कारण सूर्य ताप की मात्रा कम नहीं होने पाती । इस प्रकार सूर्य ताप की एक दिन की मात्रा वहाँ कदापि सबसे अधिक नहीं होगी । यहाँ दोपहर को सूर्य सर के ऊपर चमकता रहता है बल्कि सबसे अधिक उस जगह होगी जहाँ सूर्य प्रकाश की दैनिक अवधि अधिक होगी । पूर्ण वर्ष के लिए सूर्य ताप की मात्रा निर्धारित करने पर स्पष्ट होता है कि सूर्य ताप की मात्रा भूमध्य रेखा पर सबसे अधिक रहती है । भूमध्यरेखा से उत्तर या दक्षिण की ओर चलने पर पहले तो यह धीरे-धीरे घटती जाती है फिर तेजी से घटने लगती है और फिर ध्रुवों की ओर चलने पर क्रमशः बढ़ने लगती है । सूर्यताप भूमध्यरेखा पर प्रायः साल भर एक-सा बना रहता है परन्तु ध्रुवों पर सूर्यताप बहुत काफी बदलता रहता है ।

परन्तु धरातल पर सूर्यताप का वितरण केवल अक्षांशों से ही प्रभावित नहीं होता बल्कि जल थल का विन्यास भी इसको प्रभावित करता है । वाष्पीभवन, लहरों व धाराओं संवाहन तथा जल की प्रवेश्यता आदि के कारण जल भाग स्थल की अपेक्षा देर में गरम और देर में ही ठंढा होता है । इसी कारण जलीय प्रदेशों की जलवायु सम और महाद्वीपों की जलवायु विषम होती है ।

Inselberg (पर्वतद्वीप) अतिगर्म प्रदेशों में सूर्य की किरणों के द्वारा विखण्डन होते रहने से अक्सर अकेला चट्टान पिण्ड रह जाता है । इसे पर्वतद्वीप या **Inselberg** कहते हैं । इन्जलवर्ग जर्मन भाषा का पारिभाषिक शब्द है ।

Insular Location (द्वीपी स्थिति) जब किसी प्रदेश के चारों ओर पानी ही पानी हो तो उसकी स्थिति को द्वीपी स्थिति कहते हैं । ग्रेट ब्रिटेन, जापान और न्यूफाऊंड-लैंड की स्थिति द्वीपवर्त्ती है । इस प्रकार की स्थिति बड़ी ही सुविधाजनक होती है । प्राकृतिक समुद्र इसकी सीमान्त रेखायें बनाते हैं जिससे उनके अन्दर निश्चितता व स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न होती है । समुद्र से घिरे होने के कारण ही ग्रेटब्रिटेन की सीमान्तर रेखाओं में युद्ध अथवा राजनीतिक क्रान्ति द्वारा होने वाले परिवर्त्तनों की आशंका नहीं है । इस स्थिति में जलवायु सम होती है और चारों ओर समुद्र होने से संसार के व्यापारिक मार्गों के अत्यन्त समीप है । और फिर चारों ओर से समुद्र द्वारा घिरे होने के कारण ही ग्रेट ब्रिटेन और जापान के लोग इतने नवीन, उन्नतिशील और साहसी होते हैं ।

Insular Climate (द्वीपीय जलवायु) समुद्र के बीच स्थित द्वीपों या समुद्र के किनारे बसे प्रदेशों की जलवायु को द्वीपीय जलवायु कहते हैं । जलाशयों की समीपता के कारण इस प्रकार की जलवायु प्रधान रूप से सम होती है । दैनिक, मासिक और वार्षिक तापमान का अन्तर साधारण होता है । दिन और रातें साधारण गर्म व ठंढी होती हैं । गर्मी में न तो गर्मी अधिक पड़ती है और जाड़े में न अधिक ठंढक । समुद्र पर [illegible] रहने से चक्रवात की दशायें प्रखर हो जाती हैं और वर्षा भी पर्याप्त होती है । साल का कोई भी मौसम सूखा नहीं रहता । साल भर बराबर वर्षा होती है और उच्च अक्षांशों में गर्म व ठंढी जलधाराओं का भी असर पड़ता रहता है । इसके अलावा द्वीपीय जलवायु में दिन में समुद्री पवन और रात में स्थलीय पवन चलता रहता है जिनके कारण सम्पूर्ण वातावरण में

एक ताजगी का अनुभव होता रहता है। इस प्रकार की जलवायु में साल भर बराबर पूर्ण शक्ति से काम किया जा सकता है। यही कारण है कि इस प्रकार की जलवायु के प्रदेश ही औद्योगिक क्षेत्र में विशेष उन्नति कर गये हैं।

Installed Capacity (निर्धारित शक्ति) किसी कारखाने या मशीन की कुल संभावित शक्ति को उसकी निर्धारित शक्ति कहते हैं। अधिकाधिक जितना कुछ कारखाने या मशीन से उत्पादन हो सकता है उसे ही उसकी निर्धारित शक्ति कहते हैं। यह निर्धारित शक्ति तो एक आदर्श के रूप में होती है और उपयुक्त शक्ति इससे बिल्कुल भिन्न होती है। निर्धारित और उपयुक्त शक्तियों के बीच का प्रतिशत सम्बन्ध शक्ति अंक कहलाता है।

Intensive agriculture (सयत्न खेती) थोड़ी भूमि पर से अधिक से अधिक पूँजी और श्रम लगाकर उपज के बढ़ाने के प्रयत्न को सयत्न खेती कहते हैं। यह खेती वहाँ पर की जाती है जहाँ कृषि से उत्पन्न भोज्य पदार्थों और औद्योगिक कच्चे माल की माँग अधिक हो और आबादी ज्यादा होने से भूमि कम। इसलिये भूमि को थोड़े दिन भी खाली नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिए यत्नपूर्वक फसलों का हेर-फेर करके, कृत्रिम साधनों द्वारा पानी निकाल कर तथा खाद डालकर भूमि की उर्वरा शक्ति को कायम रक्खा जाता है। कोशिश यह होती है कि उस भूमि के टुकड़े से अधिक से अधिक उपज प्राप्त हो। इसलिए न केवल प्रति एकड़ उपज को बढ़ाने का ही प्रयत्न किया जाता है बल्कि खेती के साथ-साथ किसान मुर्गी पालने या दूध का भी धंधा करता है। खेत में उत्पन्न हुए चारे व अनाज को खिलाकर वह बहुत अधिक मूल्य का दूध व अंडे उत्पन्न करता है।

सयत्न खेती साधारणतया प्रगतिशील देशों में ही सम्भव है। इंगलैंड और डेनमार्क में जहाँ भूमि कम है, सयत्न खेती द्वारा अधिक उपज सम्पत्ति प्राप्त की जाती है।

Interfluve (जलविभाजक) जब किसी भूखंड पर जलधारायें प्रवाहित होने लगती हैं तो वे अपने प्रवाह के लिये छोटी-छोटी नालियाँ बना लेती है। अक्सर एक दूसरे के समानान्तर नवीन नदी घाटियाँ सँकरी और गहरी होती हैं। विभिन्न समानान्तर घाटियों को अलग करने वाली चट्टानी श्रेणी को मध्य जलविभाजक कहते हैं। समय के साथ-साथ वर्षा के असर से तथा स्वयं नदी के प्रभाव से उसके किनारे कटते जाते हैं और घाटी **V** के आकार की हो जाती है। जैसे-जैसे घाटी का विस्तार बढ़ता जाता है, ये मध्य जलविभाजक सँकरे होते जाते हैं। इस प्रकार मध्य जलविभाजक की व्यवस्था केवल नवीन नदी व्यवस्था या भूआकृति के प्राथमिक रूप में दृष्टिगोचर होती है।

Interior Drainage (आन्तरिक प्रवाह) जब किसी क्षेत्र का जल प्रवाह इस प्रकार हो कि वहाँ की नदियाँ किसी समुद्र या महासागर में जाकर न गिरती हों तो उसे आन्तरिक प्रवाह कहते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संयुक्त राष्ट्र अमरीका में पश्चिमी यूताह और नेवादा के विशाल बेसिन में प्राप्त होता है। वहाँ पर नदियाँ बहकर आती हैं और अपने जल से नमकीन झीलें बनाती हैं। इस प्रकार की बनी नमकीन झीलों से या तो पानी बराबर भाप बनकर उड़ता रहता है या जमीन में सोख लिया जाता है। पैलेस्टाइन का मृतसागर भी इसी प्रकार के आन्तरिक प्रवाह का केन्द्र है।

Interlocking spurs (पर्वत शाखायें) नदी द्वारा बनाई गई नाली धीरे-धीरे गहरी व चौड़ी होती रहती है। हाँ, जिन देशों में वर्षा कम होती है वहाँ तलैटी तंग और गहरी ही बनी रहती है। अन्य स्थानों में ऊपर के ढालू भाग में जल नीचे जाने के लिए बड़ी सुगमता से समीप ही में अपना मार्ग पा लेता है परन्तु मध्य भाग में नदी अपनी तलैटी में इधर-उधर हटती रहती है। यही कारण है कि नदी की तलैटियाँ बहुत कम सीधी होती हैं। उसके दोनों

किनारों पर पहाड़ियाँ भी निकली रहती हैं जिनके कारण बहुत दूर तक नदी को देख सकना सम्भव नहीं होता। घाटियों के किनारे पर निकली हुई पहाड़ियों को पर्वत शाखायें कहते हैं।

ये पर्वत शाखायें तलैटियों से लगी हुई मालूम होती हैं इसलिए कि वे पहले तलैटियों के एक किनारे पर होती हैं और फिर दूसरे पर। इनके इधर-उधर से घूम कर नदी बहती रहती है और ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता है त्यों-त्यों नदी अपने किनारों पर की पर्वतशाखाओं को काटती जाती है। इन पर्वत शाखाओं के कट जाने पर कालान्तर में एक चौड़ी तथा विस्तृत तलैटी बन जाती है। जिसमें नदी इधर-उधर घूमती हुई बहती रहती है।

International maps (अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र) विभिन्न राष्ट्रों के भूमिति चित्र अलग-अलग मानदण्ड और तरीके पर बनाये गये होते हैं। इसलिये उनमें कोई समता नहीं होती। अतएव सन् १८९१ और बाद में सन् १९०९ की अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल सम्मेलन में पेन्क महोदय के सुझाव पर एकरूपता के दृष्टिकोण से एक विशिष्ट मानदंड और अंकन विधि को स्वीकार कर लिया गया। अतएव अब भूमित चित्र एक और दस लाख के अनुपात में बनाये जाते हैं। उनमें १ इंज बराबर होता है १६ मील के और उनको परिवर्त्तित या संशोधित पौलीकानइक अंकन पर खींचा जाता है। इस प्रकार तैयार करने से सम्पूर्ण पृथ्वी का प्राकृतिक मानचित्र २२२२ पृष्ठों में बनेगा जो एक दूसरे से बिल्कुल सटा कर बैठाये जा सकेंगे। इस विधान पर बनाये गये भूमिति चित्र अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र कहलाते हैं।

International Dateline (अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा) १८०° डिग्री पश्चिमी या पूर्वी देशान्तर रेखा के बराबर से गुजरती हुई एक काल्पनिक रेखा को अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा कहते हैं। इस रेखा को पार करने पर एक दिन का अन्तर आ जाता है। पूर्व से पश्चिम को जाता हुआ जहाज इस रेखा को पार करने पर एक दिन छोड़ देता है या यदि कोई जहाज ५ फरवरी को इस रेखा को पार करता है तो वह ६ फरवरी को छोड़ देगा और ५ फरवरी के बाद ७ फरवरी को गिना जायेगा। इसके विपरीत जब कोई जहाज पश्चिम से पूर्व की ओर जाते हुये इस रेखा को पार करता है, तो दूसरे दिन भी पहिले दिन को फिर गिनता है। जैसे यदि कोई जहाज ५ फरवरी को इस रेखा का पार करता है तो अगले दिन को बजाय ६ फरवरी के ५ फरवरी ही गिना जायेगा। इस प्रकार प्रथम दशा में सप्ताह ६ दिन का होता है और दूसरी दशा में ८ दिन का। इस रेखा को पार करते समय रविवार या अन्य छुट्टियों को न तो दोबारा गिना ही जाता है और न छोड़ा ही जाता है। पूर्व से पश्चिम को जाने वाला यात्री यदि शनिवार के दिन इस रेखा को पार करेगा तो इतवार को नहीं छोड़ेगा बल्कि सोमवार को छोड़ेगा। इसी प्रकार पश्चिम से पूर्व को जाने वाला यात्री यदि इस रेखा को इतवार के दिन पार करता है तो उसका अगला दिन सोमवार ही दुबारा या दोबार गिना जायेगा।

इस व्यवधान का मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक देशान्तर अंश पर ४ मिनट समय का अन्तर हो जाता है। इसलिए यदि हम ग्रीनविच को देशान्तर से पश्चिम की ओर चलें तो प्रत्येक देशान्तर अंश को पार करने पर सूर्य के निकलने, मध्यान्ह और सूर्यास्त होने में ४ मिनट की देरी होती जायगी। इसके विपरीत ग्रीनविच देशान्तर से पूर्व की ओर चलने पर प्रत्येक देशान्तर को पार करने पर सूर्य के निकलने, मध्यान्ह और सूर्यास्त होने में ४ मिनट जल्दी प्रतीत होगा। इस प्रकार यदि हम पूर्व की ओर चलते-चलते १८०° देशान्तर पर पहुँचें तो हम देखेंगे कि सूर्य का निकलना, मध्यान्ह और सूर्यास्त ग्रीनविच की अपेक्षा १२ घंटे पहिले हो गया है। इसी पर पश्चिम में १८०° देशान्तर तक चलने पर सूर्य निकलने, मध्यान्ह और सूर्यास्त होने में १२ घंटे की देरी हो जायगी। इस प्रकार १८०° पश्चिम या पूर्व देशान्तर

के इधर-उधर स्थित दो विन्दुओं के समय के बीच करीब-करीब २४ घण्टों या एक पूरे दिन का फर्क आ जाता है।

इस गणित सम्बन्धी तथ्य के माने हुये ग्रीनविच समय के साथ मिलाने के लिए ही अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा को स्वीकार कर लिया गया है। इस रेखा पर नये दिन का प्रारम्भ माना जाता है और ताकि मार्ग में पड़ने वाले भूखंडों या द्वीपों के समय में किसी प्रकार का फर्क न आये। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा १८०° देशान्तर के बिलकुल साथ-साथ नहीं चलती है। जहाँ कहीं मार्ग में द्वीप आदि आ जाते हैं वहाँ यह रेखा उनसे बचकर निकलती है। ध्यान इस बात का रक्खा गया है कि यह रेखा सम्पूर्णतः सागरीय भागों से होकर ही गुजरे।

Intermittent river (अस्थायी नदी) चूने या खड़िया मिट्टी से बने प्रदेशों में भूगर्भ के जल के कारण भूमि खोखली हो जाती है और धरातल पर बड़े-बड़े छेद व गर्त बन जाते हैं। ऐसी दशा में धरातल पर प्रवाहित नदी अक्सर एक दम से इन छेदों में प्रवेश करके भीतर की कन्दराओं में विलीन हो जाती है। इस प्रकार के लुप्त प्रवाह कार्स्ट प्रदेशों में बहुत देखने में आते हैं। इस भाँति लुप्त हुई नदी थोड़ा आगे बढ़ने पर कन्दराओं की छतें टूट जाने से बने हुये गड्ढों में बहती हुई दिखलाई पड़ती है। इस तरह कार्स्ट प्रदेश में धरातल का प्रवाह कभी-कभी तो बहता हुआ दिखलाई पड़ता है और फिर एकाएक ८-१० मील तक भूगर्भवती कन्दराओं में लोप हो जाता है तथा एक बार फिर नजर आने लगता है। इस प्रकार बहती हुई नदी को अस्थायी नदी कहते हैं।

Intermittent spring (अस्थायी जलस्रोत) वर्षा द्वारा जितना पानी भूमि पर गिरता है उसका कुछ भाग भूमि में धँस जाता है और अपने भार के कारण यह **भूमिगत** जल, जहाँ तक हो सकता है, नीचे जाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार प्रवेश करता हुआ जल काफी नीचे पहुँचने पर अप्रवेश्य चट्टानों के आ जाने से रुक जाता है और उसी पर फैल कर बहने लगता है। वहाँ पर भूमिगत जल का तल बन जाता है। जहाँ कहीं भी घाटियाँ या गड्ढे आ जाने के कारण पृथ्वी का धरातल जलरेखा से नीचा हो जाता है वहीं यह जल प्रकट हो जाता है। इस प्रकार झरने बन जाते हैं जिनसे यह जल बूँद-बूँद करके आता रहता है। परन्तु जलस्रोत में निरन्तर जलप्रवाह बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि जलरेखा झरने के उद्गम पर नीचे की ओर झुकी रहे। जब कभी भी ऐसा नहीं होता तो झरने का जल प्रवाह कभी चलता है और कभी बन्द हो जाता है। इस प्रकार के झरनों को अस्थायी जलस्रोत कहते हैं।

अस्थायी जलस्रोत में पानी का प्रवाह उस समय आता है जब ऊपर से जल पहुँचाने के कारण जल रेखा उठ गयी है और जैसे ही जलरेखा का तल नीचे की ओर गिर जाता है, इन स्रोतों में पानी निकलना बन्द हो जाता है। इस प्रकार अस्थायी जलस्रोत में प्रवाह व शुष्कता का कालान्तर बहुत कुछ नियमित रहता है। अस्थायी जलस्रोत दो प्रकार के होते हैं—

(१) **संतृप्त तल जलस्रोत**—प्रवेश्य चट्टानों में जल का संतृप्त तल जब नीचा हो जाता है तो इन जलस्रोतों में पानी आना बन्द हो जाता है।

(२) **नली जल स्रोत**—भूमि के अन्दर जब प्रवेश्य और अप्रवेश्य चट्टानों के बीच एक गड्ढा-सा बना होता है तो उसमें से नली स्वरूप निकलने वाला झरना उस समय तक सूखा पड़ा रहता है जब तक कि उस गड्ढे में एक निश्चित तल तक **जल** इकट्ठा न हो **जाय। उस तल पर आ जाने के बाद झरने से जलप्रवाह** शुरू हो जाता है और तब तक होता रहता है जब तक कि उसका प्रवेश द्वार खुल न जाय।

Intermontane Plateau (अन्तर-पर्वतीय पठार) जो पठार सब ओर से ऊँची पर्वत श्रेणियों द्वारा घिरा हो उसे अन्तर-पर्वतीय पठार कहते हैं। ये पठार उन्हीं पर्वत श्रेणियों के साथ ही ऊँचे उठे होते हैं और काफी ऊँचे होते हैं। संसार के सर्वोच्च पठार इसी श्रेणी में आते हैं और उनकी औसत ऊँचाई १०,००० फीट तक होती है। साधारणतया इनका विस्तार बहुत अधिक नहीं होता और कभी-कभी ये पठार पर्वत श्रेणियों से इतनी बुरी तरह घिरे रहते हैं कि नदियाँ भी समुद्र तक पहुचने का मार्ग नहीं पातीं। इन पठारों का ढाल भीतर की ओर होता है और इनकी नदियाँ अन्दर की ओर बहती हैं।

इस प्रकार के पठार राकी व इन्डीज पर्वत श्रेणियों के बीच बहुत मिलते हैं। संसार के कुछ बहुत ऊँचे तथा बहुत विस्तृत अन्तर-पर्वतीय पठार तिब्बत, बोलीविया, मेक्सिको, मंगोलिया, तारिम और कोलम्बिया व यूटाह हैं। हिमालय और क्यनलन पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ तिब्बत का पठार बहुत विशाल है और समुद्र तल से तीन मील की ऊँचाई पर स्थित है। इसी प्रकार दूसरा पठार बोलीविया का है जिसकी ऊँचाई समुद्रतल से १०००० और १५००० फीट के बीच में है।

Interlobate moraine (अन्तरालॉब मोरेन) जब हिम नदी पिघलने लगती है तो उसके द्वारा विक्षिप्त कंकड़ और मिट्टी एक लम्बी पर सँकरी पट्टी में इकट्ठा हो जाती है। यह पट्टी हिमनदी के पिघलते हुये टापुओं को एक दूसरे से अलग करते हैं और कभी-कभी इतनी अधिक ऊँची हो जाती है कि प्रदेश के अन्य निक्षेपों से ऊँचाई में बढ़ जाती है। ये पट्टियाँ बालू और कंकड़ की बनी होती हैं और इनके बीच में बहुत-सी झीलें पाई जाती हैं। इन मैदानी पट्टियों की ऊँचाई ऊपर की तरफ बराबर बढ़ती जाती है और हिम द्वीपों के बीच इनका विकास कोण बनता हुआ बढ़ता है। इस प्रकार के क्रमशः ढाल वाले चबूतरे अन्तरालॉब मोरेन कहलाते हैं। अक्सर इन अन्तरालॉब मोरेन के चारों ओर छोटी-छोटी झीलों की ेटी पाई जाती है।

Intervisibility (अन्तर्दृश्यता) जिन भूमित चित्रों में समउच्च भूमि दर्शक रेखाओं द्वारा ऊँचाई दिखलाई जाती है उनमें बहुधा एक बिन्दु से दूसरे दूरस्थ बिन्दु को देखना जरूरी हो जाता है। यदि प्रवेश साफ है और रास्ते में इमारतों, पेड़ों आदि की रुकावट नहीं है तो काफी दूरी पर स्थित बिन्दु से दूसरे बिंदु को देखा जा सकेगा। इस दशा को अन्तर्दृश्यता कहते हैं। यदि किसी रुकावट के कारण प्रदेश का कुछ हिस्सा नहीं दिखलाई पड़ता तो उसे मृत भूमि कहते हैं। अन्तर्दृश्यता का ज्ञान करने के लिए निम्न-लिखित दो उपायों को काम में लाते हैं—(१) खंड चित्र द्वारा, (२) ढाल की दिशा द्वारा।

Intrusive Rocks (भौगर्भिक चट्टानें) वे आग्नेय चट्टानें जो लावा के भूमि के भीतर ही जम जाने से बन जाती हैं उन्हें आन्तरिक चट्टानें कहते हैं। ये दो प्रकार की होती हैं—(१) एक तो वे जो पृथ्वी के अन्दर बहुत नीचे बन जाती हैं और जिन्हें भूगर्भवती आग्नेय चट्टान कहते हैं। (२) दूसरी वे हैं जो लावा के बाहर निकल पाने से पहिले ही बीच की चट्टानों में फँसा रह जाने के कारण लावा से जमकर पुल, सिल्ली, खम्भे या दीवार का रूप धारण कर लेती हैं। ये आन्तरिक चट्टानें साधारणतया तब दिखलाई पड़ती हैं जब इनके ऊपर की चट्टानें घिस-घिसाकर नष्ट हो जायँ। (देखिये Igneous Rocks)

Inversion of Temperature (तापक्रम की विलोमता) साधारणतया ऊँचाई के साथ तापक्रम घटता जाता है परन्तु जब किसी विशेष कारण से इसके विपरीत ऊँचाई के बढ़ने के साथ-साथ तापक्रम भी बढ़ता जाय तो इसे तापक्रम की विलोमता कहते हैं। प्रायः ठण्ढी मेघरहित रातों को या जब भूमि पर बर्फ जमी रहती है तो भूमि के निकट की वायु

काफी सर्द हो जाती है, उसका तापक्रम काफी गिर जाता है। उसी समय ऊपर पहाड़ी ढालों पर तापक्रम काफी ऊँचा रहता है। तापक्रम की विलोमता उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित दशायें आदर्श हैं––(१) जाड़े के मौसम की लम्बी रातें, (२) स्वच्छ मेघरहित आकाश ताकि विकीरण द्वारा शीघ्र तापक्रम निम्न हो जाये, (३) ठण्ढी शुष्क वायु, (४) शान्त वायुमण्डल और (५) हिमाच्छादित भूमि।

तापक्रम की विलोमता का अनुभव साधारणतया निचले भागों और घाटियों में होता है और वह भी जाड़े के मौसम की शान्त स्वच्छ रात्रियों में जब विकीरण द्वारा भूमि काफी ठंढी हो जाती है और ऊपर के ढालों पर से उतर कर ठंढी हवा निचले मैदानों में इकट्ठा हो जाती है। फलतः वहाँ पर ठंढी हवा की राशि वन जाती है और अपेक्षाकृत ढाल या ऊँचाई वाले भाग गर्म बने रहते हैं। लेकिन अगर आसमान साफ रहे और कुछ समय तक मौसमी हवायें भी शान्त बनी रहें तो मैदानी भागों में भी तापक्रम की विलोमता उत्पन्न हो जाती है। उपर्युक्त दशा में शीतोष्णकटिबंध के समतल प्रदेशों में भी जाड़े की रात में तापक्रम की विलोमता का अनुभव होने लगता है। जाड़े में विपरीत चक्रवात् की दशा में अक्सर तापक्रम की विलोमता बहुत प्रखर हो जाती है और बहुधा बहुत दिनों तक बनी रहती है। लन्दन जैसे नगरों में जाड़े की ऋतु का बना कुहरा इसी प्रकार की विलोमता के कारण उत्पन्न होता है।

तापक्रम की विलोमता के कारण कई प्रदेशों में खेती की प्रणाली में भेद हो गये हैं। कैलीफोर्निया की घाटी में रसदार फलों को पाले से बचाने के लिए ऊपरी ढालों पर लगाते हैं। इसी प्रकार ब्राजील में कहवा को पहाड़ी ढालों पर बोया जाता है।

Invisible Exports (अदृश्य निर्यात) साधारणतया माल को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने की क्रिया को निर्यात कहते हैं और इसके द्वारा निर्यात करने वाला देश मुद्रा प्राप्त करता है। परन्तु कभी-कभी कुछ देश सामान को बिना भेजे ही व्यावसायिक सहायता द्वारा मुद्रार्जन करते हैं। इसमें विदेश को कोई माल या सामान तो भेजा नहीं जाता बल्कि जहाजों, बीमा कम्पनियों आदि द्वारा सहायता पहुँचाई जाती है। इस प्रकार की विदेशों के प्रति सेवा को अदृश्य निर्यात कहते हैं और इसके अन्तर्गत विदेशी देशों के लिए राष्ट्रीय जहाजों द्वारा व्यापार, देश में विदेशी यात्रियों द्वारा खर्च और विदेश में लगाई हुई पूँजी पर व्याज आदि से होने वाली आय शामिल है।

Irrigation (सिंचाई) जलवृष्टि की कमी के कारण खेती को हानि न पहुँचे इसलिए कृत्रिम तरीकों से जल पहुँचाने की क्रिया को सिंचाई कहते हैं। खेती के लिये जल कितना आवश्यक है यह तो प्रायः इसी बात से स्पष्ट है कि जब कभी जलवृष्टि जरूरत से कम या अधिक होती है तो प्रायः फसलें नष्ट हो जाती हैं। इसलिये निम्नलिखित विशेषताओं वाले प्रदेशों में सिंचाई के द्वारा खेती करना जरूरी हो जाता है––(१) जहाँ साल भर में २० इंच से भी कम वर्षा होती है, (२) जिन प्रदेशों में वर्षा लगातार नहीं होती बल्कि किसी खास मौसम में ही होती है, (३) जहाँ वर्षा की मात्रा अनिश्चित तथा वितरण अनियमित होता है। कभी वर्षा कम होती है तो कभी ज्यादा और कभी होती ही नहीं। इसी प्रकार कहीं वर्षा होती है तो कहीं होती ही नहीं। इस प्रकार संक्षेप में वर्षा की अपर्याप्तता, अनिश्चितता, अनियमित वितरण या साल का एक मौसम सूखा रहने के कारण खेती को सिंचाई का सहारा लेना पड़ता है।

सिंचाई के द्वारा खेती करने में खर्च तथा मेहनत दोनों ही अधिक पड़ती है परन्तु एक सुविधा यह रहती है कि पानी उनके अधिकार में रहता है। जब जरूरत होती है तभी वह खेत को पानी दे सकता है। इसी कारण सिंचाई की सहायता से पैदावार अधिक होती है।

सिंचाई के कई साधन हैं जिनमें से निम्नलिखित तीन विशेष रूप से प्रधान हैं—(१) कुयें, (२) तालाब और (३) नहरें।

कुओं से सिंचाई करने का तरीका बड़ा पुराना है और हाथ से खींचकर बैलों द्वारा, बाल्टों द्वारा, रहट द्वारा या तेल इंजनों के द्वारा पानी को निकाल कर नालियों द्वारा खेतों तक पहुँचाया जाता है। कुयें दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो शीघ्र सूख जाते हैं और दूसरे वे जो पाताल फोड़ कर बनाये जाते हैं और इसलिए उनमें पानी बराबर बना रहता है। इधर कुछ दिनों से ट्यूब वेलों का प्रचार बढ़ रहा है; परन्तु कुओं की सिंचाई में एक दोष भी है। इसके जल में उपज बढ़ाने के गुण नहीं होते। इसलिये किसान को खेत में खाद देना पड़ता है।

तालाब भूपटल पर अपने आप बने हुये या कृत्रिम तरीकों से बनाये गये गड्ढे हैं जिनमें वर्षा का पानी इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर सूखे मौसम में उससे सिंचाई करते हैं।

नहरें सिंचाई का सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं और इनमें या तो नदियों से पानी पहुँचाया जाता है या बाँध द्वारा बनाये गये जलाशयों से। नदियों से निकलने वाली नहरें दो प्रकार की होती हैं—(१) बाढ़ की नहरें जिनमें पानी तभी आता है जब नदियों का जल बाढ़ के कारण ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार की नहरें नील की घाटी में बहुत पायी जाती हैं। (२) सदा भरी रहने वाली नहरें उन नदियों से निकाली जाती हैं जिनमें पानी साल भर रहता है। उनके जल को बाँध द्वारा रोक लिया जाता है और फिर इस जल को नहरों व नालियों द्वारा खेतों तक पहुँचाया जाता है। भारत और संयुक्त राष्ट्र की नहरें इसी प्रकार की हैं। नहरें बनाने में खर्चा तो जरूर काफी होता है परन्तु साथ-साथ लाभ भी अनेक हैं—(१) जल सदैव मौजूद रहता है जब चाहे इस्तेमाल कर लिया, (२) नहरों में पानी नदियों से आता है और इस लिये उनमें खनिज नमक मिले रहते हैं जिससे भूमि की उर्वराशक्ति भी बढ़ती जाती है। (३) इसके सहारे बहुत सी बहुमूल्य व्यावसायिक फसलें उगाई जा सकती हैं जिन्हें केवल वर्षा के सहारे उगाना कदापि सम्भव नहीं है। (४) इसके द्वारा खेती काफी अधिक समय तक की जा सकती है और इसलिये कई फसलें उगाई जा सकती हैं। इसलिये नहरों द्वारा सिंचित भूमि पर सभी जगह जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक है।

सिंचाई के साधनों व धरातल की बनावट का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। पथरीली भूमि वाले पहाड़ी प्रदेशों में न नहरें ही खोदी जा सकती हैं और न कुयें ही बनाये जा सकते हैं। अतः वहाँ तालाब या झील से ही सिंचाई की जाती है। नहरों को बनाने के लिए समतल भूमि और साल भर बराबर लबालब भरे रहनेवाली नदियाँ चाहिये। संसार में सिंचाई की जाने वाली भूमि का विस्तार इस प्रकार है—भारत ५ करोड़ एकड़, संयुक्त राष्ट्र अमरीका दो करोड़ एकड़, रूस ८० लाख एकड़; जापान ७० लाख एकड़; मिश्र ६० लाख एकड़; मेक्सिको ५८ लाख एकड़ और इटली, ५० लाख एकड़। इस क्षेत्रफल के भविष्य में और बढ़ने की आशा है।

Irrigation agriculture (**सिंचित कृषि**) जहाँ सिंचाई के सहारे फसल उगाई जाती है तो उसे सिंचित कृषि कहते हैं। इस कृषि में काफी खर्च व परिश्रम करना पड़ता है। इसलिये इस प्रणाली द्वारा वे ही फसलें उगाई जाती हैं जो औद्योगिक या व्यावसायिक कच्चे माल के रूप में अधिक मुद्रालाभ करा सके। इस प्रकार की कृषि उष्णप्रदेशों के उन भागों में होती है, जहाँ वर्षा की ऋतु नियत होती है। इसी खेती प्रणाली के सहारे लाखों एकड़ भूमि जो अब तक बन्जर पड़ी हुई थी, खेती के काम आने लगी है। (देखिये **Irrigation**)

कभी-कभी सिंचित कृषि क्षेत्रों में जहाँ पानी के बहाव का ठीक प्रबन्ध नहीं होता वहाँ

की मिट्टी पर रेह और शोरा इकट्ठा हो जाता है। नमकीन मिट्टी की यह परत पौधे को उगने ही नहीं देती।

Isallobar (समभार परिवर्त्तन रेखा) ऋतु सम्बन्धी मानचित्र में समान कालान्तर में समान वायुभार परिवर्त्तन वाले स्थानों को मिलानेवाली रेखा को समभार परिवर्त्तन रेखा कहते हैं। एक ही स्थान पर होने वाले दो प्रकार के वायुभार आँकड़ों का अन्तर निकालकर वायुभार परिवर्त्तन ज्ञात कर लेते है और फिर उसे मानचित्र पर अंकित कर देते है। समभार परिवर्त्तन रेखा से चढ़ते और उतरते हुये वायुभार के प्रदेश का अलग-अलग पता चल जाता है।

Isallobaric Charts (समभार परिवर्त्तन चित्र) जब वायुभार का उतार-चढ़ाव तथा उसकी दिशा का ज्ञान कराने के लिये समभार परिवर्त्तन रेखाओं को खींचा जाता है तो उस ऋतु मानचित्र को समभार परिवर्त्तन चित्र कहते हैं। इसका उद्देश्य चढ़ते और उतरते हुये भार वाले प्रदेशों को स्पष्टतया दिखलाना होता है।

Isanomalous Line (ऋतु विभिन्नता प्रदर्शक रेखा) ऋतु सम्बन्धी तथ्य सब जगह एक समान तो नहीं होते परन्तु औसत के आधार पर उनका एक सामान्य स्तर निश्चित कर लिया जाता है। जिन जगहों पर इस निश्चित सामान्य स्तर से भिन्नता का अंश समान या बराबर होता है, उनसे होकर गुजरने वाली रेखा को ऋतु विभिन्नता प्रदर्शक रेखा कहते हैं। उदाहरण के लिये औसत तापक्रम से समान अधिकता वाले प्रदेशों से गुजरने वाली रेखा को देखने भर से यह पता चल जाता है कि किन जगहों पर समान अक्षांश पर ही बहुत अधिक गर्मी पड़ती है। इसी प्रकार जब तापक्रम औसत से कम होता है तो इस प्रकार की रेखा से अक्षांश की साधारण ऋतु की अपेक्षा काफी ठंडे प्रदेशों का पता चल जाता है। इन ऋतु-परिवर्त्तन प्रदर्शक रेखाओं के मानचित्र में अक्षांश व ऊँचाई के असर को छोड़ दिया जाता है और इस प्रकार ऋतु सम्बन्धी किसी तथ्य के विषय में एक अति साधारण स्थिति का पता चल जाता है जिसमें केवल जल और थल के वितरण, समुद्री धाराओं और प्रचलित वायु के असर पर ही ध्यान रक्खा जाता है।

Island (द्वीप) किसी महासागर, समुद्र, झील या नदी के बीच स्थित और चारों ओर से घिरे हुये भूखंड को द्वीप कहते है। आकार और विस्तार के अनुसार ये कई प्रकार के होते हैं। इनकी उत्पत्ति भी कई कारणों से हो सकती है जिनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं—(१) भूपटल की शक्तियों के कारण या तो समुद्र की तली जल से बाहर आ जाती है या समुद्र में जल की सतह के नीचे हो जाने से तली के कुछ भाग ऊपर निकल आते हैं या समुद्र के जल की सतह उठ जाने से तटीय मैदानों के भाग समुद्र के जल में निमग्न हो जाते हैं या भूमि का कुछ भाग धँस जाने से पानी भर आता है। इस प्रकार उमज्जन व निमज्जन के कारण जल के बीच स्थल भाग प्रकट हो जाता है या स्थल भाग के चारों ओर समुद्र भर आता है और द्वीपों की सृष्टि हो जाती है। इस प्रकार के द्वीप प्रायः तटों के समीप पाये जाते हैं और विशेष रूप से उन तटीय प्रदेशों में जहाँ नदी घाटियों के नीचे धँस जाने से रिआतट रेखा बन जाती है। इस प्रकार के प्रदेशों में निम्न घाटियाँ तो जल से भर जाती हैं पर उनके पार्श्व में पाये जाने वाले ऊँचे शिखर तट के समानान्तर द्वीप श्रृंखला बना लेते हैं। इसी प्रकार प्रायद्वीपों या समुद्र के बीच निकले हुये प्रदेशों के तीन ओर पानी तो रहता ही है, यदि किसी भौगर्भिक कारणवश चौथी तरफ वाला स्थलखंड

धँस जाय या अन्य प्रकार से जल निमग्न हो जाय तो द्वीप बन जाता है। (२) समुद्र की तली पर ज्वालामुखी उद्गार से बना शंकु धीरे-धीरे बढ़ता-बढ़ता इतना ऊँचा हो जाता है कि उसका शिखर द्वीप के रूप में बाहर निकल आता है। (३) समुद्र की लहरों या हिम नदियों के द्वारा आवरण क्षय होते रहने से तटीय प्रदेशों का कुछ भाग द्वीप के स्वरूप में बन जाता है। (४) शक्ति नष्ट हो जाने पर लहरों का कुछ जल तटरेखा की ओर बढ़ता है और अपने साथ लाई हुई मिट्टी, बालू आदि को तट के पास ही जमा कर देता है। इस प्रकार धीरे-धीरे तटरेखा के समानान्तर लम्बे व सँकरे टीले जल से उठ आकर द्वीप बना लेते हैं। ये द्वीप लम्बे और नीचे होते हैं। (५) कुछ समुद्रों में प्रवाल कीड़े पाये जाते हैं जिनका विस्तार बर्रें के छत्ते की तरह होता रहता है। मरे हुये कीड़ों के ढाँचों पर नवीन ढाँचा ऊपर की ओर बढ़ता जाता है। इस क्रम से मूँगे की चट्टान बन जाती है और धीरे-धीरे इतनी ऊँची हो जाती है कि भाटे की लहर आने पर जल से कुछ बाहर हो जाये। इन चट्टानों पर समुद्र की लहरें बालू, मिट्टी आदि बिछाती रहती हैं और इस प्रकार धीरे-धीरे स्थल का एक चबूतरा सा बन जाता है। इन्हें प्रवाल द्वीप कहते हैं। इसके अलावा उपर्युक्त कारणों में से दो या तीन कारणों के एक साथ क्रिया रूप होने से भी द्वीप बन जाते हैं। या यूँ कहा जा सकता है कि किसी विशेष द्वीप की उत्पत्ति का कारण ऊपर लिखे कारणों में दो या तीन एक साथ हो सकते हैं।

समुद्र में पाये जाने वाले द्वीपों को उनकी स्थिति तथा उत्पत्ति के अनुसार निम्नलिखित ४ प्रकार का कहा जाता है :—

(१) **महाद्वीपीय द्वीप** जो मुख्य स्थल खंड से कट कर अलग हो जाने से बनता है।

(२) **महासागरीय द्वीप** जो मुख्य स्थल खंड से स्वतंत्र सागर के बीच में उमज्जन या तली के उठने से बनता है।

(३) **ज्वालामुखी द्वीप** वह है जो ज्वालामुखी उद्गार या निक्षेप से बना हो।

(४) **प्रबाल द्वीप** वे हैं जो मूँगे के कीड़ों के जमा होते रहने से बन जाते हैं।

इन विभिन्न प्रकार के द्वीपों का आकार व विस्तार भूगर्भ व प्राकृतिक शक्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया के अनुसार बनता-बिगड़ता रहता है।

Islet (द्वीपांश) विस्तार में छोटे द्वीप को द्वीपांश कहते हैं।

Isobar (समभार रेखा) मानचित्र पर समान वायु भार वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समवायुभार रेखा कहते हैं। वायुभार के आँकड़ों को एक दूसरे के साथ तुलना कर के अध्ययन कर सकें, इसलिये समवायु भार रेखा को बनाने से पहिले वायुभार के सामान्य आँकड़ों को समुद्र-तल के अनुसार घटा लेते हैं। जलवायु के अध्ययन में इन रेखाओं का बड़ा महत्व है। एक निश्चित कालान्तर के अन्दर एक विशेष प्रदेश में या सम्पूर्ण संसार में औसत वायुभार का वितरण दिखलाने के लिए समवायुभार रेखायें खींची जाती हैं। ऋतुसम्बंधी मानचित्रों में भी इन रेखाओं को इसलिए खींचा जाता है ताकि किसी विशेष दिन में किसी विशेष समय पर वायुभार दशा का पता लग जाय। यही कारण है कि इन रेखाओं को एक निश्चित अन्तर पर खींचा जाता है।
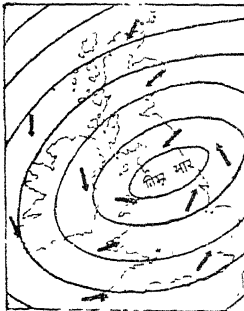
समभार रेखा

समवायुभार दर्शक रेखाओं की आकृति व व्यवस्था के

अनेक भेद हैं। (१) गोलाकार या अण्डाकार भार रेखा व्यवस्था से चक्रवात व विपरीत चक्रवातीय दशायें उत्पन्न होती हैं (देखिये **Cyclone Anti Cyclone**)

(२) **घाटी आकार या V आकार**—इसमें प्रायः वही दशायें रहती हैं जो चक्रवात के आने पर होती हैं और क्षण-क्षण पर मौसम बदलता रहता है।

(३) **उल्टी नाँदाकार**—इसमें अग्र भाग का मौसम भी साफ रहता है परन्तु पीछे के हिस्से में काफी मेघ रहते हैं।

(४) **घोड़े की काठी के आकार**—दो चक्रवात और दो विपरीत चक्रवात के बीच की समभार दर्शक रेखा व्यवस्था घोड़े की काठी की तरह होती हैं और यहाँ का मौसम परिवर्त्तनशील होता है।

Isobaric Gradient (वायुभार का विस्तार) वायुभार के क्रमशः घटने या बढ़ने की दर को वायुभार विस्तार कहते हैं। वायुभार विस्तार कम या ज्यादा हो सकता है और इसी के अनुसार वायु की गति निश्चित हो जाती है। जब वायुभार विस्तार अधिक होगा तो हवा तेज बहेगी और इसके विपरीत जब वायुभार विस्तार कम या क्रमशः होगा तो हवा भी मन्द व धीमी रहेगी।

Isobath (सम गहराई रेखा) जलमण्डल के मानचित्र में समुद्र की तली के समान गहराई वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को सम गहराई रेखा कहते हैं। इस प्रकार की रेखायें समुद्र की गहराई के विषय में वही काम करती हैं जो भूमि की ऊँचाई के विषय में समोच्चभूमि रेखायें करती हैं। इनके द्वारा हमें समुद्रतल की प्राकृतिक बनावट का पता चल जाता है। हम जान जाते हैं कि कहाँ पर गर्त है तो कहाँ ऊँचे सपाट टीले।

Isoclinal Folding (समदिशा मोड़) धरातल पर भिंचाव उत्पन्न होने से नरम चट्टान मुड़ जाती है। इन चट्टानों का एक भाग मेहराब की तरह ऊँचा उठ जाता है और दूसरा घाटी की तरह नीचे को धँस जाता है। चट्टानों के स्वभाव, भिंचाव या दबाव की दिशा तथा मध्य पिण्ड (जिसके खिलाफ दबाव पड़ने से धरातल सिकुड़ने लगता है) की स्थिति के अनुसार इन उभ्रंगों का आकार विभिन्न प्रकार का हो जाता है। मोड़ पड़ने में कभी-कभी ऐसा होता है कि दोनों पार्श्व एक ही दिशा में काफी झुक जाते हैं और उनका आकार हाथ की उँगली की तरह हो जाता है। दोनों पार्श्व एक दूसरे के समानान्तर से प्रतीत होने लगते हैं। इस प्रकार के मोड़ को सम दिशा मोड़ कहते हैं। कभी-कभी इसे उल्टा हुआ मोड़ भी कहते हैं।

Isogonic line (समझुकाव रेखा) मानचित्र पर समान चुम्बकीय झुकाव वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को आइसोजनिक रेखा कहते हैं। इस रेखा को बनाने से पहिले चुम्बकीय उत्तर से होकर जाने वाली देशान्तर और सच्चे उत्तर से गुजरने वाली देशान्तर से बनानेवाले कोण का पता लगाते हैं और फिर जिन-जिन स्थानों पर इस प्रकार बननेवाले कोण बराबर होते हैं उन्हें एक रेखा द्वारा मिला देते हैं। (देखिये **Declination Magnetic**)

Isohaline (समक्षार रेखा) जलमंडल के मानचित्र पर महासागरों में समान रूप से खारे भागों को मिलानेवाली रेखा को समक्षारदर्शक रेखा कहते हैं। वैसे तो समुद्रतल के १००० भाग में नमक के भाग का मध्यम मान ३५ रहता है परन्तु खारेपन का अंश सागर की स्थितिनदियों के मिलाने तथा वाष्पीकरण की मात्रा के अनुसार अलग-अलग जगह भिन्न होता है। महासागर के कुछ भाग अन्य भागों की अपेक्षा अधिक खारे होते हैं। लालसागर में खारापन ४० प्रतिसहस्र से भी अधिक है और ध्रुवीय सागरों में प्रायः ३० प्रति-

सहस्र होता है। सम क्षार दर्शक रेखाओं से समुद्री जल में खारेपन का वितरण स्पष्ट हो जाता है।

Isohel (समप्रकाश रेखा) सूर्य का प्रकाश कहीं कम और कहीं ज्यादा पहुँच पाता है। अन्य बातों को अलग कर देने पर सूर्य के प्रकाश की मात्रा दिन की लम्बाई पर निर्भर रहती है जब कि सूर्य चमकता रहता है। दूसरे शब्दों में इसे सूर्य निकलने से सूर्य छिपने तक का काल कह सकते हैं। यह अवधि भूमध्यरेखा की दूरी के साथ बढ़ता जाता है। जिन स्थानों पर सूर्य प्रकाश की यह अवधि बराबर या एक सी है उनको मानचित्र पर मिलाने वाली रेखा समसूर्य प्रकाश रेखा कहलाती है और इसके द्वारा भूमंडल पर दिन की अधिकतम अवधि के बढ़ाव-घटाव का ज्ञान होता है।

Isohyet (समवृष्टि रेखा) किसी भी वृष्टि के मानचित्र में समान जलवृद्धि वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समवृष्टि रेखा कहते हैं। इन रेखाओं से धरातल पर वर्षा के वितरण का ज्ञान एक ही निगाह में किया जा सकता है परन्तु मानचित्र पर इन्हें बनाने के पहिले वृष्टि के मासिक और मध्यम मान चिन्ह लगा लेते हैं।

Isolated mountain (एकाकी पर्वत) (१) पर्वतों के विकास और वृद्धि का कोई निश्चित नियम नहीं है। पर्वत बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं और पर्वत निर्माणकारी विभिन्न गतियों के बीच अक्सर काफी शान्त समय पड़ा रहता है। पर्वतों के बनते ही उन पर आवरणक्षय की शक्तियाँ प्रहार करना शुरू कर देती हैं और सब ओर की मुलायम चट्टानों की परत को काट-छाँट कर एक ऐसे स्तर पर पहुँच जाती हैं जहाँ और आगे काटना संभव नहीं होता। इस प्रकार की कठोर चट्टानों से बने पर्वतों को एकाकी पर्वत कहते हैं। कभी-कभी इनको जड़वाले पर्वत भी कहते हैं। (देखिये Drong Mountains)

(२) कभी-कभी पार्श्व के खिचाव के कारण पर्वत प्रदेश में दरारों की एक क्रमिक पंक्ति सी बन जाती है जिस से पर्वत इधर या उधर एक निश्चित दिशा में खिसक कर झुक जाते हैं। इस प्रकार से पर्वतों के बीच काफी जगह छूटी रह जाती है। इस प्रकार के दूरस्थ पर्वत शिखरों को भी एकाकी पर्वत कहते हैं।

Isoneph (सममेघरेखा) एक समय में मेघाच्छन्नता के समान औसत मान वाले सभी स्थानों से गुजरनेवाली रेखा को सममेघ रेखा कहते हैं। इसके द्वारा मेघाच्छन्नता के मध्यमान का वितरण एक ही निगाह में स्पष्ट हो जाता है।

Isopleths (सम रेखायें) समान मात्रा, तीव्रता और घनत्व को दिखलाने वाली रेखाओं को सम रेखायें कहते हैं। इनके द्वारा किसी भौगोलिक तथ्य का धरातल पर वितरण दिखलाया जाता है। ये उसी प्रकार खींची जाती हैं जैसे समोच्च भूमिदर्शक रेखायें और इनके बीच का अन्तर पहिले से ही निश्चित कर लिया जाता है। विभिन्न सम रेखाओं के बीच का अन्तर तथ्य विशेष के परिवर्त्तन की दर को स्पष्ट करता है। प्रत्येक समरेखा को उसकी मात्रा या संख्या के अनुसार नाम दे देते हैं। सम रेखाओं का प्रयोग वितरण मानचित्रों में किया जाता है और इनका बनाना निम्नलिखित दो बातों पर निर्भर रहता है—(१) सूचना या उपलब्ध आँकड़ों की राशि व मात्रा, (२) अन्तरिम पेटी का विस्तार। यदि विस्तृत आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं तो सम रेखायें नहीं बनाई जा सकतीं और यदि बनाई भी जायँगी तो उनसे तथ्यों का अति सामान्य अथवा अति झूठा चित्र प्राप्त हो सकेगा। दूसरे जब अन्तरिम पेटी का विस्तार अधिक नहीं होता यानी तथ्य जगह-जगह पर भिन्न होते जाते हैं जैसे जनसंख्या के वितरण में तो इन समरेखाओं को बनाया ही नहीं जा सकता। यही कारण है कि सम रेखाओं का प्रयोग केवल उन्हीं तथ्यों के वितरण दिखलाने में करते हैं जिनका वितरण

बहुत कुछ निश्चित होता है। समताप सम भार और समवृष्टि रेखायें इस दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण हैं। अनुपात और प्रतिशत दिखलाने वाले मानचित्रों में भी समरेखायें खींची जाती हैं।

Isoseismal line (सम कम्पन विनाश रेखा) किसी भूकम्प के आने पर उसका प्रकोप व वेग किन्हीं स्थानों पर अधिक और किन्हीं स्थानों पर कम होता है। समान वेग और प्रकोप वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा सम कम्पन विनाशरेखा कहलाती है। इन रेखाओं के मध्य का विन्दु भूकम्पकेन्द्र होता है और ये रेखायें उसके चारों ओर वृत बनाती हुई स्थित रहती हैं। अक्सर ये रेखायें बड़ी टेढ़ी रहती हैं। इसका कारण यह है कि भूकम्प से होनेवाली हानि का विस्तार बहुत कुछ इस बात पर निर्भर रहता है कि इमारतों की नींव किस पर रक्खी हुई है और वे स्थान उत्पत्ति के स्थान से कितनी दूर हैं। अगर बहुत सी सम-कम्पन विनाश रेखायें खींची जायें तो यह सम्भव है कि भूकम्प केंद्र की स्थिति का पता लग जाय।

Isostasy (समतुलन) धरातल पर पाये जाने वाले पर्वत खंडों और मैदानों के बीच की समस्थिति को समतुलन कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि धरातल के पर्वतखंड हल्की चट्टानों के बने हैं और उसकी अपेक्षा मैदानी भागों की मिट्टी व चट्टान कहीं अधिक भारी है। इसी कारण के आधार पर विद्वानों का मत है कि स्थानीय संतुलन को ठीक रखने के लिए मोड़दार पर्वतों में ऊँची उठने वाली मोड़ का आठगुना नीचे की ओर धँसना चाहिए। इस प्रकार धरातल पर मोड़ उत्पन्न होते समय भूमि का ऊँचा उठना और नीचे धँसना समतुलन द्वारा ही नियन्त्रित होगा और फलतः नीचे धँसनेवाला भाग मीलों की गहराई तक पहुँच जाता है। परन्तु इस प्रकार यह केवल नरम भाग का ही स्थानीय संतुलन होता है और उसमें जोड़ या घर्रे पड़ जाते हैं। मुड़ावकार्य के समाप्त हो जाने पर प्रादेशिक संतुलन अपना प्रभाव दिखलाता है। मुड़ते समय खिंचाव के कारण वह भाग कुछ छोटा भी हो जाता है। इसलिये प्रादेशिक संतुलन के प्रभाव से समस्त पर्वतीय क्षेत्र ऊँचा उठता है।

इसी समतुलन सिद्धान्त के अनुसार महाद्वीपीय चबूतरे या स्थल खंड हल्की चट्टानों के बने हैं और समुद्र की तलैटी से कुछ ऊपर तैर रहे हैं। और फिर भूपटल के उच्च भागों की धरती से घिस-घिस कर पदार्थ निचले भागों में इकट्ठा होते रहते हैं। फलतः सन्तुलन को ठीक रखने के लिए लम्बवत् भूखंड नीचे ऊपर की तरफ बैठ या उठ जाता है। यदि एक ओर जल में निमग्न हो जाने से भूमि का लोप हो जाता है तो दूसरी ओर जल से बाहर निकल आने से नई भूखंड का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस प्रकार भूपटल के विभिन्न भागों में उमज्जन व निमज्जन का चक्र इसीलिए चला करता है कि सन्तुलन विगड़ने न पाये।

Isotherm (समताप रेखा) समताप रेखा वह कल्पित रेखा है जो एक ही समय सभी समान तापक्रम वाले स्थानों पर से खिंची हुई मान ली गई है। ऊँचाई के साथ तापक्रम में अन्तर होता जाता है। इसलिये समताप रेखायें बनाते समय ऊँचे स्थानों को समुद्रतल के समान कर लेते हैं। अतः समताप रेखा वह कल्पित रेखा है जो उन स्थानों पर से होकर जाती है जिनका तापक्रम समान होता और जिनकी स्थिति का अनुमान समुद्रतल पर कर लिया जाता है। भूगोल में सबसे महत्वपूर्ण तापरेखायें वे हैं जो किसी स्थान के दैनिक, मासिक तथा वार्षिक तापांश के मध्यम मान के लिए खींची जाती हैं। और इनमें भी सबसे आवश्यक समताप रेखायें जनवरी और जूलाई की हैं। इनके द्वारा जाड़े और गर्मी के मौसम का औसत तापक्रम स्पष्ट हो जाता है। इनके अलावा दैनिक अधिक तापांश और निम्न तापांश के मध्यम मान को स्पष्ट करने वाली समताप रेखाओं का स्थान आता है।

समताप रेखाओं के विषय में निम्नलिखित बातें विशेष रूप से ध्यानदेने योग्य हैं :—

(१) समताप रेखायें किसी स्थान का औसत तापक्रम दिखलाती हैं।

(२) ये रेखायें किसी स्थान पर समुद्रतल का ताप प्रदर्शित करती हैं।।

(३) समताप रेखायें प्रायः पूर्व से पश्चिम की ओर खिंची हुई रहती हैं क्योंकि धरातल पर तापक्रम का वितरण सूर्यताप के अनुसार अक्षांशों के अनुरूप ही घटता-बढ़ता है।

(४) वैसे तो समताप रेखायें प्रायः पूर्व से पश्चिम की ओर सीधी खिंची रहती हैं परन्तु जहाँ स्थल और जल की सीमायें मिलती हैं वहाँ इनका रूप विकृत हो जाता है। जब ये रेखायें महाद्वीपों से समुद्र की ओर जाती हैं तो गरमी में भूमध्य रेखा की ओर और जाड़ों में ध्रुवों की ओर मुड़ जाती हैं। जलधाराओं से भी इन रेखाओं के मोड़ में परिवर्तन आ जाता है।

(५) ये रेखायें दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा अधिक नियमित व सीधी रहती हैं। इसका कारण यह है कि उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल भाग अधिक हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में जलभाग। अस्तु यह स्पष्ट हुआ कि स्थल भाग की अपेक्षा जल भाग पर ये रेखायें अधिक नियमित व सीधी रहती हैं।

Isthmus (स्थल डमरूमध्य) दो विस्तृत और विशाल स्थलखंडों को सम्बद्ध करने वाली स्थल की पतली पट्टी स्थल डमरूमध्य कहलाती है। एक स्थल डमरूमध्य या तो दो महाद्वीपों को आपस में जोड़ता है या मुख्य स्थल खंड से किसी प्रायद्वीप को मिलाता है। यह इसके अलावा और भी काम करता है। यानी दो जल भागों को एक दूसरे से अलग करता है। उदाहरण के लिये पनामा और स्वेज के स्थल डमरूमध्य को लिया जा सकता है। पनामा स्थलडमरूमध्य उत्तरी व दक्षिणी अमरीका महाद्वीपों को मिलाता है और अटलांटिक व प्रशांत महासागरों को एक दूसरे से अलग करता है। इसी प्रकार स्वेज का स्थल डमरूमध्य अफ्रीका व यूरेशिया महाद्वीपों को सम्बद्ध करता है तथा भूमध्य व लाल सागरों को एक एक दूसरे से अलग करता है। इस दुहरे कार्य के कारण वर्त्तमान राजनीतिक भूगोल में इन सँकरे प्रदेशों का बड़ा महत्व है और इसीलिये हर कोई राष्ट्र उन पर आधिपत्य रखना चाहता है। महासागरीय यातायात के विकास और उन्नति से इन प्रदेशों के बीच नाव्य जहाजी नहरों को काट दिया गया है। इस प्रकार जब स्थलीय यातायात का बोलबाला था उस समय ये सँकरे प्रदेश गमनागमन के केन्द्र थे और आज महासागरीय यातायात के युग में भी नहरों के कट जाने से इनकी महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थिति बनी रही है। संसार के व्यापार और सैनिक नियंत्रण में इन स्थलडमरूमध्यों का अपना एक अद्भुत स्थान है।

Jean's Theory (जीन्स का सिद्धान्त) पृथ्वी व ग्रह मंडल की उत्पत्ति के विषय में आजकल सर्वमान्य सिद्धान्त जेम्स जीन महोदय का है। इसके अनुसार प्रारंभ में सूर्य गैस का एक बड़ा गोला था और लाखों अरबों वर्ष पहिले ऐसा हुआ कि इसके समीप इसकी अपेक्षा कई गुना बड़ा तारा आने लगा। इस विशाल तारे के आकर्षण से गैस के गोले या सूर्य में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगीं और वस्तुतः एक ज्वार आ गया। इस ज्वार की ऊँचाई और आकार तारे के समीप बढ़ते रहने के साथ-साथ अधिक होती गई। फल यह हुआ कि इस विशाल तारे ने सूर्य के उभाड़ का एक अंश अपनी ओर खींच लिया। परन्तु जब तारा वापस लौटा तो सूर्य से टूटा ज्वार भाग पीछे ही रह गया। जब तारा काफी दूर निकल गया तो इस टूटे ज्वार भाग पर सूर्य की आकर्षण शक्ति फिर कारगर हुई और उसी के फलस्वरूप यह सूरज के चारों ओर नाचने लगा। इसमें छिटक कर कई टुकड़े अलग हो गये और धीरे-धीरे ठंडा होने पर विभिन्न ग्रह बन गये।

इस सिद्धान्त की पुष्टि निम्नलिखित तीन बातों से होती है :—

(१) सूर्य में उत्पन्न ज्वार का आकार सिगार की तरह मध्य में मोटा और दोनों सिरों पर पतला रहा होगा जैसा कि वर्त्तमान सौरमण्डल से पुष्ट होता है। सौर मण्डल में ग्रहों की व्यवस्था इस प्रकार है कि इसके दोनों सिरों पर छोटे ग्रह हैं और बीच में बड़े आकार वाले ग्रह।

(२) उपग्रहों की व्यवस्था भी इसी आकार व बात की पुष्टि करती है।

(३) बड़े ग्रह अधिक समय तक गैसवाली दशा में रहे होंगे। इसीलिये उनके उपग्रह तो अधिक संख्या में बने पर उनका आकार बड़ा नहीं हो पाया। बड़े ग्रहों के आसपास वाले ग्रहों के उपग्रह कम तो जरूर बने पर उनका आकार बड़ा था। यह व्यवस्था व तरतीब भी ज्वारवाले सिद्धान्त की पुष्टि करती है।

कभी-कभी इस सिद्धान्त को ज्वारवाला सिद्धान्त भी कहते हैं।

Jean's & Jeffery's Theory (जीन्स जेफ्रे का सिद्धान्त) यह सिद्धान्त जीन्स के सिद्धान्त का परिवर्तित रूप है। इसके अनुसार सूर्य, जो कि गैस का एक बड़ा गोला था और जिसके चारों ओर ग्रहों की उत्पत्ति नहीं हुई थी, शून्य में चल रहा था। शून्य के मध्य सूर्य की इस यात्रा के दोरान में एक दूसरा तारा उसके बहुत समीप आ गया। फलतः दोनों में टक्कर हुई और टक्कर के बाद वे दोनों फिर से दूर भाग गये। परन्तु इस टक्कर और दौड़ से उत्पन्न आकर्षण व रगड़ से कुछ भाग सूर्य के इधर-उधर फिरकी के हत्थे की तरह छिटक गये। इस प्रकार के फिरकीनुमा निकला हुआ भाग सूर्य के दोनों तरफ था और जब वे ठंडे हुये तो उन्हीं से ग्रहों का निर्माण हो गया।

ठंडे होने पर फिरकीनुमा नाचते हुये हत्थों से ग्रहों और उपग्रहों का जन्म हुआ।

इस सिद्धान्त को 'टक्कर और दौड़' या केवल 'टक्कर' का सिद्धान्त कहते हैं।

Jetty (अवतरणी) समुद्र के तट पर या नदी के तट पर जहाज या नौका से उतरने चढ़ने के स्थान को अवतरणी कहते हैं। यह प्रायः तट से समुद्र के अन्दर की ओर लम्बरूप स्थित रहती है और इसके अग्र भाग या पार्श्व में जहाज पर नौकाओं के रुकने का स्थान होता है। अवतरणी प्रायः दो प्रकार की होती है—(१) पक्की और (२) खुली राशिमय। प्रायः पक्की अवतरणी अधिक महत्वपूर्ण होती है। चाहे पक्की हो या खुली राशिमय यातायात व्यवस्था के अनुसार इसके निम्नलिखित तीन भेद हो सकते हैं—(१) रूढ़, (२) सड़कवाली और (३) रेलवाली। वर्त्तमान युग में सामान लादने-उतारने की अवतरणी तो सड़कवाली या रेलवाली होती है। इसके विपरीत मुसाफिरों के चढ़ने-उतरने की अवतरणी प्रायः रूढ़ ही होती है।

Joint (जोड़) चट्टानों के ठंडे होकर ठोस बनने या परत चट्टानों के सूख जाने पर चट्टानें सिकुड़ती हैं और फलतः धरातल पर तनाव उत्पन्न हो जाता है। जब तनाव या खिंचाव का जोर अधिक होता है तो किसी कमजोर जगह से चट्टानें चटक जाती हैं। ऐसा तनाव धरातल पर इतनी बार पड़ चुका है कि सभी ऊपरी चट्टानें जगह-जगह से चिटक गई हैं। चट्टानों के इस चटके हुये स्थान को जोड़ कहते हैं। जोड़ के इधर-उधर चट्टान खंड बिलकुल भी नहीं खिसकता बल्कि वैसा ही बना रहता है। चट्टानों में ये चिटकनें ऊपर की ओर अधिक परन्तु नीचे की ओर कम होती जाती हैं।

जहाँ की चट्टानों पर आवरण क्षय और विखण्डन के प्राकृतिक साधनों का असर व क्रिया होती रहती है वहाँ पर इन जोड़ों का बड़ा महत्व है। ये जोड़ अन्य भागों की अपेक्षा कमजोर होते हैं और फलतः इन पर प्राकृतिक शक्तियों द्वारा आवरण क्षय सबसे प्रखर होता है।

जोड़ों की स्थिति के अनुसार ही चट्टान खंड या उर्ध्व बन जाते हैं। इन्हीं जोड़ों पर मौसम की शक्तियों द्वारा विखंडन भी अपना असर दिखलाता है।

विभिन्न प्रकार की चट्टानों में ये जोड़ अलग-अलग प्रकार व दिशा में होते हैं। कुछ चट्टानों में जोड़ परतों के समानान्तर हैं तो कुछ में धरातल के लम्बरूप और कुछ आग्नेय चट्टानों में जोड़ पर से तोड़ने पर छः भुजाओंवाला खम्भा बना रह जाता है। चट्टानों के ये जोड़ उनके कमजोर व प्रवेश्य स्थल होते हैं। इनमें से होकर बहता हुआ जल अन्दर प्रवेश कर जाता है। इन्हीं जोड़ों पर जल में घुलने वाली क्रिया, रसायनिक परिवर्त्तन तथा पाले से विखंडन भी होता रहता है। जब जोड़वाली चट्टानों पर से हिम नदियाँ प्रवाहित होती हैं तो इन्हीं जोड़ों पर से वे चट्टानों के टुकड़े नोच लेते हैं वहाँ पर गड्डे बन जाते हैं। इस प्रकार आवरण क्षय विखंडन से होने वाले भूतल के परिवर्तनों में जोड़ों का बड़ा महत्व है।

Joint plane (जोड़ रेखा) बहुत-सी चट्टानें अन्य दिशाओं की अपेक्षा किसी विशेष दिशा में ही अधिक आसानी से टूट पाती हैं। टूटने या खंडित होने वाली इस रेखा को जोड़ रेखा कहते हैं और साधारणतया जोड़ों की क्रमिक पंक्ति से ही महान् जोड़ रेखा बन जाती है। साधारणतया सभी चट्टानों में दो प्रकार की जोड़ रेखायें पाई जाती हैं। ये दोनों ही जोड़ रेखायें पृथ्वी के धरातल पर लम्बरूप रहती हैं और एक दूसरे के साथ भी समकोण बनाती हैं। जोड़ों की इस दुहरी रेखा को शक्तिवान जोड़ कहते हैं। परतदार चट्टानों में एक जोड़रेखा तो परतों की तीव्रतम ढाल के समानान्तर होती है और दूसरी जोड़ रेखा तीव्रतम ढाल पर समकोण बनाने वाली काल्पनिक रेखा के समानान्तर रहती है। इनके अलावा एक और जोड़ रेखा होती है जो चट्टानों के प्रस्तरीकरण के समानान्तर रहती है और यह उन चट्टानों में पाई जाती है जो भारी दबाव में पड़ी रही है। इस तीसरे प्रकार की जोड़ रेखा को फटन रेखा भी कहते हैं और इसके सहारे चट्टानों को पतली-पतली परत या तह में तोड़ा जा सकता है।

आग्नेय चट्टानों में ठंडे होकर सिकुड़ने से जोड़ बनते हैं। इसलिये इनमें जोड़रेखा स्तम्भ रूप पाई जाती है। बसाल्ट चट्टान अक्सर छः भुजाओंवाले स्तम्भ के रूप में टूटती है और कभी-कभी इन स्तम्भों के आरपार भी जोड़ों की पंक्ति पाई जाती है। इस प्रकार आग्नेय चट्टानों की जोड़ रेखा अनिश्चित व परिवर्त्तनशील होती है।

Jungle (जंगल) खेती के लिये अयोग्य घनी प्राकृतिक बनस्पति तथा घास-फूस से घिरा हुआ प्रदेश जंगल कहलाता है। यह पारिभाषिक शब्द प्रायः मानसून प्रदेशों के वनों के लिये प्रयोग किया जाता है।

Kame (केम) हिमनदी के अग्रभाग से बहुधा जलधारा बह निकलती है जिससे मिट्टी कंकड़ और बालू का निक्षेप फैल जाता है। हिमनदी के अग्र भाग के किनारे के विभिन्न भागों के बीच में जलधारा से बने निक्षेप काफी बड़े होते हैं और उनका आकार टीलों जैसा होता है। इन टीलों को केम कहते हैं और ये कई प्रकार की कंकड़-मिट्टी से बने होते हैं। इनका सम्बन्ध मोरेन से नहीं होता और ये हिमनदी के नीचे-नीचे बन जाते हैं।

Karaburan (काराबूरन) सिनक्यांग के तारिम बैसिन में बहने वाली गर्म स्थानीय वायु को काराबूरन कहते हैं। यह वायु उत्तर-पूर्व से प्रवाहित होती है और वसन्त ऋतु के शुरू में जब एशिया महाद्वीप का अन्दरूनी भाग काफी गर्म हो जाता है तो यह वायु चलने लगती है। यह हवा गर्मी के अन्त तक बहती रहती है और इसका प्रकोप दिन में काफी रहता है। यह बड़ी प्रचण्ड और तीव्र गति से बहती है। कभी-कभी तो इसका वेग तूफान या समुद्री आँधी जैसा होता है। इसके चलने पर रेगिस्तान में धूल के बादल उठने

लगते हैं और वायुमण्डल बिल्कुल अँधेरा हो जाता है । इस प्रकार इस वायु के प्रवाहित होने पर बड़ी ही परेशानी होती है । इसके द्वारा उड़ाई हुई मोटी बालू तो अधिक दूर तक नहीं ले जाई जाती और रेगिस्तान में ही रह जाती है परन्तु बालू और धूल के महीन कण बहुत दूर तक उड़ाये ले जाते हैं और उनके कारण धुँधलापन छा जाता है । इस प्रकार उड़ा कर लाये हुये धूल के कणों का विशाल निक्षेप उत्तरी चीन में पाया जाता है और इसे लोएस कहते हैं । काराबूरन के द्वारा उड़ाकर लायी हुई बालू और धूल से इस प्रदेश में बहने वाली नदियों में अक्सर मार्ग परिवर्त्तन हो जाया करते हैं ।

Karez (करेज) जिन प्रदेशों में गर्मी बहुत पड़ती है तथा जहाँ की भूमि ऊँची नीची तथा पथरीली है, वहाँ सिंचाई के लिए एक विशेष प्रकार की प्रणाली काम में लाई जाती है । वहाँ वर्षा का पानी चट्टानों के नीचे एक पातालीय तालाब में इकट्ठा कर लिया जाता है । और फिर इससे निकाली जाने वाली नहरों को इस प्रकार बनाते हैं कि वे खुली न रहें क्योंकि खुली नहरों का पानी अत्यधिक वाष्पीकरण द्वारा भाप बन कर उड़ जाता है । इससे जल की सुरक्षा करने के लिए दो उपायों को प्रयोग में लाते हैं—(१) बलूचिस्तान में नहरें पृथ्वी के अन्दर-अन्दर बनायी जाती हैं और (२) ईरान में इन नहरों को ऊपर चट्टान या अन्य प्रकार से पाट दिया जाता है । इस प्रकार की सिंचाई व्यवस्था को करेज कहते हैं ।

Karren (कारेन) यह जर्मन भाषा का पारिभाषिक शब्द है और उन चूने की चट्टानों के लिए प्रयोग किया जाता है जो भूगर्भवर्ती जल में या वर्षा के जल में घुल कर बिखंडित हो जाती है । कार्बन डाइ आक्साइड मिला हुआ वर्षा का जल चूने को बड़ी जल्दी घुला डालता है और चूने की चट्टानों में जोड़ों के जरिये बहता हुआ यह जल इन चट्टानों में सुरंगों या नालियों का एक जाल-सा बिछा देता है । इन नालियों के बीच चूने के पत्थर के खंड उठे रहते हैं । नालियों के बीच स्थित इन खंडों को कारेन कहते हैं । फ्रांसीसी भाषा में इन्हें लापीज़ कहते हैं ।

Karrenfeld (कारेन क्षेत्र) चूने के पत्थर से बने भूभाग में कार्बन डाइ आक्साइड मिले वर्षा के जल के असर से चूने की चट्टानों के जोड़ घुल जाते हैं और नालियाँ बन जाती हैं । नालियों के बीच चूने की चट्टानों की अवशेष श्रेणियाँ, जिन्हें कारेन कहते हैं, फैली दिखलाई देती हैं । इस प्रकार के कटे-फटे चूने की चट्टान वाले प्रदेश को कारेन क्षेत्र कहते हैं । दूर से देखने में यह क्षेत्र ठीक उसी प्रकार दीख पड़ता है जैसा कि उस हिम नदी की सतह जो सूर्य की गर्मी से पिघलकर तड़क गई हो । इस कारेन क्षेत्र को पार करना करीब-करीब नामुमकिन होता है ।

Karst Region (कार्स्ट प्रदेश) संसार के जिन भागों में भूपटल चूने की चट्टानों से बने हैं वहाँ पर जलप्रवाह व्यवस्था भूमि के नीचे-नीचे पाई जाती है और फलतः ऊपर की सतह सूखी और ऊसर पड़ी रहती है । इस प्रकार के प्रदेशों को कार्स्ट प्रदेश कहते हैं । इसका नाम यूगोस्लाविया के एडरियाटिक तट पर स्थित दिनारिक आल्पस श्रेणी के मध्य पाये जाने वाले कार्स्ट मैदान के नाम पर पड़ गया है ।

इस प्रकार के मैदानों में सतह का वर्षावाला जल धरातल के नीचे पहुँच कर उन चट्टानों को घुलाता रहता है । इस घुलन क्रिया से विभिन्न प्रकार के मैदान बन जाते हैं जिन्हें कार्स्ट मैदान कहते हैं । कारबन डाइआक्साइड मिला हुआ जल इन चट्टानों के जोड़ों से होकर अन्दर जाता है और उसकी घुलन क्रिया से धीरे-धीरे भूमि खोखली हो जाती है और धरातल के धँस जाने से बड़े-बड़े गड्ढे बन जाते हैं । यदि खोखले स्थान की ऊपरी चट्टान कठोर व मोटी है तो वह धँस नहीं पाती बल्कि नीचे के खोखले स्थान की लम्बाई-चौड़ाई बढ़ती जाती है

और कालान्तर में बड़ी-बड़ी कन्दरायें बन जाती हैं। जब कभी इन कन्दराओं की छतें टूट जाती हैं तो बहुत बड़ा गड्डा बन जाता है। इन गड्डों पर छत का बचा हुआ भाग प्राकृतिक पुल बनाता है।

कार्स्ट प्रदेशों में धरातल पर घाटियाँ नहीं होतीं। कहीं-कहीं पर पास के क्षेत्रों से बहकर आनेवाली नदियों की घाटियाँ बनी होती हैं। कुछ छोटी-छोटी नदियाँ व नाले थोड़ी दूर तक सतह पर बहने के बाद एकाएक किसी गर्त में विलीन हो जाते हैं और जलधारायें भूमि के नीचे स्थित कन्दराओं से होकर बहने लगता है। इस प्रकार नदियाँ प्रायः छिपी ही रहती हैं। हाँ कन्दरा की छत टूट जाने से जब बड़े-बड़े गड्ढे बन जाते हैं तो उनमें नदी का जल दिखलाई पड़ने लगता है। कार्स्ट प्रदेश से जाने वाले पैदल यात्री को कभी-कभी बड़े गहरे गड्ढे दिखलाई देते हैं और कुएँ के तरह के इन छेदों में झाँक कर देखने पर सैकड़ों फीट की गहराई पर बड़ी नदी बहती हुई दिखलाई पड़ती है जो एक तरफ की दीवाल से निकलती है और दूसरी ओर की दीवाल में गायब हो जाती है। कभी-कभी ये गड्ढे सैकड़ों वर्ग मील के क्षेत्रफल में फैले होते हैं।

इन गड्ढों और गर्त के बीच का भूभाग ऊबड़-खाबड़ तथा कटा-फटा होता है जोकि प्रायः ऊसर पड़ा रहता है। इन पर ऊपरी सतह पर मिट्टी की हल्की तह पायी जाती है। चूने की चट्टानों में से चूने का अंश तो पानी में घुल कर बह जाता है और केवल अघुलनशील पदार्थ की हल्की तह बिछी रह जाती है। इस प्रकार भूमि कम गहरी और नग्न पाई जाती है। हाँ घाटियों में भूमि की मोटी तह मिलती है।

इस प्रकार के क्षेत्र यूगोस्लाविया, दक्षिणी फ्रांस, फ्लोरिडा प्रायद्वीप, यूकटल प्रायद्वीप और क्यूबा द्वीप में पाये जाते हैं।

Katabatic Wind (काटाबैटिक वायु) रात के समय विकरण द्वारा ठंडे होने पर पहाड़ों के ढालों और घाटियों में वायु संचालन होने लगता है। इस कारण रात के समय एक स्थानीय वायु उत्पन्न हो जाती है। अन्टार्कटिका और ग्रीनलैंड में हिम आवरण के ढालों पर से आने वाली ठंडी हवा से भी इस प्रकार की स्थानीय वायु चलने लगती है।

रात में विकिरण द्वारा तापहरण इतनी तेजी से होता है कि पर्वत का शिखर या हिम आवरण बहुत ठंढा हो जाता है और उसके ऊपर की हवा भी सम्पर्क से शीत हो जाती है। इस प्रकार की ठंडी व भारी हवा अपने भार के फलस्वरूप नीचे को खिसकने लगती है और प्राकृतिक बनावट के अनुसार दिशा ग्रहण कर लेती है। इसी कारण इसे बहुधा पर्वतीय पवन भी कहते हैं।

वैसे तो यह पवन मन्द गति से बहता है परंतु जब घाटी लम्बी और तीव्र ढाल वाली हो, बर्फ से ढकी हो और वृक्षों से हो तथा साथ में दूसरी तरफ क्रमशः ढालवाला पठार हो तो इस पवन की गति तेज आँधी की तरह हो जाती है। इनको कभी-कभी नदी कन्दरा या सँकरी घाटी की वायु भी कहते हैं।

Kettle (केटल) हिमनदी के पिघलने से बने मैदान में मिट्टी, कंकड़ और बालू की राशि से घिरे हुये छोटे-छोटे जलपूर्ण तलैटियाँ या गड्डे बन जाते हैं। इनका आकार प्रायः गोलाकार होता है और इनके चारों ओर छोटे-छोटे टीले पाये जाते हैं। इन के बनने का कारण सम्भवतः हिम के किसी बचे हुये पिण्ड के पिघलने से सम्बन्धित है। हिमनदी से निकलने वाली जलधारायें कंकड़-बालू को हिमपिण्ड पर बिछा देती हैं और बाद में जब यह हिमपिण्ड पिघलता है तो इसके ऊपर की कँकड़ीली मिट्टी, बालू वहीं इकट्ठा हो जाती है। इस प्रकार से बने गड्ढे या तलैटियों को केटल कहते हैं।

Kettle moraines (**केटल मोरेन**) हिम नदी के अन्तिम छोर पर बहुत कम हिम रह जाता है और उसके द्वारा लायी हुई कंकड़, पत्थर व मिट्टी बालू की राशि कहीं किनारे पर जमा होने लगती है। यदि बहुत लम्बे समय तक हिमनदी एक ही स्थान पर पिघलती रहती है तो हिम के किनारों पर शिलाखंडों की बहुत बड़ी राशि हो जाती है। बाहरी किनारों पर नीचे से बहकर आने वाले जल की धाराओं का बड़ा असर पड़ता है। जब कभी हिमनदी पीछे को हटती है तभी वह पहिले टीले से कुछ पीछे हटकर एक दूसरा टीला बना देती है। यदि हिमनदी एक ही दिशा में पीछे नहीं हटती तो अलग-अलग दूरी पर अनियमित टीले बन जाते हैं। इन्हें केवल मोरेन कहते हैं।

इन मोरेन में कंकड़ व पत्थर के टुकड़े, बालू व मिट्टी के साथ मिले रहते हैं। इन टीलों का मध्य भाग आगे को निकला हुआ रहता है और इनकी चौड़ाई कुछ फीट से लेकर कुछ मील तक हो सकती है। ऊँचाई में ये कई सौ फीट तक पहुँचते हैं और प्रदेश में ये सैकड़ों या हजारों मील के विस्तार में वृत्तखण्ड या कण्डहार के समान फले रहते हैं।

इन मोरेन निक्षेप का साधारण आकार केटली की तरह होता है और इसीलिए इन्हें केटल मोरेन कहते हैं।

Khamsin (**खामसिन**) उत्तरी अफ्रीका में चलने वाली सिरक्को हवा की तरह की गर्म और शुष्क हवा को, जो मिश्र में प्रवाहित होती है, खामसिन कहते हैं। यह वायु दक्षिण से चलती है और अप्रैल से जून तक कोई ५० दिन इसका दौरदौरा रहता है। वास्तव में खामसिन शब्द अरब भाषा का है और इसका अर्थ ५० होता है। भूमध्य सागर से पूर्व की ओर या उत्तरी अफ्रीका के आरपार जाने वाले चक्रवातों के अग्रभाग में या उन के मार्ग में उनसे आगे-आगे यह हवा बहती रहती है। अक्सर खामसिन वायु अपने साथ अन्दर के भागों से बहुत सी धूल उड़ा कर ले आती है।

मध्यपूर्व में रेगिस्तान पर से होकर बहनेवाली किसी भी गर्म व शुष्क हवा को खामसिन कहते हैं।

Klippen (Drong) mountain (**क्लिपेन पर्वत**) भूगर्भ की शक्तियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप चट्टानों में दरारे व मोड़ पड़ कर सम्पूर्ण प्रदेश ऊँचा उठ जाता है। कभी-कभी ऊपर उठाने वाली और आगे-पीछे करने वाली भौगर्भिक शक्तियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पर्वत के घरेरे इस प्रकार पड़ते हैं कि पुरानी परतें नवींन परतों के ऊपर आकर टिक जाती हैं। फलतः जब आवरण क्षय की शक्तियाँ क्षयात्मक प्रहार करना शुरू करती हैं तो इधर-उधर की नवीन चट्टानों के कट-छँट जाने पर अलग-अलग शिखर उभरे दिखलाई पड़ने लगते हैं। इस प्रकार के उभरे शिखर कठोर चट्टानों के बने होते हैं और इसलिए अपने आधार की नवीन चट्टानों से सर्वथा भिन्न दिखलाई पड़ते हैं। इन पर्वतों को क्लिपेन पर्वत कहते हैं। अक्सर इन्हें जड़ सहित पर्वत कहकर भी पुकारते हैं।

Knick point (**भ्रंश स्थल**) नदी के उद्गम से मुहाने की ओर तक का ढाल पहिले तो काफी तीव्र रहता है परन्तु जीर्णावस्था तक पहुँचते-पहुँचते ,वह घिसघिसाकर बिल्कुल सपाट हो जाता है परन्तु जीर्णावस्था में भूपटल पर होनेवाली जरासी उथल-पुथल से यदि भूखंड ऊँचा हो गया तो नदी की तलैटी या ढाल में चटखन आ जाती है। यही नहीं बल्कि वह टूट जाता है और इस प्रकार के टूटे हुए स्थान को भ्रंशस्थल कहते हैं। इससे पता चलता है कि नदी में नवजीवन का संचार हो रहा है।

Knoll (**नॉल**) एक छोटी गोलाकार पहाड़ी या टीले को नॉल कहते हैं।

Knob and Basin Topography (**नॉब और बेसिन स्थानावृत्त**) जिन

प्रदेशों में हिमनदियाँ बहकर आती हैं और पिघलकर समाप्त हो जाती है वहाँ पर टीलेनुमा निक्षेप बन जाते हैं। ये टीले उन्नतोदर होते हैं और इनका उभड़ा हुआ भाग बाहर निकला रहता है। कभी-कभी इन टीलों के पीछे हिमखण्ड या हिमनदी के कुछ अंश का पिघला हुआ पानी एकत्र हो जाता है और झीलें बन जाती हैं। वैसे अर्द्ध वृत या वृतखंड की शक्ल के इन टीलों के मध्य गोल दायरे के रूप जलपूर्ण खड्ड बन जाते हैं। जिनमें पानी निकलने का कोई भी रास्ता नहीं होता। जब कभी इनके पानी से कट-कट टीला फट जाता है तो निचले भाग में बाढ़ आ जाया करती है। इस प्रकार की बनावट को नाव और बेसिन स्थानवृत्त कहते हैं। (देखिये Kettles और Kettle moraines)

इस प्रकार की सतह बनावट उत्तरी अमरीका में बड़ी झीलों के प्रदेश और जर्मनी के उत्तरी मैदान में पाई जाती है। वास्तव में उत्तरी अमरीका की बड़ी झीलें इसी प्रकार के बेसिनों में बनी हैं और उनके किनारों पर ऊँचे-ऊँचे टीले पाये जाते हैं। जर्मनी के उत्तरी मैदान में छोटी-छोटी झीलों व दलदलों को घेरे हुए इसी प्रकार के टीले अभी भी पाये जाते हैं।

Knot (नॉट) जहाजों की चाल की एक इकाई को नाट कहते हैं। यह प्रतिघण्टा एक समुद्री झील की चाल के बराबर होती है। जब जहाज पाल से चला करते थे तो एक डोरी या रस्सी पर गाँठ बाँधकर एक निश्चित दूरी निकाल लिया करते थे और यह गाँठ-दार रस्सी एक गडारी पर से लपेटी हुई जहाज के चाल मापक रेखा से सम्बन्धित रहती थी। एक निचित समय में जितनी भी गाँठें गडारी पर से उतर जाती थी उनसे पता चलता था कि एक घंटे में जहाज ने कितनी समुद्री झीलों की यात्रा की। यद्यपि चाल नापने की यन्त्र-विधि अब बिल्कुल बदल गई है परन्तु नाप की इकाई के लिए यही पुराना शब्द अभी भी प्रयोग में लाया जाता है।

Koembang (कोमबान्ग) जावा द्वीप में बहने वाली गर्म व शुष्क हवा को कोमबान्ग कहते हैं। यह वायु यूरोप में आल्प्स पर्वत श्रेणी के उत्तरी ढालों पर उतरनेवाली फौन वायु के समान है और दोनों की उत्पत्ति का कारण भी प्रायः समान ही है। इस कोमबान्ग वायु से कोमल फसलों को बहुत नुकसान पहुँचता है और इसके कारण तम्बाकू की फसल को विशेष हानि बर्दाश्त करनी पड़ती है।

Kopje (कॉपज) यह हालैण्ड की भाषा का पारिभाषिक शब्द है और वायु प्रहार के क्षेत्रों में बने सपाट मेज की तरह बने छोटे शिखरों के लिए प्रयोग में लाया जाता है जिन्हें दक्षिणी अफ्रीका में बूटे कहते हैं।

Laccolith (लैकोलिथ) जब कभी भूगर्भ स्थित लावा या चट्टानों का पिघला हुआ मैग्मा ऊपर निकलने का मार्ग खोजता हुआ परतदार चट्टानों की परतों के बीच प्रवेश कर जाता है तो वह ऊपरी परत को नीचे से धक्का देता है और फलतः ऊपरी परत दबाव के कारण ऊपर की ओर झुक जाती है। इस प्रकार चट्टानों के ऊपर गुम्बद सा बन जाता है और इसके मध्य में इसका केन्द्रीय भाग अन्दर को ठंडी होकर बनी आग्नेय चट्टानों का होता है। जब ऊपरी परत घिस जाती है तो नीचे का लावा साफ दिखलाई पड़ने लगता है। इस प्रकार के प्राकृतिक आकार को लैकोलिथ कहते हैं। कभी-कभी जब ये काफी ऊँचे हो जाते हैं तो इन्हें गुम्बदनुमा पर्वत भी कहकर पुकारते हैं। (देखिये Dome Mountains)

इस प्रकार के लैकोलिथ उभाड़ या ऊँचे उठने से बन जाते हैं। इनके निर्माण में दायी-बायीं ओर की हलचल बिल्कुल नहीं होती। यदि दायें-बायें पार्श्व की हलचल या मिलाव

तालाब के कारण भीतर में स्थित आग्नेय चट्टानों से बना केन्द्रीय भाग कम से कम एक ओर को खिसका हुआ हो तो इस प्रकार से बने पर्वत रूप को बिस्मेलिथ कहते हैं।

Lacustrine (झील सम्बन्धी) जैसा नाम से ही विदित है झील बनते, मिटने और निक्षेप द्वारा भरने से सम्बन्ध रखने वाले सभी तथ्यों को झील सम्बन्धी कहते हैं।

Lagoon (लैगून झील) छिछले जलवाले तट प्रदेश पर समुद्र की लहरों और धाराओं की क्षयकारी शक्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि तट रेखा तक पहुँचते-पहुँचते उनकी शक्ति व गति दोनों ही समुद्र की तलैटी से टकराकर धीमी पड़ चुकी होती है। इस प्रकार धीमी पड़ी हुई लहरों का कुछ जल तटरेखा की ओर बढ़ता है और अपने साथ लाई हुई मिट्टी आदि को तट के समीप ही इकट्ठा कर देता है। धीरे-धीरे तटरेखा के समानान्तर लम्बे और सँकरे टीले बन जाते हैं। उन टीलों की शृंखला और मुख्य तट के बीच में खारे पानी की लम्बी सँकरी झील बन जाती है। इन्हें लैगून झील कहते हैं। भाटे के समय इनमें जल घट जाता है।

कभी-कभी समुद्र द्वारा उसके तट पर बालू के टीले बन जाते हैं और उनके कारण पर्वतों पर से आती हुई नदियों का जल रुक जाता है और इस प्रकार से भी उथली झीलें बन जाती हैं। भारतवर्ष में पश्चिमी तट पर उथली झीलें और पूर्वी तट पर चिल्का झील इसी प्रकार बनी।

कभी-कभी प्रवाल श्रेणी के समुद्र तट के समीप स्थित होने पर श्रेणी और तट के बीच इसी प्रकार की लैगून झीलें बन जाती हैं। जब प्रवाली श्रेणी तट से बिल्कुल सटी रहती है तो यह लैगून झील सँकरी और उथली होती है परन्तु तट से दूर स्थित प्रवाल भित्त और तट के बीच की लैगून झील काफी चौड़ी और गहरी होती है। जब प्रवाल द्वीप या प्रवाल चट्टान की श्रेणी गोलाकार रूप से बनी होती है तो उसके बीच में घिरा हुआ जलाशय भी लैगून झील ही कहलाता है।

किसी खाड़ी या किसी नदी के मुहाने के डेल्टा प्रदेश में कटी हुई मिट्टी, बालू और बजरी लहरों के साथ बहकर जमा होती रहती है। धीरे-धीरे टीले से बन जाते हैं जिनका अगला भाग हँसिया की तरह मुड़ा रहता है इन के इस मोड़ में बहुधा समुद्री जलका कुछ भाग भरा रह जाता है और इस प्रकार से भी लैगून झील बन जाती है। (देखिये **Haff** हाफ)

Lake (झील) पृथ्वी के धरातल के किसी गड्ढे में स्थित स्थल से घिरे हुये विस्तृत व स्थिर जलखंड को झील कहते हैं। झील का विस्तार व उसमें जल की गहराई कितनी भी हो सकती है। कभी-कभी नदी प्रवाह के चौड़े भाग को या समुद्रतट पर समुद्र के जल से सम्बन्धित जलाशय को भी गलती से झील कह कर पुकारा जाता है। वास्तव में खाड़ी, लैगून और तटीय झीलों के बीच बड़ा अन्तर है।

झीलों के निर्माण में धरातल की बनावट और जलवायु का विशेष असर पड़ता है। यह तो स्पष्ट ही है कि झीलें वहीं बन सकती हैं जहाँ धरातल पर गड्ढे या नीचे स्थान होते हैं। इसके अलावा पर्याप्त वर्षा और कम ताप का होना भी आवश्यक है। जिन प्रदेशों में वर्षा अधिक होती है तथा गर्मी कम पड़ती है वहाँ झीलों का पानी नहीं सूख पाता क्योंकि नदियाँ वर्षा का जल ला-लाकर झीलों में भरती रहती हैं। आने वाले जल की मात्रा वाष्पीकरण व भूमि में सोखने से होने वाले जलह्रास से अधिक होनी चाहिये। जब झील में इतना अधिक पानी आता है कि भाप बनने और भूमि के अन्दर सोखने के बाद भी बहुत काफी बच रहता है तो वह जलधारा या नदी के रूप में प्रवाहित हो निकलता है। इस प्रकार झील का जल ताजा बना रहता है। उनके जल में मिश्रित नमकों का अंश इतना कम रहता है कि स्वाद में नहीं आ पाता। इसके विपरीत कम वर्षा पर अधिक वाष्पीकरण के प्रदेश में बनी झीलों से जल का विकास हो ही नहीं पाता। फलतः पूर्ण झील एक आन्तरिक जल प्रवाह क्षेत्र बना

लेनी है और इसमें आकर मिलने वाली नदियों द्वारा बहाकर लाया हुआ सभी नमक इनमें इकट्ठा होता रहता है और फल यह होता है कि इन झीलों का खारापन बराबर बढ़ता जाता है। मृत सागर और संयुक्त राष्ट्र के यूताह प्रदेश की ग्रेट साल्ट लेक इसी प्रकार की झीलें हैं। (देखिये Salt Lake)

जब वर्षा बड़ी अनियमित होती है तो झील की सतह व क्षेत्रफल में काफी अदल-बदल होती रहती है। उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया की इरी झील शुष्क मौसम में बहुत काफी छोटी हो जाती है। शुष्क मौसम में या पानी न बरसने पर झीलें अक्सर इतनी सूख जाती हैं कि केवल नमकीन दलदल रह जाता है। मध्य आस्ट्रेलिया की बहुत सी झीलें इसी प्रकार गायब हो जाती हैं। इस प्रकार की वही झील स्थायी रहती है जिसमें हानि की अपेक्षा पानी का आगमन अधिक होता है।

झीलों की रचना कई प्रकार से होती है—(१) नदी की तलैटी चट्टानों के गिरने व लावा तथा हिम के बहने से बन्द हो जाती है। (२) कभी-कभी नदी की तलैटी का निचला भाग भूकम्प द्वारा ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार की झीलें आल्प्स पर्वत प्रदेश में पायी जाती हैं। (३) कभी-कभी समुद्र का कुछ भाग अलग होकर नमकीन झील का रूप धारण कर लेता है। (४) समुद्री बालू के टीलों से तटीय झीलें बन जाती हैं। (५) नदियों के छोड़े हुये मार्ग या घुमाव में अक्सर झीलें बन जाती हैं। (६) ज्वालामुखी पर्वतों के मुख में जल भर जाने से भी झीलों का निर्माण हो जाता है। (७) हिमनदियों के द्वारा क्षयात्मक कार्य से भूमि में गड्ढे बन जाते हैं जिनमें पिघलने पर झीलें बन जाती हैं। कनाडा और उत्तरी रूस की झीलें इसी प्रकार बनी हैं। इस प्रकार रचना के आधार पर झीलों को निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है :—

(१) भूगर्भ की शक्तियों से बनी झीलें कई प्रकार की होती हैं और दरार घाटी झीलें सबसे महत्वपूर्ण हैं।

(२) ज्वालामुखी उद्गार से बनी झीलें।

(३) नदियों के प्रवाह व प्रणालियों से बनी झीलें—जिनमें नालाकार व डेल्टा झीलें विशेष महत्व की हैं।

(४) लहरों व ज्वारभाटा के कारण बनी झीलें जिन्हें लैगून कहते हैं।

(५) हवा के द्वारा बनी झीले भी प्रायः रेगिस्तानी भागों में पायी जाती है और उनमें बालू का स्तूप झील तथा खारी पानी की झीलों का विशेष महत्व है।

(६) हिमनदी या हिमआवरण के प्रभाव से बनी झीलें कई प्रकार की होती हैं। कुछ तो निक्षेप द्वारा बन जाती हैं और कुछ क्षयात्मक कार्य के फलस्वरूप भूमि में गड्ढे बन जाने से। बनावट के अनुसार इनके अनेकों भेद होते हैं। कुछ तो पर्वत प्रदेशीय घाटियों में बनती हैं और कुछ हिम आवरण वाले मैदानी भागों में।

(७) भूगर्भवती जल से बनी झीलें चूने की चट्टानों के प्रदेश में पायी जाती हैं और उन में गर्त व कार्स्ट झीलें बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं।

सभी प्रकार की झीलों से मनुष्य को अनेक लाभ पहुँचता है। नदियों के मार्ग में पड़ने-वाली झीलें बाढ़ को रोकती हैं और पर्वत प्रदेशीय झीलों के जल भंडार को जलविद्युत के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है। जहाँ झीलें होती हैं वहाँ की जलवायु सम होती है। झीलों से आवागमन की सुविधा होती है और इनसे पीने का पानी तथा खाने की मछलियाँ प्राप्त होती हैं। खारी झीलों से नमक प्राप्त होता है। झीलों से प्राकृतिक दृश्य की सुन्दरता बढ़ती है और जब ये सूख जाती हैं तो उपजाऊ मैदान बन जाते हैं। वास्तव में झीलों का जीवन बड़ा

अस्थायी होता है। कुछ झीलों में नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी इस कदर जमा होती रहती है कि वे बिलकुल पट जाती हैं। कुछ में आसपास की वनस्पति सड़-सड़ गिरा करती हैं और धीरे-धीरे वे समाप्त हो जाती हैं। किसी प्रकार के अवरोध से बनी झीलों का पानी अवरोध के टूट जाने पर वह निकलता है और झीलें गायब हो जाती हैं। रेगिस्तानी प्रदेशों में बालू व धूल के टीलों के स्थानान्तरण से भी बहुत सी झीलें पट जाती हैं। कभी-कभी जलवायु की ताप व वर्षा सम्बन्धी दशाओं में हेर-फेर होने से भी झीलों का जीवन समाप्त हो जाता है।

Lake Dwelling (झील निवास) अति प्राचीन काल में लोग झील की सतह के ऊपर बाँस या बल्ली द्वारा मचान बनाकर उसके ऊपर निवास करते थे। इस प्रकार के निवास स्थान को झील निवास कहते हैं और इस प्रकार के मकान स्विटजरलैंड में पाषाणयुग में बहुत होते थे। आजकल भी भूमध्यरेखीय वनप्रदेशों में भूमि के दलदली व वनस्पति आच्छादित होने के कारण लोग मचान बनाकर ही रहते हैं और इस प्रकार के झील निवास न्यूगिनी, बोर्नियो तथा अमेजन के मुहाने वाले प्रदेश में बहुत पाये जाते हैं।

Lake Rampart (झील भित्त) किसी झील या खाड़ी के चारों ओर पत्थरों की अपने आप बनी हुई दीवाल को झील भित्त कहते हैं। यह झीलभित्त उस जलवायु में विशेष रूप से बन जाती है जहाँ पर जाड़े की ऋतु का तापान्तर बहुत अधिक होता है।

जब कभी किसी शीतल जल की सतह पर बर्फ की मोटी पपड़ी जमी रहती है तो बर्फ के नीचे की सतह का तापक्रम जल के कारण बहुत कुछ स्थायी सा बना रहता है। परन्तु ऊपरी सतह पर वायुमण्डल के तापक्रम के कम ज्यादा होने के अनुसार काफी बर्फ बढ़ती है और कभी सिकुड़ जाती है। इस सिकुड़ने व बढ़ने की प्रतिक्रिया से बर्फ की ऊपरी सतह पर दरारें बन जाती हैं और कभी बर्फ एक पिण्ड रूप बन जाता है।

यदि झील के किनारे पिघले हुये तो बर्फ के फैलने पर बर्फ का कुछ अंश किनारों के ऊपर भी चला आता है। इससे किनारें का रूप परिवर्त्तन तो होता ही है साथ-साथ कंकड़ पत्थर के टुकड़े उथले पानी से निकलकर किनारे पर आ पड़ते हैं। जब यह बर्फ पीछे को हटती है तो ये पत्थर और कंकड़ वहीं पड़े रह जाते हैं और कालान्तर में यह दीवाल की तरह चहरदीवारी बन जाती है जिसे झील भित्त कहते हैं।

Lambert's Azimuthal projection (लैमबर्टस एजीमूथल अंकन) इस अंकन विधि को लैम्बर्ट महोदय ने सन् १७७२ में निकाला था और आजकल यह अंकन बहुत लोकप्रिय हो गया है। इसमें ग्लोब को एक कागज से इस प्रकार लपेटते हैं कि वह उसे ध्रुवों पर छूता रहे और तब कल्पना करते हैं कि बहुत दूरी से प्रकाश डाला जा रहा है। फलतः इस प्रकार से प्राप्त देशान्तर व अक्षांसों के जाल में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं--(१) देशान्तर रेखायें सीधी रेखायें होती हैं जो वास्तविक कोणिक दूरी पर ध्रुव से बाहर की ओर खींची जाती हैं। अक्षांस रेखायें समकेन्द्र वृत्त होते हैं। ध्रुव से दूर जाने पर विभिन्न अक्षांस रेखाओं के बीच की दूरी घटती जाती है।

इस पर खींचे गये प्रदेशों का क्षेत्रफल ठीक-ठीक दिखलाया गया होता है और साथ-साथ मानचित्र के केन्द्र से सब विन्दुओं की दिशा बिल्कुल ठीक बनी रहती है। परन्तु भूमध्य रेखा पर छोड़कर अन्य सभी जगह प्रदेशों का विस्तार उत्तर दक्षिण की ओर बढ़ जाता है और केन्द्र की अपेक्षा दायें और बायें तरफ के किनारे दब जाते हैं। मानचित्रावली में इस अंकन को ध्रुवीय प्रदेशों के मानचित्र बनाने के लिए प्रयोग में लाते हैं। इस अंकन पर ध्रुवों को केन्द्र

मानकर विभिन्न गोलार्द्ध का मानचित्र भी बहुत कुछ सही तरीके से बनाया जा सकता है। यह अंकन उन प्रदेशों के लिए भी बड़ा ही उपयुक्त है जो काफी लम्बे और चौड़े हैं।

Land Breeze (स्थलीय पवन) रात के समय स्थल खण्ड समुद्र की अपेक्षा अधिक जल्दी ठण्डा हो जाता है और सूर्य अस्त होने के कुछ ही घंटों बाद स्थलीय वायु समुद्र के ऊपरी की वायु की अपेक्षा अधिक ठंडी हो जाती है। उसका फल यह होता है कि समुद्री वायु तो अपेक्षाकृत गर्म व हल्की होने के कारण ऊपर को उठा करती है और उसका स्थान लेने के लिए स्थल से ठण्डी और भारी वायु समुद्र की ओर चला करती है। इसी को स्थलीय पवन कहते हैं।

स्थलीय पवन, समुद्री पवन की अपेक्षा कमजोर होती है क्योंकि स्थल भागों पर अवरोधकों की अधिकता के कारण स्थलीय पवन की गति बहुत धीमी पड जाती है। दूसरी बात यह है कि जल और थल के बीच तापक्रम का अंतर केवल कुछ ही घंटों तक रहता है। इसलिये स्थलीय पवन की अवधि बहुत थोड़ी होती है और इनका प्रवाह भी कोई विशेष ऊँचाई तक नहीं रह पाता। स्थलीय पवन के चलने के लिये दैनिक तापान्तर काफी होना चाहिये और जब अन्य प्रकार की और कोई प्रचलित वायु न चल रही हो तो इनका प्रभाव मालूम पड़ता है अन्यथा नहीं। स्थलीय पवन हद से हद दो सौ फीट से अधिक ऊँचाई तक पहुँच पाता है। उससे ऊपर इसका अनुभव नहीं होता।

स्थलीय पवन का अनुभव तटीय प्रदेशों और झीलों के किनारों पर अधिक होता है। यद्यपि यह पवन उष्णकटिबंधीय भागों में विशेष रूप से प्रवाहित होता है परंतु कभी-कभी गर्मी के मौसम में शीतोष्ण प्रदेशों के तटवर्ती भागों में भी इसका अनुभव किया जा सकता है। जब आसमान साफ हो और सामान्य वायुभार ढाल क्रमशः हो तो यह पवन काफी तेज बहने लगता है और रात के १२ बजे के आस-पास या उससे कुछ घंटे बाद चलना शुरू हो जाता है। इस सिलसिले में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि स्थलीय पवन पर प्राकृतिक बनावट का बहुत असर पडता है और इसीलिए तटीय प्रदेश के विविध भागों में इसका वेग व शक्ति अलग-अलग होती है।

बहुधा यह समुद्री पवन के बाद बहती है परन्तु समुद्री पवन की अपेक्षा यह कम वेगवती तथा कम उत्कट होती है। (देखिये Sea breeze)

Landes (लैन्डीज) बालू से बने निम्नतल के मैदानों को जिन के किनारे पर बालू के टीले पाये जाते हैं लैन्डीज कहते हैं। दक्षिणी पश्चिमी फ्रांस में लैन्डीज नाम के प्रदेश में ऐसी ही दशायें मिलती है। इसीलिये उसके आधार पर इस प्रकार के सभी क्षेत्रों का नाम लैन्डीज पड़ गया है।

Land Hemisphere (स्थलीय गोलार्द्ध) भूमध्यरेखा के उत्तर में स्थित पृथ्वी के आधे भाग में जलखंड की अपेक्षा भूमिखंड का आधिक्य है। इसमें भूपटल के स्थल प्रदेशों का ६।७ भाग पाया जाता है। इसलिए उत्तरी गोलार्द्ध को स्थलीय गोलार्द्ध भी कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध का एक मानचित्र यदि लन्दन, बर्लिन या अन्य कोई पश्चिमी यूरोपीय नगर को केन्द्र मानकर खींचा जाय तो उसमें स्थित सम्पूर्ण स्थलखंड का अधिकांश भाग आ जायगा और तब स्पष्ट हो जायगा कि उत्तरी गोलार्द्ध को स्थलीय गोलार्द्ध कहना सर्वथा ठीक है।

Landforms (स्थल रूप) पृथ्वी तल के असमतल भागों को दो मोटे हिस्सों में बाँटा जा सकता है। पृथ्वी के विशाल एवं विस्तृत गड्ढे महासागर हैं और विस्तृत ऊँचे व शुष्क भाग महाद्वीप हैं। इन महाद्वीपों पर नित्य नये-नये परिवर्त्तन होते रहते हैं और शुष्क

स्थल के महासागरतल से ऊपर प्रकट होने के साथ ही कुछ प्राकृतिक शक्तियाँ उसको घिसकर या काटकर नये-नये रूप प्रदान करती हैं। इन्हीं प्राकृतिक शक्तियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप स्थलीय भाग पर हमें विभिन्न रूप दिखलाई पड़ते हैं। कहीं ऊँचे पर्वत हैं तो कहीं समतल मैदान हैं, कहीं पठार हैं तो कहीं घाटियाँ हैं। धरातल की इन भिन्न-भिन्न आकृतियों को स्थल रूप कहते हैं और मैदान, पठार तथा पर्वत संसार के प्रमुख स्थल रूप हैं। अतएव स्थलरूप भूपटल की वे आकृतियाँ हैं जिनका एक निश्चित व स्पष्ट आकार होता है और जिनकी स्थिति इतनी असंदिग्ध होती है कि उनका विवरण देने में कोई भी कठिनाई नहीं होती है। प्रत्येक प्रकार का स्थल रूप दूसरे स्थलरूपों से भिन्न आकृति का होता है और प्रत्येक स्थलरूप में चट्टानों की बनावट अलग-अलग होती है।

उत्पत्ति की श्रेणी के अनुसार संसार के स्थलरूपों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) **प्राथमिक स्थलरूप**—जिसके अन्तर्गत संसार के महासागर व महाद्वीप सम्मिलित हैं। (२) **द्वितीय या गौण स्थलरूप**—महाद्वीपों पर तो मैदान, पठार और पर्वत हैं और जलाशयों या महासागरों में महाद्वीपीय सागर और महासागरीय खड्ड। (३) **तृतीय वर्ग** के अन्तर्गत उन विविध रूपों को लेते हैं जो कट-छँट कर बन जाते हैं जैसे पर्वत शिखर शैल खंड, सँकरी घाटियाँ और बहाकर लायी हुई मिट्टी से बने मैदान आदि।

भूपटल पर प्रायः सदैव ही दो प्रकार की शक्तियों की प्रतिक्रिया होती रहती है। कुछ शक्तियाँ तो भूगर्भ के अन्दर से क्रियाशील होती हैं और कुछ बाहर से। आन्तरिक शक्तियों में भूकम्प व ज्वालामुखी उद्गार प्रमुख हैं। बाह्य शक्तियों में वायु, हिम और बहते हुये जल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है यद्यपि सूर्यताप, पाला और मेघ विखण्डन द्वारा इन बाह्य शक्तियों की सहायता किया करते हैं। इन दोनों प्रकार की शक्तियों के सतत संघर्ष और क्रिया-प्रतिक्रिया से ही विविध प्रकार के स्थलरूपों का निर्माण होता रहता है। स्थल-रूपों के निर्माण में एक तीसरी शक्ति का कार्य भी जारी रहता है—वह है सन्तुलन शक्ति। पृथ्वी की सन्तुलित अवस्था में जब कभी भी जरा-सा फर्क आजाता है तो कुछ स्थान नीचे धँस जाते हैं और कुछ ऊपर खड़े रह जाते हैं।

इन शक्तियों से निर्मित विभिन्न प्रकार के स्थलरूपों का आकार स्थायी नहीं है। आज जहाँ पर्वत श्रेणियाँ हैं वहाँ भविष्य में मैदान बन सकते हैं और आज जहाँ पर्वत श्रेणियाँ हैं वहाँ कुछ समय पहिले एक विशाल समुद्र हिलोरें मारता था। वास्तव में स्थल रूप ऊपर उठते हैं, उनके ऊपर काट-छाँट होती है और इस प्रकार के आवरणक्षय से प्राप्त पदार्थों के निक्षेप से नये स्थलरूपों की सृष्टि होती है। इस प्रकार पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न स्थलरूप निम्नलिखित तीन प्रकार के हैं—(१) जो भूगर्भ की शक्तियों द्वारा उठ जाने या धँस जाने से बने हैं या ज्वालामुखी उद्गार की सामग्री के इक्ट्ठा होने से बने हैं। (२) जो नदी, वायु या हिम प्रवाह द्वारा निक्षेप के फलस्वरूप बने हैं। इसके अन्तर्गत वे सभी स्थलरूप आ जाते हैं जो समुद्री, झीलों या प्राणिज निक्षेप से बनते हैं। (३) जो विभिन्न बाह्य शक्तियों द्वारा काटे-छाँटे जाने के बाद बनते हैं, उनके अन्तर्गत सभी रूप आ जाते हैं जो या तो शिलाखंड के हटाये जाने से बन जाते हैं या जो कटने-छँटने के बाद अवशेषांश से रह जाते हैं।

इस प्रकार के विभिन्न स्थल रूप चाहे वे निर्माणकारी हों या निक्षेपकारी या आवरणक्षय कारी, उनका आकार व प्रकार दोनों ही चट्टानों के स्वभाव, बनावट और जलवायु के अनुसार अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होता है। इसीलिए कहा जाता है कि प्रत्येक स्थलरूप विधि, दशा और बनावट के अनुसार ही होता है।

प्रत्येक प्रकार के स्थल रूप का एक निश्चित इतिहास होता है और वे एक विकास चक्र से होकर गुजरते हैं। एक विशिष्ट कालांतर में महासागर तल से उठा हुआ भूखंड अनेकों प्रकार के परिवर्तनों से होता हुआ अन्त में एक सपाट मैदान बन जाता है। प्राथमिक दशा का स्थलरूप एक मध्यवर्ती दशा से होता हुआ अन्त में एक अन्तिम स्थिति को पहुँचता है। इन तीनों स्थितियों को युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और जीर्णावस्था कह सकते हैं।
(देखिये Evolutionary Cycle)

Landing map (**सेना उतारने के मानचित्र**) युद्धकाल में सेना को उतारने के लिए ऐसे विस्तृत मानचित्रों की आवश्यकता होती है जिनमें सूक्ष्म से सूक्ष्म बात का निर्देश भी कर दिया गया हो। सेना उतारने के ये मानचित्र सभी प्रकार के मानदण्डों पर खींचे जाते हैं और उनमें कुछ तो इतने बड़े होते हैं कि १:१००० के मानदंड पर खींचे जाते हैं। इन मानचित्रों में तली, तटीय स्थलरूप, ज्वारभाटे के उतार-चढ़ाव का स्तर और आन्तरिक प्रदेशों की प्राकृतिक बनावट को स्पष्टतया अंकित किया जाता है। इन मानचित्रों को इस प्रकार बनाया जाता था कि समुद्र तो नीचे तली पर रहता था और ऊपर सिरे पर स्थल प्रदेश।

Land Route (**थल मार्ग**) देश के आन्तरिक भागों में और देश की सीमाओं के साथ मिले हुये प्रदेशों से यातायात व गमनागमन के लिये प्रायः स्थल के ऊपर से ही जाया जाता है। स्थल के ऊपर से जाने-आने के इन साधनों को थल मार्ग कहते हैं और इनमें दो प्रकार के मार्गों का विशेष महत्व है—सड़कें और रेलें। सड़कें दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जिन पर मोटर लारियाँ चल सकती हैं और दूसरी वे कच्ची सड़कें व पगडंडियाँ जिन पर मनुष्य स्वयं ही या पशुओं पर लाद कर सामान ला-ले जा सकता है। पाकिस्तान, नेपाल, तिब्बत और चीन के साथ भारत का व्यापार सीमान्त थलमार्गों सड़कों द्वारा ही होता है। केवल पाकिस्तान के साथ छोड़कर अन्य सभी देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करनेवाली सड़कें ऐसी हैं और इस कदर पहाड़ी प्रदेश से होकर गुजरती हैं कि उन पर कुली या पशु ही सामान ढो सकते हैं। एशिया के मध्य भाग में बहुत दिनों तक ऊँट व घोड़ों के द्वारा ही माल ढोया जाता था। भारत, ब्रह्मा और अफ्रीका के कुछ भागों में हाथी बोझा ढोते हैं। सड़कें थल मार्गों में सबसे प्राचीन साधन हैं और इनका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके द्वारा यातायात में सामान की अदला-बदली नहीं करनी पड़ती। सड़कों के द्वारा देश के कोने-कोने में पहुँचा जा सकता है। इसीलिये मोटर के विकास के साथ-साथ सड़कों की बड़ी उन्नति हुई है। आज प्रत्येक देश में मोटर चलाने लायक ट्रंक सड़कों का निर्माण हो रहा है।

थल मार्गों में दूसरा महत्वपूर्ण साधन रेलगाड़ियाँ हैं जो प्रत्येक देश और महाद्वीप में काफी विकसित हो गई हैं। कनाडा और साइबेरिया की उन्नति व आबादी का आधार वहाँ की रेलें ही हैं। यूरोप, एशिया, संयुक्त राष्ट्र अमरीका, कनाडा तथा अफ्रीका में आरपार जाने वाली रेलें हैं जिनमें ट्रान्स साईबेरियन रेलमार्ग, ट्रान्स कैस्पियन रेलमार्ग, केप से केरो तक का रेल मार्ग, कैनेडियन पैसिफिक रेलमार्ग और चिली आर्जेन्टाइना रेलमार्ग विशेष महत्व-पूर्ण हैं। रेलमार्गों के निर्माण में प्राकृतिक बनावट व जलवायु का बड़ा असर पड़ता है और साथ-साथ विभिन्न देशों में रेल की पटरियों के बीच का अन्तर कम ज्यादा होने से सीमान्त यातायात में अक्सर बड़ी असुविधा होती है। इसलिये जहाँ रेलें नहीं पहुँच सकतीं वहाँ अभी-अभी सड़कों से काम लिया जाता है। हाँ, यह जरूर है कि रेलों की चाल तेज होती है और वे भारी सामान ढो सकती हैं।

Landscape (भू-दृश्य) पृथ्वी के धरातल की आकृति और रूपरेखा को भू-दृश्य कहते हैं। इसके अन्तर्गत भूपटल पर स्थित मैदान, जंगल, सड़कें और नगर सभी कुछ शामिल रहता है। भू-दृश्य मौसम के अनुसार बदलता रहता है और इसलिए इसके अन्तर्गत बड़ा ही व्यापक क्षेत्र लेते हैं। भूपटल की प्राकृतिक बनावट व स्थलरूप, प्राकृतिक व खेतिहर वनस्पति तथा मनुष्य द्वारा भूमि का उपभोग आदि सभी कुछ भू-दृश्य से स्पष्ट हो जाता है। इसमें इनका सूक्ष्म-परिज्ञान तो नहीं होता परन्तु सामान्य दृश्य में तो सभी प्रकार की रूप-रेखायें आ जाती हैं जहाँ तक कि मनुष्य की निगाह पहुँच सकती है।

Land slide (शैलपात) किसी पर्वत या चट्टान श्रृंग के ढाल पर से भूमि या चट्टानों की विशाल राशि का नीचे की ओर गतिशील होना, सरकना शैलपात कहलाता है। यह प्रायः वर्षा के जल के भूमि में सोख जाने से होता है। किसी तीव्र ढाल प्रदेश में जब वर्षा का जल भूमि में सोख जाता है तो स्वभावतः वह मिट्टी का खंड बहुत भारी हो जाता है और गतिशील भी हो जाता है। फलतः अपने भार से नीचे को सरकने लगता है और मार्ग में इसके वेग से बड़ी हानि हो जाती है। कभी-कभी तो यह शिलाखंड इतनी तेजी से सरकता है कि प्रचण्ड वायु उत्पन्न हो जाती है और इसके साथ कंकड़-पत्थर व वनस्पति के पेड़ पौधे तक उखड़े चले आते हैं।

हिमालय के पूर्वी भाग में मानसूनी वर्षा के बाद यह अक्सर होता है।

कभी-कभी भूकम्प आने से भी शिलाखंडों का सरकना शुरू हो जाता है। इसी प्रकार समुद्रतट पर लहरों द्वारा नीचे की चट्टानों के कटते रहने से भी ऊपर के शिलाखंड आधार-हीन होकर नीचे को सरक आते हैं।

Lapies (लैपीज) यह फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। (देखिये Karren)

Lapalli (लैपली) विस्फोटक उद्गार के समय ज्वालामुखी के मुख के भीतर से धड़ाके से कुछ कंकड़-पत्थर बाहर आ गिरते हैं। इन ठोस टुकड़ों में सूक्ष्मकण वाली धूल से लेकर टनों भारी शिलाखंड तक होते हैं। इस प्रकार से निकले हुये सुपाड़ी के बराबर आकार के टुकड़ों को लैपिली कहते हैं। यह लैपिली ज्वालामुखी बम से छोटे परन्तु ज्वालामुखी राख के कणों से बड़े होते हैं। इनका आकार व विस्तार मटर से लेकर अखरोट तक किसी भी प्रकार का हो सकता है।

Lapland (लैपलैंड) आर्कटिक महासागर के चारों ओर और दक्षिण में शीतोष्ण प्रदेश के नुकीली पत्तीवाले जंगलों तक एक अति शीत मरुस्थल की पट्टी स्थित है। ये शीत मरुस्थल उत्तरी अमरीका, यूरोप और एशिया के उत्तरी किनारों पर पाये जाते हैं और इन्हें उत्तरी अमरीका में टुन्ड्रा प्रदेश तथा यूरेशिया में लैपलैन्ड कहते हैं। इनकी दक्षिणी सीमा गरमी की ५०° फा० समताप रेखा है। परन्तु इसकी दक्षिणी सीमा कोई निश्चित नहीं है। पश्चिमी यूरोप और पश्चिमी अमरीका में सीमा काफी उत्तर में है क्योंकि पछुआ हवाओं और समुद्री धाराओं का समकारी प्रभाव पड़ता रहता है। एशिया में यह प्रदेश समुद्र के प्रभाव से बहुत दूर होने के कारण काफी दक्षिण तक पहुँच जाता है और उत्तरी अमरीका के पूर्वी भाग में ठंडी जलधाराओं के कारण यह हडसन की खाड़ी तक फैला हुआ है।

इस प्रदेश में दो मौसम पाये जाते हैं। जाड़े की ऋतु ८ महीने की होती है और इस ऋतु में सूर्य बिलकुल भी नहीं निकलता तथा सम्पूर्ण प्रदेश बर्फ से ढका रहता है। गर्मी की ऋतु छोटी तथा सूर्य की रोशनी से परिपूर्ण होती है। बर्फ के पिघलने से सब तरफ़ दलदल हो जाता

है और नदियों में बाढ़ आ जाती है । फलतः काई और लिचन उग आते हैं और अधिक दक्षिणी भाग में कहीं-कहीं कुछ छोटे-छोटे फूलदार पौधे पैदा हो जाते हैं । इस वनस्पति पर निर्भर रहने वाले पशु कोई भी नहीं होते । बारहसिंघा ही यहाँ का मुख्य पशु है । जिन्दा हालत में यह घोड़े और गाय का काम देता है और मरने पर भोजन व वस्त्र की समस्या को हल करता है ।

यहाँ के लोग कठोर परिस्थितियों में रहने के कारण सभ्यता की दौड़ में काफी पिछड़े हुये हैं । चूँकि उपयोगी फसल उगाना कठिन होता है इसलिए लाचार होकर इन्हें शिकार व मछली मार करके गुजर-बसर करना होता है । इनका मुख्य भोजन मांस है । और ये अपने भोजन की खोज में तथा बारहसिंघों के काफिले के साथ घूमते हुये खानाबदोश जीवन व्यतीत करते हैं । गर्मियों में इनके रहने का स्थान खाल के बने तम्बू होते हैं । जाड़ों में ये लोग जंगलों के किनारे पर निवास करते हैं और यहाँ ये लोग या तो जमीन के अंदर अपना निवास स्थान बनाते हैं या लकड़ी का ढाँचा बनाकर उस पर घास डाल लेते हैं । ये लोग फर के कपड़े पहिनते हैं और पैरों पर चमड़े या खाल के जूते पहिनकर पट्टियाँ बाँध लेते हैं । यहाँ के निवासियों के भोजन, कपड़े, घर, हथियार और यातायात के साधन सभी कुछ जानवरों से ही प्राप्त होते हैं । इसलिये मांस के अलावा जानवरों की खाल, दाँत, हड्डियाँ, सीने के काम के लिए आते और हैं जलाने के लिये चर्बी इन लोगों के बड़े काम की चीजें हैं । ये लोग प्रायः हड्डियों से बने बरतनों को प्रयोग में लाते हैं ।

टुन्ड्रा प्रदेश की अपेक्षा लैपलैंड में व्यापार के लिए कम वस्तुयें प्राप्त होती हैं और इसी लिए लैपलैण्ड के प्रदेश काफी पिछड़े हुये हैं ।

Laplace's Theory (लाप्लास का सिद्धान्त) सन् १७८९ में फ्रांस के एक विद्वान् लाप्लास ने पृथ्वी और सौरमण्डल की उत्पत्ति के विषय में एक सिद्धान्त निकाला जिसे आचार्य के आधार पर लाप्लास का सिद्धान्त कहते हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार बहुत पहिले केवल एक गैस का वृत्ताकार गोला शून्य में घूम रहा था । धधकते हुये इस गैस-पिण्ड का विस्तार व वेग बहुत अधिक था । ताप विकिरण के द्वारा यह गैस पिंड धीरे-धीरे ठंढा होने लगा और ठंढा होकर सिकुड़ने पर इसकी गति और भी अधिक तेज होती गई । वास्तव में सम्पूर्ण पिण्ड न तो एक साथ ठंढा हुआ और नहीं एक साथ सिकुड़ा । केन्द्रीय भाग की अपेक्षा ऊपरी भाग अधिक जल्दी सिकुड़ गया और फलतः इस पिण्ड से छल्ले टूटकर अलग हो गये । इस प्रकार से टूटकर अलग हुई छल्लेदार पट्टी मुख्य पिंडक के ऊपर बराबर घूमती रही और इस प्रकार के टूटे हुये छल्लों के सिकुड़ने और ठंढा होने पर विभिन्न ग्रहों की उत्पत्ति हुई । विभिन्न ग्रहों के साथ भी इसी प्रकार की क्रिया चलती रही और उसके फलस्वरूप उपग्रहों की सृष्टि हुई ।

इस सिद्धान्त में अनेक दोष हैं । (१) सबसे बड़ी आपत्ति तो यह है कि छल्ले ठंढे होने पर ठोस, निश्चित व स्थायी ग्रहों का रूप कदापि नहीं धारण कर सकते । गैस का पिण्ड ठंढे होने पर अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में ही बन जायेगा जो उसी छल्ले की परिधि पर स्थित रहेंगे । यह बात शनि नक्षत्र के आकार व व्यवस्था से पुष्ट होती है ।

(२) वास्तव में भार जितना ही अधिक होगा, कोणिक वेग भी उतना ही ज्यादा होगा । भार विस्तार, चक्कर और भारीपन के अनुसार ही होता है । विस्तार जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक उसकी कोणिक गति भी होगी । इस प्रकार ग्रहों की गति व वेग ९८ प्रतिशत होगा और सूर्य का वेग केवल २ प्रतिशत । परन्तु लाप्लास के सिद्धान्त के अनुसार सूर्य का वेग

ग्रहों के वेग से अधिक माना गया है। सच तो यह है कि धुरी पर घूमने और सूर्य के चारों तरफ घूमने से ग्रहों का वेग सूर्य से कहीं अधिक होता ह।

Lapse Rate (ताप-परिवर्त्तन गति) ऊँचाई के साथ तापक्रम में अन्तर आ जाता है। तापमान में ऊँचाई के कारण होने वाले इस परिवर्त्तन की गति को प्रति हजार फीट पर फार्नहीट के अंशों में या प्रति सौ मीटर पर सेन्टीग्रेड अंशों में व्यक्त करते हैं। इसको ताप-परिवर्त्तन गति कहते हैं। साधारणतया वायुमण्डल में ताप-परिवर्त्तन गति का औसत प्रति हजार फीट पर ३ डिग्री फार्नहीट रहता है।

जब ऊँचे जाने पर तापक्रम क्रमशः घटता जाता है तो ताप-परिवर्त्तन गति तो स्वाभाविक है। इसके विपरीत यदि ऊँचाई के साथ तापक्रम बढ़ता जाये तो उस दशा में ताप परिवर्त्तन गति को विलोमित कहते हैं। (देखिये Inversion of Temperature)

Large Scale Map (दीर्घ मानदण्ड मानचित्र) प्रत्येक मानचित्र के विस्तार का वास्तविक विस्तार के साथ एक निश्चित सम्बन्ध होता है। जब वास्तविक प्रदेश की एक मील की दूरी को मानचित्र पर कई इंचों द्वारा चित्रित करते हैं तो उस मानचित्र को दीर्घ मानदण्ड मानचित्र कहते हैं। इसमें ६ इंच बराबर होता है १ मील के या कभी-कभी २५ इंच बराबर होता है १ मील के। जरूरत के अनुसार और भी अधिक बड़े मानदण्ड पर मानचित्र को बनाया जा सकता है।

दीर्घ मानदण्ड मानचित्रों में सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को भी दिखलाया जा सकता है और प्रत्येक वस्तु की स्थिति को स्पष्टतया अंकित किया जा सकता है। परन्तु दीर्घ मानदण्ड के मानचित्र को बनाना, (१) नक्शे पर दिखलाये जाने वाले क्षेत्र के विस्तार, (२) अंकित किये जाने वाले तथ्यों की संख्या और (३) कागज की लम्बाई-चौड़ाई पर निर्भर रहता है। यही कारण है कि दीर्घ मानदण्ड मानचित्र जमींदारी तथा रियासत आदि के विस्तार को दिखलाने के लिए खींचे जाते हैं। पैमाइश के आधार पर बने भूमित चित्र और कक्षाओं में प्रयोग किए जाने वाले दीवार पर टाँगने के मानचित्र भी दीर्घमानदण्ड के होते हैं। सैनिक संचालन व युद्ध क्षेत्र में सेना को इधर-उधर भी दीर्घ मानदण्ड के होते हैं। सैनिक संचालन व युद्ध क्षेत्र में सेना को इधर-उधर हटाने में भी दीर्घ मानदण्ड मानचित्रों का प्रयोग किया जाता है।

Laterite (लैटराइट) लाल रंग की लोहा मिली हुई मिट्टी को लैटराइट मिट्टी कहते हैं। यह मिट्टी उष्ण कटिबंधीय भागों में मिलती है और वर्षा के जल के साथ बहुत से आवश्यक नमक और विशेषकर चूना बह जाता है। इनमें वनस्पति का अंश भी बहुत कम होता है। तेजाब की अधिकता होने के कारण इसमें तीक्ष्णता पाई जाती है। इन सब कणों से लैटराइट मिट्टी अनुपजाऊ होती है और साथ-साथ इतनी चिपकनेवाली व सटी हुई ढोकों में होती है कि उसमें खुदाई करना नाममकिन होता है। इसमें लोहे का अंश अधिक होता है और इसलिए इसका महत्व यही है कि इससे लोहा प्राप्त किया जा सकता है। इसमें अलुमिनियम भी पाया जाता है।

इन प्रदेशों में खेती की मुख्य समस्या इसको ढीली करना और इसकी तीक्ष्णता को कम करना होता है। लेकिन चाय के पौधे के लिए यह बहुत उपयुक्त होती है। उच्च प्रदेशों में पाई जानेवाली लैटराइट मिट्टी निम्न प्रदेशों की मिट्टी की अपेक्षा कम उपजाऊ होती है। यह मिट्टी भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप के बहुत विस्तृत प्रदेश, मलाया, पूर्वी द्वीप समूह और भूमध्य रेखीय अफ्रीका में पाई जाती है।

Latitude (अक्षांश) उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के बिल्कुल बीचोबीच से

पृथ्वी के चारों ओर घेरने वाली काल्पनिक रेखा को भूमध्यरेखा कहते हैं। यह रेखा पूर्व से पश्चिम तक ३६०° अंशों में बँटी रहती है। इस रेखा से उत्तर या दक्षिण को पृथ्वी के केन्द्र से किसी स्थान की कोणिक दूरी को अक्षांश कहते हैं। उत्तरी अक्षांश भूमध्य रेखा से उत्तर को होती है और दक्षिणी अक्षांश भूमध्यरेखा से दक्षिण को होता है।

भूमध्य रेखा से उत्तरी ध्रुव तक चौथाई वृत्त हुआ अर्थात् ९० अंश हुये। इसी तरह भूमध्य रेखा से दक्षिणी ध्रुव तक भी ९० अंश होते हैं। इन विभिन्न अंशों से भूमध्य रेखा के समानान्तर खींची गई रेखाओं को अक्षांश रेखायें कहते हैं। भूमध्यरेखा को ०° अंश मानकर उत्तर और दक्षिण की ओर इन विभिन्न समानान्तर रेखाओं पर अंश डालते हैं। इस प्रकार उत्तरी ध्रुव का अक्षांश ९०° उत्तर और दक्षिणी ध्रुव का ९०° दक्षिण होता है। सुविधा के लिए इन अक्षांश रेखाओं को १०° के अन्तर पर खींचते हैं और अक्षांश की प्रत्येक समानान्तर रेखा एक-एक वृत्त बनाती है जिसका केन्द्र ध्रुव होता है। परन्तु ज्यों-ज्यों हम भूमध्य रेखा से ध्रुवों के समीप पहुँचते जाते हैं त्यों-त्यों ये वृत्त छोटे होते जाते हैं। भूमध्यरेखा के उत्तर की रेखायें उत्तरीय अक्षांश तथा दक्षिण की रेखायें दक्षिणीय अक्षांश प्रकट करती हैं।

अक्षांश को निर्धारित करने के दो तरीके हैं—एक तो सूर्य की ऊँचाई के द्वारा और दूसरे ध्रुवतारा की सहायता से। पृथ्वी की समरात्रि वाली स्थिति में ठीक दोपहर के समय आसमान के सबसे ऊँचे बिंदु से सूर्य की दूरी से किसी स्थान का अक्षांश जाना जा सकता है। साधारणतया ऊँचाई को नाप लिया जाता है और फिर ९०° में से ऊँचाई को घटाने से अक्षांश निकल आता है। इससे सरल तरीका ध्रुव तारे की ऊँचाई को पता लगा लेना है और यही निरीक्षक का अक्षांश होगा।

इस अक्षांश रेखा से दूरी का ज्ञान होता है। चूँकि पृथ्वी की परिधि २५००० मील है। इसलिये ९०° या चौथाई परिधि लगभग ६२५० मील हुई। इस प्रकार १° अक्षांश में ६९ मील हुये। यथार्थता के लिए अक्षांश के प्रत्येक अंश को ६० छोटे-छोटे भागों में विभाजित किया जा सकता है जो कि मिनट कहलाते हैं। और प्रत्येक मिनट को फिर ६० भागों में विभाजित किया जा सकता है जो कि सेकण्ड कहलाते हैं।

Lava (लावा) ज्वालामुखी के मुख से चट्टानों का पिघला हुआ रूप या मैग्मा बाहर आता रहता है। जमीन के भीतर तो इस मैग्मा में गैसें और लावा दोनों मिले रहते हैं परन्तु धरातल पर आने के बाद गैसें वायुमण्डल में मिल जाती हैं और ज्वालामुखी के मुख के इधर-उधर एक तरल पदार्थ बहने लगता है। इसे लावा कहते हैं। ज्वालामुखी से निकलने पर यह बहुत गरम होता है और इसका रंग अंगार की तरह लाल होता है।

चट्टानों का पिघला हुआ रूप होने के कारण लावा में कई खनिज मिले पाये जाते हैं। परन्तु सिलिका के अंश के अनुसार इसके दो भेद माने जाते हैं—(१) अम्ल लावा में सिलिका का अंश ७५ प्रतिशत होती है और चूना, मैग्नीशिया तथा लोहे का अंश कम रहता है। (२) पैठिक लावा में सिलिका का अंश केवल ४० प्रतिशत होता है और अन्य खनिज काफी मात्रा में पाये जाते हैं। अम्ल लावा अधिक चिपचिपा होता है और इसी कारण जल्दी नहीं बह सकता। केवल उसका ऊपरी अंश आगे लुढ़क जाता है और इसकी ऊपरी परत धीरे-धीरे ठंढी होकर काली पड़ती जाती है। इसकी ऊपरी परत जम जाने के कारण रुक जाती है परन्तु नीचे का लावा आगे को लुढ़कता रहता है। फलत: खिचाव के कारण ऊपर की पपड़ी टूट जाती है और टूटे हुये टुकड़े भी साथ-साथ लुढ़कते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि ठंढा होकर जमने पर सम्पूर्ण लावा क्षेत्र का धरातल ऊँचा-नीचा हो जाता है। इसके विपरीत पैठिक लावा कम चिपचिपा होता है और केवल तेजी से ही नहीं बहता बल्कि दूर तक फैल

जाता है। कभी-कभी जब इस लावे की ऊपरी परत जम जाती है तो नीचे के लावा के बहने चले जाने से खोह या कन्दराओं का निर्माण हो जाता है।

अम्ल लावा के पिघलने का तापांश अधिक उच्च होता है और इनमें से गैसें देर में निकल पाती हैं। इसलिये अम्ललावा ज्वालामुखी मुख से धड़ाके के साथ बाहर निकलता है और निकलते समय यह टुकड़ों या राख में बिखर जाता है। पैठिक लावा कम तापक्रम पर ही पिघल जाता है और फलतः ज्वालामुखी मुख से उबल-उबल कर इधर-उधर बहता रहता है। इसके उद्‌गार शान्त होते हैं तथा इसका बहाव मीलों तक चला जाता है और तब कहीं यह जम पाता है।

साधारणतया लावा के जमने पर बनी चट्टानों का धरातल रस्सी की तरह लहरदार होता है और उसमें रवों का नाम-निशान तक नहीं होता। इसकी सतह शीशे की तरह चमकदार होती है। लावा की ये चट्टानें बार-बार के उद्‌गार व प्रवाह से कालान्तर में बड़ी मोटी हो जाती हैं और इनके विखण्डन से बनने वाली काली मिट्टी बड़ी उपजाऊ होती है। उसमें चूने का अंश बहुत अधिक होता है। इसके अलावा लावा प्रवाह अक्सर नदी घाटियों में अवरोधक दीवाल बना लेता है जिससे नदी का जल रुककर झील का निर्माण हो जाता है।

Lava Dome (लावा का गुम्बद) जब पृथ्वी की पपड़ी मोटी न पड़ी थी तो लावा कहीं से फूट निकलता था और बड़ी ही शान्तिपूर्वक यह लावा इधर-उधर फैलकर सभी प्रकार के स्थलरूपों को ढक लेता था। परन्तु जैसे-जैसे धरातल की पपड़ी कठोर पड़ती गई, इसका सभी छिद्रों से निकलना असम्भव हो गया और अब केवल काफी गहरी दरारों से ही निकल पाता है। इस दशा में लावा काफी मात्रा में बाहर निकलता है जिससे दरार के चारों ओर गुम्बज के आकार की चौरस ऊँची पहाड़ी बन जाती है। इसे लावा का गुम्बद कहते हैं। यह वहाँ बनते हैं जहाँ लावा का प्रवाह शान्त रूप से हुआ करता है।

लावा में सिलिका के अंश के अनुसार ही लावा गुम्बद का आकार उठा हुआ या फैला हुआ होता है। अम्ललावा के बने गुम्बद ऊँचे पर कम विस्तृत होते हैं। इसके विपरीत पैठिक लावा से बने गुम्बद दूर तक फैले हुये पर ऊँचाई में कम होते हैं। अम्ललावा गुम्बद का ढाल तीव्र होता है परन्तु पैठिक लावा गुम्बद का ढाल क्रमशः होता है।

जर्मनी का कूपन, मध्य फ्रान्स की प्यूस और बोरबोन द्वीप का मामइलॉन्स ज्वालामुखी इसी प्रकार के लावा गुम्बद हैं।

Layers (परतें) संसार में पृथ्वी के ठंढा होने पर सबसे पहिले अग्नि चट्टानें बनीं और उनके प्रकट होते ही बाह्य शक्तियों ने उन पर प्रहार करना शुरू कर दिया। इस प्रकार के फलस्वरूप इन चट्टानों के कुछ खंड टूटकर अलग हो गये हैं जिन्हें जल, हिम व वायु ने अपने प्रवाह में ले लिया। धीरे-धीरे रगड़ से बड़े-बडे खंड चूर्ण बन गये और जब बहते हुये जल, हिम और वायु की गति कम पड़ी तो इन्हीं का निक्षेप होता गया। इस प्रकार प्रत्येक प्रवाह के साथ इस चट्टानी चूरचार का जमाव होता गया और एक के ऊपर दूसरी तह जमती गई। निक्षेप की इन तहों को ही परत कहते हैं और ऊपरी परतों के दबावों के कारण ही इन परतदार चूर्ण निक्षेप ने कालान्तर में परतदार चट्टान का रूप धारण कर लिया। ये परतें प्रायः समानान्तर होती हैं और दो परतों के बीच जीव व वनस्पति के अवशेषांश दबे पाये जाते हैं जो युग विशेष के इतिहास को बतलाते हैं।

Leaching (मिट्टी में जल का बहाव) वर्षा का जल जब मिट्टी में सोखता है तो अपने साथ ऊपर के नमकों व खनिजों को घुलाकर नीचे की ओर लेता जाता है। फल यह

होता है कि ऊपर की परतों से नमकीन खनिज पदार्थ के बहाव के साथ नीचे की परतों में पहुँच जाते हैं। इस क्रिया को मिट्टी में जल का बहाव कहते हैं। इसके कारण भूमि का उपजाऊपन घट जाता है और भूमि सदा के लिए अनुपजाऊ हो जाती है। लैटराइट मिट्टी इसका उदाहरण है।

Leap year (लौंद का साल) ३६६ दिन के वर्ष को लीपवर्ष कहते हैं। साधारणतया प्रत्येक वर्ष ३६५ दिन का होता है परन्तु पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने में करीब-करीब ३६५ ¼ दिन लगते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में ¼ दिन का अन्तर रहता है। इस अन्तर को ठीक करने के लिए हर चौथे वर्ष को ३६६ दिन का मान लेते हैं। प्रत्येक चतुर्थ वर्ष एक पूरे दिन को जोड़कर जन्त्री व नक्षत्र विज्ञान के बीच तारतम्यता उपस्थित करते हैं। पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण विभिन्न ऋतुयें होती हैं। प्रत्येक वर्ष विभिन्न ऋतुयें एक ही माह में पड़े, इसलिए लौंद का साल लाना जरूरी होता है। इस वर्ष में फरवरी का महीना २९ दिन का होता है जबकि अन्य साधारण वर्षों में फरवरी के महीने में केवल २८ दिन ही होते हैं।

Leeward (वायुविमुख) वायु की दिशा से अलग प्रदेश को वायुविमुख कहते हैं। साधारणतया पर्वतीय श्रेणियों का एक भाग तो वायु की दिशा के सामने पड़ता है और उसके पीछे का भाग वायुविमुख कहलाता है। वर्षा करनेवाली हवाओं के मार्ग में जब कोई पर्वत पड़ जाता है तो हवायें ऊपर को उठ जाती हैं और ठण्ढी होकर वर्षा कर देती हैं। जब ये हवायें पर्वतों के दूसरी ओर पहुँचती हैं तो उनको नीचे उतरना पड़ता है और वे दबाव के कारण गरम हो जाती हैं। फलतः उनमें वाष्प धारण करने की शक्ति बढ़ जाती है और यह हवाओं के उतार वाला ढाल वर्षा से वंचित रह जाता है। पर्वतों के इस वर्षारहित शुष्क भाग को वायुविमुख भाग कहते हैं।

वायुविमुख भाग में जो कुछ वर्षा होती भी है वह मुख्यतः वाहनिक या चाक्रवातिक होती है।

Lenticular cloud (लेन्टीकुलर मेघ) बहुधा पहाड़ और पहाड़ियों पर चश्मे के शीशे की शकल के मेघ दिखलाई पड़ते हैं। इन्हें लेन्टीकुलर मेघ कहते हैं। इस प्रकार के मेघ के किनारे तेज व कटे हुये होते हैं। इस मेघ के अन्दर अनेक छोटे-छोटे बादल के टुकड़े सम्मिलित रहते हैं और हवा में मेघ के बीच से तैरते दिखलाई पड़ते हैं। प्रायः इस प्रकार का मेघ उस समय बन जाता है जब फॉन जाति की वायु प्रवाहित होती है।

Leste (लेस्ट) मेडीरिया प्रदेश में बढ़ते हुये चक्रवात के सामने दक्षिण से पूर्व की ओर प्रवाहित गरम व शुष्क स्थानीय वायु को लेस्ट कहते हैं। अक्सर इसके साथ बहुत सी धूल उड़ती चली आती है।

Levanter (लिवान्टर) जिब्राल्टर जलडमरुमध्य और दक्षिणी स्पेन में अक्सर बहनेवाली हवा को लिवान्टर कहते हैं। यह पूर्व की ओर से चलती है और इसीलिए इसे लिवान्टर कहते हैं। जब यह हवा चलती है तो जिब्राल्टर की चट्टान के वायुविमुख प्रदेश में भयानक भँवर उत्पन्न हो जाते हैं। जब इस वायु की गति सामान्य होती है तो चट्टान की चोटी से वायुविमुख दिशा की ओर एक मील या उससे अधिक दूरी तक एक मेघ पताका सी फैल जाती है। जब इस वायु की गति तूफान के समान हो जाती है तो यह मेघ गायब हो जाते हैं। इस वायु को कभी-कभी सोलानों भी कहते हैं।

Leveche (लेवीची) दक्षिणी-पूर्वी स्पेन में दक्षिण दिशा से चलनेवाली गर्म व

शुष्क हवा को लेवीची कहते हैं। यह वायु उत्तरी अफ्रीका की सिरोको की ही तरह है या यूँ कहा जा सकता है कि उसी का दूसरा रूप है। जब कोई चक्रवात आगे बढ़ता आता है तो उसके सामने यही वायु चलती है और अपने साथ बहुत-सी धूल व बालू उड़ा कर लेती आती है।

Levee (उन्नत कगार) बाढ़ के दिनों में नदी के जल के साथ घुली हुई मिट्टी बालू के किनारों पर जमा हो जाने से बन जाने वाले प्राकृतिक तट या किनारों को उन्नत कगार कहते हैं। जब बाढ़ का पानी उतर जाता है तो मिट्टी, बालू जमी रह जाती है और इस प्रकार बने उन्नत कगार बाढ़ के मैदानों के सबसे ऊँचे भाग होते हैं। कभी-कभी तो उन्नत कगारों की ऊँचाई और लम्बाई इतनी अधिक होती है कि नदी की सहायक धाराओं का मार्ग तक बदल जाता है। प्रत्येक बाढ़ के बाद उन्नत कगारों की ऊँचाई बराबर बढ़ती जाती है और चूँकि मिट्टी के जमते रहने से नदी की तली भी ऊँची होती जाती है, इसलिये अन्त में नदी की तली व उन्नत कगार दोनों ही आस-पास के भूभाग से ऊँचे हो जाते हैं।
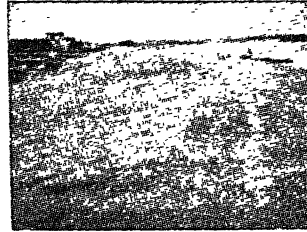
उन्नत कगार

ये उन्नत कगार मिसीसिपी की मध्य व निम्न घाटी, पो तथा ह्वांगहो में देखे जाते हैं। उत्तरी इटली में पो नदी की निम्न घाटियों में इन कगारों की ऊँचाई इतनी अधिक है कि नदी की सतह आस-पास के गाँवों के छत से भी ऊँची है। ये कगार नदी के द्वारा बहाकर लायी हुई मुलायम मिट्टी से बने होते हैं। इसलिये कभी-कभी बाढ़ का प्रवाह इतना प्रचण्ड होता है कि पानी के दबाव से ये कगार टूट जाते हैं। इनके टूट जाने पर नदी का पानी सारे प्रदेश में फैल जाता है और बड़ी हानि होती है।

कभी-कभी उन्नत कगारों पर नगर या कस्बे बस जाते हैं। अमरीका का न्यू ऑर्लियन्स इसी प्रकार का उदाहरण है। वहाँ पर प्राकृतिक कगार नदी तल से केवल कुछ ही फीट ऊँचा था और उसके एक ओर दलदली भूमि थी। जिन नदियों में अक्सर बाढ़ आया करती है वहाँ पर उन्नत कगारों को सीमेन्ट के बाँध बनाकर दृढ़ कर दिया गया है। मिसीसिपी की सहायक नदियों पर बाँध बनाकर उनका पानी मिसीसिपी में जाने से रोका गया है।

इन उन्नत कगारों को प्राकृतिक या स्वाभाविक बाँध भी कहते हैं। और एक मील में इनका ढाल ५ से १० फीट तक होता है। इनके बनने का मुख्य कारण यह है कि नदी द्वारा बहाकर लायी हुई मोटी बालू और कंकड़ तो तलैटी के समीप ही इकट्ठा हो जाती है और कई बार बाढ़ आ चुकने पर यह राशि दब-दबा कर कगार का रूप धारण कर लेती है।

Level Crossing (समतल लंघन) जब और जहाँ रेल की लाइन और सड़क एक दूसरे को आरपार लाँघती है, उस स्थान को समतल लंघन कहते हैं। रेल की लाइन को समतल लंघन पर फाटक द्वारा सड़क से अलग रखते हैं। जब कोई रेलगाड़ी आती होती है तो दोनों ओर के फाटकों को बन्द करके सड़क पर जाने वालों को रोक देते हैं। रेलगाड़ी के गुजर जाने के बाद फाटक उठ जाते हैं ताकि लोग लाइन को पार करके सड़क पर आ-जा सकें।

Levelling (समतलीकरण) (१) धरातल की रचना को देखने से विदित होता

है कि कहीं तो भूपटल ऊँचा है और कहीं नीचा। धरातल की असमानता को समान बनाने का कार्य समतलीकरण कहलाता है। ज्यों ही कोई भभाग समुद्रतल से बाहर को उठता है वाह्य शक्तियाँ उसे काट-छाँट कर समतल में लाने की कोशिश करती हैं।

(२) पैमाइश में अनेक प्रकार के यन्त्रों, ध्रुवघड़ी और मानदण्ड से काम लिया जाता है। इनको किसी ऊँची-नीची जगह पर रखकर प्रयोग नहीं किया जा सकता। अतः पैमाइश का काम या इन यन्त्रों को प्रयोग करने से पहिले इनको इस प्रकार से ठीक किया जाता है कि वे समतल पर आ जायँ। चार पाये वाले यन्त्रों में प्रत्येक पाये में घमने वाली या ऊपर-नीचे होने वाली घुंडियाँ लगी होती हैं। इन घुंडियों को घुमा-फिरा करके इन पायों को ऊँचा-नीचा कर लेते हैं जिससे कि उन पर जड़ा हुआ यन्त्र समतल पर आ जाय। जब यन्त्र समतल में आ जाता है तो उसके बीच पारा बिल्कुल मध्य में स्थिर हो जाता है जिससे प्रकट होता है कि यन्त्र समतल में आ गया। इस क्रिया को समतलीकरण कहते हैं।

Level of Saturation (**सम्पृक्त तल**) नीचे की ओर खिंचाव के कारण वर्षा का जल जहाँ तक हो सकता है, नीचे जाने का प्रयत्न करता है। भेद्य चट्टानों के छेदों से प्रवेश करता हुआ जल पृथ्वी के नीचे पहुँच जाता है परन्तु ऊपर के दबाव के कारण छेद छोटे होते जाते हैं और दूसरे यह कि प्रवेश्य चट्टानों के नीचे अप्रवेश्य चट्टानों की परत आ जाती है। फल यह होता है कि वर्षा के जल की भूमि में धँसने की एक सीमा है और प्रायः २५००-३००० फीट की गहराई के बाद जल न मिलता। अतः इस सीमा के ऊपर की सभी चट्टानें जल से ओत-प्रोत हो जाती हैं। इन चट्टानों को सम्पृक्त चट्टानें कहते हैं और इनकी ऊपरी सीमा को सम्पृक्त तल कहते हैं। (देखिये Water Table)

Liana (**लियाना**) भूमध्यरेखीय वन प्रदेशों में पेड़ों से लपटा हुआ एक पौधा पाया जाता है जिसे लियाना कहते हैं। लियाना का पौधा एक लता होती है जिसका डंठल मोटा व लकड़ी वाला होता है। यह लता पेड़ों के तनों पर लिपट जाती है और तने व शाखाओं को अपने में ऐंठता हुआ पेड के शिखर तक पहुँच जाती है कभी-कभी तो यह लता इतनी विकसित होकर फैल जाती है कि जिस पेड़ पर होकर चढ़ती है उसका सारा भोजन स्वयं अपहरण कर लेती है और पेड़ सूखकर खतम हो जाता है। इसको सहारा देनेवाला पेड जब सड़कर नष्ट हो जाता है तब भी लियाना उसी स्थान पर बनी रहती है। इसका कारण यह है कि लियाना के पार्श्व की शाखायें बड़ी दूर-दूर तक फैली रहती हैं और दूसरे पेड़ों की डालों व टहनियों से होती हुई एक चँदोवा सा बनाये रहती हैं।

Lignite (**लिगनाइट**) लिगनाइट निकृष्ट जाति का कोयला है जिसकी आकृति बहुत कुछ लकडी जैसी होती है। इसमें कार्बन का अंश केवल ४५ प्रतिशत ही होता है। यह कड़ा नहीं होता और खान से बाहर आते ही टुकडे-टुकड़े हो जाता है। जलते समय यह दुर्गन्ध देता है और साथ-साथ बहुत धुँआ निकलता है। अच्छी तरह न सुलगने की वजह से इसकी आँच धीमी होती है। इसका रंग भूरा होता है और इसी कारण कभी-कभी इसे भूरा कोयला भी कहते हैं।

इसके घटिया होने का मुख्य कारण यह है कि यह पृथ्वी के भीतर थोड़े समय तक ही रह पाता है और निर्माण क्रिया कि सभी स्थितियों से नहीं गुजर पाता। वास्तव में लिगनाइट को प्राणिज व वनस्पति निक्षेप से कोयला बनने की क्रिया की दूसरी सीढ़ी कह सकते हैं।

इस जाति का कोयला जर्मनी में बहुत मिलता है और इससे कोयले की ईंटें व कृत्रिम पेट्रोल बनाया जाता है। (देखिये Brown Coal)

Light Industry (छोटे-मोटे उद्योग) वे गौण उद्यम जो भारी उद्योग की श्रेणी में नहीं आते उन्हें छोटे-मोटे उद्योग कहते हैं। वास्तव में छोटे-मोटे उद्योगों को निम्नलिखित आधारों पर निश्चित किया जाता है—

(१) हयशक्ति की मात्रा, (२) कच्चे माल का हल्कापन, (३) तैयार वस्तु का हल्कापन और (४) काम में लगे हुए मजदूरों की संख्या।

Lighthouse (प्रकाश गृह) बहुधा चटानों या अन्य प्रकार के भयानक अवरोधों से भरे समुद्र में जहाजों को सतर्क करने के लिए एक उच्च स्थान से प्रकाश फेंका जाता है। इसे प्रकाश गृह कहते हैं। यह एक ऊँचा स्तम्भ सा होता है जिसके नीचे इसके रक्षक की कोठरी होती है और अन्दर से सीढ़ी लगी होती है ताकि ऊपर जाया जा सके। पहले तो ऊपर लकड़ी को जला कर या तेल की रोशनी करके प्रकाश किया जाता था परन्तु अब बहुत तेज विद्युत बल्बों को लगा कर लैम्प को इस प्रकार फिट करते हैं कि उसका प्रकाश दूर तक दिखलाई पड़ सके। इसका प्रकाश समुद्र पर तीस मील तक फैला रहता है और इसलिए इसमें करोड़ों बत्ती की ताकत के विद्युत बल्ब लगाये जाते हैं। जिन दिनों समुद्र पर कुहरा छाया रहता है तब इन्हीं प्रकाश गृहों से एक बिगुल बजाया जाता है जो मीलों दूर तक के जहाजों को सतर्क करता है।

प्रकाश गृहों से फेंका जाने वाला प्रकाश सतत व स्थायी नहीं होता। प्रकाशगृह का प्रकाश घूमता रहता है और उससे निकलनेवाली प्रकाश किरणों की संख्या व स्वभाव से समुद्री नाविक समझ लेते हैं कि वहाँ किस प्रकार का संकट है।

कुछ स्थान इतने एकान्त हैं कि वहाँ पर किसी प्रकार का मनुष्य रह ही नहीं सकता परन्तु साथ-साथ प्रकाशगृहों का होना भी बहुत जरूरी है। इसलिये वहाँ पर इस प्रकार के प्रकाश का प्रबन्ध होता है जिसे दूर से जलाया या बुझाया जा सके या जो स्वयं सूर्यास्त पर जल जाती है और सूर्य निकलने पर अपने आप बुझ जाती है। इसे दीप स्तंभ भी कहते हैं।

Light Ship (प्रकाश पोत) (१) समुद्र में ऐसे बहुत से स्थान होते हैं जहाँ किसी चट्टान या भूखंड के न होने के कारण प्रकाशगृहों का निर्माण असंभव होता है परन्तु वह प्रदेश ऐसे होते हैं जहाँ जहाजों को बचाना या सतर्क करना आवश्यक होता है। इसलिये वहाँ पर प्रकाश या अन्य प्रकार के संकेतों द्वारा चेतावनी देकर जहाजों को सावधान करने के लिए एक जहाज की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार के जहाज को प्रकाश पोत कहते हैं और इसके द्वारा वे ही कार्य किये जाते हैं जो प्रकाश गृह करता है। इसको दीप नौका भी कहते हैं।

(२) (हल्का जहाज) कभी-कभी मोटे तौर पर भार में हल्के, विस्तार में छोटे और चाल में तेज जहाजों को हल्का जहाज कहते हैं। इसके अन्तर्गत मछली मारने वाले, यात्रियों व माल को बन्दरगाह से बड़े जहाज तक पहुँचाने वाले तथा समुद्री कर के लिए जहाजों की जाँच-पड़ताल करने वाले छोटे जहाज होते हैं जो खुले समुद्र में नहीं जाते।

Limestone (चूने के पत्थर) जानवरों तथा पेड़ पौधों के अवशेषांश के धीरे-धीरे एकत्रित होते रहने से अक्सर सख्त चट्टाने बन जाती हैं। इनमें चूने तथा कार्बन की अधिकता होती है। चूने के पत्थर इसी प्रकार की चट्टान हैं और जैसा नाम से ही स्पष्ट है, इनमें चूने का अंश अधिक होता है। प्राणिज निक्षेप और पानी में मिले हुये चूने के परतों के रूप में इकट्ठा हो जाने से इसका निर्माण होता है। चूने के पत्थर उन्हीं समुद्रों में बनते हैं जहाँ जल में जीवों व वनस्पति के योग्य भोजन काफी मिल सके तथा जल

इतना गरम हो कि जीव व वनस्पति खूब पनप सकें। अतः इस प्रकार की चट्टान—चूने का पत्थर—उष्ण व शीतोष्ण कटिबंध के पिछले समुद्र में बनता है।

बालू, मिट्टी आदि के सम्मिश्रण से इस चट्टान के अनेक भेद हो जाते हैं जैसे खड़िया, सेल्खरी, डालमाइट इत्यादि। संगमरमर, ऊवाइट और कालसाइट इसी के रूपान्तरित रूप हैं। इसके अलावा चूने के पत्थर अनेक रंग व बनावट के होते हैं। जब यह शुद्ध दशा में रहता है तो इसका रंग सफेद होता है परन्तु मिश्रण के फलस्वरूप इसका रंग भूरा व काला तक हो जाता है। बनावट के दृष्टिकोण से यह छोटे-छोटे रवों वाली चट्टान से लेकर घोंघे और मूँगे के अस्थिपंजर से पूर्ण मोटे-मोटे ढोकों वाली तक हो सकती है। इसकी विशेषता यह है कि चाकू से इसे खुरचा जा सकता है और ठंढी तरल हाइड्रोक्लोरिक एसिड में यह फूल जाता है। कार्बन डाइ अक्साइड मिले वर्षा के जल में चूने का पत्थर घुल जाता है और फलतः अनेक प्रकार के स्थलरूपों का निर्माण हो जाता है। (देखिये Karst Region)

चूने का पत्थर भूतल पर बहुतायत से पाया जाता है और मनुष्यों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस पत्थर को जलाकर और बुझा कर सीमेंट बनाया जाता है। इससे लोहा गलाने में सहायता ली जाती है और यह इमारतें बनाने के काम में भी बहुत आता है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह बलुहे पत्थर या ग्रेनाइट की तरह कठोर नहीं होता और इसलिये इसे खोदकर निकालना व काट-छाँट कर गढ़ना अपेक्षाकृत आसान होता है।

चूने के पत्थर और खडिया से बहुधा ऊँची-नीची भूमि बन जाती है जिनमें गोलाकार टीले पाये जाते हैं। जहाँ चूने के पत्थर के साथ-साथ कठोर कंकड़ भी मिले पाये जाते हैं वहाँ इनका दृश्य बड़ा ही ऊबड़-खाबड़ होता है और उनमें बहुत सी कन्दरायें पायी जाती हैं तथा भूमि कम उपजाऊ होती है। इन दो रूपों के अलावा ऊलाइट रवेदार चूने का पत्थर होता है और डालमाइट में मैगनीशियम मिला रहता है। डालमाइट जल्दी चूर हो जाता है और इसलिये उसे इमारत बनाने में तो प्रयोग नहीं करते बल्कि लोहा गलाने में चूने के पत्थर के इसी रूप का विशेष महत्व है।

Line Squall (वायु विक्षोभ क्रम) स्थानीय व प्रदेशीय कारणों की वजह से वायुमंडल में परिवर्तन होते रहते हैं। फलतः ये वायु भँवर बढ़ते-बढ़ते तूफान का रूप धारण कर लेते हैं। ये तूफानी बवण्डर एकाएक उत्पन्न हो जाते हैं और चन्द मिनटों तक रहने के बाद फिर समाप्त हो जाते हैं। ये तूफान दिशा व क्षेत्र के मानें में बिल्कुल अनियमित होते हैं। इन्हें वायु विक्षोभ कहते हैं और कभी-कभी इनका क्रम ऐसा बँध जाता है कि ये वायु विक्षोभ से उत्पन्न तूफानी वायु काफी दूर तक—कभी-कभी सैकड़ों मील तक—एक साथ चलती रहती है। इसके चलने पर इसके मार्ग के प्रदेश में निचले घने बादलों की पंक्ति छा जाती है और सामान्य हवा की गति एकदम तेज हो जाती है। साथ-साथ वायुमंडल में अनेकों भयानक परिवर्तन हो जाते हैं।

वायु विक्षोभ क्रम वहाँ पर उत्पन्न होता है जहाँ गरम हवा ठंढी हवा के ऊपर चढ़कर ठंढी हवा के कुछ भाग को हटा देगी। इसी कारण चक्रवात के शीत सीमान्त (Cold Front) में वायु विक्षोभ क्रम की बहुलता रहती है। गर्म हवा के ठंढी हवा के ऊपर चढ़ने से बादल बन जाते हैं और साथ-साथ भारी वर्षा होती है या ओले गिरते हैं। हवा की गति में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता है, वायुभार बढ़ जाता है और सीमान्त के गुजरने पर तापक्रम निम्न हो जाता है। (देखिये Cold Front)

Lined well (पक्का कुआँ) भूगर्भ स्थित जल को प्राप्त करने के लिए जब कुआँ इस प्रकार बनाया जाना है कि उसकी दीवारें या तो चूने-पत्थर की बनी हों या चट्टानों के

मध्य बना होने के कारण वे चट्टानों की बनी रहे तो इस प्रकार के कुयें को पक्का कुआँ कहते हैं। इस प्रकार के कुयें को बनाने में खर्चा तो जरूर अधिक आता है परन्तु एक विशिष्ट लाभ यह है कि इससे कुयें का जीवन बढ़ जाता है और कच्ची मिट्टी के गिरते रहने से जल के गन्दा होने का डर नहीं होता। इसलिए प्राय: वे ही कुयें पक्का बनाये जाते हैं जिनमें पानी का सतत प्रवाह हो और जिनमें रहट आदि से पानी निकाला जाता हो। पीने के लिए पानी देने वाले कुओं को भी पक्का ही बनाया जाता है।

Lingua Franca (प्रचलित भाषा) विस्तृत क्षेत्र में विभिन्न जातियों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा को प्रचलित भाषा कहते हैं। यह भाषा लोगों की मातृभाषा से भिन्न हो सकती है परन्तु इसमें एकता का अंश यह होता है कि इसे या तो सभी लोग बोलते हैं या समझ सकते हैं। इस समय अँग्रेजी भाषा सबसे महत्वपूर्ण प्रचलित भाषा है और संसार के आधे से अधिक लोग इसे प्रयोग में लाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रचलित अन्य भाषाओं के अन्य उदाहरण चीनी, मलाया और स्वाहिली हैं।

Lithosphere (स्थलमण्डल) पृथ्वी के अन्तरतम भाग या परिमाण मण्डल के ऊपर चट्टानों का ठोस पटल है जिस पर हम लोग रहते हैं। पृथ्वी का यह ठोस आवरण या सबसे ऊपरी परत स्थलमण्डल कहलाती है। स्थलमण्डल का जो भाग महासागरों में डूबा हुआ है उसकी विवेचना करना प्राय: असंभव है। इसलिए इसके अन्तर्गत हम केवल उस भाग की विवेचना करते हैं जिनसे शुष्क स्थल—महाद्वीप बने हुए हैं।

यह स्थलमण्डल विभिन्न प्रकार की चट्टानों से बना है और उन चट्टानों के ऊपर बारीक मिट्टी की तह पड़ी हुई है। कहीं तो यह तह केवल दो-चार इंच ही मोटी है परन्तु कहीं-कहीं इसकी मोटाई सैकड़ों फीट है। कठोर चट्टानों का आवरण तो कई मील मोटा है और उसके ऊपर मिट्टी की तह है जो कई सौ फीट मोटी है। यह मिट्टी इन्हीं चट्टानों का चूर्ण है और प्राकृतिक बाह्य शक्तियों के घात-प्रतिघात से बनी है। इस प्रकार स्थलमण्डल पर अनेकों स्थलरूप पाये जाते हैं जिनके कारण इसका आकार विभिन्न हो गया है।

सम्पूर्ण पृथ्वी या धरातल के २९ प्रतिशत भाग में ही स्थलमण्डल का विस्तार है और शेष ७२ प्रतिशत भाग पर जल ही जल है। इस स्थलमण्डल का दो-तिहाई भाग उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है और एक-तिहाई दक्षिणी गोलार्द्ध में।

Littoral (तटवर्त्ती) तटवर्त्ती पारिभाषिक शब्द को कई अर्थों में प्रयोग में लाया जाता है जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—(१) तट से संबंधित जैसे तटवर्ती स्थिति। इसके अन्तर्गत वे प्रदेश आते हैं जो समुद्र के किनारे के द्वीपीय भागों में बसे हों जैसे नार्वे, स्वीडन और बाल्टिक रियासतें या ऐसे तटवर्त्ती निक्षेप जिसके अन्तर्गत वे निक्षेप आते हैं जो लहरों द्वारा समुद्र तट पर इकट्ठा कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार लहरों का क्षयात्मक कार्य भी तटवर्ती प्रदेश में ही सबसे प्रखर रहता है और फलस्वरूप संकीर्ण मैदान तैयार हो जाता है।

(२) समुद्रतट के बराबर भूमि की पट्टी को तटवर्ती प्रदेश कहते हैं। इसके अन्तर्गत वह भूमि आती है जो ज्वार और भाटे के जल तल के बीच में स्थित रहती है। महासागर के तटवर्ती प्रदेश में वह उथला भाग शामिल रहता है जो समुद्रतट के बराबर स्थित रहता है। इसमें बड़ी ही अच्छी वनस्पति पाई जाती है और उसके सहारे काफी जीव-जन्तु आकर रहने लगते हैं। शीतोष्ण कटिबंध के तटवर्ती प्रदेशों को महासागरीय तट कहते हैं और इसमें संसार के सर्व प्रमुख मछली-मार प्रदेश पाये जाते हैं।

Llanos (लानोस) दक्षिणी अमरीका में अमेजन नदी के बेसिन के उत्तर में ओरी-

निको की घाटी और गायना के पहाड़ी ढालों पर पाये जाने वाले उष्णकटिबंधीय घास के मैदान को लानोस कहते हैं। (देखिये Savanah)

Load of the River (नदी जल का भार) नदी के पानी के साथ बहते हुए या लुढ़कते हुए चलने वाले कंकड़-पत्थर, बालू और मिट्टी को नदी जल का भार कहते हैं। मौसम की शक्तियों के द्वारा विखण्डन कार्य से चट्टानों के छोटे-बड़े अनेक टुकडे हो जाते हैं और जब नदियों का जल इनके ऊपर से बहता हुआ आता है तो अपनी प्रवाह शक्ति से इन शिलखंडों को ढोने लगता है। ये कंकड़-पत्थर नदी जल का भार बनाते हैं और तीन प्रकार से ढोये जाते हैं—(१) कुछ नमकों के कण तो नदी के जल में घुले रहते हैं। (२) महीन कणों वाली मिट्टी व बालू उसके पानी में मिली हुई रहती हैं और इसलिए नदी का जल मटमैला व दलदली दिखलाई पड़ता है। (३) कंकड और पत्थर के बड़े-बड़े टुकडे भारी होने के कारण नदी की तलैटी में रगड़ खाते हुए लुढकते रहते हैं।

इस ढुलाई के कारण नदी दो प्रकार का काम करती है। प्रथम तो नदी अपने ढोये हुए मिट्टी, कंकड़ की सहायता से अपनी तलैटी को गहरा और अपने किनारों को काट-छाँट कर घाटी को चौड़ा करती जाती है। दूसरे ये टुकडे बहते पानी की तेज धारा में पड़ कर आपस में टकराते हैं और चूर-चूर हो जाते हैं। बडे-बडे टुकड़े आपस में घिसघिसा कर नकीले और पतली धार वाले बन जाते हैं। धीरे-धीरे ये ही रोड़े व बजरी बन जाते हैं और अन्त में बालू के रूप में बदल जाते हैं।

नदी जल की मात्रा और वेग के ऊपर ही उसकी भार अपनयन शक्ति निर्भर रहती है। जिस नदी की धारा वेगवती होगी तथा जिसमें जल की मात्रा अधिक होगी उसमें अधिक कंकड़, पत्थर, मिट्टी, बालू आदि को ढो ले जा सकेगा। जल की मात्रा और वेग के अलावा शिलाखंडों के विस्तार का भी नदी जल के भार पर असर पडता है। जब नदी जल का भार पूर्ण होता है तो वह न तो काट-छाँट का ही काम करती है और नही निक्षेप का। उस समय वह केवल अपनी घाटी बनाती रहती है। परन्तु जब नदी जल द्वारा ढोया हुआ भार पूर्ण से अधिक होता है तो नदी इस भार सामग्री को स्थान-स्थान पर जमा करके अनेक स्थल रूपों का निर्माण करती है। जब पूर्ण भार से कम शिलाखंड ढोये जाते हैं तो नदी का जल अपने किनारों को काटता-छाँटता रहता है और नदी अपनी तलैटी को भी गहरा करती रहती है।

Loam (दोमट) बलुही और चिकनी मिट्टी के मिश्रण से बनी मिट्टी को दोमट कहते हैं। इसके कारण न तो बहुत मोटे होते हैं और न बहुत बारीक। साथ-साथ बहाकर लाई हुई मिट्टी और वनस्पति का अंश भी इसमें मिला रहता है। अतएव यह बड़ी उपजाऊ होती है और इसमें पौधों के लिए आवश्यक तत्व काफी होते हैं। इसमें पानी आसानी से सोख जाता है और स्थिर भी रहता है। इसीलिए सिंचाई की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। पौधों की जड़ें इसमें आसानी से अन्दर तक जा सकती हैं और हल चलाना भी आसान होता है। चूँकि इसमें दोनों मिट्टियों के गुण पाये जाते हैं इसलिए दोमट मिट्टी सभी प्रकार की फसलों के लिए उपयुक्त है।

Local Time (स्थानीय समय) पृथ्वी के धरातल पर किसी स्थान का समय जब सूर्य की स्थिति के आधार पर निकाला जाता है तो उसे स्थानीय समय कहते हैं। जब सूर्य किसी स्थान की मध्यान्ह रेखा को पार करने लगता है तो स्थानीय समय के अनुसार उस स्थान पर उस समय दोपहर होता है यानी दिन का बारह बजता है। तात्पर्य यह है कि जब सूर्य किसी स्थान के शिरोबिन्दु पर पहुँचता है तो वहाँ का स्थानीय समय दोपहर होता है। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर अपने देशान्तर के अनुसार जो समय होता है उसे वहाँ का स्थानीय

समय कहते हैं। पृथ्वी की दैनिक गति या अपनी धुरी पर घूमने के कारण एक देशान्तर रेखा पर स्थित सभी स्थानों पर एक ही समय दोपहर होगा और उन सब का स्थानीय समय एक होगा। विभिन्न देशान्तरों पर स्थित स्थानों का स्थानीय समय भिन्न होगा और जो देशान्तर पूर्व में है वहाँ दोपहर जल्दी होगा। तात्पर्य यह है कि अपेक्षाकृत पश्चिमी देशान्तर पर स्थित स्थान के स्थानीय समय के मुकाबले इस पूर्वी देशान्तर के स्थान का स्थानीय समय आगे या तेज होगा। चूँकि पृथ्वी २४ घंटे में ३६०° का चक्कर लगाती है इसलिए प्रत्येक १५° देशान्तर पर स्थानीय समय में १ घंटे का अन्तर आ जायेगा। यदि कोई मनुष्य पूर्व या पश्चिम की ओर यात्रा करे तो उसे प्रत्येक देशान्तर के बाद अपनी घड़ी को ४ मिनट आगे या पीछे करना पड़ेगा।

किसी जगह का स्थानीय समय जानने के लिए धूपघड़ी या सेक्सटान्ट का प्रयोग करते हैं।

Location of Industry (उद्योग धंधों की स्थिति) किसी देश की औद्योगिक क्रियाओं के भौगोलिक वितरण को उद्योग-धंधों की स्थिति कहते हैं। उद्योग-धन्धों की स्थिति निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है—(१) कच्चे माल की उपलब्धता, (२) जलवायु, (३) मजदूरों की सुविधा, (४) यातायात के साधनों की व्यवस्था, (५) औद्योगिक शक्ति के स्रोत, (६) समीप में अच्छी मंडियों का होना, (७) पूँजी का प्रबन्ध तथा सरकार का संरक्षण तथा (८) पुनरारम्भ द्वारा प्रगति।

Localisation of Industry (उद्योग-धंधों का स्थानीयकरण) किसी उद्योग-धन्धे का कुछ विशेष जिलों या प्रदेशों में केन्द्रित होना उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण कहलाता है। तर जलवायु और नमी के कारण ही इंगलैंड का सूती कपड़ा उद्योग लंकाशायर प्रदेश में केन्द्रित है। इसी प्रकार शुष्क जलवायु तथा भेड़ों के बाल की उपलब्धता के कारण ऊनी वस्त्र व्यवसाय यार्कशायर प्रदेश में केन्द्रीभूत हो गया है।

धंधे किसी स्थान विशेष पर क्यों पनपते हैं और केन्द्रित होते हैं इसका कारण अलग-अलग धंधों के लिए अलग-अलग होता है।

साधारणतया शक्ति के साधन और विशेषकर कोयले की खानों के समीप ही उद्योग-धंधे स्थापित होते हैं। जिन धंधों का कच्चा माल भारी और कम मूल्यवान होता है वे कच्चा माल उत्पन्न करने वाले प्रदेश में ही स्थापित किये जाते हैं, जैसे लकड़ी का धंधा। किसी-किसी धंधे में कुशल कारीगरों का बहुत महत्व है। ऐसे धन्धे उन्हीं स्थानों पर केन्द्रित हो जाते हैं जहाँ कुशल मजदूर मिलते हैं; जैसे जोधपुर का छपाई का धंधा।

Local winds (स्थानीय पवन) पृथ्वी पर नियमित तापक्रम व वायुभार व्यवस्था के कारण एक निश्चित वायुव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। परन्तु बहुधा जल-स्थल के वितरण की असमानता के कारण इस वायु व्यवस्था में कुछ स्थानीय परिवर्तन हो जाते हैं। इसके फल-स्वरूप चल निकलने वाली वायु को स्थानीय पवन कहते हैं। समुद्री व स्थलीय पवन, पर्वतीय व घाटी वायु तथा मानसूनी हवायें इसी श्रेणी में आते हैं। इसके अलावा संसार के विभिन्न भागों में चक्रवातों के गुजरने पर स्थानीय कारणों से उत्पन्न कुछ विशेष प्रकार का पवन चलने लगता है जिसका क्षेत्र व विस्तार वहीं तक सीमित रहता है। सिरको, बोरा, फोन और ब्लियार्ड आदि इसी प्रकार के विभिन्न स्थानीय पवन हैं जो पृथ्वी के देश प्रदेश में स्थानीय रूप से प्रवाहित होती रहती हैं। (देखिये Monsoon, Land and Sea breeze, Mountain and valley winds, Siro, Bora, Foehn and Blizzard)

Loch (लॉक) स्काटलैंड में झील, फियार्ड या समुद्र की क शाखा को लॉक

कहते हैं। वास्तव में ये जलाशय हिमनदी द्वारा बनाये हुए गड्ढों में पाये जाते हैं या वहाँ पर पाये जाते हैं जहाँ हिम नदियों के पीछे हटने पर छोड़े गये मोरेन के कारण किसी पहाड़ी नदी का प्रवाह रुक गया। इन लौंक जलाशयों के तीन भेद हैं—(१) टार्न जलाशय जो हिम-नदी के कार्य द्वारा बने हैं, (२) ग्लेन लौंक, जो आकार व विस्तार में बड़े होते हैं तथा घाटियों के गर्त में पाये जाते हैं और (३) समुद्री लौंक, जिन्हें फियार्ड भी कहते हैं, पश्चिमी पर्वतीय तट पर पाये जाते हैं और आकार में सँकरे तथा विस्तार में लम्बे होते हैं।

Lode (खनिज ढोका) अधिकतर खनिज आग्नेय व दानेदार चट्टानों में पाये जाते हैं और बहुत प्रकार की मिट्टी आदि के साथ मिले हुए पाये जाते हैं। वास्तव में खनिज उत्पादक चट्टानों में मिट्टी आदि से बने ढोके पाये जाते हैं जिनमें बहुत सी समानान्तर दरारें होती हैं और इन दरारों में खनिज पदार्थ कच्ची धातु के रूप में भरा पाया जाता है। इस प्रकार के ढोकों को खनिज ढोका कहते हैं। भिन्न-भिन्न उपायों से विभिन्न प्रकार की अशुद्धता को अलग करके कच्ची धातु प्राप्त करते हैं और फिर उसे गलाकर के साफ करते हैं तब कहीं खनिज (शुद्ध) प्राप्त हो पाता है।

Loess (लोएस) हवा द्वारा जमा की हुई बारीक मिट्टी या दोमट को लोएस कहते हैं। मध्य यूरोप, उत्तरी चीन और मिसीसिपी की घाटी में हवा ने बारीक कण वाली मिट्टी बिछा दी है। इन प्रदेशों में यह मिट्टी हवा द्वारा शुष्क पठारों से उड़ाकर लाई गई है। उत्तरी चीन में यह मिट्टी कहीं-कहीं २०० फीट से भी अधिक गहरी है और एक विस्तृत क्षेत्र को घेरे हुए है। उत्तरी चीन की लोएस बारीक दोमट है और उसमें चूने का अंश बहुत अधिक है। इसका रंग हल्का पीला होता है। अन्य भागों में इसकी गहराई २० फीट से ४० फीट तक है और कहीं-कहीं १०० फीट तक पहुँच गई है। रूस में लोएस निक्षेप में वनस्पति के अंश का समावेश हो जाने से उपजाऊ काली मिट्टी बन गई है।

लोएस में कई विशेषताएँ पायी जाती हैं। (१) इसमें परत नहीं होते बल्कि ढेर के रूप में एकत्र हो जाती है। अतएव नदियों के किनारों पर इसके ढेर से एक लम्बरूप दीवार सी खड़ी हो जाती है। (२) इसमें बहुत सी पतली नलियाँ बनी होती हैं जो ऊपर से नीचे को लम्बरूप जाती है। यह नदियाँ शायद जड़ों के अवशेषांश के फँसे रह जाने से बन गई हैं। (३) इस मिट्टी के कण बहुत बारीक होते हैं। इससे ऐसा अनुमान है कि यह मिट्टी महाद्वीपीय हिम आवरण द्वारा घर्षण से बनी होगी। (४) यह अत्यधिक प्रवेश्य होती है। यह पानी को बहुत जल्दी सोख लेती है और ऊपरी तल फौरन सूख जाता है। (५) नदियाँ इसको बड़ी आसानी से काट लेती हैं और इसीलिए इस मिट्टी में घाटियाँ बहुत गहरी होती हैं तथा उनकी घाटी की दीवार लम्बरूप खड़ी होती है। (६) वैसे तो लोएस प्रदेश प्रायः शुष्क पड़ा रहता है परन्तु सिंचाई का प्रबन्ध हो जाने पर यह बड़ी उपजाऊ सिद्ध होती है।

Longitude (देशान्तर) भूमध्य रेखा पर पूर्व या पश्चिम की ओर की कोणिक दूरी को देशान्तर कहते हैं। यदि हम भूमध्य रेखा तथा किसी अक्षांश रेखा पर चारों ओर चक्कर लगायें तो एक पूर्ण वृत अथवा ३६० अंश का चक्कर लगाना पड़ेगा। इसलिए भूमध्यरेखा को ३६० छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर सकते हैं। तब प्रत्येक भाग के विन्दु से होती हुई रेखायें उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक खींचते हैं। इनको हम देशान्तर रेखायें कहते हैं।

सन १८८४ से ग्रीनविच होती हुई जो देशांतर है उसे प्रधान मध्यान्ह रेखा कहते हैं और उस पर शून्य या जीरो नम्बर डालते हैं। इस देशान्तर के पूर्व में १८०° तक पूर्वी देशान्तर

और पश्चिम में पश्चिमी देशान्तर कहे जाते हैं। १८०° पूर्वी और पश्चिमी देशान्तर रेखा एक ही है।

चूँकि अक्षांश रेखायें भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ने पर बराबर छोटी होती जाती है, इसलिए देशान्तर रेखा का प्रत्येक अंश भी भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ने पर छोटा होता जाता है। अक्षांश के अंशों का अन्तर तो समस्त पृथ्वी पर बराबर होता है परन्तु देशान्तर के अंशों का अन्तर ज्यों-ज्यों हम भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाते हैं त्यों-त्यों कम होता जाता है। दो देशान्तर रेखाओं के बीच की सबसे अधिक दूरी भूमध्य रेखा पर होती है। भूमध्य रेखा की लम्बाई २५००० मील है। इसलिए भूमध्यरेखा पर देशान्तर के एक अंश में २५०००/३६० = ६९ मील होते हैं। इस प्रकार भूमध्यरेखा पर इसकी दूरी बहुत कुछ अक्षांश के एक अंश के बराबर होती है परंतु ३०° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश पर देशान्तर के एक अंश की लंबाई केवल ६० मील ही रह जाती है। ६०° डिग्री उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश की परिधि केवल १२,५०० मील है। इसलिए यहाँ देशान्तर के एक अंश में केवल ३४½ मील (१२५००/३६०) ही होंगे। इसी प्रकार ८० डिग्री उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश पर एक देशान्तर अंश में केवल १२ मील रह जाते हैं और ध्रुवों पर यह शून्य हो जाती है।

पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व को घूमने से प्रत्येक देशान्तर बारी-बारी से सूर्य के सामने पड़ता है और इसी कारण देशान्तर और समय के बीच संबंध होता है। प्रत्येक देशान्तर पार करने पर ४ मिनट का फरक पड़ जाता है। किसी स्थान के स्थानीय समय और ग्रीनविच के प्रामाणिक समय के बीच का अन्तर निकाल कर वहाँ के देशान्तर का पता लगाया जा सकता है।

Longitudinal Drainage (समानान्तर जल प्रवाह) जब किसी प्रदेश में नदियों का प्रवाह पर्वत श्रेणियों के साथ-साथ उसी दिशा में होता रहता है तो इस व्यवस्था को समानान्तर जल प्रवाह कहते हैं। हिमालय प्रदेश का जल प्रवाह इसी प्रकार का है। गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि का प्रवाह पर्वतीय प्रदेश में श्रेणियों के समानान्तर है।

Longitudinal Valley (**समानान्तर घाटी**) जब कोई नदी पर्वतों के बीच श्रेणियों के समानान्तर घाटी बनाती है तो उस प्रकार की घाटी को समानान्तर घाटी कहते हैं। इस प्रकार की घाटी के दोनों ओर समानान्तर पर्वत श्रेणियाँ होती हैं और घाटी अपेक्षाकृत काफी चौड़ी होती है। नेपाल इसी प्रकार की समानान्तर घाटी में बसा है और काश्मीर भी एक समानान्तर घाटी ही है।

Lough (**लफ**) आयरलैंड में झील, फीयार्ड, निमग्न घाटी तथा समुद्री शाखा को लफ कहते हैं।

Low (**निम्नभार गर्त**) जिस प्रदेश में आसपास का प्रदेश की अपेक्षा वायुभार कम होता है उसे निम्नभार गर्त कहते हैं। चक्रवात के केन्द्र को भी निम्नभार गर्त कहते हैं। (देखिये **Cyclone**)

ये निम्नभार गर्त निम्नलिखित तीन कारणों से बनते हैं :—

(१) गर्म जलाशयों के ऊपर जब उनके आसपास के भूखंड अपेक्षाकृत ठंढे होते हैं।

(२) गर्म भूखण्डों या प्रायद्वीपों पर जब उनके आसपास के जलप्रदेश अपेक्षाकृत ठंढे रहते हैं।

(३) धरातल से उठने वाले संवाहन धाराओं के द्वारा

(४) व्यापारिक व पछुआ हवाओं की व्यवस्था व प्रेटी में हेरफेर होने पर ।

प्रथम प्रकार से उत्पन्न निम्नभार गर्त ग्रीनलैण्ड दक्षिण-पूर्व और आइसलैंड के दक्षिण -पश्चिम में पाये जाते हैं। नार्वीजयन सागर और ओखोटस्क उत्तरी गोलार्द्ध में तथा रॉस और वेन्डल सागर दक्षिणी गोलार्द्ध में इसी प्रकार के अन्य प्रदेश हैं। दूसरे प्रकार के निम्न भार गर्त स्पेन प्रायद्वीप और आलास्का में गर्मी के मौसम में उत्पन्न हो जाते हैं। उत्तरी-पश्चिमी आस्ट्रेलिया और अमरीका के बड़े मैदानों पर भी निम्नभार गर्त बन जाते है। तीसरे प्रकार से उत्पन्न निम्नभार गर्त भ्रमणशील होते है और चौथे प्रकार के निम्नभार गर्त बहुत कुछ स्थायी होते हैं। उनके प्रधान क्षेत्र हैं भूमध्य रेखीय प्रदेश, अनटार्क-टिक और आर्कटिक प्रदेश।

Low clouds (**निम्न मेघ**) १०,००० फीट की ऊँचाई तक पायी जाने वाली मेघ राशि को निम्न मेघ कहते हैं। ये प्रायः निम्नलिखित पाँच प्रकार के होते है—(१) काले-काले गोलाकार मेघ जो लहर या रेखाओं की तरह फैले रहते है और तह में लपेटे हुए मालूम पड़ते हैं। कभी-कभी इनके किनारे मिल जाते हैं और ये संपूर्ण आकाश में छा जाते हैं, इन्हें स्ट्रैटो क्यूमुलस कहते हैं। (२) काले भूरे रंग के मेघों की एक परत काफी नीचे को छायी हुई मालूम पड़ती है। प्रायः इनसे ही वर्षा होती है और इन्हें निम्बो स्ट्राटस मेघ कहते हैं। (३) घने बादल इस प्रकार छा जाते हैं कि उनका आधार तो समानान्तर होता है परन्तु ऊपर की ओर गुम्बद की तरह उठे रहते हैं। इन्हें क्यूमुलस मेघ कहते हैं। (४) तूफान या गरज वाले मेघ जिन्हें क्यूमुलो निम्बस कहते हैं। इनके आधार भाग में वर्फ या वर्षा रहती है लेकिन ऊपर की सतह बहुत ऊँचे गुम्बद की तरह उठी रहती है। ये मेघ देखने में पर्वत या ऊँची मीनार के सदृश्य देख पड़ते हैं। (५) सबसे निम्न मेघ को स्ट्राटस कहते हैं और ये उठे हुये कुहरे के द्रवित हो जाने से बन जाते हैं। इनका आकार नियमित परतों या चद्दर की तरह रहता है।

Lower Plain (**निचला मैदान**) नदी घाटी के निम्नभाग को जहाँ नदी की चाल धीमी पड़ जाती है क्योंकि यहाँ पर भूमि का ढाल बहुत क्रमशः होता है, निचला मैदान कहते हैं। इसमें नदी के बाढ़ का मैदान और डेल्टा प्रदेश शामिल है। नदी का मार्ग घमावदार हो जाता है और नदी का रचनात्मक कार्य प्रारंभ हो जाता है। नदी द्वारा निक्षेप के कारण उसका मार्ग इधर-उधर टेढा होता जाता है और साथ-साथ जमाव के फलस्वरूप अनेक प्रकार के दृश्य बन जाते हैं। (देखिये **Flood Plain Delta**)

Lowland (**निम्न प्रदेश**) किसी क्षेत्र में यदि कहीं उच्च पर्वतीय प्रदेश होते हैं तो कहीं निचले मैदान। इन निचले मैदानों को निम्न प्रदेश कहते हैं। संसार के इन निचले स्थल भागों को मैदान कहते हैं और इनका तल प्रायः सम होता है। इन समतल भूभागों के ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे भागों में ५०० फीट से अधिक का अन्तर नहीं होता तथा इनका ढाल क्रमश. होता है। संसार के ये निम्न प्रदेश समुद्रतल से विभिन्न ऊँचाई पर स्थित हैं। कहीं तो ये समुद्रतल से बहुत काफी ऊँचाई पर होते हैं और कहीं समुद्रतल से नीचे हैं।

ये निम्न प्रदेश आवरण क्षय तथा निक्षेप एवं भूपटल की गतियों से बनते हैं। ऊँचे भागों के घिस जाने, झीलों के भर जाने. नदियों के निक्षेप से या पृथ्वी की गर्त के फलस्वरूप समु के भीतर से कुछ भाग उठ आने से इन निम्न प्रदेशों का निर्माण हो जाता है।

संसार की सभ्यता के विकास और आर्थिक उन्नति में विभिन्न निम्न प्रदेशों का बहुत महत्व रहा है। खेती के लिए अनुकूल वातावरण और गमनागमन की सुविधा के कारण ये निम्न प्रदेश संसार के सबसे घने वसे भाग हैं।

Loxodrome (लाक्सोड्रोम) पृथ्वी के धरातल पर खींची गई वह रेखा जो सभी देशान्तर रेखाओं को एक कोण पर काटती है उसे लाक्सोड्रोम कहते हैं। इस रेखा को रम्ब रेखा भी कहते हैं। वह जहाज जो इस प्रकार की रेखा पर चलती है उसके मार्ग को रम्ब रेखा मार्ग कहते हैं। यदि जहाज कहीं से उत्तर-पूर्व की ओर जा रहा है तो उसकी संपूर्ण यात्रा में उसकी दिशा उत्तर-पूर्व को ही बनी रहेगी। यदि यात्रा के दोनों बिन्दु भूमध्य रेखा के समीप हुए या करीब-करीब एक ही देशान्तर में स्थित हुए तो रम्ब रेखा या लॉक्सोड्रोम मार्ग तथा दीर्घ वृत मार्ग में कोई विशेष अन्तर नहीं होगा। लेकिन उच्च अक्षांशों में जब एक बिन्दु दूसरे से काफी दूर वाले देशान्तर पर स्थित हो तो लाक्सोड्रोम मार्ग दीर्घवृत्त मार्ग की अपेक्षा काफ़ी बड़ा होता है। मारकेटर मानचित्रांकन में लाक्सोड्रोम को एक सीधी रेखा द्वारा बनाते हैं।

Lumbering (लकड़ी काटना) प्रत्येक देश में वन पाये जाते हैं और ये बहुत बड़ी राष्ट्रीय सम्पति है। इनकी सबसे महत्वपूर्ण उपज लकड़ी है। इसके अलावा बहुत से मसाले, फल, लाख, गोंद व तेल आदि को वनों से ही प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार संसार के विविध कार्यों के लिए व्यापारिक लकड़ी वनों से ही मिलती है। ओक, चेस्टनट, पोपलर, वालनट, महोगनी और सागौन की लकड़ी कठोर होती है और इमारतों, जहाजों तथा मेज-कुर्सी बनाने में प्रयोग की जाती है। उत्तरी अक्षांशों के नुकीली पत्ती वाले जंगलों से चीड़, फर, स्प्रूस, लार्ज और सीआर की लकड़ी प्राप्त होती है। यह लकड़ी मुलायम होती है और इस नरम लकड़ी की माँग कागज की माँग के साथ बहुत बढ़ गई है। नरम लकड़ी की लुब्दी से कागज बनाया जाता है, इसी के आधार पर दियासलाई व माल बन्द करने के डिब्बों का उद्योग भी बढ़ गया है। विभिन्न उद्योग-धंधों के लिए इस लकड़ी को वन प्रदेशों से प्राप्त करना और उन्हें कारखानों तक पहुँचाने के धंधों को लकड़ी काटना कहते हैं।

लकड़ी काटने के धंधों के लिये दो बातों की आवश्यकता होती है—एक तो मजदूरों की और दूसरे यातायात के उचित साधनों की। यदि वन प्रदेश में ही जलप्रपात हो तो और भी अच्छा है क्योंकि जलविद्युत की शक्ति से वनों को काटने, वृक्षों को चीरने आदि की सुविधा हो जाती है और पास में ही लकड़ी चीरने या रन्दने के कारखाने स्थापित हो जाते हैं। लकड़ी एक भारी तथा कम मूल्य की वस्तु है। इसलिए यदि मंडियाँ समीप में ही हों तो और भी अच्छा रहता है। वनों में काम करना कोई आसान नहीं होता। इसलिए यदि पेड़ इकट्ठा एक ही प्रदेश में मिलें तो उन्हें ढूँढने में समय नष्ट नहीं करना पड़ता।

शीतोष्ण प्रदेशों के वनों में लकड़ी काटने का व्यवसाय विशेष उन्नति कर गया है। इसके कई कारण हैं—(१) इन वनों में नरम लकड़ी के वृक्ष मिलते हैं जिनका व्यापारिक दृष्टि से विशेष महत्व है। (२) इन वनों में झाड़ी, झुरमुट तथा लतायें नहीं होतीं। साथ-साथ जाड़े में गिर कर बर्फ जम जाती है और लकड़ी को वनों से ले जाने के लिए सुगम मार्ग बन जाता है। ये लट्ठे बर्फ के ऊपर से घसीट कर जमी हुई नदियों पर डाल दिये जाते हैं और जब बर्फ पिघलती है तो ये लट्ठे बहते हुए नीचे कारखानों तक बहुत कम भाड़े पर पहुँच जाते हैं। कहीं-कहीं लकड़ी को काटने के स्थान से कारखानों तक पहुँचाने के लिये रस्सियों या मोटे तारों का प्रयोग किया जाता है जो यन्त्र-संचालित होते हैं। (३) शीतोष्ण प्रदेशों में जाड़ा अधिक पड़ने के कारण खेती का धंधा बिल्कुल ठप हो जाता है और इस कारण उन दिनों में खेती में लगे हुए लोग वनों में लकड़ी काटने का काम करते हैं और उन्हें मजदूरी भी कम देनी पड़ती है। (४) शीतोष्ण कटिबंध के वनों में कुछ पेड़ बहुत विस्तृत क्षेत्र में पाये जाते हैं और इसलिए उन्हें काटने में सुविधा रहती है। (५) अधिकतर शीतोष्ण वन प्रदेशों में जलप्रपात

मिलते हैं और कनाडा तथा नार्वे में जलशक्ति की अधिकता के कारण ही वहाँ लकड़ी काटने का धंधा इतना उन्नति कर गया है। (६) शीतोष्ण कटिबन्ध में एक और भी सुविधा है। वहाँ के औद्योगिक केन्द्र वनप्रदेशों के समीप ही हैं। इसलिए लकड़ी को दूर नहीं भेजना पड़ता।

उष्णकटिबंधीय वन प्रदेशों में नदियों के द्वारा लकड़ी बहाने की सुविधा तो होती है, मजदूरी भी सस्ती होती है तथा महोगनी, सागौन और आबनूस जैसी बहुत उपयोगी लकड़ियाँ भी मिलती हैं परन्तु निम्नलिखित असुविधाओं के कारण लकड़ी काटने का उद्यम बहुत उन्नति नहीं कर सका है—(१) छोटी-छोटी झाड़ियों व लताओं से वन इस प्रकार घिरे रहते हैं और भूमि पर इतना दलदल पाया जाता है कि वनों में चलना और लकड़ी को लाना कठिन हो जाता है। (२) जलवायु खराब होने के कारण मजदूर वनों में काम करने को तैयार नहीं होते। (३) भिन्न-भिन्न तरह के वृक्ष एक साथ उगे मिलते हैं और उपयोगी वृक्ष बहुत दूर-दूर छितरे मिलते हैं। उनको घने वन में ढूँढ़ने में बहुत समय और परिश्रम नष्ट होता है। (४) इनमें शक्ति की सुविधा नहीं है। (५) पास के प्रदेश औद्योगिक तथा कृषि के दृष्टिकोण से अवनत दशा में पाये जाते हैं। इसलिए लकड़ी की कोई विशेष माँग भी नहीं होती।

Lunar Eclipse (चन्द्र ग्रहण) पूर्णमासी के दिन पृथ्वी की स्थिति सूर्य और चन्द्रमा के बीच में होती है। फलतः पृथ्वी की छाया चन्द्रमा की तरफ पड़ रही होती है। जब चन्द्रमा उस छाया में से होकर गुजरता है तो उसका कुछ भाग छिप जाने के कारण सूर्य के प्रकाश से वंचित रह जाता है। अतः चन्द्रमा का यह भाग काला ठोस पड़ता है और इसी को चन्द्रग्रहण कहते हैं। (देखिए Eclipse)

Lunar month (चन्द्रमास) चन्द्रमा एक वृत्ताकार मार्ग पर पृथ्वी के चारों ओर घूमता रहता है और २७ दिन ७ घंटे में पूरा चक्कर काट लेता है। परन्तु इतने ही समय में पृथ्वी अपने ग्रहपथ पर कुछ आगे निकल जाती है। इस बढ़े हुए मार्ग को पार करने में चन्द्रमा को कुछ समय और लगता है। इस प्रकार ठीक उसी स्थान पर पहुँचने में चन्द्रमा को लगभग २९॥ दिन लगते हैं। इसको चन्द्रमास कहते हैं और यह एक दुइज से लेकर दूसरे दुइज तक रहता है। सामान्यतः मोटे तौर पर इसको केवल २८ दिन का ही मान लेते हैं।

Macchia (माचिआ) भूमध्य सागरीय जलवायु के प्रदेशों में वर्षा जाड़े की ऋतु में होती है और वर्षा की मात्रा पश्चिम से पूर्व की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर कम होती जाती है। गर्मियों का मौसम शुष्क रहता है। अतः यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति ऐसी होती है जो गर्मियों के सूखे समय को भी सह सके। यहाँ पर छोटी-छोटी झाड़ियाँ और छोटे-छोटे सदाबहार वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी जड़ें लम्बी व गाँठदार, छाल मोटी तथा काँटेदार और पत्तियाँ चिकनी, मोटी और रेशेदार होती हैं। इनमें जंगली जैतून और मेंहदी की झाड़ियाँ प्रमुख हैं। इन्हें इटली में माचिआ, फ्रांस में माक्विस और कैलीफोर्निया में चापराल कहते हैं। इनकी मनुष्य के लिए कोई विशेष उपयोगिता नहीं है और इनको साफ करके खेती करना असंभव होता है।

Mackerel Sky (मैकरेल आकाश) सिरोक्यूमुलस और आल्टोक्यूमुलस बादलों से घिरे हुए आसमान को मैकरेल आकाश कहते हैं। इस प्रकार के आकाश में बादल के छोटे-छोटे गोलाकार व ऊँचे-ऊँचे पिण्ड एक दूसरे से अलग-अलग छितरे रहते हैं और उनके बीच से नीला आसमान दिखलाई पड़ता रहता है। इस प्रकार की व्यवस्था मैकरेल मछली के इधर-उधर पड़े दागों व धब्बों से बहुत मिलती-जुलती है। इसीलिए इसको मैकरेल आकाश कहते

हैं। गर्मी के मौसम में जब मौसम गर्म व शुष्क रहता है तो इसी प्रकार का आकाश दृष्टिगोचर होने लगता है।

Maelstorm (मेलस्टार्म) यह एक बहुत बड़ी जलभँवर होती है जो कि धारा के रूप में नार्वे के पश्चिमी तट के पास से गुजरती है। नार्वे के पश्चिमी तट से दूर लोफटन द्वीप समूह के मोस्कन और मोस्केनस द्वीपों के बीच से होकर बहने वाली प्रबल मास्कनस्ट्राम धारा को मेलस्टार्म कहते हैं।

Maestro (मेस्ट्रो) भूमध्यसागर के मध्य प्रदेश में उत्तर-पश्चिम से बहने वाली हवा को मेस्ट्रो कहते है। जब कोई चक्रवात भूमध्य सागर पर से गुजरता है तो उसके पश्चिमी भाग में मेस्ट्रो वायु बहुत वेगवती रहती है। इसके प्रवाह के क्षेत्र अड्रियाटिक सागर, इयोनियन सागर और कार्सिका तथा सारडीनिया के तटीय प्रदेश है जहाँ इसका वेग बहुत प्रबल होता है।

Magma (मैग्मा) ज्वालामुखी के विस्फोट करने पर निकलने वाली वस्तुओं में गैसें और लावा मुख्य होती हैं। पृथ्वी के अन्दर वाले भाग में गैस और लावा मिले रहते हैं और इसे मैग्मा कहते हैं। वास्तव में मैग्मा भूगर्भ की चट्टानों का पिघला हुआ रूप है और कभी-कभी ज्वालामुखी के उद्गार द्वारा पृथ्वी के धरातल पर आ जाता है। परन्तु अक्सर यह तरल अवस्था में धरातल तक नहीं पहुँच पाता बल्कि मार्ग में ही या बहुत अधिक नीचे ठंढा होकर जम जाता है और ठोस चट्टानों का रूप धारण कर लेता है। इसके इस प्रकार जम कर ठोस पड़ जाने से आन्तरिक आग्नेय चट्टानों का निर्माण हो जाता है। प्रवाह क्षेत्र की बनावट, दरारों और कठोरता के अनुसार इसके विभिन्न रूप हो जाते हैं। चट्टानों की लम्बाकार दरारों में ठंढा होकर ठोस पड़ने पर डाइक बन जाते हैं और जब मैग्मा चट्टानों की दायीं-बायीं दरारों में जम जाता है तो उसे शिल्ला कहते हैं। कभी-कभी मैग्मा परतदार चट्टानों की परतों में घुस कर उन्हें ऊपर की ओर ठेल देता है जिससे कि गुम्बदाकार स्तूप बन जाते हैं जिन्हें लैकोलिथ कहते हैं।

रासायनिक मिश्रण के अनुसार मैग्मा कई प्रकार का होता है। जिसमें सिलिका का अंश ५० प्रतिशत से अधिक होता है। उसे अम्ल मैग्मा कहते हैं और जिसमें सिलिका का अंश ५० प्रतिशत से कम होता है उसे पैठिक मैग्मा कहते हैं। अम्ल मैग्मा की अपेक्षा पैठिक मैग्मा अधिक तरल व ढीला होता है। सामान्यतः इसका आकार हलवे की तरह होता है और गर्म गैसें बराबर निकला करती हैं। इसका रंग काला होता है।

Magnetic North (चुम्बकीय उत्तर) ध्रुवतारा लगभग उत्तरी ध्रुव के शिरोबिन्दु पर स्थित है। इसलिए यदि हम उत्तरीय गोलार्द्ध में ध्रुवतारे की ओर चलें तो हम सच्चे उत्तर की ओर चलते हैं। परन्तु ध्रुवतारे का सदा दिखाई देना संभव नहीं है। इसलिये दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक दिशा-सूचक यन्त्र का प्रयोग करते हैं जिसकी चुम्बकीय सुई सदा उत्तर की ओर संकेत किया करती है। परन्तु यह उत्तरी विन्दु जिसकी ओर दिशा सूचक यंत्र (घड़ी) की सुई संकेत किया करते हैं वह उत्तरीय ध्रुव नहीं है बल्कि उत्तरीय ध्रुव के समीप का कोई विन्दु है। इस प्रकार प्राप्त उत्तर दिशा को चुम्बकीय उत्तर या आकर्षक उत्तर कहते हैं।

Magnetic Pole (चुम्बकीय ध्रुव) सन् १९०९ और १९१० में उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों की खोज हुई और ये भौगोलिक ध्रुव पृथ्वी की धुरी के सीमान्त विन्दुओं पर स्थित हैं। परन्तु जब हम दिशासूचक केन्द्र घड़ी का प्रयोग करते हैं तो उसकी सुई द्वारा संकेत किये हुए दो विन्दुओं की स्थिति इन भौगोलिक ध्रुवों के समीप तो जरूर आती है परन्तु इनसे सर्वथा भिन्न होती है। इस प्रकार प्राप्त विन्दु को चुम्बकीय या आकर्षक ध्रुव कहते हैं। किन्हीं

देशों में चुम्बकीय ध्रुव सच्चे उत्तर में ही होता है परन्तु अधिकतर स्थानों में यह भौगोलिक उत्तर के थोड़ा पूर्व या पश्चिम को हटा हुआ रहता है। चुम्बकीय उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव भौगोलिक ध्रुव और आर्कटिक या अन्टार्कटिक वृत्त के बीच किसी अक्षांश पर स्थित होते हैं और सबसे अजीब बात तो यह है कि चुम्बकीय ध्रुव स्थिर नहीं होते बल्कि इनकी स्थिति प्रतिवर्ष पृथ्वी की चुम्बकीयता के परिवर्तन के अनुसार बदलती रहती है। (देखिये **Magnetism of the Earth**)

Magnetic Storm (**चुम्बकीय तूफान**) पृथ्वी में चुम्बकीय गुण पाये जाते हैं और इसके आकर्षण का एक निश्चित क्षेत्र है। जब इस आकर्षण के क्षेत्र में कोई विस्तृत व अनियमित हेर-फेर हो जाती है तो सौर मण्डल व शून्य में बड़ा विप्लवकारी उथल-पुथल हो जाती है। इस भीषण उथल-पुथल से सामान्य दैनिक परिवर्तन बिल्कुल दब जाते हैं और उनके स्थान पर तूफान जैसी अवस्थायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसे चुम्बकीय तूफान कहते हैं। यह साल के किसी भी महीने में हो सकता है और इसकी अवधि कुछ घंटों से लेकर कुछ दिनों तक हो सकती है।

इन तूफानों का संबंध सूर्य के धब्बों (**Sun Spots**) से है और सूर्य में इन धब्बों के बढ़ जाने पर तुरन्त ही चुम्बकीय तूफान आ जाते हैं। प्रायः ये धब्बे सूर्य में प्रत्येक ११ वर्ष के बाद बढ़ते हैं और तभी भीषण तूफान आ जाते हैं। इन तूफानों के आने पर ध्रुवीय प्रकाश निम्न अक्षांशों में भी दिखलाई पड़ने लगता है और तार व बेतार द्वारा सन्देश वाहक व्यवस्था में बड़ी-बड़ी रुकावटें पड़ जाती हैं।

सन् १८७५ से सन् १९०३ तक पृथ्वी पर इस प्रकार के १९ तूफान आये और इनका असर दूर-दूर तक पड़ा।

Magnetic Variation (**चुम्बकीय अन्तर**) (देखिये **Declination**)

Magnetism of the Earth (**Terrestrial Magnetism**) (**धरातलीय आकर्षण**) पृथ्वी के धरातल में कुछ चुम्बकीय गुण पाये जाते हैं जिनकी वजह से यह उसी प्रकार का आकर्षण उत्पन्न करता है जैसा कि दो सिरों वाला विशाल चुम्बक। पृथ्वी के इन चुम्बकीय गुणों के अध्ययन को धरातलीय आकर्षण कहते हैं। पृथ्वी एक विशाल चुम्बक है जिसके उत्तरी व दक्षिणी सिरे भौगोलिक ध्रुवों के समीप स्थित हैं।

पृथ्वी के धरातल पर किसी भी स्थान पर चुम्बकीय सुई वाली दिशामापक घड़ी को ले जाया जाये और समतल स्थिति में उसे खूब हिलाकर रख दिया जाये तो रुकने पर उसकी सुई करीब-करीब उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों की ओर आकर रुक जायेगी। इस प्रकार के उत्तरी व दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव उत्तरी अमरीका के उत्तर-पश्चिम में बोथिया प्रायद्वीप के उत्तर में तथा अन्टार्कटिका के विक्टोरिया लैंड में स्थित होंगे। इसका प्रधान कारण यह है कि इन चुम्बकीय ध्रुवों का गुण व आकर्षण दिशा मापक सुई के सिरों के चुम्बकीय गुण से बिल्कुल विपरीत है। इसीलिए सुई के सिरे इनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। नियम यह है कि समान गुण वाले चुम्बक एक दूसरे से भागते हैं और विपरीत गुणों वाले चुम्बकीय सिरे एक दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं।

धरातलीय आकर्षण के विषय में अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है परन्तु उनमें से कोई भी इतना व्यापक नहीं है जो निरीक्षण द्वारा प्राप्त सभी तथ्यों को कारणों सहित समझा दे। धरातलीय आकर्षण के क्षेत्र में अनेकों हेर-फेर होते रहते हैं जिनमें निम्नलिखित तीन विशेष प्रमुख हैं—:

(१) दैनिक हेर-फेर में जिसमें दिशामापक सुई कई मिनटों के कोण पर इधर-उधर घूम जाती है।

(२) सामान्य हेर-फेर जो सैकड़ों वर्षों के अन्दर होता है और जिसके कारण कई अंशों का हेर-फेर हो जाता है।

(३) भीषण हेरफेर जो अनियमित अवधि पर होते हैं और जिनके कारण बड़े-बड़े चुम्बकीय तूफान आ जाते हैं। (देखिए Magnetic Storm)

Maize Rains (मक्के की वर्षा) पूर्वी अफ्रीका में घोर वर्षा के दो मौसम होते हैं। उनमें से एक फरवरी से मई के महीने तक होता है। चूँकि इस काल की वर्षा मक्के की फसल के लिए बड़ी उपयुक्त होती है इसीलिए इस काल की वर्षा को मक्के की वर्षा कहते हैं।

Mallee Scrub (माली अनुक्षुप) आस्ट्रेलिया के दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी-पश्चिमी भाग की जलवायु उपोष्ण कटिबंधीय है और साथ-साथ शुष्क भी है। यहाँ की वनस्पति छोटी-छोटी है जो ऊँचाई में बहुत छोटी होती है। इन को माली अनुक्षुप कहते हैं और इनमें इलायची की झाड़ियाँ सर्वप्रधान हैं।

Mandated Territory (सौंपे हुए राज्य) प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मन और तुर्की साम्राज्य के कुछ भाग अलग करके लीग आफ नेशन्स को सौंप दिया गया। इस प्रकार दिये गये प्रदेशों को सौंपे हुए राज्य कहते हैं। तत्पश्चात् लीग द्वारा दिये गये अधिकार व आदेशों के अनुसार इस प्रकार के राज्यों का शासन प्रबन्ध लीग के किसी सदस्य राष्ट्र द्वारा चलाया जाने लगा। ईराक सीरिया और फिलस्तीन इसी प्रकार के राज्य थे जिनके ऊपर लीग का अधिकृत शासन उस समय तक रहा जब तक कि वे स्वयं अपना शासन करने के समर्थ नहीं हो गये। इन राज्यों में ईराक को सबसे पहिले स्वतंत्रता मिली।

अफ्रीका में जर्मन उपनिवेश अपनी राष्ट्रीय एकता व रूप को कायम किए रहे और केवल उनका शासन प्रबन्ध ही किसी अधिकृत राष्ट्र द्वारा संचालित किया जाने लगा। परन्तु दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में जर्मन उपनिवेशों को शासन प्रबन्ध चलाने वाले अधिकृत राष्ट्रों की राष्ट्र सीमा में सम्मिलित कर दिया गया।

Mango Showers (आम की वृष्टि) (देखिये Blossom Showers)

Mangrove Swamp Forests (ज्वार प्रदेशीय वन) उष्ण और उपोष्ण कटिबंध में तटीय प्रदेशों के उन भागों में जहाँ समुद्र का जल ज्वार के समय थल पर आ जाता है और नदियों के मुहाने के प्रदेश के समीप वाले भागों में घना जंगल पाया जाता है। इन जंगलों की भूमि दलदली होती है और उनमें वृक्षादि घिर कर सड़ा करते हैं। इन जंगलों को ज्वार प्रदेशीय वन कहते हैं और इनमें मैनग्रोव जाति के वृक्ष सर्वप्रधान हैं। भारत में सुन्दर वन इसी प्रकार के वन हैं और उनमें पाया जाने वाला सुन्दरी नामक पेड़ मैनग्रोव जाति का ही है। इस जाति के पेड़ नमकीन पानी में खूब पनपते हैं और इनकी शाखाओं से बड़ी-बड़ी जटायें कमान की तरह टेढ़ी-मेढ़ी फैली रहती हैं। इन जटाओं के ऊपर ही वृक्ष रुके रहते हैं और आपस में मिल कर ये जटायें ऐसी उलझ जाती हैं कि इन वनों से गुजराना बड़ा ही मुश्किल हो जाता है।

Mantle Rock (Regolith) (भूमि आवरण) हमारा स्थलमण्डल विभिन्न प्रकार की ठोस चट्टानों का बना हुआ है परन्तु ये चट्टानें सब जगह दिखलाई नहीं पड़तीं। इनके ऊपर इन्हीं का चूर-चार निखरा हुआ मिलता है। चट्टानों के टूटे-फूटे टुकड़ों की इस असंगठित परत को भूमि आवरण कहते हैं। इसमें चट्टानों के टुकड़े, बालू, कंकड़, धूल और

मिट्टी आदि सम्मिलित हैं। इस भूमि आवरण के ऊपरी बारीक, मुलायम और असंगठित कणों की परत को मिट्टी कहते हैं। यह मूल चट्टानों और वनस्पति के अंश के योग से बनती है। भूमि आवरण की यह ऊपरी परत खेती के लिए बड़ी ही महत्व की होती है और समस्त मानव सभ्यता का आधार यही मिट्टी है।

यह आवरण कहीं तो दो-चार इंच ही मोटा है परन्तु कहीं-कहीं इसकी मोटाई सैकड़ों फीट होती है। जहाँ कहीं यह आवरण हट गया है वहाँ नीचे की चट्टानें निकल आयी हैं। कहीं-कहीं हिमनदी या नदी या वायु की अपनयन क्रिया के कारण भूमि आवरण का स्वरूप बिल्कुल बदल गया है और वहाँ अनेक प्रकार, आकार व विस्तार के चट्टानी अंश पाये जाते हैं।

Maun script map (हस्तलिखित मानचित्र) संसार में हस्तलिखित लेखों का अध्ययन करने से पता चलता है कि शब्दों द्वारा अपने विचार प्रकट कर सकने से बहुत पहिले ही मनुष्य ने रेखाओं द्वारा चित्र व मानचित्र बनाना जान लिया था। इस प्रकार के हाथ से बनाये गये मानचित्रों को हस्तलिखित मानचित्र कहते हैं और मानचित्रांकन के इतिहास में इनका विशेष महत्व है।

प्राचीन या आदिकाल में जब मनुष्य शिकार करके जीवन बिताता था और आपस में अक्सर लड़ा-भिड़ा करता था उस समय दिशाओं व दूरी को जानने के लिए वह मानचित्र बनाता रहा है। इनमें सबसे पुराने मानचित्र वे हैं जो मार्शल द्वीप निवासियों व एस्कीमो लोगों द्वारा बनाये हुए मिलते हैं। ये प्रायः भद्दे हैं परन्तु भारत, बैबीलोन, चीन, मिश्र आदि के बनाये हुए मानचित्र उन सभ्यताओं पर प्रकाश डालते हैं और उनके द्वारा हमें उन लोगों के पृथ्वी संबंधी विचारों का पता लगता है। यूनान और रोम के विद्वानों द्वारा बनाये गये मानचित्र भी इसी श्रेणी में आते हैं और यद्यपि मध्यकालीन युग में इस दिशा में कोई कार्य नहीं हुआ परन्तु बाद में बने पोलमी के मानचित्र और पोर्टोलन चार्ट विशेष परिपक्व हैं।

हस्तलिखित मानचित्र मिट्टी, घोंघे या पत्थर पर खुदे मिलते हैं और इनमें अनेक प्रकार के सांकेतिक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। नका महत्व निम्नलिखित है :—

(१) इनके द्वारा उन विभिन्न सभ्यताओं के विचारों व विकास का पता चलता है।

(२) इनके द्वारा मानचित्रांकन कला की उन्नति व क्रमिक विकास का ज्ञान होता है।

(३) ये मानचित्र शासक वर्ग, नाविक वर्ग और रोहित वर्ग द्वारा अपनी-अपनी सुविधाओं के लिए बनाये गये थे। अतः वर्ग विशेष के अनुसार इनकी सीमा व विशेषताओं में विभिन्नता आ गई है।

Manufacture (शिल्प उद्योग) यदि हम संसार के लोगों के व्यवसायों पर विचार करें तो हमें दो प्रकार के लोग दिखलाई पड़ते हैं। कुछ लोग तो वस्तुओं को प्रकृति के गर्भ से पैदा करते हैं और कुछ लोग वस्तुओं को बनाते हैं। वस्तुओं को बनाने से संबंधित क्रिया कलाप को शिल्प उद्योग कहते हैं।

प्राचीन काल में प्रायः सभी चीजें धीरे-धीरे हाथ से बनाई जाती थीं और थोड़ी सी चीजों के बनाने में अधिक मनुष्य लगे रहते थे। हाथ से बनाने में समय और परिश्रम तो अधिक लगता ही था साथ-साथ तैयार माल की मात्रा बहुत कम होती थी। परन्तु पिछली शताब्दी में विश्वव्यापक शिल्प क्रान्ति के फलस्वरूप शिल्प उद्योग में मशीनों का प्रयोग अधिकाधिक होने लगा है। कुछ बड़े-बड़े स्थानों के आस-पास बड़े-बड़े कारखानों में चीजें कलों और मशीनों द्वारा बहुत अधिक संख्या में बनाई जाती हैं।

किसी भी प्रकार के शिल्प उद्योग के स्थापित होने के लिए कलों को चलाने वाली शक्ति

कच्चा माल और मजदूरों की आवश्यकता होती है। शक्ति के प्रधान साधन कोयला, खनिज, तेल और जलविद्युत हैं। कच्चा माल अलग-अलग शिल्प उद्योग के लिए भिन्न होता है। रही मजदूरों की बात—मुख्य काम करने के लिए निपुण कारीगरों की आवश्यकता होती है और साधारण कामों में अनभिज्ञ मनुष्य लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त हिसाब-किताब करने तथा दफ्तरों में काम करने के लिए बाबुओं की आवश्यकता होती है।

ये तीनों आवश्यकतायें तो बहुत कुछ स्थायी सी हैं। इनके अलावा पूंजी व यातायात की सुविधायें होना भी बहुत जरूरी है। अक्सर देखा जाता है कि मंडियों के समीप होने पर तथा सरकारी संरक्षण व प्रोत्साहन से शिल्प उद्योग विशेष विकास कर जाते हैं। शिल्प उद्योग के स्थानीयकरण में जलवायु का भी बड़ा हाथ रहता है और बहुधा कुछ उद्योग-धंधे केवल अनुकूल जलवायु के कारण ही एक विशेष प्रदेश में केन्द्रित हो जाते हैं।

संसार के प्रमुख शिल्प उद्योगों को तीन प्रकार का कहा जा सकता है—(१) कृषि की उपज को साफ करने या उससे कोई भोज्य पदार्थ बनाने का उद्योग जैसे चीनी बनाना, आटा पीसना आदि।

(२) रोज के इस्तेमाल की चीजों को बनाने का उद्योग जैसे कागज बनाना; सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्र बनाना; साबुन बनाना आदि।

(३) विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधे के लिए आधारभूत वस्तुएँ—कलें, मशीनें आदि देने वाले भारी उद्योग जैसे लोहा व इस्पात की वस्तुयें बनाना; रासायनिक तत्वों का निर्माण करना तथा हथियार इत्यादि बनाना।

Manure (खाद) मिट्टी का उपजाऊपन मूल चट्टानों से प्राप्त नमकों तथा वनस्पति के सड़े-गले अंश के योग पर निर्भर रहता है। इन्हीं तत्वों से फसल को भोजन मिलता है। अतः हर फसल के बाद मिट्टी में नमकों आदि की कमी हो जाती है। वास्तव में बात यह है कि प्रत्येक फसल किन्हीं विशेष तत्वों को कम करती है और कुछ तत्वों को बढ़ाती है। अतएव लगातार फसल उगाते रहने से भूमि में विभिन्न नमकों और वनस्पति अंश का अनुपात बिगड़ जाता है और उसका उपजाऊपन घट जाता है। इसलिए उपजाऊ शक्ति को कायम रखने के लिये फसलों का हेर-फेर करते हैं और भूमि को विश्राम देते हैं। परन्तु जहाँ भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक है वहाँ इन दोनों में से किसी उपाय को भी प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। इसलिए वहाँ का किसान बाहर से पौधों को खाद्य सामग्री पहुँचता है। से खाद कहते हैं। खाद देने से दो लाभ हैं एक तो फसलों के बाद भूमि कमजोर नहीं होने पाती और दूसरे प्रति एकड़ उपज बढ़ जाती है।

प्रधानतः खाद दो प्रकार की होती है—एक तो वह जो वनस्पति के सड़े-गले अंश की पूर्ति करे और दूसरी वह जो खनिज नमकों का अनुपात ठीक करे। वनस्पति के सड़े-गले अंश से पौधों को नाइट्रोजन, कार्बन आदि प्राप्त होता है। इसको पहुँचाने के दो तरीके हैं :—

(१) कूड़ा-करकट की खाद जिसके अन्तर्गत गोबर, मलमूत्र, हड्डी और घरेलू कूड़ा-करकट, घास, चारा आदि को सड़ा कर बनायी गई कम्पोस्ट सम्मिलित हैं। पशुओं को खेत पर रख कर उनके गोबर व मूत्र से भूमि को उपजाऊ बनाया जाता है। जहाँ मांस का व्यापार अधिक है वहाँ जानवरों की हड्डियों को पीस कर खाद के रूप में प्रयोग करते हैं।

(२) हरी खाद में फलीवाले या दो दाल के बीज वाले पौधों और सनई की फसल उगाकर इनको जड़, डंठल और पत्ते सहित खेत में मिला दिया जाता है। इन पौधों की जड़ें मूसला-

कार होती है, पत्ते काफी होते हैं तथा जुताई करने पर यह जल्दी टूटकर मिट्टी में मिल जाती है।

नमकों की खटी को पूरा करने के लिए निम्नलिखित दो प्रकार की खादों का प्रयोग किया जाता है :—

(१) रसायनिक खाद के अन्तर्गत सोडा नाइट्रेट, अमोनिया सलफेट और फासफेट का प्रयोग किया जाता है। इन पदार्थों को चूर्ण अथवा घोल के रूप में उस समय दिया जाता है जब खेत में फसल खड़ी रहती है। इस प्रकार की खाद का असर फौरन होता है परन्तु यह बड़ी खर्चीली होती है और इनके प्रयोग के लिए पूरी जानकारी की आवश्यकता होती है। इसका उपयोग आजकल मूल्यवान फसलों के लिए ही किया जाता है।

(२) खली की खाद सस्ती और अच्छी होती है। तेल निकालने के बाद जो शुष्क गूदा बच रहता है उसी को खली कहते हैं और उसमें अनेक रासायनिक गुण पाये जाते हैं।

Map (मानचित्र) पृथ्वी के धरातल का अथवा उसके किसी भाग का एक चपटी भूमि पर, जैसे किसी कागज के चपटे टुकड़े पर प्रदर्शन मानचित्र कहलाता है। चूंकि पृथ्वी का आकार गोल है इसलिए इसका सबसे सही चित्र केवल ग्लोब द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु चपटी सतह पर उपस्थित मानचित्र को एक विशेष मानदण्ड पर तथा एक विशेष विधि से खींचते हैं ताकि मानचित्र पर प्रस्तुत प्रत्येक स्थान वास्तविक स्थिति के अनुरूप ही हो। ये मानचित्र पृथ्वी व इसके निवासियों से संबंधित तथ्यों को दिखलाने के लिए बनाये जाते हैं और उनमें कुछ विशिष्ट सांकेतिक चिन्हों द्वारा तथ्य प्रदर्शन किया जाता है। वास्तव में पृथ्वी पर प्राप्त भिन्न-भिन्न वस्तुओं के विभाजन का थोड़े ही स्थान में कुछ चिन्हों द्वारा प्रकट करने का एक बड़ा ही सुन्दर साधन है। किसी मानचित्र पर दिखाये जाने वाले तथ्यों की संख्या व मात्रा उनके मानदण्ड अंकन विधि सांकेतिक चिन्हों और मानचित्र बनाने की विधि पर निर्भर होती है। मानचित्र से एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी तथा दिशा का ज्ञान हो सकता है। अच्छे मानचित्रों में निम्नलिखित तीन बातें जरूर होनी चाहिए—(१) इससे दिशायें स्पष्ट हो जानी चाहिए, (२) किसी पैमाने के द्वारा दूरी का ज्ञान कराना चाहिए और (३) विभिन्न तथ्यों के निरूपण के लिए चुने गये चिन्ह स्पष्ट व सांकेतिक होने चाहिए।

पृथ्वी के धरातल का मानचित्र बनाने के अनेक तरीके हैं जिनमें निम्नलिखित विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं— (१) वास्तविक पैमाइश के द्वारा' (२) फोटोग्राफ द्वारा और (३) रेखाचित्रों द्वारा। प्रदेश विशेष के क्षेत्रफल, यथार्थता के अंश और प्रदर्शित किये जाने वाले तथ्यों की संख्या के अनुसार ही मानचित्र बनाने का कोई उपयुक्त तरीका अपना लिया जाता है।

मानदण्ड या विस्तार और बनाने के ध्येय या प्रदर्शित तथ्यों के आधार पर मानचित्र कई प्रकार के हो सकते हैं। मानदण्ड के आधार पर मानचित्र निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं :—

(१) **दीर्घमानदण्ड चित्र** भूमि की माप के लिये बनाये जाते हैं और उनमें मानदण्ड इतना दीर्घ होता है कि १ मील को १६ इंच से ३२ इंच तक की दूरी के बराबर दिखलाते हैं। नगरों के मानचित्र इसी श्रेणी में आते हैं। (देखिये Cadastral map)

(२) **भूमिति चित्र** प्रदेश विशेष की प्राकृतिक बनावट को प्रदर्शित करते हैं और प्राय: इंच = १६ मील के। (देखिए Topographical map)

(३) **दीवार मानचित्र** कक्षा में टाँग कर शिक्षा में योग देने के लिए बनाये जाते हैं। ये मानचित्र किसी महाद्वीप या देश को प्रदर्शित करने के लिए बनाये जा सकते हैं। इनका मानदण्ड भूमिति चित्रों की अपेक्षा छोटा होता है।

(४) **मानचित्रावली चित्र** बहुत छोटे मानदण्ड पर खींचे जाते हैं और इनमें पृथ्वी के विभिन्न प्रदेशों से संबंधित प्राकृतिक, आर्थिक और मानवी तथ्यों को सामान्य रूप से प्रदर्शित किया जाता है।

प्रदर्शित तथ्यों के आधार पर मानचित्र निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं :—

(१) ज्योतिष मानचित्र जिसमें सौरमण्डल के नक्षत्रों को दिखलाया जाता है। (२) प्राकृतिक मानचित्र जिसमें भूप्रकृति तथा स्थलरूपों को दिखलाते हैं (३) भौगर्भिक मानचित्र जिन में भूगर्भ के तथ्यों को दिखलाते हैं। (४) ऋतु मानचित्र जिसमें वर्षा, तापक्रम, भार और प्रचलित हवाओं को दिखलाते हैं। (५) यातायात मानचित्र जिसमें यातायात के साधनों की स्थिति व वितरण दिखलाया जाता है। (६) जनसंख्या मानचित्र में जनसंख्या का वितरण व घनत्व दिखलाते हैं। (७) वितरण मानचित्र वे होते हैं जिनमें प्राकृतिक तत्वों या आर्थिक वस्तुओं का भौगोलिक वितरण दिखलाते हैं। तापक्रम, वायुभार, वर्षा, पशु व वनस्पति, खेतिहर उपज या औद्योगिक वस्तुओं का पृथ्वी पर वितरण दिखलाने के लिए सम-रेखाओं, रंग, छाया, धारियाँ, चारखाने, बिन्दुओं गोलाकार या अंडाकार आकृतियों का प्रयोग करते हैं। (८) इनके अलावा राजनीतिक व सैनिक मानचित्र भी होते हैं।

Map Projection (मानचित्रांकन) पृथ्वी का आकार तो गोल है परन्तु उसके नक्शे चपटे बनाये जाते हैं। फलतः धरातल के झुकाव को कागज के चपटे टुकड़े पर ठीक-ठीक प्रकट नहीं किया जा सकता है। उसमें आकार, क्षेत्रफल और दिशा संबंधी अनेक त्रुटियाँ आ जाती हैं। इन त्रुटियों को जहाँ तक हो सके, कम करने के विचार से गोलाकार पृथ्वी तल को चपटी सतह पर प्रगट करने के लिए अनेक साधनों का उपयोग किया जाता है। पृथ्वी पर खींची हुई देशान्तर और अक्षांश रेखाओं के अनुरूप रेखायें चपटे कागज पर बना ली जाती हैं। मध्यान्ह रेखाओं और समानान्तर रेखाओं के जाल के भिन्न-भिन्न व्यवसाओं को किसी चपटे धरातल पर दिखाने का नाम अंकन है।

मानचित्र के उद्देश्य के अनुसार भिन्न-भिन्न अंकनों में अक्षांश व देशांतर रेखाओं को अलग-अलग तरीके से खींचा जाता है। कुछ अंकनों में अक्षांश रेखायें सीधी होती हैं और कुछ में वृत्ताकार। इसी प्रकार देशान्तर रेखायें भी कुछ में सीधी और कुछ में टेढ़ी दिखाई जाती हैं। कुछ अंकनों में देशान्तर रेखाएँ ध्रुव पर जा कर मिल जाती हैं और कुछ में सभी जगह फैली रहती हैं। कुछ अंकनों में अक्षांश रेखाओं के बीच का अन्तर भूमध्य रेखा से ध्रुवों की तरफ जाने पर कम हो जाता है तो कुछ में यह फासला बढ़ता जाता है।

भिन्न-भिन्न मानचित्रों के अंकन के भिन्न-भिन्न उद्देश्य हो सकते हैं। कुछ ठीक-ठीक दिशाएँ तथा आकार प्रदर्शित करते हैं और कुछ पर सही क्षेत्रफल अंकित किया जा सकता है। कुछ अंकन ऐसे होते जिन पर प्रदेशों का आकार सही बना रहता है। सबसे अच्छा अंकन तो वह होगा जिसमें इन तीनों ही बातों का ध्यान रक्खा जाय परन्तु ऐसा अंकन असंभव है। हाँ यह हो सकता है कि जब इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाता है तो यह सब दोष सबसे कम हो जाते हैं।

देशान्तर और अक्षांश रेखाओं के जाल चपटे कागज पर बनाने के लिये ग्लोब के ऊपर प्रकाश फेंक कर उसके ऊपर की रेखा जाल की परछाईं एक कागज पर फेंकते हैं। ग्लोब के

रेखा जाल की परछाईं को सपाट कागज पर फेंकने के अनेक तरीके हैं। कागज को ग्लोब पर इस प्रकार रक्खा जाय कि वह उसे ध्रुव पर या भूमध्य रेखा पर या अन्य किसी बिन्दु पर छूता रहे। इसी प्रकार आकाश का केन्द्र ग्लोब के केन्द्र पर अथवा ग्लोब की दूसरी तरफ वाली परिधि पर या अन्य कोई दूरस्थ स्थान पर हो सकता है। प्रकाश की स्थिति और सपाट कागज के ग्लोब को छूने की जगह के अनुसार छायांकित जाल में विभिन्न विशेषतायें आ जाती हैं। समतल कागज जिस पर जाल छायांकित किया जाता है वह भी तीन प्रकार का हो सकता है। (१) जो बेलन की तरह ग्लोब के चारों ओर लिपटा हो, (२) जो शंकु की तरह ग्लोब पर स्थित हो, (३) जो समतल पर्दे की भाँति ग्लोब के नीचे बिछा हो। इनके अनुसार ही अंकन तीन प्रकार के हो जाते हैं—बेलनकार, शंक्वाकार और समाकार। छायांकन के अतिरिक्त गणित द्वारा भी देशान्तर व अक्षांश रेखाओं को बनाया जाता है। इस प्रकार के अंकन को नियमित जाल अंकन कहते हैं। इनके अनेकों भेद व उपभेद हैं।

किसी मानचित्र के लिए कौन सा अंकन उपयुक्त होगा, यह निर्धारित करने के लिये निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना होता है :—

(१) मानचित्र का उद्देश्य, (२) प्रदेशों का अक्षांश विस्तार, (३) मानचित्र का मानदण्ड। प्रादेशिक वितरण दिखलाने वाले मानचित्रों के लिये क्षेत्रफल सही दिखलाने वाले अंकन उपयुक्त होते हैं। यदि भूमध्यरेखीय प्रदेश का मानचित्र बनाना है तो ऐसा अंकन चुनना चाहिये जिसमें इस प्रदेश का आकार व विस्तार कम से कम त्रुटिपूर्ण हो।

Map Scale (मानदण्ड) भूमि पर के कुछ मील मानचित्र पर १ इंच द्वारा सूचित किये जाते हैं या भूमि पर की एक मील मानचित्र पर कई इंचों द्वारा अंकित की जाती है। मानचित्र पर की इस दूरी और भूमितल पर के अन्तर के अनुपात को मानदण्ड कहते हैं।

किसी मानचित्र पर मानदण्ड को तीन प्रकार से प्रकट किया जा सकता है--(१) **उक्ति द्वारा** जैसे कि ४ इंच बराबर है एक मील के। यह विधि बड़ी सरल है और केवल एक निगाह डाल कर किन्हीं दो विन्दुओं के बीच की दूरी का पता लगाया जा सकता है परन्तु एक दोष भी है कि पुरानी अप्रचलित काइयों को न समझ पाने से बहुधा मानचित्र बेकार हो जाता है। (२) **प्रतिनिधि भिन्न** द्वारा जैसे कि १ इंच बराबर है एक मील के और एक मील में ६३३६० इंच होते हैं तो इसको १/६३३६० भिन्न के समान प्रगट करते हैं। इसका अर्थ यह है कि नक्शे पर की कोई दूरी भूमि पर की सच्ची दूरी का १/६३३६० वाँ भाग होगी। मान-चित्र पर एक इकाई भूमितल पर ६३३६० इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती है। आजकल सभी अन्तर्राष्ट्रीय व विदेशी मानचित्रों में मानदण्ड को इसी रीति से स्पष्ट करते हैं। (३) **रेखांकित मानदण्ड** इसमें एक सीधी रेखा को इंचों व मीटरों में विभाजित कर देते हैं और प्रत्येक खंड पर मील अंकित कर देते हैं। जब दूरी का पता लगाना होता है तो किन्हीं दो बिन्दुओं के बीच की दूरी को परकाल से नाप कर इस रेखा पर देख लेते हैं। रेखांकित मानदण्ड को प्रतिनिधि भिन्न या उक्ति के सहारे खींचा जा सकता है। (४) कभी-कभी मानदण्ड को गणित के अनुपात के रूप में व्यक्त करते हैं जैसे १ : २००,०००० ।

जिस मानचित्र में एक इंच बड़ी दूरी सूचित करता है उसको लघु मानदण्ड कहते हैं और जिसमें एक इंच थोड़ी दूरी अंकित करता है उसको दीर्घ मानदण्ड कहते हैं। चूँकि पृथ्वी का आकार गोल होता है इसलिए लघु मानदण्ड के मानचित्रों में मानदण्ड संबंधी अनेकों त्रुटियाँ पायी जाती हैं। इसके विपरीत दीर्घ मानदण्ड के मानचित्रों में ये त्रुटियाँ नहीं के बराबर होती हैं। दूसरी बात यह है कि एक मानचित्र की सभी दिशाओं में मानदण्ड का सही होना संभव नहीं है। कुछ मानचित्रों का मानदण्ड देशान्तर पर सही रहता है तो कुछ का किन्हीं

विशेष समानान्तर रेखाओं पर। यह अनिश्चित लघु मानदण्ड के मानचित्रों में बहुत अधिक रहती है। इसलिए लघु मानदण्ड के मानचित्रों के लिए कोई भी मानदण्ड नहीं दिया जाता है। इनके लिए एक निश्चित मानदण्ड रख ही नहीं सकते क्योंकि किसी स्थान पर मानचित्र का एक इंच दूसरे भागों की अपेक्षा उसके कुछ भागों में बड़े अन्तर को सूचित करता है।

Maquis (मॉक्वी) यह फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। (देखिये Macchia)

Mares' Tails (मेरस टेल) बहुत अधिक ऊँचाई पर पाये जाने वाले गुच्छेदार सिरस मेघ जो लहरों में पाये जाते हैं उन्हें मेरस टेल कहते हैं क्योंकि उनका आकार व व्यवस्था घोड़े की पूँछ से मिलती-जुलती है।

Marginal Land (लागत उत्पादक भूमि) वह भूमि जिससे उत्पादन की औसत मात्रा केवल इतनी ही होती है कि उत्पादन की लागत वसूल हो जाय, उसे लागत उत्पादक भूमि कहते हैं। ऊबड़-खाबड़, दलदली या वनाच्छादित भूमि को जब साफ करके खेती के उपयुक्त बनाया जाता है तो उस समय भारी मशीनों, खाद तथा सफाई के काम में खर्चा इतना अधिक होता है कि उत्पादन से केवल लागत भर निकल पाती है। इसी प्रकार पर्वत प्रदेशीय खेत भी इसी श्रेणी में शामिल किए जा सकते हैं।

Maritime Climate (समुद्रतटीय जलवायु) समुद्र के समकारी प्रभाव से पूर्ण होने वाली जलवायु को समुद्रतटीय जलवायु कहते हैं। इस प्रकार की जलवायु उन प्रदेशों में पायी जाती है जो समुद्र के समीप स्थित होते हैं और जहाँ की दशाओं पर समुद्र से आने वाली हवाओं के कारण गर्मी का मौसम कम गर्म तथा जाड़े का मौसम कम ठंढा होता है। इसे मातदिल जलवायु भी कहते हैं। यहाँ समुद्री व स्थलीय पवन के चलते रहने से मौसम बड़ा ही सुहावना बना रहता है।

इस प्रकार की सम जलवायु का प्रधान कारण यह है कि जलखंड स्थल की अपेक्षा देर में गर्म होता है और देर में ठंढा होता है। अतः इसके प्रभाव से स्थल की ठंढक कम हो जाती है और स्थल की गर्मी अपेक्षाकृत कम गर्म रह जाती है। इस प्रकार इनकी जलवायु सम हो जाती है तथा दैनिक, मासिक या वार्षिक तापान्तर कभी भी अधिक नहीं होने पाता। वर्षा भी काफी होती है और प्रायः हर मौसम में ही होती रहती है। (देखिए Insular Climate)

Market (मंडी) साधारणतया जिस क्षेत्र में किन्हीं विशेष वस्तुओं के ग्राहक मौजूद रहते हैं उसे मंडी कहते हैं। परन्तु वर्तमान व्यापारिक संबंधों के दृष्टिकोण से मंडी उस प्रदेश को कहते हैं जहाँ ग्राहक व विक्रेताओं के बीच क्रय-विक्रय संबंधी संपर्क इतना अधिक व व्यापक हो कि एक स्थान के दामों का दूसरे स्थान की क्रय-विक्रय क्रियाओं पर बराबर पड़ता रहे।

वर्तमान आर्थिक जीवन में मंडियों का बड़ा महत्व है और देशी व विदेशी व्यापार का उन्नति मंडियों के ऊपर निर्भर होता है। आधुनिक समय में विभिन्न देशों की बीच इन्हीं मंडियों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष चला करता है। विभिन्न धंधे केवल मंडी उपलब्ध हो जाने के कारण उठ खड़े होते हैं और फिर उन मंडियों के छीन लिए जाने पर उन धंधों की अवनति होने लगती है। लंकाशायर का सूती कपड़ा उद्योग इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। साम्राज्य बनने व उसके विस्तार में लगन होने का प्रमुख कारण अपनी उपज के लिए मंडियाँ प्राप्त करना ही होता है। यही बात उपनिवेशों के लिए भी सत्य है।

माल को बेचने की सुविधा के अनुसार ही उद्योग-धंधों की उन्नति व स्थानीयकरण होता है। जिन धंधों का माल भारी होता है व उसको लाने ले जाने में अधिक व्यय होता है वे वहाँ

केन्द्रित हो जाते हैं जहाँ उनकी माँग अधिक होती है। परन्तु अब द्रुतगामी यातायात की सुविधाओं के कारण तथा शीत भंडार रीति से सड़ने वाली वस्तुओं की सुरक्षा हो जाने के कारण मंडियों से दूर-दूर पर उत्पादन होने लगा है। आस्ट्रेलिया और अर्जेंटाइना के गेहूँ, मांस और दूध से बनी वस्तुओं की मंडी यूरोप है। इसी प्रकार यूरोप तथा संयुक्त राज्य के शिल्प उद्योग की उपज हजारों मील दूर स्थित मंडियों के लिए तैयार की जाती है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रगति होने से मंडियों का महत्व व स्थिति विश्वव्यापी हो गयी है। फिर भी महत्व तथा स्थिति के अनुसार मंडियाँ तीन प्रकार की कही जा सकती हैं—(१) स्थानीय मंडी जहाँ आस-पास के गावों आदि की फसल या उपज का क्रय-विक्रय होता है। (२) राष्ट्रीय मंडी जहाँ देश के विभिन्न उद्योग-धंधों की उपज की माँग रहती है और (३) अन्तर्राष्ट्रीय मंडी जिसमें विभिन्न वस्तुओं के उत्पादक भिन्न-भिन्न राष्ट्र एक दूसरे की माँग पूर्ति करते हैं।

Market Gardening (शाकोद्यान कृषि) बिक्री के लिए साग-सब्जी, कोमल फल व फूल को बगीचों में उगाना शाकोद्यान कृषि कहलाती है। सब्जी की खेती के लिए जलवायु तथा भूमि की अनुकूलता अत्यन्त आवश्यक है। शाकोद्यान कृषि के लिए समुद्र के तट के समीप प्रदेशों के सम जलवायु और निम्न अक्षांश के पालारहित पर ठंढे प्रदेश सबसे अधिक उपयुक्त रहते हैं। समुद्र के समीप होने से पाला अपने-आप रुक जाता है। इसके अलावा रेतीली दोमट मिट्टी इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त रहती है। रेत का अंश होने से मिट्टी शीघ्र गरम हो जाती है और इससे फसल जल्दी तैयार हो जाती है। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार की मिट्टी को जोतने में आसानी होती है।

शाकोद्यान कृषि गहरी खेती प्रणाली पर की जाती है। इसमें भूमि को गहरा जोत करके काफी खाद डालने की जरूरत होती है साथ-साथ बहुत मजदूरों की भी आवश्यकता होती है। फिर साग-सब्जी आदि को लोग ताजा खाना ही पसन्द करते हैं। इसीलिए शाकोद्यान कृषि बड़े-बड़े शहरों के समीप की जाती है जहाँ पर बड़े-बड़े उद्योग-धंधे स्थापित रहते हैं। इन कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के स्त्री व बच्चे सस्ती मजदूरी पर इन बगीचों में काम करने आ जाते हैं।

शीतोष्ण कटिबन्ध में शाकोद्यान कृषि की विशेष उन्नति हुई है और द्रुतगामी गमनागमन के साधनों तथा शीत भंडार रीति के उन्नति हो जाने से शाकोद्यान कृषि बड़े-बड़े शहरों से दूर अनुकूल जलवायु तथा उपयुक्त भूमि पर होने लगी है। संयुक्त राज्य अमरीका का पूर्वी तटीय प्रदेश, कैलिफोर्निया, फ्रांस, ब्रिटेन का प्रदेश तथा इंगलैंड का दक्षिणी पश्चिमी समुद्रतट का प्रदेश शाकोद्यान कृषि के प्रधान क्षेत्र हैं। गरम देशों में उपज के जल्दी सड़ जाने के डर से शाकोद्यान कृषि बड़े-बड़े शहरों के पास ही की जाती है जिससे इसे दूर भेजने की आवश्यकता न पड़े।

Marl (मार्ल) चिकनी मिट्टी और चूने के मिश्रण को मार्ल कहते हैं, यद्यपि सामान्य प्रयोग में यह पारिभाषिक शब्द मोटे तौर पर बहुत प्रकार की चट्टानों व मिट्टी के लिए प्रयोग की जाती है। कई प्रकार के मार्ल तो समुद्र के भीतर निक्षेप से बन जाते हैं और बहुत से मीठे व ताजे पानी में उत्पन्न हो जाते हैं।

Marsh (दलदली भूमि) पानी से ओत-प्रोत भूमि को दल-दल कहते हैं। दलदली भूमि मुलायम और गीली होती है और या तो पानी से बिलकुल ढकी रहती है या उसके कुछ अंशों में पानी भरा रहता है और बाकी भूमि पानी में सनी होने के कारण लटपटी रहती है। दलदली भूमि प्रायः निम्नतल पर होती है और समें अत्यधिक नमी के दो कारण होते हैं:—

(१) भूमि के छेद छोटे तथा उसकी तहें अप्रवेश्य होती हैं जिसके कारण पानी भीतर को न तो धँसने ही पाता है और न उसके अन्दर सोख ही जाता है। दलदली भूमि प्रायः चिकनी मिट्टी के प्रदेशों में पायी जाती है।

(२) जल प्रवाह के लिए पूरा-पूरा ढाल व निकास न होने पर बहुत से स्थानों पर जल भरा रह जाता है और धीरे-धीरे वाष्पीकरण द्वारा कम होते जाने पर दलदली भूमि बन जाती है।

इस प्रकार की दलदली भूमि प्रायः सभी प्रकार से अनुपयोगी होती है। कहीं-कहीं इन पर वृक्ष आदि उगे पाये जाते हैं और कुछ पर साल के कुछ महीनों में गाय, बैल, भैंस रख ली जाती हैं। किन्हीं प्रदेशों में दलदली भूमि को चावल उगाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। बहुत से स्थानों में इनको सुखा कर खेती के योग्य बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। (देखिए Salt Marsh, Swamp)

Massif (मैसिफ) यह फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है और इसके द्वारा उस विशाल पर्वत का बोध होता है जिसके कई शिखर होते हैं। इन सभी शिखरों पर एक ही प्रकार की विशेषतायें पायी जाती हैं क्योंकि ये शिखर एक ही पर्वत से टूट कर या खंडित होने पर बने होते हैं।

Massive mountain (विस्तृत पर्वत) मैग्मा द्वारा चट्टानों की परत पर उभार पड़ जाने से गुम्बदाकार पर्वत बन जाते हैं। इन गुम्बदाकार पर्वतों का ढाल सब ओर बराबर होता है और जब इन पर जल व वायु की शक्तियों द्वारा आवरणक्षय होने लगता है तो इन का गुम्बदाकार भाग कई नालियों या कन्दराओं द्वारा कट-फट जाता है। इस प्रकार इनका आकार गुम्बदाकार न रह कर पक्षी के पंख के समान फैला हुआ तथा नलीदार या छाते की तरह तीलीदार मालूम पड़ने लगता है। गुम्बद के ऊपरी भाग से नालियाँ व कन्दरायें बाहर की ओर अग्रसर होती हुई दिखलाई पड़ती हैं। इस प्रकार के पर्वत को **विस्तृत पर्वत** कहते हैं।

Meander (घुमाव) ऊपर के ढाल भाग में जल नीचे जाने के लिए बड़ी सरलता से समीप ही में अपना मार्ग पा लेता है परन्तु मध्य भाग में नदी अपनी तलैटी में इधर-उधर काटती हुई हटती रहती है। इस भाग में नदी का ढाल क्रमशः हो जाता है और उसकी गति मन्द पड़ जाती है। प्रवाह की गति धीमी पड़ने से नदी के जल में बोझ ढोने की क्षमता भी कम हो जाती है। फलतः नदी अपने बोझ को किनारे पर जमा करती चलती है और गति धीमी होने के कारण गति प्रवाह में जरा सी भी रुकावट आ जाने से नदी का प्रवाह मुड़ जाता है। नदी के मार्ग में मोड़ या घूम पड़ जाने से अपनी तलैटी में नदी इधर-उधर घूमती हुई बहती रहती है। इन मोड़ या घूमों को, जिनका आकार हँसिये की तरह वक्राकार होता है, घुमाव कहते हैं।

नदी मार्ग में घुमाव पड़ने के तीन कारण हैं—(१) केवल थोड़ी दूर तक ही नदी का जल व प्रवाह सीधा रह सकता है, (२) मध्यघाटी में बहाव अनियमित या धीमा होता है क्योंकि इधर-उधर निक्षेप होता रहता है और इन बेतरतीब निक्षेपों से नदी प्रवाह मुड़ जाता है और (३) पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमते रहने के कारण प्रत्येक प्रवाहित पदार्थ की गति विचलित हो जाती है और उत्तरी गोलार्द्ध में वे अपने सीधे हाथ की तरफ स्वभावतः मुड़ जाती हैं।

जब कभी भी नदी के मार्ग में घुमाव बन जाते हैं तो नदी का जल पहिले एक तट को अधिक काटने लगता है और फिर दूसरे तट को। घुमाव के नतोदर तट पर जल का प्रवाह बहुत तेज

होता है जिससे कगारे कट-कट कर गिरते हैं परन्तु इसके विपरीत उन्नतोदर तट पर जल का वेग धीमा होने के कारण निक्षेप होता रहता है और नये कगार बनते रहते हैं। इस प्रकार ये घुमाव बराबर अधिक जोरदार होते रहते हैं यहाँ तक कि घुमाव पूर्ण वृत्ताकार हो जाता है और तब नदी उस घोड़े की नाल के आकार वाले घुमाव को छोड़ कर अपने प्रवाह के लिए एक नवीन मार्ग बना लेती है। इस प्रकार छोड़े हुए घुमाव में झील बन जाती है। (देखिये Oxborn lake, Entrenched Meander)

अँग्रेजी में इस घुमाव को **Meander** इसलिए कहते हैं कि एशिया माइनर की मीन्डर नदी अपने निम्न प्रवाह क्षेत्र में इस प्रकार के अनेकों घुमाव बनाती हुई बहती है।

Meander Scar (घुमाव खोह) अपने घुमाव में भी नदी का जल कभी एक तट पर तेज धारा बनाकर बहता है तो कभी दूसरे तट पर। इस प्रकार से घूमती और हटती हुई नदी की जलधारा कभी-कभी बाढ़ के मैदान या किसी पूर्व प्रवाह द्वारा निर्मित ऊँचे तट को अपने थपेड़ों से खोखला कर देती है। फलत: ऊँचे तट की दीवार भी बाढ़ के मैदान की सीमा बनाती है। उसमें एक ओर की चट्टानों की जड़ तेजी से कट जाती है और तट के पार्श्व में चट्टानें कट-कट कर इतनी खोखली हो जाती हैं कि उस पार्श्व पर एक गड्ढा या खोह बन जाती है। दूर से देखने पर यह खोह अर्द्ध गोल मंच या गोलाकार अखाड़े की भाँति दिखाई पड़ता है। इसे घुमाव खोह कहते हैं और कालान्तर में नदी का सम्पूर्ण उच्चतर तट इसी प्रकार की खोह से भर जाता है।

Mean Sea level (समुद्रतल का मध्यममान) जब हम कई स्थानों पर बराबर कालान्तर पर लिये गये समुद्रतल की स्थिति को नाप कर उनका औसत निकालते हैं तो हमें जो समुद्र तल प्राप्त होता है उसे समुद्रतल का मध्यममान कहते हैं। समुद्रतल का मध्यममान वह आधार है जिस पर स्थलरूपों की ऊँचाई-निचाई नापी जाती है। ग्रेट ब्रिटेन के भूमिति चित्रों में ऊँचाई दिखलाने के लिए कामवल तट पर न्यूलन स्थान के समुद्रतल को मध्यममान माना जाता है।

Mean Sphere level (स्थलतल का मध्यममान) स्थलमंडल की औसत ऊँचाई को स्थलतल का मध्यममान कहते हैं। इसको एक काल्पनिक गोलाकार धरातल द्वारा चित्रित करते हैं और यह काल्पनिक धरातल इस प्रकार स्थित होता है कि यदि इसके ऊपर उभड़ा हुआ समस्त भूखंड को छाँट दिया जाय तो यह काटा-छाँटा हुआ भाग इस गोलाकार धरातल के नीचे के सभी गड्ढे भर जायँगे।

Means of Transport (यातायात के साधन) साधारणतया वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को लाने ले जाने को यातायात कहते हैं। वस्तुओं के उत्पादन और वितरण के लिये स्थानों की विभिन्नता व दूरी से संबंधित कठिनाइयाँ केवल यातायात के साधनों द्वारा ही दूर की जा सकती हैं। इसीलिए यातायात के साधनों को व्यापार का जीवनरुधिर कहते हैं। वास्तव में सभ्यता के विकास में यातायात के साधनों का महत्वपूर्ण भाग रहा है। यातायात के साधनों के द्वारा दूरी की समस्या अब बहुत कुछ हल हो गई है और यातायात के विभिन्न साधनों के विकास के साथ-साथ पिछले ५० वर्षों की अपेक्षा संसार बहुत छोटा हो गया है। आजकल यातायात के लिए मनुष्य जल, पवन, भाप तथा बिजली की शक्तियों से काम लेता है।

धरातल की बनावट तथा जलवायु की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न देशों में यातायात के साधन भी भिन्न हैं। कुछ देशों में बहुत से साधन हैं तो कहीं केवल एक या दो ही हैं। टुन्ड्रा प्रदेश में बेपहिये की गाड़ी को रेनडियर या कुत्ते खींचते हैं और रेगिस्तानों में ऊँट वही काम देता

हैं जो महासागरों पर जहाज। भिन्न-भिन्न साधनों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—(१) मनुष्यों द्वारा, (२) पशुओं द्वारा और (३) यंत्रों द्वारा। वैसे तो मनुष्य बोझा ढोने का काम बहुत प्राचीन काल से करता आ रहा है परन्तु आजकल केवल घने जंगलों तथा पहाड़ी प्रदेशों में ही मनुष्य बोझा ढोता है। बोझा ढोने वाले पशुओं में घोड़ा, ऊँट, हाथी, बैल, गदहे और खच्चर प्रमुख हैं। शीतोष्ण कटिबंध में घोड़ा यातायात का साधन है। रेगिस्तानों का जहाज ऊँट है और भारत, बर्मा तथा अफ्रीका के बहुत से भागों में हाथी बोझा ढोते हैं। तिब्बत में याक नामक बैल बोझा ढोता है और मैक्सिको में खच्चर यातायात के आधार हैं। उन्नीसवीं सदी से यातायात के यांत्रिक साधनों की उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है और यांत्रिक साधनों के दृष्टिकोण से निम्नलिखित विशेष महत्वपूर्ण हैं—(१) मोटरगाड़ियाँ और रेलगाड़ियाँ जो स्थलीय भागों को मिलाती हैं (२) भाप से या तेल से चलने वाले जहाज व नावें जो नदियों, नहरों, झीलों के द्वारा स्थलीय भागों को मिलाती हैं और महासागरों के द्वारा विभिन्न महाद्वीपों को एक-दूसरे के सन्निकट लाती हैं। (३) वायुयान, हेलीकोपटर और ग्लाइडर जो हवा में उड़ कर संसार की विभिन्न सीमाओं से परे के प्रदेशों के बीच की दूरी छोटी करते हैं।

यातायात के यांत्रिक साधनों को पूरा-पूरा समझने के लिए उन्हें दो भागों में विभक्त करना ठीक होगा—(१) आन्तरिक अथवा देशीय यातायात के साधन और (२) अन्तर्देशीय या विश्वव्यापी यातायात के साधन। वर्तमान समय में प्रत्येक देश के अंदर यातायात का सर्वोत्तम साधन रेलें और सड़कें हैं। रेलों की चाल तेज होती है और ये भारी सामान ढो सकती हैं। रेलों के विकास से अनेक देश उन्नत व समृद्ध हो गये हैं। सड़कों के द्वारा मोटरों की सहायता से माल ढोया जाता है और देश के भीतरी गाँवों तक से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। दूसरा लाभ यह है कि सड़कों द्वारा यातायात में सामान की अदल-बदल नहीं करना पड़ता। इसके अलावा जहाँ जलपूरित नदियाँ जिनकी तलैटी साफ और प्रपात रहित हैं या जहाँ झीलें हैं वहाँ उन्हें एक दूसरे से नहरों द्वारा मिला दिया जाता है और इस प्रकार के जलमार्ग देश के भीतर व्यापार और वाणिज्य में विशेष सहारा देती हैं। लेकिन जो नदियाँ अक्सर बाढ़ से फैल जाती हैं या जो गर्मी में सूख जाती हैं या जो अनुपजाऊ प्रदेशों से बहती हुई बर्फ से घिरे समुद्रों में गिरती हैं वे यातायात के दृष्टिकोण से बिल्कुल बेकार होती हैं।

वर्त्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिकतर महासागरों द्वारा होता है। समुद्री मार्ग विभिन्न देशों को मिलाते हैं और विदेशी व्यापार का विकास करते हैं। समुद्री यातायात थल की अपेक्षा सस्ता होता है और लम्बे समुद्री मार्गों का उपयोग किसी भी समय किया जा सकता है। समुद्री जहाज दो प्रकार के होते हैं—लाइनर और ट्रैम्प। लाइनर जहाज निश्चित व सूचित मार्ग पर चलते हैं और रास्ते में उनके रुकने के स्थान नियत होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो यात्रियों तथा डाक को ले जाते हैं और दूसरे वे जो माल ढोते हैं। ट्रैम्प जहाजों का मार्ग व प्रस्थान का समय निश्चित नहीं होता। जहाँ माल मिल जाता है वहीं चले जाते हैं।

हवाई यातायात में हल्के व भारी वायुयानों का प्रयोग करते हैं। हेलीकोप्टर जहाज भी प्रयोग किये जाते हैं जो छोटी जगह में भी उतर सकते हैं। वर्त्तमान युग के दो महायुद्धों से इनको विशेष प्रोत्साहन मिला है। यद्यपि वायुयान यातायात के सबसे वेगशील साधन हैं परन्तु सस्ते दामों में भारी वस्तुओं को ले जाने में रेल और जहाज सस्ते पड़ते हैं। बहुमूल्य सामग्री और यात्री व डाक ले जाने के लिए अन्य साधनों की अपेक्षा वायु यातायात अधिक

सुविधाजनक रहता है। धीरे-धीरे इनका प्रचार आन्तरिक व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र दोनों में ही बढ़ता जा रहा है।

Means of Communication (संचार साधन) देश-विदेश के विभिन्न भागों को सन्देश पहुँचाने के लिए अनेक तरीकों का प्रयोग किया जाता है। इन साधनों को संचार साधन कहते हैं। पहिले सन्देश भेजने के लिए सन्देश वाहक (मनुष्य) या कबूतरों को काम में लाया जाता था, बाद में घोड़ा-गाड़ियों द्वारा चिट्ठियाँ इधर-उधर भेजी जाती थीं परन्तु ये साधन बड़े ही धीमे होते थे और इनमें अवसर बहुत देर लग जाती थी। आजकल सन्देश भेजने के निम्नलिखित साधन है—

(१) डाक द्वारा चिट्ठी भेजने के लिए मोटरों, रेलों, समुद्री जहाजों तथा वायुयानों का प्रयोग किया जाता है।

(२) तार द्वारा सन्देश शीघ्र भेजा जाता है और इसमें विद्युत की सहायता से सांकेतिक चिन्हों में सन्देश भेजा जाता है।

(३) टेलीफोन द्वारा दूर पर बैठे दो व्यक्ति आपस में वैसे ही बात-चीत कर सकते हैं जैसे कि वे एक-दूसरे के बगल में बैठे हों।

(४) बेतार यंत्र द्वारा सन्देश को ध्वनि तरंगों के रूप में प्रसारित कर दिया जाता है और दूर पर बैठा मनुष्य इनको एक दूसरे यंत्र की सहायता से पकड़ सकता है।

Mechanical Erosion (घिसाव द्वारा आवरण क्षय) भूतल पर बहते हुये जल, वायु तथा हिम द्वारा आवरण क्षय का कार्य होता रहता है। विखण्डन द्वारा चट्टानों से टूट-टूट कर इकट्ठे हुये टुकड़ों को ये गतिशील शक्तियाँ अपने प्रवाह के साथ बहा ले जाती है। ये चट्टानों के टुकड़े हटते समय धरातल की चट्टानों तथा आपस में रगड़ खाते हैं। इस रगड़ से चट्टानें व शिलाखण्ड दोनों ही घिस-घिसाकर क्षय होते रहते हैं। इस प्रकार घर्षण द्वारा क्षय होने की क्रिया को घिसाव द्वारा आवरण क्षय कहते हैं।

विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ अलग-अलग तरीके से घर्षण द्वारा क्षय कार्य करती रहती है। नदी का जल अपने साथ में प्रवाहित शिलाखंडों तथा धारा के वेग से अपनी तली को गहरा करता जाता है तथा अपने किनारों को काट-काट कर अपना पाट या घाटी को चौड़ा करता रहता है। वायु बारीक कणों को उडा ले जाती है और जहाँ वे पड़े रहते हैं वहाँ की भूमि को नग्न कर देते हैं। इन बारीक कारणों से लदी वायु जब किसी चट्टान से टकराती है तो उसे काट देती है। चट्टानों के निचले भाग में यह क्षय तेजी से और अधिक होता है। हिम नदियाँ भी अपने प्रवाह में अनेकों शिलाखंडों को बहा लाती हैं जो उनकी तली के साथ रगड़ खाते रहते हैं और फलस्वरूप तली में धारियाँ या नालियाँ बन जाती हैं। इसके अलावा वे तली के कुछ भाग को नोच कर गड्ढा बना देती हैं और मार्ग में पड़ने वाले अनेक ऊबड़-खाबड़ रूपों को समतल करती चलती हैं। इसी प्रकार समुद्री लहरें व ज्वार भी तटों से टकरा कर उनको काटते-छाँटते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त इन सभी प्रकार की शक्तियों द्वारा हटाए हुए शिलाखंड, आपस में टकरा-टकरा कर छोटे गोल कंकड़ तथा बालू में परिणत होते रहते हैं।

घिसाव द्वारा आवरण क्षय इस प्रकार सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और इसका प्रभाव सबसे अधिक व्यापक रहता है।

Meadow (चरागाह) उस संरक्षण घास के मैदान को चरागाह कहते हैं जिसकी घास विशेष देख-रेख में उगाई जाती है और फिर उस पर जानवरों को चरने नहीं दिया

जाता बल्कि घास को अलग से काट कर चारे के रूप में पशुओं को दिया जाता है। इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग ग्रेट ब्रिटेन तक सीमित है। साल के कुछ महीनों में इस प्रकार के चरागाह में पानी का भी प्रबन्ध किया जाता है ताकि घास खूब अच्छी तरह उगे।

Mediterranean Climate (**भूमध्य सागरीय जलवायु**) भूमध्यसागर के चारों ओर के प्रदेश में पायी जाने वाली जलवायु को भूमध्यसागरीय जलवायु कहते हैं। परन्तु इस प्रकार की जलवायु संसार के अन्य भागों में भी पायी जाती है और इस जलवायु वाले प्रदेश दोनों ही गोलार्द्धों में पाये जाते हैं और उन सभी की भौगोलिक स्थिति एक सी है। ये प्रदेश ३० डिग्री और ४५ डिग्री उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों के बीच में महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में स्थित हैं। वास्तव में शीतोष्ण कटिबंध के किनारों पर यह जलवायु पायी जाती है जो उष्ण कटिबंध की ओर पड़ते हैं। इस प्रकार की जलवायु के अन्य प्रदेश कैलीफोर्निया का मध्यम भाग, चिली का मध्यम भाग, केप आफ गुडहोप, न्यूजीलैंड का उत्तरी द्वीप तथा आस्ट्रेलिया का दक्षिणी-पश्चिमी और दक्षिणी कोना हैं।

पृथ्वी की भारपेटियों के मौसम के अनुसार ऊपर-नीचे खसक जाने के कारण जाड़े की ऋतु में यहाँ पछुआ हवायें चलती हैं और गर्मी के मौसम में व्यापारिक हवायें प्रवाहित होती हैं। फलस्वरूप यहाँ की जलवायु में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं--(१) वर्षा यहाँ पर जाड़ों में होती है और गर्मी का मौसम खुश्क रहता है, (२) वर्षा की मात्रा साधारण होती है। यहाँ का वार्षिक औसत २५--३० इंच है। परन्तु यह दक्षिण से उत्तर की ओर चलने पर या भूमध्य रेखा की ओर से ध्रुव की ओर बढ़ने पर बढ़ती जाती है। (३) यहाँ की वर्षा अनिश्चित होती है और वर्षा मूसलाधार होती है तथा जल्दी समाप्त हो जाती है। वास्तव में वे दिन जब वर्षा होती है और बादल छाये रहते हैं संख्या में बहुत कम होते हैं। (४) प्रायः और विशेषकर गर्मी के मौसम में आकाश साफ रहता है और काफी सूर्य का प्रकाश मिलता है। (५) जाड़ों में अधिक ठंढ नहीं होती। जाड़ों का औसत तापक्रम ४५° या ५०° के लगभग रहता है। तापान्तर अधिक नहीं होता और गर्मी में तापक्रम का औसत ७०° या ८०° तक ही रहता है। (६) अन्तरिम स्थिति होने के कारण यहाँ के विभिन्न भागों की स्थिति के अनुसार जलवायु की विशेषतायें बदलती रहती हैं। तट के समीप वाले प्रदेशों में गर्मी का मौसम तटीय स्थिति व ठंढी जलधाराओं के असर से काफी ठंडा रहता है। कुहरा भी पड़ता है और वार्षिक तापान्तर नगण्य होता है। परन्तु आन्तरिक स्थिति वाले भागों की जलवायु विषम हो जाती है। जाड़ों में ठंढक और भी कम पड़ती है परन्तु गर्मी का मौसम अधिक गर्म हो जाता है। (७) यहाँ की वायु व्यवस्था बड़ी ही अव्यवस्थित होती है। स्थानीय रूप से आँधियाँ चला करती हैं और चक्रवात बराबर आते रहते हैं। फलतः यहाँ की वर्षा भी चक्रवातीय ही होती है।

इन प्रदेशों में ऐसे वृक्ष व वनस्पति उत्पन्न होते हैं जो गर्मियों के सूखे समय को सह सकें। यहाँ पर जो छोटे-छोटे वृक्ष या झाड़ियाँ पायी जाती हैं उनकी जड़ें लम्बी और मूसलाधार, उनकी पत्तियाँ चिकनी और सूर्य की रोशनी से झुकी हुई तथा उनकी छाल मोटी व काँटेदार होती है। जैतून यहाँ का मुख्य पेड़ है। इसके अलावा अधिक वर्षा वाले भागों में ओक, चीड़ अंजीर और सेदर के वृक्ष मुख्य हैं। आस्ट्रेलिया में करी और जर्रा के पेड़ होते है। यहाँ पर फल-फूल और साग-सब्जी की खेती खूब होती है। यहाँ के स्वच्छ आकाश और कड़ी गरमी में फलों के पकने को पर्याप्त मौका मिलता है। यहाँ पर उगाये जाने वाले फलों में रसदार फल विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं--संतरा और नीबू। अन्य फलों में अंगूर, अंजीर, जैतून, सेब और शहतूत अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के सहारे ताजे व सुखाये हुए फलों का धंधा

बहुत पनप गया है। अंगूर से शराब बनायी जाती है तथा शहतूत के पेड़ पर रेशम का कीड़ा पाला जाता है। जैतून से तेल निकाला जाता है। साथ-साथ गेहूँ और जौ की भी खेती होती है तथा भेड़ों को चराया जाता है।

गर्मी का मौसम शुष्क होने के कारण यहाँ पर दुग्धशाला व्यवसाय उन्नति नहीं कर पाया है। खनिज पदार्थों के अभाव के कारण शिल्प उद्योग भी स्थापित नहीं हो सके हैं। अतएव यहाँ के लोगों का मुख्य उद्यम खेती करना है। उद्योग-धंधों की दृष्टि से निम्नलिखित विशेष महत्वपूर्ण हैं—साबुन बनाना (जैतून के कारण); फलों को ताजे या सुखाये हुए रूप में डिब्बों में बन्द करना; कच्चा रेशम तैयार करना और शराब बनाना।

इसके अलावा इन प्रदेशों में विश्वविख्यात, स्वास्थ्य व मनोरंजन केन्द्र पाये जाते हैं।

Medial moraines (मध्यवर्ती मोरेन) हिम नदी के प्रवाह के दोनों पार्श्वों पर कंकड़, पत्थर और रोड़े की एक राशि जमा हो जाती है। ये पार्श्ववर्ती टीले अकेली श्रेणी के रूप में होते हैं और इनमें शिलाखंडों की राशि बिखरी हुई होती है। जब दो हिमनदियाँ एक स्थान पर मिल जाती हैं तो उनके संगम स्थान पर दोनों के पार्श्ववर्ती टीले भी मिल जाते हैं। उनके मिलने से बने हुए टीले को मध्यवर्ती मोरेन कहते हैं।
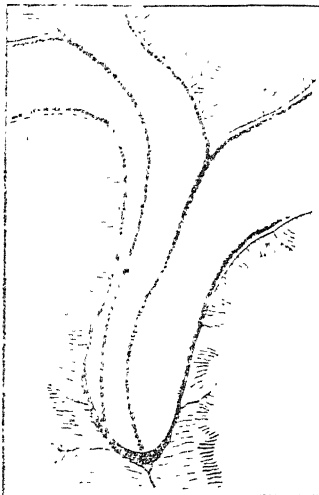
मध्यवर्ती मोरेन

Medium cloud (मध्यवर्ती मेघ) १०,००० फीट की ऊँचाई से ऊपर और २५००० फीट की ऊँचाई से नीचे जो मेघ पाये जाते हैं उन्हें मध्यवर्ती मेघ कहते हैं। इनमें दो विशेष रूप से प्रमुख हैं—आल्टो क्यूमुलस और आल्टो स्ट्रेटस। आल्टो क्यूमलस बादल चिपटी हुई विस्तृत गोलाकार राशि के समान होते हैं और टुकड़ों के समूह, रेखाओं अथवा लहरों के रूप में व्यवस्थित दिखलाई पड़ते हैं।

आल्टो स्ट्रेटस बादल सिरस बादलों की तरह धारीदार या रेशेदार होते हैं। परन्तु इनके आने पर सूर्य या चाँद के चारों ओर प्रकाश-वृत्त नहीं बनता।

Meltemi (मेल्टमी) यह पारिभाषिक शब्द तुर्की उत्पति का है और इटीसियन हवाओं को ही तुर्की में मेल्टमी कहते हैं। (देखिये **Etesian winds**)

Menhir (मनहिर) पाषाणयुग में बने बहुत ऊँचे तथा लम्बरूप पत्थर को मनहिर कहते हैं। यह पत्थर शायद धार्मिक उद्देश्य के लिए गाड़े गये थे और इनके द्वारा कब्रिस्तान का पता चलता है।

Mercator's Projection (मरकटर का अंकन) मरकेटर का अंकन बेलनाकार अंकन का ही एक प्रकार है और इसका सन् १५६९ में पता चला था। इसकी खोज या उत्पत्ति का पूर्ण श्रेय मरकेटर ग्राम के एक मानचित्रकार को है जो फ्रांस के फ्लान्डर्स भाग के निवासी थे। बाद में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एडवर्ड राइट महोदय ने इसमें कुछ संशोधन किए।

आजकल मानचित्रावली के मानचित्रों और समुद्री मार्गों को प्रदर्शित करनेवाले मानचित्रों के लिए यह अंकन बड़ा ही लोकप्रिय है ।

इस अंकन में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं—(१) साधारण बेलनाकार अंकन की तरह इसमें अक्षांश व देशान्तर रेखायें सीधी होती हैं और एक दूसरे को काटती हुई समकोण बनाती हैं। (२) सभी देशान्तर रेखायें समान दूरी पर स्थित होती हैं। (३) अक्षांश रेखायें भूमध्य रेखा के समानान्तर होती हैं परन्तु भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ने पर इनके बीच का अन्तर अनुपात में बढ़ता जाता है। इस प्रकार किसी भी अक्षांश पर देशान्तर रेखायें उत्तर की ओर उतनी ही खिंच जाती हैं जितना कि उनको पूर्व या पश्चिम की ओर खींचना पड़ा था ताकि वे सीधी रेखायें हो जायें। (४) देशान्तर रेखाओं पर मानदण्ड की बढ़ती सब दिशाओं में बराबर होती है। उत्तर और दक्षिण में मानदण्ड उतना ही बढ़ा हुआ होता है जितना कि पूर्व और पश्चिम में। (५) चूँकि देशान्तर रेखायें सीधी एक दूसरे के समानान्तर होती हैं इसलिए इनके बीच से खींची गई कोई भी रेखा इनको समान कोण पर काटेगी और इस कारण उसकी दिशा हमेशा एक सी बनी रहेगी। इस विशेषता के कारण ही यह अंकन समुद्री यात्राओं के लिए बड़ा उपयुक्त समझा जाता है। (६) इस अंकन पर ध्रुव प्रदेश होते ही नहीं क्योंकि अक्षांश रेखाओं को फैलाकर सीधी रेखा का रूप देने में ध्रुव भी समानान्तर सीधी रेखा बन जाते हैं जिसका विस्तार भूमध्य रेखा के बराबर होता है। अतः इस अंकन पर बनाये गये मानचित्रों पर केवल ८५° तक स्थित देशों को ही चित्रित करते हैं। (७) ग्लोब पर अक्षांश रेखायें पूर्ण वृत बनाती है और ये वृत्त भूमध्य रेखा से दूर चलने पर छोटे हो जाते हैं। परन्तु इस अंकन में अक्षांश समानान्तर रेखायें होती है जो हर जगह भूमध्य रेखा के बराबर होती हैं। ग्लोब पर ६०° डिग्री अक्षांश रेखा भूमध्य रेखा की आधी लम्बी होती है। इस प्रकार मरकेटर अंकन पर ६०° डिग्री अक्षांश पर विस्तार दुगना हो जाता है। इसको पूरा करने के लिए उत्तर-दक्षिण के विस्तार को भी दुगना बड़ा कर देते हैं। फलतः ६०° डिग्री अक्षांश पर १० वर्ग का क्षेत्रफल भूमध्य रेखा पर के क्षेत्रफल की अपेक्षा चौगुना हो जाता है। और दूर जाने पर ८५ डिग्री अक्षांश पर यह बढ़ती हर दिशा ६ गुनी हो जाती है। इसका असर ग्रीनलैंड और दक्षिणी अमरीका के मानचित्र से देखा जा सकता है। यद्यपि ग्रीनलैंड दक्षिणी अमरीका का बारहवाँ भाग है परन्तु मरकेटर अंकन पर ग्रीनलैंड दक्षिणी अमरीका की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा दिखलाई पडता है।

इसमें अनेक गुण व दोष हैं। सबसे बड़ा गुण तो यह है कि इस अंकन पर रम्बलाइन या लाक्सोड्रोम सदैव सीधी रेखा बनाती है। इससे नाविकों व वायुयान चालकों को बड़ी सुविधा रहती है। दूसरा गुण यह है कि इस अंकन पर दिशायें बिल्कुल ठीक दिखलाई जाती हैं। इसी कारण मार्गों के मानचित्रों के लिए वह बड़ा ही उपयुक्त रहता है। तीसरा गुण यह है कि यद्यपि विभिन्न अक्षांश रेखाओं की स्थिति निकालने में काफी गणित का प्रयोग करना पड़ता है फिर भी इसको बनाना काफी आसान होता है। इसका प्रयोग हवा की प्रचलित दिशाओं को दिखलाने वाले मानचित्रों के लिए भी किया जाता है।

इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्षिण की ओर चलने पर दूरी, विस्तार व क्षेत्रफल तथा आकार इतना बढ़ जाता है कि सामान्य मानचित्रों के लिए तो यह बिलकुल बेकार हो जाता है। अतएव यह अंकन वितरण, आर्थिक व राजनीतिक मानचित्रों के लिए बिल्कुल बेकार होता है। ध्रुवों के करीब के भागों को तो इस पर किसी भी प्रकार दिखाया नहीं जा सकता है। इस पर छोटे-छोटे विस्तार का क्षेत्रफल व आकार ठीक दिखलाया जा सकता है। इसलिए उत्तर या दक्षिण में विस्तृत देशों जैसे मिश्र को, इस पर ठीक दिखलाया जा सकता है।

Mere (मीर) (१) ग्रेट ब्रिटेन में छोटी झील, तलैया, नदी का खुला मुहाना या समुद्री खाड़ी के लिए मीर शब्द का प्रयोग किया जाता है। दलदली भूमि को भी कभी-कभी मीर कहते हैं। (२) सीमा या भूमिचिन्ह या सरहद के लिए भी इस पारिभाषिक शब्द को प्रयोग में लाते हैं।

Meridian (मध्यान्ह रेखा) वे वृहत वृत जो ध्रुवों से होकर गुजरते हैं और पृथ्वी के गोले को दो बराबर भागों में बाँटते हुए भूमध्य रेखा को ठीक समकोण पर काटते हैं, उनके अर्द्ध भाग को मध्यान्ह रेखा कहते हैं। मध्यान्ह रेखायें पूर्ण अर्द्धवृत नहीं बनातीं क्योंकि ध्रुव से होकर गुजरने वाले विशाल वृत को दो अर्द्धांश में १८० डिग्री देशान्तर और १२ घंटे समय का अन्तर रहता है। ग्लोब पर ये मध्यान्ह रेखायें १५° के अन्तर पर दिखायी जाती हैं और सुविधा के लिये लन्दन के पास ग्रीनविच वेधशाला के पास से गुजरने वाली मध्यान्ह रेखा को प्रधान मान लिया गया है और उसको शून्य या जीरो मानते हैं। इसी के आकार पर पूर्व व पश्चिम की कोणिक दूरी निर्धारित करके देशान्तर रेखायें बनाते जाते हैं। इनको मध्यान्ह रेखा इसलिए कहते हैं कि इनके ऊपर मध्यान्ह या दोपहर एक ही समय होता है। विभिन्न मध्यान्ह रेखाओं के बीच की दूरी भूमध्यरेखा पर तो ६९ मील रहती है, ६० अक्षांश पर इसकी आधी हो जाती है और ध्रुवों पर यह शून्य हो जाती है। (देखिये **Longitude**)

Mesa (मेसा) यह स्पेनी भाषा का शब्द है जिसके अर्थ मेज होते हैं। स्थल का वह रूप जो चोटी पर सपाट मेज की तरह होता है उसे मेसा कहते हैं। इसके सब ओर का ढाल बड़ा ही तीव्र होता है। ऊपर की चट्टानी परत कठोर होने के कारण आवरणक्षय की शक्तियों के आघात को सहन करती हुई समानान्तर बनी रहती है और इसकी सतह परतों के अनुसार समतल बनी रहती है। परन्तु इसके पार्श्व के ढाल मुलायम चट्टानों के बने होने के कारण कटते रहते हैं और कालान्तर में मेज की तरह का चट्टान खंड खड़ा रह जाता है जिसे मेसा कहते हैं।

मेसा नामक स्थलरूप कई प्रकार से बन जाते हैं। जब कोई नदी किसी प्रदेश में गहरी व सँकरी घाटी बनाती है जैसे संयुक्त राष्ट्र की कोलैरैडो नदी तो बाद में घाटी की तली के चौड़ा होने पर पठार कई टुकड़ों में विभक्त दिखलाई पड़ता है। दो घाटियों के बीच स्थित पठार का अंश विशाल मेज की तरह होता है। इन्हें मेसा कहते हैं।

मेसा साधारणतया वहाँ बन जाते हैं जहाँ चट्टानों की बनावट व स्थिति इस प्रकार हो कि ऊपरी परतें तो कठोर हों और उनका आधार कमजोर चट्टानों का बना हो। बहुधा ऐसी स्थिति वहाँ मिलती है जहाँ की ऊपरी परत लावा के कारण कठोर व सपाट मेज की तरह हो गई हो पर नीचे की कमजोर चट्टानें वैसी ही बनी हों। कालान्तर में मेसा पर वायु व जल शक्ति के आघात होते रहने पर इसका आकार व विस्तार छोटा पड़ जाता है और तब इन्हें बुटे कहते हैं।

Meseta (मेसेटा) स्पेन के भीतरी भाग में फैला हुआ विस्तृत पठार मेसेटा कहलाता है। यह मेसेटा प्रदेश स्पेन के तीन-चौथाई क्षेत्रफल में फैला हुआ है और आवरण क्षय की शक्तियों के द्वारा यह बहुत कटफट तथा टूटफूट गया है। इसके आरपार ऊँची पर्वत श्रेणियाँ भी फैली हुई हैं। वास्तव में यह भूपटल का एक पिंड है जो कालान्तर की शक्तियों के प्रभाव से बहुत घिस चुका है।

Mesophyte (मेसोफाइट) जिन पौधों को साधारण नमी व जल की आवश्यकता होती है उन्हें मेसोफाइट कहते हैं। जलवायु की अन्तरिम या मध्यवर्ती पेटियों में, साधारण वर्षा और सामान्य तापक्रम में उगने वाले पेड़, पौधे व झाड़ियाँ इसी श्रेणी में आते हैं।

Mesozoic Era (**मध्य युग**) पृथ्वी के धरातल पर का इतिहास बहुत पुराना है और उपलब्ध चट्टानों व जीवजन्तुओं की विशेषताओं के आधार पर उसे ५ युगों में बाँट दिया गया है। यह युग पृथ्वी के पुरायुग (Paleozoic) और नवीन युग (Cainozoic) के बीच में पड़ता है और इसे सर्पों का युग भी कहते हैं। इस संपूर्ण युग में धरातल पर बड़ी-बड़ी उथल-पुथल हुई और धरातल पर पर्वतों का निर्माण हुआ। इस युग में बहुत से ज्वालामुखी उद्‌गार भी हुए। इस युग के मध्य काल में फूलने वाले पौधों और पक्षियों का प्रादुर्भाव भी हुआ तथा पतझड़ वाले वृक्षों के चिन्ह मिलना शुरू हुआ।

जीवजन्तु, वनस्पति और धरातलीय उथल-पुथल के आधार पर इसके तीन छोटे-छोटे भाग किये जाते हैं—(१) ट्रियासिक काल जब भूमध्यसागर और आल्प्स पर्वत के स्थान पर टेथिस समुद्र लहराता था तथा उत्तरी गोलार्द्ध की जलवायु शुष्क होती जा रही थी परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध हिमआवरण से ढकता जा रहा था। अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका, भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप और आस्ट्रेलिया का एक विशाल भूखंड गोन्डवाना लैंड के ही भाग थे। (२) जुरेसिक काल जब रेंगने वाले बहुत विशाल जन्तुओं का बाहुल्य था जो जल, थल और वायु सभी जगह प्रधान थे। (३) क्रिटेसियम काल में खड़िया मिट्टी की चट्टानों की प्रधानता रही। इस समय यूरोप और उत्तरी अमरीका में खड़िया की विस्तृत परतें जम गईं। उत्तर अमरीका में पर्वतों का निर्माण हुआ और सिअरा निवादा तथा कारडीलरा श्रेणी इसी काल में बनी। संभवतः इसी काल में दक्षिणी भारत में लावा का नियुक्त उद्‌गार हुआ और यह लावा करीब ढाई लाख वर्गमील में छा गया।

Mestizo (**मेस्टइजो**) अमरीकी इंडियन और योरोपियन के संसर्ग से उत्पन्न सन्तान को मेस्टइजो कहते हैं। वास्तव में यह संसर्ग यूरोप की सभी जातियों से न होकर केवल स्पेनी या पुर्तगाली लोगों के साथ ही हुआ। इसलिए स्पेनी या पुर्तगाली तथा अमरीकी इन्डियन लोगों के संसर्ग से उत्पन्न सन्तान को मेस्टइजो कहते हैं। इस प्रकार के मेस्टइजो लोग ब्राजील में भी पाये जाते हैं परन्तु वहाँ इन यूरोपीय जातियों का संसर्ग हब्शी जाति के साथ हुआ। इसलिए वहाँ के मेस्टइजो लोग स्पेनी या पुर्तगाली और हब्शी लोगों की सन्तान हैं।

Metalled Road (**पक्की सड़क**) जो सड़क सीमेंट और कांक्रीट तथा अलकतरे से बनाई जाती है ताकि उस पर मोटर-गाड़ियाँ चल सकें उसे पक्की सड़क कहते हैं। मोटर द्वारा यातायात बढ़ने से पक्की सड़कों का महत्व भी बहुत अधिक हो गया है और आजकल किसी देश की आन्तरिक यातायात व्यवस्था वहाँ की पक्की सड़कों की लम्बाई पर निर्भर रहती है।

Metamorphic Aureole (**रूपान्तरित चट्टान वृत**) पृथ्वी के भीतर मैग्मा के ठंडा होकर जाने से आन्तरिक आग्नेय चट्टानें बन जाती हैं जो इधर-उधर तथा ऊपर-नीचे से अन्य चट्टानों से घिरी रहती हैं। आन्तरिक आग्नेय चट्टानों को घेरे हुए अन्य चट्टानी परत बहुधा सम्पर्क से रूपान्तरित हो जाती है। इस प्रकार के रूपान्तरित चट्टानी घेरे को रूपान्तरित चट्टान वृत कहते हैं। (देखिये Metamorphic Rock)

Metamorphic Rock (**रूपान्तरित चट्टान**) आग्नेय या परतदार चट्टानों के मूल रूप में परिवर्तित हो जाने से जो चट्टानें बनती हैं उन्हें रूपान्तरित चट्टानें कहते हैं। पृथ्वी के भीतर की भीषण गर्मी तथा ऊपरी परतों के भारी दबाव के कारण कालान्तर में आग्नेय व परतदार चट्टानों के रूप और गुण में इतना परिवर्तन हो जाता है कि वे बिल्कुल अलग श्रेणी की चट्टान बन जाती हैं जिन्हें रूपान्तरित चट्टान कहते हैं।

रूपान्तरित चट्टान के गुण व रूप में उनकी उत्पत्ति के अनुसार विशेषतायें आ जाती हैं। जब भीषण गर्मी के कारण परिवर्तन होता है तो कई बार चट्टान के खनिज बदल कर नवीन प्रकार के खनिज बन जाते हैं। जब ऊपर की परतों के भारी दवाव के कारण रूप परिवर्तन होता है तो चट्टान की बनावट बदल जाती है और मूल चट्टान की कठोरता में वृद्धि हो जाती है। जब बहते हुए भूगर्भवर्ती जल का प्रभाव पडता है तो मूल चट्टानों में रासायनिक परिवर्तन हो जाता है। उनका कुछ अंश घुल कर नष्ट हो जाता है और दूसरा अंश ऊपर से जमा हो जाता है। इस प्रकार चट्टानों में दवाव, गर्मी तथा जल की रासायनिक क्रियाओं के कम-ज्यादा देर तक होते रहने से चट्टानों में अनेक प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं। पूर्ण परिवर्तन हो जाने पर यह पहिचानना कठिन होता है कि मूल चट्टानों के रूपान्तरित रूप होते हैं। उदाहरण के लिए ग्रेनाइट के रवे व स्फट अलग हो जाते हैं और उनकी भद्दी परतें बन जाती हैं। इस रूपान्तरित चट्टान को नीसिस कहते हैं। चूने की चट्टान की बनावट बदल जाने पर संगमरमर बन जाता है। इसी प्रकार अधिक दवाव के कारण शेल का रूप स्लेट में बदल जाता है।

रूपान्तरित चट्टानों को बनाने वाली भीषण गर्मी व दवाव का प्रादुर्भाव पर्वत निर्माण-कारी शक्तियों, भूकम्प, ज्वालामुखी उद्गारों के कारण होता रहता है। परन्तु रूपान्तरित चट्टानों के हटने की जरूरत नहीं। मूल चट्टान आग्नेय थी या परतदार। अधिकतर आग्नेय और परतदार चट्टानों के स्थान पर रहते हुये भी रूपान्तरित चट्टानें बन जाती हैं और इस प्रकार की चट्टानों के कुछ प्रदेश हजारों वर्ष पहिले बने थे और आज भी उसी रूप में स्थित हैं। भारत का दक्षिणी पठार इसका उत्तम उदाहरण है। ये रूपान्तरित चट्टानें बड़ी कठोर होती हैं और इनमें प्राकृतिक शक्तियों के प्रहार सहने की पर्याप्त शक्ति होती है।

Meter gauge (छोटा प्रान्तर) रेल की दोनों पटरियों के बीच के फासले को प्रान्तर कहते हैं और भिन्न-भिन्न स्थानों पर यह अलग-अलग होता है। जब दो पटरियों के बीच का अन्तर या दूरी ३ फीट ३$\frac{3}{8}$ इंच होती है तो उसे छोटा प्रान्तर कहते हैं।

छोटे प्रान्तर की रेलगाड़ियों के डिब्बे व इंजन छोटे होते हैं और उनमें बैठने की जगह थोड़ी होती है। साथ-साथ उनकी चाल भी धीमी होती है।

Meteor (उल्का) हम अक्सर आकाश में तारों को टूटते हुए देखते हैं। इन टूटते हुये तारों को उल्का कहते हैं। सौरमंडल के सबसे छोटे सदस्य यही उल्का होते हैं। यह धूल के कण या कंकड़ के इतने बड़े होते हैं और मिले-जुले पथ पर इकट्ठा होकर ये उल्का सूर्य के चारों ओर घूमा करते हैं। ये उल्का इतने छोटे व बिखरे हुए होते हैं कि खुली जगह में इनको देखा नहीं जा सकता। ये उसी समय दिखलाई पड़ते हैं जब इनका पथ पृथ्वी के ग्रहपथ को काटता है और इनके सामने पृथ्वी आ जाती है। ऐसी स्थिति में हमारे वायमंडल में ये तेजी के साथ दौड़ते हैं और जैसे-जैसे ये अपने आगे की हवा को दबाते हैं, ये काफी गर्म हो कर चमकने लगते हैं। इनकी गति १५० मील प्रति सेकंड तक होती है और जब यह पृथ्वी के ऊपर ५० और १०० मील की ऊँचाई पर रहता है तो खूब चमकने लगता है। प्राय: ५० मील की ऊँचाई पर आकर ये अदृश्य हो जाते हैं।

वास्तव में आकाश मंडल के नक्षत्रों में उल्का सबसे छोटे होते हैं और इनकी उत्पत्ति के विषय में कुछ भी नहीं पता है। जब यह चमकते हैं तो यह समझना चाहिये कि इनके जीवन इतिहास की अन्तिम दशा आ गई है और वायमंडल से होते हुए ये इतने टूट जाते हैं कि बस ये धरातल पर धूल बन कर गिर पड़ते हैं। कभी-कभी ये उल्का जब गिरते हैं तो काफी बड़े रहते हैं। तब उन्हें उल्का पिण्ड (**Meteorite**) कहते हैं।

Meteorite (**उल्का पिण्ड**) टूटे हुये तारों या उल्का के कुछ टुकड़े हमारी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से खिंच कर पृथ्वी पर गिर जाते हैं। इनको उल्का पिंड कहते हैं। ये उल्का पिंड वास्तव में चट्टान या खनिज के बड़े ढोके होते हैं जो साधारण उल्का की अपेक्षा कहीं बड़े होते हैं। फलतः वायुमंडल से होकर गुजरने पर धूल के रूप में चूर्ण नहीं हो जाते। कुछ उल्का पिण्ड पूर्णतया धातु के ढोके होते हैं और इनमें लोहे व निकल का मिश्रण रहता है। कुछ उल्का पिंड में सिलिका और धातु दोनों का ही मिश्रण रहता है और अन्य में केवल सिलिका ही का अंश रहता है। इन उल्कापिंडों में कभी भी ऐसा कोई रसायन नहीं पाया जाता जो पृथ्वी पर पहिले कभी न रहा हो। कुछ अति प्रमुख उल्का पिण्डों में वह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो संयुक्त राष्ट्र अमरीका के एरीजोना राज्य में विन्सला नामक स्थान के पास गिरा था और सके गिरने से ६०० फीट गहरा गड्ढा बन गया जिसका व्यास करीब एक मील था।

Meteorograph (**मीटीरियोग्राफ**) वायमंडल के ऊपरी भाग में वायुभार, ताप-क्रम और आर्द्रता की दशाओं को अध्ययन के लिये हवा से भरे गुब्बारे के साथ एक यंत्र को उड़ा देते हैं जिसमें इन दशाओं से संबंधित आँकड़े अपने आप दर्ज होते रहते हैं; इसे मीटीरियोग्राफ कहते हैं। (देखिये Ballon Sonde)

Meteorology (**ऋतु विज्ञान**) ऋतु संबंधी दशाओं का अध्ययन करने वाली विद्या को ऋतु विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तरर्गत वायुमंडल में होने वाली भौतिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है और साथ-साथ स्थल व जल मंडल पर उनसे संबंधित दशाओं का भी अध्ययन करते हैं। इस प्रकार इस विषय के अन्तर्गत वायभार व तापक्रम प्रचलित हवाओं, जलवृष्टि, मेघाच्छन्नता और सूर्यप्रकाश आदि का अध्ययन किया जाता है।

इन दशाओं का अध्ययन व निरीक्षण यंत्रों की सहायता से किया जाता है और इसके लिए संपूर्ण सभ्य संसार में वेधशालाओं का एक जाल सा बिछा हुआ है। इन वेधशालाओं में विभिन्न प्रकार की दशाओं के विषय में आँकड़े इकट्ठे करके वे तार के तार द्वारा केन्द्रीय वेधशालाओं को भेजे जाते हैं जहाँ इन्हें एक मानचित्र पर अंकित कर लिया जाता है और फिर उनके आधार पर ऋतु विज्ञप्ति निकाली जाती है तथा अगले चौबीस घंटों के मौसम के बारे में भविष्य-वाणी की जाती है।

वर्तमान युग में ऋतु विज्ञान का अध्ययन बड़ा ही महत्वपूर्ण हो गया है और इसकी किसानों, नाविकों व हवाबाजों के लिए विशेष महत्व है।

कुछ विद्वान इसे अंतरिक्ष विज्ञान भी कहते हैं।

Midnight Sun (**मध्यरात्रि सूर्य प्रकाश**) उच्च अक्षांशों में गर्मी के मौसम के मध्यकाल में सूर्य का प्रकाश चौबीस घंटे बराबर बना रहता है और सूर्य सदैव क्षितिज पर स्थित रहता है। फलतः इसको मध्य रात्रि में भी देखा जा सकता है। इसके मध्यरात्रि सूर्यप्रकाश कहते हैं।

वास्तव में पृथ्वी की धुरी के झुके हुए होने से तथा सूर्य का चक्कर काटते समय धुरी की प्रत्येक स्थिति का अन्य सभी स्थितियों में समानान्तर होने से दिन और रात की लम्बाई का अन्तर भूमध्य रेखा की दूरी के साथ बढ़ता जाता है। ७०° अक्षांश पर सूर्य के प्रकाश की अवधि दो महीना हो जाता है, ८०° डिग्री पर ४½ महीना और ९० डिग्री अक्षांश पर ६ महीने तक सूर्य का प्रकाश बना रहता है। अपने गर्मी के मौसम में प्रत्येक गोलार्द्ध सूर्य की तरफ झुक जाता है और उसी के फलस्वरूप दिन की अवधि में यह अन्तर आ जाता है। इस प्रकार ७० डिग्री अक्षांश के बाद से प्रत्येक गोलार्द्ध के गर्मी के मौसम में ऐसा हो जाता है कि सूर्य छिपता ही नहीं और रात्रि में भी उसका प्रकाश फैला रहता है।

नार्वे की उत्तरी अन्तरीप पर जो ७३° उत्तरी अक्षांश पर स्थित है, १२ मई से २९ जून तक सूर्य का कुछ अंश दिन-रात बराबर दिखलाई पड़ता रहता है।

Middle Valley Plain (मध्यघाटी मैदान) जब कोई नदी पर्वतों से निकल कर बहती हुई समतल मैदान में आती है तो वहाँ उसकी गति मन्द हो जाती है और साथ ही उसमें भार या बोझ ढोने की शक्ति भी नहीं रह जाती। अतः वह अपने पार्श्वों को चौड़ा करती हुई फैलकर प्रवाहित होती है। इस भाग को मध्य घाटी मैदान कहते हैं।

अपने मध्य घाटी मैदान में नदी अपनी तलैटी में इधर-उधर हटती रहती है और पर्वत शाखाओं को काट कर अपनी चौड़ी तलैटी में वह घुमावदार मार्ग से होकर बहती है। किनारे पर निक्षेप होते रहने से कगार बन जाते हैं और नदी के मार्ग में परिवतन होते रहने से बहुत से परित्यक्त घुमावों में नालाकार झील बन जाती है। यह हालत तो मध्यघाटी मैदान के निचले भाग में रहती है। ऊपरी भाग में नदी के द्वारा लाये हुए कंकड़-पत्थर छितरे पाये जाते हैं और उनके ऊपर से बहता हुआ नदी का जल चारों ओर फैल जाता है।

नदी के आर्थिक लाभ व महत्व के दृष्टिकोण से इन मैदानों का बड़ा महत्व है और संसार की सभी सभ्यतायें विभिन्न नदियों के मध्य घाटी मैदान में ही पनप कर विकसित हुई हैं।

Mile (मील) ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा अन्य अंग्रेजी भाषा भाषी राष्ट्रों में भूमि की लंबाई नापने के लिए १७६० गज के बराबर की एक माप लेते हैं जिसे मील कहते हैं। यह माप रोम से लिया गया है जहाँ १००० फैदम या १६१८ गज की माप को मील कहते थे। (देखिए **Geographical mile, Nautical mile**)

Millionth map (दसलखा मानचित्र) विभिन्न प्रदेशों के भूमिति को अलग-अलग मानदण्ड और व्यवस्था के अनुसार खींचे जाते हैं। अतः सब देशों के भूमिति चित्रों में एक साथ व तारतम्य उत्पन्न करने के लिए ताकि मौका पड़ने पर उनको मिलाकर संपूर्ण पृथ्वी का भूमिति चित्र उपस्थित किया जा सके, एक ऐसे भूमिति चित्र की व्यवस्था की गई जिसका मानदण्ड १ : १०,००,००० होगा। इस प्रकार के भूमिति चित्रों को दसलखा मानचित्र कहते हैं और इनको बनाने में भारत, ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमरीका विशेष अग्रणीय हैं। इस प्रकार के २२२ भूमिति चित्रों को मिलाने पर सम्पूर्ण पृथ्वी का मानचित्र बन सकता है। (देखिए **International map**)

Millet Rains (मिलेट वृष्टि) पूर्वी अफ्रीका में अक्टूबर से दिसम्बर तक होने वाली मसि वर्षा को मिलेट वृष्टि कहते हैं। (देखिए **Maize Rains**)

Millibar (मिलीबार) वायु भार को नापने में प्रयुक्त इकाई को मिलीबार कहते हैं। यह 'बार' का एक हजारवाँ अंश होता है और वर्तमान ऋतु संबंधी मानचित्रों में इसी को प्रदर्शित करते हैं। प्रायः समभार दर्शक रेखायें दो मिलीबार के अन्तर पर ही खींची जाती हैं १००० मिलीबार वायुभार करीब-करीब २९.५३ इंच या ७५०.१ मिलीमीटर स्तंभ के भार के बराबर होता है।

Mineral (खनिज) भूपटल पर पाये जाने वाले मूल तत्व अधिकतर एक दूसरे के साथ मिले-जुले मिलते हैं। इस स्वाभाविक निर्जीव पदार्थ के रासायनिक संयोग को खनिज कहते हैं। इनकी रासायनिक रचना, प्राकृतिक बनावट और आकार-प्रकार संबंधी गुण एक निश्चित प्रकार के होते हैं। उपलब्ध ज्ञान के अनुसार करीब २००० खनिज मिलते हैं

जिनकी भौतिक व रासायनिक विशेषतायें विभिन्न होती हैं। परन्तु एक विशेष प्रकार की खनिज जाति में बहुत कम हेर-फेर पाया जाता है। खनिजों की इस विशाल संख्या में से केवल सौ दो सौ, खनिज तो खूब पाये जाते हैं और उनका विस्तृत भंडार भूगर्भ की चट्टानों में निहित हैं। थोड़े से खनिज जिनकी संख्या ८-१० होगी, प्रायः सभी चट्टानों में पाये जाते हैं।

कुछ खनिज एक ही मूल तत्व के होते हैं जैसे सोना, ताँबा, कोयला। परन्तु ज्यादातर खनिज कई प्रकार के मूलतत्वों के योग से बनते हैं और इन तत्वों के मिश्रण के अनुपात में ज्यों-ज्यों अन्तर पड़ता है, त्यों-त्यों खनिजों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। विभिन्न प्रकार के खनिजों की विशेषताओं को निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है :—

(१) रचना संबंधी जिनके अन्तर्गत उनके रूप, कठोरता, दरार और फटन आदि को लेते हैं।

(२) प्रकाश संबंधी जिसके अन्तर्गत उनका रंग, चमक तथा अन्य दृश्य गुण के आधार पर विभिन्नता निश्चित करते हैं।

(३) खनिज का भार व आयतन संबंधी।

(४) स्वाद, गन्ध, स्पर्श, चुम्बकीय खिंचाव आदि से संबंधित। इन विशेषताओं के आधार पर खनिज विशेष को निश्चित करने के बहुत से तरीके हैं।

पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न खनिजों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है —(१) **कच्ची धातुयें**—जैसे लोहा, ताम्बा, टीन, जस्ता, सीसा, चाँदी, सोना, मैंगनीज, निकल आदि (२) **ईंधन के स्रोत**—जैसे कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस। (३) **इमारती पत्थर**—चूने का पत्थर, चूना, अस्फाल्ट, रेत, कंकड आदि। (४) **रासायनिक पदार्थ**—नमक, गंधक, पोटाश, मेगनेसाइट इत्यादि। (५) **बहुमूल्य पत्थर तथा विविध पदार्थ**—नीलम, माणिक, हीरा, बिल्लौरी पत्थर, अभ्रक, ग्रेफाइट, स्लेट इत्यादि।

उपर्युक्त श्रेणियों के कुछ खनिज तो धातुजनक (ores) के रूप में पाये जाते हैं और कुछ चट्टानों के रूप में। इनके अलावा सभी में आक्सीजन, सिलीका, अल्यूमिनियम और लोहा आदि का सम्मिश्रण मिलता है। ये तत्व अधिकाँशतः आक्साइडो के रूप में मिलते है। इस आधार पर खनिज आक्सीजन-प्रधान, सिलिका-प्रधान, कार्बोनेट-प्रधान कहा जा सकता है।

Mineralogy (खनिज विज्ञान) पृथ्वी पर पाये जाने वाले विविध प्रकार के खनिजों की उत्पत्ति, विशेषताओं, वितरण तथा उपयोगी के अध्ययन को खनिज विज्ञान कहते हैं।

Mineral Spring (खनिज जलस्रोत) जिन प्रदेशों में ज्वालामुखी उद्गार हाल तक होते रहे हैं या जहाँ दरारें बन गईं वहाँ पर भूगर्भ का जल स्रोत के रूप में बाहर निकलने लगता है। जब किसी स्रोत के जल में खनिज पदार्थों का घोल मिलता है तो उसे खनिज जलस्रोत कहते हैं। वास्तव में भूगर्भ से बाहर की ओर आने के दौरान में यह जल अनेक प्रकार की चट्टानों पर से होकर गुजरता है और उनके घुलनशील खनिज इसमें मिल जाते हैं। और इनका अंश जल में इतना काफी होता है कि जीभ पर रखने भर से पता चल जाता है। खनिज जलस्रोत ठंढे और गर्म दोनों ही प्रकार के होते हैं और कुछ खट्टे अम्ल की तरह होते हैं तो कुछ क्षार का स्वाद देते हैं। कुछ स्रोतों के जल में गंधक मिला रहता है तो कुछ का जल नमकीन होता है और कुछ खनिज जलस्रोत के जल में कार्बन डाइ आक्साइड मिला रहने के कारण उनका स्वाद सोडावाटर की तरह होता है। कुछ जलस्रोत अपने में लोहे का अंश

घुलाये रखते हैं और उनका जल बड़ा सख्त होता है। जल कभी तो इतना गर्म होता है कि उस पर वस्तु रखने भर से उबलने लग जाती है और कभी इतना ठंढा होता है कि उंगली डालने भर में गलन शुरू हो जाती है। इनमें से तीन प्रकार के स्रोत बहुत महत्वपूर्ण हैं—(१) नमकीन जलस्रोत, (२) गंधक जलस्रोत और (३) चेलीवेट जलस्रोत जिसमें लोहे के अंश मिले रहते हैं।

इन खनिज जलस्रोतों के जल में औषधि के गुण होते हैं और जहाँ ये पाये जाते हैं वहाँ बड़े-बड़े होटल, हमाम और स्वास्थ्यगृह बन जाते हैं। कभी-कभी इनके जल को बोतल में बन्द करके दूर-दूर तक भेजते हैं।

Mining (खान खोदना) खान खोदना वह उद्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने उपयोग के लिए जमीन खोद कर भूगर्भ से खनिज निकालता है। ये खनिज भिन्न-भिन्न उद्योगों में कच्ची धातुओं का काम देते हैं। सच तो यह है कि वर्तमान सभ्यता बहुत अंशों में खनिज पदार्थों पर ही निर्भर है। मशीन, जहाज, हथियार, मकान, सिक्के आदि सभी वस्तुओं का निर्माण खनिज पदार्थों पर ही निर्भर है।

परन्तु खनिज संपत्ति का परिमाण सीमित होता है। कृषि की भाँति इसकी उपज हर जगह और बार-बार नहीं हो सकती। यदि मनुष्य खनिज पदार्थों को खोद कर न निकालें तो वे अनन्त काल तक पृथ्वी के गर्भ में ही पड़े रहें परन्तु बार-बार निकालते रहने पर उनकी पूर्ति असंभव है। इस प्रकार खान खोदना प्रकृति की संपत्ति का अपहरण है। विभिन्न प्रकार के खनिज दिन प्रति दिन कम होते जा रहे हैं और ऐसी शंका है कि भविष्य में खनिज की भारी कमी हो जायगी।

पौधों की भाँति खनिज का संबंध जलवायु से नहीं है। यही कारण है कि खनिज पदार्थ प्रत्येक देश में पाये जाते हैं और धातुओं की बढ़ती हुई माँग के कारण मनुष्य ने सारी पृथ्वी छान डाली। बन्जर रेगिस्तानों में खनिज प्राप्त करने के लिये खान खोदने का उद्यम चल निकला है और ऐसे प्रदेश भी आबाद हो गये हैं। उत्तरी अमरीका का यूकन प्रदेश और पश्चिमी आस्ट्रेलिया इस तथ्य के स्पष्ट उदाहरण हैं।

खान खोदने के धंधे में खान की गहराई महत्वपूर्ण है। जितनी ही खान गहरी होगी खनिज पदार्थ निकालने का व्यय उतना ही अधिक होगा। अधिक गहराई में गरमी अधिक होने से मजदूरों को काम करने में कठिनाई होती है। इसलिए अधिकतर खानें एक मील से अधिक गहराई पर नहीं हैं। अधिकतर खानें वहाँ खोदी जाती हैं जहाँ गहराई में स्थित चट्टानों को प्रकृति ने खोल दिया है और उनमें विशेष परिवर्तन कर दिया है।

खान खोदने के धंधों में जो कुछ भी पूँजी होती है वह केवल खान के अन्दर रेल डालने तथा ऊपर तक धातु को उठाने के लिए काम में लायी जाती है। इसलिए खान खोदने का धंधा रेलवे लाइन तथा यातायात की अन्य व्यवस्था पर निर्भर रहता है।

खान खोदने के धंधों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—(१) **धातुओं के लिये खानों की खुदाई—**कच्ची धातुयें प्राचीन तथा कठिन चट्टानों में पाई जाती हैं। ये खानें प्रायः नगरों तथा बसे हुए भागों से बहुत दूर तक स्थित होती हैं। अतः इनके आसपास खान खोदने वालों की बस्ती बन जाती है और शाखा लाइन द्वारा इन्हें उन्नत क्षेत्र से मिला दिया जाता है। प्रायः सभी धातुजनक और बहुमूल्य पत्थर आग्नेय चट्टानों के भूपटल की निचली गर्भ परतों में बनते हैं। धातु वाले पत्थर ज्वालामखी की चट्टानों के समान दरारों द्वारा धरातल पर आ जाते हैं। कुछ धातु जनक पत्थर और बहुमूल्य पत्थर चट्टानों में परिवर्तन के समय बन जाते हैं। यही कारण है कि सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, जस्ता आदि या तो

आग्नेय चट्टानों में पाये जाते हैं या बहुत पुरानी कड़ी पत्थर परतदार चट्टानों में। कुछ धातुजनक पत्थर बहुत कठिन व भारी होते हैं और जब इनको वर्षा तथा नदियाँ इनके उत्पत्ति स्थान की चट्टानों से बहा कर ले जाती हैं और वे नदी की महीन मिट्टी में मिलते हैं। धातु के लिए खान खोदने का उद्यम धातुजनक पत्थर में धातु के अंश, खान खोदने में आसानी, अन्य धातुओं की उपस्थिति तथा उसके साथ पाई जाने वाली अशुद्धियों के उपयोग पर निर्भर रहता है।

(२) ईंधन के लिये कोयले और तेल की खान खोदना—कोयला और मिट्टी का तेल सदा नवीन, कोमल परतदार चट्टानों में पाया जाता है और धातुओं की अपेक्षा अधिक समतल और कम पहाड़ी देशों में मिलता है। कोयला और तेल का प्रयोग केवल ईंधन के लिए ही नहीं किया जाता। बहुत से उद्योग-धंधों के लिए ये आधारभूत कच्चे माल का काम देता है। कोयला अनेक व्यवसायों के कलकारखानों में ईंधन के काम में आता है और कोयले की खानों के समीप कारखाने बन जाते हैं। इसके विपरीत तेल या तो कुआँ खोदने पर अपने आप निकल आता है या पम्प द्वारा ऊपर खींचा जाता है। जब तेल निकल आता है तो नलों द्वारा बहुत दूर तक उन स्थानों में पहुँचाया जाता है जहाँ इनकी आवश्यकता होती है। चूँकि जहाजों में तेल अधिक जलाया जाता है और इसलिए वह बन्दरगाहों तक नलों से भेजा जाता है।

Minute (मिनट) (१) समय परखने और निश्चित करने की इकाई जो घंटे का साठवाँ अंश होता है।

(२) अक्षांश या देशान्तर को नापने की इकाई जो एक डिग्री या अंश के साठवें अंश के बराबर होती है।

Mirage (मृग तृष्णा) विभिन्न घनत्व की वायुपरतों से होकर जब प्रकाश फैलता है और छितराता है तो कुछ भटकाने वाली आकृतियाँ उपस्थित हो जाती हैं। भुलावे में डालने वाली इन आकृतियों को मृगतृष्णा कहते हैं। गर्म मरुस्थल में निरीक्षक को कभी-कभी दूर पर ऐसा मालूम पड़ता है कि पानी से भरा जलाशय हो जो धूप में चमकता हुआ प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में वहाँ बालू ही बालू होती है। भूमि के समीप के वायु परतें गर्म हो कर कम घनी हो जाती हैं और आसमान से आती हुई प्रकाश किरणें जो निरीक्षक की तरफ कुछ टेढ़ी होकर आती हैं, इस परत पर से बिखर जाती हैं और निरीक्षक को ऐसा मालूम पड़ता है कि जल के ऊपर से किरणें चमक रही हैं। इस भुलावे के कारण उसे रेत में जलाशय का भास होने लगता है।

इसी प्रकार बहुत सी वस्तुओं का निचला भाग नहीं दिखलाई पड़ता है और वे पानी के ऊपर तैरती हुई प्रतीत होती हैं। शीतोष्ण कटिबंध में किसी गर्म दिन में सीधी सपाट सड़क पर इसी प्रकार की मृगतृष्णा का अनुभव होता है।

दूसरे प्रकार की मृगतृष्णा वह होती है जिसमें दूर-दूर पर स्थित वस्तुओं की दुहरी आकृति दिखलाई पड़ती है। कभी-कभी ध्रुवीय प्रदेशों में जब किसी ठंढी और घनी वायु परत के ऊपर गर्म हवा की परत रुकी रहती है तो सूर्य के प्रकाश की किरणें उस ऊपरी परत से नीचे की ओर झुक जाती हैं। फल यह होता है कि दूर से ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि जहाज या हिमशिला-खण्ड उलट गये हैं और आसमान से लटक रहे हैं यद्यपि वास्तव में समुद्र के ऊपर कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता।

इस भौतिक तथ्य को मृगतृष्णा इसलिए कहते हैं कि गर्मी के दिनों में प्यासा मृग इस प्रकार के प्रकाश दृश्य के कारण इधर-उधर भटकता है परन्तु कहीं भी उसकी प्यास नहीं बुझती और अन्त में वह तड़प-तड़प कर मर जाता है।

Mist (धुंध) जब वायुमंडल की निचली परतों में जल के कणों का समूह इकट्ठा हो जाता है तो पारदृश्यता काफी कम हो जाती है। इसे धुंध कहते हैं। वास्तव में वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प के द्रवीभवन से ही धुंध बनते हैं और उस समय दो किलोमीटर से अधिक दूरी तक देख सकना संभव नहीं होता। ऋतु वैज्ञानिकों का विचार है कि जब तक १००० मीटर या २१०० गज की दूरी से अधिक दूर तक देखा जा सकता है तब तक तो इसे धुंध कहते हैं परन्तु जब दृश्यता की सीमा इससे कम हो जाती है तो उसी को कुहरा कहते हैं।

कुहरा और धुंध में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि धुंध में तो जलकण होते हैं परन्तु कुहरा शुष्क होता है। धुंध के बीच से गुजरने पर ऐसा मालम पड़ता है जैसे कि पानी से तर कम्बल से आदमी को लपेट दिया गया हो। इसके विपरीत कुहरे में धुयें के कण मिल जाने से आँख और गले में जलन होने लगती है और सूखा-सूखा सा अनुभव होता है। (देखिए Fog)

Mistral (मिस्ट्रल) भूमध्य सागर के उत्तरी-पश्चिमी भाग में तटीय प्रदेशों में विशेष रूप से रोन नदी के डेल्टा प्रदेश में उत्तर या उत्तर-पश्चिम से एक ठंढी वायु प्रवाहित होती रहती है। इसे मिस्ट्रल कहते हैं। यह वायु विशेषकर जाड़े की ऋतु में चलती है जब कि यूरोप महाद्वीप पर वायुभार अपेक्षाकृत अधिक होता है और पश्चिमी भूमध्यसागर पर वायुभार कम होता है। लिओन्स की खाड़ी पर सदैव एक चक्रवात स्थित रहता है और दक्षिणी-पूर्वी फ्रांस की बर्फ से घिरी हुई चोटियों पर अक्सर उच्च भार प्रदेश बन जाने से मिस्ट्रल हवाओं का प्रादुर्भाव हो जाता है। ये मध्य फ्रांस के पठार पर से उतरती हैं और इनका प्रभाव लिओन्स की खाड़ी पर स्थित चक्रवात के पिछले भाग में विशेष अधिक रहता है। रोन घाटी में पहुँचने पर संकरे स्थान से होकर गुजरने के कारण इसकी गति बडी तीव्र और प्रचण्ड हो जाती है। साथ-साथ यह अधिक ठंढी व शुष्क भी हो जाती है।

सतह पर इस हवा की गति अक्सर ३५ से ४० मील प्रति घंटा तक होती है। लेकिन कभी यह इतना भीषण और प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है कि ८० मील प्रति घंटे से भी अधिक तेज रफ्तार से चलने लगती है और कभी-कभी तो रेलगाड़ियाँ उलट गई हैं। हवाई यातायात में इसका विशेष महत्व है जैसे कि पहिले पाल द्वारा चलने वाले जहाजों पर इसका विशेष असर पडता था। जब मिस्ट्रल हवा चलती है तो आसमान साफ और मेघ रहित हो जाता है परन्तु तापांश अक्सर जमने के विन्दु तक पहुँच जाता है।

इसकी शक्ति का अन्दाज इसी बात से लग जाता है कि रोन नदी घाटी के निचले भाग में इसकी प्रचण्डता से बचाव करने के लिए दक्षिण-पूर्व की ओर वृक्ष लगा दिये गये हैं। वृक्षों की यह पंक्ति स्थायी है और इस प्रदेश के उद्यान व बगीचों को साइप्रस की झाड़ियाँ लगा कर इस हवा से बचाते हैं। बहुत से छोटे-छोटे घरों की खिड़कियाँ और दरवाजे दक्षिण-पूर्व की तरफ ही बनाये जाते हैं।

Mixed Farming (मिश्रित कृषि) कभी-कभी कृषि के साथ-साथ पशु पालन का कार्य भी होता है। इस प्रकार के मिले जुले काम को मिश्रित कृषि कहते हैं। फसल उत्पन्न करने के साथ-साथ किसान दूध का धंधा, मुर्गी पालना, भेड़-बकरियाँ पालना, रेशम के कीड़े पालना इत्यादि कार्य करता है। दूध, मक्खन और मांस के लिये पशु तथा मांस और ऊन के लिए भेड़ें पालते हैं। अन्डों के लिए मुर्गी तथा गोश्त के लिए सूअर भी रखते हैं। रेशम के कीड़े पाल कर रेशम उत्पन्न करते हैं और शहद की मक्खियाँ पाल कर शहद प्राप्त करते हैं। इतने कामों के करने के अनेक कारण हैं।

सबसे पहिला कारण तो यह है कि मिश्रित कृषि वहीं की जाती है जहाँ भूमि कम हो तथा

आवादी का घनत्व अधिक हो। अतः औद्योगिक क्षेत्रों में मिश्रित कृषि के लिए उपयुक्त वातावरण मिलता है। इसीलिए मिश्रित कृषि विशेषकर पश्चिमोत्तरीय योरप के देशों में और पूर्वोत्तरीय संयुक्तराज्य में की जाती है, जहाँ जनसंख्या बहुत ही घनी है। दूसरा कारण यह है कि इन प्रदेशों में उद्योग-धंधों पर जोर होने के कारण बहुत प्रकार की वस्तुओं की जरूरत रहती है और स्थानीय बाजार होने के कारण किसान पशुपालन द्वारा प्राप्त सामग्री द्वारा अपनी आय बढ़ाता है।

मिश्रित कृषि में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि फसल उगाने के अलावा दूसरे गौण धंधा ऐसा अपनाया जाय जिसमें किसान को खर्च तो अधिक न करना पड़े पर आय काफी बढ़ जाय। सूअर और मुर्गी पालने में घरेलू कूड़ा-करकट तथा अनाज की छूटछाट से कम चल जाता है। पशु पालने से फसल उगाने के बाद भूमि को खाद प्राप्त हो जाती है।

Mixed Cultivation (मिली-जुली खेती) मुख्य रूप से खेती का अभिप्राय विभिन्न प्रकार की फसलें उत्पन्न करना है परन्तु एक ही फसल को बोने रहने से भूमि कमजोर हो जाती है। दूसरे स्थानीय माँग की पूर्ति के लिये मुख्य फसलों के साथ-साथ किसान हरी साग-सब्जी उगाता रहता है। इस प्रकार की खेती को जिसमें दो या अधिक फसलें एक साथ उगाई जाती हैं मिली-जुली खेती कहते हैं। साधारणतया मिली-जुली खेती में एक साथ उगाई जाने वाली फसलें इस प्रकार चुनी जाती हैं कि उनमें से एक तो पेड़ की तरह खड़ी रहे और दूसरी भूमि पर या भूमि के अन्दर उगने वाली जड़दार फसल हो। इंगलैंड में इस प्रकार की खेती का बहुत चलन है और वहाँ पर गेहूँ, जौ, मई की फसल के साथ किसान साग-सब्जी भी उगाता रहता है। इस प्रकार वह आस-पास के कस्बों के निवासियों को अनेक प्रकार की भोजन सामग्री देने में सफल होता है। मिली-जुली खेती की दूसरी प्रणाली वह है जिसमें एक ही खेत में कई प्रकार की फसलें मिला-जुला कर उगाते हैं। अनाज की फसल तो मुख्य होती है या गन्ना व कपास की फसलें मुख्य होती हैं और बीच-बीच की क्यारियों पर आलू, चुकन्दर, सकरकन्द बो देते हैं और मेड़ों पर हरी साग-सब्जी उगाते हैं तथा इन सब के ऊपर कोई लतावाली वस्तु भी साथ-साथ पनपाते हैं।

Mock Moon (चन्द्र आकृति) जब चन्द्रमा क्षितिज पर होता है तो उससे २२° के अन्तर पर चन्द्रमा सा आकार दिखलाई पड़ने लगता है। इसे चन्द्र आकृति कहते हैं। जब चन्द्रमा आकाश में ऊँचाई पर स्थित होता है तो चन्द्र आकृति उससे काफी दूर पर बनती है। इसे पारसीलीन भी कहते हैं।

Mock Sun (सूर्य आकृति) सूर्य की प्रतिमा या प्रतिबिम्ब बहुधा सूर्य की ही इतनी ऊँचाई पर दिखलाई देता है और इसका रंग कुछ लाली लिए रहता है। जब यह सूर्य के बहुत निकट होता है तो लाली अधिक रहती है परन्तु कभी-कभी सूर्य आकृति सफेद भी होती है। जब सूर्य क्षितिज पर होता है तो सूर्य आकृति की उससे कोणिक दूरी २२ डिग्री होती है और यह सूर्य आकृति प्रकाशवृत के अन्दर ही होता है परन्तु जब सूर्य आकाश में काफी ऊँचा रहता है तो सूर्य आकृति प्रकाशवृत के बाहर बनता है। इन्हें पारहीलियन भी कहते हैं।

Mofette (मोफट) भूपटल के फट जाने पर कई दरारें या छेद इस प्रकार बन जाते हैं कि उनमें से कार्बन डाई आक्साइड गैस निकला करती है। इस प्रकार के छेदों को मोफट कहते हैं और ये वहाँ विशेष रूप से पाये जाते हैं जहाँ ज्वालामुखी उद्गार आया करते थे। संयुक्त राष्ट्र के यलोस्टोन पार्क में इस प्रकार के मोफट पाये जाते हैं। यह एक प्रकार के धुँआरे से मालूम पड़ते हैं।

Mole (मोल) किसी पोताश्रय या लंगर स्थान को समुद्री लहरों से बचाने के वास्ते बड़े-बड़े पत्थरों, कंकड़ों या अन्य पदार्थों से बनायी गई भित्त को मोल कहते हैं।

Mollweide's Projection (मालवीड अंकन) सन् १८०५ में एक जर्मन मानचित्रकार कार्ल बी० मालवीड ने इस अंकन को खोज निकाला और उन्हीं के नाम के आधार पर इसे मालवीड अंकन कहते हैं। यह अंकन सिनूसोडियल अंकन का सुधारा हुआ रूप है और इस पर अंकित प्रदेशों का सामान्य आकार तथा क्षेत्रफल ठीक-ठीक बना रहता है। यह रूप में अण्डाकार होता है और इसमें निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं— (१) केवल केन्द्रीय और ९०° की देशांतर को छोड़कर अन्य सभी देशान्तर रेखायें धनुषाकार होती हैं। (२) अक्षांश रेखायें सीधी, समानान्तर तथा विभिन्न दूरी पर होती हैं। (३) जैसे-जैसे अक्षांश बढ़ता जाता है, अक्षांश रेखाओं के बीच की दूरी घटती जाती है। (४) देशांतर रेखायें अक्षांश रेखाओं के बराबर दूरी पर काटती हैं। (५) देशान्तर रेखाओं का झुकाव पूर्वी तथा पश्चिमी किनारों की ओर बढ़ता जाता है। (६) अक्षांश रेखायें एक दूसरे से विभिन्न दूरी पर रहती हैं कि अक्षांश और भूमध्यरेखा की बीच का कोई भी भाग ग्लोब पर अंकित उसी भाग के बराबर होता है। दो अक्षांश रेखाओं और दो देशान्तर रेखाओं के बीच का कोई भी प्रदेश इसी प्रकार के अन्य प्रदेश के बराबर होता है। (७) इसलिए यह अंकन क्षेत्रफल को ठीक-ठीक प्रकट करता है।

इसमें विशेषताओं के अनुसार कुछ गुण और कुछ दोष भी पाये जाते हैं। इसका सबसे बड़ा गुण तो यह है कि समक्षेत्रफल होने के कारण यह उन मानचित्रों के लिए बहुत ही लाभदायक है जो कि वस्तुओं का वितरण प्रकट करते हैं। इसी कारण मानचित्रावली में संपूर्ण पृथ्वी के मानचित्र इसी अंकन पर बनाये जाते हैं। इस पर बनाये हुए कोई भी मानचित्र जो एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक १४॥ इंच लम्बा हो, १० इंच व्यास वाले ग्लोब के क्षेत्रफल के बराबर होगा और सभी देशों में वही क्षेत्रफल होगा जो ऐसे ग्लोब पर रहता है। दूसरे, इसका आकार पृथ्वी के आकार का भास कराता है और यदि इसे रबड़ की चादर पर बनाया जाय तो यह उपयुक्त विस्तार के ग्लोब पर बिना बहुत खेंचतान के चढ़ सकता है। इसका तीसरा गुण यह है कि इस पर गोलार्द्ध भी बनाये जा सकते हैं और देशान्तर के आधार पर इसे तोड़ा-मोड़ा भी जा सकता है। लेकिन इसमें कुछ दोष भी हैं। अक्षांश और देशान्तर दोनों पर ही मानदण्ड गलत होता है। इसलिए मध्य देशान्तर से दूर आकार में खराबी आ जाती है। दूसरे, केन्द्रीय देशान्तर पर भूमध्य रेखा के समीप छोटे-छोटे प्रदेश लम्बरूप से खिंच जाते हैं और समान्तर रूप से छोटे पड़ जाते हैं। ध्रुवों के समीप इसका उलटा होता है। छोटे-छोटे प्रदेश समानान्तर रूप से तो फैल जाते हैं और लम्ब रूप से छोटे पड़ जाते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय देशान्तर रेखा पर भी केवल दो ही विन्दु होते हैं जिन पर दिशायें व दूरी ठीक रहती हैं। साधारणतया अन्य सभी भागों में आकार, दिशा और दूरी गलत हो जाती है। इसलिए यात्रा संबंधी मानचित्रों के लिए यह बिल्कुल बेकार होता है।

Monadnock (मोनाडानक) आवरण-क्षय की शक्तियों के आघात-प्रतिघात से आस-पास की मुलायम चट्टानें तो कट कर बह जाती हैं और उनके बीच में कठोर चट्टान के बने ऊँचे टीले इधर-उधर खड़े रह जाते हैं। इस प्रकार के इक्का-दुक्का टीलों को मोनाडानक कहते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यू हैम्पशायर प्रदेश में माउन्ट मोनाडानक इसका सबसे अच्छा उदाहरण है और उसी के नाम के आधार पर सभी ऐसे बने ऊँचे टीलों को मोनाडानक कहते हैं।

मोनाडानक नदी निर्मित या उसके द्वारा काट-छाँट से बने मैदानों में विशेष रूप से पाये जाते हैं। कटान की अन्तिम अवस्था में समस्त प्रवाह प्रदेश कट-कट कर लगभग समतल मैदान

बन जाता है और केवल कहीं-कहीं ऊँचे टीले रह जाते हैं। नदियों द्वारा काट-छाँट से स्थल के भीतरी भागों में विशाल भूखंडों की जगह सपाट मैदान बन गये हैं और ये मैदान रूस, कनाडा, संयुक्त राष्ट्र, ब्राजील, अर्जेंटाइना तथा आस्ट्रेलिया के भीतरी भागों में फैले हैं। ऐसे मैदानों में नदियों के बीच की ऊँची समतल भूमि कट-कट कर चौड़ी घाटी के रूप में बदलती रहती है। नदियों के बीच की समतल ऊँची भूमि कटते-कटते ऊँचे पहाड़ी टीलों के रूप में रह जाती है जिन्हें मोनाडॉनक कहते हैं।

Monocline (एक दिशा मोड़) जब भूपटल के ऊपर एक ही दिशा में मोड़ पड़ जाने से बरेरा बन जाता है तो चट्टानों का ढाल एक ओर को अधिक तीव्र हो जाता है परन्तु थोड़ी दूर के बाद यह तीव्र ढाल फिर क्रमश: पहिली सी दशा में आ जाता है। इस प्रकार से बने मोड़ को एक दिशा मोड़ कहते हैं।

Mono culture (एक फसल खेती) जब किसी प्रदेश या विस्तृत क्षेत्र में खेती का धंधा इस प्रकार किया जाता है कि संपूर्ण भूमि पर एक ही फसल उगाई जाती है तो इस प्रकार की खेती को एक फसल कहते हैं। इस प्रकार की खेती अमरीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया में की जाती है। रूस के पूर्वी भागों में इस प्रकार की खेती की जाती है। इन प्रदेशों में गेहूँ की फसल सर्वप्रधान है और अन्य सब फसलें गौण। हजारों एकड़ लम्बे चौड़े खेतों से मशीनों तथा अन्य वैज्ञानिक तरीकों द्वारा गेहूँ की फसल उत्पन्न की जाती है और ऐसे खेतों में प्रति एकड़ उपज बहुत अधिक होती है।

इसका दूसरा भेद वह है जो संसार के अविकसित प्रदेशों में व्यापक खेती के रूप में होता है। यहाँ के किसान एक ही भूमि के टुकड़े से हर साल एक ही प्रकार की फसल उगाते रहते हैं और जब भूमि कमजोर हो जाती है तो उसे छोड़ कर दूसरी जगह जाकर उगाने लगते हैं।

Monsoon (मानसून) अरबी भाषा के 'मौसिम' से मानसून शब्द निकला है और इसका अभिप्राय ऋतु है। जिन हवाओं की दिशा मौसम के अनुसार बदल जाती है उन्हें मानसून या मौसमी हवायें कहते हैं।

यदि समस्त धरातल पर जल ही जल होता तो ये संसार की स्थायी हवायें बराबर एक ही प्रकार से चलती रहतीं। परन्तु धरातल पर स्थल का भी बहुत बड़ा भाग है। स्थल और जल असमान रूप से गरम और ठंडे होते हैं। मौसम के अनुसार इनके वायुभार में बहुत अन्तर हो जाता है जिससे हवाओं की प्रवाह-दिशा में अन्तर पड़ जाता है। इस प्रकार मानसूनी हवायें बड़े पैमाने पर थलीय व जलीय हवायें हैं। थलीय व जलीय हवायें तो दैनिक क्रम में चलती हैं परन्तु मानसून हवायें वार्षिक क्रम से चलती हैं। वर्ष के छ: महीने यानी जाड़े के मौसम में थल से जल की ओर चलती है और दूसरे छ: महीने यानी गर्मी के मौसम में जल से थल की ओर चलती हैं।

मौसमी हवाओं की उत्पत्ति केवल उन्हीं प्रदेशों में संभव हो सकती है जहाँ कर्क और मकर रेखाओं के समीप एक ओर स्थल का बड़ा भाग और दूसरी ओर जल का बड़ा भाग स्थित हो। इन रेखाओं के समीप में ही मानसून की उत्पत्ति का प्रधान कारण यह है कि इसी भाग में तापक्रम की मात्रा और वायुभार में जल और थल का काफी अन्तर हो जाता है। अधिक अन्तर होने के कारण ही मानसून हवायें इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि व्यापारिक हवाओं का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

वास्तव में मानसून हवाओं और व्यापारिक हवाओं में बड़ा ही निकट संबंध है। दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवायें जो भारत के पश्चिमोत्तर में स्थित निम्नभार प्रदेश की ओर चक्कर देकर चलती हैं, वे वास्तव में दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवाओं का पथभ्रष्ट रूप हैं। व्यापारिक हवायें दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हैं क्योंकि ये भूमध्यरेखा की ओर अग्रसर होती हैं जहाँ वायुमंडल की गति तीव्र होती है। जब ये हवायें भूमध्य रेखा को पार करती हैं तो ये ऐसे वायुमंडल में पहुँचती हैं जहाँ हवा की गति बहुत धीमी रहती है। फलतः इसका रूख दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ जाता है। इसी प्रकार थल से जल की ओर प्रवाहित होने वाली उत्तरी-पूर्वी मानसून हवायें उत्तरी पूर्वी व्यापारिक हवाओं से संबंधित होती हैं। जब ये हवायें भूमध्य रेखा को पार करती हैं तो इसका रुख उत्तर-पश्चिमी हो जाता है और चक्कर देकर ये आस्ट्रेलिया के उत्तर में स्थित निम्नभार प्रदेश की ओर बहने लगती हैं।

मानसून हवायें हिन्द महासागर के चारों ओर चलती हैं और भारत, पूर्वी द्वीप समूह, हिन्दचीन, चीन, उत्तर, पश्चिमी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राज्य और पूर्वी अफ्रीका में विशेष महत्वपूर्ण हैं। मानसूनी हवाओं का प्रभाव दक्षिणी अमरीका के उत्तरी पश्चिमी भाग पूर्वी ब्राजील और मध्य अमरीका में भी दृष्टिगोचर होता है और अफ्रीका के गिनी तट पर भारी वर्षा इन्हीं के प्रभाव से होती है। भूमध्यरेखा के समीप के स्थल खंड जल की अपेक्षा अधिक जल्दी गर्म हो जाते हैं और इसलिए गर्मी के मौसम में स्थल खंड पर निम्न भार प्रदेश स्थित हो जाता है। समुद्री प्रदेशों पर स्थित उच्चभार केन्द्र से हवायें चलने लगतीं हैं और जलवाष्प से लदी होने के कारण खूब वर्षा करती है। इसके विपरीत जाड़े के मौसम में स्थलखंड समुद्र की अपेक्षा जल्दी ठंडा हो जाता है और निम्न तापक्रम के कारण वहाँ पर हवा घनी हो जाती है और भार अधिक हो जाता है। अतएव स्थल से जल की ओर वायु बहने लगती है परन्तु स्थलखंड की तरफ से आने के कारण यह शुष्क होती है।

यही कारण है कि इन हवाओं के प्रभाव में स्थित प्रदेशों में चार महीने खूब वर्षा होती है और उसके बाद इतने ही काल तक बिल्कुल सूखा मौसम रहता है। इन दोनों कालों के बीच दो महीने का अन्तरिम समय होता है जिसमें भखंड जल्दी-जल्दी ठंडा होता रहता है। इसी प्रकार शुष्क मौसम के बाद के दो महीनों में भूखंड गर्म होता रहता है।

मानसूनी हवाओं की दो शाखायें होती हैं जो दो मौसमों में प्रवाहित होती हैं। एक को गर्मी का मानसून कह सकते हैं और दूसरे को जाड़े का। इन्हें बहुधा आगे बढ़ता हुआ और लौटता हुआ मानसून भी कहते हैं।

(१) **गरमी का मानसून**—गरमी के मौसम में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर सीधी पड़ती हैं और फलस्वरूप मध्य एशिया, चीन और भारत के विशाल खंड में होकर निम्नभार प्रदेश बना लेते हैं जो आसपास के समुद्रों से वायु को आकर्षित करते हैं। इस प्रकार जलखंडों से स्थल की ओर चलने वाली हवाओं को गरमी का मानसून कहते हैं। ये हवायें समुद्र से होकर आती हैं और इसलिए भाप से लदी होती हैं। समुद्रों पर इन हवाओं की दिशा दक्षिण-पश्चिम होती है परन्तु जब ये हवायें स्थल के भीतरी भागों में प्रवेश करती हैं तो स्थानीय पर्वतश्रेणियों के अनुसार इनकी दिशा बदल जाती है। चीन में ये हवायें दक्षिण-पूर्व से चलती हैं।

वसन्त से गर्मी के मध्यकाल तक ये हवायें उत्तर की ओर बढ़ती रहती हैं और पर्वत श्रेणियों के साथ टकराकर भारी वर्षा करती हैं। इन हवाओं से औसत जलवृष्टि ५६० इंच प्रतिवर्ष तक होती है। परन्तु यह वर्षा मात्रा तथा वितरण और काल में बड़ी ही अनिश्चित होती है। सबसे अधिक वर्षा वहाँ होती है जहाँ तट के समीप पर्वत श्रेणियाँ हैं और फिर जैसे-जैसे ये हवायें

देश में प्रवेश करती हैं वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। कभी वर्षा अधिक होती है तो कभी कम और कहीं वर्षा अधिक होती है तो कहीं बहुत कम। इन हवाओं से सबसे अधिक वर्षा पश्चिमी भारत और बर्मा के ढालों, पूर्वी हिमालय के ढालों, आसाम की पहाड़ियों तथा गंगा और इरावदी के डेल्टा प्रदेशों में होता है। वर्षा के मौसम में या गर्मी में हवायें बड़ी तेजी से चलती हैं। इनकी औसत चाल २७ से ३५ मील प्रति घंटा तक होती है। इस मौसम में समुद्र पर बड़ी उथल-पुथल होती है, आसमान मेघों से घिरा रहता है और रह-रहकर वर्षा हो जाती है। ये हवायें जब बहती हैं तो इनका एक निश्चित सीमान्त और प्रत्येक वर्ष करीब-करीब एक ही समय पर पहुँचती हैं। इनके पहुँचने पर पहिली वर्षा का मानसून का फटना कहते हैं। इनके बीच में और पीछे भीषण उष्णकटिबंधीय चक्रवात भी रहते हैं और उनका जोर होने पर मेघों की गरज व बिजली की तड़क के साथ वर्षा होती है। गर्मी का मानसून अप्रैल से सितम्बर तक चलता रहता है यद्यपि इसके प्रभाव का काल किसी स्थान विशेष की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर रहता है। हिन्द महासागर में गर्मी के मानसून की दो शाखायें हो जाती हैं—(१) अरब सागर का मानसून जिसका वेग भारत के पश्चिमी घाट व तटीय मैदानों तक ही सीमित रहता है। (२) बंगाल की खाडी की मानसून की एक शाखा ब्रह्मा के आराकान, टनासिरम पर्वतों से टकरा कर पश्चिमी बर्मा में वर्षा देती है और बाद में इरावदी के डेल्टा में होती हुई अन्दर प्रवेश करती है। इसकी दूसरी शाखा पूर्वी पाकिस्तान तथा भारत के बंगाल आसाम में वर्षा करती हुई गंगा, ब्रह्मपुत्र के मैदान में पश्चिम की ओर चलती है।

(२) जाड़े का मानसून—जाड़े के मौसम में जब सूर्य की किरणें मकर रेखा पर सीधी पड़ती हैं तो मध्य एशिया का स्थल खंड ठंडा होकर उच्चभार प्रदेश बन जाता है। अधिक भार के दो केन्द्र हैं—एक साइबेरिया में बेकाल झील के पास और दूसरा पाकिस्तान में पेशावर के पास। इन्हीं दिनों उत्तरी प्रशान्त सागर में क्यूराइल द्वीप के समीप, दक्षिण में आस्ट्रेलिया में और भूमध्यरेखा पर हिन्द महासागर प्रदेश में वायुभार कम होता है। अतएव मध्य एशिया से महासागरों की ओर हवायें चलने लगती हैं। इन्हें जाड़े का मानसून कहते हैं और इनकी दिशा उत्तरी चीन में उत्तर-पश्चिमी, मध्य चीन में उत्तर और दक्षिणी एशिया में उत्तर-पूर्वी होती है। ये शुष्क और ठंडी होती हैं। भूमध्य रेखा को पार करके यह उत्तर, पश्चिमी मानसून बन जाती है और आस्ट्रेलिया पर खूब वर्षा करती है। वास्तव में ये हवायें जहाँ कहीं भी समुद्र के ऊपर से गुजरती हैं वहाँ इनमें वर्षा करने की क्षमता आ जाती है। दक्षिणी पूर्वी भारत और लंका में जाड़े की वर्षा इसी प्रकार होती है। उत्तरी और मध्य चीन में ये हवायें बड़ी सर्द और धूल से भरी होती हैं, परन्तु हिमालय व तिब्बत के पठार को पार करके भारत में नहीं पहुँच पातीं। इसलिए भारत में ये हवायें बहुत कम तेज होती हैं। ये हवायें अक्टूबर से मार्च तक चलती रहती हैं।

इस प्रकार की मानसून हवाओं का पूर्ण प्रभाव तो केवल दक्षिणी-पूर्वी एशिया, भारत और चीन में ही अनुभव किया जाता है। दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र में ये इतनी व्यापक नहीं होतीं। पूर्वी अफ्रीका और उत्तरी आस्ट्रेलिया में गरमी के मौसम में तो वर्षा से लदी ये हवायें जरूर चलती हैं, परन्तु जाड़े की ऋतु में भूखंड के छोटा होने से उतना गहरा उच्च भार प्रदेश नहीं बन पाता जैसा कि एशिया में और इसलिए जाड़े की मानसूनी हवायें नगण्य होती हैं।

Montana (मॉनटाना) दक्षिणी अमरीका के एन्डीज पर्वत प्रदेश के पूर्वी ढालों पर स्थित पर्वतीय प्रदेश को मॉनटाना कहते हैं। इस प्रदेश में वर्षा बहुत काफी होती है और इसीलिए घने बनों से यह प्रदेश ढका हुआ है।

Month (मास) साल को बारह भागों में से हर एक भाग को मास या महीना कहते हैं। (देखिए Lunar month, Calendar)

Moon (चन्द्रमा) चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है और ज्योतिष विज्ञान में कभी-कभी किसी भी ग्रह के उपग्रह को भी चन्द्रमा ही कहते हैं। सभी ग्रहों व उपग्रहों में केवल चन्द्रमा ही ऐसा है जो पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। यह एक अण्डाकार मार्ग पर पृथ्वी की परिक्रमा करता है और प्रत्येक चन्द्रमास में यह पृथ्वी का एक चक्कर लगा लेता है। यदि पृथ्वी स्थिर होती तो चन्द्रमा को एक पूर्ण परिक्रमा में २७⅓ दिन लगते परन्तु पृथ्वी के घूमते रहने से अब इसे २९॥ दिन लग जाते हैं। इसी कालान्तर में चन्द्रमा अपनी धुरी पर भी एक बार पूरी तरह घूम जाता है। यही कारण है कि चन्द्रमा का एक ही पार्श्व सदा हमारी तरफ दिखलाई पड़ता रहता है। चन्द्रमा की परिक्रमा का अण्डाकार पथ पृथ्वी के ग्रहपथ से ५०° के कोण पर झुका हुआ है। इसी कारण पूर्ण परिक्रमा में केवल दो ही बार चन्द्रमा ग्रहपथ से होकर गुजरता है। इसी जगह से पूर्ण परिक्रमा के काल में या चन्द्रमास की अवधि में १३ घंटे तक का हेरफेर होता रहता है।

सभी व ग्रहों उपग्रहों में चन्द्रमा पृथ्वी के सब से अधिक समीप है और इसका विस्तार भी पृथ्वी की अपेक्षा बहुत कम है। संपूर्ण पृथ्वी के विस्तार में ४९ चन्द्रमा सम्मिलित किये जा सकते हैं। इसका व्यास लगभग २१६० मील है जो पृथ्वी के व्यास का चौथाई के करीब होता है। पृथ्वी से इसकी औसत दूरी २ लाख ४० हजार मील है। दूरबीन के सहारे इसको स्पष्ट देखा जा सकता है और इसका प्रत्येक स्थल रूप कठोर, स्पष्ट व तीक्ष्ण है। इसकी प्राकृतिक बनावट बड़ी ही ऊँची-नीची है और बादल या धुंध के अभाव में यह सभी साफ-साफ दिखलाई पड़ता है।

सूर्य तथा अन्य ताराओं के विपरीत चन्द्रमा केवल प्रतिबिम्बित प्रकाश से ही चमकता है। इस पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है और इसलिये केवल वही आधा भाग दिखलाई पड़ता है जो सूर्य के प्रकाश में पड़ता है। जैसे-जैसे चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है यह प्रकाशयुक्त कुछ समय तक तो सामने आता है और कुछ समय के लिए अदृश्य हो जाता है। इस काल को पक्ष कहते हैं। जब चन्द्रमा चमकता रहता है तब शुक्लपक्ष होता है और जब चन्द्रमा अदृश्य रहता है तब कृष्ण पक्ष कहते हैं। चूँकि चन्द्रमा को अपनी धुरी पर पूरा एक चक्कर लगाने में उतना ही समय लगता है जितना उसे पृथ्वी की पूरी एक परिक्रमा करने में, इसलिये पृथ्वी पर से हमेशा चन्द्रमा का केवल एक भाग ही दिखाई पड़ता है। (देखिए Moon's Phases)

Moon's Phases (चन्द्रकलायें) चन्द्रमा का प्रकाशमय भाग हमेशा पृथ्वी के सामने नहीं पड़ता। सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की पारस्परिक स्थिति पर निर्भर होने के कारण यह प्रकाशमान भाग घटते-बढ़ते रूप में दिखलाई पड़ता है। पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करने में चन्द्रमा के आकार में परिवर्तन व स्थितियों को चन्द्रकलायें कहते हैं। जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के ठीक बीचों-बीच में रहता है तो चन्द्रमा का संपूर्ण प्रकाशवान भाग पृथ्वी से विपरीत दिशा में रहता है और तब चन्द्रमा दिखलाई ही नहीं पड़ता। ऐसा अमावस्या के दिन होता है। इस स्थिति को नवीन चन्द्रमा कहते है क्योंकि इसके दो ही दिन बाद चंद्रमा दिखलाई पड़ने लगता है। जब चन्द्रमा अपने पथ का अष्टमाँश पार कर लेता है तो उसके प्रकाशमय भाग का कुछ थोड़ा सा अंश पृथ्वी पर हसिये की शकल का दिखलाई पड़ता है। इसे द्वितीया का चन्द्रमा कहते हैं। अपनी परिक्रमा पथ पर आगे बढ़ता हुआ चन्द्रमा जब एक-चौथाई मार्ग तय कर लेता है तो चन्द्रमा के प्रकाशमान भाग का आधा अंश दिखलाई पड़ने लगता है। इसे

अष्टमी का चाँद कहते हैं। अपने मार्ग का $\frac{1}{2}$ वाँ हिस्सा और पार कर लेने के बाद चाँद का तीन-चौथाई भाग प्रकाशमय होकर चमकने लगता है और इसे कुबड़ा चन्द्रमा कहते हैं। जब पृथ्वी की स्थिति इस प्रकार हो जाती है कि उसके एक ओर चन्द्रमा हो और दूसरी ओर सूरज तो चन्द्रमा का संपूर्ण प्रकाशमय भाग पृथ्वी पर दिखलाई पड़ने लगता है। इसे पूर्ण चन्द्र कहते हैं और यह पूर्णमासी के दिन होता है। इस प्रकार चन्द्रमा दूईज के दिन से लेकर पूर्णमासी तक बराबर बढ़ता रहता है। इसे चन्द्रमा की बढ़ती हुई कलायें कहते हैं। पूर्णमासी के बाद चन्द्रमा की कलाएँ घटने लगती है। पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के तीसरे सप्ताह बाद आधा चांद दिखलाई पड़ता है और चारों हफ्ते पूरे होने पर फिर अमावस्या की स्थिति में पहुँच जाता है जब कि वह बिल्कुल ही नहीं दिखलाई पड़ता।

चन्द्रमा की कलाएँ १५ रोज तक तो बढ़ती हैं और दूसरे १५ रोज में घटती रहती हैं। यही चक्र बराबर चला करता है और इस कालान्तर को पक्ष कहते हैं। बढ़ती हुई कलाओं के पक्ष को शुक्लपक्ष और घटती हुई कलाओं के पक्ष को कृष्ण पक्ष कहते हैं। ध्यान देने की बात तो यह है कि द्वितीया और पूर्णमासी की चन्द्रकलायें उस समय होती हैं जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा एक सीधी रेखा में स्थित होते हैं। शुक्लपक्ष या कृष्ण पक्ष की अष्टमी का चन्द्रमा उस समय दिखलाई पड़ता है जब पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की सीधी रेखा के ऊपर लम्बरूप या समकोण स्थिति में होती है।

आकाश में चन्द्रमा सूर्य के पीछे-पीछे चलता हुआ प्रतीत होता है। यह पूर्व में ही उदय होता है और पश्चिम में ही अस्त होता है, परन्तु पृथ्वी के चारों ओर की परिक्रमा में इसे कुछ देर लग जाती है और इसीलिए प्रतिदिन सूर्यास्त के पचास मिनट बाद यह उदय होता है और सूर्योदय के पचास मिनट बाद में अस्त होता है। पूर्णमासी के दिन सूर्य के विपरीत दिशा में सामने स्थित होने के कारण यह ६ बजे शाम को उदय होता है और ६ बजे सुबह अस्त हो जाता है।

सितम्बर के शुरू और अन्त की पूर्णमासी के चन्द्रमा को क्रमशः फसल काटने का चाँद और शिकारियों का चाँद कहते हैं। इस से स्पष्ट है कि पूर्णमासी का तेज चन्द्र प्रकाश कितना सहायक होता है।

Moor (उजाड़ प्रदेश) जंगल की तरह से पड़ी हुई उच्च भूमि को उजाड प्रदेश कहते हैं। इस प्रकार की उच्च भूमि पर सामान्यतः झाड़ियाँ मोटी कँटीली घास, नमकीन जल में होने वाले पौधे तथा इसी प्रकार की अन्य वनस्पति पाई जाती है। कभी-कभी बीच-बीच में पशुओं को चराने योग्य घास का टुकड़ा भी मिल जाता है और कभी-कभी बीच मे इधर-उधर दलदली गड्ढे मिलते हैं।

Moraine (मोरेन) पत्थर के छोटे-बड़े टुकड़े जो पहाड के किनारों से टूट कर हिम नदियों के तल पर गिर जाते हैं या जो उनकी तली से कट कर हिम की तली में जमे हुए रहते हैं और जिन्हें ये नदियाँ अपने साथ ले जाती हैं उन्हें मोरेन कहते है। हिम नदियाँ भी पदार्थों को कई प्रकार से ले जाती हैं। उनकी तली में मिट्टी, बालू, पत्थर तथा बडे-बड़े शिलाखंड जमे हुए रहते हैं और हिमनदी के प्रवाह के साथ-साथ तली से रगड़ खाते हुये घसीटते रहते हैं। इन्हें तलीय मोरेन (**Ground moraine**) कहते हैं। इसके अलावा इधर-उधर की चट्टानों से टूट-टूट कर गिरने वाले पत्थर व शिलाखंड हिम नदी की सतह पर बिखर जाते हैं और बहुधा समतल रूप से स्थित हो जाते हैं। इन्हें प्रवाह मोरेन (**Ablation moraine**) कहते हैं। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण मोरेन वे हैं जो दोनों तरफ की चट्टानों से टूट कर गिरने के बाद हिम नदी के ऊपरी किनारों पर इकट्ठा हो जाते हैं। इन्हें पार्श्विक मोरेन (**Lateral**

moraine) कहते हैं। ये पार्श्ववर्ती मोरेन सैकड़ों फीट ऊँची राशि बना लेते हैं परन्तु ये टील्ले अकेली श्रेणी के रूप में होते हैं और इनमें कंकड़-पत्थर की राशि बिखरी हुई रहती है। जब दो हिम नदियाँ अपनी घाटियों के मिलन बिन्दु पर आकर मिल जाती हैं तो उनके दोनों किनारों के पार्श्ववर्ती मोरेन भी मिल जाते हैं। इस प्रकार मिलने से बने हुए टीलों को मध्यवर्ती मोरेन (Medial moraine) कहते हैं। इसकी स्थिति संगम के बाद प्रवाहित होने वाली हिम नदी के केन्द्र में होती है और यह दिखलाती है कि हिम नदी की घाटी के ऊपर सहायक हिम नदियाँ हैं। हिम नदी के अन्त में जब हिम पिघलने लगता है तो इसके द्वारा लाया गया सब बोझ यहीं इकट्ठा हो जाता है। इस प्रकार बने हुए टीलों को अन्तिम मोरेन कहते हैं। ये अन्तिम मोरेन (Terminal moraine) मिट्टी, छोटे या बड़े पत्थर से बने ऊँची नीची राशि से दिखलाई पड़ते हैं। जब कभी हिम नदी अन्त में पहुँच कर पीछे हटती है तब वह पहिले अन्तिम टील्ले से कुछ पीछे हट कर दूसरा अन्तिम टीला बना देती है। इस प्रकार हँसियाकार टीलों की एक अनियमित पंक्ति बन जाती है जिसे अवकाशीय मोरेन (Recessional moraine) कहते हैं। इन टीलों के पीछे हिम नदी का पिघला हुआ जल एकत्रित हो जाने पर झीलें बन जाती हैं।

मोरेन की सामग्री नदी जल के द्वारा बह कर लाई हुई सामग्री से भिन्न होती है। मुख्य भेद दो हैं—प्रथम तो यह कि इसमें छोटे-छोटे टुकड़ों और बारीक मिट्टी के साथ-साथ बड़े-बड़े शिलाखंड भी पाये जाते हैं। दूसरा यह कि चट्टानों के टुकड़े गोलाकार नहीं होते परन्तु उनका आकार पैना तथा त्रिकोण होता है और अक्सर उन पर खरोंच के निशान बने होते हैं क्योंकि ये टुकड़े लुढ़ककर नहीं आते बल्कि तली के साथ घसीटते रहते हैं।

Morass (मोरास) पर्वतीय प्रदेश में स्थित दलदली भूमि को जो ऊपर से वनस्पति द्वारा ढकी रहती है उसे मोरास कहते हैं।

Morphology (स्थलरूप विज्ञान) पृथ्वी के ऊपर पाये जाने वाले स्थल रूपों के प्रकार, बनावट व विकासचक्र के अध्ययन को स्थलरूप विज्ञान कहते हैं।

Mort lake (मार्ट झील) नदी प्रवाह के घुमाव के कट कर अलग हो जाने से बनी नालाकार झील को ग्रेट ब्रिटेन में मार्ट झील कहते हैं।

Morlin (हिमनदी) ज्यों-ज्यों हिमनदी घाटी में नीचे की ओर बढ़ती है त्यों-त्यों उसका हिम अधिकाधिक मात्रा में पिघल कर जलरूप में बदलता जाता है। सबसे पहिले धूप या गर्मी के प्रभाव से ऊपरी तल का हिम पिघलता है। जैसे-जैसे इस जल की मात्रा बढ़ती है, यह जल छोटी-छोटी नालियों के रूप में बहता रहता है। ये नालियाँ जल की कटान से हिमनदी के ऊपरी तल पर बन जाती हैं। जब ये छोटी जलधारायें बहती-बहती हिम के दरार पर पहुँचती हैं तो जल दरार में से होकर भीतर चला जाता है और इनके साथ-साथ कंकड़ पत्थर की राशि भी रहती है। फलतः दोनों के प्रभाव से हिम दरार चौड़ी व गहरी हो जाती है और उसके स्थान पर एक लम्बी नली या प्रवेश मार्ग बन जाता है। इसे हिमनली कहते हैं। इस नली के द्वारा ऊपर के पिघले हुए जल का भँवर हिमनदी की तली तक ही नहीं पहुँचता बल्कि नीचे की चट्टानों पर भी असर करता है। इन्हें हिम कूप या हिम मिल भी कहते हैं। इनमें गिरते समय सतह की धारायें प्रपात सा बनाती हैं और उस समय उनके जल में बहुत झाग उठता रहता है।

Mountain (पर्वत) आस-पास के प्रदेश से बहुत अधिक ऊँचा भूखंड पर्वत कहलाता है। इसकी ऊँचाई पहाड़ी की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। मोटेतौर पर यह कहा जा सकता है कि जब आधार से लेकर चोटी तक की ऊँचाई १००० फीट से अधिक हो तो उसे पर्वत

कहते हैं। इसका शिखर क्षेत्र आधार क्षेत्र से कम विस्तृत होता है और यही भेद इनको पठारों से भिन्न करता है क्योंकि पठार का ऊपरी भाग चौड़ा और चपटा होता है। यद्यपि संसार के सबसे ऊँचे पर्वत पठारों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचे होते हैं परन्तु बहुत से पर्वत उच्चतम पठारों (जैसे तिब्बत के पठार जो १५,०००-१६००० फीट ऊँचा है) से कम ऊँचे हैं।

पर्वतों के बनने के कई ढंग हैं परन्तु उनके बनाने में भूकम्पों, ज्वालामुखी के उद्‌गारों, पृथ्वी के भीतरी भागों के सिकुड़न से उत्पन्न खिंचाव और भिचाव तथा पृथ्वी की सतह पर हवा, पानी, हिम इत्यादि द्वारा अनावृतीकारण का विशेष हाथ रहता है। इनकी निर्माण विधि के आधार पर पर्वतों को निम्नलिखित तीन प्रकार का कहा जा सकता है—(१) भूगर्भ की शक्तियों द्वारा बने पर्वत। ये भूगर्भ से निकलने वाली सामग्री के जमा होने से बनते हैं जैसे ज्वालामुखी उद्‌गार के शंक्वाकार पर्वत (देखिए Mountains of Accumulation) परन्तु इनमें सबसे महत्वपूर्ण वे हैं जो भूगर्भ की शक्तियों द्वारा निर्मित होते हैं। भूगर्भ की ये शक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो वह जो लम्बरूप से आघात करती है जिसके फलस्वरूप धरातल का कुछ भाग ऊपर उठ जाता है और कुछ नीचे धँस जाता है और दूसरी वह हलचल जिसके कारण धरातल का सीमित भाग दायीं या बायीं तरफ खिसकता है और फलतः चट्टानें चटख जाती हैं, मुड़ जाती हैं या टूट कर उलट जाती हैं। भिचाव के कारण धरातल पर घरेरे पड़ जाते हैं और मोड़दार पर्वत बन जाते है। (देखिये Folded Mountain) तनाव या खिंचाव के कारण भूपटल पर दरारें पड़ जाती हैं और दरार के एक ओर का भाग ऊपर उठ जाता है या नीचे धँस जाता है जिसके फलस्वरूप भूभाग निर्मित पर्वत बन जाते है। (देखिये Block Mountain)

(२) ज्यों ही भूभाग से अथवा घरेरों से पर्वत बन जाते हैं त्योंही उनका क्षय होना भी प्रारंभ हो जाता है और अनावृत्तीकरण के साधनों के आघात-प्रतिघात से इनका छोटा टुकड़ा ही शेष रह जाता है। इन्हें अवशिष्ट पर्वत कहते हैं। (देखिये Relict Mountain या Mountains of Denudation)

(३) जब कभी भूगर्भ में पिघली हुई चट्टानों का मैग्मा बाहर आने की कोशिश करता है तो चट्टानों की ऊपरी परत फोड़े की तरह उभड़ जाती है और गुम्बदाकार पर्वत बन जाते हैं। (देखिये Domeshaped Mountain, Laccolith)

संसार में पाये जाने वाले अधिकतर पर्वत मोड़दार पर्वत है जिनमें तीन विशेषतायें पायी जाती हैं—(१) इनमें परतदार चट्टानों का बाहुल्य है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि इन का जन्म समुद्र के भीतर हुआ। (२) संसार के प्रमुख पर्वतों की स्थिति समुद्रतट के समानान्तर तलवार सी दिखलाई पड़ती है। (३) जिस क्षेत्र में चट्टानों की परतों में मोड़ पड़े हैं वहाँ की परतों की मोटाई उस स्थान के परतों की मोटाई से कई गुनी अधिक है जहाँ उन पर मोड़ बिल्कुल नहीं पड़े हैं।

संसार के उच्चतम पर्वत प्रायः किसी न किसी रूप में व्यवस्थित पाये जाते हैं। थोड़ी सी ऊँची-ऊँची चोटियाँ तो अलग-अलग स्थित दिखलाई देती हैं परन्तु अधिकांश पर्वत श्रेणियाँ, मालाओं, प्रणालियों तथा समूह में पाये जाते हैं। कहीं पर ये श्रेणियों समनान्तर है तो कहीं पर आड़ी तिरछी। (देखिये Peak, Range, Cordillera, System और Group)

पर्वत प्रदेशों में मनुष्य को अनेकों असुविधाओं का सामना करना पड़ता है—(१) ऊँचे-नीचे ढाल के कारण इन पर खेती करना असंभव होता है। (२) उपजाऊ घाटियाँ बहुत ही

कंकरी होती हैं। (३) इन पर मिट्टी का परत बहुत पतला होता है। (४) आवागमन की असुविधा के कारण केवल कम जनसंख्या ही निवास नहीं करती बल्कि संस्कृति के विकास में पर्वतीय प्रदेश सदा ही अवरोधक रहे हैं। परन्तु पर्वतों द्वारा मनुष्य को बहुत से लाभ भी होते हैं—(१) पर्वतों की उच्च श्रेणियाँ प्राकृतिक रक्षक हुआ करती हैं और राष्ट्रों के बीच प्राकृतिक सीमायें बनाती हैं।

(२) पर्वत अधिकतर वनों से ढके रहने के कारण लकड़ी के भण्डार होते हैं।

(३) पर्वत जलवायु और वर्षा पर बहुत असर डालते हैं। केवल जलवायु के अवरोध में ही प्रभावशाली नहीं होते बल्कि वर्षा में वृद्धि करते हैं और इन पर से आने वाली हवायें तापक्रम पर असर डालती हैं।

(४) गर्म देशों में पर्वत अपनी ऊँचाई के कारण तथा दृश्यों के कारण सैर के स्थान व स्वास्थ्यवर्धक केन्द्र बन जाते हैं।

(५) पर्वतीय प्रदेशों की बनावट के कारण बहुत से खनिज पदार्थ इनके समीप प्राप्त होते हैं।

(६) पर्वतीय ढालों पर विस्तृत चरागाह हैं जिन पर भेड़-बकरी चराई जा सकती हैं।

Mountain Climate (पर्वतीय जलवायु) जो जलवायु प्राकृतिक बनावट और ऊँचाई से निर्धारित होती है उसे पर्वतीय जलवायु कहते हैं। साधारणतया किसी स्थान की समुद्र से पास या दूर स्थिति तथा अक्षांश के अनुसार ही जलवायु निर्धारित की जाती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि संसार की विभिन्न जलवायु भूमध्यरेखा से दूरी और समुद्री प्रभाव से दूरी के आधार पर ही निर्धारित की जाती है। परन्तु पर्वतीय जलवायु में इनकी उपेक्षा करके स्थान विशेष की प्राकृतिक बनावट और ऊँचाई को प्रधानता दी जाती है। इसी लिए पर्वतीय जलवायु कहीं पर भी हो सकती है और संसार के मुख्य जलवायु विभागों के क्षेत्र से बाहर है।

निम्न प्रदेशों के मुकाबले में पर्वतीय प्रदेशों में तापक्रम, वायुभार और आद्रता तो कम हो जाती है परन्तु सूर्य प्रकाश और विकिरण की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक हो जाती है। कुछ ऊँचाई पर जहाँ सदैव बर्फ जमी रहती है वहाँ का तापान्तर अधिक होता है परन्तु सामान्यतः यह देखा जाता है कि ऊँचाई के साथ-साथ तापान्तर घटता जाता है और ४००० फीट से अधिक ऊँचाई पर स्वच्छ वायुमंडल में तापान्तर शून्य हो जाता है। पर्वतीय प्रदेशों में तापक्रम पर प्राकृतिक बनावट का असर पडता है और स्वच्छ वातावरण की दशायें कदापि नहीं मिलतीं। ऊँचाई के कारण तापक्रम में इतना अन्तर पड़ जाता है कि भूमध्यरेखा पर स्थित होने पर भी उच्च पर्वतीय प्रदेश साल भर बराबर बर्फ से ढका रहता है। इससे स्पष्ट है कि पर्वतीय जलवायु निम्न प्रदेशों से अधिक प्रखर रहती है।

मोटे तौर पर तो यह कहा जा सकता है कि पर्वतीय ढालों पर आधार से शिखर तक विभिन्न ऊँचाइयों पर सभी प्रकार की जलवायु का अनुभव किया जा सकता है जो भूमध्यरेखा से ध्रुव तक चलने पर विभिन्न कटिबन्धों में पाई जाती है। परन्तु इस अनुरूपता व व्यवस्था में कुछ मौलिक भेद भी है। हिमरेखा के ऊपर के प्रदेश में सूर्य प्रकाश बड़ा ही तीव्र रहता है क्योंकि सूर्य की किरणें साफ व पतली वायु परतों से होकर आती हैं। यह सूर्य प्रकाश ध्रुवीय प्रदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है क्योंकि ध्रुवों पर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं और उन्हें वायुमंडल का काफी भाग पार करके आना पड़ता है।

पर्वतीय जलवायु में वायुदिशाओं में काफी परिवर्तन हो जाता है और फलस्वरूप समुद्री

व स्थलीय पवन के अनुरूप पर्वतीय व घाटी पवन प्रवाहित होने लगती है। रात में पर्वतीय ढालों पर से वायु नीचे की ओर आती है और दिन में घाटी पवन ढालों के ऊपर चढ़ता है। फलतः प्रतिदिन तीसरे पहर पर्वतीय शिखरों के समीप क्यूमुलस मेघ छा जाते है।

जाड़े की ऋतु और रात में तापक्रम-विलोमता के कारण पर्वत के शिखरों पर तापक्रम अपेक्षाकृत ऊँचा रहता है और फलतः मध्यवर्ती व निम्न अक्षांशों के प्रदेशों में दैनिक व वार्षिक तापान्तर बहुत कम होता है। इसके अलावा घाटियों की तली में तापान्तर बहुत अधिक रहता है और समान ऊँचाई के पर्वतों की अपेक्षा पठारों पर भी तापान्तर अधिक ही रहता है। सूर्य के प्रकाश में खुले और छायादार पर्वत ढालों के तापमान के बीच भी काफी अन्तर रहता है। (देखिये Adret Obac)

पर्वतीय जलवायु वाले कम विस्तार के क्षेत्र में तापक्रम और वर्षा की मात्रा का हेर फेर बहुत अधिक रहता है। इस हेर फेर के फलस्वरूप प्राकृतिक वनस्पति, खेती की फसलों और निवासियों के व्यवसाय भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। पर्वत के आधार पर स्थित निम्न प्रदेश चाहे वनस्पति के किसी विभाग में क्यों न स्थित हों परन्तु पर्वत के ढालों पर सबसे अधिक वर्षा वाला भाग प्रायः सदैव ही वनाच्छादित रहता है। अधिकतम जलवृष्टि के कारण इस पट्टी के ऊपरी ढालों पर नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वन पाये जाते हैं और इससे नीचे के ढालों पर चौड़ी पत्ती वाले पतझड़ वन उगते रहते हैं।

Mountains of Circumdenudation (अनावृत्तीकरण से बने पर्वत) ज्यों ही भूभाग में या घरेरों से पर्वत बन जाते हैं त्यों ही उनका क्षय होना भी प्रारंभ हो जाता है। उन उठे हुए स्थानों की मुलायम चट्टानें जब पानी, हवा इत्यादि के घिसने के कारण साफ हो गई तो कड़ी चट्टानें भी जो घिसने नहीं पाई अपने स्थान पर आसपास की भूमि से ऊँची खड़ी रह गई और पर्वत के रूप में दिखलाई पड़ने लगीं। इन्हें अनावृत्तीकरण से बने हुए पर्वत या अवशिष्ट पर्वत कहते हैं। भारत का अरावली पर्वत तथा बर्मा का शान पर्वत और पठार इसी प्रकार बने हैं। अमरीका के अपलीशियन पर्वत भी इसी प्रकार बने हैं।

अनावृत्तीकरण से बने ये पर्वत काफी ऊबड़-खाबड़ होते हैं और इनकी ऊँचाई व रचना निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहती है—(१) घिसाव के पहिले उनकी मौलिक ऊँचाई, (२) शुरू में ऊँचाई का अन्तर, (३) अनावृत्तीकरण की शक्तियों के घात-प्रतिघात के लिए क्षेत्र। वास्तव में चट्टानों की रचनात्मक व स्वाभाविक विभिन्नता तथा चट्टानों में जोड़ों का अधिक होना विखण्डन के कार्य को तीव्रतर कर देता है। ये पर्वत, नदी, हिम और वायु द्वारा क्षयात्मक कार्य से बन जाते हैं।

अनावृत्तीकरण से बने हुये पर्वत अक्सर पठारों के कट जाने से भी बन जाते हैं। बहते हुए पानी की जलधारायें पठार के सपाट शिखर को सब ओर से काट-काट कर घाटियाँ बना लेती हैं और इस प्रकार सब ओर से घाटियाँ छतरी की तीलियों की भाँति मालूम पड़ती हैं। इन घाटियों के बीच का अवशिष्ट पठारी भाग पर्वत शिखर बन जाता है जिसके चारों ओर नदी प्रवाह इस प्रकार रहते हैं जैसे साइकिल के पहिये की तीलियाँ हब से निकली रहती हैं।

Mountains of Accumulation (संचयन से बने हुए पर्वत) पृथ्वी के धरातल पर सामग्री के इकट्ठा होते रहने से जो पर्वत बन जाते हैं उन्हें संचयन का पर्वत कहते हैं। बहुधा ज्वालामुखी को संचयन से बना हुआ पर्वत कहते हैं क्योंकि वे ऐसे पदार्थों के इकट्ठा होने से बन जाते हैं जो कि धरातल से किसी प्रकार बाहर निकल आते हैं और धीरे-धीरे पहाड़ियों का रूप धारण कर लेते हैं। इसके अलावा पृथ्वी धरातल में भूकम्प

जनित छेदों द्वारा निकला हुआ लावा पृथ्वी की ऊपरी सतह पर आकर जम जाता है और तह पर तह जमने हुए वर्षों बीतने पर इस प्रकार इकट्ठा हुआ लावा पर्वत का आकार ग्रहण कर लेता है।

संचयन से बने हुए पर्वत प्रायः बहुत ऊँचे होते हैं और इनका आकार बड़ा ही सुडौल व सम होता है। प्रायः ये नियमित शंकु के रूप में पाये जाते हैं और अकेले शिखर बना कर दूर-दूर एक दूसरे से अलग पाये जाते हैं। ये शंकु राख, लावा, दोनों के मिश्रण से बनते हैं। वास्तव में संचयन से बने पर्वतों के शंकु की आकृति ज्वालामुखी से निकले हुए पदार्थों के गिर कर इकट्ठा होने के कारण तथा उनके इकट्ठा रहने की शक्ति, लावा की रासायनिक रचना, वायु की दिशा विस्फोट तथा वाह्य शक्तियों की काट-छाँट पर निर्भर रहती है। (देखिए Volcano)

Mountain Sickness (**पर्वतीय अस्वस्थता**) अधिक ऊँचाई पर जाने से वायुमंडल की परतें कम घनी हो जाती हैं और उनमें आक्सीजन की कमी हो जाती है। मानव देह के फेफड़े आक्सीजन के द्वारा ही शक्ति संचार करते हैं। अतः इसकी कमी हो जाने पर मनुष्य को अस्वस्थता का अनुभव होने लगता है। इस अस्वस्थता के कारण के कई चिन्ह होते हैं—मनुष्य की साँस लेने की गति तीव्रतर हो जाती है, सर में दर्द होने लगता है, नींद नहीं आती है और फलतः वह बीमार हो जाता है। शारीरिक परिश्रम से पर्वतीय अस्वस्थता बढ़ती जाती है। परन्तु यह कुछ अनिवार्य नहीं। वास्तव में शारीरिक परिश्रम करने की शक्ति स्वतः क्षीण हो जाती है।

पर्वतीय अस्वस्थता की तीव्रता विभिन्न लोगों के साथ अलग-अलग होती है और जिनकी आदत कठोर शारीरिक परिश्रम करने की होती है उन्हें इसका कम अनुभव ही होता है। इसके अलावा यदि ऊँचाई में अन्तर क्रमशः हो तो पर्वतीय अस्वस्थता का कोई भीषण असर देखने में नहीं आता।

Mountain Glaciation Lake (**पर्वतीय हिमनदी झील**) पर्वतीय प्रदेशों में हिम नदी के प्रभाव से बनी झीलों को पर्वतीय हिम नदी झील कहते हैं। घाटियों में हिम नदी निक्षेप से या तली में बने गड्ढों में पिघले हुए हिम जल के भर जाने से इस प्रकार की झीलों का निर्माण हो जाता है। निर्माण के अनुसार इनके चार प्रकार होते हैं—

(१) **घाटी में 'नोचे हुए' गड्ढों की झीलें** घाटी में इस प्रकार तरतीब से स्थित होती हैं जैसे कि किसी धागे में मोती पिराये हों या किसी माला की बड़ी गुरियें हों। इनके इसी क्रमिक व्यवस्था से यूरोप में इन्हें 'पेटरनास्टर झीलें' कहते हैं। आकार में ये झीलें करीब-करीब गोलाकार होती हैं परन्तु विस्तृत क्षेत्र में और निम्नतल पर इनका आकार फीते की तरह हो जाता है।

(२) **घाटी मोरेन झीलें** उस समय बन जाती हैं जब पर्वतीय हिम नदी किसी नदी के जल को रोक कर झील में परिणत कर देती है। कनाडा के राकी पर्वत में मोरेन और लुई झीलें इस प्रकार का सर्वोत्तम उदाहरण हैं। साधारणतया उपर्युक्त दोनों प्रकार की झीलें पर्वतीय घाटियों में एक के बाद क्रम से या मिली-जुली पाई जाती हैं।

(३) **पर्वत शिला झीलें** पर्वतीय हिमनदियों द्वारा बनाई गई घाटियों की लम्बरूप दीवारें इतनी सीधी होती हैं कि हिम नदी के हट जाने पर उनका सीधा खड़ा रहना संभव नहीं होता। जोड़ों के स्तर पर पाले के असर से उनमें बराबर विखण्डन होता रहता है और प्रवेश्य चट्टानें जब ही पानी से संतृप्त हो उठती हैं तो उनसे पर्वत शिलायें टूट कर नीचे की ओर खसक

आती हैं। इनसे घाटी से अवरोध हो जाता है और झील बन जाती है। कभी-कभी पर्वत शिलायें एक के बाद एक बराबर खसकती रहती हैं और नदी घाटी की दीवार सीढ़ीदार बन जाती है। इनका ढाल पीछे को रहता है और इनमें पानी भर जाने से लम्बी सँकरी पर उथली झीलों का निर्माण हो जाता है।

(४) **सीमावर्ती झीलें**—जब हिम नदियाँ बहती हुई पर्वत श्रेणियों की सीमा को पार कर के पिघलती हैं तो उनके द्वारा लाये हुए शिलाखण्ड इकट्ठे हो जाते हैं और इस निक्षेप के टीलों के पीछे झीलें बन जाती हैं। ये बड़ी सुन्दर होती हैं।

Mountain Wind (पर्वतीय पवन) रात के समय पर्वतों के शिखर विकिरण के द्वारा शीघ्र बहुत ठंडे हो जाते हैं और उनकी अपेक्षा घाटियों की तली का तापक्रम उच्चतर रहता है। फलतः शिखर पर की ठंडी हवा घाटी में उतरने लगती है। इसे पर्वतीय पवन कहते हैं और इसका प्रभाव पर्वतीय ढालों व घाटियों में दृष्टिगोचर होता है।

पर्वतीय पवन मन्द गति से बहता है परन्तु जब घाटी लम्बी हो, ढाल तीव्र हो तथा ढाल पर वन वनस्पति की जगह बर्फ जमी हो और दूसरी तरफ क्रमशः ढाल का पठार स्थित हो तो पर्वतीय पवन तूफान की तरह प्रचण्ड हो उठता है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसे भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं। (देखिये Katabatic Wind)

Mouth (मुहाना) नदी अपनी घाटी व तलैटी से बहती हुई जब और जहाँ किसी समुद्र या झील में जा गिरती है उसे नदी का मुहाना कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—जहाँ समुद्र में ज्वार भाटा आया करते हैं वहाँ पर नदी अपने मुहाने पर निक्षेप नहीं कर पाती। इसे खुला मुहाना कहते हैं। (देखिये Estuary) इसके विपरीत जहाँ समुद्र का जल शान्त होता है वहाँ पर नदी द्वारा लाये हुए भार का निक्षेप होने लगता है और कालान्तर में डेल्टा बन जाते हैं जिनके बीच से होकर नदी का जल अनेक धाराओं में बहता हुआ समुद्र में गिरता है। (देखिये Delta)

Mud Volcano (पंक ज्वालामुखी) कीचड़, मिट्टी से बने टीले को जिसके शिखर पर मुख होता है पंक ज्वालामुखी कहते हैं। ज्वालामुखी उद्गार के क्षेत्रों में कई स्थानों पर गैसों के साथ गरम पानी निकलता है और इस जल में चट्टानों के बारीक कण व धूल मिली रहती है। अतः गैसों के साथ-साथ कीचड़ का उद्गार होता है। विभिन्न खनिजों के मिले रहने से कीचड़ का रंग अनेक प्रकार का होता है और इस कीचड़ को धरातल के छिद्र के इधर-उधर जमते रहने से शंकु का निर्माण हो जाता है।

पंक ज्वालामुखी में पहले पानी का बहाव कम हो जाने से नीचे का गंदला पानी आता है। इसका रंग मटमैला रहता है और इसमें चट्टानों का बारीक चूर्ण मिला रहता है। धीरे-धीरे कीचड़ अधिक गाढ़ा आने लगता है। जब कभी इस कीचड़ के सूख जाने से इसका मुख बन्द हो जाता है तो उसके नीचे गरम पानी से भाप बनती रहती है। जब यह भाप काफी इकट्ठा हो जाती है तो यह मुख के जरिए धड़ाके से बाहर निकलती है और एक दम से उछलने में यह अपने कीचड़ भी उछाल देती है।

इस प्रकार के पंक ज्वालामुखी न्यूजीलैंड, बर्मा और सिली में पाये जाते हैं। रूस में बाकू नामक स्थान पर, बलूचिस्तान के दक्षिणी भाग तथा कुछ अन्य ज्वालामुखी हीन प्रदेशों में भी पंक ज्वालामुखी मिलते हैं। इन दूसरे प्रकार के प्रदेशों में जो गैसें पानी व कीचड़ को उछालती हैं वे ज्वालामुखी उद्गार से संबंधित नहीं होतीं। उनका कारण कुछ और होता है। बाकू में पंक ज्वालामुखी तेल के कुओं से निकलने वाली गैसों के साथ आने वाले जल और कीचड़ से बन गये हैं।

Mulatto (मुलाटो) गोरी यूरोपियन जाति के मनुष्य और नीग्रो या हब्शी जाति की स्त्री से उत्पन्न सन्तान मुलाटो कहलाती है। यह कोई जरूरी नहीं कि माँ हब्शी ही हो सामान्यतः पिता और माता में से कोई एक हब्शी और दूसरा गोरा यूरोपियन होना चाहिए।

Mule Path (खच्चर पथ) पर्वतीय या रेगिस्तानी प्रदेशों में टट्टू या खच्चर के आने-जाने के लिए बनी पतली पगडंडी को खच्चर पथ कहते हैं। ये खच्चर पथ मध्यपूर्व एशिया के देशों और स्टेपी प्रदेशों के आवागमन के प्रमुख मार्ग थे परन्तु अब यान्त्रिक यातायात की उन्नति के साथ लोप होते जा रहे हैं।

Multiple Cropping (विविध फसल खेती) भिन्न-भिन्न देशों में फसलों के उत्पादन की रीतियाँ भी भिन्न होती हैं। कहीं तो जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में एक क्षेत्र से एक वर्ष में एक ही उपज पैदा की जाती है परन्तु जापान, भारत आदि अधिक बसे हुए प्रदेशों में दो उपज उगाई जाती हैं। इस प्रकार की खेती को विविध फसल खेती कहते हैं। इसमें एक फसल कटने पर दूसरी बो दी जाती है। कहीं-कहीं एक ही क्षेत्र में वर्षा भर में कई फसलें उगाई जाती हैं।

विविध फसल खेती में भूमि का उपजाऊपन खाद द्वारा कायम रक्खा जाता है और शुष्क मौसम में पानी की कमी को सिंचाई द्वारा पूरा किया जाता है। इसके अलावा किसान फसलों में उचित हेरफेर करता रहता है। वह यह देखता है कि जिस फसल को एक बार उत्पन्न किया गया है उसी को दूसरी बार उत्पन्न न किया जावे। अनुभव से यह जान लिया गया है कि कुछ फसलें जिन नमकों को भूमि में कम कर देती हैं वही तत्व या नमक दूसरी फसलें भूमि में बढ़ा देती हैं। अतएव वह एक के बाद दूसरी उस फसल को उत्पन्न करता है जो एक दूसरे की पूरक हों। फसलों के चयन में जलवायु संबंधी विशेषताओं पर भी समुचित ध्यान दिया जाता है।

Muskeg (मस्केग) टन्ड्रा और नुकीली पत्ती वाले वन प्रदेश में बर्फ के पिघलने पर या नदियों में बाढ़ आने पर बने दलदलों को मस्केग कहते हैं। यह शब्द कनाडा के दलदलों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है।

Mushroom Rock (मशरूम चट्टान) रेगिस्तान भागों में धूल के बारीक कणों से लदी वायु चट्टानों के निचली भाग को काटती रहती है। साथ-साथ कभी कदाचित भीषण वर्षा हो जाने से ऊपरी भाग चिकना गोलाकार होता रहता है। दोनों क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप चट्टानों का निचला भाग तो कट जाता है परन्तु ऊपर का भाग गुम्बद या मूंठ की तरह नीचे की चट्टान पर खड़ा रह जाता है। इस प्रकार की चट्टान को मशरूम चट्टान कहते हैं क्योंकि इसका आकार कुकुरमुत्ते के पौधे की तरह दिखलाई पडता है।

Nadir (निम्नविन्दु) आकाश मंडल में सर्वोच्च विन्दु के बिल्कुल विपरीत दिशा में स्थिति विन्दु को निम्न विन्दु कहते हैं। यह विन्दु काल्पनिक होता है और इसकी स्थिति निश्चित न होकर केवल आपेक्षिक है।

Nappes (ग्रीवा खंड) जब भिचाँव अधिक प्रभावशाली होता है तो चट्टानों के स्तर में मोड़ पड़ जाते हैं और दबाव के अधिक बढ़ने पर मोड़ अपनी मूड़ी पर टूट जाता है तथा दूसरे स्तर पर लटक जाता है। इस प्रकार मोड़ उलटा हो जाता है और कभी-कभी तो स्तर का कुछ भाग टूट कर मीलों दूर जा पड़ता है। इस प्रकार टूट कर गिरे हुए भूभाग को ग्रीवा खंड कहते हैं।

Narrow Gauge (संकीर्ण प्रान्तर) जब रेल की दोनों पटरियों के बीच का फासला २ फीट ६ इंच होता है तो इसे संकीर्ण प्रान्तर कहते हैं। इस पर चलने वाली गाड़ियाँ बड़ी धीमी चलती हैं।

Natural Bridge (प्राकृतिक पुल) चट्टानों के स्वभावतः धनुषाकार रूप में मुड़ जाने या दो कन्दराओं के बीच जोड़ने वाले पुल सदृश्य हो जाने पर उन्हें प्राकृतिक पुल कहते हैं। इस प्रकार का पुल उस समय बन जाता है जब नदी अपनी तलैटी में इधर-उधर हटती हुई अपनी घाटी में स्थित पर्वत शाखा को दोनों ओर से काटती है। यदि पर्वत शाखा का ऊपरी भाग कठोर चट्टानों का हुआ तो नदी नीचे के आधार की मुलायम चट्टानों को काट कर अपना मार्ग निकाल लेती है और उनके ऊपर लटकती हुई पर्वत शाखा प्राकृतिक पुल का रूप धारण कर लेती है।

यह स्थलरूप चूने की चट्टानों से बने प्रदेश में अक्सर देखने में आता है। वहाँ घाटियों के आरपार चटानों के धनुषाकार झुक जाने पर प्राकृतिक पुल बन जाते हैं। वरजीनिया का प्राकृतिक पुल इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। चूने की चट्टान से बने प्रदेशों में भूगर्भवर्ती जल की क्रिया के कारण जमीन के नीचे कन्दरा या सुरंग बन जाती है। जब कभी इन कन्दराओं की छत टूट जाती है तो अवशेष छत प्राकृतिक पुल की तरह लटकती नजर आती है।

लावा के जमने से बनी चट्टानों के बीच से लावा का प्रवाह होने से भी प्राकृतिक पुल बन जाते हैं। इसी प्रकार झीलों व समुद्र के तट पर लहरों द्वारा कहीं कम और कहीं ज्यादा आवरण क्षय होने से चट्टानें धनुषाकार बन जाती हैं और प्राकृतिक पुल की सृष्टि हो जाती है।

Natural Region (भौगोलिक प्रदेश) दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में प्राकृतिक दशा, जलवायु, वनस्पति, उपज एवं सामान्य रूप से आर्थिक दशा के दृष्टिकोण से ऐसे भाग जगह-जगह मिलते हैं जिनको एक वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अतः भौगोलिक प्रदेश पृथ्वी के धरातल के वे भाग हैं जिनमें मानव जीवन पर प्रभाव डालने वाली भौगोलिक विशेषताएँ एक ही प्रकार की होती हैं और इसके फलस्वरूप प्रत्येक भौगोलिक प्रदेश की जलवायु, वनस्पति और रहन-सहन का ढंग भी बहुत कुछ एक ही समान होता है। परन्तु इसका आशय यह नहीं कि भौगोलिक प्रदेशों के एक ही वर्ग में रखे जाने से उनकी सभी बातें एक समान होंगी।

सच तो यह है कि दूरस्थ दो पृथक-पृथक क्षेत्रों की भौगोलिक दशायें पूर्णतया एक सी तो हो ही नहीं सकतीं। इसलिए भौगोलिक प्रदेशों के वर्गीकरण, जिसका मुख्य आधार जलवायु है, केवल अधिक से अधिक समानता का द्योतक है। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जा सकता है कि एक ही भौगोलिक प्रदेशों के विभिन्न भागों में भेदों की अपेक्षा पारस्परिक समानता अधिक रहती है।

विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों की सीमायें न तो निश्चित होती हैं और न राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं पर आश्रित होती हैं। एक प्रदेश से दूसरे में अन्तर क्रमशः होता है न कि एक दम। किसी भी प्रकार के भूगोल के अध्ययन में भौगोलिक प्रदेशों का बड़ा महत्व है। इसके द्वारा हमें पता चलता है कि एक ही प्रकार के प्रदेशों में समान आर्थिक उन्नति व उपज होना चाहिये। इस ज्ञान के आधार पर अविकसित प्रदेशों का विकास किया जा सकता है।

भूमंडल के प्रमुख भौगोलिक प्रदेश निम्नलिखित हैं —

१. उष्णकटिबंधीय भूभागों में—

(अ) भूमध्यरेखीय आर्द्रवन प्रदेश—अमेजन तुल्य (ब) मानसूनी प्रदेश—सूडान तुल्य (स) गर्म मरुस्थल प्रदेश—सहारा तुल्य (द) उच्च समभूमि प्रदेश—बोलीविया तुल्य।

२. उष्णतर शीतोष्ण कटिबंधीय भूभागों में—

(अ) पश्चिमी तटवर्ती—भूमध्यसागरीय प्रदेश (ब) पूर्वी तटवर्ती—चीन तुल्य (स) आन्तरिक निम्न प्रदेश—तूरान तुल्य (द) आन्तरिक उच्चप्रदेश—ईरान तुल्य ।

३. शीत-शीतोष्ण कटिबंधीय भूभाग में—

(अ) शीतोष्ण महासागरीय—पश्चिमी यूरोप तुल्य (ब) पूर्वी तटवर्ती—सेंट लारेंस तुल्य (स) आन्तरिक निम्न प्रदेश—साईबेरिया तुल्य (द) आन्तरिक उच्च प्रदेश—अल्टाई तुल्य ।

४. ध्रुवीय भूभाग—टुन्ड्रा प्रदेश ।

Natural Harbour (प्राकृतिक पोताश्रय) पोताश्रय वे स्थान हैं जहाँ जहाज सुरक्षित रह सकते हैं। आदर्श पोताश्रय के लिए निम्नलिखित बातें होनी चाहिये—(१) समुद्री तूफानों से सुरक्षा (२) शीतकाल में हिम से मुक्ति (३) तट के पास जल की काफी गहराई (४) बड़े-बड़े चट्टानों के मुड़ने के लए काफी चौड़ाई (५) सामान उतारने व चढ़ाने के लिए पर्याप्त विस्तृत स्थान —जहाँ से सभी दशायें प्रकृति द्वारा स्वयं उपलब्ध होती हैं वहाँ जो पोताश्रय बनते हैं उन्हें प्राकृतिक पोताश्रय कहते हैं।

प्राकृतिक पोताश्रय साधारणतया तटरेखा में भूमि की विशेष बनावट के कारण घिरा हुआ सुरक्षित गहरा स्थान होता है जिसमें जहाजों के ठहरने के लिये शान्त जल मिल जाता है। कटे-फटे तट की चट्टानों में या खाड़ियों में जहाँ तट के सामने द्वीप आदि स्थित होते हैं प्राकृतिक पोताश्रय स्वयं बन जाते हैं। सेनफ्रांसिस्को, लिवरपूल और कार्क जैसे बन्दरगाहों के सर्वोत्तम प्राकृतिक पोताश्रय हैं ।

Natural Resources (प्राकृतिक साधन) किसी स्थान या प्रदेश में प्रकृति द्वारा दिये स्वयं उपलब्ध सम्पत्ति को प्राकृतिक साधन कहते हैं। प्राकृतिक साधन तीन प्रकार के होते हैं—कुछ तो भूगर्भ में पाये जाते हैं, कुछ भूमि के ऊपर और कुछ जल के भीतर। खनिज संपत्ति, वनसंपत्ति और मछलियाँ किसी प्रदेश के मुख्य प्राकृतिक साधन होते हैं। इसमें जरा भी अत्युक्ति नहीं कि किसी जाति के आर्थिक जीवन में इन प्राकृतिक साधनों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। इसके अनुभव व आधार पर किसी प्रदेश के लोगों के व्यवसाय बन जाते हैं। ये साधन मनुष्य को आर्थिक उन्नति करने के लिये अवसर व सहायता प्रदान करते हैं परन्तु इनका उपयोग करना या न करना, प्राकृतिक साधनों से लाभ उठाना या न उठाना, वहाँ के निवासियों की प्रतिभा, बुद्धि, संस्कृति और ज्ञान पर निर्भर रहता है ।

खनिज संपत्ति के प्रदेशों में लोगों का मुख्य उद्यम खान खोदना होता है। दक्षिणी अफ्रीका की उन्नति और पश्चिमी आस्ट्रेलिया का विकास वहाँ की खनिज संपत्ति के कारण ही हुआ है। **वन प्रदेशों** के लोगों का मुख्य धंधा लकड़ी काटना होता है। अन्य उद्योग इसी पर आश्रित होते हैं । नार्वे, स्वीडन, कनाडा आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। जलवायु और भूमि कटाव के दृष्टिकोण से भी वनों का बड़ा महत्व है। **जल सम्पत्ति** अक्षय है और भूमि से भोजन प्राप्त करने की सहायक विधि है । वास्तव में किसी देश के जीवन, उद्योग व्यवसाय और वाणिज्य पर समुद्र का बड़ा प्रभाव पड़ता है ।

इसीलिए आज प्रत्येक राष्ट्र अपने प्राकृतिक साधनों का पता लगा कर उनका ठीक-ठीक और पूरा-पूरा उपभोग करना चाहता है । इसी में उसकी उन्नति निहित है ।

National Highway (राजपथ) देश के एक कोने से दूसरे कोने तक जाने-वाली व विभिन्न राज्यों व प्रान्तों के बीच से गुजरनेवाली सड़कों को राजपथ कहते हैं। इन

प्रमुख सीधी सड़कों से बहुत सी शाखायें व उपशाखायें भी निकल कर आसपास के नगरों व गावों को जाती हैं और राज पथ से संबंधित करती हैं। ये राजपथ देश के भीतर रीढ़ की हड्डी या धमनियों की तरह फैली रहती है और मोटर यातायात के युग में इनका महत्व बराबर बढ़ता ही जा रहा है।

Nautical Mile (समुद्री मील) समुद्री यात्राओं और यातायात में प्रयुक्त दूरी नापने की इकाई को समुद्री मील कहते हैं। यदि पृथ्वी के ही इतना बड़ा कोई वृत्त खंड खींचा जाय तो उसके केन्द्र से गुजरने वाले विशाल वृत्त के १ मिनट अंश में एक समुद्री मील बनेगी। तात्पर्य यह है कि एक समुद्री मील पृथ्वी के वृत्त के १ अंश के बराबर होता है। इस प्रकार एक समुद्री मील में ६०८० फीट होते हैं।

सामान्य रूप से किसी देशान्तर पर एक मिनट वृत्तांश की दूरी, भूमध्य रेखा पर एक मिनट वृत्तांश की लंबाई और समुद्री मील तीनों को ही ६०८० फीट बराबर मानते हैं।

पहिले समुद्री मील अक्षांश पर एक मिनट की दूरी के बराबर माना जाता था परन्तु भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर चलने पर अक्षांशों की इस दूरी में अंतर होता जाता है। फलतः समुद्री मील ध्रुवों की अपेक्षा भूमध्य रेखा पर छोटी होती थी। इस अन्तर को दूर करने के लिए अंग्रेजी नौ सेना ने सभी अक्षांशों के मिनटों का औसत निकाल कर उसे समुद्री मील मान लिया। इस प्रकार ६०८० फीट एक मिनट अक्षांश का मध्यम मान होता है। परन्तु समुद्री मील की दूरी संयुक्त राष्ट्र अमरीका में दो इंच अधिक होती है यानी ६०८०.२७ फीट। जर्मनी का समुद्री मील ४ फीट छोटा होता है यानी ६०७६ फीट।

Nautical Charts (समुद्री चित्र) समुद्र तथा तट प्रदेशों की पैमाइश करके उनके आधार पर बनाये हुए मानचित्र को समुद्री चित्र कहते हैं। तट के किनारे-किनारे स्थितियों को नाप लिया जाता है और पनडुब्बी किश्तियों के द्वारा जल के भीतर की जानकारी प्राप्त की जाती है। हवाई जहाज से चित्र लेकर अन्य सूक्ष्म बातों का पता चला लेते हैं।

वास्तव में समुद्री चित्र बहुत प्राचीन काल से बनते चले आ रहे हैं और नयी-नयी विधियों द्वारा उनमें उत्तरोत्तर शुद्धियाँ लाई जा रही हैं। समुद्री चित्र भूमिति चित्रों से कई मानों में भिन्न-भिन्न रहते हैं। स पर पोताश्रयों तथा नहरों को १ : ५००० से लेकर १ : ६०,००० के मानदण्ड पर बनाते हैं। अच्छी प्रकार जाने हुये तटों को १ : ८०,००० के मानदण्ड पर बनाते हैं। परन्तु कुछ समुद्री चित्र छोटे मानदंड पर भी खींचे जाते हैं। प्रायः समुद्री चित्रों को बनाने के लिए मरकेटर अंकन को प्रयोग में लाते हैं। इन चित्रों में मानदण्ड को चित्रवत प्रस्तुत नहीं करते। बल्कि समुद्री चित्र के किनारे पर डिग्री और मिनट बना देते हैं।

अधिकतर समुद्री चित्रों में भूखंड को खाली छोड़ दिया जाता है और केवल प्रकाश गृहों भूचिन्हों और मीठे पानी के स्थानों को सांकेतिक चिन्हों द्वारा दिखलाते हैं। वास्तव में समुद्री यातायात के लिए आवश्यक सभी बातों को दिखलाया जाता है। समुद्री जल की गहराई को अंकों द्वारा या जल के भीतर की समोच्च भूमि रेखाओं द्वारा दिखलाते हैं। इन रेखाओं के बीच का अन्तर गहराई के साथ-साथ बढ़ता जाता है और १०० फैदम के नीचे बिल्कुल भी नहीं दिखलाये जाते हैं। आजकल समुद्री चित्रों में गहराई महासागरों की तली की बनावट दिखलायी जाती है ताकि जहाजों को अपनी स्थिति जानने में सुविधा हो। अधिक गहराई को फैदम में और कम गहराई को फीट में दिखलाने से बड़ी असुविधा होती है।

Naze (नेज) समुद्री तट पर आगे को निकला हुआ चट्टानखंड नेज कहलाता है।

Neap Tides (लघु ज्वार) जब सूर्य चन्द्रमा की दिशा की विरुद्ध दिशा से आकर्षण करता है अर्थात् जब वह चन्द्रमा के साथ समकोण बनाता है तो ज्वार छोटा आता है, उसको लघुज्वार कहते हैं। चन्द्रमा की कलाओं के अध्ययन करने से पता चलता है कि प्रत्येक चन्द्र-मास में लघुज्वार दो बार आते हैं एक तो शुक्लपक्ष की अष्टमी को दूसरे कृष्ण पक्ष की अष्टमी को। (देखिये Moon's Phases)

सूर्य की आकर्षण शक्ति की अपेक्षा चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति ढाई गुना अधिक होती है। इसलिए जब वे एक ही दिशा में रहते हैं तो दोनों की शक्ति मिल जाने से दीर्घ ज्वार आता है परन्तु जब वे दोनों एक दूसरे के साथ समकोण बनाते हैं तो चन्द्रमा की शक्ति कम हो जाती है और उसके आकर्षण से उठा पानी बहुत ऊँचाई तक नहीं जा पाता। उच्च व निम्न जलविन्दु के बीच दीर्घ ज्वार और लघुज्वार के उछाल में ७ : ३ का अनुपात होता है।

समकोण स्थिति में सूर्य अपनी शक्ति द्वारा उस स्थान पर आकर्षण उत्पन्न करता है जहाँ चन्द्रमा के आकर्षण द्वारा भाटा आयेगा। इसी प्रकार चन्द्रमा की शक्ति से जहाँ ज्वार आयेगा वहाँ सूर्य की शक्ति के कारण भाटा भी उत्पन्न होगा और जहाँ चन्द्रमा की शक्ति के द्वारा भाटा आयेगा वहाँ सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से ज्वार उत्पन्न कर देगा। फलतः ज्वार भाटे के बीच बहुत थोड़ा ही अन्तर रहता है। ज्वार अपेक्षाकृत कम उचाई का होता है और भाटा अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा होता है।

Nebular Hypothesis (नीहारिका सिद्धांत) इस सिद्धान्त के अनुसार सौर मंडल के सभी ग्रह बहुत पहिले एक निहारिका के रूप में थे। गैस का धधकता हुआ पिंड बहुत विस्तार में फैला हुआ था और यह नीहारिका अपनी धुरी पर घूमता हुआ बड़े वेग से चक्कर लगा रहा था। बड़ी तेजी से घूमने के कारण इसके ऊपरी भाग की गर्मी आकाश में फैलने लगी और ऊपरी भाग ठंडा होने लगा। ठंडा होने पर इसका ऊपरी भाग घना हो गया और यह धीरे-धीरे सिकुड़ने लगा। सिकुड़ने पर इसकी चक्कर लगाने की गति और भी तीव्र हो गई। फलतः केन्द्रीय नीहारिका से गोलाकार पट्टियाँ टूट-टूट कर अलग होती रहीं और इसी प्रकार की नौपट्टियों के टूट कर अलग होने से सौर मंडल के ९ ग्रह बन गये हैं। केन्द्रीय नीहारिका अभी भी अपने मूल रूप में—सूर्य के रूप में स्थित है और टूटी हुई पट्टियों के ठंडा पड़ने पर बने ग्रह इसी का चक्कर लगा रहे हैं।

ठंडा होने से हमारी पृथ्वी के चारों ओर एक वायु मंडल छा गया और बीच का हिस्सा पिघली हुई चट्टानों के द्रवित गोलाकार रूप में रहा। धीरे-धीरे यह पिघली हुई चट्टान राशि ठोस हो गई जिससे कि हमारा स्थल मंडल बन गया। वायुमंडल में उपस्थित जलबाष्प ठंडी होकर पानी बन गई और जलवृष्टि के रूप में गिरने लगी। फलतः बड़े-बड़े महासागरों की सृष्टि हो गई। (देखिये Laplace's Theory)

नीहारिका से सौर मंडल की उत्पत्ति हुई यह तो सभी मानते हैं परन्तु लायकर ने नीहारिका की उत्पत्ति कुछ ठोस उल्काओं से मानी है। इस विद्वान के अनुसार बहुत दिनों पहिले दो बहुत बड़े तारे आपस में टकराये। उसके कारण इतनी भीषण ज्वाला उत्पन्न हुई कि टुकड़े पिघल कर द्रव बन गये और फिर गैस बन कर बादल की तरह छा गये। इस प्रकार एक बहुत बड़े महापिण्ड का निर्माण हुआ जो टक्कर के कारण घूमने लगा और धीरे-धीरे चक्करदार नीहारिका के रूप में बदल गया।

Needle (नीडल) शुष्क चट्टानी प्रदेशों में बारीक कणों से लदी हुई वायु के थपेड़ों तथा दैनिक तापान्तर के कारण चट्टानों के फैलने व सिकुड़ने से चट्टानों के अन्दर इतनी काट-

छांट हो जाती है कि उनका ऊपरी सिरा सुई की तरह नुकीला निकल आता है। कभी-कभी तो शिखर प्रदेश में इस प्रकार के कई नुकीले श्रृंग उठ आते हैं। इन्हें नीडल कहते हैं।

Nehrung (नेहुरंग) जर्मनी के बाल्टिक सागरीय तट पर बालू, कंकड़, मिट्टी के टीले इस प्रकार स्थित हैं कि नदियों के मुहाने को हसिये की तरह घेर कर उथले जलाशय बनाते हैं। इन टीलों को नेहुरंग कहते हैं।

Nekton (नेकटन) समुद्र में तीन प्रकार के जीव या प्राणी पाये जाते हैं: एक तो वे होते हैं जो अपनी जगह से हिलते-डुलते नहीं और जिन्हें बेन्थोस कहा जाता है; दूसरे वे जो लहरों व धाराओं द्वारा जिधर चाहे बहा ले जाये जा सकते हैं और जिन्हें प्लान्कटन कहते हैं। तीसरे वे जो आकार व विस्तार में इन दोनों से बड़े ही नहीं होते बल्कि सक्रिय होकर तैरते रहते हैं। इन्हें नेकटन कहते हैं और मछलियाँ इनमें मुख्य हैं।

Nephoscope (नेफ़ासकोप) बादलों के चलने की गति व दिशा का ज्ञान कराने वाला यंत्र नेफासकोप कहलाता है। इस यंत्र का प्रयोग उच्च व मध्यवर्ती मेघों तक ही सीमित है। वैसे तो यह यन्त्र कई प्रकार का होता है परन्तु सब से अधिक प्रयोग में आने वाला यंत्र बेसन का कंघी के आकार का नेफासकोप है। इसमें एक लम्बरूप छड़ के सिरे पर कई नुकीले छड़ लगे रहते हैं जो कंघे के दाँतों के समान मालूम पड़ते हैं। छड़ को इस प्रकार घुमाते हैं कि बादल उसके सिरे पर घूमते नजर आने लगते हैं। तब उनकी दिशा को जाना जा सकता है और यदि बादलों की ऊँचाई का अनुमान हो जाय तो फिर उनकी चाल या गति को भी गणित द्वारा निकाला जा सकता है।

Ness (नस) किसी तट से बाहर को या समुद्र की ओर को उभड़ा हुआ चट्टान खंड नेस कहलाता है। प्रायः नेस तट से जल के भीतर को उभरा हुआ भूभाग होता है जो जीभ के समान दिखलाई पड़ता है।

Nevados (नेवाडास) इक्वेडर की उच्च घाटियों में इधर-उधर के पर्वत शिखरों से उतर कर आने वाली ठंडी हवा को नेवाडॉस कहते हैं। यह हवा काफी नियमित रूप से बहती है और इसके उत्पन्न होने का प्रधान कारण यह है कि पर्वत शिखरों पर रात में ताप विकिरण द्वारा तथा हिम और बर्फ के संपर्क से वायु ठंडी हो जाती है और फलतः ढालों से होकर नीचे को उतरने लगती है। (देखिये Katabalic wind)

Neve (नेवे) पर्वतीय प्रदेशों या शीत खंडों में जब बर्फ गिरती है तो वह रुई के पहल की तरह हल्की व फूली हुई रहती है। परन्तु बार-बार बर्फ के गिरते रहने से बर्फ की राशि इतनी अधिक हो जाती है कि उसके दबाव मात्र से नीचे की परतें मोटी व स्फट पूर्ण हिम बन जाती है। इस रवेदार राशि को जिसमें कुछ अंश बर्फ का और कुछ हिम का होता है नवे कहते हैं। यह फ्रांसीसी भाषा का शब्द है और जर्मन भाषा में इसी को फर्न कहते हैं।

यह रवेदार राशि ऊपरी दबाव के अलावा पिघले हुए जल के भीतर प्रवेश करके दुबारा जम जाने से भी बन जाती है। सत्य यह है कि ये दोनों ही क्रियायें योग देकर नेवे को जन्म देती हैं। जब हिम नदी प्रवाहित होने लगती है तो यह नेवे पूर्णतया रवेदार हो जाता है।

Nimbo stratus (निम्बो स्ट्रैटस) यह एक प्रकार का निम्न मेघ होता है जिसका रंग गहरा भूरा और जिसका आधार समतल होता है। इस प्रकार के मेघ से अक्सर लगातार जलवृष्टि या तुषार पात होता है। कभी-कभी इससे होने वाली जलवृष्टि नीचे तक

नहीं पहुँच पाती और तब इस बादल के कुछ अंश हवा में तैरते हुए या झूलते हुए नजर आते हैं।

Nimbus (निम्बस मेघ) निम्बस मेघ घने और काले पिण्ड के समान होते हैं जो धरती से एक मील की ऊँचाई पर बनते हैं। ये इतने नीचे होते हैं कि कभी-कभी तो धरती को छूते नजर आते हैं। ये कुंज रूप से छाये रहते हैं और इनका आकार कोई विशिष्ट नहीं होता। इनके किनारें आपस में मिले रहते हैं और ये इतने घने रहते हैं कि इनमें प्रवेश करके सूर्य की किरणें पृथ्वी पर नहीं आ पातीं। अतः इन बादलों के छाये रहने पर अन्धकार छा जाता है और वायुमंडल नम हो जाता है। इनसे बड़ी जल्दी वर्षा होती है।

Nitrogen (नोषजन) वायुमण्डल में जितनी भी गैसें पायी जाती हैं उनमें नोषजन की मात्रा सबसे अधिक है। शुष्क हवा में नोषजन का अंश ७८.०३ प्रतिशत होता है। इसकी रासायनिक प्रतिक्रिया कुछ भी नहीं होती और इसके द्वारा आक्सीजन का अंश पतला हो जाता है। इसकी प्रतिशत मात्रा धरातल की वायु में सब जगह करीब-करीब एक सी रहती है। परन्तु ८० मील के बाद वायुमण्डल में इस गैस का अभाव हो जाता है। यह गैस काफी भारी होती है और इसका प्रधान महत्व यह है कि इससे पौधों को भोजन मिलता है।

Nivation (हिम कटाव) बर्फ के द्वारा भूमि के कटने को हिम कटाव कहते हैं। ऊपर की बर्फ पिघलने से भी जल धारायें बन जाती हैं। वे नीचे की भूमि में प्रवेश कर के उन्हें सन्तृप्त कर देती हैं और भूमि का ऊपरी भाग जमी हुई बरफ के ऊपर से होता हुआ नीचे को खसक जाता है। इस प्रकार हिम कटाव के द्वारा भूमि की बड़ी राशि हट जाती है और नीचे की कठोर चट्टान बाहर निकल आती है।

जहाँ हिम आवरण छाया रहता है वहाँ हिम प्रवाह तथा उसके अन्दर की जलधाराओं के द्वारा ऊपर की बारीक मिट्टी बहा ले जाई जाती है और विस्तृत प्रदेश अनुपजाऊ हो जाते हैं। स्वीडन और फिनलैंड की भूमि इसी हिमकटाव के कारण खेती के अयोग्य हो गई है।

Noch (नॉच) जब बालू, कंकड़ और पत्थर से लदी हुई लहर तट से टकराती है तो भूमि के छोटे से भाग को खोद डालती है। इस प्रकार की खुदाई से जो गड्ढा या कटाव बन जाता है उसे नॉच कहते हैं। धीरे-धीरे लहरों के आघात-प्रतिघात से यह नॉच गहरा व चौड़ा होता जाता है और इसके फलस्वरूप किनारे की चट्टान पीछे को हटती जाती है। चट्टानों की ऊँचाई पर भी असर पड़ता है और इसका ढाल तीव्रतर होता जाता है। वास्तव में किनारे पर लहरों द्वारा होने वाला आवरण क्षय का प्रथम चिन्ह या रूप यही नॉच होता है।

नॉच लहरों की तीव्रता व विस्तार, तटीय चट्टानों की बनावट और लहरों द्वारा ढोये गये मिट्टी, बालू, कंकड़, पत्थर की राशि पर निर्भर रहता है।

इन्हीं नॉच के बढ़ जाने पर पतली सँकरी कटान बन जाती है जिन्हें **Chasm** कहते हैं। (देखिए Chasm)

Nomadism (खानाबदोशी) कुछ आदिम निवासियों व जातियों में अपना निवास स्थान बदलते रहने की आदत होती है। वे किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहते हैं बल्कि अपने जानवरों व घरेलू वस्तुओं को साथ लिए इधर-उधर घूमा करते हैं। इस आदत या रहन-सहन के तरीके को खानाबदोशी कहते हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों (स्टेपी प्रदेशों) और रेगिस्तानों के निवासी इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं। वे अपने जानवरों के काफिले को साथ में लिए निम्नलिखित तीन उद्देश्यों से भ्रमण किया करते हैं—(१) अपने पशुओं के चरागाह के लिए, (२) अपने

लिए कन्दमूल, फल प्राप्त करने के लिए और (३) व्यापार की सामग्री को इधर से उधर पहुँचाने के लिए। इस प्रकार के लोगों को खानाबदोश कहते हैं और इन में तीन प्रकार के लोग पाये जाते हैं—

(१) वे लोग जिनका मुख्य पेशा पशुचारण होता है और जो पशुओं के उपयुक्त चरागाहों की तलाश में घूमते रहते हैं। जब कोई अच्छा चरागाह मिल जाता है तो वहीं रुक कर अपने पशुओं को चराते हैं और घास के उस क्षेत्र के खतम होते ही वे किसी दूसरी जगह की तलाश में चल पड़ते हैं। इनके रहने के लिए तम्बू होते हैं और इनके बर्त्तन आदि घरेलू वस्तुयें भी ऐसी ही होती हैं जो पशुओं द्वारा प्राप्त की जा सकें तथा आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जा सकें। भोजन के लिए मांस, पीने के लिए दूध और वस्त्र के लिए ऊन और खाल भी इन्हीं जानवरों से प्राप्त करते थे। घास के मैदानों में जल का प्रायः अभाव रहता है। इसलिए ये खाल से बनी हुई मश्कों में एक स्थान से दूसरे स्थान को जल ले जाया करते थे। ये लोग उत्तम घास की खोज में चारों ओर घूमते हैं और अकाल के समय बहुत दूर चले जाते हैं और जहाँ कोई उपजाऊ प्रदेश मिल जाता है तो वहाँ के आदिम निवासियों को भगाकर खेती करना आरंभ कर देते हैं। अरब के बेदुइन लोग इसी प्रकार की लूटमार में लगे रहते हैं।

(२) कुछ प्रदेशों के जंगली निवासी उन फलों और जड़ों ही से अपना पेट भरते हैं जोकि वे जंगली वृक्षों से प्राप्त करते हैं। ये लोग अपने दैनिक भोजन के लिए सामग्री इकट्ठा करने में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ये प्रायः शिकारी भी होते हैं और फल तथा पशुओं की खोज में जगह-जगह घूमा करते हैं। ये अपने रहने के लिये घास, फूस और पत्तों की छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बना लेते हैं। कान्गो, आमेजन और आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी इसी प्रकार के हैं।

(३) स्टेपी प्रदेशों और शुष्क रेगिस्तानों में सामान तटीय प्रदेशों से अन्दर तक पहुँचाना कठिन होता है। इसलिए कुछ लोग ऊँटों का काफिला रख कर इधर-उधर सामान ढोते फिरते हैं। पर्वतीय प्रदेशों में भी लोग याक, बैल या लामा पशु का काफिला लेकर मंडियों के बीच दूर-दूर तक व्यापार के लिये जाते हैं। जहाँ जाते हैं वहीं इनका घर हो जाता है।

उत्तरी एशिया के टुन्ड्रा प्रदेश के सैमायड, मध्य एशिया के खिरगीज, अरब के बद्दू और कान्गो व अमेजन बेसिन के बौने लोग इसी प्रकार का खानाबदोश जीवन व्यतीत करते हैं।

Normal Watershed (सामान्य जल विभाजक) विभिन्न नदियों के प्रवाह को अलग करनेवाली ऊँची भूमि को जल विभाजक कहते हैं। जल धारायें घिस कर व काटकर अपने तलैटी को नतोदर कर लेती हैं परन्तु उनकी तलैटी की यह नतोदरता जलविभाजक तक नहीं पहुँच पाती और साधारण परिस्थिति में जल विभाजक उन्नतोदार तथा बहुत कुछ गोलाकार रूप ही प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के गोलाकार जल विभाजक को जिसके शिखर का ढाल उन्नतोदर होता है सामान्य जलविभाजक कहते हैं। (देखिये **Cuspate Watershed**)

Norte (नार्ट) मध्य अमरीका में जाड़े के मौसम में उत्तर दिशा से प्रवाहित हवा को नार्ट कहते हैं। वास्तव में ये नार्ट हवायें संयुक्त राष्ट्र अमरीका की नार्द्दर हवाओं की ही विकसित शाखा हैं और उन्हीं के अनुरूप इनके चलने पर एकाएक तापक्रम बहुत निम्न हो जाता है। एक या दो दिन तक तापक्रम औसत से १०°-१५° कम हो जाता है जोकि इन अक्षांशों में बड़ा ही कठोर शीत उत्पन्न करता है। यह हवा खुले तटीय भागों पर आँधी की तरह तीव्रगति से बहती है।

टेहानटीपक के स्थल-डमरू मध्य के उत्तरी किनारे पर इन ना ' हवाओं की विशेष प्रधानता

रहती हैं और जाड़े के मौसम में लगातार ये चलती रहती हैं। इनकी गति भी बहुत भीषण रहती है। इस प्रदेश में इन हवाओं के चलने पर भारी वर्षा होती है। जब ये हवायें प्रशान्त-महासागर की तरफ टेहानटीपक की खाड़ी पर पहुँचती हैं तो इनमें ठंडक तो जरूर रहती है परन्तु जलवृष्टि कर चुकने के बाद ये बिल्कुल शुष्क हो जाती हैं। जाड़े के मौसम में स्पेन का आन्तरिक प्रदेश एक उच्च भार केन्द्र बन जाता है तो वहाँ से हवा बाहर की तरफ चलने लगती है और यही वायु उत्तर की ओर से पूर्वी स्पेन में प्रवेश करती है तो इसे भी नार्ट कहते हैं।

Northpole (उत्तरी ध्रुव) पृथ्वी एक सन्तरे के समान है जिसके ऊपरी और निचले सिरे चिपटे हुए हैं। उत्तर की ओर के चपटे सिरे को उत्तरी ध्रुव कहते हैं। इस बिन्दु पर देशान्तर रेखायें आकर मिल जाती हैं और इसीलिए उत्तरी ध्रुव का देशान्तर शून्य होता है। इसका अक्षांश ९०° होता है और यदि हम १ अंश को मीलों में परिवर्तित करें तो ध्रुवों के समीप का मील भूमध्य रेखा के समीप के मील से बड़ा सिद्ध होगा।

उत्तरी ध्रुव पृथ्वी की धुरी का उत्तरी सिरा है और सदैव स्थायी रहता है। यह सदैव एक ही दिशा में झुका रहता है और इस बिन्दु से पृथ्वी का हर स्थान दक्षिण में ही होता है। यहाँ पर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं। इसीलिए यहाँ सदैव ठंडक बनी रहती है। उत्तरी ध्रुव के आसपास के प्रदेश में ६ महीना रात और ६ महीना दिन रहता है। यहाँ का जीवन ही कठिन होता है। (देखिये **Lapland**)

Norther (नार्दर) संयुक्त राष्ट्र के दक्षिणी भाग में जब कभी कोई चक्रवात गुजरता है तो उसके पिछले हिस्से में एक ठंडी वायुधारा चल निकलती है। इसके चलने पर २४ घंटों के अन्दर तापक्रम ३०-४० डिग्री तक गिर जाता है और इसके फलस्वरूप फलों की खेती को बड़ा नुकसान पहुँचता है। अक्सर ये नार्दर हवायें बड़ा प्रचण्ड रूप धारण कर लेती हैं और बड़ी ही भीषण गति से प्रवाहित होती हैं। साधारणतया इनकी गति ४० से ६० मील प्रति घंटा तक होती है और जब ये हवायें चलती हैं तो ओले गिरते हैं और बड़ी जोरों से बादल गरजते हैं। कभी-कभी तो वायु आँधी की तरह चलती है और समय-समय पर गति बदलती रहती है।

कैलीफोर्निया की सेक्रामिंटो घाटी में यह हवा शुष्क व धूल से भरी हुई होती है। पर्वतों पर से उतर कर आने के कारण यह हवा गर्म व शुष्क हो जाती है।

Northern Circuit (उत्तरी वक्रपथ) उत्तरी अमरीका महाद्वीप को पश्चिम से पूर्व दिशा में चक्रवातों के पार करने के मार्ग को उत्तरी वक्रपथ कहते हैं। चक्रवात का यह उत्तरी मार्ग बड़ी झीलों व सेंटलारेंस घाटी से होकर जाता है और इस पर चक्रवातों की प्रगति गर्मी के मौसम में विशेष अधिक रहती है। गर्मी के कारण मौसम में यद्यपि चक्रवातों की संख्या बहुत कम होती है और चक्रवात सबसे अधिक कमजोर व अस्थायी भी होते हैं परन्तु फिर भी इस चक्रपथ पर उनका गुजरना बराबर लगा ही रहता है। (देखिये **Southern Circuit**)

Northern Lights (उत्तरी प्रकाश) देखिये (**Aurora Borealis**)

North Magnetic Pole (उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव) (देखिये **Magnetic Pole**)

Nor-Wester (नार-वेस्टर) (१) न्यूजीलैंड की आल्पस पर्वत श्रेणी से केन्टरबरी मैदान में उतरने वाली गर्म व शुष्क वायु को नारवेस्टर कहते हैं। यह वायु उत्पत्ति व प्रभाव में बिल्कुल फॉन वायु के समान होती है। (देखिए **Foehn**)

(८) उत्तरी भारत के मैदान में गर्मी के मौसम में अप्रैल से जून तक बड़ी भीषण आँधी चला करती है। इसकी गति व दिशा अनिश्चित होती है और बहुधा इसका रूप बवण्डर के समान होता है। इसके चलने पर बड़े जोर के बादल कड़कते हैं और भीषण जलवृष्टि होती है। कभी-कभी ओले भी गिर जाते है। इस मौसम में बंगाल, आसाम और बर्मा की अधिकांश जलवृष्टि इन्हीं नार्वेस्टर हवाओं से होती है। आसाम में चाय की फसल के लिए ये हवायें विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती हैं।

Nuee Ardente (न्यी आरडेंटे) यह फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। कभी-कभी ज्वालामुखी से जब ऊपर को वस्तुओं का निकलना बन्द हो जाता है तो लावा के टुकड़े जो गैस से भरे रहते हैं और जो बहुत गर्म होते हैं वे धड़ाके के साथ आड़े तिरछे होकर बाहर निकल आते हैं। इसे न्यी आरडेंटे कहते हैं और इस धड़ाके या बौछार से उत्पन्न बादल सदैव चमकता नहीं रहता। अँग्रेजी भाषा में इसे पेलीयन मेघ कहते हैं। इस अँग्रेजी नाम का आधार मावन्ट पेली है।

Nullah (नाला) नाला एक भारतीय नाम है। आमतौर से सूखी पड़ी रहने वाली तलैटी जो भारी वर्षा के बाद थोड़े दिनों के लिए नदी का रूप धारण कर लेती है, उसे नाला कहते हैं। ये नाले प्रायः शुष्क प्रदेशों में खूब पाये जाते हैं। (देखिये Arroyo, Wadi)

Nunatak (नुनाटक) हिम आवरण के किनारे पर हिम और बर्फ की राशि मध्य की अपेक्षा कम होती है। फलतः धरातल के अन्य सब भाग तो इस राशि के नीचे दब जाते हैं परन्तु कुछ पर्वत शिखर बीच-बीच में बाहर निकले रहते हैं और हिम आवरण के बीच द्वीप से मालूम पड़ते हैं। इन्हें नुनाटक कहते हैं। ग्रीनलैंड में इनकी बहुतायत है।

जहाँ कहीं भी ये उभरे हुए नुनाटक रहते हैं वहाँ पर उनके चारों ओर की बर्फ ताप विकिरण द्वारा पिघल जाती है। फलतः इनके चारों ओर एक गहरी खाई सी बन जाती है और इनको दूर से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है जैसे किसी पुराने किले के चारों ओर खाई बनी हुई हो।

Oasis (मरुद्यान) किसी रेगिस्तान के बीच में जहाँ कहीं पानी मिल जाता है वहाँ कुछ हरियाली व वनस्पति का प्रादुर्भाव हो जाता है। इन स्थानों को मरुद्यान कहते हैं। पानी के उपस्थित होने से ये प्रदेश उपजाऊ होते हैं और बन्जर रेगिस्तान के बीच मरुद्यान ही ऐसे स्थान होते हैं जहाँ खेती-बाड़ी या पशुचारण किया जाता है तथा लोग स्थायी रूप से निवास करते हैं। कभी-कभी तो मरुद्यान में केवल कुछ खजूर के पेड़ ही उगे नजर आते हैं परन्तु कभी-कभी ये उपजाऊ मरुद्यान सैकड़ों वर्गमील क्षेत्र में फैले होते हैं और इनमें ज्वार, बाजरा तम्बाकू, फल आदि उगाये जाते हैं। साथ-साथ ऊँट, भेड़, बकरी और घोड़े आदि भी पालते हैं। वास्तव में मरुद्यानों का विस्तार तथा आबादी वहाँ पर उपलब्ध जल की मात्रा व स्रोत पर निर्भर रहता है। जहाँ कहीं भूगर्भवर्ती जल एक अकेले झरने के रूप में धरातल पर आ जाता है वहाँ तो छोटे-छोटे खजूर के झुरमुट ही पाये जाते हैं। परन्तु कहीं-कहीं पर्वत की कन्दराओं और सँकरी घाटी से बहकर आने वाली नदी के जल के कारण मरुद्यान अधिक विस्तृत हो जाते हैं। वास्तव में मिश्र और इराक एक प्रकार के मरुद्यान ही हैं। नील नदी के कारण मिश्र और दजला-फरात के कारण इराक तथा इसी प्रकार सिन्धु के कारण सिंध का प्रदेश उपजाऊ खेतिहर प्रदेश बन गये हैं। यदि ये नदियाँ न होतीं तो ये प्रदेश रेगिस्तान होते। आस्ट्रेलिया के पश्चिमी मरुस्थल में आर्टीजन खोदकर भूगर्भवर्ती जल को धरातल तक लाया गया है और इन कुओं के चारों ओर का भाग मरुद्यान बन गया है।

Obsequent Stream (ढाल के विपरीत उपधारा) ढाल के अनुरूप बहने वाली मुख्य नदी के दोनों ओर दोनों दिशाओं में मिलने वाली सहायक नदियों के किनारों पर भी

अनेक जलधारायें आकर मिलती हैं। इन जल धाराओं का मार्ग मुख्य नदी के मार्ग के बिल्कुल विपरीत दिशा में होता है। इन जल धाराओं को ढाल के विपरीत बहने वाली उपधारा कहते हैं।

Occhesion (सीमान्त मिलन) किसी चक्रवात या निम्नभार केन्द्र में गरम व ठंडे सीमान्त के मिलने या टक्कर खाने को सीमान्त मिलन कहते हैं। पश्चिम की ओर से बढ़ती हुई ठंडी हवा गर्म हवा को हटाती जाती है और इस प्रकार चक्रवात का गर्म भाग बराबर ऊपर को उठता जाता है। इस प्रकार गर्म भाग निरन्तर छोटा होता जाता है और कुछ काल बाद शीत सीमान्त आगे बढ़ते-बढ़ते गर्म सीमान्त से जा मिलते हैं और गर्म भाग धरातल पर एक रेखा मात्र रह जाता है। ऊपरी वायुमंडल में गर्म भाग अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत बना रहता है और वास्तविक सीमान्त के मेघ और वर्षा कुछ समय तक और बने रहते हैं।

देखा गया है कि सीमान्त मिलन के प्राय: ६ दिन के भीतर ही चक्रवात समाप्त हो जाता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सीमान्त मिलन रेखा के दोनों ओर तापक्रम में भी कुछ अन्तर रहता है। यही कारण है कि किसी देश में होकर सीमान्त मिलन के गुजरने पर तापक्रम में दो या तीन अंश का फर्क पड़ जाता है।

यूरोप के देशों के ऋतु चित्रों में सीमान्त-मिलन रेखायें अक्सर दिखलाई जाती हैं। इसका कारण यह है कि उत्तरी अटलांटिक सागर को पार करके आने वाले अधिकतर चक्रवातों में पश्चिमी यूरोप तक पहुँचते-पहुँचते सीमान्त-मिलन हो जाता है।

Ocean (महासागर) संसार का तीन-चौथाई या ७१ प्रतिशत भाग खारे पानी से घिरा हुआ है परन्तु भूतल पर जल के इस विशाल परत को मनुष्य ने अपनी सुविधा के अनुसार कई भागों में विभक्त कर लिया है। प्रत्येक भाग को महासागर कहते हैं और इनमें ५ बहुत विख्यात भाग प्रशान्त महासागर, आन्ध्र महासागर, हिन्द महासागर, आर्कटिक महासागर और अन्टार्कटिक महासागर के नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रशान्त महासागर सबसे बड़ा है और ऊँचे पर्वतों की एक पेटी से घिरा हुआ है। इस पर्वत माला के समीप समुद्रतल में लम्बी, गहरी और सँकरी घाटियाँ पाई जाती हैं। बाकी समुद्र का तल काफी गहरा और बहुत कुछ सम है। इसके मध्य, अनेक छोटे-छोटे द्वीप बिखरे हुए पाये जाते हैं। ये अधिकतर द्वीप मूँगे के हैं या ज्वालामुखी उद्‌गार के फलस्वरूप बन गये हैं।

प्रशान्त महासागर अमरीका के पश्चिमी किनारे को एशिया के पूर्वी तट और आस्ट्रेलिया से अलग करता है। इसका सबसे अधिक चौड़ा भाग भूमध्य रेखा पर है। यहाँ इसकी चौड़ाई १०,००० मील है। बेहरिंग जल संयोजक (जो इसे आर्कटिक सागर से मिलाता है) से लेकर अन्टार्कटिक वृत्त तक इसकी लम्बाई ९००० मील है। इस प्रकार संपूर्ण पृथ्वी के एक-तिहाई भाग में यह महासागर फैला हुआ है। परन्तु इसमें बहुत कम नदियाँ आकर गिरती हैं तथा इसका संबंध बहुत कम खाड़ियों व आन्तरिक समुद्रों से है।

आन्ध्र महासागर यूरोप और अफ्रीका को उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका से अलग करता है और अँग्रेजी वर्णमाला के S अक्षर के समान यह उत्तरी हिमसागर तक बिना किसी प्रतिबंध के फैला हुआ है। इसके पूर्वी और पश्चिमी तट बहुत कुछ समानान्तर रूप से स्थित हैं और इसकी चौड़ाई ३००० मील है। आर्कटिक से अन्टार्कटिक महासागर तक फैला हुआ यह पृथ्वी के १/५ भाग को ढके हुए है। इसके मध्य से एक पर्वत श्रेणी जाती है जिस पर २००० फैदम से कुछ ही कम जल रहता है। इस श्रेणी के दोनों ओर समुद्र अति गहरा है। इसमें द्वीपों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है।

आँध्र महासागर सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सन् १४९२ में अमरीका की खोज के बाद से अधिकतर व्यापार और गमनागमन इसी पर होता है। इसके किनारों पर संसार के सब से अधिक शक्तिशाली राष्ट्र बसे हुए हैं। इस महासागर के तट कटे-फटे हैं और उन में बहुत सी खाड़ियाँ पाई जाती हैं जिनमें अच्छे प्राकृतिक पोताश्रय पाये जाते हैं और संसार की सर्वप्रधान नदियाँ इसी में गिरती हैं।

हिन्द महासागर इन दोनों की अपेक्षा छोटा है, और तीन ओर से भूखंड द्वारा घिरा हुआ है। इसके उत्तर में एशिया, पश्चिम में अफ्रीका और पूर्व में आस्ट्रेलिया स्थित है। इसका क्षेत्रफल आँध्र महासागर का आधा है। परन्तु यह पुरानी दुनिया का केन्द्र है और लाल सागर, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी इसकी शाखायें हैं जो उत्तर में फैली है। स्वेज नहर द्वारा यह भूमध्य सागर और आन्ध्र महासागर के साथ संबंधित होता है।

आर्कटिक महासागर उत्तरी ध्रुव को घेरे हुए है। इसका अधिकतर भाग सदैव बर्फ से ढका रहता है। यह महासागर बहुत छिछला है और ग्रीनलैंड के दोनों ओर की खाड़ियाँ इसको प्रशान्त महासागर से संबंधित करती हैं।

अन्टार्कटिक महासागर अन्टार्कटिक वृत्त के भीतर अन्टार्कटिक प्रदेश को घेरे हुए है। यह सदैव बर्फ से घिरा रहता है परन्तु प्रशान्त, आन्ध्र और हिन्द महासागर के साथ इसका खुला संबंध है।

प्रत्येक महासागर को गहराई के अनुसार तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है— तटीय (Littoral) खुले सागरीय (Pelagic) और समुद्रतलीय (Abyssal) दूसरे शब्दों में इनको (१) महाद्वीपीय सागर (Continental Shelf)। (२) महाद्वीपीय ढाल (Continental Slope); (३) महासागरीय मैदान या तल जो २००० से ३००० फैदम की गहराई पर स्थित है और बहुत कुछ समतल है। (४) महासागरीय खड्ड (Deep) कह सकते हैं। महासागरीय का तल भी भूपटल के समान ऊँचा-नीचा है। कहीं उसमें ऊँची श्रेणियाँ हैं तो कहीं निम्न घाटियाँ। यह बात समुद्र तल की गहराई की विभिन्नता से स्पष्ट हो जाती है।

सतह पर महासागर का तापक्रम ऊपर की वायु की अपेक्षा कुछ अधिक रहता है। इस प्रकार विभिन्न अक्षांशों में विभिन्न तापक्रम मिलता है। भूमध्य रेखा पर ८०° है तो ध्रुवीय प्रदेशों में हिमांक से भी नीचे रहता है। परन्तु महासागरों का तापक्रम गहराई के अनुसार बदलता जाता है। जितनी अधिक गहराई में हम प्रवेश करते हैं तापक्रम उतना ही कम होता जाता है। २००० फैदम की गहराई के बाद प्रायः सभी जगह महासागरीय तापक्रम हिमांक से थोड़ा सा ही ऊपर रहता है। महासागर के जल का खारापन (Salinity) भी विभिन्न होती है।

Ocean Currents (महासागरीय धारायें) महासागर की सतह पर एक भाग से दूसरे भाग तक जल की गति से धारायें उत्पन्न हो जाती हैं। महासागर की सतह पर ये धारायें स्पष्ट मालूम पड़ती हैं और उनके किनारे भी साफ दिखाई देते हैं। इनकी गति २ मील से लेकर ६ मील प्रति घंटा तक होती है। इनकी गहराई और चौड़ाई भी विभिन्न होती है। ये धारायें सदैव नियमित रूप से एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होती रहती हैं।

इन धाराओं के उत्पन्न होने का प्रधान कारण सनातन हवाओं का चलना है परन्तु तापक्रम और खारेपन की विभिन्नता के अनुसार जल का घनत्व भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग-अलग होता है और घनत्व की विभिन्नता के कारण भी धारायें उत्पन्न हो जाती हैं। समुद्र में गर्म जल के

उठने से ऊपर की ओर आने वाली धारायें और ठंढे जल के बैठने के कारण नीचे की ओर आने वाली धारायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त समुद्र की पेंदी में जल की गतियों के कारण ज्वार-भाटे के कारण तथा वाष्पीभवन क्रिया में भेद होने के कारण स्थानीय धारायें भी बहने लगती हैं।

धाराओं के उत्पन्न हो जाने के बाद उनके प्रवाह की दिशा में बहुत से परिवर्तन हो जाते हैं। इसका प्रधान कारण तो पृथ्वी की दैनिक गति ही है। पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर अपनी धुरी पर घूमते रहने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में जलधारायें दाँयी ओर को मुड़ जाती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में बाँयी ओर को। फलतः महासागरीय धाराओं की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों के समान होती है और दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों के विपरीत दिशा में परिवर्तन के अन्य कारण स्थानीय व कम महत्व के हैं। तट रेखा की बनावट, जलमग्न चट्टानों और समुद्र की तली की बनावट भी इनकी दिशाओं पर असर डालती है।

प्रचलित हवाओं से उत्पन्न होने वाली धाराओं को प्रवाह धारा कहते हैं और नियम यह है कि पूर्व से प्रवाहित होने वाली वायु पश्चिम की ओर प्रवाहित होने वाली जलधारा उत्पन्न करेगी। इसका कारण यह है कि धाराओं का नाम उस दिशा के आधार पर पड़ता है जिस ओर को वे प्रवाहित होती हैं जब कि वायु का नाम इस दिशा पर पड़ता है जिधर से वे आती हैं। **आंध्र महासागर** में उत्तरी-पूर्वी व दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवाओं से उत्पन्न जलधारायें भूमध्य रेखा के समीप मिल कर भूमध्यरेखीय धारा को उत्पन्न करती है जो पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। ब्राजील के तट के समीप इसकी दो शाखायें हो जाती हैं और उत्तरी शाखा गल्फ स्ट्रीम के रूप संयुक्त राष्ट्र के पूर्वी तट के पास से होती हुई उत्तर की ओर बढ़ती है और न्यूफाउन्डलैण्ड के समीप ठंडी लैब्रेडर धारा से मिलती है और फिर पछुआँ हवाओं के साथ यूरोप की ओर बहती जाती है। यूरोप के समीप पहुँचने पर इसकी फिर दो शाखायें हो जाती हैं—एक तो उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के तट के समीप से होती हुई आर्कटिक सागर में चली जाती है। इसकी दक्षिणी शाखा उत्तरी-पश्चिमी अफ्रीका के तट के समीप चली जाती है परन्तु इसकी यह शाखा बैंगल जलधारा ठंडी होती है। दक्षिणी आन्ध्र महासागर की धारायें भी इसी प्रकार हैं। केवल भेद इतना ही है कि उनका बहाव घड़ी की सुइयों की विपरीत दिशा में होता है। **प्रशान्त महासागर** की जलधाराओं की व्यवस्था बहुत कुछ इसी प्रकार है। बेंगुला धारा के स्थान में पेरूवियन धारा है और गल्फ स्ट्रीम की जगह पर क्यूरोसीवो धारा है। यह धारा जापान के तट से होती हुई बहती है और कनाडा के तट को भी गरम रखती है। **हिन्द महासागर** के दक्षिणी भाग में सबसे प्रमुख धारा पश्चिमी आस्ट्रेलियन धारा है। उत्तरी भाग की धारायें मानसूनी हवाओं पर निर्भर रहती है।

तापमान की विभिन्नता से उत्पन्न धाराओं को संवाहन धारायें कहते हैं। भूमध्य रेखा के कटिबंध में जल गर्म होने के कारण गर्म धाराओं के रूप में समुद्र की सतह पर ध्रुवों की ओर बहने लगता है। ध्रुवीय प्रदेशों में पहुँचने पर यह ठंडा होकर नीचे बैठ जाता है और महासागर की तली पर ही नीचे-नीचे तल धारा के रूप में भूमध्य रेखा की ओर लौटता है। भूमध्यरेखा पर पहुँचने पर यह फिर सतह पर उठ आता है।

खारीपन की विभिन्नता के कारण उत्पन्न धारा का उदाहरण वह सतह धारा है जो आँध्र महासागर से भूमध्य सागर में प्रवेश करती है। कम जलवृष्टि, अधिक वाष्पीभवन और अन्दर आकर गिरने वाली नदियों की अधिक संख्या के कारण भूमध्य सागर का जल आन्ध्र महासागर की अपेक्षा बहुत अधिक खारा है। फलतः अपेक्षाकृत ताजे पानी की सतह धारा आन्ध्र महा-

सागर से भूमध्य सागर में प्रवेश करती है और उसके पूरा करने के लिए एक नमकीन तल धारा भूमध्य सागर से आन्ध्र महासागर को जाती है।

महासागर की ये धारायें गर्म व ठंडी होती हैं। जब कोई धारा किसी गर्म प्रदेश से शीतल प्रदेश की ओर बहती है तो वह गर्म धारा होती है। इसके विपरीत जब वह किसी शीतल प्रदेश से गर्म प्रदेश की ओर बहती है तो वह शीतल धारा होती है। परन्तु कोई भी गर्म धारा घूम कर और पूर्व दिशा को मुड़ कर शीतल धारा हो सकती है।

महासागरीय धाराओं का जलवायु पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में सर्दी का मौसम कम सर्द होने तथा उत्तरी सागर के कभी न जमने का प्रधान कारण गल्फ स्ट्रीम है। इसी प्रकार गर्म प्रदेशों में ठंडी जलधारायें गर्मी का मौसम सुहावना बना देती हैं। गर्म व ठंडी जलधारायें प्रवाहित वायु की आर्द्रता और उनके द्वारा होने वाली जलवृष्टि को भी प्रभावित करती हैं। जिस स्थान पर गर्म व शीतल जलधारायें आपस में मिलती हैं वहाँ कुहरा बहुत घना पड़ता है। न्यूफाउन्डलैंड के समीप गल्फ स्ट्रीम और लैब्रेडर धारा के मिलने से घना कुहरा छा जाता है और हिमशिरों के दृष्टिगोचर न होने से जहाजों को बड़ा भय रहता है। इसके अलावा शीतल तथा गर्म धारायें जब एक दूसरे से मिलती हैं तब इनके ऊपर की गर्म तथा शीतल हवायें भी आपस में मिलती हैं। इस कारण बड़े-बड़े तूफान आ जाया करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के पूर्वीय तट पर आने वाले हरीकेन और प्रशान्त महासागर के टाइफून इसी प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं।

Oceanography (**महासागर विज्ञान**) संसार के विभिन्न महासागरों की भौतिक दशाओं के अध्ययन को महासागर विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत जल का प्रभाव, जल की गतियाँ, उसका तापक्रम, गहराई तथा समुद्रीतल की बनावट और जीव-जन्तुओं, वनस्पति आदि का अध्ययन किया जाता है।

Ocean Port (**महासागरीय बन्दरगाह**) महासागरों के तटों पर स्थित बन्दरगाह को महासागरीय बन्दरगाह कहते हैं। पोताश्रय की प्रकृति तथा स्थिति के अनुसार इन्हें तीन प्रकार का कहा जा सकता है :—

(१) **खुले बन्दरगाह** जैसे बोलोन। ये प्रायः हीन दशा में ही रहते हैं। यहाँ न तो जहाजों के लिए सुरक्षित पोताश्रय, न पानी की पर्याप्त गहराई और न हवा और लहरों से बचाव का ही कोई प्रबन्ध होता है। बड़ी-बड़ी नदी-घाटियों के मुहाने पर स्थित न होने के कारण भीतरी भागों से संपर्क कम रहता है।

(२) **खाड़ी स्थित बन्दरगाह** जैसे बोस्टन। ऐसे स्थानों पर पोताश्रय सुरक्षित, सुविस्तृत और गहरे होते हैं तथा उनमें जहाजों के ठहरने के लिए काफी स्थान होता है।

(३) **नदी खाड़ी बन्दरगाह** जैसे शान्धाई। वे बन्दरगाह जो नदी के मुहाने तथा खाड़ी के तट पर स्थित होते हैं व्यापार की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होते हैं। उनमें विस्तृत व सुरक्षित लंगर स्थान भी मिल जाता है और घाटों व माल उतारने-चढ़ाने के लिए काफी जगह भी मिल जाती है। भीतरी भागों से संपर्क की भी सुविधायें रहती हैं।

Ocean Routes (**महासागरीय मार्ग**) यद्यपि जहाज समुद्रों पर सभी दिशाओं में आते-जाते हैं परन्तु उन्हें अधिकतर एक निश्चित रेखा व सिधाई में चलने में ही सुविधा रहती है। इन निश्चित रेखाओं को महासागरीय मार्ग कहते हैं।

महासागरीय मार्ग व्यापार पर निर्भर रहते हैं। जहाँ माल लादने को अधिक मिलता है जहाज वहीं जाता है। परन्तु इसके अलावा मार्ग निर्धारित करने में और भी बहुत सी बातों पर ध्यान देना पड़ता है। साधारणतया महासागरीय मार्ग विशालवृत मार्ग का अनुसरण

करते हैं क्योंकि दो स्थानों के बीच में वही सबसे छोटा रास्ता होता है। यही कारण है कि महासागरीय मार्ग उत्तर में उत्तरी ध्रुव की ओर और दक्षिण में दक्षिणी ध्रुव की ओर धनुष की तरह झुके रहते हैं। परन्तु बीच में स्थल खंड की उपस्थिति के कारण या कहीं-कहीं नदियों व बंदरगाहों के मोड़ में जम जाने के कारण इस लघुत्तम मार्ग को छोड़ना पड़ जाता है। प्रचलित हवाओं और प्रवाहित धाराओं का भी इन मार्गों पर असर पड़ता है। यही कारण है कि लिवरपूल से आस्ट्रेलिया जाने वाले जहाज अफ्रीका का चक्कर काट कर जाते हैं क्योंकि पछुआ हवायें उन्हें सहारा देती हैं परन्तु लौटती वक्त वे स्वेज नगर के मार्ग से आते हैं ताकि उन्हें पछुआ हवाओं का सामना न करना पड़े। लम्बे महासागरीय मार्गों में कोयला या तेल की उपलब्धता का भी ध्यान रक्खा जाता है।

संसार के सभी महासागरीय मार्ग पश्चिमी योरोप पर आकर समाप्त होते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि अपनी औद्योगिक प्रगति की वजह से संसार में सबसे अधिक कच्चे माल की खपत इसी भाग में होती है और यही भाग सबसे अधिक तैयार माल विदेशों को भेजता है। संसार के प्रमुख महासागरीय मार्ग निम्नलिखित हैं:—

(१) **उत्तरी अटलांटिक मार्ग** अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट को पश्चिमी यूरोप से मिलाता है। इसके दोनों तट समृद्ध हैं और दोनों किनारों पर महत्वपूर्ण बन्दरगाह तथा कोयले के भंडार हैं। इस पर सबसे अधिक व्यापार होता है। इसकी एक शाखा दक्षिणी अमरीका को जाती है।

(२) **भूमध्य सागर या स्वेज नहर का मार्ग** दूसरे स्थान पर आता है और इसके पश्चिमी किनारे दो हैं—पूर्वी संयुक्त राज्य और पश्चिमी यूरोप। यह मार्ग भारत होता हुआ एक ओर आस्ट्रेलिया और दूसरी ओर से होता हुआ जापान तक जाता है और अधिकतम जनसंख्या द्वारा काम में लाया जाता है।

(३) **प्रशान्त महासागर या पनामा नहर का मार्ग** पूर्वी एशिया और पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र के बीच व्यापार का मुख्य साधन हो गया है। इसकी एक शाखा एल्यूशियन द्वीपों से होकर और दूसरी हवाई द्वीप से होकर गुजरता है।

(४) **केप का जलमार्ग** पश्चिमी यूरोप को अफ्रीका के पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों से मिलाता है परन्तु इस पर व्यापार बहुत कम होता है।

(५) **वस्ट इंडिज और दक्षिणी अटलांटिक का मार्ग**—यह मार्ग वेस्ट इंडीज, ब्राजील तथा अर्जेन्टाइना को जाता है।

Ocean Transport (महासागरीय यातायात) आज से सैकड़ों वर्ष पहिले समुद्र पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भूभागों के बीच में एक बड़ी रुकावट के रूप में था परन्तु जहाजों के आविष्कार से इनको पार करना संभव हो गया। फलत: वर्तमान युग का समस्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इन्हीं जहाजों द्वारा महासागरों पर होता है। इसे महासागरीय यातायात कहते हैं।

महासागरीय यातायात के प्रधान साधन जहाज होते हैं और आजकल जहाजों का आकार बड़ा तथा चाल बहुत तेज कर दी गई हैं। इंजनों में सुधार कर के कम कोयला खर्च करने का प्रबन्ध किया गया है और अब तो तेल से चलने वाले जहाज भी बनने लगे हैं। जहाज दो प्रकार के होते हैं: (१) **ट्रैम्प जहाज** जिनका मार्ग व समय निश्चित नहीं होता। जहाँ माल मिल जाता है वहीं चले जाते हैं। संसार का अधिकतर व्यापार इन्हीं जहाजों द्वारा होता है। ये खाद्य पदार्थ और कच्चे माल को इधर से उधर ले जाते हैं।

(२) **लाइनर जहाज** बड़े होते हैं और एक निश्चित मार्ग से तथा निश्चित समय क्रम के

अनुसार चलते हैं। इनके द्वारा जल्दी खराब न होने वाला तथा कीमती माल भेजा जाता है।

महासागरीय यातायात द्वारा विभिन्न देश सम्पर्क में आते हैं और उनका विदेशी व्यापार विकसित होता है। महासागरीय यातायात थल की अपेक्षा सस्ता होता है और लम्बे समुद्री मार्गों का उपयोग किसी भी समय किया जा सकता है। समुद्री मार्ग सब दिशाओं में है, इस-लिए जहाज जहाँ आवश्यकता हो जा सकता है। फिर समुद्री जल प्रकृति का दिया हुआ मार्ग है जिस को बनाने में कुछ भी खर्चा नहीं आता। इसके अलावा महासागरीय यातायात सब देशों के लिये खुला है और प्रत्येक देश के जहाज समुद्र का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं। इन्हीं सुविधाओं के कारण प्रत्येक समृद्धिशाली देश व्यापारी जहाजों की संख्या बढ़ाने की कोशिश करता है।

Octoroon (उक्टूरून) क्वाडरून और गोरी जाति के लोगों के सम्पर्क से उत्पन्न सन्तान को उक्टूरून कहते हैं। इनमें अष्टमांश हब्शी खून रहता है। (देखिये Quadroon)

Offshore Bar (अनुतटीय बाधक श्रेणी) छिछले जल वाली तट भूमि पर लहरों की शक्ति किनारों तक पहुँचते-पहुँचते क्षीण हो जाती है और उनमें मिश्रित बालू, मिट्टी व कंकड़ आदि तट के पास ही जमा रह जाता है। धीरे-धीरे तट रेखा के समानान्तर लम्बे व सँकरे टीले बन जाते हैं जो जल के ऊपर उठे रहते हैं। यदि बालू, मिट्टी का बोझ अधिक हुआ तो तट के सामने लहरों के प्रवाह के दोनों तरफ एक दीवार या श्रेणी सी बन जाती है। इसे अनुतटीय बाधक श्रेणी कहते हैं और इसके तथा तट के बीच प्रायः लैगून पाई जाती है।

Offshore Benches (अनुतटीय पीठिकायें) जब लहरें तटरेखा को काट कर वापस होती हैं तो निक्षेप द्वारा प्रायः एक सीढ़ी सी बना देती है। इसे अनुतटीय पीठिकायें कहते हैं। इस अनुतटीय सीढ़ी पर पानी गहरा होता जाता है क्योंकि लहरें और धारायें चट्टानों को काट-काट कर धीरे-धीरे बहा ले जाती हैं। यदि लहरें काट-छाँट नहीं करतीं तो कालान्तर में अनुतटीय सीढ़ी इतनी चौड़ी हो जाती है कि इस पर स्थित छिछला जल लहरों की गति को धीमा कर देता है। इस प्रदेश से गुजरते समय तली के साथ रगड़ खाने से लहरों की शक्ति हीन हो जाती है और जब वे किनारे पर पहुँचती हैं तो उनमें काटने-छाँटने की शक्ति बिल्कुल ही नहीं रह जाती।

Offshore zone (अनुतटीय प्रदेश) तट के समीप के समुद्री प्रदेश को गहराई के अनुसार तीन भागों में बाँट सकते हैं। समुद्र तट तो वह है जो स्थल खंड की सीमा होती है। इस तट के करीब का छिछला जल प्रदेश तटरेखा प्रदेश कहलाता है और इससे आगे का प्रदेश जहाँ समुद्र का जल एकाएक गहरा हो जाता है, उसे अनुतटीय प्रदेश कहते ह। वास्तव में महाद्वीपीय ढाल (Continental Slope) इस अनुतटीय प्रदेश के स्थलखंड की ओर की सीमा बनाता है और लहरों के लौटने पर निक्षेप का क्षेत्र यहीं होता ह।

One Crop (एक फसल) जहाँ भूमि से साल के भीतर एक ही फसल उगाई जाती है उसे एक फसल खेती कहते है। (देखिये Monoculture)

Onion Weathering (छिलका उतारना)

(देखिये Exfoliation)

Oozes (ऊजस) महासागरों के गहरे तल पर पाये जाने वाले निक्षेप को ऊजस कहते हैं। यह गीले दलदल या कीचड़ की तरह होता है और गहरे जल में पाये जाने वाले जन्तुओं के अस्थिपिंजर के अवशेषों से बनता है। वास्तव में ऊज समुद्रतल के प्राणिज निक्षेप होते हैं। इनमें कई प्रकार के वे कीड़े भी सम्मिलित रहते हैं जो वैसे तो सतह के जल में पाये जाते

हैं परन्तु मरने पर तली में बैठ जाते हैं। इनके सूक्ष्म अस्थिपिंजर खड़िया मिट्टी के समान निक्षेप बनाते हैं। हवा द्वारा उड़ा कर लाई हुई ज्वालामुखी धूल भी इस निक्षेप में मिल जाती है और इसी कारण इनका रूप कीचड़ की तरह हो जाता है। जिस प्राणी की अधिकता या प्रधानता होती है उसी के नाम पर ऊज का नाम पड़ जाता है। विभिन्न महासागरों में पाए जाने वाले ऊज ४ प्रकार के होते हैं—पेट्रोपॉड ऊज, ग्लोब इजेरीना ऊज, डेटम ऊज और रेडियो लेरियन ऊज। (देखिये Petropod Ooze, Globigerina Ooze, Diatom Ooze, Radiolarian Ooze)

Opaco (ऑपैको) यह इटाली भाषा का पारिभाषिक शब्द है और सूर्य के प्रकाश से विमुख पर्वतीय ढाल के लिए प्रयुक्त किया जाता है। (देखिए Abret, Ubac)

Opposition (विपरीत स्थिति) पृथ्वी से देखने पर जब दो नक्षत्र या ग्रह एक-दूसरे के सामने स्थित दिखलाई पड़ें तो उनकी स्थिति को विपरीत स्थिति कहते हैं। दोनों ग्रहों की स्थिति इस प्रकार होती है कि उनकी देशान्तर रेखाओं के बीच १८० डिग्री का अन्तर रहता है। साधारणतया जब किसी ग्रह की स्थिति इस प्रकार होती है कि पृथ्वी पर से देखने पर उसकी दिशा सूर्य के विपरीत मालूम हो तो विपरीत स्थिति शब्द का प्रयोग करते हैं।

Orbit (ग्रहपथ) सौर मंडल का केन्द्र और उत्पत्ति स्थान सूर्य है और सभी ग्रह उसी की परिक्रमा करते हैं। सूर्य की आकर्षण शक्ति के कारण सभी ग्रह एक निश्चित मार्ग का अनुसरण करते हैं। जिसे ग्रह पथ कहते हैं। यह ग्रह पथ प्रायः अण्डाकार होता है।

Orbit of the Earth (पृथ्वी का ग्रहपथ) सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा का मार्ग ग्रहपथ कहलाता है। यह मार्ग गोलाकार तो जरूर है परन्तु पूर्ण वृत्ताकार नहीं है। इसका सही रूप अण्डाकार है। पृथ्वी इस मार्ग से इधर-उधर नहीं भटक सकती परन्तु और समयों की अपेक्षा वर्ष के एक भाग में पृथ्वी सूर्य के अति सन्निकट हो जाती है। इसे दक्षिणायन या समीपस्थिति कहते हैं। (देखिए Peribelion)

Ordnance Survey (सैनिक पैमाइश) सरकारी तौर पर इंगलैंड में किसी क्षेत्र की ठीक-ठीक और विस्तार से पैमाइश करने को सैनिक पैमाइश कहते हैं। इसका नाम सैनिक पैमाइश इसलिए पड़ गया कि पहिले पैमाइश का यह काम सैनिक या युद्ध कार्यालय द्वारा किया जाता था। सैनिक पैमाइश सन् १७९१ में शुरू हुई और इसके आधार पर पहला मानचित्र केन्ट और दक्षिणी एस्सेक्स का बना। इसका मानदंड १ इंच = १ मील था और चार ताव कागज पर यह सन् १८०१ में छापा गया। आजकल सभी राष्ट्रों में सैनिक पैमाइश का काम होता है और उसके द्वारा सपाट कागज पर देश के प्रदेशों को चित्रित किया जाता है।

Ordnance Map (सैनिक मानचित्र) सैनिक पैमाइश के आधार पर बनाये गये मानचित्र को सैनिक मानचित्र कहते हैं। इसका मानदंड १ इंच : १ मील होता है और ये प्रायः काले रंग या स्याही से ही बनाये जाते हैं। इसमें छायाकरण या रंगीन तहों का प्रयोग नहीं किया जाता है। भूमि की बनावट और ऊँचाई-निचाई दिखलाने के लिए समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं का प्रयोग किया जाता है और उन्हें प्रायः ५० फीट के अंतर पर खींचा जाता है। सांकेतिक चिन्हों द्वारा अन्य विशेषताओं को भी दिखलाया जाता है। इस नियमित विस्तार के मानचित्र के अतिरिक्त कुछ मानचित्र बहुत बड़े मानदण्ड पर बनाये जाते हैं और कुछ अत्यन्त छोटे मानदण्ड पर भी।

Ore (कच्ची धातु) बहुत से खनिज भूगर्भ में अनेक प्रकार की अन्य वस्तुओं के साथ मिले पाये जाते हैं। खनिज के इस संयुक्त रूप को कच्ची धातु कहते हैं। कच्ची धातु में वास्तविक या शुद्ध धातु का अंग अलग-अलग होता है और इसको तोड़ कर या गलाकर शुद्ध धातु को प्राप्त किया जाता है। कच्ची धातु का मूल्य उसमें शुद्ध खनिज तत्व के अंश और उससे खनिज प्राप्त करने की सहूलियत पर निर्भर रहता है।

Orogenesis (पर्वत निर्माण) धरातल के दायें-बायें या इधर-उधर खिसकने से चट्टानों की परतें या तो मुड़ कर घरेरेदार पर्वत व घाटियाँ बना लेती हैं या चटक कर उनमें दरारें पड़ जाती हैं तथा दरारों के बीच का भाग उठ जाने से भूभाग निर्मित पर्वत बन जाते हैं। भूपटल की इसी क्रिया को पर्वत निर्माण कहते हैं।

धरातल की चट्टानें या तो फैलती हैं या सिकुड़ती हैं और इन दोनों प्रकार के दबाव के कारण चट्टानें चटक कर ऊपर-नीचे को खसक जाती हैं, मुड़ जाती हैं या टूट कर उलट जाती हैं। इसी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पर्वत निर्माण हो जाता है।

Orogenic Forces (पर्वत निर्माणकारी शक्तियाँ) भूगर्भ की जिन शक्तियों के कारण धरातल का सीमित भाग दायीं या बायीं तरफ खिसकता है और जिनके कारण चट्टानें चटक कर, मुड़ कर या टूट कर अलग इस प्रकार हो जाती हैं कि तरह-तरह के पर्वतों का निर्माण हो जाता है, उन्हें पर्वत निर्माणकारी शक्तियाँ कहते हैं। वास्तव में पर्वत निर्माणकारी शक्तियाँ सीमित भूभाग पर इधर-उधर से समानान्तर दबाव डालती हैं और इस समानान्तर दबाव के प्रभाव से दो प्रकार की हलचलें उत्पन्न हो जाती हैं——

(१) **तनाव या खिचाव** से चट्टानों में प्रसार होता है, वे फैलती हैं और फलस्वरूप चटख जाती हैं। कभी-कभी तनाव इतना अधिक व आकस्मिक होता है कि चट्टानों में दरारें पड़ जाती हैं और इन दरारों के कारण कई प्रकार के स्थल रूप बन जाते हैं। कहीं पर भूभाग निर्मित पर्वत बन जाते हैं तो कहीं दरार घाटियाँ।

(२) **भिचाव या अन्दर को दबाव** से चट्टानें सिकुड़ती हैं, और उनमें घरेरे या मोड़ पड़ जाते हैं। फलस्वरूप उच्चश्रृंग और नतोदर घाटियों का क्रम बन जाता है। मोड़दार पर्वत श्रेणियाँ इसी हलचल के कारण बन जाती हैं। जब भिचाव अधिक व आकस्मिक होता है तो चट्टानी परत पर अनेकों प्रकार के मोड़ पड़ जाते हैं और कभी-कभी चट्टानें टूट कर उलट भी जाती हैं। कभी-कभी जरा सी जगह में इस प्रकार मोड़ पड़ जाते हैं कि संपूर्ण प्रदेश की बनावट पंखे के समान हो जाती है।

वास्तव में ये दोनों प्रकार की हलचलें एक-दूसरे से संबंधित हैं। यदि धरातल पर एक स्थान में तनाव उत्पन्न होती है तो स्वभावतः दूसरे स्थान पर भिचाव पड़ेगा।

Orogenic Stage (पर्वत निर्माण अवस्था) संसार की प्रमुख श्रेणियाँ सभी मोड़-दार हैं। मोड़दार पर्वत निर्माण की तीन अवस्थायें हैं। सर्वप्रथम तो वह जब संसार के किसी बड़े गर्त में विविध प्रकार के निक्षेप होते रहते हैं और दूसरी अवस्था वह है जब निक्षेप की गई सामग्री के स्तर में मुड़ाव पड़ता है और पर्वत बन जाते हैं। इस दूसरी अवस्था को पर्वत निर्माणकारी अवस्था कहते हैं। (देखिये Orogenesis, Orogenic Forces)

Orography (भू प्रकृति) (१) पृथ्वी के धरातल या उसके कुछ भाग पर स्थलखंड की बनावट तथा उसकी विशेषताओं के वर्णन को भूप्रकृति कहते हैं।

(२) किसी मानचित्र पर पृथ्वी के धरातल की ऊँचाई-निचाई, पर्वतों, घाटियों आदि को दिखलाना भूप्रकृति कहलाता है।

Orographic Rain (पर्वतीय वर्षा) भाप से लदी हुई हवाओं के मार्ग में जब कोई पर्वत श्रेणी आ जाती है तो उसे ऊपर चढ़ना पड़ता है। ऊपर चढ़ने पर वायु फैलती हैं और शीतल हो जाती है। फलतः वर्षा होने लगती है। इस प्रकार की वर्षा को पर्वतीय वर्षा कहते हैं। पर्याप्त वर्षा के लिए इक्का-दुक्का चोटियों की अपेक्षा विशाल पर्वत श्रेणियाँ विशेष प्रभावशाली होती हैं। पर्वतीय वर्षा के लिए पर्वत श्रेणियों का हवा के रुख पर लम्बरूप स्थित होना बहुत ही आवश्यक है। सच तो यह है कि जब हवा के रुख में आरपार सामने को कोई पर्वत श्रेणी होगी तभी हवा ऊपर चढ़ने के लिए बाधित होगी। दूसरी बात यह है कि पर्वत श्रेणी को काफी ऊँचा होना चाहिये ताकि हवा इतने ऊपर उठ सके जहाँ द्रवीभवन शुरू हो जाये। शुद्ध शुष्क हवा का तापक्रम प्रत्येक १०० मीटर ऊपर उठने पर १ डिग्री सेन्टीग्रेड कम हो जाता है परन्तु चूँकि हवा शुष्क बहुत कम होती है। इसलिए औसतन तापक्रम ६ डिग्री सेन्टीग्रेड की दर से कम होता है।

पर्वतीय वर्षा प्रचलित हवाओं से होती है और साल के किसी मौसम में भी हो सकती है परन्तु अन्य समयों की अपेक्षा गर्मी में पर्वतीय वर्षा की मात्रा अधिक होती है। दूसरी विशेष बात यह है कि पर्वतीय भागों में स्थित प्रदेशों को लगातार अधिक वर्षा प्राप्त होती है और इन के करीब में निम्न भूमि पर स्थित स्थानों में अपेक्षाकृत बहुत कम वर्षा होती है। वास्तव में वर्षा हवा के रुख के सामने वाले ढालों पर सबसे अधिक होती है और इसे पवनाभिमुख भाग कहते हैं। जब हवायें पर्वतों के दूसरी ओर पहुँचती हैं तो उनको नीचे उतरना पड़ता है। फलतः गर्म व शुष्क होकर हवायें वर्षा नहीं कर पाती और पवनविमुख यह भाग वर्षा के बिना रह जाता है। इसे वृष्टि छाया कहते हैं।

Orthographic Projection (आर्थोग्राफिक अंकन) जब ग्लोब के किसी बिन्दु पर सपाट कागज छूता हुआ रख कर किसी बहुत दूर स्थित स्थान से प्रकाश फेंका जाय तो इस के द्वारा प्राप्त अक्षांश व देशान्तर रेखाओं के जाल को आर्थोग्राफिक अंकन कहते हैं। इस प्रकार के अंकन में केवल एक गोलार्द्ध ही चित्रित होता है और फेंकी हुई प्रकाश किरण एक दूसरे के समानान्तर तथा सपाट कागज पर लम्बरूप गिरती है। इसके किनारों पर आकार व विस्तार छोटा हो जाता है और इसके विपरीत केन्द्र में विस्तार काफी बढ़ जाता है। फलतः इस प्रकार के अंकन में दिशायें, दूरी आकार और क्षेत्रफल सभी कुछ विकृत हो जाता है।

यह जेनीथल अंकन का ही एक प्रकार है और इसका भौगोलिक दृष्टिकोण से कोई भी मूल्य नहीं है। बहुधा इस पर आकाशमंडल के चित्र खींचे जाते हैं।

Orthomorphic Projection (समाकार अंकन) जिस अंकन में अक्षांश और देशान्तर रेखाओं का जाल इस प्रकार बनाया जाता है कि उस पर चित्रित क्षेत्र का आकार बिल्कुल ठीक बना रहे, उसे समाकार अंकन कहते हैं।

वास्तव में किसी विस्तृत क्षेत्र के आकार को ठीक-ठीक रखवाना बड़ा ही कठिन होता है। इसलिए समाकार अंकन पर केवल छोटे विस्तार के प्रदेशों का आकार ही दुरुस्त रह जाता है। इसका कारण यह है कि सपाट सतह पर गोलाकार प्रदेश के बिन्दुओं को अंकित करने में कुछ न कुछ अन्तर जरूर आ जाता है। केवल ग्लोब के कुछ ही विन्दु ठीक आकार को कायम रखते हुए सपाट सतह पर अंकित किये जा सकते हैं। इसलिए समाकार गुण को लाने के लिए साधारण अंकन विधि में कुछ हेरफेर करना पड़ता है।

हर स्थान पर मानदण्ड को बदलते जाते हैं और इस प्रकार किसी एक विन्दु पर हर दिशा में मानदण्ड ठीक हो जाता है। ग्लोब में अक्षांश व देशान्तर रेखायें एक दूसरे को

समकोण पर काटती है। अंकन को समाकार बनाने के लिए विभिन्न तरीकों से माल इस प्रकार बनाया जाता है कि अक्षांश व देशान्तर रखायें आपस में समकोण बनायें।

Out Crop (तलागत शैल) चट्टान की परत का वह भाग जो पृथ्वी के धरातल के ऊपर उभड़ा हुआ रहता है और जिसे स्पष्टतया देखा जा सकता है उसे तलागत शैल कहते हैं।

Outlier (आउट लायर) जब अपेक्षाकृत नवीन चट्टानों को घेरे हुए पुरानी चट्टानें स्थित हों तो इस प्रकार की बनावट को आउट लायर कहते हैं।

Outwash Plain (हिमजल द्वारा निर्मित मैदान) हिम नदी की सतह पर से पिघल-पिघल कर आने वाला जल हिमकूप द्वारा उसकी तली में पहुँचता है और वहाँ सुरंग बनाकर बहने लगता है। इस प्रकार की जल धारायें हिम नदी के अन्तिम सिरे पर पिघलने वाले हिम द्वारा और भी बड़ी हो जाती हैं। इनका जल गंदला होता है और उसमें चट्टानों का चूरचार व शिलाखंड मिले रहते हैं। हिम नदी के किनारे पर पहुँचने पर यह अपने बोझ का कुछ अंश जमा कर देती है क्योंकि इसका प्रवाह धीमा पड़ जाता है। इस प्रकार के निक्षेप बहुत दूर-दूर तक हो जाते हैं और उनमें बालू तथा कंकड़ों की अधिकता रहती है। मोटा बालू और बड़े-बड़े शिलाखंड तो किनारे पर ही या हिम नदी के अंतिम सिरे पर ही जमे रह जाते हैं। इनके ऊपर से होकर ये जलधारायें साँप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी लहरदार नालियों में बहती चली जाती हैं और अपने साथ बहाकर लाई हुई महीन मिट्टी व बालू को दूर-दूर तक फैला देती हैं। इस प्रकार के मैदानों को हिम जल निर्मित मैदान कहते हैं। इनमें बालू मिट्टी के साथ बड़े-बड़े कंकड़ इधर-उधर बिखरे हुए पाये जाते हैं। पहले बड़े-बड़े शिलाखंड और फिर बड़े और छोटे रोड़े और फिर बालू आदि जमा होते हैं।

हिमजल निर्मित मैदान प्रायः चौरस व सपाट होते हैं और अन्तिम मोरेन के साथ बहुधा पाये जाते हैं। इनके बीच-बीच में गोल गड्ढे पाये जाते हैं और खेती के लिये बहुत उपयुक्त नहीं होते। कहीं पर इनकी भूमि पथरीली तो कहीं पर बलुही होती है। चूँकि इनके भीतर पानी बहुत जल्दी सोख जाता है इसलिए इनकी ऊपरी सतह शुष्क पड़ी रहती है।

Overfold (उलटा हुआ मोड़) जब भिंचाव अधिक होता है और चट्टान अधिक कठोर नहीं होती तो परत में इतना अधिक मोड़ पड़ जाता है कि दोनों पार्श्व एक ही दिशा में लेट से जाते हैं। ऊपर के श्रृंग को छोड़ कर केन्द्ररेखा या धुरी के दोनों ओर झुकाव एक ही दिशा में रहता है। इस प्रकार के मोड़ को उलटा हुआ मोड़ कहते हैं।

Oxbow Lake (धनुषाकार झील) नदियाँ जब समतल भूमि पर बहती हैं तो उनका मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है और उनके मार्ग में घुमाव पड़ जाते हैं। घुमाव के कारण नदी नतोदर भाग में तो काटती जाती है परन्तु दो नतोदर भागों के बीच के उन्नतोदार घुमाव पर निक्षेप होता रहता है। इस प्रकार जब कोई घुमाव पूर्ण वृत्त के समान बन जाता है तो बाढ़ के समय घुमाव के दोनों सिरों के बीच का स्थल कट जाता है और नदी घुमाव को छोड़कर सीधी बहने लगती है। इस परित्यक्त घुमाव के मुँह पर धीरे-धीरे मिट्टी, बालू इकट्ठा होती रहती है और घुमाव वाली शाखा कट कर झील के रूप में अलग रह जाती है। इस प्रकार से बनी झील को धनुषाकार झील कहते हैं। इस प्रकार की धनुषाकार झीलें मिसीसिपी नदी के दोनों तटों पर पाई जाती हैं। वहाँ इन्हें ब्यायू कहते हैं। धनुषाकार झीलें घुमाव के बढ़ जाने से बन
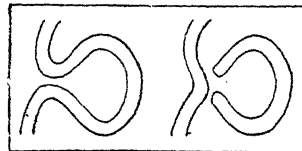
धनुषाकार झील

जाती हैं और इसीलिए नदी के बाद के मैदान में बहुत बिखरी पाई जाती हैं। इनके किनारे बहुत अधिक ऊँचे नहीं होते और प्रत्येक वर्ष बाद के दिनों में इन्हें नदियाँ जल से भर देती हैं। (देखिये Meander)

Oxygen (**आक्सीजन**) वायुमंडल की दूसरी महत्वपूर्ण गैस आक्सीजन है। शुष्क वायु में इसका अंश १२ प्रतिशत होता है। तत्व के रूप में भी यह बहुत फैले हुए रूप में पाया जाता है। जल में ८/९ हिस्सा इसी का होता है और भूपटल की सभी चट्टानों के भार का करीब-करीब आधा भाग आक्सीजन तत्व ही का होता है। मनुष्यों और पशुओं के दृष्टिकोण से इस गैस का विशेष महत्व है। वास्तव में इसी गैस को साँस द्वारा खींच कर जीते हैं। शरीर के अन्दर पहुँचने पर यह कारबन से मिलता है और बाहर फेंकी हुई साँस में कारबन डाई आक्साइड मिला रहता है।

Pack Ice (**हिम पैक**) जब कहीं का हिम आवरण लहरों और हवाओं द्वारा विखंडित हो जाता है तो उसके टूटे हुए खंड समुद्र के सतह पर बहने लगते हैं। यह टुकड़े हिम फलों की अपेक्षा कहीं अधिक बड़े व गहरे होते हैं। इन्हें हिम पैक कहते हैं। इनके दो भेद होते हैं—

(१) **संघठित पैक**—जिसमें विभिन्न खंड आपस में मिले रहते हैं। और

(२) **खुला हुआ पैक**—जिसमें विभिन्न खंड अलग-अलग रहते हैं। इस प्रकार के हिम पैक प्रायः गर्म मौसम में धीरे-धीरे पिघल कर बिल्कुल गायब हो जाते हैं।

Pahoehoe (**पाहो हो**) लहरदार या रस्सी की तरह उमठा हुआ लावा हवाई द्वीप में पाहो हो कहलाता है। (देखिये Ropy Lava)

Paint Pot (**रंग का बर्त्तन**) पंक ज्वालामुखी को कई रंग के होने के कारण कभी-कभी रंग का बर्त्तन भी कहते हैं। (देखिये Mud Volcano)

Palaeo Geography (**कल्प इतिहास संबंधी भूगोल**) पृथ्वी के इतिहास के प्रारंभिक युगों में जल-थल वितरण से संबंधित तथ्यों के अध्ययन को कल्प इतिहास संबंधी भूगोल कहते हैं।

Paleontology (**जीव अवशेष विज्ञान**) विभिन्न युगों में संसार के जीव-जन्तुओं तथा वनस्पति का विकास होता रहा है और उनके अवशेषांश उन युगों की परतदार चट्टानों के बीच में दबे पाये जाते हैं। इनमें से अधिकतर जातियाँ अब बिल्कुल ही नहीं पाई जातीं और इनके आधार पर पृथ्वी की वनस्पति व जीव-जन्तुओं के विकास का ज्ञान होता है।

इस प्रकार विभिन्न चट्टानें पृथ्वी के इतिहास के पृष्ठ हैं। इन चट्टानों की परतें जैसे-जैसे जमती जाती थी, उस समय के पौधे या मरे हुए जीव समुद्र की तलछट में दबते जाते थे। इनमें अधिकतर नर्म भाग तो सड़-गल कर खतम हो गये परन्तु जानवरों की हड्डियाँ, उनके कड़े खोल, पौधों की कड़ी छालें, कड़ी लकड़ी, पत्तियों के पंजर और बीज आदि दब कर पथरा गये और सुरक्षित मिलते हैं।

जीव अवशेष विज्ञान के अन्तर्गत पहले तो पौधों के अवशेषों का भी अध्ययन किया जाता था परन्तु अब इसके अन्तर्गत केवल जीव-जन्तुओं के अवशेषों को ही लेते हैं। पौधों के अवशेष के अध्ययन को वनस्पति अवशेष विज्ञान कहते हैं।

Palaeozoic Era (**प्रारंभिक कल्प**) पृथ्वी के इतिहास को ५ कल्पों में विभा-

जित किया जाता है और प्राचीन कल्प उसमें दूसरा है। यह वह युग था जब सबसे पहिले जीव-जन्तु व वनस्पति का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग में होने वाले जीव-जन्तुओं में रीढ़ की हड्डी का अभाव था और वनस्पति भी प्रधानतया काई व ऐसे ही फूल आदि थे। बहुत दिनों तक तो केवल मछलियाँ ही पायी जाती रहीं परन्तु बाद में जल थल दोनों पर रहने वाले जीव-जन्तु उत्पन्न हुए और अन्त में सर्प आदि भी उत्पन्न हो गये।

इस कल्प के विभिन्न युगों में स्थल पर समुद्र का आक्रमण हुआ और फलस्वरूप परतदार चट्टानें बनने लगीं। सबसे प्राचीन परतदार चट्टानें जिनके बीच अवशेष मिलते हैं, इसी युग की हैं। इन चट्टानों में महत्वपूर्ण धातुओं की खानें बहुतायत से पायी जाती हैं।

कैम्ब्रियन युग की चट्टानों में सोना बहुतायत से मिलता है। इन्हीं चट्टानों में तेल तथा गैस पाई जाती है। जिस जगह पर परिवर्तित तथा आग्नेय चट्टानों का मेल होता है वहाँ टीन, लोहा तथा ताँबा अधिक पाया जाता है। कारबोनीफेरस युग की चट्टानों में कोयले की खानें पाई जाती हैं। कारबोनीफेरस युग में भूमि भाग घने जंगलों से ढका था, जो बाद में भूमि में दब गये और कोयले के रूप में बदल गये। इस युग में सारे संसार में कोयला बना। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस युग में वर्षा बहुत होती थी और गर्मी भी बहुत अधिक थी। अतः दलदली स्थानों पर घने जंगल खड़े हो गये। ये जंगल झील या समुद्र के आक्रमण से पानी में डूब गये। उनमें निक्षेप के कारण चट्टानें बनी और फिर जंगल उगे और फिर समुद्र के नीचे दबे। इस प्रकार के क्रम से लाखों वर्षों के भीतर ऊपर के दबाव से अन्दर ही अन्दर कठोर पड़ कर कोयले की अनेक परतें बन गई। सी युग में जल और स्थल दोनों पर चलने वाले जीवों का प्रादुर्भाव हुआ। इस कल्प का यह सबसे महत्वपूर्ण युग है।

कारबोनीफेरस युग के पहले डेवोनियन युग में और उसके बाद परमियन युग में पर्वत निर्माणकारी हलचल हुई। डेवोनियन युग की पर्वत निर्माणकारी हलचल को कैलेडोनियन हलचल कहते हैं। इसके फलस्वरूप स्केण्डिनेविया से ब्रिटेन तक और ग्रीनलैंड के पर्वतों का निर्माण हुआ। इनमें लाल बलुई पत्थर की प्रधानता है। पारमियन युग में जो पर्वत निर्माण-कारी हलचल हुई उसे हरसीनियन हलचल कहते हैं जिसके फलस्वरूप मध्य यूरोप, उत्तरी अमरीका आदि में पर्वत बन गये। इस युग की चट्टानों में नमक प्रायः खूब मिलता है।

Pampas (पैम्पास) दक्षिणी अमरीका में प्लेट नदी के खुले मुहाने के चारों ओर स्थित शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान को पैम्पास कहते हैं। ये पैम्पास एन्डीज पर्वत-माला से आन्ध्र महासागर तक फैले हुये हैं। युरुगवे तथा अर्जेंटाइना राज्यों में नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बने निम्न मैदानों में फैले पैम्पास घास क्षेत्र विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनकी प्राकृतिक व जलवायु संबंधी विशेषतायें तो प्रायः वहाँ हैं जो उत्तरी अमरीका के प्रेरीज, रूस के स्टेपी प्रदेश और दक्षिणी अफ्रीका के वेल्ड प्रदेश में मिलता है। यहाँ की औसत वार्षिक बर्षा १० से ३० इंच तक होती है। वसन्त ऋतु की हल्की वर्षा घास को उगाने में बड़ी सहायक होती है और गर्मी की बर्षा से काफी बड़ी हो जाती है। परन्तु भीषण गर्मी और कठोर जाड़े से घास को हानि पहुँचती है। वसन्त में भूमि हरीभरी रहती है, गरमियों में घास जल जाती है और जाड़ों में वहाँ बरफ गिरती है।

पैम्पास के पश्चिमी और दक्षिणी भाग में वर्षा बराबर कम होती जाती है। फलतः पश्चिम और दक्षिण की ओर बढ़ने पर घास मोटी होती जाती है और फिर झाड़-झंखाड़ प्रदेश में परिवर्तित होती हुई रेगिस्तान की सी दशायें बन जाती हैं। पूर्वी भाग की घास लंबी होती है और उसे पम्पास घास कहते हैं।

इस प्रदेश के आदि निवासी खानाबदोश लोग हैं जो इन घास के मैदानों पर अपने पशुओं व भेड़ों के साथ फिरा करते हैं। आजकल वैसे तो संपूर्ण प्रदेश में विशेषतया प्लेट नदी के मुहाने के चारों ओर लोग स्थायी जीवन व्यतीत करते हैं और भूमि को विकसित किया जा रहा है। इस परिवर्तन का श्रेय रेलमार्ग के निर्माण और शीत भंडार रीति को है। पूर्वी भाग में गेहूं, मक्का, सन और अल्फाल्फा की खेती की जाती है। परन्तु अन्य प्रदेशों में पशु व भेड़ चराने के विस्तृत चरागाह हैं। अर्जेन्टाइना में इसका दक्षिणी भाग रेगिस्तान है जिसे पैंटागोनिया कहते हैं। अतः वहाँ की छोटी घास पर भेड़ें, शुतुरमुर्ग (रिहा) और ग्वानको को चराया जाता है। पैम्पास के पशुचारण व्यवसाय से ठंढा किया हुआ व जमाया हुआ गाय, बैल और भेड़ का गोश्त, गोश्त से निकाली हुई वस्तुयें, टीन के डिब्बों में बन्द किया गया गोश्त और चीजों को प्राप्त किया जाता है और नवीन वैज्ञानिक तरीकों से यह इतना तरक्की कर गया है कि ये ही वस्तुयें यहाँ से प्रधानतः निर्यात की जाती हैं।

Pampero (पैंमपरो) अर्जेंटाइना और युरूगवे के पैम्पास प्रदेश में जब कभी कोई चक्रवात गुजरता है तो उसके बाद ठंडी ध्रुवीय वायु का जो भीषण झोंका आता है उसे पैंपरो कहते हैं। यह दक्षिण से पश्चिम की ओर बहता है और इसके चलने पर आँधी की सी दशायें उत्पन्न होती जाती हैं। बादल छा जाते हैं और कभी-कभी गरज और बिजली की चमक के साथ वर्षा भी होती है। इसके चलने पर पैम्पास की धूल बह जाती है। जैसे यह तूफान गुजरता है तापक्रम काफी निम्न हो जाता है।

पैमपरो वायु गर्मी के मौसम में बहुत चलती है और इसे आस्ट्रेलिया के सदरली बरस्टर के समान कहा जा सकता है।

Pancake Ice (हिम पपड़) ध्रुवीय प्रदेशों के समुद्र का जल जब जमना शुरू करता है तो उसकी सतह पर हिम की पतली व छोटी-छोटी टिकिया सी पड़ जाती है। इसे हिम पपड़ कहते हैं।

Pantograph (पैन्टोग्राफ) मानचित्र या उसके किसी भाग के मानदण्ड को बदलने में सहायक यंत्र को पैन्टोग्राफ कहते हैं। इसके द्वारा किसी मानचित्र के मानदण्ड को घटाया-बढ़ाया जा सकता है और मानचित्र को छोटा या बड़ा किया जा सकता है।

Papagayo (पैपागयो) मैक्सिको के पठार पर से होकर बहने वाली ठंढी उत्तरी वायु को पैपागयो कहते हैं। यह संयुक्त राष्ट्र अमरीका की नार्दर्न वायु का ही एक अंश होती है और इसकी तुलना तटीय प्रदेश की नार्टे वायु से की जा सकती है।

Parallels (समानान्तर रेखायें) (देखिये Latitude)

Parallel Ranges (समानान्तर श्रेणी) दवाव या भिंचाव के कारण जब चट्टानों के स्तर पर झुर्रियाँ व धनुषाकार मोड़ पड़ जाते हैं और कहीं-कहीं पर चटख कर तथा कहीं पर मुड़ कर पर्वत बन जाते हैं। इस प्रकार के पर्वत प्रदेश में आवरण क्षय कहीं तो कम और कहीं ज्यादा होता है। इस अवरणक्षय भिन्नता के कारण पहाड़ी प्रदेश में एक दूसरे के समानान्तर श्रेणियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार की बनावट या व्यवस्था में घाटियाँ पहाड़ी श्रेणियों के समानान्तर होती हैं और दो पर्वतीय श्रेणियों के बीच बनी निम्न तलैटी में ही घाटी बन जाती है। राकीज, एन्डीज और हिमाचल पर्वत प्रदेश श्रेणी सी प्रकार की पर्वत श्रेणियों से मिल कर बने हैं जिन्हें ऊँचाई व स्थिति के अनुसार बाहरी, मध्यवर्ती व भीतरी श्रेणियाँ कहते हैं।

Paramos (पैरामॉस) दक्षिणी अमरीका एन्डीस पर्वत के पूना (Puna) से और भी अधिक ऊँचाई पर फैले हुये अति शीत व बन्जर लाके को पैरामास कहते हैं।

य प्रदेश पना से लेकर हिमरेखा तक फैले रहते हैं और इसमें कभी-कभी हिम नदियाँ प्रवाहित होने लगती हैं। यद्यपि मरक्षित व ढके हुए स्थलों में फल के पौधे उगते हैं परन्तु अधिकतर प्रदेश में वनस्पति बड़ी ही छोटी किस्म की पाई जाती है। यहाँ पर टुन्ड्रा प्रदेश की तरह काई व लिचन ही अधिकतर उगती हुई पायी जाती है।

Parasitic Cone (आश्रित शंकु) लावा और ज्वालामुखी राख से मिल कर बने ज्वालामुखी शंकु बहुत कठोर नहीं होते। कभी-कभी ज्वालामुखी उद्गार होने पर उनके पार्श्व की दीवारों में दरारें पड़ जाती हैं और उन दरारों से निकलने वाली सामग्री के निक्षेप से एक छोटा राख शंकु बन जाता है। इसे आश्रित शंकु कहते हैं। प्रत्येक नये शंकु से जिसे बौका कहते हैं लावा की धारा बहने लगती है और इसकी अपेक्षाकृत सँकरी धारा ढाल पर से होती हुई कुछ दूर तक फैल जाती है।

Paraselene (पेरासीलीन) देखिये (Mock Moon)

Parhelion (पारहीलियन) देखिये (Mock Sun)

Partial Drought (सापेक्षिक वृष्टिहीनता) ब्रिटिश द्वीप समूह में जब लगातार कई दिनों तक दैनिक वर्षा का मध्यम मान ·०१ इंच से कम ही रहता है तो उस काल को सापेक्षिक वृष्टिहीनता कहते हैं। सामान्यतः यह काल कम से कम २९ दिन का होता है। इस पारिभाषिक शब्द को ग्रेट ब्रिटेन के अलावा अन्य कहीं भी नहीं माना जाता।

Pass (दर्रा) किसी पर्वतीय रुकावट के बीच में किसी प्रकार का खुला हिस्सा जो नीचा हो और जिसके आरपार जाया जा सके उसे दर्रा कहते हैं। पर्वतों के आरपार जाने-आने के लिए दर्रे का बहुत महत्व होता है। बसे हुए प्रदेशों के बीच की सड़कें इन्हीं दर्रों से होकर गुजरती हैं।

दर्रा आवरण क्षय के कारण बन जाता है। जब किसी पर्वत श्रेणी के दोनों ओर दो नदियाँ या दो हिम नदियाँ बहुत करीब से निकल कर विपरीत दिशाओं में बहती हैं तो उनके द्वारा किये गये आवरण क्षय से बड़े-बड़े नतोदर गड्ढे बन जाते हैं और धीरे-धीरे बीच की श्रेणी के भंग हो जाने पर घोड़े की काठी की तरह की तलैटियाँ या दर्रे बन जाते हैं। पर्वत के दोनों ओर से तीव्र ढालू घाटियाँ आकर मिलती हैं और नके किनारे पर पर्वतीय चोटियाँ रहती हैं। इसलिए इनका आकार बिल्कुल घोड़े की काठी जैसा ही लगने लगता है।

ये दर्रे पर्वतीय प्रदेश में विभिन्न ऊँचाई पर ोते हैं और बनावट के अनुसार कहीं सँकरे व छोटे होते हैं तो कहीं चौड़े व नीचे। इनकी उपादेयता इनके दोनों तरफ पड़ने वाले प्रदेशों की आर्थिक उन्नति, देशीय व सीमान्त व्यापार तथा इस बात पर है कि साल के कितने महीने ये बर्फ से खुले रहते हैं। दर्रे न केवल सांस्कृतिक व व्यापारिक संपर्क में ही सहायक होते हैं बल्कि युद्धकाल में इनका विशेष महत्व होता है।

Pastoral Farming (पशुचारण व्यवसाय) आर्थिक लाभ के लिए चरनेवाले पशुओं को पालना पशुचारण व्यवसाय कहलाता है। विशेषतया मनुष्य गाय, बैल, सुअर, भेड़ और बकरी को पालता है। इनके द्वारा मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता है। इनसे उसे भोजन, वस्त्र और आश्रय के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। टुन्ड्रा प्रदेश के लोग रेनडीयर या बारहसिंघे से अधिकतर वस्तुयें प्राप्त करते हैं और रेगिस्तान निवासी भेड़ बकरी पर निर्भर रहते हैं।

वास्तव में पशुचारण व्यवसाय के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन कार के पशुओं का विशेष महत्व है—

(१) **गाय, बैल, भैंस** के ऊपर दो प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन निर्भर रहता है। एक

तो दूध जिससे मक्खन और पनीर बनाते हैं और दूसरे मास जिसे ठंडा करके या सुखा कर बाहर भेजते हैं। गाय की नस्लों को सुधार कर उनसे अधिक दूध उत्पन्न किया जाता है। गायों को पालने तथा उनको खिलाने के तरीके में बहुत सुधार किये गये हैं। विज्ञान के प्रभाव से दूध, मक्खन और पनीर को अधिक अच्छे ढंग से बनाया जा सकता है और उसे अधिक समय तक सुरक्षित रख कर दूर-दूर तक भेजा जा सकता है। जहाँ भूमि यथेष्ट परन्तु आबादी कम है वहाँ मांस का धंधा होता है और मांस बनाने के कारखाने में गाय बैल केप्रत्येक अंग का—हड्डी, खाल, बाल, खुर, सींग, आँतें, चर्बी और खून उपयोग कर लिया जाता है। परंतु दूध देने वाले पशु मांस के लिये और मांस वाले पशु दूध के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं। घने बसे हुए देशों में मिश्र कृषि के साथ और शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों में पशु-चारण विशेष होता है।

(२) **सुअर** को मांस के लिए पालते हैं यद्यपि इसके बाल से बुरुश बनते हैं और इसकी हड्डी से चीनी साफ की जाती है। यह अनाज और विशेष कर मक्का या जौ उत्पादक प्रदेशों में पाला जाता है।

(३) **भेड़** से ऊन और मांस प्राप्त होता है परन्तु मांस वाली भेड़ के ऊन अच्छे नहीं होते और ऊन वाली भेड़ मांस के लिये अनुपयुक्त होती है। भेड़ें प्रायः शुष्क व छोटी घास में पनपती हैं। ऊबड़-खाबड़ भूमि के चरागाह इनके लिये उपयुक्त होते हैं। इनके लिये शुष्क व शीतल जलवायु चाहिये। इसके अलावा खेती के लिए सर्वथा अनुपयुक्त भूमि पर भेड़ चराई जाती है।

पशुचारण व्यवसाय में विभिन्न जानवरों को सैकड़ों व हजारों के समूह में रखा जाता है। कभी-कभी सूखा पड़ने, अधिक शीत होने या रोगी हो जाने से पशुओं का नाश हो जाता है। जानवरों के लिए चरागाह की तलाश में रहने के कारण पशुचारण व्यवसायी प्रायः खानाबदोश ही होते हैं परन्तु शीतोष्ण कटिबंध के घास के मैदानों में लोग स्थायी रूप से रह कर पशु-चारण करते हैं।

Pasture (चरागाह) बड़ी और हरी-भरी घास के मैदान या सूखी छोटी घास के ढालू पहाड़ी प्रदेश को जहाँ पर भूमि का प्रमुख उपयोग पशु को चराना है, चरागाह कहते हैं।

अक्सर खेती से बची या उसके लिये अनुपयुक्त भूमि पर ही चरागाह पाये जाते हैं परन्तु पशुचारण व्यवसाय के उन्नति कर जाने से चरागाहों की विशेष देखभाल की जाने लगी है। विशेष प्रकार की खाद देकर और सिंचाई करके इन प्राकृतिक घास के मैदानों में खास जाति की दूध या मांस या शक्तिवर्धक घास बोई जाती है और इस प्रकार के चरा-गाहों को विशेष देखभाल के साथ रक्खा जाता है।

Peak (पर्वत शिखर) किसी पहाड़ या पहाड़ी की चोटी जो श्रेणी के अन्य सब भागों और आसपास के प्रदेश से अधिक ऊँची होती है उसे पर्वत शिखर कहते हैं। प्रायः जब आवरण क्षय के द्वारा आस-पास की मुलायम चट्टानों का प्रदेश कट-छँट कर निम्नतर होता है तो अधिक कठोर चट्टान का बना मध्य भाग पर्वतशिखर के रूप में दरार पड़ कर स्तरों के खिसकने या ज्वालामुखी उद्गार के कारण शंकु बनने से भी पर्वत शिखर की सृष्टि हो जाती है।

पर्वत शिखर कई प्रकार के होते हैं। कुछ तो सामान्य गुम्बद की तरह होते हैं। कुछ सींग की तरह तो कुछ सुई की तरह होते हैं। जिन प्रदेशों में चट्टानों की बनावट समतल हो और जहाँ चट्टानें मोड़दार हों वहाँ पर बने पर्वत शिखर किसी किले की दीवार में बने कँगूरों की तरह लगते हैं।

Peat (पीट) वनस्पति के जल में पड़े-पड़े सड़ते रहने से एक काला या भूरे रंग

का रेशेदार लिबलिबा पदार्थ बन जाता है। इसे पीट कहते हैं। प्राय: यह दलदली भूमियों में मिला पाया जाता है। वास्तव में वनस्पति अवशेषांश से कोयला बनने की प्रथम दशा यही पीट है। इसमें पानी का अंश तो बहुत अधिक और कारबन का अंश बहुत कम होता है।

Pedalfer (**पेडालफर**) जिस मिट्टी में लोहे और चिकनी मिट्टी का अंश बहुत अधिक होता है उसे पेडालकल कहते हैं। मोटे तौर पर इसे आर्द्र प्रदेशों की मिट्टी भी कह सकते हैं। इसमें चूना तथा अन्य नमक और वनस्पति अंश की कमी होती है। नाइ-ट्रोजन और फासफेट की कमी रहती है परन्तु तेजाब अधिक मात्रा में रहता है। जलवायु भेद के अनुसार इसके विभिन्न प्रकार हो जाते हैं जिनमें पॉडजाल या वनप्रदेशीय मिट्टी तथा लैट-राइट मिट्टी प्रमुख है। (देखिए Podzol, Laterite)

Pediment (**पर्वतीय शुष्क मैदान**) शुष्क प्रदेशों में पर्वतों के आधार पर स्थित क्रमश: ढालू जमीन को पर्वत तटीय शुष्क मैदान कहते हैं। इस मैदान में बड़े-बड़े कंकड़-पत्थर बिखरे पाये जाते हैं। पर्वत प्रदेश की चट्टानें विखण्डित होकर या वायुशक्ति के कारण टूट-फूट कर गिरती रहती हैं और फलत: आधार तल का मैदान रोड़े कंकड़ तथा शिलाखंडों से भर जाता है।

Pedocal (**पेडोकल**) मरुस्थलीय प्रदेशों की मिट्टी को पेडोकल कहते हैं। यह बलुही होती है और इसमें वनस्पति के अंश की कमी रहती है। वर्षा का प्राय: अभाव होने के कारण पानी के निचली सतहों तक सोखे जाने से खनिज अंशों के बह जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ तो वाष्पीकरण द्वारा नीचे की सतहों से जल ऊपर को खिंचता रहता है और फलत: इसमें खनिज नमक काफी मौजूद रहते हैं। इसमें चूने का अंश विशेष अधिक रहता है। इस प्रकार की मिट्टी शीतोष्ण व उष्ण प्रदेश के मरुस्थलों तथा अत्यन्त शुष्क भागों में पायी जाती है। इसको शीतोष्ण प्रदेश की मरुस्थलीय मिट्टी और उष्ण प्रदेश की मरुस्थलीय मिट्टी दो प्रकारों में विभक्त करते हैं।

Pedology (**भूमि विज्ञान**) संसार में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की मिट्टी तथा उसकी विशेषताओं के अध्ययन को भूमि विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत मिट्टी की रचना का अध्ययन किया जाता है और उस पर मूल चट्टानों का स्वभाव, बाह्य प्राकृतिक शक्तियों का प्रभाव, उनमें कणों की बनावट तथा उनमें खनिज नमकों व वनस्पति के सड़े-गले अंश की उपस्थिति आदि पर विचार किया जाता है।

Pelagic Deposits (**सागरीय निक्षेप**) महासागरों के तटवर्ती प्रदेश में नदियों द्वारा बहा कर लाई गई या हवाओं द्वारा उड़ा कर लाई हुई सामग्री का निक्षेप होता रहता है। परन्तु १०० फैदम से अधिक गहराई पर जो निक्षेप पाये जाते हैं उनका संबंध स्थलखंड की सामग्री से बहुत कम होता है। वहाँ पर तो समुद्री वनस्पति या प्राणियों के नष्ट होकर इकट्ठा होने से निक्षेप होता रहता है। इस प्रकार के निक्षेप को सागरीय निक्षेप कहते हैं। यह उन मध्यवर्ती भागों में पाया जाता है जो तटीय प्रदेश और अगाध महासागर तल के बीच में स्थित होते हैं। यह सागरीय प्रदेश तटीय प्रदेश की अपेक्षा अधिक गहरा परन्तु अगाध महासागर तल से छिछला होता है और यहाँ की प्रधान वनस्पति प्लान्कटन होती है जो बहुत छोटे प्रकार के पौधे होते हैं और सदैव तैरते रहते हैं। इन छोटे प्रकार के पौधों और कीड़ों के मरने पर ज्वालामुखी उद्गार की धूल के साथ मिल कर कई प्रकार के चिपचिपे और दलदली निक्षेप बन जाते हैं। इनमें खड़िया-चूने का अंश अधिक होता है। इन्हें ऊज कहते हैं। (देखिए Oozes) कुछ निक्षेपों में सिलिका का अंश अधिक होता है जैसे डेटम और रेडियो-

लेरियन ऊज में। ये सब प्रकार के सागरीय निक्षेप २५०० फैदम तक की गहराई तक पाये जाते हैं।

इनमें और स्थलीय निक्षेप (जो तटवर्ती प्रदेश में पाये जाते हैं) में कोई स्पष्ट या विशिष्ट अन्तर नहीं है।

Pelean Cloud (**पीलियन मेघ**) (देखिये **Nuee Ardente**)

Peneplain (आवरणक्षय का मैदान) कुछ मैदान वर्षा तथा बहुत बहते हुए पानी की शक्ति के कारण उच्च पहाड़ी भागों के घिस जाने से बन गये है। उच्च भाग इस प्रकार घिस जाते हैं और फलस्वरूप इनकी ऊँचाई कम हो जाती है और यह निचली भूमि निक्षेप से भरती जाती है जब तक की पूर्ण प्रदेश एक सा नहीं हो जाता। ऐसे प्रदेश पूर्णतया चौरस या चपटे तो नहीं होते परन्तु फिर भी मैदानस्वरूप होते हैं। इन्हें आवरणक्षय के मैदान कहते हैं।

जो मैदान कटान की प्रारंभिक अवस्था में होते है वे समुद्रतल से काफी ऊँचे होते हैं परन्तु धीरे-धीरे नदियों के बीच की समतल भूमि कटते-कटते ऊँचे पहाड़ी टीलों (**Monadnocks**) के रूप में रह जाती है। कालान्तर में ये ऊँचे टीले भी कट कर साफ हो जाते हैं। वास्तव में ये ऊँचे टीले उस कठोर चट्टान की ओर इंगित करते हैं जिसे नदी का जल काट नहीं सका। परन्तु अधिकतर मैदान का ढाल क्रमशः होता है। अधिकांश भाग तो चौरस घाटी प्रदेश होते हैं और उनके बीच-बीच की उच्च भूमि क्रमशः ढाल होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उच्च प्रदेशों के कटने और निम्न प्रदेशों के निक्षेप द्वारा चौरस होने से आवरणक्षय के मैदान बनते हैं। इनमें बहने वाली नदियाँ आधारतल तक पहुँच चुकी होती हैं। इसीलिये ये नदी की जीर्णावस्था या अंतिम दशा के प्रतीक होते हैं। इस दशा में न तो काट-छाँट ही होती है और न निक्षेप ही। जब कभी इस प्रकार के मैदानों का तल ऊँचा हो जाता है यह पठार का रूप धारण कर लेता है और इस प्रकार फिर शुरू से नदियाँ काट-छाँट का काम शुरू कर देती हैं।

आवरणक्षय के मैदान का रूप प्रदेश विशेष की चट्टानों के बनावट पर निर्भर रहता है। जहाँ चट्टानों की बनावट व परतों की तरतीब सम होती है वहाँ पर बनने वाले मैदान बहुत सीधे व चपटे होते हैं। परन्तु यदि चट्टानें कहीं कठोर तो कहीं मलायम हुई तो मैदान के बीच-बीच में ऊँचे टीले खड़े रह जायेंगे। इसके विपरीत जब आवरण क्षय प्रारंभ होता है तो मलायम चट्टानें तो घिस कर सपाट मैदान बन जाते हैं परन्तु चारों ओर कठोर चट्टान श्रेणी के रूप में खड़ी रह जाती हैं। इसे ववेस्टा मैदान कहते हैं और पेरिस बेसिन इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

संसार में इस प्रकार के मैदान के उदाहरण रूस के मध्यवर्ती मैदान, पूर्वी इंगलैंड के मैदान पेरिस बेसिन, अमेजन बेसिन के दक्षिणी भाग, मिसीसीपी के ऊपरी प्रदेश और भारत के अरावली प्रदेश में मिलते हैं। ये सभी उदाहरण बिलकुल यथार्थ नहीं हैं क्योंकि ये ऊँचे-नीचे हैं और इनका ढाल वास्तविक आवरणक्षय के मैदान से कुछ अधिक है। इसका प्रधान कारण आवरणक्षय के मैदान में पर्वत प्रदेशों का ऊँचा उठते रहना है।

संक्षेप में आवरणक्षय मैदान को स्थलरूपहीन मैदान कह सकते हैं जिसका स्थानीय बनावट से कोई भी संबंध नहीं होता और इसका संबंध केवल आधारतल से होता है।

Peninsula (**प्रायद्वीप**) जो प्रदेश या भूखंड तीन ओर से महासागरों द्वारा घिरा रहता है उसे प्रायद्वीप कहते हैं। भारत और मलाया एशिया महाद्वीप के प्रायद्वीप हैं। यूरोप में स्पेन, इटली और यूनान तथा स्केन्डिनेविया भी प्रायद्वीप ही हैं। यदि यूरेशिया को हम एक विशाल महाद्वीप मानें तो यूरोप उसका प्रायद्वीप होगा।

Peninsular Location (प्रायद्वीपीय स्थिति) किसी प्रायद्वीप में स्थिति होने से प्रायद्वीपीय स्थिति कही जाती है। तीन ओर से समुद्र से घिरे होने के कारण इस प्रकार की स्थिति के प्रदेश व्यापारिक मार्गों के समीप पड़ते हैं। भारत और इटली इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

Penumbra (उपछाया) सूर्य या चन्द्रग्रहण में प्रच्छाया (Ombra) के भाग को घेरे हुए अर्द्ध छाया के प्रदेश को उपछाया कहते हैं। इस उपछाया प्रदेश में परछाईं या छाया बहुत घनी नहीं होती और इसलिये थोड़ी सी रोशनी आती रहती है। सूर्य के अन्दर स्थित काले धब्बे की प्रच्छाया के चारों ओर के प्रदेश को भी उपछाया ही कहते हैं।

Perched Block (चिपके हुए खंड) जब कभी कोई हिम नदी पिघलने लगती है तो कभी-कभी कुछ पार्श्विक मोरेन्स तलैटी के किनारों पर चिपक कर विलक्षण दशा में रह जाते हैं। इस तरह के पत्थरों को चिपके हुए खंड कहते हैं। बिल्कुल ही भिन्न प्रकार के तलैटी किनारे पर जब कोई बहुत बड़ा शिलाखंड इस प्रकार चिपका रह जाता है तो स्वभावतः उस ओर ध्यान आकर्षित हो जाता है। चूँकि चिपके हुए खंड अपेक्षाकृत छोटी सी जगह में स्थित होते हैं इसलिए उनका भार बड़ी ही अच्छी तरह संतुलित रहता है और अक्सर जरा सा छूने पर वे पेन्डुलम की भाँति आगे-पीछे को हिलने लगते हैं। इस प्रकार के हिलते हुए पत्थर न्यू इंगलैंड की पहाड़ियों में बहुत मिलते हैं।

Perenninal Canal (सदापूरित नहरें) जिन नहरों में पानी साल भर बराबर बना रहता है उन्हें सदापूरित नहरें कहते हैं। ये उन नदियों से निकाली जाती हैं जिनमें साल भर बराबर पानी भरा रहता है। नदी के प्रवाह को बाँध बनाकर रोक लिया जाता है और फिर इस प्रकार से रोके गये जल से नहरें निकाल ली जाती हैं। इस प्रकार की नहरों का तल नदी के स्थायी जल तल से सदैव नीचा रहता है जिससे बराबर जल का प्रवाह भारी रहता है। म प्रकार की नहरों के सहारे साल भर बराबर खेती हो सकती है और शुष्क काल में भी किसानों को अपने साधनों पर पूरा भरोसा रहता है।

Perigee (पेरिजी) चन्द्रमा या अन्य किसी ग्रह के पथ में या सूर्य के दृश्य पथ में वह बिन्दु जब कि वह पृथ्वी के सबसे अधिक समीप पहुँच जाता है उसे पेरिची कहते हैं।

Peribelion (दक्षिणायन) अपने ग्रह पथ में पृथ्वी या अन्य किसी ग्रह की उस स्थिति को जब वह सूर्य के सबसे अधिक समीप होता है दक्षिणायन कहते हैं। पृथ्वी का ग्रह पथ अन्धकार है। इसलिए एक समय घूमते-घूमते पृथ्वी सूर्य के निकट पहुँच जाती है। इस समय सूर्य के प्रति पृथ्वी की स्थिति दक्षिणायन होती है और सूर्य की किरणें मकररेखा पर सीधी पड़ती हैं। यह स्थिति २२ दिसम्बर को या जनवरी के प्रारंभ में प्राप्त होती है जब उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े का मौसम होता है। इस समय पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी ९ करोड़ १५ लाख मील होती है। यद्यपि सूर्य और पृथ्वी अपेक्षाकृत काफी निकट होते हैं परन्तु फिर भी दिन छोटे होते हैं और संपूर्ण उत्तरी गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं। इस प्रकार कम सूर्य प्रकाश समीपता से अधिक प्रभावशाली होता है और वहाँ जाड़ा रहता है जब कि दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी पड़ती रहती है।

पृथ्वी और सूर्य की बीच की दूरी में घटा-बढ़ी होते रहने से पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर घूमने की चाल में भी फरक पड़ता है। जब यह सूर्य के करीब रहती है तो हमें सूर्य की चाल तेज मालूम पड़ती है। (देखिये Aphelion)

Permeable Rocks (सोख्य चट्टानें) जिन चट्टानों में कणों की बनावट इस

प्रकार होती है कि उनके बीच छेद होते हैं जिनमें वर्षा का पानी सोख जाता है। उन्हें सोख्य चट्टानें कहते हैं। बलुहा पत्थर इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

Pervious Rock (प्रवेश्य चट्टानें) जिन चट्टानों में कणों के बीच के छेदों या दरारों में होकर वर्षा के पानी की भीतर प्रवेश्य करने की गुंजाइश होती है उन्हें चट्टान कहते हैं। चूँकि प्रवेश्य चट्टानों में से होकर पानी केवल धीरे-धीरे अन्दर प्रवेश कर सकता है, इसलिए जब कभी बहुत अधिक वर्षा होती है तो पानी सतह पर से हो कर बह जाता है और अन्दर प्रवेश ही नहीं कर पाता।

Petrology (पेट्रोलाजी) स्थलमंडल में सम्मिलित चट्टानों की रचना, बनावट और इतिहास के अध्ययन को पेट्रालाजी कहते हैं। इसके अन्तर्गत चट्टानों में उपस्थित खनिज धातुओं का भी अध्ययन होता है। इस प्रकार यह विद्या भूगर्भ तल की ही एक शाखा है।

Phacolith (फैकोलिथ) किसी धनुषाकार ऊर्ध्वश्रृंग के शिखर के समीप या किसी नतोदर घाटी की तली में जब कभी आग्नेय चट्टान की लम्बी शीशे की तरह की पहलदार पट्टी अड़ी पाई जाती है तो उसे फैकोलिथ कहते हैं। यह उसी प्रकार बन जाती है जिस प्रकार की फैकोलिथ परन्तु भेद केवल इतना ही है कि यह फैकोलिथ की अपेक्षा कम गहरी होती है। यह भी मैग्मा का नीचे से जोर मारने पर ही ऊपर की परतों के उभर आने से बन जाता है।

कभी-कभी इस प्रकार की रचना को खान खोदने वाले घोड़े की काठी की दीवार कह कर पुकारते हैं।

Phenology (फेनालॉजी). पशु व वनस्पति जगत पर मौसम के परिवर्तन से पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन और विज्ञान को फेनालाजी कहते हैं। इसके अन्तर्गत पौधों में फूल या पत्ती निकलना बीज बोने का समय तथा फसल काटने आदि के विषय में विवेचना रहता है। इन तथ्यों के विषय में ज्ञान व निरीक्षण उनकी तिथियों तक ही सीमित रहता है। उदाहरणार्थ कोई पक्षी या कीड़ा कब दिखलाई पड़ता है और कब से बिल्कुल ही नहीं देखा जा सकता है। सके अतिरिक्त इन विचित्र विभिन्न तिथियों का अलग-अलग प्रदेशों के अक्षांश, व देशान्तर स्थिति तथा ऊँचाई के साथ संबंध स्थापित करना भी इसी विज्ञान के क्षेत्र में है।

Photo Relief (फोटो उच्चता दर्शक) फोटो द्वारा बनाये गये किसी प्राकृतिक मानचित्र में अंकित करने से पहिले भूआकृति चित्र की किस प्रकार फोटो खींची जाती है इसे फोटो उच्चता दर्शक कहते हैं। यद्यपि इस विधि द्वारा प्रदेश विशेष के प्रमुख स्थल रूप ही चित्रित किये जा सकते हैं परन्तु पिछले युद्ध में इस विधि का विशेष प्रयोग किया गया। फोटो द्वारा भूआकृति के लिये पहिले प्लास्टिक रबड़ या चूना मिट्टी के भूआकृति चित्र बना लिये जाते हैं और फिर उनकी फोटो लेकर छपाई द्वारा मानचित्र पर अंकित करते चले जाते हैं।

Physiography (भौतिक भूगोल) पृथ्वी के धरातल पर पाये जाने वाले स्थल रूपों का विवरण, उनके निर्माण का कारण और उनका एक दूसरे के साथ पारस्परिक संबंध के अध्ययन को भौतिक भूगोल कहते हैं। इसको प्रायः जीयोमारफालोजी (Geomorphology) के अर्थ में प्रयोग करते हैं। कभी-कभी गलती से इसको प्राकृतिक भूगोल भी कहते हैं परन्तु दोनों में भेद है।

Physical Geography (प्राकृतिक भूगोल) पृथ्वी की प्राकृतिक विशेषताओं

के अध्ययन को प्राकृतिक भूगोल कहते हैं। इसके अन्तर्गत पृथ्वी के धरातल पर उपस्थित निर्जीव तथ्यों व रूपों का भौगोलिक अध्ययन किया जाता है। अतएव इसके अन्दर जलमंडल, वायुमंडल तथा स्थलमंडल जो मिल कर पृथ्वी बनाते हैं, उन सभी की प्राकृतिक रूपरेखा और तत्वों का विवेचन करते हैं।

Phyto Geography (वनस्पति भूगोल) भौगोलिक परिस्थिति से प्रभावित और उसी के अनुकूल विभिन्न प्रकार की वनस्पति का पृथ्वी तल पर वितरण का अध्ययन वनस्पति भूगोल कहलाता है। इसके अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि वन, घास के मैदान और झाड़ियाँ पृथ्वी पर कहाँ-कहाँ और किस प्रकार के पाये जाते हैं। कहीं पर वन है तो कहीं घास के मैदान और कहीं केवल झाड़ी-झुरमुट वाले रेगिस्तान। इसका कारण भी इसी के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है।

Piedmont Alluvial Plain (पर्वत प्रान्ती काँप का मैदान) जब नदी पर्वतीय प्रदेश को छोड़कर मैदान में पहुँचती है तो भूमि का ढाल क्रमशः हो जाने से उसकी गति धीमी पड़ जाती है। फलतः उसकी तेज धारा में बह कर आने वाले बड़े शिला खंड अब आगे नहीं जा पाते और नदी के मार्ग में ही जमा होने लगते हैं। धीरे-धीरे इनके अवरोध से नदी कई धाराओं में होकर बहने लगती है और रुकावट वाले इन स्थानों पर नदी द्वारा बहाकर लाई हुई काँप जमा होने लगती है। इस प्रकार पर्वत के आधार पर पंखे की तरह मैदान फैलने लगता है। इसे पर्वत प्रान्ती काँप का मैदान कहते हैं। वास्तव में इस प्रकार के मैदान का विस्तार नदी की जल की मात्रा और उसके साथ बहाकर लाये हुए शिलाखंडों आदि की मात्रा पर निर्भर रहता है।

इनमें मोटी बालू या बजरी की प्रधानता रहती है और पर्वततल के समीप ढाल अधिक रहता है परन्तु आगे जाकर धीरे-धीरे क्रमशः होता जाता है। पर्वत के तल पर से चारों ओर को अँगुली की तरह के हिस्से बाहर को निकले रहते हैं और निक्षेप की मात्रा पर्वत तल या इस पंखाकार मैदान के ऊपरी सिरे पर सबसे अधिक रहती है। यहाँ की भूमि बड़ी ही मोटी होती है और उसमें स्थान-स्थान पर मोटे-मोटे कंकड़-पत्थर फैले रहते हैं। इसलिए इनका खेती के लिये कोई भी उपयोग नहीं है। इनके बीच-बीच में कभी-कभी छिछले जलाशय या गड्ढे भी पाये जाते हैं और पर्वत तल से दूर जाने पर नकी मिट्टी महीन होती हुई काँप के मैदान में मिल जाती है।

संसार के प्रसिद्ध पर्वतप्रान्ती मैदानों में चिली की घाटी, स्पेन का वैलनाशिया प्रदेश, तारिम बेसिन, समरकन्द प्रान्त तथा कैलीफोर्निया की सैक्रेमेन्ट्रो और सेन जोओकिन घाटियाँ सम्मिलित हैं। भारत में इन्हें भावर कहते हैं।

Piedmont Glacier (पर्वत प्रान्ती हिम नदी) किसी पर्वत श्रेणी के तल पर की निम्न भूमि पर जब कभी कई हिम नदियों के मिल जाने से हिम की एक विस्तृत चादर सी फैल जाती है तो उसे पर्वत प्रान्ती हिम नदी कहते हैं। इस पर्वत प्रान्ती हिम नदी की चौड़ाई इसमें सम्मिलित सभी छोटी हिम नदियों की चौड़ाई के भाग से अधिक होती है और इसीलिए इसकी गति भी बड़ी धीमी होती है। कभी-कभी तो सकी गति या चलना बिल्कुल ही रुक जाता है।

पर्वतप्रान्ती हिम नदी का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण अलास्का का मलासपिना हिमनदी है जो ६० से ७० मील तक लम्बी है और जिसकी चौडाई २०-२५ मील है।

पर्वत प्रान्ती हिम नदी घाटियों में स्थित छोटी हिम नदियों से मिल कर बनते हैं। जब घाटियों की हिम नदियाँ पर्वत तल पर या किसी चौड़ी घाटी या खुले ढाल या किसी मैदान तक

प्रवाहित होकर आ जाती है तो उनके अन्तिम सिरे पंख की तरह फैल जाते हैं और जब इस प्रकार के दो या अधिक हिम पंख आपस में मिल जाते हैं तो एक चौड़ी हिम नदी के अग्रभाग का प्रादुर्भाव हो जाता है। इसे पर्वत प्रान्ती हिम नदी कहते हैं।

Piedmont Plateau (**प्रान्ती पठार**) जो पठार पर्वतों और मैदानों अथवा पर्वतों और समुद्रों के बीच में स्थित हैं उन्हें प्रान्ती पठार कहते हैं। इन पठारों का विस्तार बहुत ही सीमित होता है। एण्डीज पर्वत और अटलांटिक महासागर के बीच में स्थित पेटेगोनिया का पठार इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इसकी उत्तर की मुख चट्टान की ऊँचाई तीन सौ से छः सौ फीट तक है। कोलेरैडो का पठार भी इसी प्रकार है।

Pillow Lava (**लावा की तकिया**) जब ज्वालामुखी मुख से निकल कर लावा इस प्रकार प्रवाहित होता है कि वह जल में प्रवेश कर जाता है या लावा जल के भीतर स्थित ज्वालामुखी से निकलने के कारण जल के भीतर से होकर आता है तो वह शीघ्र ही ठंडा होकर ठोस पड़ जाता है और उसकी आकृति कई तकियों के ढेर या थकिये की तरह होती है।

Pilot Balloon (**दिशासूचक गुब्बारा**) ऊपरी वायुमंडल में हवाओं की गति और दिशा को जानने के लिए एक रबर का गुब्बारा जो हाइड्रोजन गैस से भरा रहता है ऊपर की ओर उड़ा दिया जाता है। इसे दिशा सूचक गुब्बारा कहते हैं। साधारणतया गुब्बारा छोड़ने के बाद उसके पीछे-पीछे एक अकेले थियोडलाइट यन्त्र को भी प्रयोग करते हैं। चूँकि गुब्बारे के अन्दर हाइड्रोजन की मात्रा निश्चित व ज्ञात होती है, इसलिये ऊपर चढ़ने की चाल भी निश्चित ही होती है। निश्चित कालान्तर में इसकी स्थिति का पता लगा कर इसकी दिशा और चाल को मालूम किया जा सकता है। सामान्यतः प्रत्येक हर मिनट पर इसकी स्थिति के बारे में ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हवा की दिशा व गति को भी गणित द्वारा निकाला जा सकता है।

Pipe (**नली**) खड़िया मिट्टी के बने हुए प्रदेश में सतह की जलधाराओं द्वारा बनाये हुए गड्ढे जब बजरी या कंकड़ीली मिट्टी से भर जाते हैं तो उन्हें नली कहते हैं। इस प्रकार की अनेकों नलियाँ खड़िया मिट्टी के गड्ढों में खंड रूप दिखलाई पड़ती हैं।

Pirate River (**हड़पनेवाली नदी**) कई बार एक नदी की सहायक नदी इतनी शीघ्रता से घाटी बनाती है कि दूसरी नदी की सहायक नदी का पानी हड़प लेती है और चूँकि अधिक शीघ्रता से काटने वाली नदी की घाटी गहरी होती है इसलिए दूसरी सहायक नदी का सारा पानी इसी नदी में बहने लगता और दूसरी घाटी सूखी रह जाती है। इस प्रकार की बड़ी नदी को जिसमें छोटी नदी का जल आकर मिल जाता है, उसे हड़पने वाली नदी कहते हैं। (देखिये River Capture)

Pitch (**झुकाव**) चट्टानों के स्तर में पड़े हुए मोड़ की धुरी समतल पर किस कोण से झुकी हुई है, इसे झुकाव कहते हैं। दूसरे शब्दों में झुकाव की व्याख्या में यह कहा जा सकता है कि किसी मोड की धुरी पर चट्टान के स्तरों का ढाल ही मोड़ का झुकाव है।

Pit Lake (**हिमजल गर्त झील**) जब महाद्वीपों पर हिम आवरण छाया हुआ था उस समय इनके पिघलने से बने हिम जल निर्मित मैदानों में बालू और बजरी के निक्षेप के बीच गड्ढे बन गये और उनमें जल भर आने से झीलें बन गईं। इस प्रकार की झीलों को हिम जल गर्त झील कहते हैं। पास में स्थित हिम आवरण के बीच में पड़े हुए प्रदेशों में हिम जल निक्षेप की राशि बहुत अधिक थी। इसलिए उन्हीं मध्यवर्ती प्रदेशों में इस प्रकार की झीलें बहुत अधिक पायी जाती हैं। ये झीलें काफी गहरी और गोलाकार होती हैं।

Pitted Plain (गतिपूर्ण मैदान) जहाँ हिम जल द्वारा लाई गई बालू और बजरी एक लम्बी व सँकरी पट्टी में इकट्ठा हो जाती है हिमनदी के उभरे हुए अग्रभाग को एक-दूसरे से अलग करती है तो ये मैदानी पट्टियाँ आस-पास की अन्य भूमि से बहुत ऊँची हो जाती हैं। इस प्रकार के बालू और बजरी से बने सँकरे पर गहरे मैदानों में बहुधा बहुत सी गहरी परन्तु गोलाकार झीलें पाई जाती हैं। इसी कारण न मैदानों को गतिपूर्ण मैदान कहते हैं। इनका ढाल हिम नदी की दिशा में बराबर उठता जाता है और इनके बीच में हिम जल गर्त झीलों की पट्टी से बँधी हुई मालूम पड़ती हैं। (देखिए Interlobate Moraine, Ontwash Plain)

Plain (मैदान) मैदान उस समतल भूभाग को कहते हैं जिसके ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे भागों में ५०० फीट से अधिक अन्तर न हो और जिसका ढाल क्रमशः हो। सभी मैदानों की समुद्र तल से ऊँचाई एक सी नहीं होती। कुछ मैदान चपटे, सपाट व चौरस होते हैं तो कुछ मैदान धीरे-धीरे जगह-जगह ऊँचे नीचे होते जाते हैं और कुछ मैदान ऊबड़-खाबड़ तक होते हैं। कई मैदानों की ऊँचाई पठारों या पर्वतों से अधिक है। परन्तु इनका ढाल क्रमिक होता है, यही इनकी मुख्य पहिचान है। सरे यह है कि मैदान में स्थित ऊँचाई-निचाई, श्रेणी या घाटी, टीले व गड्ढों में केवल ५०० फीट की स्थानीय ऊँचाई का अन्तर होता है।

मैदानों का विस्तार बहुत अधिक होता है और खेती, यातायात तथा बसने और जीविकोपार्जन की सुविधाओं के कारण संसार की अधिकांश जनसंख्या मैदानों में निवास करती है और संसार की विभिन्न संस्कृतियाँ व सभ्यतायें यहीं उत्पन्न व विकसित हुई हैं।

मैदानों को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है और इस वर्गीकरण के विभिन्न आधार हैं। मैदानों की विभिन्न जलवायु में स्थित या महाद्वीपों के विभिन्न भागों में स्थिति के अनुसार या भौगर्भिक तत्वों द्वारा बनावट के आधार पर कई भागों में बाँटा जाता है। निर्माण विधि के अनुसार मैदानों को तीन मोटे वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(१) भूमि के जलमग्न होने या जल से बाहर निकलने से बने तटीय मैदान (देखिये Coastal Plain)

(२) भूमि के क्षय से बने हुए मैदान जिसके अन्तर्गत Peneplain, Karst Plain, और Ice-scoured Plain आते हैं।

(३) निक्षेप द्वारा बने हुए मैदान कई प्रकार के होते हैं। नदियों के ऊपरी प्रवाह क्षेत्र में पर्वत प्रान्ती मैदान, मध्य प्रवाह क्षेत्र में बाढ़ के मैदान और निचले प्रवाह क्षेत्र में डेल्टा मैदान बन जाते हैं। हिम नदियों के द्वारा हिम प्रवाह और हिम निर्मित मैदान बन जाते हैं। इसी प्रकार वायु द्वारा बालू और लोएस के मैदान बन जाते हैं। (देखिए Peidmont Alluvial Plain, Flood Plain, Delta Plain, Drift Plain, Outwash Plain, Acolian Sand Plain, Loess Plains) कभी-कभी झीलों के निक्षेप द्वारा पट जाने से झील का मैदान बन जाता है। इन झील के मैदानों में सतह चौरस होती है जैसे नये निकले तटीय मैदान में और तटीय स्थलरूप देखने को मिलते हैं। इसमें डेल्टा, तटीय श्रेणी या अनुतटीय बाधक श्रेणियाँ आदि अलग दिखलाई पड़ती हैं।

उष्ण व शीतोष्ण कटिबन्ध के बहुत से मैदानों की प्राकृतिक वनस्पति घास है, सलिए उन्हें घास के मैदान भी कहते हैं और स्थिति के अनुसार उन्हें प्रेरी, पैम्पास, स्टेपी या सवाना कहते हैं।

Plain of the Ecliptic (कक्षा तल) (देखिये (Ecliptic)

Planet (ग्रह) सौर मंडल में स्थित और रात्रि में चमकने वाले प्रकाश पिण्डों की संख्या सैकड़ों है परन्तु उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनमें स्वयं निजी प्रकाश नहीं होता बल्कि वे किसी तारे के प्रकाश को ग्रहण करके प्रतिबिम्बित किया करते हैं। इनको ग्रह कहते हैं। ये ग्रह किसी न किसी तारे की परिक्रमा भी किया करते हैं। वास्तव में पृथ्वी की तरह सूर्य के चारों ओर ये एक अण्डाकार पथ में भ्रमण करते रहते हैं और चन्द्रमा की तरह सूर्य के प्रकाश से ही प्रतिबिम्बित होते हैं।

सूर्य के चारों ओर ९ ग्रह भ्रमण किया करते हैं जिनमें से ५ तो बहुत बड़े हैं। वरुण (Neptune) अरुण (Uranus), शनि (Saturn) और बृहस्पति (Jupiter) पृथ्वी से भी बड़े हैं। शुक्र (Venus), मंगल (Mars), बुद्ध (Mercury) बहुत छोटे ग्रह हैं। सबसे छोटा ग्रह कुबेर (Pluto) है। ५ बड़े ग्रह के चारों ओर उनके उपग्रह चक्कर काटा करते हैं। उपग्रहों की संख्या भिन्न-भिन्न ग्रहों में अलग-अलग है। पृथ्वी का और वरुण का एक ही उपग्रह है। वरुण और मंगल के उपग्रह क्रमशः ४ और २ हैं। वृहस्पति और शनि प्रत्येक के उपग्रह नौ नौ हैं।

प्रत्येक ग्रह अपनी धुरी पर घूमता है, अपने ग्रहपथ पर भ्रमण करता है और प्रत्येक के ग्रहपथ की लंबाई अलग-अलग है। उनके परिभ्रमण की गति भी अलग-अलग है। इनकी चमक समय-समय पर बदलती रहती है। बद्ध और शक्र ग्रह सूर्य से कभी भी अधिक दूर नहीं जाते। सूर्य निकलने से पहिले ये पूर्व में दिखलाई पड़ते हैं और सूर्यास्त के समय इनको पश्चिम में देखा जा सकता है। बद्ध सूर्य के बहुत निकट है और इसकी परिभ्रमण गति बड़ी ही तेज है। वेनस ग्रह बहुत चमकदार होता है और इसकी चमक में बड़ा परिवर्तन होता रहता है। वृहस्पति और शनि को सूर्य का चक्कर पूरा करने में एक वर्ष से क्रमशः १३ और ३४ दिन अधिक लगते हैं। मंगल को एक चक्कर पूरा करने में २ वर्ष और पचास दिन लगते जाते हैं। मंगल के विषय में बहुत प्रकार की खोज की जा रही है क्योंकि इसका व्यवहार बहुत कुछ पृथ्वी ही की तरह का है। इसलिए इस बात में दिलचस्पी है कि इस पर लोग रहते हैं या नहीं।

वृहस्पति सबसे बड़ा ग्रह है और शनि का स्थान उसके बाद आता है। शनि की विशेषता यह है कि उसके चारों ओर उपवृत उसे घेरे हुए हैं और इन तीनों वृत्तों में छोटी-छोटी ठोस पिण्डों का समूह सम्मिलित है। अरुण, वरुण और कुबेर बहुत दूर हैं और इसीलिए उनके विषय में कुछ अधिक ज्ञान नहीं है।

Plane Table (**समतल मेज**) यह पैमाइश करने का एक साधारण यन्त्र होता है। इसके द्वारा छोटे से क्षेत्र का मानचित्र खींचा जा सकता है। समतल मेज में एक हलका और चपटा हुआ तख्ता एक तिपाई पर इस तरह स्थित रहता है कि इसको घुमा कर किसी भी समतल स्थिति में लाया जा सकता है। मेज का ऊपरी तख्ता चीड़ का बना होता है और साधारणतया इसका विस्तार १५"×१०" से ३०"×२४" तक होता है। सके साथ एक लाइन खींचने का पैमाना, एक दिशा मापक घड़ी और देखने की दूरबीन होती है। समतल मेज पर लगे हुए कागज पर एक रेखा खींच ली जाती है जो चुम्बकीय उत्तर व दक्षिण की ओर इशारा करती है। इस रेखा को आधार मान कर विभिन्न स्थलरूपों की दिशा को निरीक्षण द्वारा प्राप्त कर लिया जाता है और फिर उनकी दूरी को नाप कर मानचित्र पर आधार रेखा के बायीं व दायीं ओर अंकित कर लिया जाता है।

Plain Scale (**रेखांकित मानदंड**) जब एक सीधी रेखा को दूरी के अनुसार भागों व उपविभागों में बाँट कर मानचित्र का मानदण्ड स्पष्ट करते हैं तो उसे रेखांकित

मानदण्ड कहते हैं। रेखांकित मानदण्ड बनाने मे पहिले पैमाने को साधारण तरीके से अनुपात द्वारा या प्रतिनिधि भिन्न द्वारा व्यक्त करते हैं। बाद में इसी को रेखा पर अनुपात में विभाजन करके व्यक्त कर देते हैं।

रेखांकित मानचित्र बनाने में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना होता है:—(१) रेखा की लम्बाई ४ से ६ इंच तक होनी चाहिये और इसलिये मीलों की ऐसी सम्पूर्ण राशि लेनी चाहिये जो ४ या ६ से पूरी-पूरी कट जाये और इतनी ही दूरी में पूरी तरह दिखलाई जा सके। (२) रेखांकित मानदण्ड द्वारा उस दूरी को दिखलाया जाना चाहिये जो १० से पूरी-पूरी कट जाय।

रेखांकित मानचित्र दो प्रकार के होते हैं—

(१) **पूर्णतया विभाजित**—इसमें मानदण्ड के प्रत्येक अंश को छोटे-छोटे उपविभागों में बाँट देते हैं।

(२) **खुली तौर पर विभाजित**—इस में मानदण्ड को बड़े-बड़े भागों में बाँट देते हैं और न बड़े भागों को मुख्य भाग कहते हैं। बायीं ओर के प्रथम मुख्य भाग को उपविभागों में बाँट लेते हैं जिन्हें गौण विभाग कहते हैं। स प्रथम भाग के दायें सिरे पर शून्य रखते हैं और उससे दायीं ओर को मुख्य भागों पर संख्या डालते जाते हैं। इस प्रकार के मानदण्ड बनाने में विशेष सुविधा रहती है। दूसरी बात यह होती है कि इसके द्वारा मानचित्र पर के विन्दुओं और वास्तविक स्थलखंड पर के विन्दुओं के बीच के अन्तर का अनुपात आसानी से पता लगाया जा सकता है। मान पर किन्हीं दो विन्दुओं के बीच के अन्तर को एक धागे या परकार द्वारा नापा जा सकता है और फिर उसे रेखांकित मानदण्ड पर रख कर वास्तविक दूरी का पता लगाया जा सकता है।

Planetary Wind System (स्थायी वायुव्यवस्था) सूर्य प्रकाश के वितरण में भेद के अनुसार निम्न वायुमंडल में वायु व्यवस्था को स्थायी वायुव्यवस्था कहते हैं। इस प्रकार की स्थायी वायु व्यवस्था किसी भी ग्रह पर उपस्थित हो सकती है जहाँ पर एक नियमित वायुमंडल पाया जाता है।

स्थायी वायु व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित शामिल हैं—

स्थायी वायुव्यवस्था

(१) **भूमध्यरेखिक शान्त मण्डल (Doldrums)**—भूमध्यरेखा के आस-पास सूर्य का प्रकाश सदैव रहता है। इसलिए वहाँ की हवायें सदैव धरातल से ऊपर आकाश की ओर होता रहता है। यहाँ का वायमंडल शान्त ही रहता है और जो हवायें चलती हैं वे अत्यन्त धीमी होती हैं और चारों दिशाओं में फैलती रहती हैं। (देखिये Doldrums)
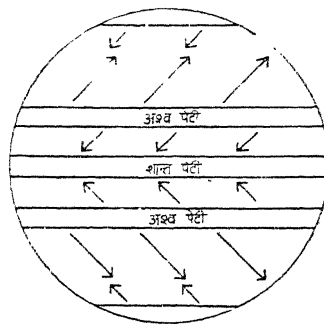
(२) **व्यापारिक हवायें (Trade Winds)** कर्क और मकर रेखा के उच्च भार प्रदेश से भूमध्य रेखिक न्यून भार की ओर चलने वाली हवाओं को व्यापारिक हवायें कहते हैं। ये हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर-पूर्व से और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्व से चलती हैं। भूमध्य रेखा की ओर बहने के कारण ये बराबर गर्म होती जाती हैं और फलत: उनमें भाप ग्रहण करने की शक्ति अधिक होती है। इसीलिए वे वर्षा नहीं कर पातीं और उन्हें सुखाने

वाली हवायें कहते हैं। परन्तु ठंडी होने के कारण मौसम सुहावना हो जाता है। सामने में पहाड़ आ जाने पर ये वर्षा कर देती हैं। (देखिये Trade Winds)

(३) **पछुवा हवायें** (Westerlies) कर्क और मकर रेखा के उच्चभार प्रदेशों से ध्रुव वृत्तों की ओर चलने वाली हवाओं को पछुँवा हवायें कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये दक्षिण-पश्चिम से और दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिम में चलती रहती हैं। ये हवायें खूब वर्षा करती हैं क्योंकि ये हवायें अन्य स्थायी हवाओं के विपरीत गरम प्रदेशों से ठण्डे प्रदेशों की ओर चलती हैं। इनमें चक्रवात और विपरीत चक्रवात बहुत उत्पन्न हो जाते हैं। इसका वेग बहुत अधिक होता है। (देखिए Westerlies)

(४) **ध्रुवीय हवायें** (Polar Winds) ध्रुवों के उच्च भार से ठंडी हवायें ध्रुव-वृत्तीय न्यून भार की ओर चलती है। ये बाहर की तरफ बहने वाली हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर-पूर्व से और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण पूर्व से। जहाँ ये ठंडी हवायें शीतोष्ण कटिबन्ध की हवाओं से मिलती हैं वहाँ पर चक्रवात और विपरीत चक्रवात उत्पन्न हो जाने की भी अवस्था स्थापित हो जाती है। इस प्रकार से उत्पन्न आँधियाँ जाड़े के मौसम में दक्षिण की ओर बढ़ने लगती हैं।

पृथ्वी की ये स्थायी वायु पेटियाँ सदैव एक ही स्थान पर नहीं बनी रहतीं बल्कि सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के कारण कुछ उत्तर या दक्षिण को खिसक जाती हैं। इन हवाओं के प्रवाह क्षेत्र की स्थिति बदल जाने से बहुत से प्रदेश एक वर्ष में दो प्रकार की हवाओं के प्रभाव में आ जाते हैं। इस प्रकार दो प्रदेशों की दशा विशेषरूप से उल्लेखनीय है—(१) भूमध्य रेखा के उत्तर और दक्षिण में ५° से १५° अक्षांश तक की पेटी जाड़े की ऋतु में व्यापारिक हवाओं के प्रभाव में चले जाते हैं। (२) उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध में ३०° से ४०° अक्षांश के बीच के भाग गरमी में तो व्यापारिक हवाओं के प्रभाव में रहते हैं। परन्तु जाड़े के मौसम में ये प्रदेश पछुँआ हवाओं के प्रभाव में चले आते हैं।

Planetesimal Hypothesis (**ग्रहीय सिद्धान्त**) सौरमंडल के ग्रहों की उत्पत्ति के बारे में ग्रहीय सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि ये विभिन्न और बहुत से ग्रह पिण्डों के मिलने से बन गये हैं। आकाश मण्डल में इन ग्रह पिंडों के बीच टक्कर हुई और टक्कर का कारण था एक-दूसरे में आकर्षण तत्व।

इस विचार का आधार वह तथ्य है कि सृष्टि में बहुत सी नीहारिकायें उपस्थित हैं जो बराबर चक्कर देकर घूम रही हैं। प्रत्येक नीहारिका का एक केन्द्रीय पिण्ड है जिस के चारों ओर विपरीत दिशा में जुड़ी हुई शाखायें परिभ्रमण कर रही हैं। इन शाखाओं में कुछ घने धब्बे हैं जो कि केन्द्रीय पिण्ड से तो छोटे हैं पर उन्हीं के चारों ओर ग्रह पिण्ड परिभ्रमण करते रहते हैं।

इस प्रकार के केन्द्रीय पिण्ड से पृथ्वी बनी और दूसरे से चन्द्रमा। जैसे-जैसे बहुत अधिक राशि इकट्ठा होती गई अधिक दबाव के कारण विभिन्न ग्रहों के अन्तरिम भाग बहुत गर्म हो उठे और अब यह गर्मी फिर से खतम होती जा रही है।

Planetoid (**गौण ग्रह**) (देखिये Asteriod)

Planimeter (**प्लेनी मीटर**) मानचित्रों व रेखाचित्रों पर विषम या असमान भुजा वाले या अनियमित विस्तार के समतल प्रदेशों का क्षेत्रफल जानने के लिये प्रयुक्त यन्त्र को प्लेनीमीटर कहते हैं। क्षेत्र की परिधि के किसी विन्दु पर यंत्र का सूचक विन्दु रख देते हैं और फिर पूरी परिधि पर घुमाते जाते हैं जब तक कि फिर से उसी विन्दु पर वापस न आ जायें।

यन्त्र पर लगी घड़ी से क्षेत्रफल आपने आप अंकित हो जाता है जो कि सूचक बिन्दु द्वारा पार की गई दूरी के बराबर ही होता है।

Plankton (प्लैन्कटन) यह वनस्पति और प्राणिज जाति का एक बहुत ही सूक्ष्म जीव या पौधा होता है जो समुद्र जल की सतह पर तैरा करता है। बिना खुर्दबीन की सहायता के इस को देख पाना संभव नहीं होता और झीलों, नदियों, तालाबों और समुद्रों के जल में खूब होता है। बहुत सी मछलियों और अन्य जीव-जन्तुओं का निर्वाह इसी को खा कर होता है। ह्वेल मछली भी इसी को खाती है। प्लैन्कटन की उत्पत्ति और विकास के लिए निम्नलिखित दशायें बड़ी सहायक होती हैं—(१) स्वच्छ जल, (२) उथला पानी जहाँ सूर्य की किरणें पहुँच सकें, (३) नदियों के मुहाने जहाँ मिट्टी, बालू का निक्षेप नहीं होता और (४) इन पौधों तथा जीवों के लिए कार्बनडाई आक्साइड तथा खनिज लवणों की भी जरूरत होती है जो नदियों द्वारा बहाकर समुद्र में लाये जाते हैं। इसीलिए नदियों के खुले मुहाने या एस्चुयरी के निकटवर्ती उथले तट—महाद्वीपीय तट—इनके लिए बहुत अनुकूल होते हैं। यही कारण है कि संसार के सभी प्रमुख मछलीमार क्षेत्र महाद्वीपीय तट प्रदेशों में पाये जाते हैं।

Planks and Animals (पौधे और जीव-जन्तु) जलवायु और भूमि पर पौधों का उगना निर्भर रहता है। इसीलिए कुछ पौधे किन्हीं विशेष प्रदेश में ही उगाये जाते हैं। पौधे दो प्रकार के होते हैं—एक तो प्राकृतिक या जंगली जो अपने आप उग आते हैं। विभिन्न प्रकार के वनों की लकड़ी और घास के मैदानों की घास इसी के अन्तर्गत आती है। परन्तु दूसरी प्रकार के पौधे वे होते हैं जिन्हें मनुष्य प्रयत्न करके अपने उपयोग के लिए उगाता है। दूसरी प्रकार के पौधों में गेहूँ, जौ, मटर, जई, ज्वार-बाजरा और चावल मुख्य हैं। ये तो हैं अनाज के पौधे। इनके अतिरिक्त अन्य दो प्रकार के पौधे मनुष्य उगाता है। उनमें से एक है पेय पदार्थों के पौधे जैसे चाय, कहवा और कोको तथा दूसरे वे हैं जिनसे उद्योग-धंधे के लिए कच्चा माल प्राप्त होता है। इस दूसरे आकार के पौधों को व्यावसायिक पौधे कह सकते हैं और इनमें सन, पटुआ, पटसन, कपास और गन्ना प्रमुख हैं। प्रत्येक को एक विशेष प्रकार की जलवायु व भूमि की आवश्यकता होती है और तदनुसार ये विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में उगाये जाते हैं। जहाँ भूमि कमजोर है वहाँ किसान खाद देता है, जहाँ जल की कमी है वहाँ वह सिंचाई करता है और जहाँ अधिक गर्मी या शीत पड़ता है वहाँ के लिए खोज द्वारा नई प्रकार के बीजों का इन्तजाम किया जाता है।

पौधों के समान पशु या जीव-जन्तु भी प्राकृतिक बनावट, वनस्पति और जलवायु पर निर्भर रहते हैं। पृथ्वी पर पाये जाने वाले जीवजन्तु दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो मनुष्य अपने उपयोग के लिए पालता है और दूसरे वे जो जंगली होते हैं और जिनकी प्रकृति घातक होती है। गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े और गदहे तो पालतू जीव हैं और शेर, बबर, चीता आदि जंगली। भूमध्यरेखिक वनों की भूमि वनस्पति से ढके रहने से वहाँ पक्षी, बन्दर और साँप व कीड़े-मकोड़े ही पाये जाते हैं। उष्णकटिबंधीय खुले बन प्रदेशों में शेर, बबर, और तेंदुआ मिलते हैं। नदियों में मगर और घड़ियाल पाये जाते हैं तथा हाथी, गेंडा और दरियाई घोड़े भी यहीं पाये जाते हैं। रेगिस्तानों में ऊँट मिलते हैं। शीतोष्ण कटिबंध में पाये जाने वाले जानवर अधिकतर पालतू किस्म के होते हैं और गाय, बैल, भेड़, बकरी व गदहे मुख्य हैं। घातक पशुओं में भालू, भेड़िये और लोमड़ी प्रधान है। शीत कटिबंध में बड़े-बड़े रोंये वाले जानवर मिलते है। सफेद भालू, सफेद लोमड़ी, बारहसिंघा और कस्तूरी बैल यहाँ के प्रधान पशु हैं। इनमें से केवल बारहसिंघा ही पाला जाता है। विभिन्न प्रकार के जीव-

जन्तुओं से प्राप्त होने वाली प्रधान वस्तुएँ ऊन, रेशम, चमड़ा, गोश्त, दूध, हाथी दाँत और कई प्रकार के तेल हैं।

Plantation Crop (उद्यान फसल) उष्ण या उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में जब विस्तृत भूमि पर नियमित रूप से किसी वृक्ष या झाड़ी को उगाते हैं तो इस प्रकार उगाई गई फसल को उद्यान फसल कहते हैं। केवल एक उद्यान फसल विस्तृत खेतों पर उगाई जाती हैं और इसमें प्रयुक्त तरीके बड़े ही वैज्ञानिक व अच्छे होते हैं। उद्यान फसल की विशेषता यह है कि इनमें अधिकाधिक पूँजी व सिखे हुए मजदूरों की सहायता से अधिकाधिक उपज करने की कोशिश की जाती है। कभी-कभी तो मशीनों का प्रयोग भी होता है और मजदूर तक बाहर से लाये जाते हैं। इस प्रकार के उद्यानों में उत्पन्न की गई फसल निर्यात कर दी जाती है और उस पर कुशल विशेषज्ञ का निरीक्षण व संचालन सदैव इस बात की देखरेख रखता है कि कम से कम लागत पर अधिक से अधिक और अच्छे से अच्छा माल तैयार हो।

पश्चिमी बंगाल और आसाम में यूरोपियन लोगों द्वारा स्थानीय मजदूरों की सहायता से विदेशी मंडियों के लिए उत्पन्न की गई चाय उद्यान फसल ही है। संसार की सबसे प्रमुख उद्यान फसल रबड़ है। सन् १८७६ में ब्राजील से रबड़ के वृक्षों के बीज लाकर क्यू स्थान पर लगाये गये और वहाँ से भारत और लंका को पौधे भेजे गये। इसके बाद इन देशों से मलाया और पूर्वी द्वीप समूह में पौधे भेज कर बाग लगाये गये और बहुत शीघ्र दक्षिणी-पूर्वी एशिया रबड का मुख्य प्राप्तिस्थान बन गया। यहाँ पर की उद्यान फसल रबड़ का इतना विकास हो जाने का प्रधान कारण निम्नलिखित है—(१) उपयुक्त जलवायु, (२) यूरोपियन पूँजी द्वारा यूरोपियन व्यवस्थापकों का निपुण प्रबन्ध, (३) सस्ते और विश्वसनीय मजदूर, (४) उद्यानों की तट तथा बन्दरगाह के समीप स्थित जिससे व्यापार आसानी से हो सकता है।

जिन विशेषताओं के कारण रबड़ की उद्यान फसल से संसार की ९५% प्रतिशत माँग पूर्ति होने लगी है वही अन्य उद्यान फसलों की सफलता के लिए भी जरूरी है।

Plateau (पठार) स्थल का विस्तृत ऊँचा भाग जिसका ऊपरी भाग चौड़ा और चपटा होता है पठार कहलाता है। प्रायः इसमें दो विशेषतायें पायी जाती हैं—प्रथम तो यह है कि ये समीपवर्ती निचले प्रदेशों से बहुत ढाल के साथ उठे हुए रहते हैं। दूसरे यह कि पठार क्षय चक्र की प्रथम अवस्था में होता है। साधारणतया समुद्रतल से ३००० फट तक की ऊँचाई वाले विस्तृत भाग पठारों के अन्तर्गत आते हैं किन्तु कोई-कोई पठार जैसे बोलीविया और तिब्बत के १०००० फोट से भी अधिक ऊँचे हैं।

कभी-कभी पठार पर से होकर नदियाँ और पर्वत श्रेणियाँ आरपार जाती हैं जैसे कि स्पेन के मेसेटा प्रदेश में। यदि पठार समाकार स्तरों का बना हो हुआ तो प्रारंभिक अवस्था में नदियाँ इसके बीच गहरी कन्दररायें काट लेती हैं और बाद में जैसे-जैसे नदी घाटियों की तलैटी चौड़ी होती जाती है, यह छोटे-छोटे मेसा या मेज की तरह के स्थल रूपों में कट जाता है। अन्तिम अवस्था में यह संपूर्ण प्रदेश मैदान सा हो जाता है जिसके बीच-बीच में बूटे उठे खड़े रहते हैं। जब कोई पठार चारों ओर से चट्टानों या तीव्र ढाल वाले पर्वत खंडों से घिरा रहता है तो उसे मेज प्रदेश कहते हैं।

चट्टानों के स्वभाव व रचना के अनुसार पठारों को दो प्रकार का कहा जा सकता है—(१) सामान्य या असंयुक्त पठार जिसमें एक ही प्रकार की चट्टानें होती हैं और ये वायु, हिम और लावा के निक्षेप द्वारा बन जाते हैं। (२) मिश्रित पठार जिनमें कई प्रकार की चट्टानें पायी जाती हैं। प्रायः समुद्र में कई बार विलीन होने तथा बाहर निकलने से बन जाते हैं। इस प्रकार की चट्टानों में आग्नेय परतदार और रूपान्तरित चट्टानें पास-पास पाई जाती हैं।

रचना विधि के अनुसार पठार तीन प्रकार के कहे जा सकते हैं—(१) जो पृथ्वी की गति के कारण समुद्र की सतह से स्थलखंड के बाहर निकल आने से बन जाते हैं। (२) जब बड़ा विस्तृत स्थल का टुकड़ा कई भूपटल की दरारों के मध्य में ऊपर उठ जाता है। इसे भूभाग निर्मित पठार कहते हैं। (३) जब भूपटल की दरारों से बाहर निकल कर लावा चारों ओर फैल जाता है तो इस प्रकार जो ऊँचा प्रदेश बनता है उसे लावा पठार कहते हैं। दक्षिणी भारत का लावा प्रदेश इसी प्रकार का पठार है और इसकी विशेषता यह है कि इसकी ऊँचाई विभिन्न स्थानों में सीढ़ियाँ जैसी होती हैं।

संरचना और बनावट के अनुसार पठारों के तीन प्रकार होते हैं—(१) अन्तरा पर्वतीय पठार (२) प्रान्तीय पठार और (३) महाद्वीपीय पठार (देखिये **Intermontane, Peidmont and Continental Plateau**) पठारों की बनावट पर जलवायु का बहुत अधिक असर पड़ता है। अधिकांश पठार सूखे होते हैं। इसका कारण यह है कि कुछ पठार तो व्यापारिक हवाओं के मार्ग में पड़ते हैं और सूखे रह जाते हैं। कुछ पठार पर्वतों से घिरे होने के कारण हवाओं के वृष्टिछाया वाले भाग में पड़ जाते हैं। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ अधिक समय तक पठार की विशेषतायें नहीं रह सकतीं। उन पठारों को नदियाँ काट-छाँट कर ऊबड़-खाबड़ बना देती हैं। जैसे चेरापूँजी का पठार या आस्ट्रेलिया के पठार का पूर्वी भाग। पठारों से कई आर्थिक लाभ हैं। ऊँचाई के कारण पठार नीची भूमि की अपेक्षा अधिक ठंडे होते हैं। कड़ी चट्टानों से बने हुए पठारों से इमारती पत्थर मिलते हैं और बहुत सी धातुओं की खान पायी जाती है। मैसूर का पठार सोने के लिए, बिहार और उड़ीसा के पठार लोहे तथा कोयले के लिए और अफरीका के पठार हीरे के लिए प्रसिद्ध हैं। मध्य भारत के पठार में मैंगनीज, बोलीविया के पठार में टीन, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और कनाडा के पठार में सोना इनके आर्थिक महत्व के अन्य उदाहरण हैं।

Playa (प्लाया) पर्वतों द्वारा घिरे हुए निम्न प्रदेश में सब ओर से बह कर आने वाली नदियों के जल के भर जाने से एक उथली झील सी बन जाती है। इसे प्लाया कहते हैं। ये उष्ण मरुस्थलीय प्रदेशों के आन्तरिक जल प्रवाह क्षेत्र में विशेष रूप से बन जाती हैं। शुष्क प्रदेशों की नदियों में इतनी शक्ति तो होती नहीं कि वे समुद्र तक बह कर जा सकें। वे कभी-कभी तो बहती हैं लेकिन जब कभी भी बहती हैं तो इनमें जल की राशि बहुत अधिक होती है। फलतः इनका जल छिछले बेसिन में पहुँच कर फैल जाता है और प्लाया का निर्माण हो जाता है। जब कभी भीषण वर्षा होती है या जब कभी नदियाँ बाढ़ में बहती हैं तब तो इनमें पानी भर जाता है परन्तु फौरन ही शुष्क मौसम आने पर ये सूख जाती हैं। जब प्लाया में पानी भरा रहता है तब भी वह कुछ विशेष गहरा नहीं होता। प्रायः इनमें जल उथला और दलदली होता है। इनमें नमक का अंश अधिक होता है और सूख जाने पर नमक की पपड़ी जमी रह जाती है जो खूब चमकती है। पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र के ग्रेट बेसिन में नेवदा और यूताह रियासतों में बहुत से प्लाया हैं।

Plucking (खसोटन) जब कभी कोई हिमनदी किसी चट्टानी प्रदेश से होकर बहती है तो सके अन्दर शिलाखंड रगड़ खाते चले आते हैं। इन शिलाखंडों की सहायता से हिम नदी आवरणक्षय करती है और अपनी तलैटी में जगह-जगह टुकड़े नोचती चलती है। इस क्रिया को खसोटन कहते हैं और सके द्वारा हिम नदी को न केवल शिलाखंड ही प्राप्त

होते हैं बल्कि तलैटी में जगह-जगह गड्ढ भी बने रह जाते हैं। खमोटन क्रिया की तीव्रता तलैटी की बनावट व उस में पायी जाने वाली चट्टानों के स्वभाव पर निर्भर रहती है।

Plum Rains (**आड़ू की वर्षा**) जापान में गर्मी के मौसम में शुरू-शुरू में होने वाली वर्षा को आड़ू की वर्षा कहते हैं। एशिया महाद्वीप में उत्पन्न चक्रवात जब मध्य चीन पर से होते हुए पूर्व में पीत सागर को पार करते हैं तो उनमें जलवाष्प आ जाता है और फलतः जापान पहुँचने पर वर्षा कर देती हैं। इस काल में अक्सर वर्षा होती है और आकाश में मेघ छाये रहते हैं। मका फल यह होता है कि वायुमंडल बड़ा ही नम रहता है। हमेशा मेघ छाये रहने के कारण गर्मी का तापक्रम अधिक नहीं होने पाता। चूँकि यह वर्षा उस समय होती है जब आड़ू की फसल पकने को आती है, इसलिए इसे आड़ू की वर्षा कहते हैं। इसी समय धान के पौधों को भी एक स्थान से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाया जाता है। इस प्रकार चावल की फसल के लिए भी आड़ू की वर्षा बड़ी ही महत्वपूर्ण होती है।

Plutonic Rocks (**पातालीय चट्टानें**) ज्वालामुखी से निकलने वाला लावा जिसमें बहुत-सी गैस भी मिली रहती है प्रायः भूमि के भीतर ही भीतर घूमा करता है और धरातल पर आने का मार्ग ढूँढ़ा करता है। जब यह मैग्मा धरातल तक नहीं पहुँच पाता बल्कि अत्यन्त गहरे स्थानों पर ही रह जाता है तो वहाँ भीतर ही भीतर ठण्डा होकर कड़ा पड़ जाता है। अत्यन्त गहराई पर तापक्रम अधिक होने के कारण इसको ठण्डा होने में बहुत समय लगता है।

धीरे-धीरे ठण्डा होने के कारण इन में उपस्थित खनिज पूर्णतया स्फट या रवे बन जाते हैं। इस प्रकार यह चट्टान न केवल बहुत कड़ी ही होती है बल्कि इसमें स्फट या रवे काफी बड़े-बड़े होते हैं। इस प्रकार बनी रवेदार व कड़ी चट्टानों को पातालीय चट्टान कहते हैं। ग्रेनाइट इनका सब से अच्छा उदाहरण है। कड़ी होने के कारण ये ऋतु का बड़ी सफलता से सानना कर लेती हैं। परन्तु ऊपर की चट्टानों के घिसकर हट जाने पर ही ये ऊपरी धरातल पर पहुँचती हैं।

यह चट्टान कठोर, मजबूत और भारी होती है। इसके ऊपर ऋतुप्रहार का असर देर में होता है और इसलिए इसका प्रयोग प्रायः उन इमारतों के लिये होता है जहाँ आवरण क्षय का अधिक डर रहता है। समुद्री दीवारें, समुद्री पुल, प्रकाशस्तम्भ तथा समुद्री सीढ़ियाँ आदि पातालीय चट्टान ग्रेनाइट की ही बनाई जाती हैं।

जहाँ पातालीय चट्टानें धरातल पर आ गई हैं वहाँ पर वनस्पति कुछ भी नहीं होती क्योंकि देर में घिसने के कारण इनसे मिट्टी अच्छी नहीं बनती। प्रायः इनके ऊपर की मिट्टी बहुत कम गहरी होती है। इन चट्टानों में फेल्सफार का अंश होता है जिसके नष्ट होने पर कभी-कभी चीनी मिट्टी बन जाती है जो अनेक काम में आती है।

Pluvial (**प्लूवियल**) वर्षा के कारण वर्षा से सम्बन्धित या वर्षा के साथ वाली दशा को प्लूवियल कहते हैं।

Pluviometric Co-efficient (**जलवृष्टि का मध्यम मान**) एक स्थान पर एक विशेष काल में होने वाली वर्षा के औसत को जलवृष्टि का मध्यम मान कहते हैं। यदि वर्षा की वार्षिक मात्रा को साल के बारह महीनों में बराबर से बाँट दिया जाय तो उसे सामान्य वर्षा कहेंगे और यह मध्यमान सामान्य वर्षा के प्रतिशत के रूप से व्यक्त किया जाता है।

Pocket Beaches (**छोटे बालू तट**) चट्टानों से बने तटों के किनारे-किनारे शिलाखंडों और कंकड़-पत्थर के तट बन जाते हैं। वास्तव में लहरों द्वारा ये छोटी-छोटी

कटान में पहुँचा दी जाती हैं परन्तु सँकरी कटान में प्रवेश न कर सकने के कारण कटान के सिरे पर बालू और बजरी के निक्षेप से तट बन जाते हैं। इन्हें छोटे बालू तट कहते हैं। (देखिये Crescent Beaches)

Podzol (पाडजॉल) उपध्रुवीय जलवायु के प्रदेशों में पाई जाने वाली मिट्टी को पाडजॉल कहते हैं। यह मिट्टी नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वनों की प्राकृतिक वनस्पति से प्रभावित होती है। इस मिट्टी का रंग गहरा भूरा होता है और इसमें वनस्पति के अंश की कमी रहती है। पेड़ों से झड़ी हुई पत्तियों का आक्सीजनीकरण होता रहता है। इस कारण उनसे वनस्पति का अंश बहुत कम प्राप्त हो पाता है। जड़ों के द्वारा ऊपरी पर्त में वनस्पति अंश की वृद्धि इसलिए नहीं हो पाती क्योंकि जड़ें मिट्टी की निचली तहों तक समाई रहती हैं।

यह मिट्टी उन प्रदेशों में पाई जाती है जहाँ वर्षा तो काफी होती है परन्तु वाष्पीकरण नहीं होता। फल यह होता है कि ऊपरी पर्तों के नमक पानी के साथ नीचे को पहुँच जाते हैं और भूमि खेती के लिए बेकार हो जाती है। साधारणतया यह भूमि बड़ी ही अनुपजाऊ होती है। उत्तरी कनाडा और उत्तरी रूस के विस्तृत भूभाग में पाडजाल मिट्टी पाई जाती है।

Point (बिन्दु) (१) अन्तरीप (२) ध्रुव घड़ी की विभाजक रेखाओं या बत्तीस दिशाओं में से एक को बिन्दु कहते हैं।

Polar Front (ध्रुवीय सीमान्त) शीतोष्ण कटिबंध में ध्रुवीय प्रदेशों से ठंडी हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण की तरफ और दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर की तरफ चलती हैं। इन हवाओं को दक्षिण की ओर से बहने वाली गरम पछुआ हवायें मिलती हैं। इन गरम हवाओं का प्रवाह ध्रुवों की तरफ होता है। इन दोनों प्रकार की हवाओं के बीच की सीमा को ध्रुवीय सीमान्त कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है पछुआँ हवाओं और दक्षिणी-पूर्वी या उत्तरी-पूर्वी ध्रुवीय हवाओं की मिलन रेखा को ध्रुवीय सीमान्त कहते हैं। उत्तरी अटलाण्टिक महासागर में यह सीमा ग्रीनलैण्ड के हिम आवरण के कारण कई अक्षांशों तक फैली हुई है।

यह सीमा सीधी नहीं होती किन्तु लहरदार टेढ़ी-मेढ़ी होती है। शीतल ध्रुवीय वायु जब अपेक्षाकृत गरम महासागरों के ऊपर से होकर गुजरती है तो इसका निचला भाग गरम होकर ऊपर को फैलता है और इसका मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा या लहरदार हो जाता है। दूसरी बात यह है कि यह सीमा परिवर्त्तनशील होती है और इसी पर चक्रवात बन जाते हैं। शीतोष्ण कटिबंधों के चक्रवातों का सबसे बड़ा केन्द्र यही ध्रुवीय सीमान्त हैं। इसके दो भाग होते हैं—गरम हवा वाले भाग को गरम सीमान्त कहते हैं और ठंडी हवा वाले भाग को शीत सीमान्त कहते हैं। (देखिये Cold Front, Warm Front)

Polar Wind (ध्रुवीय वायु) उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में अत्यधिक शीत होने के कारण उच्च भार रहता है और इसलिये यहाँ से हवायें शीतोष्ण कटिबंध की ओर बहने लगती हैं। साधारणतया उत्तरी गोलार्द्ध में ये हवायें उत्तर-पूर्व से और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्व से बहती हैं। ये ध्रुवीय हवायें बहुत ठंडी होती हैं और जहाँ कहीं भी वे रोक-टोक पहुँच जाती हैं। वहाँ इनके कारण तापक्रम बड़ा नीचे हो जाता है और बर्फ तक जम जाती है। उत्तरी कनाडा और मध्य एशिया तथा साइबेरिया में इन्हीं हवाओं के कारण जाड़ें की ऋतु बड़ी ही कठोर होती है।

Polder (पोल्डर) हालैन्ड में समुद्र या झील को सुखाकर प्राप्त की गई शुष्क

भूमि को पोल्डर कहते हैं। भूमि को बाँध द्वारा घेर लिया जाता है ताकि इसके ऊपर पानी न चढ़ आये। इसके बाद पानी को नहरों में पम्प द्वारा निकाल दिया जाता है। ये नहरें बाँध के बराबर-बराबर चलती हैं और इनके द्वारा गमनागमन होता है। ये पोल्डर क्षेत्र साधारणतया बड़े उपजाऊ होते हैं और इन पर या तो खेती की जाती है या पशु चराये जाते हैं। हालैंड के आर्थिक जीवन में इनका बड़ा महत्व है।

Poles (ध्रुव) पृथ्वी की धुरी के दो सिरे ध्रुव कहलाते हैं। उत्तरी सिरे को उत्तरी ध्रुव कहते हैं और दक्षिणी सिरे को दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। ये दोनों ध्रुव स्थिर रहते हैं जब कि पृथ्वी का प्रत्येक बिन्दु पश्चिम से पूर्व की ओर घूमा करता है। इनध्रुवों पर ६ महीना रात और ६ महीना दिन रहता है। ६ महीने तक सूर्य उत्तरी ध्रुव पर चमकता है। और छ महीनेतक दक्षिणी ध्रुव पर। इनका अक्षांश ९०° और देशान्तर शून्य होता है। भूमध्य रेखा से दूर होने के कारण और सूर्य की किरणों के तिरछी होकर पड़ने से यहाँ प्राय: सभी समय घोर जाड़ा पड़ता रहता है। (देखिये North Pole, South Pole)

Polestar (ध्रुवतारा) उत्तरी ध्रुव के शिरोबिन्दु पर दिखलाई पड़ने वाले तारे को ध्रुव तारा कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में पृथ्वी के धरातल के किसी भी बिन्दु से ध्रुव-तारा को देख कर सच्चे उत्तर का पता लगाया जा सकता है। यदि कोई मनुष्य भूमध्यरेखा पर खड़ा हो तो उसको ध्रुवतारा क्षितिज पर दिखाई देगा। भूमध्यरेखा से उत्तर की ओर एक-एक अंश बढ़ने पर ध्रुवतारा भी क्रमश: एक-एक अंश ऊँचा होता जायेगा। यहाँ तक कि ध्रुव तक पहुँचने-पहुँचने वह तारा ठीक सिर पर आ जायेगा। इसलिए यदि हम उत्तरीय गोलार्द्ध में ध्रुवतारे की ओर चलें तो हम सच्चे उत्तर की ओर चलते हैं।

किसी भी स्थान पर क्षितिज के ऊपर ध्रुवतारे की ऊँचाई वहाँ के अक्षांश के बराबर होती है और भूमध्यरेखा पर इसकी कोई भी ऊँचाई नहीं होती। यह क्षितिज पर रहता है। इस लिए उत्तरी गोलार्द्ध में किसी स्थान का अक्षांश निकालने के लिए वहाँ के क्षितिज के उत्तरी बिन्दु पर ध्रुवतारे की ऊँचाई जान लेना काफी होगा।

ध्रुवतारे की स्थिति जानने के लिए सप्तऋषि तारक मण्डल के दो निर्देशक तारों से होती हुई एक काल्पनिक रेखा खींचनी चाहिये और इसे बढ़ाकर पँचगुनी कर देना चाहिये तो यह ध्रुवतारा से होती हुई जायेगी। दक्षिणी गोलार्द्ध में भी इस प्रकार की रेखा खींच कर दिशा का ज्ञान किया जा सकता है परन्तु दक्षिणी ध्रुव के शिरोबिन्दु पर ऐसा कोई ध्रुवतारा नहीं है। (देखिये Southern Cross)

Political Geography (राजनीतिक भूगोल) (१) मानव भूगोल की वह शाखा जो देश-प्रदेश की सीमा, प्रादेशिक विभाग, राज्य विस्तार और राष्ट्रीय साधनों से सम्बन्ध रखती है उसे राजनीतिक भूगोल कहते हैं।

(२) मानव भूगोल पर राजनीतिक क्रियाओं के प्रभाव व प्रतिक्रिया के अध्ययन को राजनीतिक भूगोल कहते हैं।

Poljen (पोल्जे) कार्स्ट प्रदेश में ऊपर से ढका हुआ गड्ढा पोल्जे कहलाता है। यह डोलाइन (Doline) की ही तरह होता है परन्तु इसकी तली सपाट और यह कई मील लम्बे होते हैं। कभी-कभी तो ये कई सौ वर्ग मील के क्षेत्रफल में फैले होते हैं। यदि ऊपर से देखा जाय तो ये बहुत गहरे कुँये की तरह दिखलाई पड़ते हैं जिन में एक ओर जलधारा प्रवेश करती है और दूसरी ओर से विलीन हो जाती है।

गहरी वर्षा के बाद या बसन्त ऋतु में बर्फ के पिघलने के बाद इन पोल्जे में झील बन जाती है जो शीघ्र ही विलीन भी हो जाती है। अक्सर इसकी तली पर लाल चिकनी मिट्टी की तह

फैली होती है। यह मिट्टी उपजाऊ होती है और इसे टेरा रोसा कहते हैं। यह मिट्टी चूने के घुलने पर बन जाती है।

पोल्जे प्रायः दो प्रकार से बनते हैं—(१) **आवरणक्षय द्वारा**—कार्बन डाइ आक्साइड मिला हुआ जल जब चूने, खड़िया या सिलखरी की चट्टानों से बने प्रदेश से प्रवाहित होता है तो वह धरातल को घुलाकर बड़े-बड़े गड्ढे बना देता है जो कालान्तर में पोल्जे का रूप धारण कर लेते हैं।

(२) **भूपटल की गतियों द्वारा**—भूगर्भ की आकस्मिक या मन्द गतियों के कारण जब कभी चूने की चट्टान के प्रदेश का कुछ भाग अन्दर को धँस जाता है तो गड्ढे बन जाते हैं और बाद में गर्भवर्ती जल द्वारा इसकी गहराई, लम्बाई और चौड़ाई बढ़ती जाती है।

कभी-कभी भूल से आवरण क्षय द्वारा बने पोल्जे को अन्ध घाटी कहते हैं। (देखिये Blind Valley)

Polyconic Projection (**पालीकानिक अंकन**) पालीकानिक अंकन साधारण शंक्वाकार अंकन का संशोधित रूप है जिसे फर्डीनान्ड हैसलर नामक एक अमरीकी मानचित्रकार ने निकाला था। इसका सामान्य नियम यह है कि जितनी अक्षांश रेखायें हैं उतने ही खोखले शंकु एक के ऊपर एक करके रख दिये जाते हैं। इस प्रकार सभी शंकु विभिन्न अक्षांशों पर ग्लोब को छूते रहते हैं और सभी समानान्तर रेखायें वास्तविक हो जाती हैं।

इस अंकन की विशेषतायें निम्नलिखित हैं:—

(१) इसमें प्रत्येक अक्षांश रेखा पर देशान्तर रेखाओं के बीच की दूरी वही होती है जो ग्लोब पर।

(२) केन्द्रीय मध्यान्हरेखा को यथार्थ रूप से सही भागों में बाँटते हैं और यही बात प्रत्येक अक्षांश के विभाजन के बारे में भी सही है।

(३) केन्द्रीय मध्यान्ह रेखा को छोड़कर अन्य सभी देशान्तर रेखायें मुड़ी हुई धनुषाकार होती हैं। ये उसी प्रकार खींची जाती हैं जैसे बोनीज अंकन में।

(४) अक्षांश रेखायें वृत्ताकार अवश्य होती हैं परन्तु समकेन्द्र वृत्त नहीं।

(५) केन्द्रीय मध्यान्ह रेखा के इधर या उधर जाने पर अक्षांशों के बीच का अन्तर बढ़ता जाता है। दूसरी बात यह है कि प्रथम ३०° देशान्तर रेखाओं के बाद देशान्तर रेखाओं का झुकाव या मोड़ अधिकाधिक बढ़ता जाता है।

यह अंकन न तो समाकार होता है और न सम क्षेत्रफल ही। यह छोटे क्षेत्रों के लिये बड़ा ही उपयुक्त होता है। इसी कारण इसे भमित चित्रों के बनाने में प्रयोग किया जाता है। तालिकाओं की सहायता से इसे बड़ी जल्दी बनाया जा सकता है। पृथ्वी के विस्तार और आकार के अनुसार इसकी तालिका बताई जा सकती है और प्रत्येक समानान्तर के लिए उस अक्षांश को जानना ही काफी होता है। इसका केन्द्र नहीं ढूँढना पड़ता। इसका दूसरा गुण या लाभ यह है कि उत्तर-दक्षिण विस्तार या पूर्व-पश्चिम विस्तार के अलग-अलग मानचित्र सीमा पर आसानी से मिलाये जा सकते हैं। चूँकि केन्द्रीय मध्यान्हरेखा के दायें बायें देशान्तर रेखायें उसी प्रकार विभाजित की जाती हैं और विभिन्न अक्षांश रेखायें भी यथार्थतः विभाजित होती हैं इसलिए भमित चित्रों के विभिन्न कागज उत्तरी व दक्षिणी किनारों पर तो बिल्कुल ठीक बैठ जाते हैं और पूर्वी-पश्चिमी किनारों पर मोड़दार तरीके से ठीक बैठते हैं।

परन्तु इसमें कुछ दोष भी हैं—(१) चूँकि अक्षांश का मानदण्ड तो सही है पर देशान्तर का मानदण्ड ठीक नहीं इसलिए क्षेत्रफल ठीक-ठीक नहीं दिखलाये जाते। (२) चूँकि देशांतर और अक्षांश रेखायें समकोण पर एक-दूसरे को नहीं काटतीं और केंद्रीय मध्यान्ह रेखा से पूर्व

या पश्चिम की ओर उनका मोड़ बढ़ता जाता है इसलिये इस पर अंकित प्रदेशों के आकार बिगड़ जाते हैं। वास्तव में केन्द्रीय मध्यान्ह रेखा के दायें और बायें केवल ३०° देशान्तर तक के देशों के लिये ही यह ठीक रहता है। आकार ध्रुवीय सीमाओं की तरफ भी बिगड जाता है। इससे यह केवल ध्रुवों में २०° निम्न अक्षांशों तक के लिये ही उपयुक्त रहता है। इस पर यूरोप का मानचित्र ठीक-ठीक बनाया जा सकता है।

इसका संशोधित रूप अन्तर्राष्ट्रीय भूमिति चित्रों में प्रयोग किया जाता है और उसे अन्तर्राष्ट्रीय अंकन कहते हैं।

Ponente (पोनन्ट) पोनन्ट भूमध्य सागरीय क्षेत्र में बहने वाली एक स्थानीय वायु है जो सदैव पश्चिम से चलती है।

Ponor (पोनर) कार्स्ट प्रदेश में चूने की चट्टानों के घुल जाने से गड्ढे गहरे हो जाते हैं और कालान्तर में एक कुआँ-सा बन जाता है जो काफी गहरा होता है और ऊपर से नीचे को सीधा लम्बरूप स्थित रहता है। इसमें गिरकर सतह की जलधारायें भूगर्भ में विलीन हो जाती हैं। इन्हें पोनर कहते हैं।

Pontoon Bridge (नाव का पुल) नदियों को पार करने के लिए नावें रख कर जो मार्ग बना लेते हैं उसे नाव का पुल कहते हैं। नाव के पुल बहुधा अस्थायी होते हैं और बाढ़ के समय बिल्कुल ही बेकार हो जाते हैं। ये तो उस समय बनाये जाते हैं जब कोई मेला वगैरह होता है या जब सेना का एक पार से दूसरे पार जाना होता है।

Population (जनसंख्या) किसी स्थान पर रहने बसने वाले लोगों की वहाँ की जनसंख्या या आबादी कहते हैं। मनुष्य प्रायः वहीं रहना चाहता है जहाँ उसे अपने रहने, खाने-पीने और जीविकोपार्जन की सुविधा मिलती है। किसी भी प्रदेश में जनसंख्या का वितरण व घनत्व वहाँ की स्थिति, प्राकृतिक बनावट, जलवायु, वनस्पति और जीवजन्तुओं पर निर्भर रहती है।

किसी भी देश के उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण शक्ति वहाँ की जनसंख्या होती है। प्राकृतिक साधनों का उपयोग तथा देश की आर्थिक व व्यापारिक उन्नति वहाँ की जनसंख्या के वितरण, घनत्व तथा लोगों के स्वभाव पर निर्भर रहती है। वाणिज्य का विस्तार व विकास भी प्रायः घने बसे हुये देशों में ही हुआ करता है। कम आबादी के देशों में क्रय-विक्रय की आवश्यकता नहीं होती। संसार के घने बसे हुये भाग प्रायः निम्नलिखित ३ प्रकार के क्षेत्रों में पाये जाते हैं:—

(१) शिल्प उद्योगों के आधार पर लोहे कोयले के खानों के निकट,

(२) व्यापारिक मार्गों की सुविधा के अनुसार समुद्रतटों पर और

(३) खेती व अन्य व्यवसायों के कारण मैदानी भागों में।

इसके विपरीत कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहाँ जीवन की मूल आवश्यकताओं व सुविधाओं के अभाव में आबादी इतनी बिखरी हुई है कि मनुष्य का जीवन अकेला और नीरस सा हो जाता है।

जनसंख्या के विन्यास से सम्बन्धित अन्य समस्यायें शिक्षा की दशा, मृत्यु की औसत आयु तथा जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि है। इन समस्याओं से सर्वोपरि वह समस्या है कि किसी देश में भूमि के विस्तार के अनुसार जनसंख्या का दबाव अधिक है या कम। संसार की जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और इस कारण संसार में भोजन का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। प्रतिदिन इस दुनिया में ५५००० अधिक व्यक्ति आ जाते हैं परन्तु इस नव-जात जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन की वृद्धि नहीं हो पाती। इस समस्या के विषय में विशेषज्ञों का विचार है कि जनसंख्या की बढ़ती को कम करने के दो ही तरीके हैं—महायुद्ध

या महामारी। परन्तु अब गर्भ निरोध की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस समस्या के विषय में निम्नलिखित तीन दृष्टिकोण विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं—(१) जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ संसार के प्राकृतिक साधन क्षीण होते जाते हैं। इसलिये गर्भ निरोध द्वारा वृद्धि को रोकना चाहिये। (२) संसार की जनसंख्या का उचित वितरण तथा वैज्ञानिक उपायों द्वारा भोज्यपदार्थों का उत्पादन बढ़ाकर समस्या का हल किया जा सकता है। (३) मनुष्य की और विज्ञान का भविष्य महान है और बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रश्न उस समय सर्वथा लुप्त हो जायगा जब कि सहारा और टुन्ड्रा जैसे मरुस्थलों को भी खेती योग्य बनाया जा सकेगा परन्तु जनसंख्या की बढ़ोतरी की दर में बड़ी विषमता पाई जाती है। कहीं वृद्धि का दर कम है तो कहीं ज्यादा। एक देश में कुछ जातियों में जनसंख्या की वृद्धि औरों की अपेक्षा अधिक है।

जनसंख्या का घनत्व इसलिए महत्वपूर्ण है कि बिना पूँजी और मजदूर के प्राकृतिक साधनों का उपभोग सम्भव नहीं है और पूँजी व मजदूरों का प्रश्न जनसंख्या से सम्बन्धित है। साधारणतया यह देखा जाता है कि जहाँ घनत्व एक मनुष्य प्रतिवर्ग मील है वहाँ के लोगों का प्रधान धंधा शिकार करना व मछली पकड़ना होता है। पाँच से कम घनत्ववाले भागों में पशुपालन होता है और दस से कम घनत्व वाले प्रदेशों में विस्तृत प्रणाली का सहारा लिया जाता है। जहाँ प्रतिवर्गमील में दस से अधिक लोग निवास करते हैं वहाँ खेती तथा उद्योग-धन्धे उन्नति कर गये हैं।

Pororoca (पोरारका) अमेजन नदी में आने वाली ज्वारीय लहर या जलभित्ति को पोरारका कहते हैं। (देखिये Bore)

Port (बन्दरगाह) बन्दरगाह समुद्रतट पर स्थित देश के वे द्वार हैं जहाँ देश के आन्तरिक व समुद्री व्यापारिक मार्ग मिलते हैं। समुद्री जलमार्ग पर बन्दरगाह वे स्थान हैं जहाँ जहाजों को माल लादने व उतारने की सुविधा रहती है। अतएव आदर्श बन्दरगाह में आश्रय, सुरक्षा और विस्तृत स्थान का पर्याप्त प्रबन्ध होना चाहिये। बन्दरगाह की दूसरी महत्वपूर्ण आवश्यकता व्यापार का होना है। इनका पृष्ठ प्रदेश विशाल एवं सम्पन्न होना चाहिये। पृष्ठ प्रदेश से बंदरगाह तक यातायात की सुव्यवस्था रहनी चाहिये। इस प्रकार बन्दरगाहों के लिए निम्नलिखित तीनों बातों का होना अनिवार्य है—(१) काफी गहरा, चौड़ा और सुरक्षित पोताश्रय, (२) डॉक आदि के लिये विस्तृत स्थान और (३) संपन्न पृष्ठ प्रदेश।

वैसे तो सबसे साधारण प्रकार मछली पकड़ने का बन्दरगाह होता है परन्तु स्थिति के अनुसार बन्दरगाह तीन प्रकार के होते हैं—(१) समुद्री बन्दरगाह, (२) नदी बन्दरगाह और (३) नहरीय बन्दरगाह। इन बन्दरगाहों से होनेवाला व्यापार व कार्य भी विभिन्न होता है। कुछ संसार के विभिन्न महासागरीय मार्गों के मिलने स्थान पर स्थित बन्दरगाहों में पुर्नर्निर्यात व्यापार बढ़ जाता है। बन्दरगाहों को बहुत अधिक सुविधायें होने के कारण क्रमशः वे प्रमुख व्यापारिक औद्योगिक केन्द्र बन जाते हैं।

बन्दरगाहों की महत्ता और सम्पन्नता की तुलना के अनेक मापदंड हैं। एक वर्ष में बन्दरगाह पर आने-जाने वाले जहाजों की संख्या जहाजों के टन भार का योग, आयात-निर्यात मूल्य व भार के आधार पर बन्दरगाहों के महत्व को निर्धारित किया जाता है। वास्तव में इन में से किसी एक को पूर्णतया आधार स्वरूप नहीं लिया जा सकता। इन चारों बातों के सामूहिक मानदण्ड पर ही बन्दरगाहों की उन्नति व विकास का ज्ञान होता है। (देखिये Ocean Port, Port and Airport)

Portolan Chart (पोर्टोलन चित्र) मध्य युग में जब धार्मिक मानचित्र-कार अपने मतलब के चित्र बनाने में लगे थे उस समय एक नये प्रकार का मानचित्र बनने लगा जिसे पोर्टोलन चित्र कहते हैं। इन चित्रों को जिनोआ नौसेना के नाविकों व अफसरों ने बनाया और उस समय तक उपस्थित सभी मानचित्रों से ये अधिक सही थे। सबसे पुराना नमूना अज्ञात है परन्तु १६वीं सदी के बाद इसके बहुत से नमूने उपलब्ध होते हैं। इनमें से अधिकतर एक भेड़ी की खाल पर बने हुये हैं और इन पर भूमध्य व काला सागर प्रदेश तो बहुत ही यथार्थ रूप से दिखाया गया है परन्तु आन्ध्र महासागर से आयरलैंड तक का क्षेत्र उतना ठीक नहीं है।

चूँकि पोर्टोलन चित्र समुद्री क्षेत्रों के बारे में बने हुये हैं, इसलिए भूखंडों को झंडों, राजाओं की तस्वीरों या अन्य चिन्हों द्वारा अंकित करते हैं। केवल तटीय बन्दरगाहों और अन्तरीपों के नाम ही लिखे हुये मिलते हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनमें लम्ब रेखा और ध्रुव घड़ी के चित्र स्थान-स्थान पर बने रहते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानचित्र पूरा करने के बाद इन्हें बनाया गया ताकि नाविक को अपना मार्ग खोजने में सहायता मिले।

Pot Hole (भँवर छिद्र) ठोस चट्टान पर जब ऊपर से कोई जलप्रपात गिरता है तो उस की जल धारा से पत्थर या शिलाखंड नीचे की ठोस चट्टान पर नाचने लगता है और फलस्वरूप आधारतल की ठोस चट्टान में घिसाव के कारण एक छेद बन जाता है। इसे भँवर छिद्र कहते हैं। तेज बहनेवाली नदी की भँवर के कारण पत्थर बराबर उसी जगह घिसता रहता है और वहाँ से हटता नहीं। कभी-कभी चूने की चट्टानों से बन प्रदेश में बन गर्त य खंड को भी भँवर छिद्र ही कहते हैं।

Poultry Farming (मुर्गी पालना) मुर्गियाँ पालने का धन्धा प्राचीन प्रारम्भिक धन्धों में से हैं और यह खेती का ही एक अंग है। यह धन्धा विस्तृत खेती वाले देशों में तो सहायक होता है किन्तु सयत्न खेतीवाले देशों में यह मुख्य धंधे का महत्व रखता है। मांसाहारी देशों में प्रत्येक किसान कुछ न कुछ मुर्गियाँ अवश्य पालता है। बहुधा घर-घर या प्रत्यक खेत पर कुछ थोड़ी बहुत मुर्गियाँ रख ली जाती हैं और आसपास की सड़ी-गली वस्तुओं, घर के कूड़ाकरकट और जूठन तथा खेतों खलिहानों में बिखरे हुये दानों को चुग कर वे अंडे देती रहती हैं। इसमें कोई अधिक पूँजी तो लगती नहीं। अतएव यह थोड़ा बहुत सभी देशों में होता है। विशेषकर संयुक्त राष्ट्र, पश्चिमी यूरोप और पूर्वी एशिया में यह धन्धा महत्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्र के मक्का उत्पन्न करन वाले प्रदेश, कनाडा, चीन, हालैंड, डेनमार्क और आयरलैंड में असंख्य मुर्गियाँ पाली जाती हैं।

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि मुर्गी पालने का धन्धा उन्हीं देशों में अधिक होता है जहाँ आबादी घनी है और सयत्न खेती होती है। मुर्गी खेत तथा घर के कूड़े पर निर्वाह कर लेती है। किसान के घरवाले मुर्गियों की आसानी से देखभाल कर लेते हैं। केवल जाड़े में उनको ठंड से बचाने की आवश्यकता होती है। अंडे के बढ़ते हुये व्यापारी लोग इस धंधे की तरफ और भी आकर्षित हो रहे हैं। इधर इसका महत्व इतना बढ़ गया है कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उत्पन्न होने वाले अंडों का मूल्य वहाँ उत्पन्न होनेवाले लोहे से कहीं अधिक होता है।

इधर यह अनुभव किया गया कि विशेष देखभाल और सावधानी से अंडा का उत्पादन बहुत अधिक हो सकता है। शीत भण्डार रीति के सहारे अंडों को दूर-दूर तक भेजा जा सकता है। इसलिये अब कुछ देशों में इस धन्धे की व्यवस्था अच्छी हो चली है और बड़े-बड़े खेतों पर हजारों की संख्या में मुर्गियाँ पाली जाती हैं और बहुत प्रकार का बना

हुआ भोजन उन्हें खिलाया जाता है। वैज्ञानिक मुर्गीखानों में ३०००० अंडों तक की देखभाल एक ही आदमी कर सकता है। ऐसे यन्त्र भी तैयार कर लिए गये हैं जिनसे अंडे को गरमी पहुँचा कर बच्चे निकाल लिए जाते हैं। ऐसी दशा में मुर्गी केवल अंडा देने का ही कार्य करती है और वर्ष में एक मुर्गी से १०० बच्चे तक प्राप्त किये जा सकते हैं। फिर भी अंडा उत्पन्न करने और मुर्गी पालने का धंधा छोटे-मोटे तौर पर ही अधिक होता है।

Prairies (प्रेरी प्रदेश) उत्तरी अमेरिका के मध्यवर्त्ती घास के मैदानों को प्रेरी प्रदेश कहते हैं। प्रेरी प्रदेश की भूमि उपजाऊ और इन की बनावट हल्की ऊँची-नीची होती है। इन घास के मैदानों में लम्बी घास मिलती है जिसकी जड़ें बहुत लम्बी होती हैं। इनमें पेड़ों का अभाव रहता है।

प्रेरी प्रदेश का विस्तार कनाडा के अलबर्टा, ससकेचवान और मैनीटोवा के दक्षिणी भाग से लेकर मध्य संयुक्त राष्ट्र तक है। संयुक्त राष्ट्र में प्रेरी प्रदेश पश्चिम में राकी पर्वत माला की निचली पहाड़ियों से लेकर मिशीगन झील तक फैला हुआ है। यहाँ पर गर्मी के मौसम में हल्की बारिश होती है और कभी-कभी स्थानीय तौर पर सूखा भी पड़ जाता है। गर्मी के मौसम में तापक्रम ऊँचा रहता है तथा जाड़े में कड़ाके की सर्दी पड़ती है। इन दशाओं के कारण घास खूब उगती है और ये दशायें अनाज के उगाने में भी सहायक होती हैं। इसी कारण प्रेरी प्रदेश संसार के सबसे प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्र हो गये हैं। यहाँ की छोटी मुलायम बढ़िया घास पशु पालने के लिए बड़ी ही उपयोगी होती है।

शुरू में यहाँ के आदि निवासी रेड इंडियन शिकार करते थे परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता की प्रगति होती गई यहाँ पर भेड़, बकरी, गाय-बैल और घोड़े पाले जाने लगे। परन्तु फिर भी लोगों का जीवन खानाबदोश ही रहा और वर्षा की दशा के अनुसार चरागाहों के खोज में लोग इधर-उधर घूमते थे। लेकिन आजकल इन प्रदेशों में व्यापक खेती के द्वारा मशीनों की सहायता से विस्तृत क्षेत्रों पर अनाज और विशेषकर गेहूँ की खेती होने लगी। इसके फलस्वरूप यहाँ पर लोग स्थायी रूप से बस गये हैं। पशुपालन अभी भी होता है परन्तु अब वह गौण अथवा खेती का सहायक धंधा है। गोरी जाति के लोग जाकर बस गये हैं और अब इन मैदानों में सिंचाई, खाद व मशीनों के द्वारा उत्तम खेती होती है और फसलों की सबसे अधिक प्रति एकड़ उपज यहीं से प्राप्त होती है। प्रेरी प्रदेश वास्तव में वर्त्तमान संसार के अन्न भंडार हैं।

Precambrian Era (प्राचीनतम कल्प) प्रारम्भिक कल्प से पहिले और संसार के भूगर्भ के सर्वप्रथम कल्प को प्राचीनतम कल्प कहते हैं। अनुमानतः इसकी आयु पौने दो अरब वर्ष थी और इस काल में पृथ्वी का धरातल बन रहा था। इस कल्प की चट्टानें संसार के धरातल का आधार बनाती हैं और इतने नीचे दबी हुई हैं कि उनका देखना कठिन है। फिर भी पृथ्वी के धरातल के पंचमांश भाग में ये चट्टानें बाहर आ गई हैं। परन्तु इस कल्प के जीव-जन्तुओं व वनस्पति के विषय में ज्ञान अपूर्ण ही है। इस युग की चट्टानों में जीव अवशेष बिल्कुल नहीं मिलते। संभवतः जलवायु के भयानक होने के कारण तथा भूकम्प और ज्वालामुखी उद्‌गार के आते रहने के कारण यह युग जीवोत्पत्ति के बिल्कुल ही योग्य नहीं था।

इस कल्प के अन्त में चार खण्ड बन चुके थे। २० लाख वर्गमील में विस्तृत कनाडियन शील्ड थी। इसके अलावा बाल्टिक और साइबेरियन शील्ड तथा गोंडवाना प्रदेश अन्य तीन स्थलखंड थे।

इस कल्प की चट्टानों का विशेष आर्थिक महत्व होता है। ये चट्टानें धीरे-धीरे घिसती

हैं और पृथ्वी पर उपजाऊ मिट्टी बिछाती हैं। इसके अतिरिक्त इन चट्टानों में बहुत सी धातुयें पायी जाती हैं। उत्तरी अमरीका की कोयले की खानें इन्हीं चट्टानों में पाई जाती है। कहीं-कहीं इन्हीं चट्टानों में लोहे व सोने की खानें भी मिलती हैं। ट्रान्सवाल की धनी सुवर्ण खानें इन्हीं चट्टानों में पायी जाती हैं।

Precipitation (वृष्टि) यह सामान्य पारिभाषिक शब्द है और इसमें जलवृष्टि और तुषारवृष्टि दोनों ही सम्मिलित हैं। हवा की भाप जब जल के कणों के रूप में या तुषारकणों के रूप में भूतल पर बरसती हैं तो उसे वृष्टि कहते हैं। वृष्टि होने के लिए दो मुख्य नियमों की पूर्ति होनी चाहिये। पहिले तो वृष्टि के लिये भाप से लदी हवा होनी चाहियें और दूसरे कोई ऐसा साधन रहना चाहिये जिसके द्वारा वायु शीत हो जाय और द्रवीभवन होने लगे। भाप से लदी हुई हवा दो प्रकार से शीतल होती है—(१) ऊपर उठकर वायुमण्डल के शीतल और ऊपरी भागों में जाने से और (२) शीतल प्रदेशों की ओर जाने से। धरातल की गरमी से वायु गरम होकर ऊपर की ओर फैलती है और ऊपर पहुँचकर ठंढी हो जाती है। भूमध्यरेखा के आसपास इसी प्रकार वर्षा होती है और इसे वाहनिक वर्षा कहते हैं। दूसरे हवा के मार्ग में किसी पर्वत के आ जाने से उसे बाध्य होकर उठना पड़ता है और ऊपर जाकर ठण्ढी हो जाती है। इस प्रकार से जो वर्षा होती है उसे पर्वतीय वर्षा कहते हैं। तीसरे गरम अक्षांशों से ठण्ढी अक्षांशों की ओर चलने वाली हवा ठण्ढी होकर वर्षा करती है। पछँवा हवायें इसी प्रकार ठंढी होती हैं। चौथे गरम हवा और ठंढी हवा के मिलने पर हल्की होने के कारण गरम हवा को ऊपर चढ़ना पड़ता है और ऊपर जाने पर हवा ठण्ढी हो जाती है। इस प्रकार की वर्षा को चक्रवातीय वर्षा कहते हैं।

वृष्टि के लिए निम्नलिखित तीन दशाओं का होना आवश्यक है—(१) काफी वाष्पीकरण, (२) भाप से भरी हुई हवा का जल प्रदेश से स्थल खंड की ओर चलना, (३) हवा का तापक्रम इतना निम्न हो जाना कि भाप रह ही न सके। हवा के तापक्रम निम्न होने और द्रवीभवन होकर जलकणों के बनने तथा पृथ्वी पर वृष्टि के रूप में आने के बीच में चार स्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं—(१) ओसविन्दु के पहुँचने पर जलवाष्प का छोटे-छोटे मेघ कणों के रूप में द्रवीभूत होना, (२) सन्तृप्त हवा का बराबर ऊपर को उठना और मेघकणों को पीछे छोड़ते जाना, (३) इस प्रकार बनी हुई सन्तृप्त वायु में द्रवीभवन होते रहना और मेघकणों का मिलकर घना बनना, (४) इस प्रकार बने बादलों में जलकणों के सम्पर्क द्वारा पूर्णतया विद्युतमय होना और बादलों से पृथ्वी पर गिरना।

जब भाप के द्रवीभूत होते समय हवा का तापक्रम ३२०° फार्नहीट या उससे कम हो जाता है तो भाप हिमकणों के रूप में प्रकट होती है। कभी आँधी और बिजली की चमक के साथ जल ठोस ओलों के रूप में गिरता है। वायु की वेगवती धाराओं के शीघ्रतापूर्वक ऊपर-नीचे बहने से जल हिम के पतले-पतले परत के रूप में जम जाता है और ये परतें आपस में टकराकर या गुँथकर ओले का रूप धारण कर लेती हैं।

इस प्रकार वृष्टि के अन्तर्गत हिम, तुषार और ओले तथा जल सभी कुछ सम्मिलित हैं। वास्तव में बादलों, ओस और तुषारपात द्वारा उत्पन्न जलराशि को वृष्टि कहते हैं। वृष्टि को एक यन्त्र द्वारा नापा जाता है और इसे इंचों या मिलीमीटर में व्यक्त किया जाता है। कभी-कभी वर्षा शब्द का प्रयोग वृष्टि के अर्थ में करते हैं और इसके द्वारा सब प्रकार से प्राप्त जलराशि का भास करते हैं।

Pressure (वायुभार) देखिये (Atmospheric Pressure)

Pressure Gradient (वायुभार विस्तार) पृथ्वी के धरातल पर वायुभार के

वितरण को समभार रेखाओं द्वारा दिखलाया जाता है। भूमध्य रेखा के समानान्तर किसी विशेष दिशा में वायुभार परिवर्तन की गति को वायुभार कहते हैं। वायु ढाल से भार के उतार या चढ़ाव की दशा का ज्ञान होता है। जब समभार रेखायें पास-पास होती हैं तो वायुभार तीव्र होता है। इसके अर्थ यह हैं कि समभार दर्शक रेखाओं से समकोण में जगह-जगह वायुभार तेजी से बदलता जाता है। जब समभारदर्शक रेखायें दूर-दूर होती हैं तो वायुभार ढाल क्रमशः होता है यानी एक जगह से दूसरी जगह वायुभार में परिवर्तन धीरे-धीरे होता है।

इस प्रकार समभार दर्शक रेखाओं का वायुभार ढाल से वही सम्बन्ध है जो समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं का भूमि के ढाल से।

Pressure Changes (**वायुभार परिवर्त्तन**) वायुभार तापक्रम, ऊँचाई और जल-वाष्प के ऊपर निर्भर रहता है। यदि तापक्रम अधिक होगा तो वायुभार कम होगा और यदि तापक्रम कम होगा तो वायुभार अधिक होगा। वायु की ऊपरी पर्तों के भार से नीचे की पर्तें अधिक घनी और भारी हो जाती हैं और ऊपर की वायु फैली हुई हल्की रहती है। इस लिए समुद्रतल से ज्यों-ज्यों ऊँचे चढ़ते हैं त्यों-त्यों वायुभार कम होता जाता है। शुष्क वायु भाप से लदी हुई वायु की अपेक्षा भारी होती है। यदि किसी स्थान पर वायु में पानी की भाप अधिक मिल जाती है तो उस स्थान पर वायुभार कम हो जाता है।

तापक्रम, ऊँचाई और जलवाष्प की कमी-ज्यादती के अनुसार वायु का भार बदलता रहता है। इसे वायुभार परिवर्त्तन कहते हैं और इसको निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है :

(१) **मौसमी परिवर्त्तन**—जल-थल के वितरण के कारण और इस कारण कि जलथल की अपेक्षा देर में गरम होता है तथा देर में ही ठंडा होता है। जाड़े में स्थलखंड पर वायुभार अधिक हो जाता है और गर्मियों में जलाशयों पर वायुभार समीपवर्त्ती भूखंडों की अपेक्षा अधिक रहता है।

(२) **प्रादेशिक वायुभार परिवर्त्तन**—पृथ्वी पर निम्नभार उच्च भारपेटियाँ जाड़े और गर्मी में सूर्य के भूमध्यरेखा के ऊपर या दक्षिण में चमकने के अनुसार कुछ उत्तर या दक्षिण को खिसक जाती है। जब सूर्य कर्क रेखा पर चमकता है तो वायुभार पेटियाँ कुछ उत्तर की ओर बढ़ जाती हैं और जाड़े में जब सूर्य मकररेखा पर चमकता है तो दक्षिण की ओर।

(३) **तूफानी या चक्रवातीय वायुभार परिवर्त्तन**—शीतोष्ण कटिबंध में चक्रवात व विपरीत चक्रवात प्रचलित हवाओं के साथ सदैव चलते रहते हैं। इनके आने से स्थायी वायुभार पेटियों में परिवर्त्तन हो जाता है परन्तु यह परिवर्त्तन २४ से ३६ घंटे तक ही रहता है। इस परिवर्त्तन की औसत अवधि १८ घंटा कही जा सकती है। इसी प्रकार जलभँवर, टारनेडो या बवण्डर आदि तूफानों के आने पर कुछ समय के लिये वायुभार दशा बदल जाती है परन्तु यह परिवर्त्तन एक मिनट से अधिक नहीं रहता यद्यपि यह बड़ी ही तीव्र व गम्भीर होता है।

(४) **वायुभार परिवर्तन लहर**—वायुमण्डल की परतों के घनत्व में फरक होने से छोटे-मोटे परिवर्त्तन हो जाते हैं। जाड़े की ऋतु में इस प्रकार के परिवर्तन लहर बहुत होते हैं और अक्सर कई घंटों या दिनों तक बने रहते हैं। यद्यपि परिवर्त्तन की गति एक मिलीमीटर से ३ मिलीमीटर तक ही होती है। (देखिये Barometric Ripples)

(५) **दैनिक परिवर्त्तन**—प्रत्येक चौबीस घन्टों में तापक्रम और सूर्य प्रकाश की अधिकता या कमी के अनुसार एक समय तो उच्चभार होता है और दूसरे समय निम्न भार। यह दो प्रकार के होते हैं—(अ) ऊँचाई के स्थानों पर गर्मी के समय उच्चभार और ठंडक के समय निम्नभार होता है। (देखिये Inversion of Temperature) (ब) समुद्रतल पर

इसका बिल्कुल उल्टा होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल के ४ बजे दिन से १० बजे तक और शाम के ४ बजे से रात के १० बजे तक वायुभार बढ़ता है। इसके विपरीत दिन के १० बजे से शाम के चार बजे तक और रात के १० बजे से प्रातः काल के ४ बजे तक वायुभार घटता है। उच्च और निम्न भार का समय मौसम, समुद्रतल से ऊँचाई और ऋतु के ऊपर निर्भर होता है। दैनिक परिवर्त्तन के दो कारण हैं—(१) वायु की समानता प्रवाह धारायें, (२) वायु की संवाहन धाराओं का समानान्तर धाराओं से मिलना।

(६) ज्वारीय परिवर्त्तन—सूर्य और चन्द्रमा का आकर्षण भूमध्य रेखा पर सबसे अधिक रहता है परन्तु जैसे-जैसे हम उत्तर या दक्षिण को जाते हैं यह कम होता जाता है। इसके अनुसार भूमध्यरेखीय सूर्य द्वारा उत्पन्न वायुभार .०१०९ मिलीमीटर और चन्द्रमा के द्वारा उत्पन्न वायुभार .०२५ मिलीमीटर होना चाहिये।

Pressure Tendency (भार दिशा) किसी विशेष स्थान पर ऋतु सम्बन्धी निरीक्षण से पहिले तीन घंटों में वायुभार के परिवर्त्तन को भार दिशा कहते हैं। एक ही क्षेत्र या प्रदेश में स्थित भिन्न-भिन्न स्थानों पर लिये गये वायुभार दिशा के आँकड़ों से यह पता चल जाता है कि किन प्रदेशों में वायुभार बढ़ता हुआ है और कहाँ घटता हुआ। (देखिये Isallobar)

Prevailing Wind (प्रचलित वायु) किसी विशेष स्थान या प्रदेश में जो वायु औरों की अपेक्षा अधिक स्थायी रूप से निरन्तर एक ही दिशा से बहती रहती है उसे प्रचलित वायु कहते हैं। प्रचलित वायु इतनी तीव्र व शक्तिशाली होती है कि प्रदेश विशेष के अन्य सभी वायु विक्षोभ व स्थानीय परिवर्त्तन इस के द्वारा दब जाते हैं और इसकी दिशा पर ही स्थान विशेष की जलवृष्टि व तापक्रम में परिवर्त्तन निर्भर रहता है।

Prime Meridian (प्रधान मध्यान्ह रेखा) लन्दन के पास ग्रीनविच होती हुई जो देशान्तर है उसे प्रधान देशान्तर या प्रधान मध्यान्हरेखा कहते हैं। सन् १८८४ में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि देशान्तर पर अंश या संख्यायें डालने के लिए ग्रीनविच के देशान्तर को प्रधान मान लिया जाय और उसी के आधार पर पूर्व व पश्चिम के देशान्तरों पर संख्यायें डाल दी जाएँ। इस प्रधान मध्यान्ह रेखा को शून्य अंश माना जाता है और यहाँ पर के समय को प्रामाणिक समय मानकर अन्य सभी स्थानों में उसका अनुसरण किया जाता है।

Primary Industry (मुख्य धंधा) जब मनुष्य अपने श्रम तथा पूँजी की सहायता से प्रकृति के द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तु को प्राप्त करता है तो उसे मुख्य धंधा कहते हैं। मुख्य धंधों में प्रकृति का भाग मुख्य होता है और श्रम तथा पूँजी का भाग गौण होता है। जब सभ्यता का विशेष विकास न हो पाया था मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकताओं भोजन, वस्त्र तथा निवासस्थान की पूर्ति का ढंग बहुत कुछ प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर रहता था। इस प्राकृतिक परिस्थिति के अन्तर्गत वनस्पति और जीव-जन्तुओं का विशेष महत्व है।

मनुष्य के मुख्य धंधे इस प्रकार हैं:—

(१) फल संग्रह करना—अतीत काल में प्रायः वनों से फल, शाक इत्यादि का संग्रह करके भोजन की आवश्यकता पूरी की जाती थी। आज भी अफ्रीका के जंगल निवासी इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं।

(२) शिकार करना—प्राचीन काल में मनुष्य अथवा जातियाँ छोटी टोली बनाकर

संसार के घास के मैदानों में पशुओं को ढूंढ़ते फिरते थे। रेड इन्डियन्स इसी प्रकार की जाति हैं। अधिक उत्तर में शिकार करना अब भी मुख्य धंधा है।

(३) **मछली पकड़ना**—समुद्र में मछलियों की विशाल राशि है और इसको प्राप्त करने के लिए केवल थोड़े से श्रम की आवश्यकता होती है। शीतोष्ण कटिबंधों में मछली पकड़ने का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है।

(४) **पशु पालना**—मनुष्य अनेक प्रकार के पशुओं को सवारी, दूध, मांस, और ऊन के लिए पालता है। इसमें गाय, बैल, घोड़े, ऊँट भेड़, बकरी आदि मुख्य हैं। मनुष्य श्रम द्वारा पशुओं की देख-रेख करता है और फिर उनसे तरह-तरह की चीजें प्राप्त करता है।

(५) **खेती करना**—भूमि को जोतकर, बीज बोकर फसल तैयार की जाती है और मनुष्य को भोजन आदि के लिए अनाज खेती से ही प्राप्त होता है। खेती में भूमि की प्रकृति व उपजाऊपन का भाग मुख्य होता है और कृषक का सफल प्रयत्न उसके प्रदेश की जलवायु सम्बन्धी दशाओं पर निर्भर रहता है। वह परिश्रम करके फसल बोता है, देख-रेख करता है और प्रकृति द्वारा उपजाये हुये अनाज को इकट्ठा करता है।

(६) **लकड़ी काटना**—वनों में अनेक प्रकार की व्यापारिक लकड़ी तथा बहुत सी गौण उपज मिलती है। कई प्रकार के रंग, गोंद, जड़ी-बूटी, लाख आदि वनों की गौण उपज हैं और प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुरूप ही मनुष्य वन सम्पत्ति को कट्ठा करता है।

(७) **खान खोदना**—भूगर्भ में और धरातल पर की विभिन्न चट्टानों में तरह-तरह के खनिज पाये जाते हैं। इनको विविध उद्योग-धंधों में मनुष्य कच्चे माल या शक्ति के रूप में प्रयोग करता है। इसलिये खनिजों की प्राकृतिक सम्पत्ति को मनुष्य खान खोदकर प्राप्त करता है।

इसके अलावा मुर्गी पालना, रेशम के कीड़े पालना तथा शहद की मक्खी पालना अन्य मुख्य धंधे हैं। इन मुख्य धंधों में से कुछ तो विशेषकर केवल पिछड़ी हुई जातियों द्वारा ही किये जाते हैं। परन्तु मुख्य धंधों के वैज्ञानिक रीतियों द्वारा नवीन प्रगति और स्फूर्ति पैदा कर दी गई है और फलतः देश-विदेश के सभ्य लोग उनके द्वारा अनेक प्रकार की वस्तुयें उत्पन्न करते हैं।

Prismatic Compass (**प्रिसमेटिक ध्रुवघड़ी**) प्रिसमेटिक ध्रुवघड़ी पैमाइश करने का एक यन्त्र है। इसमें और साधारण चुम्बकीय ध्रुवघड़ी में यह अन्तर है कि इसके एक सिरे पर एक छोटा शीशा लगा होता है और दूसरी ओर देखने के लिए छेद होता है। शीशे से बने छेद और देखने के छेद को मिलानेवाला तार इसके बीच से होकर गुजरती है जहाँ एक चुम्बक लगा रहता है। यह चुम्बक एक नुकीली धुरी पर सधा रहता है। इसके द्वारा पदार्थों व स्थलरूपों की दिशा नापी जाती है।

Production (**उत्पादन**) मुख्य या गौण धन्धे से प्राप्त वस्तु, सामग्री या राशि को उसका उत्पादन कहते हैं। विभिन्न धंधों के उत्पादन को व्यक्त करने के विभिन्न तरीके होते हैं और प्रत्येक का उत्पादन अलग-अलग दशाओं पर निर्भर रहता है। साधारणतया किसी पदार्थ का उत्पादन दैनिक, मासिक या वार्षिक हो सकता है। उत्पादन सामान्य रूप से प्रकृतिदत्त साधन की शक्ति, लगाई हुई पूँजी, श्रम, कार्यविधि, प्रबन्ध और संचालन पर निर्भर होता है। यही कारण है कि सभ्य व वैज्ञानिक ज्ञान में बढ़े-चढ़े देशों में असभ्य व पिछड़े हुये देशों की अपेक्षा उत्पादन अधिक है। मनुष्य की कार्यशक्ति और प्राकृतिक साधनों की सहूलियत के कारण ही शीतोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में उत्पादन अधिक है। इन

दशाओं के अतिरिक्त घरेलू व विदेशी माँग तथा सरकारी सहायता व संरक्षण का भी प्रभाव पड़ता है।

Productivity (उपजशक्ति) किसी भूमि क्षेत्र में उपस्थित फसल उगाने की शक्ति व क्षमता को उपजाऊपन या उपजशक्ति कहते हैं। भूमि का उपजाऊपन मिट्टी में उपस्थित वनस्पति या पौधों के भोजन पर निर्भर रहता है। इसके अलावा कणों की बनावट तथा जड़ों व जल की प्रवेश्य शक्ति भी उपजाऊपन को बढ़ाने में सहायक होती है।

भूमि में उपस्थित खनिज नमक और वनस्पति के सड़े-गले अंश से मिट्टी उपजाऊ होती है। यही पौधों का भोजन है। इसके अलावा भूमि में पानी सोखने व अन्दर ले जाकर रोके रखने की क्षमता उसकी उर्वरा शक्ति में सहायक होती है। मिट्टी में कणों की बनावट इस प्रकार होनी चाहिये कि न तो कण बहुत मोटे हों और न ही बहुत महीन। साथ-साथ कणों की बनावट सम होनी चाहिये जिसमें भूमि में कंकड़-पत्थर व ढोके मिले रहते हैं। वह मिट्टी उपजाऊ नहीं होती।

परन्तु यह कदापि भी नहीं कहा जा सकता कि किसी एक प्रकार की बनावट, कणों की रचना व नमक तथा वनस्पति अंश का अनुपात सभी प्रकार की फसलों के लिए अलग-अलग होता है। प्रायः उपजाऊपन की दो समस्यायें होती हैं, एक तो भूमि का कटाव और दूसरा बार-बार एक ही फसल के उगाते रहने पर भूमि की उर्वरा शक्ति का क्षीण होना। इसलिये भूमि के उपजाऊपन को कायम रखने के लिये खाद का प्रयोग, फसलों का हेर-फेर, भूमि को आराम देना और वृक्ष लगाकर भूमि की कटाव को रोकना आदि उपायों को काम में लाया जाता है।

Profile (River) (नदी ढाल खंड) नदी के उद्गम स्थान से उसके मुहाने तक नदी के ढाल को यदि काट दिया जाय ताकि उसकी विशेषतायें खंड के रूप में प्रकट हो जायँ तो उसे नदी ढाल खंड कहते हैं। साधारणतया नदी की तलैटी के किसी मध्य-भाग में काट-छाँट अधिक होती है और इसलिये नदी ढाल का सामान्य खंड चित्र नतोदर होता है परन्तु शुरू में यह अनियमित व ऊबड़-खाबड़ होता है और इसके ऊपरी भाग में भँवर व जलप्रपात पाये जाते हैं। परन्तु धीरे-धीरे यह सपाट व चौरस होता जाता है।

Profile (Soil) (भूमिपर्त खंड) मिट्टी के बीच से लम्बरूप बनाया गया खंड भूमिपर्त खंड कहलाता है। इसके द्वारा भूमि की विभिन्न परतें दिखलाई पड़ने लगती हैं और उनकी विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं। विभिन्न परतों को अ, ब, स कहते हैं और धरातल या सतह से नीचे की ओर ये परतखंड वहाँ तक चला जाता है जहाँ तक कि आधार की मूल चट्टानें नहीं आ जातीं। किसी प्रदेश में भूमिपर्त खंड द्वारा वहाँ की मिट्टी सम्बन्धी विशेषताओं की खोज की जा सकती है।

Progradation (आगे का बढ़ाव) लहरों द्वारा तट प्रदेश से काटे हुये कंकड़-पत्थर व शिलाखंड लहर के आने व लौटने पर आपस में टकराकर या तलैटी से घिसघिसाकर बालू और बजरी में परिणत हो जाते हैं। जब खाड़ियों के समीप लहरों की गति धीमी पड़ती है या शक्तिहीन हो जाती है तो इस बालू बजरी का निक्षेप हो जाता है जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे बालू के तट बन जाते हैं। इस प्रकार बालूतट बनने को आगे का बढ़ाव कहते हैं।

चौड़ी खाड़ियों में काट-छाँट से प्राप्त सामग्री बहुत अधिक होती है और इसलिए वहाँ पर

बड़े-बड़े बालू के तट बन जाते हैं। इन बालुका तटों का आकार व विस्तार शिलाखंडों से प्राप्त बालू और बजरी की राशि तथा लहरों की शक्ति पर निर्भर रहता है। कुछ अर्द्ध चन्द्राकार होते हैं तो कुछ हँसिये की शक्ल के। इसी प्रकार कहीं तो बालू की दीवार सी बन जाती है और कहीं अंकुश की शक्ल के तट बन जाते हैं। कभी-कभी सम्बद्ध द्वीपों की एक श्रृंखला सी बन जाती है।

आगे के बढ़ाव से उत्पन्न बालुका तट निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है :—

(१) निक्षेप की सामग्री तट से कितनी दूर पर जमा हुई है क्योंकि यदि तट से काफी दूर पर निक्षेप हुआ है तो ज्वार, भाटा आर-पार की धाराओं और लहरों द्वारा उन की काट-छाँट अधिक होने लगती है।

(२) बालू और बजरी की राशि इतनी अधिक होनी चाहिये कि लहरों व धाराओं द्वारा कटाव के बाद भी काफी बची रहे ताकि बालुका तट बन सके।

(३) तट पर कटान या खाड़ी होनी चाहिये ताकि लहरें व धारायें बालू व बजरी को ले जा सकें और आगे चलकर उन्हें जमा कर सकें।

Progressive Wave Theory (प्रगतिमय लहर सिद्धान्त) ज्वार-भाटे की उत्पत्ति के बारे में कुछ विशेषज्ञों का विचार है कि दक्षिणी महासागर में दो ज्वारीय धारायें उत्पन्न होती हैं। वहाँ पर भूखंड १८०° देशान्तर के अन्तर पर स्थित हैं और इसलिए ये दोनों धरायें या लहरें चन्द्रमा के अनुरूप आगे बढ़ती हैं। जब ये गुडहोप अंतरीप पर पहुँचती हैं तो वे एक गौण लहर को उत्पन्न कर देती हैं जो आन्ध्र महासागर के किनारे-किनारे चलने लगती हैं। इन्हीं लहरों की प्रगति के कारण ज्वार-भाटे आते हैं। इसे प्रगतिमय लहर सिद्धान्त कहते हैं। चूँकि इसके द्वारा दक्षिणी महासागर में लहरों की उत्पत्ति मानी जाती है। इसलिये कभी-कभी दक्षिणी महासागर वाला सिद्धान्त भी कहते हैं।

Project (योजना) किसी भी प्रकार के प्राकृतिक साधन के उपभोग व विकास के लिए किये गये नियमित प्रयत्न को योजना कहते हैं। संसार के सभी प्रदेशों व राष्ट्रों में प्राकृतिक साधनों का विकास योजनाओं के ही सहारे होता है। योजना में प्राकृतिक साधन विशेष की संभावित शक्ति का अन्दाज लगाकर उद्देश्य निश्चित कर लिया जाता है और फिर देश की मानसिक, शारीरिक व आर्थिक शक्ति के अनुसार उसको प्राप्त करने के लिये क्रमिक प्रयत्न किया जाता है।

वर्त्तमान युग में योजनायें कई प्रकार की होती हैं जिनमें निम्नलिखित दो विशेष रूप से प्रमुख हैं :—

(१) एक धंधा जिसका ध्येय प्राकृतिक साधनों के विकास द्वारा केवल एक ही उद्देश्य का पूरा करना होता है।

(२) बहुधंधी योजना जिसका ध्येय प्राकृतिक साधन विशेष का बहुमुखी विकास करना होता है ताकि उसके द्वारा बहुत से उद्देश्य निकल सकें।

वैसे तो जीवन के सभी क्षेत्रों में योजना द्वारा काम हो सकता है परन्तु इसका सबसे अधिक प्रयोग नदी घाटी के जल को जलविद्युत, यातायात, सिंचाई आदि प्रयोग करने के लिए या सामूहिक जीवन को सहकारी रूप पर व्यवस्थित करने में ही किया जाता है।

Promontory (चट्टान खंड) एक चट्टान या शिलाखंड जो समुद्र के भीतर दूर तक फैला रहता है। कभी-कभी अन्तरीप को भी चट्टानखंड कहते हैं।

Protectorate (आधीन राज्य) जब कोई राज्य किसी दूसरे राष्ट्र के नियन्त्रण

में रहता है तो उसे आधीन राज्य कहते हैं। आधीन राज्य का नियन्त्रक राज्य के साथ कई प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है। इस सम्बन्ध का एक प्रकार तो वह है जब आधीन राज्य पर दूसरे राष्ट्र का शासन हो। दूसरा प्रकार वह है जब आधीन राज्य और बातों में तो स्वतंत्र होता है परन्तु उसकी रक्षा का भार बड़े राज्य पर होता है। चाहे यह सम्बन्ध किसी भी प्रकार का क्यों न हो, एक बात नितान्त सत्य है कि सभी प्रकार के आधीन राज्यों को विदेश सम्बन्ध में बड़े नियन्त्रक राज्य की आज्ञा पर चलना पड़ता है। उन्हें देश-विदेश के साथ सम्पर्क स्थापित करने की स्वतंत्रता नहीं हो सकती। या तो उनका विदेश सम्बन्ध नियन्त्रक राज्य के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है या यह होता है कि नियन्त्रण राज्य के आदेशानुसार ही विदेश सम्बन्ध रखता है।

Protractor (प्रोट्रैक्टर) कोण बनाने या नापने के यन्त्र को प्रोट्रेक्टर कहते हैं। साधारणतया ये धातु, कागज या सिलोलाइट के बने वृत्त या अर्द्धवृत्त होते हैं जिन्हें अंशों में बाँटा हुआ होता है। त्रियुजीकरण के कोण बनाने के लिए अधिक बड़े प्रोट्रेक्टर काम में लाये जाते हैं। बहुधा इनकी तीन शाखायें होती हैं और साथ-साथ वरनियर मानदण्ड तथा आकार वर्द्धक शीशा भी लगा होता है। साधारण मानचित्र बनाने में पारदर्शक कागज पर बनी एक केन्द्र से प्रसारित होने वाली रेखाओं से ही काम चला लिया जाता है।

Psychrometer (सिक्रोमीटर) वायुमण्डल की आर्द्रता को नापने के एक यन्त्र को सिक्रोमीटर कहते हैं। इसका उद्देश्य वही होता है जो हिग्रोमीटर का। यह कई प्रकार का होता है और आसमान का सिक्रोमीटर तो साधारण हिग्रोमीटर के ही समान होता है। इसमें तर व शुष्क घुंडी के थर्मामीटर होते हैं और उनके इधर-उधर हवा को एक पंखे द्वारा प्रवाहित किया जाता है। यह पंखा अपने आप घड़ी के तरह के एक यंन्त्र द्वारा संचालित होता रहता है। इस प्रकार एक ही प्रकार की दशाओं में दोनों थर्मामीटर तापक्रम अंकित करते रहते हैं। इसके द्वारा प्राप्त आँकड़े हिग्रोमीटर की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होते हैं।

Pteropod Ooze (पेट्रोपॉड ऊज) पेट्रोपॉड जाति के तैरने वाले सूक्ष्म कीटाणुओं से बने ऊज को पेट्रोपॉड ऊज कहते हैं। इसमें चूने का अंश अधिक रहता है और यह महासागरीय तल के सीमित क्षेत्र में पाया जाता है। महासागरीय तल से उठने वाली श्रेणियों और पठारों पर ही यह निक्षेप मिलता है। १५०० फैदम से अधिक गहराई में पेट्रोपॉड कीड़े समुद्र जल में घुल जाते हैं। इसलिये यह ऊज ५०० से १५०० फैदम की गहराई ही तक पाया जाता है। इस गहराई के बीच यह कुछ उष्णकटिबंधीय द्वीपों के समीप पाया जाता है। आन्ध्र महासागर में इसकी विशेष बहुलता है। अजोर द्वीप समूह के चारों ओर कनारी द्वीपों के पश्चिम में यह ऊज का निक्षेप मिलता है।

Ptolemy's Maps (टालमी के मानचित्र) यूनान की मानचित्रांकन कला की पराकाष्ठा के साथ टलामी का नाम जरूर लिया जाता है। प्टालमी सिकन्दरिया में सन् ९० से सन् १६८ तक रहा। वह एक ज्योतिषी और गणितज्ञ था और उसे भूगोल की व्यावहारिक व मानव समस्याओं में बिल्कुल भी दिलचस्पी नहीं थी। परन्तु उसका ग्रन्थ "जिओग्राफिया" बहुत महत्वपूर्ण है। इस के ८ खंड हैं। प्रथम खंड में तो वह मानचित्रांकन और ग्लोब बनाने के विषय में सिद्धान्त निरूपण करता है। दूसरे से सातवें खंड में कोई ८००० स्थानों के नाम दिये गये हैं और साथ-साथ प्रत्येक के अक्षांश व देशान्तर भी दे दिये गये हैं। सबसे महत्वपूर्ण आठवाँ खंड है जिसमें वह मानचित्रांकन, गणित, भूगोल, अंकन आदि के सिद्धान्तों का विवेचन करता है। इस सैद्धान्तिक विवेचन के साथ-साथ दुनिया

का एक मानचित्र और २६ और अन्य मानचित्र भी दिये गये हैं। ये सभी मानचित्र दुनिया की प्रथम मानचित्रावली बनाते हैं।

ये मानचित्र भद्दे तो जरूर हैं परन्तु इनके द्वारा यूनानी मस्तिष्क का भास होता है। दक्षिणी भारत का प्रायद्वीप बहुत छोटा दिखलाया गया है और लंका का विस्तार इतना बड़ा है कि उसको पहिचाना भी नहीं जा सकता। अफ्रीका का आकार तो बड़ा ही विचित्र है। भूमध्यरेखा तक तो यह बिल्कुल ठीक है परन्तु भूमध्यरेखा के दक्षिण में बजाय छोटा पड़ने के यह दोनों ओर बढ जाता है। पश्चिम में यह मानचित्र एक दम से खतम हो जाता है लेकिन पूर्व में अफ्रीका एशिया से मिला हुआ है। हिन्द महासागर यह घिरे हुये तालाब सा लगता है। इन सबमें टालमी का सब से बड़ा दोष यह था कि उसने पृथ्वी के विस्तार को बहुत छोटा मान लिया था। दूसरा दोष यह था कि उसने यूरोप और एशिया का विस्तार आधी पृथ्वी में मान लिया था। इसी प्रकार उसने भूमध्य सागर का विस्तार ६२° दिखाया जब कि वह केवल ४२° ही है।

मानचित्र बनाने की यह पराकाष्ठा थी। इसके बाद मानचित्र बनाने की कला बराबर क्षीण होती गई। यद्यपि "जियोग्राफिया" अरब संसार में बराबर उपलब्ध रही परन्तु पश्चिमी यूरोप को इसका पता केवल १५वीं सदी में लगा।

Pumice (प्यूमिस) प्यूमिस एक ज्वालामुखी चट्टान है जो अत्यधिक प्रवेश्य तथा शीशे की तरह चमकती हुई होती है। इसका रंग प्राय: सफेद या भूरा होता है परन्तु कभी-कभी गहरा रंग भी देखने में आता है। यह बहुत हल्की होती है और जब यह ठंडी होकर ठोस पड़ रही थी उस समय भाप और गैसों के यकायक निकलने से इसका रूप झाग के समान उभड़ आया। यदि पानी में डाल दिया जाय तो यह चट्टान तैरती रहेगी। संसार के महासागरों के अगाध तल पर लाल मिट्टी का जो निक्षेप मिलता है उसमें इसका ही अंश प्रधान रहता है। (देखिये Red clay)

Puna (प्यूना) एण्डीज पर्वत माला के पठार जो समुद्रतल से १०,००० से १३००० फीट तक ऊँचे हैं, उन्हें प्यूना कहते हैं। ये अति उच्च भाग बड़े ठंडे होते हैं। यहाँ पर जलवायु की बड़ी तीक्ष्ण व विषम दशायें पायी जाती हैं। गर्मियों की रात में सख्त सर्दी पड़ती है और जाड़े के मौसम में हवा इतनी ठंडी होती है कि बदन को काट देती है। किसी भी प्रकार के कपड़े से बचत नहीं हो पाती। यह तेज काटने वाली हवा मोटे से मोटे कपड़े के भीतर भी प्रवेश कर जाती है और फेफड़ों पर असर कर के बहुत से रोग उत्पन्न करती है। बोलीविया के कुछ भागों में इस मौसम को इसीलिये 'मौत की फसल' कहते हैं। यद्यपि सूर्य का प्रकाश बहुत तेज व गर्म होता है परन्तु छाया में हवा जलानेवाली होती है और इसलिए यहाँ के निवासी इससे बचते हैं। शरीर को बचाने के लिए भारी शाल-दुशाले और लबादे जिन्हें पोचो कहते हैं इस्तेमाल किये जाते हैं। चेहरे पर ये लोग ऊनी कनटोप पहिनते हैं। तीन महीने जब कि बारिश होती है तब तो नदियाँ व झीलें भर जाती हैं वरना साल के अधिकतर भाग में नदियों की घाटियाँ शुष्क और झीलें नमकीन पानी के उथले जलाशय बने रहते हैं।

यहाँ पर जौ और आलू की फसल उगाई जाती है जो मौसमी कठिनाइयों को बर्दाश्त कर सकते हैं। साथ-साथ मोटी घास के मैदानों में लामा और अल्पका जानवरों को चराया जाता है जिनके बाल लम्बे-लम्बे होते हैं और जिनसे ऊन प्राप्त होता है।

Punas (पुनास) एण्डीज पर्वतमाला के पीरू प्रदेश में या दूसरे शब्दों में पीरूराज्य

के पर्वतीय भागों में प्रवाहित होनेवाली स्थानीय वायु को पुनास कहते हैं। पुनाम हवा ठंडी व शुष्क होती है। जब व्यापारिक हवायें दक्षिणी अमरीका महाद्वीप को पार करके एण्डीज पर्वत माला पर पहुँचती हैं तो उनका जलवाष्प बिल्कुल निचुड चुका होता है और पश्चिमी तरफ उतरने पर ये हवायें शुष्क व ठंडी हो जाती हैं। (देखिये **Puna**)

Purga (**पर्ग**) रूस में उत्तर-पूर्व से बहने वाली ठंडी हवा को पर्ग कहते हैं। इसके चलने पर बरफ गिरती है और टुन्ड्रा प्रदेश में इसका प्रभाव विशेष अधिक रहता है। इसकी विशेषतायें वैसी ही होती हैं जैसे कि बूरन की। (देखिये **Buron**)

Pusztas (**पस्जटास**) हंगरी के मैदान में पाये जाने वाले चौरस घास के मैदानों को पस्जटास कहते हैं। इनकी विशेषतायें वैसी ही होती हैं जैसी स्टेपी प्रदेशों में। (देखिये **Steppes**)

Puy (**पुई**) यह फ्रान्सीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है और फ्रान्स के आँवरजन प्रदेश में उन पहाड़ी के लिए प्रयोग किया जाता है जो मृत ज्वालामुखी का शंकु है। इस पुई में शंकु का आकार गुम्बद की तरह उन्नतोदर होता है और लावा की प्रवाह परत हो भी सकती है और नहीं भी। इस प्रदेश में इस प्रकार की पहाड़ियों के अनेक नमूने हैं परन्तु ये संसार के अन्य भागों में भी पाये जाते हैं। पुई या तो इक्का-दुक्का पहाड़ियों के रूप में छितरे हुये या समूह में पाये जाते हैं।

Pygmies (**बौने लोग**) बहुत छोटे कद के लोगों को जिनकी औसत लम्बाई ५फीट से भी कम होती है उन्हें बौने लोग कहते हैं। मध्य अफ्रीका के भूमध्यरेखीय वनों में पाई जाने वाली अनेक जातियों के लोग ४ फीट ६ इंच से अधिक ऊँचाई के नहीं होते। इनका रंग काला-पीला होता है और इन्हें नेगरिलो कहते हैं। एशियाई बौने लोग जो मलाया, सुमात्रा, फिलीपाइन्स, न्यूगिनी तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अन्य भागों में रहते हैं उन्हें नेग्रिटो कहते हैं।

मध्य अफ्रीका में कान्गों के बेसिन में रहने वाले बौने लोग संसार में सबसे छोटे कद के होते हैं। वे लोग केवल ४ फीट ऊँचे होते हैं और गहरे काले रंग के लड़के-लड़कियों से मालूम पड़ते हैं। ये बड़े डरपोक होते हैं और श्वेत जाति के लोगों से बहुत डरते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के बुशमैन की तरह ये लोग तीर-कमान से शिकार कर के जीवन बिताते हैं और इनका घर कहीं भी नहीं होता। ये लोग झोपड़ी तक नहीं बनाते।

इसके विपरीत एशियाई बौने लोग गहरे पीले रंग के होते हैं और उनका कद भी इनसे कुछ ऊँचा होता है। ये लोग भी शिकार या मछली मार कर अपना पेट भरते हैं परन्तु इनका जीवन अधिक स्थायी होता है। ये लोग मचानों पर रहते हैं और टुकड़ियाँ बनाकर इधर-उधर घूमते हैं। इनमें जंगली पेशा कम है और ये श्वेत वर्ण के लोगों से कम घबराते हैं। इसीलिये इन्हें बहुत कुछ सभ्य बताया जा सकता है। ये लोग बड़े मजबूत पर बड़े आलसी होते हैं।

Pyrheliometer (**पिरहिलोमीटर**) सूर्य से प्रकाश विकिरण को नापने का एक यन्त्र है।

Pyrosphere (**मिश्रित मण्डल**) पृथ्वी के धरातल की बनावट को देखने से पता चलता है कि इसमें तीन परतें हैं। पृथ्वी का केन्द्र एक अत्यन्त ठोस व भारी पटल है जिसे परिमाण मण्डल कहते हैं। इस परिमाण मण्डल के ऊपर चट्टानों का एक ठोस पटल है जिस पर हम लोग रहते हैं और जिसे स्थल मण्डल कहते हैं। इन दोनों परतों के बीच में एक मिश्रित मण्डल है जिसमें स्थल और परिमाण मण्डल के तत्व मिले हुये पाये जाते हैं।

जिस प्रकार एक भट्टी में सबसे भारी वस्तु आधार तल में पड़ी रहती है और उसके ऊपर उससे हल्की और सबसे ऊपर सबसे हल्की वस्तु रहती है, इसी प्रकार पृथ्वी के केन्द्र में निकिल और लोहा जैसी कठोर व भारी धातुयें भरी पड़ी हैं जिनका आपेक्षिक घनत्व ८ है। इसमें भूकम्प की लहरें प्रवेश ही नहीं कर पातीं। इस धातु पिण्ड के ऊपरी भाग में चारों ओर सिलिका और मैगनीशीय तत्वों का पिघला हुआ परत लिपटा है जिसमें धातुयें भी मिली हुई हैं। इसी को मिश्रित मण्डल कहते हैं। इस मिश्रित मंडल के ऊपर पृथ्वी का सबसे हल्का परत—स्थलमण्डल है जो ग्रेनाइट चट्टानों से बना हुआ है और इसमें सिलिका और अल्यूमिनियम तत्वों की अधिकता है। इस ऊपरी परत की मोटाई केवल २० किलोमीटर के लगभग है और इसमें से होकर भूकम्प तरंगें ३१ मील प्रति सेकन्ड की गति से चलती हैं।

मिश्रित मण्डल इन दोनों के बीच में स्थित है और यह परत ऊपरी परत से भारी है। मिश्रित मण्डल के दो भाग हैं—(१) ऊपरी और (२) निचला। मिश्रित मंडल की ऊपरी परत बसाल्ट चट्टानों की बनी है और इसमें सिआल (सिलिका + अल्यूमिनियम) तथा सिमा (सिलिका + मैगनीशियम) का मिश्रण माना जाता है। इसका आपेक्षिक घनत्व तीन है और इस परत की मोटाई ३० किलोमीटर है। यह परत पृथ्वी के गोले पर सभी जगह पाया जाता है।

मिश्रित मण्डल के निचले परत में पेरिडोटाइड या अति पैठिक चट्टानों की अधिकता है। ये चट्टानें पानी से ३·४ गुना भारी हैं और इनमें सिलिका और मैगनीशियम तत्वों का मिश्रण पाया जाता है। महासागरों की आधार तली इसी परत की बनी हुई है।

Quadrant (क्वाडरैन्ट) ज्योतिष विज्ञान और नौका संचालन में कोण नापने तथा ऊँचाई का पता लगाने के लिये जिस यन्त्र का प्रयोग करते हैं उसे क्वाडरैन्ट कहते हैं। यह यन्त्र एक-चौथाई वृत्त के आकार का होता है और उसमें अंश व खांचे बने रहते हैं।

Quadrature (समकोण स्थिति) पृथ्वी के देखने पर जब कोई ग्रह या नक्षत्र अपने परिभ्रमण में ऐसी जगह पहुँच जाता है जहाँ वह सूर्य की दिशा के साथ समकोण बनाता है तो उसे उसकी समकोण स्थिति कहते हैं। यह पारिभाषिक शब्द चन्द्रमा के विषय में प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक महीने कृष्णपक्ष व शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन पृथ्वी से सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति समकोण पर होती है। फलतः चंद्रमा का आधा प्रकाशमय भाग ही दिखलाई पड़ता है। (देखिये Moon's Phases)

Quadroon (क्वाडरून) मुलाटो और श्वेत जाति के माता-पिता से उत्पन्न संतान को क्वाडरून कहते हैं। इस प्रकार क्वाडरून में चतुर्थांश नीग्रो या हब्शी खून पाया जाता है। (देखिये Mulatto)

Quagmire (क्वागमाइर) मुलायम गीली जमीन का क्षेत्र जो पैर रखने पर हिलता या दब जाता है। (देखिये Marsh)

Quaking Bog (हिलता हुआ दलदल) पहाड़ी क्षेत्रों में कभी-कभी ऐसी दलदली भूमि पाई जाती है जो वनस्पति से पूरी तरह ढँकी रहती है और वहाँ की गीली भूमि इतनी लुचलुची हो जाती है कि उस पर जरा-सा जोर पड़ने पर वह हिलने लगती है। उसमें पैर इस प्रकार धँस जाता है जैसे रबड़ के गद्दे में पैर हटा लेने पर वह फिर बराबर हो जाता है।

Qualitative Map (वस्तु सम्बन्धी मानचित्र) वितरण सम्बन्धी मानचित्रों में धरातल पर विभिन्न तथ्यों या तत्वों का वितरण दिखलाया जाता है। वस्तु

सम्बन्धी मानचित्र वे होते हैं जिनमें किसी प्रदेश की कोई विशेषता को दिखलाया जाता है जैसे भारत में वनों का वितरण । ये दो प्रकार के होते हैं—(१) **साधारण** जिन में एक विशेष तत्व की सामान्य विशेषता को दिखलाया जाता है जैसे वनों का वितरण या खेती का प्रसार आदि। (२) **जटिल या संयुक्त** जिन में एक विशेष तत्व या तथ्य की विशेषताओं को सूक्ष्मत: दिखलाया जाता है । वनों के वितरण के साथ-साथ यह भी दिखलाते हैं कि वे पतझड़ वाले वन हैं या सदाबहार, चौड़ी पत्तीवाले या नुकीली पत्ती वाले, कहाँ ओक के वृक्ष हैं तो कहाँ चीड़ के । इस प्रकार जब सामान्य विशेषताओं के साथ-साथ सूक्ष्म विशेषताओं को भी दिखलाते हैं तो वे संयुक्त मानचित्र बन जाते हैं ।

Quantitative Map (मात्रा सम्बन्धी मानचित्र) मात्रा सम्बन्धी वितरण मानचित्र का मुख्य ध्येय वितरण का तुलनात्मक चित्र उपस्थित करना है। इसमें कुछ विशेष क्षेत्रों में वस्तुओं का वितरण मात्रा के अनुसार दिखलाया जाता है। इसके द्वारा आँकड़ों के बीच तुलना नहीं की जाती बल्कि क्षेत्रों के बीच तुलना प्रस्तुत की जाती है ।

मात्रा सम्बन्धी मानचित्र में तथ्यों का निरूपण सम मात्रा रेखाओं द्वारा, विन्दुओं द्वारा तथा सांकेतिक चिन्हों द्वारा किया जाता है । सम रेखाओं से वर्षा तापक्रम जैसे प्राकृतिक तत्वों का वितरण दिखलाया जाता है । प्रत्येक विन्दु किसी विशेष मात्रा या संख्या को प्रगट करती है । सांकेतिक चिन्ह कुछ निश्चित नहीं होते । प्रत्येक मानचित्रकार अपनी सुविधा व तथ्य की विशेषता के अनुसार चिन्ह बना लेता है ।

Quartz (बज्र) वह साधारण खनिज है जो बहुत सी चट्टानों व मिट्टियों में विभिन्न रूप में पायी जाती है । यह चट्टानों की दरारों, दराजों, छेदों और नालियों में भरा मिलता है । अक्सर इसमें अन्य प्रकार के खनिजों का सम्मिश्रण पाया जाता है और उसके बीच में कच्ची धातुयें भी मिली पाई जाती हैं। इसमें सिलिका जो कि सिलिकन और आक्सीजन का संयुक्त रूप है पाया जाता है । अधिकतर प्रकार की बालू में इसका ही अंश अधिकांश रहता है ।

शुद्ध अवस्था में बज्र शीशे की तरह चमकता हुआ रहता है और यह इतना कठोर होता है कि इसको शीशे पर रगड़ने पर खरौंच बन जाते हैं । परन्तु यह बड़ा ही चटखना होता है और जरा सा धक्का लगने पर इसमें दरार पड़ जाती है। इसके रवे या स्फट छ. मुँह वाले होते हैं । इसका सापेक्षिक भार २.६५ होता है ।

Quartzite (क्वार्टजाइट) बलुहे पत्थर के छेद जब बज्र से भर जाते हैं तो क्वार्टजाइट बन जाता है । यह बड़ी कठोर चट्टान होती है और इसमें मौसमी क्षति सहन करने की बड़ी ताकत होती है । यह एक परिवर्तित चट्टान है और इसके रवे मोटे और महीन कई प्रकार के होते हैं। इसका रंग सफेद, भूरा, पीला, हरा और लाल होता है । टूटने पर ये बड़े चमकते हुये दीखते हैं ।

Quaternary Era (प्रातिनूतन काल) पृथ्वी के इतिहास का ५वाँ तथा सबसे नवीन कल्प प्रातिनूतन काल कहलाता है। वास्तव में दूसरे दृष्टिकोण से यह नवकल्प या आधुनिक युग का ही एक उपविभाग है । इस काल के प्रारम्भ में पृथ्वी की जलवायु ठण्डी होने लगी जिससे धरातल हिमावरण से ढँक गया । उत्तरी-पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका के उत्तरी भाग में क्रमशः कोई तीन करोड़ और ६ करोड़ वर्गमील पर हिमशिलायें फैल गई। इसी युग में चिड़ियाँ, बालदार जानवरों और स्तनपोषी जीवों का प्रादुर्भाव हुआ। इसी युग में बन्दर, वनमानुष और मनुष्य का भी विकास हुआ।

इस युग की चट्टानों का सबसे अधिक अध्ययन हुआ है और उनका प्रभाव मिट्टी पर सबसे अधिक पाया जाता है ।

Quicksand (ढीली बालू) समुद्रतट या नदी के मुहाने पर पायी जाने वाली अस्थायी बालू को ढीली बालू कहते हैं ।

Race (रेस) संकरी तलैटी में से होकर बहने वाली तीव्र जारीय धारा को रेस कहते हैं । इसका कारण यह है कि तलैटी के एक किनारे पर दूसरे की अपेक्षा ज्वारभाटे का अन्तर अधिक होता है । दो खाड़ियों को अलग करने वाले स्थलखंड के समीप भी रेस उत्पन्न हो सकती है । (देखिये Tidal Range)

Races (जातियाँ) संसार में रहने वाले मनुष्य भिन्न-भिन्न जातियों के होते हैं । वर्णभेद के अनुसार संसार की जातियों के तीन भेद हैं––(१) श्वेत वर्ण की जातियाँ जिनके लोगों का चेहरा गोल, आकृति सुन्दर, आँखें सीधी, नाक सुन्दर और खाल हल्के सफेद रंग की होती है । विश्वव्यापार इन्हीं के हाथों में है । उत्तम जलवायु के कारण इस जाति के लोग मेहनती, धैर्यवान, उत्साही और प्रतिभाशाली होते हैं । इस जाति के लोग यूरोप के अधिकतर भागों में उत्तरी अफ्रीका, भारत, मध्य व निकट पूर्व में रहते हैं । (२) पीत वर्ण की जाति के लोग अधिकतर उत्तर-पूर्वी और मध्य एशिया में बसे हुये हैं । चीन, जापान इनके प्रमुख केन्द्र हैं । इन लोगों का कद नाटा, खाल पीली, मुँह चपटा और आँखें पतली तिरछी होती हैं । इनकी सभ्यता भी ऊँची है और ये लोग भी विशेषकर व्यापार-शील हैं । (३) श्यामवर्ण की जाति के लोग उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में रहते हैं । यह जाति सबसे कम सभ्य और वाणिज्य व्यापार की दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई है । ये लोग आलसी होते हैं । इनकी खाल काली, मुँह चपटा, नाक चौड़ी व मोटी तथा होंट मोटे और भद्दे होते हैं ।

जाति के वर्गीकरण का दूसरा आधार उनके बाल हैं :––

(१) वे जातियाँ जिनके बाल सीधे हैं––इनका रंग कुछ पीला होता है और उनके चेहरे की बनावट चौड़ी और चपटी होती है । इनको मंगोलियन कहते हैं ।

(२) लहरदार बाल वाली जातियाँ यूरोप में और भारत में पायी जाती हैं । उनका रंग काले भूरे से लेकर सफेद तक होता है । इनके चेहरे का आकार पतला और उनकी नाकें अधिक उठी हुई होती हैं ।

(३) घूँघर वाले या ऊन के समान बाल वाली जातियों में हब्शी लोग सम्मिलित हैं । इनका रंग बहुत काला और होंठ मोटे होते हैं ।

Radiation (विकिरण) विकिरण द्वारा ताप एक वस्तु से दूसरी वस्तु में बिना किसी भौतिक आधार के प्रवेश करती है । हमारी पृथ्वी सूर्य से विकिरण द्वारा ही गरम होती है । हवा विकिरण द्वारा अपनी गरमी प्रसारित करती है । इस गरमी का कुछ भाग शून्य में मिल जाता है और कुछ ठण्डी धरती सोख लेती है । इस विधि से ताप की हानि होती है और इस प्रकार ठण्डी होने लगती है । पृथ्वी पर विकिरण के दो रूप हैं––(१) सूर्य के द्वारा ताप हर समय हर दिशा में छिटका करता है और इसका कुछ अंश पृथ्वी पर पहुँच कर ताप में बदल जाता है । (२) पृथ्वी सदैव विकिरण द्वारा शून्य में अपनी गरमी खोती रहती है । रात में वायु विकिरण द्वारा अपनी पर्याप्त गरमी खो देती है ।

दिन के समय सूर्य से प्राप्त प्रकाश द्वारा मिली हुई गरमी विकिरण द्वारा नष्ट हुई गरमी से कहीं अधिक रहती है और इसीलिये तापक्रम बराबर बढ़ता रहता है जबतक कि वह एक अत्यधिक बिन्दु पर नहीं पहुँच जाता । रात के समय इसका उल्टा होता है और विकिरण की

अधिकता के कारण तापक्रम बराबर गिरते-गिरते बिन्दु पर पहुँच जाता है। गर्मी के मौसम में दिन लम्बे होते हैं और सूर्य उत्तरायण रहता है। इसलिए जमीन धीरे-धीरे गरम होती जाती है। परन्तु जाड़े में जब दिन छोटे होते हैं और सूर्य दक्षिणायन होता है, सूर्य प्रकाश की अपेक्षा विकिरण अधिक होता है और इसी कारण जमीन ठंडी हो जाती है।

विकिरण का भेद केवल मौसम के अनुसार ही नहीं होता बल्कि जलथल के वितरण और भूमि की ऊँचाई-निचाई से भी फरक आता है। विकिरण द्वारा भूमि जल की अपेक्षा जल्दी ताप खोती है। इसी प्रकार उच्च भूमि पर निचले मैदानों की अपेक्षा विकिरण की क्रिया अधिक तीव्रतर होती है।

Radial Drainage (वृत्तीय जलप्रवाह) जब किसी प्रदेश का मध्यवर्त्ती भाग ऊँचा हो और उसके चारों ओर का भाग निचला तो वहाँ की नदियाँ उस केन्द्रीय ऊँचे भाग से निकल-निकल कर चारों दिशाओं में प्रवाहित होने लगती हैं। इस प्रकार के जल प्रवाह को वृत्तीय जलप्रवाह कहते हैं। इसमें ऐसा लगता है जैसे कि एक वृत्त के अर्द्धव्यास केन्द्र से सभी ओर को निकलते हों। इस प्रकार के जल प्रवाह में नदियाँ ऐसी लगती हैं जैसे कि साइकिल के पहिये में हब से चारों ओर को निकलने वाली तीलियाँ। लंका द्वीप का जलप्रवाह इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

Radio Activity Theory (तापीय चक्र सिद्धान्त) महाद्वीपों की उत्पत्ति के बारे में तापीय चक्र सिद्धान्त के आधारभूत प्रवर्त्तक जौली महाशय थे। इस सिद्धांत में भी यह माना जाता है कि महाद्वीपीय भाग सीमा के ऊपर बहते हुये सियालखण्ड हैं। गर्मी बढ़ जाने से सीमा के घनत्व में परिवर्त्तन हो गया और फलतः महाद्वीप एक दूसरे के साथ संयुक्त न रहकर अलग-अलग खिसक गये।

इस सिद्धान्त के अनुसार सिमा का परत पहिले तो ठोस अवस्था में था परन्तु सिमा परत की बैसाल्ट चट्टानें करोड़ों वर्षों तक गर्मी सहन करते-करते पिघलने लगीं। पिघलना निचली परतों में पहिले शुरू हुआ और बाद में ऊपरी परतों में पहुँचा। दूसरी बात यह है कि सम्पूर्ण बसाल्ट परत पिघल जाता है परन्तु महासागरों की तली नहीं पिघलती। जब बसाल्ट पूरी तरह पिघल जाता है तो भूपटल अस्थिर हो जाता है। बसाल्ट का परत पिघल कर फैलता है और उसके ऊपर ज्वार उत्पन्न होने लगता है। इसके परिणामस्वरूप महासागर और महाद्वीप ऊँचे उठ जाते हैं और उसके बाद महासागरों की अपेक्षा महाद्वीप बसाल्ट में अधिक धँस जाते हैं। इस प्रकार महाद्वीपों के निचले तटों पर उथले समुद्र फैल जाते हैं। ज्वार उठने पर आकर्षण से समस्त ठोस पिण्ड पश्चिम की ओर खिंच जाता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न महाद्वीपों की सृष्टि हो जाती है।

Radiolarian Ooze (रेडियोलेरिअन ऊज) यह एक प्रकार का प्राणिज निक्षेप है जो समुद्र के अगाध तल में गहरे उष्णकटिबंध समुद्र जल में पाया जाता है। इस में लाल चिकनी मिट्टी के साथ रेडिओलेरियन जाति के बहुत छोटे जीव-जन्तुओं के अवशेष भाग भी मिले रहते हैं। इसीलिए इसे रेडिओलेरिअन ऊज कहते हैं। इसमें सिलिका का अंश अधिक होता है। प्रशान्त महासागर में ५०° उत्तरी अक्षांश से लेकर १५° उत्तरी अक्षांश तक के प्रदेश में और हिन्द महासागर के सीमिति क्षेत्र में इसका निक्षेप मिलता है।

Radio Sonde (रेडिओ सॉन्डए) वायुभार तथा वायुताप को नापने के लिये एक यन्त्र को एक गुब्बारे के साथ उड़ा दिया जाता है। इसमें हाइड्रोजन गैस भरी रहती है और इस यन्त्र में अपने आप अंकित होनेवाले ताप और भार विषयक आँकडे साथ लगे बेतार के तार द्वारा बराबर प्रसारित होते रहते हैं। इस यन्त्र और गुब्बारे को ऊपर की

तरफ छोड़ दिया जाता है और विभिन्न ऊँचाइयों पर के ताप व भार विषयक आँकड़े पृथ्वी पर बराबर आते रहते हैं। इसे रेडियो सान्डए कहते हैं और इसे हर तरह के मौसम में और काफी अधिक ऊँचाई पर प्रयोग किया जा सकता है।

Railway (रेलमार्ग) भाप के इंजनों का आविष्कार होने के बाद रेलों का प्रचार बढ़ा और आजकल तो सभी देशों में व्यापार और सफर रेलों द्वारा ही होता है। सभ्य संसार में कुछ ही देश ऐसे हैं जहाँ रेलें नहीं हैं। जिन देशों में रेलपथ कम हैं वे औद्योगिक तथा व्यापारिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया के पश्चिमी भाग में रेलमार्गों द्वारा ही उन्नति हो पाई है।

रेल मार्ग का विशेष गुण यह है कि वह कम भाड़े पर माल तथा मुसाफिरों को तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाती है। किन्तु रेलों को तेज चलाने के लिये चौरस भूमि पर पटरी डालना आवश्यक है। दूसरे रेलों का उपयोग अभी तक देश के अन्दर के व्यापार के ही लिए हो सका है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए इनका अधिक महत्व नहीं है। इसके दो मुख्य कारण हैं—(१) रेलों द्वारा माल ले जाने में जहाजों की अपेक्षा अधिक खर्च होता है। (२) भिन्न-भिन्न स्थानों में लाइनों की चौड़ाई भिन्न होने से माल को भिन्न-भिन्न स्थानों पर उतारना-चढ़ाना पड़ता है।

रेलों के निर्माण पर पृथ्वी की बनावट और जलवायु का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बर्फ से पहाड़ी दर्रे जम जाते हैं। भारी वर्षा से रेलों के बाँध नष्ट हो जाते हैं। ध्रुव प्रदेशों में बर्फ के कारण और भूमध्य रेखीय प्रदेशों में भारी वर्षा के कारण रेलों का निर्माण असम्भव है।

देश की बनावट पर रेलों की दिशा निर्भर होती है। पर्वतीय सीमाओं के कारण रेलों को मोड़ना या समाप्त करना पड़ता है। पर्वतों की अपेक्षा मैदानों में रेलें सरलता से बन सकती हैं।

रेलों के बीच की चौड़ाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होती है। रेलों की पटरियों के बीच की चौड़ाई के आधार पर ३ प्रकार की रेलें कही जाती हैं—(१) बड़ी लाइन, (२) छोटी लाइन, (३) सँकरी लाइन। (देखिये Broad Gauge, Meter Gauge, Narrow Gauge)

Rain (वर्षा का जल) वायु मण्डल में जलवाष्प के द्रवीभूत होने पर बादलों से जो जल के कण या बूँदें पृथ्वी पर गिरती हैं उन्हें वर्षा का जल कहते हैं। जब भाप से लदी हवा बहुत ऊँचे उठकर द्रवीभूत होती है तो उसमें छोटी-छोटी जल की बूँदें धूल के कणों पर आकर स्थिर हो जाती हैं और जब ये बूँदें बड़ी हो जाती हैं तो नीचे गिर पड़ती हैं। वर्षा का जल भूमि पर कई प्रकार से गिरता है। जब नन्हीं-नन्हीं बूँदें फव्वारे की तरह छूटती हैं तो उसे जल फुहार (Drizzle) कहते हैं। कभी-कभी वर्षा का जल बड़ी-बड़ी बूँदों से लेकर निरन्तर जलधाराओं के रूप में गिरता है।

Rainbow (इन्द्रधनुष) जब सूर्य की किरणें वर्षा के जल पर पड़ती हैं तो पानी की बूँदों से प्रतिबिम्बित और विस्फोटित होकर उनके अन्दर के सातों रंग एक रंगीन धनुष के आकार में आकाश में फैल जाते हैं। इसे इंद्रधनुष कहते हैं।

इन्द्रधनुष के बाहर की तरफ लाल रंग रहता है, अन्दर की तरफ बैंगनी। इसे मुख्य धनुष कहते हैं। जल की बूँदों पर पड़ने वाली सूर्य की रोशनी दो प्रकार प्रतिबिम्बित होती है और एक गौण या बाहरी धनुष भी बन जाता है। इस बाहरी धनुष में अपेक्षाकृत अंश बहुत धुँधले होते हैं।

मुख्य इन्द्रधनुष का कोणिक झुकाव ४२° होता है और गौण या बाहरी इन्द्र धनुष करीब ५४° के कोण पर झुका रहता है ।

Rainfall (वर्षा) एक निश्चित समय और स्थान में हुई वृष्टि की कुल मात्रा को वर्षा कहते हैं । इस के अन्तर्गत तुषार व ओलों के पिघलने से प्राप्त जलराशि को भी ले लेते हैं । इस प्रकार वर्षा का अधिकांश भाग बादलों से प्राप्त वृष्टि ही होता है । इसके अन्दर पाला, ओस आदि को नहीं लेते । इस प्रकार व्याख्या के रूप में हम कह सकते हैं कि हवा की भाप जब जल की बूँदों के रूप में या तुषार कणों के रूप में भूतल पर बरसती है तो उसे वर्षा कहते हैं ।

वर्षा होने के लिए कुछ दशाओं का होना आवश्यक है ताकि जलवाष्प ठंडी होकर जलकणों में परिणत हो जाये । (देखिये Precepration)

वर्षा के तीन मुख्य भेद हैं—(१) वाहनिक, (२) पर्वतीय और (३) चक्रवातीय ।

भूमध्यरेखीय प्रदेशों में वाहनिक वर्षा होती है । गरम हवा हल्की होने के कारण स्वभावतः ऊपर को फैलती है और मूसलाधार बारिश करती है । वाहनिक वर्षा हमेशा साल के गरम भाग में और दिन में दोपहर के बाद होती है । पश्चिमी स्काटलैण्ड और भारत के पश्चिमी घाट पर होने वाली अधिकांश वर्षा पर्वतीय होती है । इससे वायु की तरफ वाले ढालों पर तो भारी वर्षा हो जाती है परन्तु दूसरी तरफ के ढालों पर शुष्क मौसम रहता है । ब्रिटिश द्वीप समूह के पूर्वी अर्द्ध भाग तथा यूरोप महाद्वीप में चक्रवातों के कारण वर्षा होती है और चक्रवातीय कहलाती है । यह वर्षा फुहारों के रूप में होती है । उत्तरी-पश्चिमी भारत में जाड़े की वर्षा इसी प्रकार की है । पछुवाँ हवाओं की पेटियों में सदैव इसी प्रकार की वर्षा होती है । (देखिये Convectional, Orographic and Cyclonic Rain)

किसी प्रदेश की वर्षा वहाँ की प्रचलित हवाओं पर निर्भर रहती है । बहुत से प्रदेशों में मौसम के अनुसार सूर्य के उत्तर या दक्षिण की ओर जाने के साथ-साथ वर्षा के दिन भी बदलते रहते हैं । जलवायु के दृष्टिकोण से वर्षा सम्बन्धी महत्वपूर्ण आँकड़े विभिन्न प्रदेशों में मासिक, मौसमी अथवा वार्षिक मध्यमान है ।

Rain Gauge (वृष्टिमापक यन्त्र) वर्षा वृष्टिमापक यंत्र द्वारा नापी जाती है । इस यन्त्र में एक कुप्पी होती है जिसकी चौड़ाई मुँह पर ५ इंच से ८ इंच तक होती है । यह कुप्पी एक शीशे की बोतल पर जमा कर रक्खी होती है । किसी स्थान में जो वर्षा होती है वह इस यन्त्र के कुप्पी में पड़कर बोतल में एकत्रित होती रहती है । इस बोतल में पड़ा हुआ जल भाप बन कर उड नहीं सकता और जब यह कुछ दिनों तक इकट्ठा होता रहता है तो यह माप लिया जाता है । मापने के लिये इसे दूसरे बोतल में डालते हैं जिस पर कुप्पी के मुँह के अनुरूप निशान बने रहते हैं ।

इस प्रकार इकट्ठा जल की गहराई को नापकर मिलीमीटर या इंच में व्यक्त करते हैं । इस प्रकार जब हम कहते हैं कि अमुक दिन किसी स्थान पर २ इंच वर्षा हुई तो इसका मतलब यह रहता है कि उस स्थान पर जो वर्षा हुई है यदि वह सारा जल वहीं पड़ा रहता तो उसकी दो इंच गहरी तह बन जाती । वृष्टिमापक यन्त्र को पढ़ते समय यह मान लेते हैं कि उसमें से कुछ भी जल बाहर नहीं बहकर गया है । वृष्टिमापक यन्त्र का साधारणतया दिन में दो बार पढ़ते हैं । (देखिये Hyetograph)

आजकल प्रयुक्त वृष्टि मापक यन्त्र में निम्नलिखित तीन वस्तुयें मिली रहती हैं: —

(१) एक टीन का डिब्बा जिसे जमीन में ऊपरी किनारे तक गाड़ देते हैं ।

(२) इसके अन्दर एक कुप्पी रहती है जिसके द्वारा डिब्बे की सतह पर पड़नेवाला सारा

पानी अन्दर में रक्खे हुये शीशे के दूसरे जार में इकट्ठा हो जाता है। इस प्रकार वाष्पीकरण द्वारा जल नष्ट नहीं हो पाता और इस शीशे की बोतल में निशान बने रहते हैं।

(३) शीशे की बोतल को निकाला जा सकता है। इस पर निशान इस प्रकार बने रहते हैं कि यदि डिब्बे के मुँह पर एक इंच पानी गिरे तो वह शीशे की वोतलमें १० इंच गहराई घेरेगा। इसीलिये जो निशान बनाये जाते हैं वे डिब्बे के मुहँ के सतह के क्षेत्रफल के अनुपात में ही होते हैं।

Rain Shadow (वृष्टि छाया) पर्वतमाला के वायुविमुख ढाल को जहाँ की जलवायु शुष्क व गर्म होती है उसे वृष्टि छाया कहते हैं। जब भाप से लदी हुई वायु पर्वत माला को पार करने के लिये बाध्य होकर ऊपर चढ़ती है तब वह शीतल हो जाती है और उसमें भाप का अंश बहुत कुछ कम हो जाता है। जितना ही ऊँचा पर्वत होता है उतना ही अधिक वाष्प कम हो जाता है। जब हवा पर्वतमाला पार कर के नीचे की ओर उतरने लगती है तो वह शुष्क वायु गर्म व प्यासी भी हो उठती है। तब उनमें वर्षा करने की शक्ति नहीं रह जाती।

अतएव पवनाभिमुख ढाल पर तो खूब वर्षा होती है परन्तु वायु विमुख ढाल शुष्क रह जाते हैं। वे वृष्टि छाया में आ जाते हैं। वेल्स के पहाड़ों के पीछे वायुविमुख प्रदेश में स्थित सेवर्न का बेसिन वृष्टि छाया में पड़ जाता है। बर्मा का शुष्क प्रदेश अराकान योमा की वृष्टि छाया में है। भारतवर्ष के दक्षिण का विस्तृत भाग पश्चिमी घाट की वृष्टि छाया में स्थित है। पश्चिमी घाट के पश्चिमा ढालों पर साल के पाँच महीने दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवाओं से बहुत भारी वर्षा होती है। कहीं-कहीं तो वर्षा की मात्रा २०० इंच से भी अधिक हो जाती है। इसके विपरीत वृष्टि में स्थित पूर्वीय ढालों में वर्षा की वार्षिक मात्रा २५ इंच और कहीं-कहीं तो उससे भी कम है।

वर्षा से वंचित रह जाने वाले वृष्टिछाया के प्रदेशों में जो थोड़ी-बहुत वर्षा होती भी है वह मुख्यतः वाहनिक अथवा चक्रवातीय ही होती है।

Rain Spell (वर्षा का काल) ब्रिटिश द्वीप समूह में जब १५ दिन तक लगातार कम से कम रोज ही ·०१ इंच तक वर्षा हो जाती है तो उसे वर्षा का काल कहते हैं।

Raised Beach (उत्क्षिप्त बालुका तट) समुद्र के अन्दर से भूमि के उठ आने पर जो सँकरा तटीय मैदान बन जाता है उसे उत्क्षिप्त बालुका तट कहते हैं। लम्बरूप प्रतिक्रिया करनेवाली या महाद्वीपीय निर्माणकारी भौगर्भिक शक्तियों के कारण समुद्र जल निमग्न तली ऊपर को उठकर शुष्क बालू के तट बन जाते हैं। अक्सर अंदर की तरफ इसकी सीमा तटीय चट्टानों द्वारा बनती है। अगर कई बार उत्क्षेप द्वारा इस प्रकार के बालू का तट बन जाते हैं तो उनके तल में अन्तर होने के कारण एक सीढ़ी-सी बनी नजर आने लगती है।

Rand (रैन्ड) यह हालैण्ड की भाषा का पारिभाषिक शब्द है। दक्षिणी अफ्रीका में पहाड़ियों की नीची श्रेणी को जिस पर छोटी-छोटी झाड़ी उगी हो रैन्ड कहते हैं। रैन्ड शब्द का प्रयोग खास तौर पर दक्षिणी ट्रान्सवाल के पिटवार्टर्सरैन्ड के लिये किया जाता है जहाँ पर सोने की विस्तृत निधि छिपी हुई है।

Range (श्रेणी) पहाड़ों या पहाड़ियों के क्रम को श्रेणी कहते हैं। श्रेणी में कई शिखर पहाड़ियाँ और उनकी घाटियाँ शामिल रहती हैं। इन की व्यवस्था रेखा के समान सीधी होती है और उतार-चढ़ाव बहुत फैला हुआ न होकर संकीर्ण होता है। साधारणतया

श्रेणी शब्द का प्रयोग उन पर्वतों के लिये होता हैं जिनकी आकृति, बनावट व उत्पत्ति का युग एक होता है ।

Range of Temperature (तापान्तर) किसी विशेष कालान्तर में एक जगह के अत्यधिक और न्यूनतम तापमान के अन्तर को वहाँ का तापान्तर कहते हैं। किसी स्थान के किसी दिन के उच्चतम तापक्रम से उसी दिन का न्यूनतम तापक्रम घटा देने से जो अन्तर निकलता है उसे दैनिक तापान्तर कहते हैं । इसी प्रकार वर्ष के सबसे गरम महीने के औसत तापक्रम में से सबसे ठंडे महीने का औसत तापक्रम घटाने से वार्षिक तापान्तर का पता चलता है ।

जलवायु के तुलनात्मक विवेचन के लिए साधारणतया वार्षिक तापान्तर का मध्यममान प्रयोग करते हैं । यह सबसे गर्म और सबसे ठंडे महीने के मध्यममान तापमान का अन्तर होता है । समुद्र के समीप प्रदेशों के मुकाबले महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में स्थित स्थानों के वार्षिक तापान्तर का मध्यममान बहुत अधिक होता है । साइबेरिया में वर्कोहान्स्क स्थान पर मध्यममान वार्षिक तापान्तर ११९° फार्नहीट होता है । दक्षिणी गोलार्द्ध के महाद्वीपों में समुद्र के प्रभाव के कारण वार्षिक तापान्तर अपेक्षाकृत कम होता है । इक्वेडर में क्वीटो स्थान पर जो भूमध्यरेखा पर स्थित है वार्षिक तापान्तर केवल ७° फार्नहीट हैं जब कि दैनिक तापान्तर ३० से ४० डिग्री रहता है । सबसे गर्म और सबसे ठंडे महीनों के मध्यममान अत्यधिक व न्यूनतम तापमान के अन्तर को वार्षिक अत्यधिक अन्तर कहते हैं । किसी स्थान पर हुए सबसे कम और सब से अधिक तापमान के अन्तर को केवल तापान्तर कहते हैं ।

जब किसी महीने के प्रत्येक दिन के तापांश की लेखा कर ली जाती है तब हमें तापांश का मासिक मध्यममान ज्ञात हो जाता है । एक विशेष समय के भीतर प्रत्येक दिन के अत्यधिक और न्यूनतम तापांश के अन्तर का मध्यममान, मध्यममान दैनिक तापान्तर कहलाता है । विविध प्रदेश में दैनिक तापान्तर का हेर-फेर वार्षिक तापान्तर की अपेक्षा कम रहता है । सामान्यत: भूमध्य रेखा पर दैनिक तापान्तर अधिक रहता है । यह तापान्तर भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर घटता जाता है । दैनिक तापान्तर के विषय में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) समुद्रतटीय स्थानों की अपेक्षा आन्तरिक भागों में दैनिक तापान्तर अधिक होता है ।

(२) जब आकाश में बादल छाये रहते हैं उन दिनों दैनिक तापान्तर कम होता है ।

(३) जब भूमि पर बर्फ ढकी रहती है तब दैनिक तापान्तर बढ़ जाता है ।

(४) पर्वतीय प्रदेशों में निचले भागों की अपेक्षा दैनिक तापान्तर अधिक रहता है ।

(५) अन्य भागों की अपेक्षा रेगिस्तानों में दैनिक तापान्तर अधिक होता हैं ।

Rapids (प्रपाती) नदी के जिस भाग में जलधारा का प्रवाह साधारण से अधिक होता है उसे प्रपाती कहते हैं । प्राय: नदी की तलैटी एक सी नहीं होती । कहीं पर चट्टानें कठोर हैं और कहीं पर नरम । नरम भाग तो जल्दी कट जाते हैं परन्तु कठोर चट्टान के कटने में अधिक समय लगता है । फलस्वरूप नदी के मार्ग में प्रपाती बन जाते हैं । नदी तलैटी के ढाल के एकाएक तीव्र हो जाने से भी प्रपाती बन जाते हैं । प्रपाती बनने का आम कारण नदी की तलैटी में कठोर चट्टानों की पट्टियों का आड़ी-तिरछी चट्टान खंड के समय स्थित होना है । इन कठोर चट्टानों के उभरे हुये भाग में आवरण क्षय बहुत कम होता है और इस प्रकार नदी का ढाल प्रत्येक कठोर चट्टानखंड पर कम हो जाता है । लेकिन उसके नीचे ढाल बढ़ जाता है । इस प्रकार इन कठोर चट्टान खंडों पर नदी का जल

उछलता हुआ चलता है और प्रपाती बन जाते हैं। सबसे उचित प्रपाती उस समय बनते हैं जब कठोर चट्टान की परत का झुकाव नदी के बहाव की तरफ हो।

किसी नदी में प्रपाती का होना उसकी नवीन अवस्था का द्योतक है और प्रपाती पूर्ण नदी द्वारा यातायात असम्भव होता है। (देखिये Cascade)

Rasputitsa (रसपुटिटसा) साईबेरिया में जाड़े के मौसम में भूमि बरफ से ढकी रहती है, नदियाँ व झीलें हिमाच्छादित रहती हैं और गमनागमन या यातायात केवल फिसलनेवाली बेपहियेदार गाड़ियों द्वारा ही हो सकता है। इसके विपरीत गर्मी के मौसम में भूमि शुष्क हो जाती है, सड़कों पर चला-फिरा जा सकता है तथा यातायात पहियेदार गाड़ियों द्वारा होने लगता है। जाड़े और गर्मी के मौसम के बीच का कई हफ्तों का समय रसपुटिटसा कहलाता है। इस काल में दूर-दूर तक बाढ़ का पानी फैल जाता है और सारी भूमि दलदली हो जाती है। हिम और तुषार के पिघलने से जहाँ देखो वहाँ पानी ही पानी नजर आता है और बड़ी कठिनाई से ही इधर-उधर आया-जाया जा सकता है।

Rational Horizon (वास्तविक क्षितिज) (देखिये Horizon)

Ravine (नाला) पृथ्वी के धरातल पर एक लम्बे और सँकरे गड्ढे को नाला कहते हैं। नाला-नाली की अपेक्षा बड़ा होता है परन्तु घाटी के मुकाबले बहुत छोटा होता है। वास्तव में कई नाली मिलकर एक नाला बनाते हैं और कई नालों के मिलने पर घाटी बनती है।

Raw materials (कच्चा माल) शिल्प उद्योग द्वारा तैयार किया गया उपयोगी माल के बनाने में प्रयुक्त वस्तुओं और पदार्थों को कच्चा माल कहते हैं। इसके अन्तर्गत अंशतः तैयार किया गया माल जैसे लकड़ी की लुग्दी और गेहूँ के आटे को लेते हैं जिन्हें और अधिक शिल्प द्वारा परिमाणित और पक्का किया जाता है। कुछ परिमार्जित और पूर्णतया तैयार वस्तुयें भी कच्चे माल के रूप में प्रयोग की जाती हैं। कोलतार वास्तव में शराब निकालने की विधि द्वारा प्राप्त परिपक्व वस्तु है परन्तु अनेकों रसायनिक वस्तुओं के निर्माण में इसे कच्चे माल की तरह प्रयोग करते हैं।

प्रत्येक कारखाने के लिए कच्चा माल चाहिये। वास्तव में हर प्रकार के कारखाना उद्योग के लिये कच्चा माल आत्मा के समान है। कारखानों तक कच्चा माल बराबर और सस्ते मूल्य पर पहुँचाया जा सके यही उसका आधार है। इसलिए कभी-कभी कारखाने कच्चा माल उत्पन्न करनेवाले स्थान पर ही खोले जाते हैं, किन्तु अधिकांश कारखाने दूर होते हैं और कच्चा माल उन तक लाया जाता है। जिन कारखानों के लिए कच्चा माल आसानी से नहीं लाया जा सकता उनको कच्चा माल उत्पन्न करने वाले स्थानों पर स्थापित किया जाता है। शक्कर के कारखाना, दूधऔर मक्खन के कारखाने, मांस तैयारकरने के कारखाने, लकड़ी के कारखाने आदि, उन्हीं स्थानों पर स्थापित किये जाते हैं जहाँ कच्चा माल उत्पन्न होता है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि जिन धंधों का कच्चा माल भारी और कम मूल्यवान होता है या शीघ्र खराब हो जाने वाला होता है, वे कच्चा माल उत्पन्न करने वाले प्रदेश में ही स्थापित किये जाते हैं। जो उद्योग-धन्धे किन्हीं अन्य कारणों की वजह से कच्चे माल से भी स्थापित होते हैं, उनके लिये भी कच्चे माल का बराबर सस्ते मूल्य पर पहुँचाना बहुत ही आवश्यक होता है। यदि कच्चा माल उपलब्ध न हो या सस्ते मूल्य पर पहुँचाया न जा सके तो वह धंधा दूसरों की प्रतिस्पर्धा में कभी भी पनप नहीं सकता।

विभिन्न उद्योगधन्धों के लिये कच्चा माल निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त होता है :—

(१) खेती की फसलों से जैसे कपास, गन्ना, पटसन आदि। (२) खनिज सम्पत्ति से

जैसे लोहा व इस्पात। (३) पशु-पक्षियों से जैसे दूध, मक्खन, मांस, ऊन, आदि। (४) वन प्रदेश से जैसे लकड़ी, लाख आदि और (५) कुछ शिल्प उद्योगों के बचे-खुचे माल से या तैयार माल से जैसे कागज, कृत्रिम रेशम, रसायन आदि।

Recemented or Reconstructed Glacier (फिर से बनी हुई हिमनदी) जब कोई हिमनदी पर्वतीय प्रदेश में बहते-बहते किसी चट्टान खंड पर पहुँचती है और वहीं खतम हो जाती है तो इसमें से टूट-टूट कर बड़े-बड़े हिम खंड नीचे गिरते हैं और वहाँ पर पुन: इकट्ठा होकर या मुड़कर एक नई हिमराशि बना लेते हैं। इस प्रकार से बनी हिमराशि को फिर से बनी हुई हिमनदी कहते हैं। यह हिमनदी घाटी में प्रवाहित हिमनदी का एक प्रकार है।

Receding Hemicycle (वापसी हिमनदी चक्र) हिमनदियों का अन्तिम छोर कुछ समय तक आगे बढ़ता है, परन्तु कुछ समय को पीछे भी हट सकता है। जब कभी जलवायु में परिवर्त्तन हो जाता है, तापक्रम ऊँचा उठ जाता है, तो तुषारपात कम हो जाता है और हिम अधिक नष्ट होता है। ऐसा होने पर हिमनदी का छोर पीछे हटता है। इसे वापसी हिमनदी चक्र कहते हैं।

आज से करोड़ों वर्ष पहिले जब उत्तरी अमरीका और उत्तरी-पश्चिमी यूरोप का अधिकांश भाग बर्फ के आवरण के नीचे ढका था तब ४ बार जलवायु की भीषणता कम होने पर वापसी हिमनदी चक्र का सूत्रपात हुआ। इस वापसी हिम नदी चक्र के कई चिन्ह मिलते हैं :—

(१) अधिकतर स्थानों पर एक से अधिक बजरी की चादर फैली हुई मिलती है। बजरी के जमा होने से बनी ये परतें एक के ऊपर बिछी पाई जाती है।

(२) हिमनदी निक्षेप पर मौसमी क्षति के प्रभाव कहीं कम और कहीं ज्यादा नजर आते हैं। यह इस बात का संकेत है कि सभी हिमनदी आगे बढ़ी थी और कभी पीछे हट गई थी।

(३) बजरी की विभिन्न परतों के बीच मिट्टी की तह और पौधों के अवशेष पाये जाते हैं जो इस बात का संकेत करते हैं कि हिम नदियों के पीछे हटने पर वनस्पति उग आई होगी।

वापसी हिमनदी चक्र में कुछ हिमनदियाँ आगे बढ़ती रहती हैं और इनके द्वारा वापसी हिमनदी चक्र का अन्तिम छोर आगे को धकेल दिया जाता है। भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि सन् १८५० ई० तक संसार की सभी हिमनदियाँ आगे बढ़ती रहीं। परन्तु सन् १९१८ ई० के बाद से सभी पीछे हट रहे हैं।

Recessional Moraines (अवकशीय मोरेन) जब हिम आवरण पिघलकर नष्ट होने लगता है और हिमनदी का अन्तिम छोर पीछे को हटता हुआ उत्तर को स्थित होता है तो हिम नदी का पीछा हटना लगातार नहीं होता रहता है। थोड़ी दूर पीछे हटकर हिमनदी कुछ समय के लिये रुक जाती है और इसके अन्तिम छोर पर मोरेन के निक्षेप होने लगते हैं। इस प्रकार के मोरेन को विश्रामिक मोरेन कहते हैं। ये अन्तिम मोरेन की ही तरह होते हैं। केवल इनकी स्थिति भिन्न होती है। यदि हिमनदी एक ही दिशा में पीछे नहीं हटती तो अलग-अलग दूरी पर अनियमित टीले बन जाया करते हैं।

Red Clay (लाल चिकनी मिट्टी) महासागरों के आधारतल पर २००० फदम से भी अधिक गहराई पर पाई जाती है। यह निक्षेप ज्वालामुखी उद्‌गार द्वारा प्राप्त होता है और इसमें प्राणिज अंश बिल्कुल भी नहीं होता। इसमें मिली हुई सामग्री समुद्र के

भीतर होनेवाले तथा स्थल खंड पर होने वाले दोनों ही प्रकार के ज्वालामुखी उद्गारों से प्राप्त होती है परन्तु समुद्र के खारे जल में पड़ जाने के कारण इसमें रचनात्मक परिवर्त्तन उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अन्दर अल्युमिनियम सिलिकेट के सूक्ष्म कण पाये जाते हैं और इस प्रकार सचमुच में यह चिकनी मिट्टी होती है। इसमें प्यूमिस, ज्वालामुखी उद्गार से निकलनेवाली सामग्री, उल्काओं की धूल आदि भी पाई जाती हैं और कभी-कभी शार्क के दाँत भी मिले हुये रहते हैं। इसका रंग सब जगह लाल रहता है। इसका मुख्य कारण इसमें उपस्थित लोहे का आक्साइड अंश है।

महासागर के अगाध तल के बहुत विस्तृत भाग में लाल चिकनी मिट्टी ही पाई जाती है। इस निक्षेप का विस्तार संभवतः उतना है जितना कि सब महाद्वीपों के क्षेत्रफल का योग। इसका सबसे विस्तृत निक्षेप प्रशान्त महासागर में है। हिन्द महासागर में इस के निक्षेप का विस्तार सीमित है और आन्ध्र महासागर में यह कहीं-कहीं ही पाया जाता है।

Red Mud (लाल पंक) समुद्र के भीतर पाया जानेवाला लालपंक नीले पंक की ही तरह का निक्षेप है और इसमें आयरन आक्साइड के अंश के कारण ही इसका रंग लाल होता है। इसमें स्थल खंड से वायु द्वारा उड़ाकर लाई हुई धूल भी मिली रहती है। दक्षिणी अमरीका के उष्ण कटिबंधीय भूभाग के आन्ध्रमहासागरीय तट प्रदेश में यह निक्षेप पाया जाता है। चीन सागर में लोयस मिट्टी के कारण लाल पंक निक्षेप मिलता है।

Reef (चट्टान श्रेणी) समुद्रजल के भीतर विभिन्न प्रकार की सामग्री जमकर चट्टान के रूप में बदल जाती है। जब निक्षेप का टीला इतना ऊँचा पहुँच जाता है कि भाटे की लहर आने पर जल से कुछ बाहर हो जाय तो इसे चट्टान श्रेणी कहते हैं। यह चट्टान श्रेणी सदैव पानी में डूबी रहती है और केवल उस समय बाहर निकलती है जब भाटा आता है। इसका सर्वसाधारण रूप मूँगे की चट्टान श्रेणी है।

स्थिति के अनुसार इन चट्टान श्रेणियों के तीन प्रकार हैं—(१) अनुतट श्रेणी जो किसी महाद्वीप या द्वीप के तट से सटकर बनी होती है। (२) परातट श्रेणी जो समुद्रतट से कुछ दूरी पर तट के समानान्तर दीवार की तरह उठी हुई होती है। (३) वलयाकार श्रेणी जो घोड़े की नाल या गोल वृत्त की तरह बनी हुई रहती है।

Reforestation (फिर से बन लगाना) कुछ वन प्रदेशों में जंगली आग या अधिक बेतरतीब कटाई के कारण वे बिल्कुल खतम हो जाते हैं। इस प्रकार से नष्ट वन प्रदेश में फिर से पेड़ लगाने को फिर से बन लगाना कहते हैं। आजकल के युग में वनों का महत्व स्पष्ट हो गया है और प्रत्येक राष्ट्र इसको राष्ट्रीय सम्पत्ति के समान सरकारी देखरेख में रखता है। अतः जहाँ कहीं भी वन नष्ट हो गये हैं वहाँ पर फिर से वन लगाये जा रहे हैं।

Reg (रेग) रेगिस्तानी प्रदेशों में वायु महीन धूल व बालू को उड़ाकर ले जाती है और जहाँ पर से बालू उड़ा ले जाई जाती है वहाँ की भूमि पर केवल पत्थर के टुकड़े और बजरी ही शेष रह जाती है। सहारा रेगिस्तान में इस प्रकार के समतल मैदान को रेग कहते हैं। (देखिये Hammada)

Regetation (पुर्नहिमन) हिमनदी की ऊपरी सतह का हिम सूर्य प्रकाश के कारण या हिमक्षेत्र की हिमराशि की निचली परतें ऊपरी दबाव के कारण पिघल जाती हैं। सूर्य के प्रकाश से तो हिम पिघल जाता है परन्तु ऊपर के दबाव के कारण भी द्रवांक शीघ्र प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार की पिघली हुई हिमराशि शीघ्र ही फिर जम जाती है। इस प्रकार एक बार पिघलकर फिर से जमने को पुनर्हिमन कहते हैं। इसके दो कारण हैं—(१)

जमी हुई परतों के सम्पर्क में आना और (२) दबाव कम होने पर द्रवांक का बढ़ जाना। इसके अन्तर्गत दवाव के कारण हिम के टुकड़ों का आपस में जुड़ना भी शामिल है।

वास्तव में यह पुनर्हिमन क्रिया ही हिमनदी को प्रवाह प्रदान करती है।

Regional Analysis Map (प्रादेशिक विश्लेषण मानचित्र) किसी प्रदेश के भौगोलिक विश्लेषण के लिए कुछ मानचित्रों की आवश्यकता होती है। उन्हें प्रादेशिक विश्लेषण मानचित्र कहते हैं—इनके निम्नलिखित भेद अथवा रूप होते हैं—(१) स्थिति मानचित्र, (२) राजनीतिक मानचित्र, (३) प्राकृतिक बनावट का मानचित्र, (४) भूगर्भ सम्बन्धी मानचित्र, (५) भूमि और भूमि कटाव सम्बन्धी मानचित्र, (६) जलवायु मानचित्र, (७) भूमि उपयोग का मानचित्र, (८) खेती के मानचित्र, (९) खनिज सम्पत्ति और उद्योग-धन्धों के मानचित्र, (१०) यातायात सम्बन्धी मानचित्र, (११) मनवहलाव के स्थानों या मनोरंजन केन्द्रों का मानचित्र, (१२) सामाजिक दशा का मानचित्र, (१३) जन-संख्या के घनत्व का मानचित्र और (१४) हवाई जहाज से लिये गये प्रदेश के विभिन्न भागों के चित्र।

कुछ विशेषज्ञ विश्लेषण मानचित्रों को भौगोलिक मानचित्रों से बिल्कुल ही भिन्न नहीं मानते।

Regional Geography (प्रादेशिक भूगोल) किन्हीं विशेष क्षेत्रों या पृथ्वी के प्रदेशों का भौगोलिक अध्ययन प्रादेशिक भूगोल कहलाता है।

Region (प्रदेश) पृथ्वी के धरातल का वह क्षेत्र जो कुछ विशेषताओं के कारण अपने आस-पास के क्षेत्रों से सर्वथा भिन्न दीख पड़ता है उसे देश कहते हैं। भेद के आधार के अनुसार प्राकृतिक प्रदेश, राजनीतिक प्रदेश, आर्थिक प्रदेश और भौगोलिक प्रदेश आदि कहे जा सकते हैं।

Regolith (भूमि आवरण) (देखिये Mantle Rock)

Rejuvenation (नदी में नवजीवन) जब नदी काट-छाँट करते-करते अपने आधारतल तक पहुँच जाती है तो उसकी इस वृद्धावस्था में काट-छाँट या आवरण क्षय का काम बन्द हो जाता है। उस दशा में नदी की घाटी एक विस्तृत समतल मैदान बन चुकी होती है। इस मैदान से होकर पुरानी नदी अपने निश्चित मार्ग से ही बहती है और अनन्तकाल तक रह सकती है। परन्तु हमारी पृथ्वी की रचना इतनी अनिश्चित और अस्थायी है कि धरातल की किसी उथल-पुथल के कारण प्रदेश के तनिक भी ऊँचा-नीचा हो जाने से अथवा जलवायु सम्बन्धी परिवर्त्तनों के कारण उद्गम स्थल में अधिक वर्षा होने पर नदी में जल की अधिक मात्रा हो जाने से नदी की अवस्था में परिवर्त्तन हो जाता है और वह पुनः अपनी काट-छाँट की क्रिया प्रारम्भ कर देती है। इस दशा को नदी में नवजीवन कहते हैं और इस प्रकार से पुनः युवावस्था को प्राप्त पुरानी नदी को पुनः युवा नदी कहते हैं।

नदी में नवजीवन का संचार होने पर पुनः युवा नदी आवरणक्षय के मैदान में होकर बहती हुई कदापि नहीं रह पाती। इसके विपरीत वह विस्तृत व चौड़े मैदान में गहरी तलटी खोद लेती है और घाटी का आकार एक पीकदान या उगालदान की तरह हो जाता है। नदी की मध्यवर्त्ती या केन्द्रीय घाटी तो अँग्रेज़ी के V अक्षर के समान ही होती है परन्तु इसके दोनों ऊपरी सिरों पर बाहर और ऊपर की तरफ मैदानी शाखा फैली रहती है जो पुराने जीर्णावस्था की घाटी के अवशेष चिन्ह हैं और जिन के बीच से V आकार की पुनः युवा नदी घाटी बन गई है।

नदी में नवजीवन का संचार प्रायः तभी होता है जब नदी आधारतल को प्राप्त कर चुकी

होती है और उसका मार्ग घुमावदार बन चुका होता है। परन्तु नवजीवन को लानेवाले भौतिक परिवर्त्तन कभी भी और नदी घाटी के विकास की किसी अवस्था में भी हो सकते हैं।

Relative Humidity (सापेक्षिक आर्द्रता) हवा में किसी तापक्रम पर कुल जितनी जलवाष्प रह सकती है उसका जितना प्रतिशत अंश भाप हवा में मौजूद होता है उसे हवा की सापेक्षिक आर्द्रता कहते हैं। इसके द्वारा वायुमण्डल की सापेक्ष नमी या तरी का पता चल जाता है और इसको नापने के लिये हिग्रोमीटर नामक यन्त्र का प्रयोग करते हैं।

वायु के तापक्रम में परिवर्त्तन होते ही उसकी भाप धारण करने की शक्ति में भी अन्तर पड़ेगा और उसी के अनुसार सापेक्ष आर्द्रता में भी अन्तर पड़ जायेगा। महासागरों के ऊपर वायु की सापेक्ष आर्द्रता सबसे अधिक ८० प्रतिशत तक रहती है और महाद्वीपों की वायु की सापेक्षिक आर्द्रता सबसे कम केवल ५० प्रतिशत तक ही रहती है। मरुस्थलों पर सापेक्षिक आर्द्रता बहुत थोड़ी केवल १० प्रतिशत ही रहती है। किसी स्थान की वायु में भाप की मात्रा अधिक हो, परन्तु सापेक्ष आर्द्रता कम हो तो वहाँ का जलवायु सूखा ही रहेगा। मौसम के ज्ञान के लिये सापेक्ष आर्द्रता का जानना आवश्यक है। सापेक्ष आर्द्रता से ही यह मालूम होता है कि किसी जगह वर्षा होगी या नहीं। किसी स्थान पर वाष्पीभवन की गति और वायु में भाप लेने की शक्ति भी सापेक्षिक आर्द्रता पर निर्भर रहती हैं।

Relict Mountain (अवशिष्ट पर्वत) आवरणक्षय की शक्तियों के द्वारा काट-छाँट कर बनाये हुये पर्वतों को अवशिष्ट पर्वत कहते हैं। ये अवशिष्ट पर्वत निम्नलिखित ४ प्रकार से बन जाते हैं:—

(१) पठार की काट-छाँट से,
(२) भभाग निर्मित पर्वत से,
(३) मोड़दार पर्वत से,
(४) कुछ झुकी हुई परतों से।

(देखिये Mountains of Denudation)

Relief (बन्धुर) पृथ्वी के धरातल पर ऊँचाई के अन्तर को बन्धुर कहते हैं। कहीं भूपटल ऊँचा है तो कहीं नीचा है, कहीं ऊँचे पर्वत हैं तो कहीं चौरस पठार और कहीं समतल मैदान। तल की यह भिन्नता ही बन्धुर कहलाती है।

Relief Map (बन्धुर मानचित्र) जो मानचित्र धरातल के वास्तविक बन्धुर को अपनी सतह की ऊँचाई-निचाई द्वारा प्रदर्शित करता है उसे बन्धुर मानचित्र कहते हैं। बन्धुर मानचित्र में लम्बरूप मानदण्ड को बहुत बढ़ा दिया जाता है। ऊँचाई के मानदण्ड पर एक इंच द्वारा केवल समतल मानदण्ड का १/१० या १/२०वाँ भाग ही अंकित किया जाता है। कभी-कभी बन्धुर मानचित्र की विशेषतायें और स्थलरूप फ़ोटो द्वारा सपाट क़ाग़ज़ पर अंकित कर दी जाती है। सपाट क़ाग़ज़ पर बन्धुर मानचित्र के स्थलरूपों को अतिशय प्रकाश और छाया द्वारा भी प्रदर्शित किया जाता है।

Relief or Orographic Rain (पर्वतीय वर्षा) (देखिये Orographic Rain)

Representative Fraction (प्रतिनिधि भिन्न) जब एक मील के लिए एक इंच के पैमाने का प्रयोग करते हैं तो उसे अक्सर एक भिन्न के रूप में अंकित करते हैं। एक मील में ६३३६० इंच होते हैं। इसलिए नक्शों का एक इंच भूमितल के ६३३६० इंचों को प्रगट करता है। इसको १/६३३६० भिन्न के समान प्रकट कर सकते हैं। इसको प्रतिनिधि

भिन्न कहते हैं और इसका तात्पर्य यह होता है कि नक्शे पर की कोई दूरी भूमि पर की सच्ची दूरी का १/६३३६०वाँ भाग होती है।

प्रतिनिधि भिन्न द्वारा मानदण्ड अंकित करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि विदेशी मानचित्रों पर भी दूरी का पता लगाया जा सकता है। इसमें इंच सेन्टीमीटर आदि का भेद नहीं रहता। चाहे एक आदमी दूसरे के देश के माप से परिचित न भी हो तब भी वह प्रतिनिधि भिन्न के द्वारा अपने देश के माप में मानदंण्ड समझ सकता है।

$$\text{इस प्रकार प्रतिनिधि भिन्न} = \frac{\text{मानचित्र पर दूरी}}{\text{धरातल पर दूरी}}$$

Resequent Stream (स्वयं आरोपित नदी) मोड़दार पर्वत प्रदेश में जब कोई नदी किसी धनुषाकार उन्नतोदर मोड़ या उच्छूंग पर बहती हुई उसके बीच अपने को स्थापित कर लेती है तो उसे स्वयं आरोपित नदी कहते हैं। इसमें उन्नतोदर उच्छूंग कालान्तर में नतोदार V आकार की घाटी बन जाते हैं और उनके इधर-उधर नतोदर मोड़ अपेक्षाकृत ऊँचे खड़े रह जाते हैं।

इस प्रकार की नदी और घाटी का निर्माण जलधारा के वेग और उच्छूंग की मुलायम चट्टानों पर निर्भर रहता है।

Retrogradation (पीछे का कटाव) जब लहरें तरह-तरह के शिलाखंडों से लदी हुई किनारे से टकराती हैं तो वे एक छोटी सी कटान बना देती हैं। भूखंड को खोद कर एक छोटा-सा ताख बना देती है। धीरे-धीरे लहरों के घात-प्रतिघात से यह कटान बढ़ती जाती है और तटीय चट्टान पीछे को खसकती जाती है। इस को पीछे का कटाव कहते हैं।

पीछे का कटाव निम्नलिखित दशाओं पर निर्भर रहता है—(१) लहर का विस्तार और शक्ति, (२) तट की चट्टानों का स्वभाव व बनावट, (३) लहर में मिले हुये शिलाखण्डों की राशि और बजरी के टुकड़ों का विस्तार। लहरों में बालू, बजरी तथा कंकड़-पत्थरों का बोझ दो प्रकार से मिला रहता है—(अ) घुला हुआ (ब) घसीटता हुआ।

पीछे का कटाव निम्नलिखित प्रकार व तरीकों से होती है :

(१) चट्टानों को चूर करके, (२) चट्टानों को घुला करके, (३) जल के दबाव से और (४) दरारों के भीतर वायु के दबने व फैलने से। चट्टानों की दरारों में लहरों के आने पर वायु दबती है और उनके लौटने पर फैलती है। इस प्रकार चट्टानों के आने पर वायु बढ़ती है तथा कालान्तर में बड़े-बड़े खंड टूट जाते हैं।

खुले समुद्र में जल गहरा रहता है और लहरों का तलैटी पर कोई भी असर नहीं पड़ता। परन्तु जब वे किनारे की तरफ बढ़ती है तो उथले जल की तलैटी के साथ रगड़ खाने पर लहर का ढाल भूमि की तरफ तीव्र हो जाता है और यह किनारे पर बड़ी प्रचण्डता से टकराती है और तटीय चट्टान के बड़े-बड़े टुकड़े तोड़ लेती है। इन में कुछ लहरों में घुलकर मिल जाता है, कुछ टुकडे बार-बार रगड़ खाने से बालू व बजरी की तरह महीन हो जाते हैं और कुछ बड़े-बड़े टुकड़े तलैटी के साथ घसीटते चलते हैं। पीछे के कटाव से कई प्रकार के स्थल रूप बन जाते हैं और किनारा कटा-फटा हो जाता है।

Reversed Faults (उल्टी हुई दरार) जब भूमि पर पड़ी हुई दरार समतल या समाकार हो परन्तु खिंचाव व भिचाव की अधिकता के कारण ऊपर की परतें नीचे की परतों के ऊपर से होती हुई आगे को धकेल जाती है तो उन्हें उल्टी हुई दरार कहते

हैं। उल्टी हुई दरार की दो विशेषतायें हैं—(१) भिंचाव अधिक पड़ने पर मोड़ अपनी धुरी पर टूट जाता है और आगे खिसक कर दूसरे स्तर पर आरोपित हो जाता है। (२) इस प्रकार चट्टानों का क्रम उलट जाता है और प्राचीन काल की चट्टानें नवीन चट्टानों पर पहुँच जाती हैं।

Revolution (परिभ्रमण) एक अण्डाकार मार्ग पर ग्रहों का सूर्य के चारों ओर चक्कर काटना परिभ्रमण कहलाता है। पृथ्वी अपने ग्रह पथ पर चक्कर लगाती हुई ३६५¼ दिन में सूर्य का परिभ्रमण करती है। इसी कारण पृथ्वी के परिभ्रमण को उसकी वार्षिक गति कहते हैं। पृथ्वी की धुरी के एक ओर झुके रहने के कारण आधे साल तक तो उसका उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर झुका रहता है और आधे साल उसका दक्षिणी ध्रुव।

परिभ्रमण और झुकाव के कारण ही (१) दिन-रात बड़े होते हैं। (२) एक ही स्थान पर साल के विभिन्न समय सूर्य की ऊँचाई बदलती रहती है। (३) ऋतुयें बदलती रहती हैं। (४) सूर्य तथा ग्रह तारों के बीच चलते हुये मालूम पड़ते हैं। (५) वार्षिक परिभ्रमण से ही अक्षांश और कटिबंध बनते हैं।

ग्रहपथ के अण्डाकार होने से पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी घटती-बढ़ती रहती है। इस घटा-बढ़ी से पृथ्वी की परिभ्रमण गति भी घटती-बढ़ती रहती है।

पृथ्वी के परिभ्रमण का प्रमाण यह है कि स्थायी तारों के बीच स्थिति बदलती हुई मालूम पड़ती है। जब हम रेल द्वारा यात्रा करते हैं तो हम देखते हैं कि दूर क्षितिज पर स्थित वस्तुयें तो कुछ समय तक नजर में बनी रहती हैं [illegible] वस्तुयें तेजी से इधर-उधर घटती हुई मालूम पड़ती हैं। इसी प्रकार कुछ तेज चमकने वाले स्थायी तारे हमारे समीप हैं और फोटो यन्त्रों द्वारा ली गई तस्वीरों से प्रगट होता है कि साल में वे कुछ इधर-उधर हट जाते हैं। वास्तव में वे नहीं हटते बल्कि पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण पृथ्वी की स्थिति में अन्तर आ जाता है।

सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण में पृथ्वी की चार स्थितियाँ प्रमुख हैं। उत्तरायण, दक्षिणायन, वसन्त समरात्रि और शरद समरात्रि। उत्तरायन स्थिति २१ जून को होती है और उस समय यहाँ सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं उसे कर्क रेखा कहते हैं। दक्षिणायन स्थिति २३ दिसम्बर को होती है जब दक्षिणी ध्रुव सूर्य के सामने आ जाता है और जहाँ सूर्य की किरणों सीधी पड़ती हैं उसे मकर रेखा कहते हैं। वसन्त और शरद समरात्रियों को दिन और रात बराबर होते हैं और ये स्थितियाँ २१ मार्च और २३ सितम्बर को आती हैं। उस समय सूर्य जहाँ सीधा सर पर होता है वहाँ भूमध्य रेखा होती है। इस प्रकार परिभ्रमण द्वारा दिन-रात की अवधि, मौसम और अक्षांश का निश्चय होता है।

Rhumb Line (रम्ब रेखा) पृथ्वी तल पर सभी अक्षांश और देशान्तर रेखायें एक-दूसरे को समकोण पर काटती हैं। इसलिए यदि कोई रेखा इस प्रकार खींची जाय कि वह विभिन्न देशान्तर को एक ही कोण पर काटती हुई गुजरे तो उस सीधी रेखा को रम्बरेखा कहेंगे। इसे लाक्सोड्रोम भी कहते हैं। वास्तव में दिशा सूचक ध्रुवघड़ी द्वारा सूचित दिशा ही रम्बरेखा है। (देखिये Loxodrome)

Ria (निमग्न घाटी) समुद्र में जब कोई पर्वतीय प्रदेश डूब जाता है तो उसकी घाटियों में तो पानी भर आता है और उच्च शिखर टापुओं की तरह खड़े रह जाते हैं। इस प्रकार समुद्र जल में डूबी हुई घाटी को निमग्न घाटी कहते हैं।

इस प्रकार की निमग्न घाटी बनने के लिये जल के भीतर डूबनेवाले प्रदेश में ऊँची-नीची श्रेणियाँ होनी चाहियें और उनके बीच की घाटियाँ समुद्र तट के समानान्तर नहीं होनी चाहिये। निमग्न घाटी के द्वारा समुद्रतट पर लम्बी व सँकरी खाड़ी बन जाती है, जो तट पर आड़ी-तिरछी कटान बनाती है। चूँकि निमग्न घाटी से होकर पहिले कभी हिमनदी प्रवाहित नहीं हुई थी इसलिये उनके दोनों तरफ की दीवारों का ढाल क्रमशः होता है और इनके द्वारा भीतर पहुँचना आसान होता है। अक्सर इसके एक सिरे पर से कटान की शाखायें इधर-उधर फैली रहती हैं। दूसरी विशेषता यह है कि यह निमग्न घाटी समुद्र की ओर गहरी होती जाती है। जो नदियाँ कभी मुख्य नदी में सहायक होकर मिला करती थीं वे मुख्य घाटी के निमग्न होने के बाद भी अलग से निमग्न घाटी में बहकर गिरती हैं। निमग्न घाटी इस प्रकार पुरानी घाटी की दीवारों से घिरी रहती है।

संसार की कुछ घाटियाँ दक्षिणी-पश्चिमी आयरलैंड और उत्तरी-पश्चिमी स्पेन में पायी जाती हैं। कार्नवाल प्रदेश में प्लाइमथ सावन्ड् और फालमथ पोताश्रय निमग्नघाटी में ही स्थित हैं।

Ria Coastline (निमग्न घाटी तट) जिस समुद्र तट की रूपरेखा घाटियों के निमग्न होने से बनती है उसे निमग्न घाटी कहते हैं। इस प्रकार का तट कटा-फटा तथा पर्वतीय होता है और तट के समानान्तर द्वीपश्रृंखला सी पाई जाती है। इन में प्राकृतिक पोताश्रय तो अच्छे बनते हैं परन्तु भीतर के भागों के साथ सम्पर्क कठिन होता है।

Ridge (पर्वत शाखा) जब कोई स्तर धूरी पर मुड़कर या टूटकर चट्टान खंड की तरह उमड़ आता है तो उसे पर्वतशाखा कहते हैं। पर्वत शाखा वहाँ बनती है जहाँ धुरी के एक ओर तो गड्ढा या घाटी बन जाये और दूसरी तरफ के स्तर अपेक्षाकृत ऊँचे उठ जायें। यदि स्तर झुक जाये जैसा अक्सर होता है तो धरी के एक तरफ का ढाल तो तीव्र होगा और दूसरी तरफ का केवल उतना ही जितना कि पर्वत शाखा बनाने वाले स्तरों का।

Ridge of High Pressure (उच्चभार श्रेणी) किसी विपरीत चक्रवात या उच्च भार प्रदेश का फैलाव या शाखा को उच्चभार श्रेणी कहते हैं। उच्चभार श्रेणी का क्षेत्र लम्बा होता है और समीपवर्ती विपरीत चक्रवात से शाखा की तरह निकला रहता है। चूँकि इसका आकार पर्वत प्रदेश से निकली हुई शाखा के समान होता है इसीलिए इसे उच्चभार श्रेणी कहते हैं। यह निम्नभार गर्त से बिल्कुल ही विपरीत होता है।

Rift Valley (दरार घाटी) कई स्थानों पर तनाव या खिचाव के कारण धरातल पर मीलों लम्बी समानान्तर दरारें पड़ जाती हैं। बहुत कुछ समानान्तर दो दरारों के बीच का भाग जब कभी नीचे को धँस जाता है तो घाटी बन जाती है। ऐसा भी होता है कि दोनों दरारों के बीच की भूमि तो अपने ही स्थान पर रह जाती है और दोनों किनारों की भूमि ऊँची उठ जाती है तो भी घाटियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार बनी हुई घाटियों को दरार घाटी कहते हैं। इस प्रकार की दरार घाटी लम्बी और सँकरी होती है। जर्मनी की राइन नदी इसी प्रकार की एक २०० मील लम्बी और २० मील चौड़ी दरारी घाटी में से होकर बहती है। स्काटलैंड के मध्यवर्त्ती मैदान इसी प्रकार की घाटी में स्थित हैं। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण और विस्तृत दरार घाटी वह है जो सीरिया, पैलस्टाइन, पूर्वी अफ्रीका से होती हुई कोई ३००० मील की लम्बाई में फैली है। इस में ही गैलीली सागर, जारडंन नदी की घाटी, मृत सागर, अकाबा की खाडी और लाल सागर स्थित हैं। इसकी शाखायें मध्य

अफ्रीका में फैली हैं और एडाल्फ, न्यासा, टैन्गनाइका, एडवर्ड, अलवर्ट तथा अन्य बहुत सी छोटी-मोटी झीलें इसी दरार घाटी में स्थित हैं।

Rimaye (रिमाए) देखिये (Crevasse, Bergschrund)

Rime (हिमपरत) जब बहुत अधिक ठंडे जल की बूँदें किसी खुली हुई वस्तु सम्पर्क में आती हैं तो वे जम जाते हैं और हिमस्फट की एक राशि जमा हो जाती है। इसे हिमपरत कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है--(१) जब कुहरे के जलकण इस प्रकार जम जाते हैं तो उन्हें मुलायम हिमपरत कहते हैं। (२) जब कभी जलफुहार के जल की बूँदों के जमने से हिमपरत बनता है तो उसे कठोर हिम परत कहते हैं। मुलायम हिमपरत उस समय बनता है जब पाला और गीला कुहरा एक साथ पड़ते है और खुले रक्खे हुये पदार्थों की हवा की तरफ़ वाले पार्श्व की ओर हिम के रूखे स्फट बन जाते हैं। इसके विपरीत कठोर हिम परत के हिम स्फट गीली वायु या जलफुहार के द्वारा लम्बरूप धरातल पर बन जाते हैं।

River (नदी) ताजे पानी की काफी बड़ी धारा नदी कहलाती है। नदी की धारा नद या नाले से बड़ी होती है और स्वाभाविक नाली द्वारा नीचे की ओर प्रवाहित होती है। इस प्रकार अपनी तलैटी में से बहती हुई दोनों किनारों द्वारा सीमित नदी किसी समुद्र, झील या अन्य दूसरी नदी में जा मिलती है।

जहाँ से नदी की धारा निकलती है उसे उसका उद्गम कहते हैं। अपने उद्गम स्थान पर नदी एक झील, जलस्रोत, झरने या कई पहाड़ी धाराओं के रूप में बहने लगती है। इसके मार्ग को इसकी तलैटी कहते हैं। अपनी तलैटी में यह जलधारा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वैसे-वैसे इसके दोनों किनारों पर अनेकों सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं और सहायक नदियों के सहित सम्पूर्ण जल प्रवाह को नदी व्यवस्था कहते हैं। जहाँ पर यह किसी समुद्र या झील में प्रवेश करती है, उसे नदी का मुहाना कहते हैं। कुछ नदियाँ अपने मुहाने पर डेल्टा बनाती हैं और कुछ नदियों के मुहाने पर ज्वार-भाटा आते रहने से एस्चुअरी बन जाती है। उद्गम के समीप के क्षेत्र को नदी की ऊपरी घाटी कहते हैं और मुहाने के समीप के प्रदेश को निचली घाटी कहते हैं।

नदी वर्षा के अतिरिक्त जल के ऊँचे ढाल से नीचे के ढाल की ओर बहा ले जाती है। बहने के कारण जल में शक्ति उत्पन्न होती है। इसी शक्ति के कारण जल में कंकड़, पत्थर बहते हैं। इनकी सहायता से नदी दो प्रकार का काम करती है। प्रथम तो यह काट-छाँट कर अपनी तलैटी को गहरा करती रहती है और दूसरे अपने दोनों किनारों को काट कर पाट चौड़ा करती है। इसके अलावा नदी अपने ढोये हुये पदार्थ को जगह-जगह जमा करके विभिन्न स्थलरूपों का निर्माण करते हैं।

घाटी निर्माण का कार्य तलैटी बनाने से प्रारम्भ होता है और नदी की कार्य प्रणाली के आधार पर ही उनकी अवस्था निश्चित की जाती है। साधारणतया तीन अवस्थायें निम्नलिखित हैं--**नवीन अवस्था** में नदियों में घाटियाँ गहरी, जलप्रपातों का बाहुल्य, झीलें तथा अविकसित जलविभाजक होते हैं। **मध्य अवस्था** की नदियों का मार्ग घुमावदार हो जाता है और निक्षेप की मात्रा अधिक हो जाती है। नदी की घाटी काफी चौड़ी तथा तलैटी सपाट हो जाती है। **अन्तिम अवस्था** में नदियों व उनकी सहायक धारायें अपने अन्तिम तल तक पहुँच जाती हैं। नदी की घाटी विस्तीर्ण समतल मैदान बन जाता है जिसके बीच से होकर नदी धीरे-धीरे बहती रहती है।

River Basin (नदी का बेसिन) जिस भूभाग का जल नदी व उसकी सहायक

धाराओं द्वारा बहकर आता है उस समस्त प्रदेश को नदी का बेसिन कहते हैं। बहते जल का कार्य-क्षेत्र नदी के बेसिन में ही सीमित रहता है।

River Capture (नदी का हड़पना) जब कोई नदी उद्गम की ओर घाटी निर्माण करती-करता अपने बेसिन या प्रवाह प्रदेश को तना विस्तृत कर लेती है कि दूसरी छोटी नदी का उद्गम इसी में शामिल हो जाता है और दूसरी नदी का सारा पानी बड़ी नदी में बहने लगता है तो से नदी का हड़पना कहते हैं।

नदी के हड़पने की ओर सबसे पहिले जर्मन विद्वान फिलिपसन ने सन् १८८६ में ध्यान आकर्षित किया। वास्तव में नदी का हड़पना जल विभाजक पर ही होता है। अधिक जलपूर्ण और तेज बहने वाली नदी अपनी घाटी को अधिक गहरा कर लेती है। इसलिये इसकी सहायक नदियाँ अधिक तीव्रता से गिरती हैं और अपने उद्गम पर अधिक जल्दी आवरणक्षय करती हैं। इस प्रकार पीछे को काटते-काटते ये समीपवर्त्ती छोटी नदी के उद्गम को हड़प लेती हैं। नदी के हड़पने से कई छोटे-छोटे नदी बेसिन एक में मिलकर विस्तृत बेसिन बना लेते हैं।

नदी हड़पने के दृष्टान्त उन देशों में अधिक मिलते हैं जहाँ की नदी व्यवस्था पूर्णतया विकसित, जहाँ के जल विभाजक संकरे और कम चौड़े तथा जहाँ बहुत सी सहायक नदियाँ होती हैं। ऐसे स्थानों पर या तो ऐसी घाटियाँ पाई जाती हैं जिनमें बहुत छोटी जलधारायें प्रवाहित होती रहती है या शुष्क घाटियाँ पाई जाती हैं जहाँ से जलधारा की दिशा बिल्कुल ही परिवर्त्तित कर दी गई है। नदी हड़पने के कई कारण हैं—(१) जलविभाजक का खिसकना, (२) तलैटी में कठोर स्तर का होना, (३) भूगर्भिक शक्तियाँ, (४) हिमनदियों का कार्य, ज्वालामुखी उद्गार (६) हिमशैलों का गिरना। जिस तरफ अधिक वर्षा होती है उधर की जलधारा स्वभावतः वेगवती होती है। दूसरी तरफ तलैटी में कठोर चट्टान होने से आवरणक्षय में रुकावट पड़ती है।

हडपने वाली नदी को चोर नदी कहते हैं और हड़पी हुई नदी को अयोग्य या अनुपयुक्त नदी कहते हैं। जहाँ पर हड़पने की क्रिया होती है उसे हवाई दर्रा' (Wind gap) कहते हैं।

River Fain (नदीपंख) पर्वत प्रदेशों की तेज बहने वाली नदियाँ और शुष्क प्रदेशों की कभी-कभी बहनेवाली नदियाँ जब खुले मैदान में पहुँचती हैं तो उनकी गति में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और इस आकस्मिक अवरोध के कारण कुछ नदियाँ अपने मार्ग को बहा कर लाई हुई मिट्टी-बालू से बन्द कर देती हैं, और दूसरी तरफ होकर बहने लगती हैं। इस दूसरी दिशा में भी बहने पर उनका मिट्टी-बालू इकट्ठा करना जारी रहता है और इस कार्य विधि के बार-बार होते रहने पर मिट्टी-बालू और बजरी के शंक्वाकार ढेर बन जाते हैं जो चौड़े पंखे के समान होते हैं। इन्हें नदी पंख कहते हैं।

कुछ पर्वतों के आधार पर प्रत्येक नदी का अपना अलग नदी पंख होता है और छोटे-बड़े ये नदी पंख इतने समीप-समीप और इतने अधिक होते हैं कि वे फैल कर एक दूसरे से मिल जाते हैं। इसे पर्वत प्रान्तीय मैदान कहते हैं। (देखिये Peidmont, Alluvial Plain)

River Lake (नदी झील) नदियों के प्रवाह में निक्षेप द्वारा अवरोध उत्पन्न हो जाने पर बनी झील को नदी झील कहते हैं। नदी झीलें कई प्रकार की होती हैं :—

(१) **धनुषाकार झील** जो नदी के मार्ग के घुमाव के कट कर अलग हो जाने पर बनती है।

(२) **तश्तरी के आकार की झीलें** नदी के द्वारा बाढ़ के मैदान में बन जाती हैं। नदी अपने किनारों पर निक्षेप द्वारा उच्च कगार बनाती रहती है। इन कगारों की वजह से सहा-

यक नदियों को काफी दूर तक समानान्तर बहना पड़ता है। इन सहायक नदियों के भी कगार बन जाते हैं और इस प्रकार के कगारों के बीच अक्सर नीचा बेसिन पाया जाता है जिसमें बाढ़ के दिनों में पानी भर जाने पर उथली तश्तरीनुमा झीलें बन जाती हैं।

(३) **रैफ्ट झीलें**—तर प्रदेशों में नदियों के बाढ़ के मैदान पर जंगल खड़े रहते हैं। जब नदी की धारा इधर-उधर घूमती हुई अपने उन्नतोदर किनारे पर आघात करती है तो पेड़ गिर जाते हैं और उनके गिरने से मुख्य जलधारा रुक जाती है और नदी मोड़ या घुमाव की ग्रीवा में से होकर बहने लगती है। इस प्रकार अस्थायी झीलों का निर्माण हो जाता है। अरकानसस और लुइसाना रियासतों में रेड नदी में इस प्रकार की झीलें अक्सर बन जाती हैं।

(४) **उपडेल्टा झीलें**—जब सहायक नदी किसी मुख्य नदी में गिरती है तो उसका ढाल तेज रहता है और यदि उसमें मिट्टी-बालू की राशि हुई तो वह अपने संगम के स्थान पर एक उप-डेल्टा बना देती है। कालान्तर में यह उपडेल्टा बढ़ते-बढ़ते मुख्य नदी के मार्ग को रोक देता है और तश्तरी के आकार की झीलें बन जाती हैं। अमरीका के मिनीसोटा राज्य में वारेन नदी में इस प्रकार की झीलें मिलती हैं।

(५) **डेल्टा झीलें**—डेल्टा प्रदेश में नदी की गति बहुत धीमी हो जाती है और जरा सी रुकावट से उसकी धारा मुड़ ही नहीं जाती बल्कि फैल जाती है। इस प्रकार से उथली झीलें बन जाती हैं जिन्हें बील कहते हैं। कभी-कभी समुद्री धाराओं के कारण डेल्टा का अग्र भाग हँसिये की तरह मुड़ जाता है और उसके पीछे नमकीन पानी की झील बन जाती है।

River Plain (**नदी निर्मित मैदान**) नदियाँ अपने साथ जो शिलाखण्ड बहाकर लाती हैं उनके द्वारा काट-छाँट तथा निक्षेप का काम करती हैं और इन्हीं दोनों क्रियाओं के फलस्वरूप मैदानों का निर्माण करती हैं।

(१) आवरण क्षय का मैदान (Peneplain)

(२) निक्षेप के मैदान ४ प्रकार के होते हैं—(अ) पर्वत प्रान्ती मैदान, (ब) बाढ़ का मैदान, (स) डेल्टा के मैदान और (द) द्वाब के मैदान जो कि पुराने निक्षेप के बने होते हैं। इनका निर्माण इतने पहिले हुआ है कि अब इस पर नदियाँ नहीं बहतीं। नदियों के निक्षेप से ये बने थे परन्तु नदियाँ इनको छोड़ कर अलग बहने लगीं इसलिए इन पर नवीन बाढ़ के मैदानों जैसे कोई भी चिन्ह नहीं मिलते। इन पर पुराने प्रवाह के निक्षेप अनियमित रूप से फैले रहते हैं। जापान के मैदान और भारतीय द्वाब, अर्जेन्टाइना के पैम्पास और राकी पहाड़ों के पूर्व का पर्वत प्रान्ती मैदान इसी के उदाहरण हैं। (देखिये Peneplain, Peidmont, Alluvial Plain, Flood Plain, Delta Plains)

River Port (**नदी बन्दरगाह**) प्रत्येक नाव चलाने योग्य नदी व नहर के किनारे कुछ व्यापारिक नगर उत्पन्न हो जाते हैं। इन केन्द्रों पर निकटवर्त्ती प्रदेश की उपज एकत्रित की जाती है तथा नदियों द्वारा इधर-उधर भेजी जाती है। इन बन्दरगाहों का विकास व महत्व नदियों की नाव्य क्षमता, नदी तट पर उनकी अनुकूल स्थिति और पास के व्यापारिक क्षेत्रों की आर्थिक दशा पर निर्भर रहता है।

नदी बन्दरगाह स्थिति के आधार पर दो प्रकार के कहे जा सकते हैं :—

(१) **नदी बन्दरगाह**—जैसे कलकत्ता और चिटगाँव। इनमें भीतरी प्रदेशों से याता-यात की सुविधा तो रहती है पर गहराई, लंगर स्थान, माल लादने और उतारने के लिए स्थान की कमी रहती है। अतएव नदी की तलैटी को गहरा व चौड़ा किया जाता है। भारी जहाजों को फिर भी दूर पर ही खड़ा होना पड़ता है।

(२) **नदी खाड़ी बन्दरगाह**—वे बन्दरगाह जो नदी के मुहाने और खाडी के तट पर स्थित होते है व्यापार की दृष्टि से सब से अच्छे रहते हैं। उनमें विस्तृत व सुरक्षित लंगर स्थान भी मिल जाता है और भीतरी भागों से सम्पर्क की भी सुविधा रहती है।

River Terrace (नदी उत्तल) किसी मैदान के बीच से बहती हुई नदी जब कभी अपनी तलैटी को फिर से गहरा करने लगती है तो उसके दोनों किनारों पर ऊँचे-ऊँचे चौरस चबूतरे से बन जाते हैं। इन ऊँचे चबूतरों का छोर बहुत ढालू होता है और इन्हें नदी उत्तल कहा जाता है।

नदी की धारा अपनी तलैटी गहरा करना शुरू कर देती है तो उसके बाढ़ का मैदान नदी के तल से बहुत ऊँचा उठा रहता है। जब नदी गहरा करना कम कर देती है तो किनारों को काटना शुरू कर देती है और प्रथम बाढ़ के मदान के नीचे एक दूसरा बाढ़ का मैदान बन जाता है। यदि गहरे करने की क्रिया फिर से शुरू हो गई तो यह दूसरा बाढ़ का मैदान भी चबूतरा बन जायेगा और प्रथम नदी निर्मित ऊँचे मैदान के नीचे सीढ़ी की तरह दूसरा नदी निर्मित ऊँचा मैदान बन जायगा। गहरा और चौड़े करने की क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इस प्रकार के नदी निर्मित ऊँचे मैदान बनते रहते हैं और नदी के किनारे सीढ़ी की तरह कट जाते हैं। इस प्रकार से बना प्रत्येक चबूतरा ऊपर से चौरस परन्तु आगे से ढालू होता है और ये क्रम से एक के ऊपर एक उठते चले जाते हैं।

चबूतरों का यह क्रम कभी-कभी दोनों किनारों पर बन जाता है और इस प्रकार से बने समानान्तर सीढ़ीदार चबूतरों को जुड़वा नदी निर्मित ऊँचे मैदान कहते हैं। इन चबूतरों की क्रमिक पंक्ति विभिन्न लम्बाई और चौड़ाई की होती है और ये विभिन्न तल पर स्थित रहते हैं। वास्तव में निक्षेप करनेवाली नदी जब बोझ के बढ़ने, वर्षा के अधिक होने या उत्क्षेप द्वारा ढाल के तीव्रतर हो जाने के कारण आवरणक्षय करना शुरू कर देती है तो वह किनारों तथा घाटी की दीवारों पर जमा की गई सामग्री को हटाने लगती है। जैसे-जैसे नदी का मार्ग घुमावदार होता जाता है वैसे-वैसे यह सामग्री हटती जाती है। किनारों पर नदी द्वारा आवरणक्षय कहीं कम और कहीं ज्यादा होता है और दूसरे नदी द्वारा किये गये कुल निक्षेप का कुछ भाग फिर भी बचा रह जाता है और वहीं चबूतरे की शक्ल में नदी निर्मित ऊँचा मैदान बन जाता है।

इस प्रकार इन चबूतरों का निर्माण नदी में नवजीवन के संचार से या नदी के ढाल की मिली-जुली चट्टानों पर आवरण क्षय की विभिन्न गति से हो जाता है। नदी द्वारा निक्षेप के साथ-साथ ही चबूतरे भी बनते जाते हैं।

Revulet (नद) छोटी जलधारा को नद कहते हैं।

Road (सड़क) थल पर बने निश्चित मार्गों को सड़क कहते हैं। थल मार्गों में सबसे प्राचीन साधन सड़कें ही हैं। सड़कें लगभग सभी देशों में पाई जाती हैं और इन पर पहियेदार गाड़ियाँ चलती हैं। सड़कों पर चलनेवाली पहियेदार गाड़ियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो वे जो जानवरों द्वारा खींची जाती हैं और दूसरी वे जो यन्त्र द्वारा चलती हैं। वर्त्तमान युग में मोटर गाड़ियों के विकास के साथ-साथ सड़कों का भी महत्व बढ़ गया है। सड़कें दो प्रकार की होती हैं—(१) कच्ची और (२) पक्की। स्थिति व विस्तार के अनुसार सड़कों को निम्नलिखित तीन प्रकार का कहा जा सकता है :—

(१) **स्थानीय सड़कें** जो गाँवों को मंडियों, शहरों व रेल के स्टेशनों से मिलाती हैं।

(२) **प्रान्तीय सड़कें** जो एक राज्य या प्रान्त के विभिन्न नगरों को एक-दूसरे से सम्बन्धित करती हैं।

(३) **राष्ट्रीय राजपथ** वे होते हैं जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक सैकड़ों मील तक जाते हैं और देश के बीच में पीठ की हड्डी की भाँति फैले रहते हैं। इनके द्वारा अन्तर्प्रान्तीय व्यापार होता है।

Road Stead (खुला बन्दरगाह) समुद्र के तट पर जहाजों के ठहरने का खुला स्थान खुला बन्दरगाह कहलाता है। ये खुले बन्दरगाह ऐसी जगह बन जाते हैं जहाँ समुद्र की वेगवती लहरों से तटीय श्रेणी, बालूका तट या द्वीप श्रृंखला द्वारा सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था बनी रहती है।

Road Transport (सड़क यातायात) पानी पर चलने वाले जहाजों के आविष्कार के पहिले विभिन्न देशों के बीच यातायात का प्रधान साधन सड़कें ही थीं। परन्तु मोटर-गाड़ियों के आविष्कार से सड़कों का महत्व और भी बढ़ गया है। मोटरों ही के कारण पिछले ४० वर्षों में प्रत्येक देश में सड़कों की बड़ी उन्नति हुई है। आज आन्तरिक या देशीय व्यापार में सड़कें ही यातायात का उत्तम साधन हैं।

रेलों तथा नावों की अपेक्षा सड़कों द्वारा यातायात में सुविधा होती है क्योंकि सामान की अदल-बदल नहीं करनी पड़ती। दूसरे सड़कों और मोटरों की सहायता से देश के भीतरी भागों में भी व्यापार किया जा सकता है। गाँवों की उपज तक पहुँचाने का एक मात्र साधन सड़कें ही हैं।

सड़कों के निर्माण पर जलवायु और भूरचना का बड़ा असर पड़ता है। सूडान से जैम्बीसी तक अफ्रीका की जलवायु तथा भूरचना इस प्रकार है कि सड़कों का बनना बड़ा ही कठिन है। वास्तव में अधिकतर अधिक शीत, अधिक मरुस्थलीय और अधिक पहाड़ी प्रदेशों में सड़कों का निर्माण बड़ा ही कठिन होता है। सड़कों के लिए सम जलवायु के समतल प्रदेश सबसे अधिक उपयुक्त रहते हैं। इसीलिये सड़कों का सबसे अधिक विस्तार शीतोष्ण-कटिबंध के मैदानी भागों में हुआ है। (देखिये Road)

Roaring Forties (गरजनेवाली चालीसा) दोनों गोलार्द्ध में ३५°-४०° अक्षांश से ६०°–६५° अक्षांश तक पछुँआ हवायें चलती रहती हैं और उनके साथ-साथ चक्रवात व विपरीत चक्रवात भी प्रवाहित होते रहते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में महा-सागर के अंश की अधिकता के कारण इन हवाओं की गति अधिक निश्चित और स्थायी रहती है। इनके वेग में रुकावट डालनेवाला स्थलखंड नहीं है। इस कारण इनका वेग बड़ा ही प्रचण्ड व भीषण हो जाता है। और दक्षिणी गोलार्द्ध में इन्हें गरजने वाली चालीसा कहते हैं।

कभी भी इन हवाओं के प्रभाव में आने वाले प्रदेश को भी इसी नाम से पुकारते हैं क्योंकि साल भर लगातार चक्रवात आते रहते हैं और फलतः मौसम बड़ा ही तर तथा तूफानी होता है परन्तु जलवायु सामान्यतः सम रहती है।

Roches Montonnees (मेष शिलायें) हिमनदी जिस मार्ग से होकर बहती है वहाँ की सभी ऊबड़-खाबड़ चट्टानों को घिस कर समतल कर डालती है। फलतः नदी की घाटी में चट्टान के छोटे-छोटे टीले अण्डे के समान उठे दिखाई देते हैं। ये टीले दूर से देखने पर भेड़ जैसी आकृति के दिखाई पड़ते हैं और इन्हें मेष शिलायें कहते हैं। फ्रांसीसी भाषा में इन्हें Roches Montonnees कहते हैं।

ऊबड़-खाबड़ चट्टानों के मिलने पर हिमनदी उनके ऊपर चढ़ने लगती है। चढ़ाव के समय उसकी तली चट्टानों से पूरी तरह छूती हुई जाती है और घिसाव पूरी तरह होता है। इस के फलस्वरूप चढ़ाई वाला भाग नीचे से ऊपर तक घिसकर चिकना बन जाता है और उसके

ऊपर हिम प्रवाह के खरोंचे ही नजर आते हैं। उतार की तरफ वाला ढाल रूखा और ऊबड़-खाबड़ रह जाता है। उतार के समय हिमनदी की तली का धरातल से पूर्ण सम्पर्क नहीं रह पाता। फलतः जोड़ वाले स्थानों पर जब हिमनदी की रगड़ लग जाती है तो चट्टान के बड़े-बड़े खंड उखड़ जाते हैं। ऐसी दशा में चट्टानों के बिना कटे भाग सीढ़ियों की तरह कटे हुये मालूम पड़ते हैं। इस प्रकार घाटी का दृश्य विभिन्न दिशाओं से अलग-अलग दिखलाई पड़ता है। यदि ऊपर से देखा जाय तो चट्टानें सपाट, चिकनी और उन्नतोदर दिखलाई पड़ती हैं परन्तु नीचे से ऊपर की ओर देखने पर वे ही ऊबड़-खाबड़ दिखलाई पड़ेंगे। इनका यह विषम रूप फ्लकजर नामक विद्वान ने पता लगाया परन्तु फिर भी इन शेष शिलाओं का रूप अलग-अलग जगहों पर भिन्न होता है। कहीं पर तो ये ऊन के बोरे की तरह उठे रहते हैं, तो कहीं आधे बेलन की तरह और कहीं बिल्कुल गोल गुब्बारे की तरह उभड़े रहते हैं।

इनके विषय में पुराना विचार यह है कि मेषशिलायें (१) हिमनदी द्वारा न काटे जा सकनेवाले कठोर चट्टानी भागों के अवशिष्ट चिन्ह हैं; (२) हिमनदी द्वारा काट-छाँट की अपूर्णता के द्योतक हैं और (३) हिमनदी द्वारा आवरणक्षय की विशेषताओं का प्रतिबिंब है।

इसके विपरीत डेविस नामक विद्वान का मत है कि मेष शिलायें हिमनदी के प्रवाह से पूर्व के स्थल रूप के अवशिष्ट भाग हैं जिन्हें हिमनदी अपनी शक्ति से चौरस नहीं कर पाई है।

Rock (चट्टान) भूपटल जिस पदार्थ का बना है उसे चट्टान कहते हैं। अतएव प्रत्येक प्रकार का प्राकृतिक पत्थर, चाहे वह सख्त हो या मुलायम चट्टान कहलाता है। ग्रेनाइट जैसा कठोर पत्थर और चिकनी मिट्टी जैसी मुलायम वस्तु इसी के अन्तर्गत आती है। चट्टानें रासायनिक मूलतत्वों के मिलने से नहीं बनतीं। ये कई प्रकार के खनिजों के संयोग से बनती हैं। यह दूसरी बात है कि उन खनिजों में विभिन्न रासायनिक तत्वों का सम्मिश्रण रहता है। कभी-कभी कई चट्टानें एक ही प्रकार के खनिज से बनी पायी जाती हैं। परन्तु अधिकतर चट्टानें कई खनिज समूहों के एकत्रित होने से बनी हैं। ये खनिज शुरू से ही पृथ्वी की पिघली हुई राशि में पाये जाते थे और जब यह ठंडी होकर बनी तो ये खनिज स्फट के रूप में चट्टानों में शामिल हो गये।

कुछ चट्टानें प्रवेश्य होती हैं और कुछ अप्रवेश्य। कुछ चट्टानों में कणों की बनावट ऐसी होती है कि उनमें जल प्रवेश कर जाता है और कुछ में जल का प्रवेश करना असंभव होता है। भूपटल की सर्वप्रथम चट्टानें पिघले हुये मैग्मा के ठंडे होकर जमने पर बनीं। इसीलिये ये सबसे अधिक भारी व ठोस होती हैं। मौसमी क्षति द्वारा नष्ट होने पर इनसे प्राप्त कंकड़-पत्थर आदि के समानान्तर परतों में समुद्र के नीचे बिछा दिये गये और कालान्तर में दबाव व गर्मी के कारण परतदार चट्टानें बन गईं। भूगर्भ की पर्वत निर्माणकारी हलचलों, ज्वालामुखी उद्गारों तथा भीषण दबाव व गर्मी के कारण कुछ चट्टानें अपना मूल रूप बदल देती हैं जैसे चूने की चट्टान से संगमरमर, चिकनी मिट्टी से स्लेट, कोयले से ग्रेफाइट आदि बन जाते हैं।

निर्माण विधि के अनुसार चट्टानें निम्नलिखित तीन प्रकार की होती हैं—(१) आग्नेय चट्टानें, (२) परतदार चट्टानें और (३) परिवर्तित चट्टानें। ये तीनों ही प्रकार की चट्टानों में जोड़ और फटन पाये जाते हैं जिनके ऊपर प्राकृतिक शक्तियाँ आघातकर के विभिन्न स्थलरूपों को जन्म देती है।

चट्टानें मानव जीवन के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। सभी प्रकार की धातुयें, कोयला, खनिज तेल आदि चट्टानों से ही मिलते हैं। इन चट्टानों के टूटने से मिट्टी बनती है और इन्हीं

चट्टानों के छिद्रों से भूगर्भवर्ती जलराशि का निर्माण होता है। चट्टानों से हमें इमारतों आदि के लिए बहुत सी सामग्री मिलती है। चट्टानों की व्यवस्था, उनकी कठोरता या नरम स्थिति पर मनुष्य के आवागमन सम्बन्धी क्रियायें निर्भर रहती हैं। (देखिये Igneous Rock, Sedimentary Rock, Metamorphic Rock)

Rock Flour (**चट्टान चूर्ण**) हिमनदी की तली में फँसे शिलाखंड जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं वे उसकी तलैटी को घिसकर तथा खरौंच कर नष्ट करते जाते हैं। इस प्रकार के घिसाव या खरौंच से तलैटी की चट्टानों से बड़े ही महीन कण टूट-टूट कर हिमनदी में मिलते रहते हैं। इस प्रकार के महीन कणों को चट्टान चूर्ण कहते हैं। यह चट्टान चूर्ण नद में चिकनी मिट्टी की तरह महीन हो जाता है और हिमनदी के पिघलने पर बनी जल-धाराओं के द्वारा दूर-दूर तक फैल जाता है।

Rock Glacier (**चट्टानी हिमनदी**) चट्टानों से टूटे हुये शिलाखंडों के प्रवाह को चट्टानी हिमनदी कहते हैं। इसका आकार हिमनदी के समान जीभ की तरह होता है और इसमें कंकड़-पत्थरों की राशि मिली रहती है। बिखण्डन और मौसमी क्षति के द्वारा उच्च पर्वत प्रदेशों से टूट-टूट कर शिलाखंड आधार तल पर इकट्ठा होते रहते हैं। कालान्तर में यह राशि बहुत अधिक हो जाती है और तब अपने आप नीचे की ओर खसकने लगती है। दिन प्रतिदिन रात में पाला पड़ने से और दिन में जमे हुये जल के पिघलने के कारण यह राशि कभी सिकुड़ती है तो कभी फैलती है। इस क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इसमें गति उत्पन्न हो जाती है और नीचे की ओर आकर्षण के कारण इसको आगे बढ़ने में सहायता मिलती है।

इस प्रकार की चट्टानी हिमनदी अलास्का में बहुत पायी जाती है।

Rock Terrace (**चट्टान उत्तल**) शुष्क प्रदेशों में बालू और धूल के कणों से लदी हुई हवा जब किसी पर्वतीय ढाल पर आघात करती है तो उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सामने के भाग में क्षति अधिक होती है, हवा का आघात नीचे की ओर अधिक पड़ता है। फलतः नीचे का भाग कट कर अलग गिर जाता है और ढालू चट्टान की जगह एक सपाट चबूतरा बन जाता है जो आगे की ओर ढालू होता है। एक चबूतरे के बन जाने पर हवा उसके नीचे के भाग पर उसी प्रकार आघात करने लगती है और कालान्तर में दूसरा चबूतरा बना देती है। इस प्रकार चट्टान उत्तल की एक क्रमिक पंक्ति सी बन जाती है।

Rock Bastion (**चट्टानी सीढ़ी**) जब सहायक हिमनदी मुख्य हिमनदी से आकर मिलती है तो सामने की दीवार में सीढ़ी की तरह के चबूतरे बन जाते हैं। इन्हें चट्टानी सीढ़ी कहते हैं।

Ropy Lava (**लहरदार लावा**) ज्वालामुखी उद्गार के पश्चात् ज्वालामुखी मुख से निकला हुआ लावा जब ठंडा होकर ठोस पड़ जाता है तो उसकी सतह चिकनी होती है और उस पर रस्सी की तरह लहरें पड़ी रहती हैं। इस प्रकार के लावा को लहरदार लावा कहते हैं। हवाई द्वीपों में इसे पेहीहो के नाम से पुकारते हैं।

Rotation (**आवर्त्तन**) पृथ्वी अपनी धुरी पर चारों ओर घमती रहती है और एक दिन में एक चक्कर पूरा करती है। इसे आवर्त्तन या पृथ्वी की दैनिक गति कहते हैं। अपनी धुरी के चारों ओर निरन्तर घूमते रहने के कारण पृथ्वी ध्रुवों के समीप कुछ चपटी हो गई है और भूमध्यरेखा के पास कुछ ऊँची उठ गई है। इस आवर्त्तन के कारण जब पृथ्वी के एक आधे भाग में सूर्य का प्रकाश रहता है तो दूसरा आधा भाग सूर्य से विमुख होने के कारण अन्धेरे में रहता है। जो भाग सूर्य के सामने रहता है उसमें

दिन होता है और जो भाग सूर्य से ओझल रहता है उसमें रात रहती है। प्रत्येक स्थान दिन में दो बार प्रकाशचक्र के पास पहुँचता है। इसमें प्रथम अवस्था को सुबह और दूसरी दशा को शाम कहते हैं।

पृथ्वी के आवर्त्तन की दिशा पश्चिम से पूर्व की ओर है परन्तु पृथ्वी के सभी भाग समान गति से नहीं घूमते। ध्रुवों के पास तो पृथ्वी की चाल बहुत धीमी होती है परन्तु भूमध्य रेखा की ओर उसकी चाल बढ़ती जाती है। पृथ्वी के आवर्तन का प्रमाण सन् १८५१ में फोकल्ट साहेब ने दिया। उन्होंने एक ऊँची जगह से एक पतले तार से लटकता हुआ पेन्डुलम लटकाया और उसे इस प्रकार हिलाया कि वह सदा एक ही दिशा में चलता हुआ पृथ्वी पर रेखा खींचता रहे। बाद में देखा गया कि एक की अपेक्षा कई रेखायें एक-दूसरे को काटती हुई बन गईं। इससे साफ जाहिर था कि पेन्डुलम तो एक ही दिशा में हिलता रहा परन्तु पृथ्वी के आवर्त्तन से रेखाओं की दिशा भिन्न होती गई। पृथ्वी के आवर्त्तन के कारण ही हम लोगों को सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा से निकलकर आकाश में ऊपर जाकर पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ जान पड़ता है। वास्तव में सूर्य नहीं चलता किन्तु धरातल निवासी पृथ्वी के साथ चलते हैं। इसी कारण रेल द्वारा यात्रा करने पर मकान और पेड़ आपके विरुद्ध जाते हुये दीख पड़ते हैं।

पृथ्वी की दैनिक गति या आवर्त्तन के कारण निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं—

(१) दिन और रात होते हैं।

(२) प्रतिदिन सूर्य व तारे पूर्व से पश्चिम की ओर चलते हुये मालूम पड़ते हैं।

(३) आवर्त्तन से ज्वार-भाटे आते हैं।

(४) आवर्त्तन से पृथ्वी का आकार नारंगी की तरह बन जाता है।

(५) आवर्त्तन के कारण समय का विभाग होता है—सूर्य दिखाई देने पर प्रातःकाल, सिर पर आने पर मध्यान्ह तथा अस्त होने पर सायंकाल होते हैं।

(६) इसी गति से हमें दिशाओं का ज्ञान होता है। सूर्योदय की दिशा पूर्व तथा सूर्यास्त की दिशा पश्चिम होती है।

(७) इस गति से देशान्तरों का ज्ञान होता है। पृथ्वी २४ घंटों में ३६० अंश घूमती है। इसलिये भूमध्य रेखा को ३६० भागों में बाँट दिया जाता है और उन पर रेखायें खींची जाती हैं जिन पर प्रति ४ मिनट बाद सूर्योदय होता जायेगा।

(८) पृथ्वी के एक विशेष दिशा में घूमने के कारण हवाओं और धाराओं आदि के चलने की दिशा में परिवर्त्तन हो जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में हवायें व धारायें अपने बायें ओर को मुड़ जाती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने दाईं ओर को विचलित हो जाती हैं।

Rotational and Tidal Theory (आवर्त्तन और ज्वारीय सिद्धान्त) ग्रहों और पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में इस सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्त्तक रोसजन है। इसके अनुसार एक विशाल तारा बहुत तेजी से घूम रहा था। यह तारा (सूर्य) इतनी तेजी से भ्रमण कर रहा था कि बस टूटने ही वाला था। इसी बीच में एक दूसरा तारा इसके समीप आया और आपस के आकर्षण से दोनों ही की आकृति खराब हो गई। ज्वार के कारण दोनों तारों का कुछ भाग बाहर को उभड़ आया। बाद में वे दोनों अलग हो गये और उनमें से ग्रहों की उत्पत्ति हुई।

इस सिद्धान्त द्वारा सूर्य के मात्रिक आवर्त्तन द्वारा उसकी तेज चाल का कारण बतलाने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु इसकी सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इतनी तेज आवर्त्तन की अवस्था में दूसरे तारे का समीप आना असम्भव है। दूसरे तेज चाल के कारण बतलाने का

तरीका भी बड़ा ही घुमा-फिरा हुआ है। इसी प्रकार की त्रुटियों के निवारण के लिए प्रोफेसर बनर्जी ने सीफीयड सिद्धान्त निकाला। (देखिये Cepheid Theory)

Rotation of Crops (**फसलों का हेर-फेर**) यह खेती की वह प्रणाली है जिसमें एक निश्चित विधान व व्यवस्था के अनुसार विभिन्न फसलों को बार-बार उगाया जाता है। बात यह है कि प्रत्येक फसल भूमि में किन्हीं विशेष तत्वों को कम करती है और कुछ तत्वों को भूमि में बढ़ाती है। अतएव यदि लगातार एक ही फसल बहुत समय तक भूमि पर उत्पन्न की जावे और भूमि पर खाद न डाली जावे तो उन नमकों की कमी के कारण जिन्हें फसल कम कर देती है भूमि की उपजाऊ शक्ति कम हो जावेगी। इसी को रोकने के लिए किसान फसलों का हेर-फेर करता है। इसका अर्थ यह है कि एक बार जिस फसल को भूमि पर उत्पन्न किया गया है उसी को दूसरी बार उत्पन्न न किया जावे। किसान ने अनुभव से जान लिया है कि कुछ फसलें जिन नमकों को भूमि में कम कर देती हैं वही तत्व या नमक दूसरी फसलें भूमि में बढ़ा देती हैं। अतएव वह एक के बाद दूसरी उस फसल को उत्पन्न करता है जो एक दूसरे की पूरक हों।

फसलों के हेर-फेर के एक चक्र को पूरा होने में दो साल से आठ साल तक लग जाते हैं। इसकी अवधि फसलों की संख्या तथा परिवर्त्तन की पारी पर निर्भर रहती है। इंगलैंड में सबसे प्राचीन और प्रचलित चक्र नारफॉक चक्र कहलाता है और उस को पूरा होने में चार साल लगते हैं। सबसे पहिले जड़दार फसलें उगाते हैं जो जमीन के भीतर उगती हैं। उसके बाद जौ को बोते हैं। तीसरे साल खेत में घास और मटर वाले पौधे बोते हैं जिससे भूमि में नाइट्रोजन की कमी पूरी हो जाय। इसके बाद गेहूँ की फसल बोते हैं जिसे नाइट्रोजन की बहुत अधिक जरूरत होती है।

फसलों के हेर-फेर से अनेक लाभ हैं। इसके द्वारा जंगली घास व पौधों के कीटाणु और रोगों पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रक्खा जा सकता है। दूसरे भूमि में उपलब्ध पौधों के भोजन का बड़ी अच्छी तरह उपयोग किया जा सकता है।

Rotation Grassland (**हेर-फेर वाला घास का मैदान**) जब अन्य फसलों के साथ हेर-फेर से एक या अधिक साल तक घास उगाई जाती है तो इस प्रकार के अस्थायी घास के मैदान को हेर-फेर वाला घास का मैदान कहते हैं।

Rough Grazing (**रूखा चरागाह**) जहाँ पर जंगली या प्राकृतिक तौर पर घास उगती रहती है उसे रूखा चरागाह कहते हैं। इसमें उगी हुई घास अव्यवस्थित व लापरवाही से पड़ी रहती है। इसके अन्तर्गत दलदल, झाड़ी प्रदेश, [illegible] और पहाड़ी ढालों पर स्थित घास के मैदान सम्मिलित हैं। इन रूखे चरागाहों में घास और चरने की सुविधायें बड़ी ही अवनत दशा में रहती हैं। इसलिए इन पर कुछ भेड़ बकरी हीं चराई जा सकती है।

Run off (**बहा हुआ जल**) वर्षा का वह भाग जो बह कर नदियों में पहुँच जाता है उसे बहा हुआ जल कहते हैं। वर्षा होने पर उसका कुछ अंश तो भूमि में सोख जाता है, कुछ वाष्पीकरण द्वारा नष्ट हो जाता है और शेष जल भूमि के अनुसार धरातल पर बहने लगता है।

बहा हुआ जल दो प्रकार का होता है—(१) **तुरन्त बहा हुआ** जल वह होता है जो फौरन ही धरातल पर से बहकर नदियों में जा मिलता है। (२) **बाद में बहा हुआ जल** वह है जो शुरू में तो भूमि में सोख जाता है परन्तु बाद में झरनों या वाष्पीकरण द्वारा धरातल पर आ जाता है।

बहे हुये जल की गति तेज और धारा बड़ी तब होती है (१) जब वर्षा जोरों से हो। देर तक होनेवाली रिमझिम वर्षा में जल का बहाव बहुत कम व धीमा होता है। (२) जब भूमि चिकनी मिट्टी की बनी हो क्योंकि बलुही मिट्टी में पानी शीघ्र ही सोख जाता है। (३) हिमाच्छादित भूमि पर क्योंकि पाले या बर्फ से रहित भूमि में कुछ न कुछ जल अवश्य ही सोखकर या वाष्पीकरण द्वारा नष्ट हो जाता है। (४) वृक्ष रहित क्षेत्रों में भी बहा हुआ जल अधिक वेगवती व बड़ी धारा बनाता है। वन प्रदेश में तो पेड़ों की जड़ें व भूमि पर की वनस्पति इस में बाधा डालती है और बहुत कुछ अंश को स्वयं ग्रहण कर लेती है।

जलवायु की दशाओं के अनुसार बहे हुये जल और वर्षा के बीच का अनुपात अलग-अलग जगहों पर विभिन्न होता है।

Saddle (**फैला हुआ गर्त**) दो पर्वतीय श्रेणियों या शाखाओं के बीच की निम्न भूमि को फैला हुआ गर्त कहते हैं। जब दो पर्वत श्रेणियाँ एक दूसरे के आमने-सामने अलग-अलग स्थित होती हैं तो उनके बीच की घाटी या निम्न भूमि घोडे की काठी की तरह बीच में गड्ढेदार पर दोनों ओर उठती हुई प्रतीत होती है। (देखिये Pass)

Saddle Reef (**काठी श्रेणी**) (देखिये Phacolith)

St. Elmo's Fire (**सेंट एल्मो की अग्नि**) तूफानी मौसम में ऊँची वस्तुओं के सिरे के करीब-करीब बिजली की चमक दिखलाई पडती है। उसे सेंट एल्मो की अग्नि कहते हैं। यह प्राकृतिक रूप जहाजों के मस्तूल, खम्भे और पेड़ों के शिखर पर विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।

St. Luke's Summer (**सेंट ल्यूक का ग्रीष्मकाल**) १८ अक्टूबर के समीप खुले साफ मौसम के काल को सेंट ल्यूक का ग्रीष्म काल कहते हैं क्योंकि १८ अक्टूबर का दिन सेंट ल्यूक का दिन कहलाता है।

St. Martin's Summer (**सेंट मार्टिन का ग्रीष्मकाल**) ११ नवम्बर को सेंट मार्टिन का दिन होता है और उस समय पाये जाने वाले खुले व साफ मौसम को सेंट मार्टिन का ग्रीष्मकाल कहते हैं।

Salient (**पर्वत शाखा**) (देखिये Spur)

Salina (**नमकीन पपड़ी**) खारे पानी के सूखने पर जो नमक इकट्ठा रह जाता है उसे नमकीन पपड़ी कहते हैं। (देखिये Salt Pan)

Saline (**नमकीन क्षेत्र**) शुष्क प्रदेशों में नमकीन जल के क्षेत्र को नमकीन क्षेत्र कहते हैं। (देखिये Salt Marsh)

Salinity (**खारापन**) महासागरों, समुद्रों, झीलों और नदियों के जल से प्रत्येक हजार भाग में नमक का जितना अंश होता है उसे खारापन कहते हैं। खारापन का निश्चय इस बात से होता है कि प्रत्येक एक हजार अंश जल में कितना नमक घुल कर मिल सकता है। समुद्र जल के १००० भाग में नमक के भाग का मध्यम मान ३५ रहता है। परन्तु कुछ स्थानों में जैसे लाल सागर में नमक का अंश ४० है और ध्रुवीय सागरों में यह केवल ३० ही है। नदियों के मुहाने के समीप अथवा घिरे हुये समुद्र जहाँ अनेक नदियाँ गिरती हैं खारापन बहुत ही कम होता है। बाल्टिक सागर इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

समुद्र में खारापन का मुख्य कारण नदियाँ हैं। नदियाँ अपने प्रवाह क्षेत्र से प्रतिवर्ष अपने साथ कई प्रकार के क्षार बहाकर लाती हैं और समुद्र में डालती रहती हैं। समुद्र का पानी भाप बन कर उड़ जाता है और नमक वहीं रह जाता है। समुद्र के जल में खारापन का प्रति सहस्र अंश निम्नलिखित दो बातों पर निर्भर रहता है :—

(१) गरमी के कारण भाप बनने की तेजी और (२) समुद्र में मिलनेवाले सभी पानी की मात्रा। भूमध्य रेखा के समीप लगातार भारी वर्षा होते रहने से खारापन बहुत कम है। भूमध्य रेखा के दोनों ओर कर्क और मकर रेखा के समीप दो मरुस्थल के कटिबंध हैं। इन कटिबंधों में वर्षा की कमी रहती है। व्यापारिक हवायें जो यहाँ चलती हैं वे प्रायः शुष्क होती हैं और गर्मी की अधिकता के कारण भाप खूब बनती है। इसलिये यहाँ के देशों में खारापन अधिक रहता है। इन प्रदेशों में खारापन ३६ या ३७ से भी अधिक रहता है। कर्क रेखा और मकर रेखा से जब हम ध्रुवों की ओर चलते हैं तो जल में नमक कम हो जाता है। ध्रुवों के आसपास समुद्रों में भाप कम बनती है। साथ ही हिमखंड का कुछ भाग पिघल कर समुद्रजल में मिलता है। अतः यहाँ खारापन ३० प्रति सहस्र होता है।

यद्यपि नदी के जल में कुछ खनिज नमक घुले-मिले रहते हैं परन्तु फिर भी वह अपेक्षाकृत बहुत अधिक ताजा रहता है। वास्तव में विभिन्न जलखण्डों में परिस्थितियों की विभिन्नता के कारण खारीपन में अन्तर पड़ जाता है। अंशतः घिरे हुये बाल्टिक सागर में बहुत सी बड़ी-बड़ी नदियाँ गिरती हैं, वर्षा व तुषार की मात्रा भी अधिक रहती है और भाप भी कम बनता है। इसलिये इसका खारीपन १२ प्रतिसहस्र से भी कम है। काले सागर का जल भी बहुत अधिक शुद्ध है और उसमें खारापन केवल १७ प्रति सहस्र है। इसके विपरीत लाल सागर में वर्षा की मात्रा कम, वाष्पीकरण अधिक तथा नदियों का अभाव है। इसलिये वहाँ का खारापन ३७ से ४१ प्रतिसहस्र तक है। इन्हीं कारणों से भूमध्य सागर का खारापन ३६ से ३९ प्रति सहस्र तक है।

जिन सागरों या झीलों का निकास किसी महासागर में नहीं है उनमें खारापन और भी अधिक है क्योंकि नदियों द्वारा बहाकर लाये गये नमक शुरू से ही इकट्ठा होते चले आये हैं। मृतसागर के जल का खारीपन २५० प्रति सहस्र तक है। ऐसा ही कुछ हाल नमकीन झीलों का भी होता है।

समुद्र जल के ३५ प्रतिसहस्र नमक में २७ अंश तो साधारण नमक का होता है। इस के अतिरिक्त अन्य नमक भी होते हैं। अन्य नमकों में मॅगनीसियम क्लोराइड, मैगनीसियम सल्फेट और कैलसियम सल्फेट विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समुद्र जल से नमक प्राप्त करने के लिये उसको केवल वाष्प बनाने की आवश्यकता रहती है। समुद्र जल को किसी पात्र में उबालने से जल की तो भाप बन जाती है और नमक के स्वच्छ कण उस पात्र में शेष रह जाते हैं।

खारीपन के कारण पानी का घनत्व बढ जाता है। पानी जितना अधिक खारा होगा उतना ही अधिक भारी होगा। इसीलिये खारी पानी समुद्र में नीचे बैठ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ समुद्रों का ऊपरी जल नीचे के जल की अपेक्षा अधिक मीठा रहता है।

खारीपन का पानी के तापक्रम पर भी प्रभाव पड़ता है। जहाँ पर पानी अधिक खारी होता है वहाँ जल का तापक्रम भी अधिक रहता है किन्तु जहाँ नमक कम होता है वहाँ तापक्रम कम रहता है। इसीलिए खारी पानी को जमने के लिए तापक्रम हिमांक से नीचा चाहिये।

Salpansselka (सालपाँसलका) प्रातिनूतनकाल (Quarternary Era) में उत्तरी यूरोप हिमआवरण से ढका था। उस समय हिमनदी के अन्तिम छोर पिघलने से बालू और बजरी की एक क्रमिक पंक्ति या श्रेणी बन गई है जो वास्तव में वापसी हिमचक्र के द्वारा बनाये गये अन्तिम मोरेन हैं। फिनलैण्ड में इस प्रकार की श्रेणी को जो पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई है, सालपाँसलका कहते हैं।

Salt Lake (खारी झील) शुष्क प्रदेश में स्थित झील में जब नदियों व वर्षा द्वारा लाये गये पानी में वाष्पीकरण की मात्रा अधिक होती है तब उसका पानी खारी हो जाता है और उसे खारी झील कहते हैं। खारी झील के किनारों पर नमक की मोटी पपड़ी जम जाती है और उसमें जल राशि कम होती दिखाई पड़ती है। तुर्की की वैन झील के जल का खारीपन ३३० प्रति सहस्र है। मृतसागर के जल का खारापन २५० प्रतिसहस्र है और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के यूताह रियासत की विशाल खारी झील का खारापन २२० प्रति सहस्र है।

खारी झील का अस्तित्व जलवायु पर निर्भर रहता है। यदि जलवायु की शुष्कता कम हो जाय तो कालान्तर में खारी झील का पानी मीठा हो जाता है। इसी प्रकार यदि किसी तर प्रदेश की जलवायु शुष्क हो जाये तो कालान्तर में वहाँ के मीठे पानी की झील खारी हो जायेगी।

खारी झीलों के पानी से नमक तैयार किया जा सकता है। यही उनका आर्थिक महत्व है।

Salt Marsh (नमकीन दलदल) शुष्क प्रदेशों में दलदली भूमि के क्षेत्र को नमकीन दलदल कहते हैं क्योंकि उसमें नमक का अंश अधिक रहता है। इसमें रेगिस्तानी नदियाँ आकर गिरती हैं और दलदल में विलीन हो जाती हैं। इसलिये केवल बाढ़ के दिनों में तो यह दलदल कुछ उथला जल ग्रहण कर लेता है परन्तु वैसे जब इसका सारा पानी भाप बनकर उड़ जाता है तो केवल दलदली क्षेत्र रह जाता है जिसका पंक सख्त और जिस पर नमक की मोटी पपड़ी जमी रहती है। (देखिये Alkali Flat)

Salt Pan (लवणकुण्ड) किसी आन्तरिक झील का जब सारा जल भाप बन कर उड़ जाता है तो केवल नमक की मोटी तह शेष रह जाती है। इसे लवण कुण्ड कहते हैं। यह नमकीन पपड़ी प्रकाश में खूब चमकती रहती है और इस पर कालान्तर में दरारें भी पड़ जाती हैं।

Samoon (सैमून) ईरान में कुर्डिस्तान के पर्वतों से उतर कर आने वाली शुष्क गर्म हवा को सैमून कहते हैं। इसकी विशेषतायें वही होती हैं जो फोहन (Foehn) के। (देखिये Foehn)

कभी-कभी गलती से इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग सिमून (Simoon) के लिए भी करते हैं।

Sand (बालू) डेट्रीट्स नामक खनिज के महीन कणों से बनी राशि को बालू कहते हैं। यह सिलिका नामक चट्टानों से बनती है। इसके कण बजरी से छोटे परन्तु मिट्टी से बड़े होते हैं। ये धूल की तरह महीन भी नहीं होते। इसके कण ढीले होते हैं क्योंकि उनको संगठित रखने के लिये इस मिट्टी में चिपकने वाले पदार्थ का अभाव होता है। इसीलिए इसमें अधिक समय तक नमी स्थिर रह सकती है।

हवायें इसको उड़ाकर धरातल से बहुत ऊँचे तक नहीं ले जा पातीं। बालू की राशि का हवा के साथ उड़ना रास्ते की रुकावटों पर निर्भर रहता है और जहाँ पर भी जरा सा अवरोध मिला वहाँ यह बालू का स्तूपों के रूप में जमाकर दी जाती है। (देखिये Dunes)

भूपटल पर पाये जाने वाले अधिकतर खनिज जो चट्टानों का निर्माण करते हैं वे बालू में ही पाये जाते हैं। परन्तु उनसे केवल थोड़े से ही आमतौर पर मिलते हैं। स्फटिक सबसे अधिक मिलता है। जब बालू के कण मिलकर जम जाते हैं तो बलुहे पत्थर बन जाते हैं।

Sand Bank (बालुका तट) किसी समुद्र या नदी में जल के उठे हुये बालू

निक्षेप को बालुका तट कहते हैं। यह साधारणतया तो पानी में डूबा रहता है परन्तु जब कभी पानी की सतह कुछ नीचे होती है तो यह दिखलाई पड़ने लगता है।

Sand Bar (बालुका भित्त) कुछ खाड़ियों या नदियों के मुहाने पर बालू और बजरी कट-कट कर इतनी अधिक मात्रा में आती रहती है कि उसे लहरों द्वारा हटाना सम्भव नहीं होता। अतएव किनारे से बराबर या दूर बालुका भित्त बन जाती हैं जो कभी-कभी तो छोटी-मोटी खाड़ियों को बिल्कुल बन्द कर देती हैं। (देखिये Bar (२))

बालुका भित्त के कई रूप होते हैं :—

(१) अन्तटीय, और (२) परातटीय और (३) हँसियाकार या अर्द्धचन्द्राकार आदि। (देखिये Offshore Bar, Spit, Cuspate Foreland)

Sand Dune (बालुका स्तूप) हवा जिस बालू को उड़ा कर ले जाती है वे अनेक प्रकार के अनिश्चित आकार वाले टीलों के रूप में जमा हो जाते हैं जिन्हें बालुका स्तूप कहते हैं। बालुका स्तूपों की रचना, आकार और अस्तित्व निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहता है :—

बालुका स्तूप

(१) बालू के कणों की विशाल राशि होना।

(२) बालू को प्रचुर परिमाण में उड़ा ले जा सकने वाली प्रचण्ड हवाओं का होना।

(३) वायु के मार्ग में बालू राशि को रोकने के लिए अवरोधकों का होना।

बालुका स्तूप विचित्र तरह के अनेकों आकार वाले होते हैं। कहीं गोल, कहीं हँसिये की तरह चपटे, तो कहीं फैले हुये और कहीं एक-दूसरे से सटे हुये मिलते हैं। इनका रूप मुख्यत: वायु की दिशा और अवरोधकों के स्वभाव पर निर्भर रहता है। साधारणतया इन का रूप विषम होता है। वायु की तरफ वाला ढाल तो लम्बा तथा क्रमशः होता है परन्तु दूसरी तरफ का ढाल तीव्र और सीधा होता है। जहाँ हवा सब ओर से चलती है वहाँ इन का आकार गोल होता है। (देखिये Barchans)। यदि आँधी की कोई निश्चित दिशा नहीं तो आकार भी विचित्र प्रकार के बनते हैं।

साधारणतया स्तूपों की ऊँचाई १०० फीट तक होती है परन्तु उनकी विशालता बालू की प्रचुरता पर निर्भर रहती है। सहारा मरुस्थल में ४०० फीट ऊँचे स्तूप पाये जाते हैं। थार के रेगिस्तान में ५० फीट से २०० फीट तक की ऊँचाई के स्तूप मिलते हैं। इन स्तूपों पर लहर जैसे निशान पड़े रहते हैं।

बालुका स्तूप एक जगह स्थिर नहीं रहते। वे एक जगह से दूसरी जगह स्थानान्तरित होते रहते हैं। टीलों की इस प्रकार की यात्रा से रेगिस्तान अपना विस्तार किया करता है। परन्तु बहुत से बड़े-बड़े स्तूप स्थायी भी हो जाते हैं। उन पर कुछ झाड़ियाँ उग आती हैं या घास निकल आती है जिसके कारण उनकी बालू स्थिर बन जाती है। वर्षा के जल इनके भीतर पहुँचकर कणों में नमी उत्पन्न करके चिपकना कर देता है।

बालुका स्तूप बड़े ही उपयोगी होते हैं। वर्षा का जल इन बालुका स्तूपों में सूख जाता है
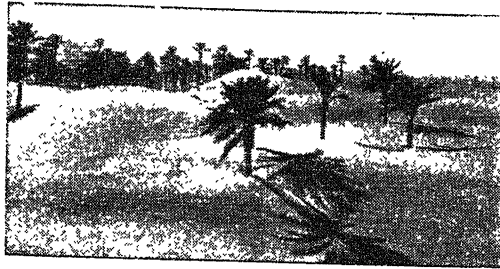
और इसलिये टीलों के नीचे जलरेखा ऊँची उठ जाती है। जहाँ भी जल रेखा ऊँची होती है वहाँ थोड़ी दूर भीतर ही जल मिल जाता है और नखलिस्तान बन जाता है। यही कारण है कि आधिकतर नखलिस्तान टीलों के समीपवाले भागों में ही पाये जाते हैं।

Sandr (**सैन्डर**) देखिये (Outwash Plain)

Sandstone (**बलुहा पत्थर**) बालू के ढीले कण जब आपस में सटकर ठोस पड़ जाते हैं तो बलुहा पत्थर बन जाता है। बालू के कण कैल्शियम कारबोनेट, सिलिका और लोहे के आक्साइड के द्वारा पत्थर का रूप ग्रहण कर लेते हैं। किस तत्व द्वारा बालू के कण बँधे हैं, इस आधार पर इनके तीन भेद किये जाते हैं :—

(१) चूने से पूर्ण बलुहा पत्थर, (२) सिलिकापूर्ण बलुहा पत्थर और (३) लोहापूर्ण बलुहा पत्थर। इसी भेद पर उनका रंग भी निर्भर रहता है। बलुहे पत्थर के कई रंग होते हैं और इसमें छेद होने के कारण पानी आसानी से प्रवेश कर जाता है।

कुछ बलुहे पत्थर बड़े ही ठोस रहते हैं और उसमें काफी स्फटिक पाया जाता है। इस कारण ये चट्टानें बड़ी ही टिकाऊ और मजबूत होती हैं। कुछ बलुहे पत्थरों में कण बहुत सटे हुये नहीं रहते हैं। इसलिये मौसमी क्षति के प्रभाव से वह फौरन ही विखण्डित हो जाते हैं।

Sand Storm (**बालू की आँधी**) जब भीषण व प्रचण्ड वायु के झोंके के साथ बालू के कण उड़ा ले जाये जाते हैं तो उसे बालू की आँधी कहते हैं। बालू के कण मुश्किल से धरातल से ५.० या १०० फीट तक की ऊँचाई तक उड़ा ले जाये जाते हैं और अपने मूल स्थान से अधिक दूर तक नहीं जा पाते। बालू की आँधी रेगिस्तानों और उनके समीपवर्त्ती शुष्क प्रदेशों में अक्सर आती रहती है। (देखिये Dust storm)

Samson Flamsteed Sinusodial Projection (**सैमसन फ्लामिस्टीड का सिनुसोडियल अंकन**) यह शंक्वाकार अंकन का संशोधित रूप है और बोनीज अंकन का एक विशिष्ट रूप है। इसमें भूमध्य रेखा को मुख्य या आधारभूत अक्षांश मानकर वास्तविक भागों में विभाजित कर देते हैं। इसमें निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं :—

(१) भूमध्य रेखा और केन्द्रीय देशान्तर सीधी रेखायें होती हैं जो एक-दूसरे को समकोण पर काटती हैं। इन दोनों को ठीक-ठीक अंशों में बाँटा जाता है।

(२) अक्षांश रेखायें भी सीधी रेखायें होती हैं और भूमध्य रेखा के समानान्तर रहती हैं। इनके बीच की दूरी हर जगह बराबर रहती है। इनको ठीक-ठीक अंशों में बाँट दिया जाता है।

(३) देशान्तर रेखायें धनुषाकार होती हैं जो विभिन्न अक्षांशों के विन्दुओं से होकर गुजरती हैं। इन देशान्तर रेखाओं के धनुषाकार होने के कारण ही इसे सिनुसोडियल कहते हैं।

(४) अक्षांश रेखाओं के बीच की दूरी वास्तविक ग्लोब पर की दूरी के बराबर होती है और इसी प्रकार विभिन्न देशान्तर भी अलग-अलग अक्षांशों पर यथार्थ दूरी पर होते हैं।

(५) विभिन्न अक्षांशों पर पूर्व से पश्चिम की दिशा तो ठीक रहती है परन्तु उत्तर से दक्षिण तक की दिशा केवल केन्द्रीय देशान्तर पर ही ठीक रहती है।

(६) यह समक्षेत्रफल अंकन है परन्तु किनारें की तरफ आकार बिगड़ जाता है। किनारे के प्रदेशों का आकार ध्रुवों की तरफ नुकीला हो जाता है।

यह अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के मानचित्रों के लिए बहुत ही उपयुक्त है और बहुधा मानचित्रावली में उन्हीं को चित्रित करने के लिये प्रयोग किया जाता है। यह अंकन भूमध्य रेखा से बहुत अधिक दूरी पर स्थित प्रदेशों के लिये बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं रहता। यह उन

प्रदेशों के लिए सबसे उपयुक्त रहता है जो भूमध्य रेखा के दक्षिण और उत्तर में थोड़ी दूर तक फैले हैं और जिनका विस्तार पूर्व से पश्चिम तक अधिक नहीं है। यही कारण है कि यह अफ्रीका के लिए सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है क्योंकि (१) अफ्रीका के करीब-करीब बीचों-बीच से होकर भूमध्यरेखा गुजरती है। (२) पूर्व से पश्चिम तक इसका विस्तार अधिक नहीं है। (३) इसका आकार स्वयं ही ध्रुवों की तरफ नुकीला है।

Santa Anna (सान्ता अना) दक्षिणी कैलीफोर्निया में उत्तर और पूर्व से बहने वाली हवा को सान्ता अना कहते हैं। यह हवा रेगिस्तानों से होकर आती है और पर्वतों के ढाल पर से उतरने के कारण यह गर्म, शुष्क और धूल से भर जाती है। भूमध्य सागर की सिरक्को हवा की तरह यह भी निवासियों को बड़ी तकलीफ पहुँचाती है और वनस्पति को सुखाकर फसलों को बड़ी हानि पहुँचाती है।

यह हवा प्रायः जाड़ों में चलती है और इसके चलने का प्रधान कारण चक्रवातों का आना है। परन्तु यदि यह वायु वसन्त ऋतु में चलती है तो यह भीषण हानि पहुँचाती है क्योंकि उस समय फलों के वृक्ष पर फूल आने लगते हैं और कहीं-कहीं कच्चा फल आना भी शुरू हो जाता है।

Saprophyte (सैपरोफाइट) जो पौधे सड़ते हुये प्राणिज व वनस्पति अंश पर पनपते हैं उन्हें सैपरोफाइट कहते हैं। इस तरह के अधिकतर पौधे घास-फूस होते हैं।

Sastrugi (सास्तरूगी) तुषारपात के बाद हिमराशि की सतह पर हवाओं द्वारा उत्पन्न विषमता को सास्तरूगी कहते हैं। हिमराशि की दशा और हवा की शक्ति तथा अवधि के अनुसार इस विषमता के विस्तार में हेर-फेर होता रहता है। यह पारिभाषिक शब्द विशेषकर रूस में प्रयुक्त होता है परन्तु अन्य प्रदेशों के हिमाच्छादित क्षेत्रों में भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

Saturation (संम्तृप्तता) गर्म वायु बहुत प्यासी रहती है। इसलिए वह बहुत अधिक भाप ग्रहण कर सकती है। परन्तु एक समय ऐसा आ जाता है जब वायु कुछ भी भाप ग्रहण नहीं कर सकती। इस दशा को वायु की सम्तृप्तता कहते हैं। तापक्रम के अनुसार हवा में जितनी मात्रा में भाप रह सकती है उतनी यदि हवा में और मौजूद हो तो उस हवा को सम्तृप्त कहते हैं।

सम्तृप्तता की दशा में आ जाने पर वायु तब तक और अधिक भाप ग्रहण नहीं कर सकेगी जब तक कि उसका तापक्रम नहीं बढ़ेगा। संपृप्त हवा में और अधिक भाप मिलते ही वह पानी के रूप में बरसने लगेगी।

Saturation Point (सम्तृक्तांक) जिस दशा में वायु के अन्दर नमी का अंश पूरा हो जाता है और वह अधिक नमी ग्रहण नहीं कर सकती उसे सम्तृप्तांक कहते हैं। किसी प्रदेश विशेष में वायु का सम्तृप्तांक उसके तापक्रम और प्रचलित वायु की दिशा पर निर्भर रहता है। वाष्पीकरण उसी समय तक होता है जब तक वायु सम्तृप्त नहीं हो जाती है। यदि तापक्रम को इतना नीचा कर दिया जाय ताकि हवा और अधिक नमी ग्रहण करने में असमर्थ हो जाय तो उसे ही उसका सम्तृक्तांक कहेंगे। सम्तृक्तांक पहुँचने के बाद यदि तापक्रम और नीचा हो जाय तो वर्षा होने लगती है। (देखिये **Dew Point**)

Saucer Lake (सॉसर झील) जब नदी अपनी मध्य स्थिति में पहुँचकर घुमावदार मार्ग से होकर बहने लगती है तो उसके किनारे आसपास की भूमि की अपेक्षा अधिक ऊँचे हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि बाढ़ के दिनों में मुख्य नदी तो तलैटी

के बीच में होकर बहती रहती है । इस लिए अधिकतर निक्षेप किनारे के रुके हुये पानी में हो जाता है और उन्नत कगार बन जाते हैं । इन उन्नत कगारों के कारण सहायक नदियों को काफी दूर तक समानान्तर बहने के बाद ही मुख्य नदी से संगम का अवसर मिल पाता है । इन सहायक नदियों के भी किनारों पर उन्नत कगार बन जाते हैं । दोनों प्रकार के उन्नत कगारों के बीच बाढ़ के मैदान का भाग तश्तरी की तरह छिछला गहरा रहता है । बाढ़ के दिनों में जब नदियाँ अपने उन्नत कगारों को काटकर इन छिछले गर्त में भर जाता है तो तश्तरी नुमा झील बन जाती है । इनमें घाटी की दीवारों से भी पानी आ जाता है । इस प्रकार की झीलों को सॉसर झील कहते हैं । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मिनीसोटा नदी के समीप वारन नदी के बाढ़ के मैदानों में इस प्रकार की झीलों के नमूने मिलते हैं ।

Savanna (सवाना प्रदेश) प्रत्येक गोलार्द्ध में भूमध्यरेखिक सदाबहार जंगल और उष्ण मरुस्थलों के दोनों तरफ ५° और २०° अक्षांशों के बीच फैले हैं और प्रायः महाद्वीप के मध्य भाग में स्थित हैं । सूडान, जेम्बजी नदी की ऊपरी घाटी, ओरोनिको की घाटी, ब्राजील का मध्य भाग और पश्चिमी आस्ट्रेलिया का उत्तरी भाग इसी प्रदेश में सम्मिलित है ।

यह एक अन्तरिम प्रदेश है जिसके एक ओर तो जैसे वर्षा की मात्रा ८० से कम होती है बड़े-बड़े पेड़ों की जगह घास दिखलाई पड़ने लगती है और उसके दूसरे छोर पर रेगिस्तानी वनस्पति में विलीन हो जाती है । यहाँ का मौसम साल भर गरम रहता है । वार्षिक तापान्तर भी केवल १०° से ३०° फार्नहीट तक रहता है । इस विभाग में वर्षा एक समान नहीं होती । भूमध्य रेखा के समीप अधिक वर्षा ४०" तक होती है । परन्तु उत्तर या दक्षिण की ओर वर्षा घटती जाती है और मरुस्थलों तक आते-आते १०" रह जाती है । वर्षा केवल गर्मियों में होती है । जाड़े का मौसम सूखा रहता है ।

यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति ऊँची-ऊँची घास तथा बीच-बीच में इक्के-दुक्के पेड़ पाये जाते हैं । वसन्त और गरमी की ऋतु में घास तेजी से उग आती है परन्तु जाड़े के मौसम में घास तो सूख जाती है और पेड़ ही केवल हरे-भरे नजर आते हैं । भूमध्य रेखा की तरफ पेड़ अधिक घने होते हैं और घास भी अधिक लम्बी होती है । चूँकि हवा तेज रहती है, इसलिए पेड़ अधिक छतरीनुमा होते हैं । कहीं-कहीं यह घास के मैदान बड़ी ही कठिनाई से पार किये जा सकते हैं । घास की ऊँचाई ५ फीट से १० फीट तक होती है । यहाँ की घास मोटी व रूखी होती है । इनके डंठल इतने मोटे व मजबूत होते है कि जमीन पर ये चटाई की तरह बिछ जाते हैं और इनसे होकर गुजरना बड़ी ही कठिन समस्या उपस्थित करता है ।

यहाँ पर दो प्रकार के पशु पाये जाते हैं :—

(१) घास खाने वाले और तेज दौड़ने वाले पशु जैसे हिरन, बारहसिंहा, नीलगाय, जेबरा, जिराफ आदि ।

(२) इनका शिकार करने वाले हिंसक पशु जैसे शेर, चीता, तेंदुआ आदि

सवाना प्रदेश में पशुपालन और शिकार करना मुख्य धंधे हैं । कहीं-कहीं ज्वार, बाजरा, मक्का, मूँगफली, तिल, तम्बाकू आदि की खेती भी की जाती है । वास्तव में भूमध्यरेखा की तरफ वाले हिस्से में खेती होती है और मरुस्थलों के तरफ वाले भाग में लोग पशुओं को चराते हुए खानाबदोश जीवन व्यतीत करते हैं । दक्षिणी अमेरिका के लानोस और कैम्पोस प्रदेश को छोड़कर अन्य जगह ये प्रदेश अविकसित दशा में हैं । वास्तव में सवाना प्रदेश का सबसे अधिक विस्तार अफ्रीका में है ।

Scale (मानदण्ड) मानचित्र पर के कुछ इंच भूमि पर के कुछ मीलों को सूचित

करते हैं। कगार पर के इस अन्तर और भूमितल पर के अन्तर के अनुपात दिखाने वाले यन्त्र को मानदण्ड कहते हैं। मानदण्ड को कई प्रकार से व्यक्त किया जाता है:—

(१) साधारण उक्ति द्वारा जैसे १ मील = १ इंच के।

(२) प्रतिनिधि भिन्न द्वारा जैसे १/६३३६० (देखिये Representative Fraction)

(३) रेखिक मानदण्ड द्वारा (देखिये Plain Scale)

इसके अलावा ऊँचाई या लम्बरूप वस्तुओं तथा ढाल को व्यक्त करने के लिए भी मानदण्ड का प्रयोग किया जाता है। पैमाइश करने के लिए भी मानदण्ड का प्रयोग किया जाता है। पैमाइश में कई तरह के मानदण्ड इस्तेमाल किये जाते हैं जिनमें वरनियर और डाइगनल मानदण्ड मुख्य हैं। (देखिये Vernier Scale, Diagonal Scale)

Scarp (उच्छृंग) एक ऊँचे धरातल से एक दम समतल पर आने वाले आकस्मिक ढाल को उच्छृंग कहते हैं। वास्तव में कठोर चट्टान के हल्के झुके हुये ढाल के ऊपरी तीव्र विरोधी ढाल से स्कार्प का निर्माण होता है।

उच्छृंग

इस प्रकार के स्कार्प पठारों के सामने वाले भागों में पाये जाते हैं। झुके हुये स्तर के आवरण क्षय से स्कार्प बनते हैं। दरार पड़ने से भी स्कार्प बन जाते हैं। दरार मे बने हुये स्कार्प आवरण क्षय के स्कार्प से इस माने में भिन्न होते हैं कि आवरणक्षय वाले स्कार्प में मेड़ सी उठी रहती है जो कि दरार से बने स्कार्प में नहीं होता। (देखिये Escarpment)
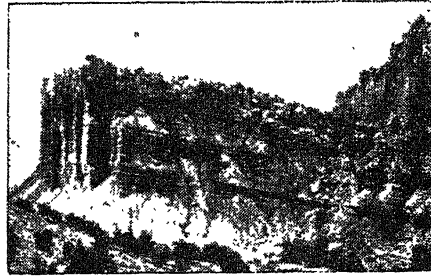
Schattenseite (शैटनशीट) यह जर्मन भाषा का पारिभाषिक शब्द है। (देखिये Ubac)

Schist (शिस्ट) यह एक परिवर्तित चट्टान है। अत्यधिक गर्मी और दबाव के कारण चट्टान की परतें उखड़ने लगती हैं। इनमें स्पष्ट जोड़ या मोड़ पड़े रहते हैं जिनके सहारे इनकी परतें अलग हो जाती हैं। यह चट्टान पूर्णतया रवेदार होती है और इसके बीच में स्थित खनिजों के बड़े-बड़े स्फट साफ दिखलाई पड़ते हैं। इसके दाने कभी-कभी बड़े छोटे-छोटे होते हैं।

उपस्थित खनिज के आधार पर ही इनका नाम पड़ता है और तदानुसार इनका रंग भी अलग-अलग होता है :—

(१) अभ्रक शिस्ट हल्के स्लेटी रंग से लेकर भूरे रंग तक के होते हैं।

(२) क्लोराइट शिस्ट हरे होते हैं।

(३) हार्न ब्लेन्ड शिस्ट हरे से काले तक किसी भी रंग के हो सकते हैं।

(४) हाल्क शिस्ट हल्के सफेद से लेकर पीले हरे रंग तक होते हैं। वास्तव में अधिक वर्षा और अधिक दबाव के कारण सभी प्रकार की अग्नि और परतदार चट्टानें शिस्ट में बदल जाती हैं।

Scoria (स्कॉरिया) ज्वालामुखी उद्गार होने पर जब लावा के अन्दर बहुत

सी गैसें मिली रहती हैं तो उस दशा में ठंडा पड़ने पर इसमें बहुत से उझड़ या फफोले से पड़े नजर आते हैं। झाग की तरह फूला-फूला लावा कॉरिया कहलाता है और भीषण उद्‌गार के समय बनता है। इसे एक रूखे किस्म का प्यूमिस कहा जा सकता है।

Scotch Mist (स्कॉच धुंध) जब वृष्टि महीन जलकणों के रूप में होती है तो उसे स्कॉच धुंध कहते हैं। इस प्रकार की वृष्टि में धुंध और जलफुहार दोनों का ही सम्मिश्रण रहता है। यह प्रायः पर्वतीय प्रदेशों में होता है और इसका मुख्य कारण भूमि के समीप बादलों का होना है।

चूँकि यह वृष्टि स्काटलैंड में अधिक होती है, इसलिए इसका नाम स्कॉच धुंध पड़ गया है। बहुत से स्थानों में इसे मिजल कहते हैं जो कि अँग्रेजी शब्द Mist और Drizzle के योग से बनाया गया है।

Screes (संपात) सूर्य की गर्मी, पाला और वर्षा के जल से विभिन्न चट्टानें टूट-टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। वायु में मिश्रित आक्सीजन, कारबन डाइ आक्साइड और जल चट्टानों के खनिजों के साथ मिलकर उनके सम्पर्क को ढीला कर देते हैं और बाद में उनके विखंडित होने में सरलता होती है। विभिन्न वाह्यशक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया से चट्टानें खंड-खंड होकर चूर-चूर हो जाती है। बाद में गुरुत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव से भी शिलाखंड ऊँचे भागों से लुढ़ककर नीचे गिर जाते हैं। यह खुरदरे और नुकीले पत्थरों की राशि इस प्रकार पर्वतों के आधार तल पर इकट्ठा हो जाती है। इसे स्क्रीज कहते हैं। स्क्रीज का विस्तार ढाल की तीव्रता और मौसमी क्षति पर निर्भर रहता है। इन स्क्रीज का विशेष महत्व है क्योंकि इन्हीं को नदी, हिमनदी और वायु उड़ाकर या बहाकर ले जाती है और इन्हीं की सहायता से वे आवरणक्षय करती है। वास्तव में स्क्रीज क्षेत्र के कंकड़-पत्थर व शिलाखंड नदी, हिमनदी और वायु के लिये हथियार का काम करते हैं। (देखिये Talus)

Screeching Sixties (खरोंचने वाली साठें) दक्षिणी व उत्तरी गोलार्द्ध में ४०° और ५०° अक्षांशों के बीच के समानान्तर कटिबंध को गरजनेवाली चालीसा या खरोंचनेवाली साठी कहते हैं। (देखिये Roaring Forties)

Scrub (अतुङ्गुप) छोटे कद के सदाबहार पौधों की घनी वनस्पति को कहते हैं। इन पौधों की सामान्य ऊँचाई ४ से ६ फीट तक होती है परन्तु बीच-बीच में इक्का-दुक्का अधिक ऊँचे पेड़ भी पाये जाते हैं। यह वनस्पति उन प्रदेशों में पायी जाती है जहाँ पर घने वनों के प्रादुर्भाव के लिए या तो वर्षा की मात्रा अपर्याप्त होती है या भूमि अनुपयुक्त होती है। उष्णमरुस्थलों के किनारे वाले अर्द्ध शुष्क प्रदेशों में यही वनस्पति पाई जाती हैं और चूँकि उसके सहारे कोई स्थायी धंधा नहीं चलाया जा सकता, इसलिए इन प्रदेशों के लोग खानाबदोशों की तरह घूम-घूम कर अपने पशु चराते फिरते हैं।

Scud (स्कड) जब कभी वर्षा करने वाले काले निम्न मेघ आकाश में छाये रहते हैं तो उस समय यदि तेज हवा चल पड़ती है तो इनको नीचे बादलों के टुकड़े इधर-उधर बिखर जाते हैं। इन्हें स्कड कहते हैं। इन टुकड़ों का आकार बड़ा ही नुकीला और कटा-फटा होता है।

Sculpturing of mountains (पर्वत विखण्डन) पर्वत प्रदेशों के उच्च भाग बड़े ही कटे-फटे व ऊबड़-खाबड़ होते हैं। इसका कारण यह है कि पर्वतों के बनते ही उन पर मौसमी क्षति और आवरण क्षय होने लगता है। सूर्यताप, वर्षा का जल और पाले की क्रिया-प्रतिक्रिया

से पर्वतों की शिलाओं के बड़े-बड़े खण्ड टूटकर अलग हो जाते हैं और उनका आकार ऊबड़-खाबड़ तथा कटा-फटा हो जाता है। इस क्रिया को पर्वत विखण्डन कहते हैं।

शुरू में जब पर्वतों का निर्माण होता है तो उनका रूप बहुत कुछ गोलाई लिये हुये होता है परन्तु (१) शुरू की ऊँचाई (२) ऊँचाई की विभिन्नता तथा (३) बाह्य शक्तियों के अत्यधिक सफल कार्य क्षेत्र के कारण धीरे-धीरे इनके मूल रूप में परिवर्तन होने लगता है। चट्टानों के विभिन्न स्वभाव तथा चट्टानों में पायी जाने वाली सँधे और दरारों से इस विखंडन कार्य में सहायता मिलती है। कुछ चट्टानें मुलायम होने के कारण जल्दी नष्ट हो जाती हैं और कुछ कठोर चट्टानें वैसे ही खड़ी रह जाती हैं। चट्टानों की सँधों व दरारों में वर्षा का जल प्रवेश कर जाता है, पेड़ों की जड़ें प्रवेश करके फैलती हैं और पाले के कारण इनमें भरा पानी रात में जमकर सिकुड़ता है और दिन में सूर्यताप के कारण पिघल कर फैलता है। चट्टानों के कुछ खनिज भी दिन में गरम होकर फैलते हैं। और रात में ठंडक पाकर सिकुड़ते हैं। इस प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया के फल स्वरूप कालान्तर में चट्टानों के बड़े-बड़े खंड टूटकर नीचे को ढुलक जाते हैं और पर्वतों का रूप ऊबड़-खाबड़ दिखलाई देने लगता है।

पर्वत विखण्डन से उत्पन्न रूप शक्ति विशेष की तीन प्रमुख शक्तियों (१) नदी का जल (२) हिमनदी और (३) वायु हैं। प्रत्येक शक्ति द्वारा आवरणक्षय की अपनी विशेषता होती है और उसी के अनुसार पर्वत विखण्डन से उत्पन्न स्थलरूपों के आकार-प्रकार भी अलग होते हैं। (देखिये **Mountains of Denudation**)

Sea (सागर) महासागर का वह छोटा विभाग जो अंशत: भूखंडों द्वारा घिरा रहता है उसे सागर कहते हैं। महासागर तो विस्तृत जलाशय है जो महाद्वीपों को एक-दूसरे से मिलाते या अलग करते हैं। इसके विपरीत विभिन्न महाद्वीपों में स्थित इन महासागरों की शाखाओं को सागर कहते हैं। काले सागर या भूमध्यसागर या उत्तर सागर की तरह, यह केवल तीन ओर से भूमि द्वारा घिरा खारी पानी का आन्तरिक प्रदेश भी हो सकता है जैसे कैस्पियन सागर या अरल सागर।

प्रथम प्रकार के सागर का महासागर से सम्बन्ध होता है परन्तु दूसरे प्रकार के सागर महासागरों से दूर व पूर्णतया असम्बद्ध होते हैं। वास्तव में ये दूसरे प्रकार के सागर तो केवल खारी पानी की बड़ी-बड़ी झीलें हैं जिनमें आसपास की नदियाँ आकर गिरती हैं।

कभी-कभी सागर शब्द का प्रयोग भूपटल पर पाये जाने-वाले विस्तृत जलमण्डल के लिए भी किया जाता है।

Sea Breeze (समुद्री पवन) दिन के समय समुद्र के समीप स्थल भाग समुद्र की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि स्थलीय वायु अधिक गर्म होकर फैलती है। दूसरे शब्दों में स्थल पर जल की अपेक्षा न्यून भार स्थापित हो जाता है। इस अन्तर के कारण समुद्र की ओर से स्थल पर स्थानीय वायु चलने लगती है जिसे समुद्री पवन कहते हैं।

समुद्री पवन बड़े ही नियत रूप से चलता रहता है परन्तु इसके लिए वायु भार ढाल क्रमश: तथा आसमान साफ होना चाहिये। ऐसी दशा में समुद्री पवन सुबह से शाम तक बराबर चलती रहती है। यह दिन के लगभग १० बजे से सूर्यास्त तक चला करती है और इसकी सबसे अधिक तेजी शाम को तीसरे पहर के समय होती है। निरीक्षण द्वारा पता चला है कि समुद्री पवन का प्रभाव ५००-६०० फीट की ऊँचाई तक और तट से लगभग २० मील भीतर तक ही हुआ करता है। इसकी गति और शक्ति पर स्थलखंड की बनावट का बड़ा असर पड़ता

है । शीतोष्ण कटिबंध में इसकी चाल १० मील प्रति घंटा से अधिक नहीं होती परन्तु उष्ण कटिबंध में यह २०-२५ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चलती है ।

यह पवन ठंडी और तर होती है अतः । उष्ण कटिबंध के तट के उच्च तापक्रम को कम करने में सहायक होती है । कभी-कभी समुद्री पवन के चलने के बाद १५-२० मिनट में ही तापक्रम १५-२० अंश तक कम हो जाता है ।

स्थलीय पवन की तरह इनका प्रभाव भूमध्यरेखिक शान्त मण्डल में सबसे अधिक रहता है । अन्य प्रदेशों में तो यह केवल प्रचलित हवाओं में थोड़ा हेर-फेर कर देती है परन्तु शान्त मण्डल में वायुभार ढाल क्रमशः होने के कारण तथा तेज हवाओं के अभाव में इसके द्वारा बड़ा ही स्वास्थ्यकर प्रभाव उत्पन्न हो जाता है ।

Sea Cave (समुद्री गुफायें) कभी-कभी लहरों की कटान से चट्टानों के निचले भाग खोखले होकर गुफा सी बन जाती है । इन्हें समुद्री गुफा कहते हैं । बालू-बजरी और कंकड़-पत्थर से लदी लहरें जब तट की चट्टानों पर आघात करती हैं तो चट्टानों का निचला भाग क्षीण होता जाता है । पहिले छोटे-छोटे कटान बनते हैं और बाद में ये ही बड़े होकर गुफा का रूप धारण कर लेते हैं । जब कभी लहरों का जल इस प्रकार की गुफा में अचानक भर जाता है तो गुफा की हवा सिकुड़ती है और किसी संध या दरार से होकर बड़ी तेजी से बाहर निकलती है । इस प्रकार ये गुफायें कालान्तर में बड़ी हो जाती हैं । परन्तु समुद्री गुफाओं का निर्माण विस्तार और अस्तित्व (१) चट्टानों के स्वभाव, (२) भूमि की बनावट, (३) लहरों की कार्य शक्ति, (३) चट्टानों की परतों की विभिन्नता और (४) मौसमी गति पर निर्भर रहता है ।

इन गुफाओं की छत मेहराबदार होती है और कालान्तर में इन की पिछली दीवारें इस प्रकार कटती जाती है कि एक सुरंग बन जाती है । इस प्रकार की समुद्री गुफायें अधिकतर चूने के चट्टानों के तटीय प्रदेश में बनी हैं ।

Sea Level (समुद्रतल) (१) यदि समुद्र में ज्वार-भाटे, लहरें या उतार-चढ़ाव न आवे तो समुद्र जल की जो स्थिति रहेगी उसे समुद्रतल कहते हैं ।

(२) किसी स्थान पर ज्वार के चढ़ाव और भाटे के उतार का औसत निकाल कर समुद्र-जल की सतह की स्थिति का जो मध्यम मान प्राप्त करते हैं उसे समुद्रतल कहते हैं । (देखिये Mean Sea Level)

Sea Mile (समुद्री मील) (देखिये Nautical Mile)

Seaport (समुद्री बन्दरगाह) (देखिये Ocean Port)

Sea Route (समुद्री मार्ग) (देखिये Ocean Routes)

Seasons (मौसम) साल के उन विशिष्ट विभागों को जब विशेषकर ऋतु जलवायु सम्बन्धी दशायें पायी जाती हैं मौसम कहते हैं । मौसमों के बदलने का मुख्य कारण पृथ्वी की धुरी का झुकाव और सूर्य के चारों ओर उसका परिभ्रमण है । परिभ्रमण या पृथ्वी की वार्षिक गति का मुख्य परिणाम मौसम का बदलना है । यद्यपि पृथ्वी प्रति वर्ष एक बार सूर्य की परिक्रमा करती है तथापि पृथ्वी का अक्ष सदा एक ही तरफ झुका रहता है ।

स परिभ्रमण में पृथ्वी की चार मुख्य स्थितियाँ हैं—जून, सितम्बर, दिसम्बर और मार्च की । **२१ जून को** उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य के निकट और दक्षिणी गोलार्द्ध दूर हो जाता है । अस्तु उत्तरी गोलार्द्ध को अधिक प्रकाश और गर्मी सूर्य से मिलती है और दक्षिणी गोलार्द्ध को कम । सूर्य इस समय कर्क रेखा पर रहता है । इसलिए इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम और दक्षिणी गोलार्द्ध में जाड़े का मौसम रहता है । **२३ सितम्बर** को पृथ्वी

इस तरह रहती है कि सूर्य की गर्मी और प्रकाश पृथ्वी के सब भागों को एकसा बराबर मिलता है। सूर्य भूमध्यरेखा पर चमकता है। उत्तरी गोलार्द्ध में इस समय पतझड़ का मौसम और दक्षिणी गोलार्द्ध में बसंत ऋतु रहती है। **२३ दिसम्बर** को दक्षिणी गोलार्द्ध सूर्य के निकट और उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य से दूर हो जाता है। सूर्य की किरणें मकर रेखा पर सीधी पड़ती हैं और इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़ा तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम होता है। **२१ मार्च को** सूर्य फिर भूमध्यरेखा पर सीधा चमकने लगता है। अस्तु पृथ्वी के सभी भागों को समान ताप व प्रकाश प्राप्त होता है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में बसन्त ऋतु और दक्षिणी गोलार्द्ध में शरद ऋतु या पतझड़ का मौसम रहता है।

इस प्रकार संसार में चार मौसम होते हैं—गर्मी, पतझड़, जाड़ा और बसन्त परन्तु इनकी अवधि व प्रत्यावर्त्तन की दशायें स्थानीय कारणों से जगह-जगह बदलती रहती हैं। शीतोष्ण कटिबंध में तो ४ मौसम होते हैं और प्रत्येक मौसम की अवधि ३ महीना होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में वसन्त ऋतु मार्च, अप्रैल और मई के महीनों में रहती है। जून, जुलाई और अगस्त गर्मी के महीने होते हैं। सितम्बर, अक्टूबर और नवम्बर में पतझड़ का मौसम आ जाता है और दिसम्बर, जनवरी, फरवरी के महीनों में जाड़ा पड़ता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में मौसम इसके विपरीत होते हैं। वहाँ सितम्बर, अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में बसन्त ऋतु रहती है, और उसके बाद क्रमशः गर्मी, पतझड़ और जाड़े का मौसम आता है।

जो देश समुद्र के समीप बसे हुये हैं वहाँ पर एक मौसम से दूसरे मौसम में प्रत्यावर्त्तन क्रमशः होता है। इसके विपरीत महाद्वीपों के आंतरिक भागों में एक मौसम के बाद दूसरा मौसम अकस्मात आ जाता है और मौसमी दशाओं का प्रत्यावर्त्तन बड़ा ही तीव्र तथा आकस्मिक होता है। मौसमों की फेर एकाएक हो जाती है।

उष्णकटिबंध में मौसम सूर्य की स्थिति पर निर्भर नहीं होते। वहाँ तो वर्षा की मात्रा के अनुसार मौसम बदलते रहते हैं। इसलिए साल को केवल दो मौसमों में बाँटा जाता है—तर या वर्षा का मौसम और शुष्क या वर्षारहित मौसम। मानसून जलवायु के प्रदेशों में साल में तीन मौसम होते हैं—जाड़ा, गर्मी और बरसात। भारत इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

गोलकटिबंधों में गर्मी के बाद जाड़ा और जाड़े के बाद गर्मी इतनी जल्दी और एकाएक शुरू हो जाती है कि बसन्त और शरद (पतझड़) ऋतुओं का लोप ही हो जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केवल शीतोष्ण कटिबंध को छोड़ कर और कहीं भी साल में चार मौसम नहीं होते।

Second (सेकन्ड) (१) समय की माप की एक इकाई को सेकन्ड कहते हैं। और यह एक मिनट के साठवें अंश के बराबर होता है।

(२) अक्षांश व देशान्तर को नापने की एक इकाई को एक सेकन्ड कहते हैं और एक मिनट में साठ सेकन्ड होते हैं।

Secondary Depression (अप्रधान गर्तचक्र) मुख्य चक्रवात से सम्बन्धित परन्तु अपेक्षाकृत बहुत कम विस्तार के न्यून भार को अप्रधान गर्त चक्र कहते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रधान चक्रवात के शीत सीमान्त पर किसी स्थान पर न्यूनभार उत्पन्न हो जाता है और इस न्यून भार के आस-पास दूसरा अप्रधान गर्तचक्र बन जाता है।

शीतोष्ण कटिबंध में जो चक्रवात बनते हैं उनके अन्दर के प्रदेश में ठंडी हवा घूम कर आने लगती है। नतीजा यह होता है कि गर्म हवा दो भागों में बँट जाती है और चक्रवात की

तीव्रता कम होने लगती है। ध्रुवीय सीमान्त के हट जाने से शेष गर्म वायु और स्थान्तरित ध्रुवीय सीमान्त को लेकर एक अप्रधान गर्तचक्र बन जाता है।

अटलान्टिक महासागर में वायुभार ढाल क्रमशः होने के कारण अप्रधान गर्तचक्र की एक पंक्ति सी बन जाती है और इस रूप से भारी वर्षा होती है और धड़ाके के बादल गरजते हैं तथा बिजली चमकती है।

अप्रधान गर्तचक्र मुख्य चक्रवात के पीछे-पीछे चलते हैं और मुख्य चक्रवात के चारों ओर घूमते हुये आगे बढ़ते हैं। कालान्तर में अप्रधान गर्तचक्र इतने शक्तिवान हो जाते हैं कि मुख्य चक्रवात को हड़प लेते हैं।

Secondary Divisions (गौण विभाग) रेखांकित मानदण्ड में बायीं ओर से प्रथम भाग को छोटे-छोटे अंशों में बाँट दिया जाता है और इन्हें गौण विभाग कहते हैं। इन्हें बनाने के लिये निम्नलिखित तरीके काम में लाते हैं :—

प्रथम मुख्य भाग के एक सिरे पर ऊपर की ओर एक लम्ब डाल देते हैं और दूसरे सिरे पर नीचे की ओर। इन लम्ब रेखाओं पर निश्चित अंश नापकर काट लेते हैं और फिर उन्हें समानान्तर रेखाओं द्वारा मिला देते हैं। जहाँ-जहाँ यह समानान्तर रेखायें मुख्य रेखा को काटेंगी वहीं उसके गौण विभाग होंगे।

Secondary Industry (गौण धंधा) गौण धंधे वे होते हैं जिनमें मुख्य धन्धों से उत्पन्न किये हुये कच्चे माल को शिल्प द्वारा पक्का या तैयार रूप दिया जाता है। इस धंधे में श्रम और पूँजी का मुख्य स्थान रहता है। इसके अन्तर्गत लोहे व इस्पात का उद्योग, कागज का उद्योग, सूती, रेशमी व ऊनी वस्त्र उद्योग आदि सम्मिलित हैं।

प्रत्येक प्रकार का धंधा सर्व प्रथम किसी न किसी प्रकार की शक्ति पर निर्भर रहता है। शक्ति के तीन स्रोत हैं: कोयला, तेल और जलविद्युत। इसके बाद कच्चे माल की उपलब्धता का स्थान आता है। कच्चा माल समीप में पर्याप्त मात्रा और सस्ते मूल्य पर उपलब्ध होना चाहिये। इसके बाद श्रम का स्थान है। बहुत से उद्योग कुशल श्रमजीवियों के सहारे ही चलते हैं। कुछ के लिए सस्ते मजदूरों की अधिक संख्या होनी जरूरी होती है। इन तीन दशाओं के उपस्थित होने पर पूँजी की सहायता से गौण उद्योग-धंधे चालू किये जा सकते हैं।

इसके अन्तर्गत तीन प्रकार की क्रियायें शामिल हैं—शिल्प उद्योग, वस्तु निर्माण और शक्ति उत्पादन।

Secular (दीर्घकालीय) बहुत अधिक समय तक होते रहने वाला।

Sedimentary Rocks (परतदार चट्टानें) सबसे पहिले अग्नि चट्टानें बनी और कुछ समय के पश्चात् इसके सभी प्रकारों में मौसमी क्षति द्वारा टूट-फूट शुरू हो गई। टूटी हुई चट्टानों का यह चूर्ण नदियों, वायु और हिमनदियों द्वारा हटाया जाता रहा और समुद्र या झील में इनका निक्षेप होता रहा। इस प्रकार चट्टानों का चूर्ण समुद्र की तली में एक परत के बाद दूसरे परत के रूप में बैठता गया और लाखों वर्षों में परतों का एक ऊँचा ढेर इकट्ठा हो गया। ऊपरी परतों के दबाव और पानी में घुलकर आये हुये चूना या अन्य पदार्थों के मिलने से परत जमकर सख्त चट्टानें बन गईं। इन्हें परतदार चट्टानें कहते हैं। चूँकि ये चट्टानें जल के भीतर बनीं, इसलिए कभी-कभी इन्हें जलीय चट्टानें भी कहते हैं। चूँकि ये नदियों, वायु और हिमनदियों द्वारा प्रवाहित तलछट के जमा होने से बनती है इसलिए इन्हें तलछट की चट्टानें भी कहते हैं।

परतदार चट्टानें भूपटल पर पाई जानेवाली तीन प्रमुख प्रकार की चट्टानों में से एक है

और विद्वानों का अनुमान है कि पृथ्वी के ऊपर धरातल के ७५ प्रतिशत या तीन-चौथाई भाग पर यही चट्टानें बिछी हुई हैं। परन्तु इनकी गहराई अधिक नहीं है। भूगर्भ के केवल ५ प्रतिशत अंश में ही ये चट्टानें पाई जाती हैं।

परतदार चट्टानों में कई विशेषतायें पाई जाती हैं—(१) इसमें छोटे-बड़े आकार के सूक्ष्म कण ही कण भरे पड़े हैं, (२) ये सूक्ष्म कण सीधी रेखाओं में एक-दूसरे से बँधे हुये हैं। ये सीधी रेखायें भी एक दूसरी के समानान्तर स्पष्ट दिखाई देती है। (३) इनकी परतें कहीं तो केवल कुछ इंच मोटी हैं परन्तु कहीं उनकी मोटाई कई फीट तक है। (४) वैसे तो ये परतें साधारण तथा समानान्तर ही रहती हैं परन्तु कहीं-कहीं ये परतें टेढ़ी होकर मुड़ गई हैं। टेढ़ी परतें इस बात का चिन्ह है कि परते बनने के पहिले जैसे ही दलदल का निक्षेप हुआ इन का तल किसी कारणवश बिगड़ गया। (५) इनके ऊपर लहरों के निशान बने रहते हैं। (६) इनके बीच-बीच में दलदल की सी दरारें पाई जाती हैं। (७) विभिन्न परतों के बीच में वनस्पति व जीव-जन्तुओं के अवशेषांश दबे पाये जाते हैं।

परतदार चट्टानों के कई भेद किये जा सकते हैं :—

(१) चट्टान चूर्ण से निर्मित परतदार चट्टानें जिनमें बलुहे पत्थर और शेल या चिकनी मिट्टी के पत्थर को लेते हैं। (२) विलीन रसायनों से निर्मित परतदार चट्टानें जिनमें हरसोंठ (Gypsum) और पहाड़ी नमक विशेष रूप से उल्लेखनीय है। (३) प्राणिज अथवा कार्बनिक तत्वों से निर्मित परतदार चट्टानें वे होती हैं जिनमें जीवजन्तुओं और पेड़-पौधों के अवशेषांश धीरे-धीरे इकट्ठा होते रहते हैं और सख्त चट्टान के रूप में बदल जाते हैं। चूने के पत्थर, खड़िया और कोयला इसी श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि इन चट्टानों के निर्माण में स्फटिक (Quartz), मिट्टी (Clay) और चूने (Calcite) के खनिजों की अधिकता है।

भूपटल पर निम्नलिखित तीन प्रकार की परतदार चट्टानें विशेष रूप से फैली हुई पाई जाती हैं :—(१) शेल ८२ प्रतिशत, (२) बलुहे पत्थर १२ प्रतिशत और (३) खड़िया, चूने के पत्थर और डालमाइट ६७ प्रतिशत।

Seepage (निचुड़ना) भूगर्भवर्ती जल जब जोर के साथ धरातल पर प्रवाहित होता है तो उसे झरना कहते हैं परन्तु जब भूगर्भ का जल बूँद-बूँद करके धरातल पर निकलता है तो उस क्रिया को निचुड़ना कहते हैं।

Seiche (सीश) किसी झील के सामान्य तल में परिवर्त्तन को सीश कहते हैं। झील के सामान्य तल में परिवर्त्तन बहुत कुछ माने में समुद्र के ज्वार-भाटे की तरह होता है। झील के इस तल परिवर्त्तन का निरीक्षण सब से पहिले जिनेवा झील में किया गया। सीश आने पर झील के जल का उतार-चढ़ाव कुछ इंचों से लेकर कुछ फीट तक हो सकता है।

इस तल परिवर्त्तन के कारण निम्नलिखित में से कोई एक हो सकता है :

(१) वायुमण्डल के भार में फेरबदल, (२) झील की तलैटी के नीचे आने वाले छोटे-छोटे भूकम्प, (३) वायु की प्रगति व शक्ति।

साधारणतया सीश झील के सबसे बड़े व्यास की दिशा में होता है परन्तु कभी-कभी यह आड़े-तिरछे दिशा में भी उत्पन्न हो जाता है।

Seismic Focus (भूकम्प उत्पत्ति स्थान) वैज्ञानिकों का कथन है कि भूगर्भ में ५० मील से ५०० मील तक की गहराई पर अदृश्य घटनाओं के कारण भूतल पर धक्के आते हैं। जिस भूगर्भवर्ती केन्द्र से भूकम्प की लहरें प्रसारित होती हैं उसे भूकम्प उत्पत्ति स्थान

कहते हैं। इधर कुछ दिनों से खोज द्वारा यह पता चला है कि भूकम्प एक केन्द्र से नहीं बल्कि एक रेखा से शुरू होता है।

Seismograph (कम्प लेखक यन्त्र) भूकम्प द्वारा आने वाले धक्कों का ज्ञान भूकम्प लेखक यंत्र द्वारा होता है। इस यन्त्र का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि जब भूकम्प की लहरें आती हैं तो इस यन्त्र का एक भाग विचलित हो जाता है और फिर गति का वृहत रूप इस पर अंकित हो जाता है। कम्पन की गति एक कलम द्वारा अंकित हो जाती है। यह कलम एक घूमते हुए ढोल पर लगी रहती है परन्तु आजकल के नवीन भूकम्प लेखक यन्त्रों में एक घूमती हुई फिल्म पर कम्पन रेखायें अंकित हो जाती हैं। इसके लिए एक फोटो यन्त्र साथ में लगा रहता है।

बहुत से यन्त्र इतने सूक्ष्म होते हैं कि हजारों मील दूर पर आये हुये भूकम्प के बारे में लहरों को अंकित कर लेते हैं। इन्हीं के सहारे भूकम्प के स्थान की दूरी तथा दिशा का अन्दाज लगाया जा सकता है। भूकम्प सम्बन्धी बेधशाला में तीन प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है—दो यन्त्र तो समानान्तर आँकड़ों को अंकित करते हैं: एक पूर्व से पश्चिम की लहरों को और दूसरा उत्तर से दक्षिण दिशा में आनेवाली लहरों को। तीसरा यन्त्र भूकम्प की लम्बरूप लहरों को अंकित करता है। इस प्रकार इन तीनों की सहायता से भूकम्प के स्थान व दिशा का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

Seismographic Lines (कम्प रेखायें) भूकम्प सम्बन्धी ज्ञान को मानचित्र पर प्रस्तुत करने के लिए जो रेखायें खींची जाती हैं उन्हें कम्प रेखायें कहते हैं। इन कम्प रेखाओं के कई भेद हैं—(१) धरातल प्रमुख दरार वाले भागों को मिलाने वाली रेखा को भ्रंश क्षेत्र रेखा कहते हैं।

(२) जिन स्थानों पर भूकम्प द्वारा समान क्षति पहुँचती है उन्हें **Isoseismal Lines** कहते हैं।

(३) जिन स्थानों पर भूकम्प द्वारा एक ही समय पर कम्पन उत्पन्न किया गया है उन्हें **Homoseismal Lines** कहते हैं। (देखिये **Isoseismal, Homoseismal and Seismo Tectonic Lines**)

Seismology (भूकम्प विज्ञान) भूकम्पों के अध्ययन और उससे सम्बन्धित विद्या को भूकम्प विज्ञान कहते हैं।

Seismotectonic Lines (भूकम्प भ्रंश क्षेत्र रेखा) भूगर्भ में होनेवाली घटनाओं के कारण भूपटल की चट्टानें कहीं मुड़ जाती हैं तो कहीं चटख जाती हैं और कहीं उनमें दरार पड़ जाती है। इस प्रकार के भ्रंश क्षेत्रों में भूकम्प आ जाते हैं और प्रायः यह देखा जाता है कि भ्रंश क्षेत्रों में भूकम्प अक्सर आया करते हैं। इसलिए भूकम्प के क्षेत्रों को अंकित करने के लिए जब विविध महत्वपूर्ण भ्रंश क्षेत्रों को मिलाती हुई रेखा खींची जाती है तो उसे कम्प भ्रंश क्षेत्र रेखा कहते हैं।

Seistan (सीस्तां) पूर्वी ईरान के सीस्ताँ प्रान्त में गर्मी के मौसम में उत्तर दिशा से बहने वाली तेज हवा को सीस्ताँ कहते हैं। यह वायु बड़ी तेज व प्रचण्ड होती है और इसकी गति अक्सर ७० मील प्रति घंटे से भी अधिक होती है। यह गर्मी के मौसम में बराबर चलती रहती है और कभी-कभी इसे १२० दिन की हवा भी कहते हैं। इसकी अवधि ४ महीने होती है।

Selvas (सेल्वाज) दक्षिणी अमरीका में अमेजन नदी के बेसिन में पाये जाने वाले भूमध्यरेखिक वन प्रदेश को सेल्वाज कहते हैं। यह प्रदेश कान्गो बेसिन के जंगल

की अपेक्षा अधिक खुला हुआ है और इसीलिए यहाँ पर के लोगों का जीवन अधिक उन्नत है। इनके अन्दरूनी भागों में यहाँ के आदि निवासी नदी के किनारे जंगल को काटकर साफ किये हुये प्रदेशों में रहते हैं। इनका मुख्य धंधा शिकार करना, मछली पकड़ना और जंगली कन्दमूल फल इकट्ठा करना होता है। यहाँ के लोग रबड़, ब्राजीलनट और मेस्ट्रियो को इकट्ठा करके अँग्रेज व्यापारियों के हाथ बेच देते हैं। इसके अलावा बहुमूल्य कठोर लकड़ी, तिलहन के बीज और सिनकोना यहाँ की अन्य उपज है। नदियों के मुहाने के समीप और तटीय प्रदेशों में कोको, चीनी, कहवा, मैनडोका, कपास, मक्का, चावल और तम्बाकू के बगीचे हैं।

यातायात का प्रधान स्थान अमेजन व उसकी सहायक नदियाँ और उन्हीं के किनारे यहाँ के प्रमुख नगर बसे हुये हैं। (देखिये Equatorial Forest)

Sequent Form (मध्य अवस्था) जब किसी स्थलरूप पर प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा आवरणक्षय और काट-छाँट की क्रिया काफी बढ़ जाती है तो उसे उसकी मध्य अवस्था कहते हैं। मध्य अवस्था में घाटियाँ चौड़ी और विस्तृत मैदान बन जाती हैं, जल विभाजक संकीर्ण होते जाते हैं और नदी की तलैटी चौरस हो जाती है। उसमें जलप्रपात वगैरह नहीं रहते। अपने किनारे की पर्वत शाखाओं को काटती हुई नदी घुमावदार मार्ग से बहती है और उत्क्षेप वाली भूमि पर घाटियाँ व श्रेणी की क्रमिक पंक्ति सी बन जाती है।

Seracs (सेराक्स) यह फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। जब पर्वतीय हिमनदी किसी तीव्र ढाल पर पहुँचती है तो उसकी सतह पर बहुत से दरार बन जाती हैं जो अनेक दिशाओं में बनी रहती हैं और एक दूसरे के आर-पार जाती हैं। इसके फलस्वरूप हिम की सतह नुकीले टुकड़ों में या अनेक आकार वाले हिम स्तम्भों में कट-फट जाती है। इन टुकड़ों व हिम स्तम्भों को सेराक्स कहते हैं।

Sericulture (कच्चे रेशम का व्यवसाय) कच्चा रेशम एक कीड़े के कोये से प्राप्त होता है। यह कीड़ा विशेषकर शहतूत के वृक्ष की पत्तियों को खाकर जीवित रहता है। बेर, साल, लारेल, अंडी, शाहबलूत, नारंगी इत्यादि वृक्षों की पत्तियाँ भी रेशम के कीड़े को खिलाई जा सकती हैं।

सेराक्स

शहतूत का वृक्ष गर्म शीतोष्ण प्रदेशों में तथा उपोष्ण क्षेत्रों में खूब उगता है। परन्तु रेशम का कीड़ा सफलता पूर्वक वहीं पाला जा सकता है जहाँ वृक्ष वर्ष भर में पत्तियों की दो फसलों को उत्पन्न करते हों। अस्तु रेशम का कीड़ा भूमध्यरेखा से १५° उत्तर और दक्षिण

से लेकर ४०° उत्तर और दक्षिण के भूभाग में पाला जा सकता है। रेशम के कीड़ों को पालने के कार्य में बड़ी मेहनत और सावधानी की जरूरत है। प्रतिदिन नवीन पत्तियाँ तोड़ना, कीड़ों को रखने की तश्तरियाँ साफ करना, सामान्यतः गर्म हवा पहुँचाते रहना होता है। इसलिये इस व्यवसाय के लिये मजदूर पर्याप्त संख्या में चाहिये और मजदूर केवल सस्ते ही नहीं होने चाहिये बल्कि चतुर, परिश्रमी, धैर्यवान तथा भरोसे के होने चाहिये।

इन दशाओं के कारण चीन और जापान तथा इटली और फ्रांस में कच्चे रेशम का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। इन देशों में रेशम के कीड़ों की देखभाल स्त्री-बच्चे करते हैं। रेशम हल्का होने के कारण दूर-दूर भेजा जा सकता है। इधर कुछ दिनों से कृत्रिम रेशम की स्पर्धा के कारण कच्चे रेशम का व्यवसाय डावाँडोल अवस्था में है।

Setting a Map (मानचित्र बैठाना) मानचित्र का उचित प्रयोग करने के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि मानचित्र पर अंकित विविध वस्तुओं को भूमि पर स्थित वास्तविक रूपों के साथ मिलाया जा सके। ऐसा करने के लिए मानचित्र को इस प्रकार फैलाना होता है कि उसमें अंकित विविध वस्तुयें वास्तविक भूमि स्थित वस्तुओं के समानान्तर रहें और उनसे असली दिशा का ज्ञान हो सके। तात्पर्य यह है कि मानचित्र को इस प्रकार फैलाना चाहिये कि उसका उत्तरी बिन्दु वास्तविक उत्तर की ओर रहे। इसे मानचित्र बैठाना कहते हैं।

मानचित्र को बैठाने से निम्नलिखित सुविधायें होती हैं—(१) मानचित्र और वास्तविक भूमि के बीच तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है, (२) मानचित्र पर अपनी स्थिति बिन्दु का पता लगाया जा सकता है, (३) किसी भी स्थान की दिशा का पता लगाया जा सकता है। मानचित्र के अन्दर कुछ अतिरिक्त बातों का समावेश करने के लिए भी मानचित्र को बैठाना आवश्यक होता है।

मानचित्र को फैलाकर उचित दिशा में बैठाने की अनेक रीतियाँ हैं। उन सब का आधार सिद्धान्त में दो बातें अनिवार्य हैं—(१) सच्चे उत्तर और चुम्बकीय उत्तर का सापेक्षिक ज्ञान और (२) कोणिक दिशायें।

Sextant (सेक्सटैन्ट) सूर्य के मध्यान्ह रेखाओं को पार करने के समय का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें सेक्सटैन्ट नामक यन्त्र का प्रयोग करना होता है। इसके द्वारा दो वस्तुओं के बीच की कोणिक दूरी नापी जा सकती है। इसकी बनावट क्वाडरैन्ट की ही तरह होती है परन्तु इस का सबसे सफल प्रयोग समुद्र पर ही होता है। इसके द्वारा केवल १३०° तक के कोणों को ही नापा जा सकता है। इसके द्वारा आकाश मण्डल की विभिन्न वस्तुओं की दिखलाई पड़नेवाली ऊँचाई को नापा जा सकता है और निरीक्षक की स्थिति का पता अक्षांस व देशान्तर में लगाया जा सकता है। नाविक इसके द्वारा दृश्य समुद्री क्षितिज के ऊपर वस्तुओं की ऊँचाई का पता लगा लेते हैं और भूमि पर स्थित चिन्हों के बीच कोण को मानकर छिपे हुये खतरे का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

यह बहुत छोटा व हल्का यन्त्र होता है। इसलिये इसे अक्सर ध्रुवीय खोज के लिये प्रयोग में लाते हैं। वायु संचालन के लिये और हवाई उड़ाकों के प्रयोग के लिए विशिष्ट प्रकार के सैक्सटैन्ट निकाले गये हैं।

Shale (शेल) चिकनी मिट्टी के उपर भारी दबाव के कारण उसके बारीक कण जम जाते हैं और इस प्रकार से बनी चट्टानों को शेल कहते हैं। यह एक प्रकार की परतदार चट्टान है जिसके कण बहुत महीन तथा जिसमें छेद बहुत कम होते हैं। इसी कारण पम्प इन चट्टानों के भीतर प्रवेश नहीं करने पाता। परन्तु जब यह चट्टान धरातल पर

आ जाती है तो इसमें कटान बड़ी जल्दी होने लगती है। यह इतनी मुलायम होती है कि शीघ्र ही चूर-चूर हो जाती है। इनकी परतें इतनी महीन व पतली होती हैं एक परत की मोटाई कागज के ताव से अधिक नहीं होती।

कभी-कभी दबाव के न होते हुये भी शेल चट्टानों का निर्माण चूने जैसे जोड़नेवाले पदार्थों की उपस्थिति में भी हो जाता है। शेल चट्टानों में अनेक प्रकार की वस्तुयें मिली रहती हैं। शुद्ध तो यह बहुत कम होती है। और विदेशी पदार्थ या जोड़ने वाले पदार्थ की उपस्थिति के अनुसार ही इस के रंग व विशेषतायें होती हैं। साधारणतया इन का रंग स्लेटी, भूरा, पीला, लाल, खाकी, हरा या काला होता है।

इनमें चिकनी मिट्टी के अतिरिक्त बालू और कार्बनिक तत्व भी मिले रहते हैं। जब बालू का अंश अधिक हो जाता है तो ये महीन कण वाले बलुहे पत्थर बन जाते हैं। इसी प्रकार कार्बनिक तत्वों के अधिक हो जाने से ये चूने के पत्थर कहलाने लगते हैं। यदि इन पर अधिक दबाव पड़ जाये तो भूगर्भ के भीतर की गर्मी के कारण शेल चट्टान स्लेट में परिवर्त्तित हो जाती है।

भूपटल पर परतदार चट्टानों के ८२ प्रतिशत भाग में ये ही चट्टानें (शेल) फैली हुई पाई जाती हैं।

Shamal (शामल) गर्मी के मौसम में ईराक में उत्तर-पश्चिम से चलनेवाली हवा को शामल कहते हैं। यह हवा बहुत स्थायी रूप से चलती रहती है। यह हवा दजला-फरात के मैदान से होकर चलती है। पूर्वी भूमध्यसागर की इटीसयन हवाओं और ईरान की सीस्ताँ की तरह इस पर भी मौसमी चक्रवात का नियंत्रण रहता है। गर्मी के मौसम में उत्तरी-पश्चिमी भारत और बलूचिस्तान में निम्न भार प्रदेश बन जाता है और उसी से आकर्षित होकर यह हवा उत्तर-पश्चिम से चलने लगती है।

इसमें चक्रवात या तूफान नहीं आते। इसलिये यह बड़े नियमित रूप से प्रवाहित होती रहती है। दिन के समय इसकी प्रचण्डता विशेष अधिक रहती है। उस समय यह अपने साथ धूल के बादल उड़ा ले जाती है और धूल की प्रचण्ड आँधियाँ आ जाती हैं, ये आँधियाँ दक्षिणी ईराक में विशेष प्रभावशील होती हैं। परन्तु रात के समय यह वायु बड़ी शान्त हो जाती है।

जाड़े के मौसम में भी शामल हवा चलती है परन्तु उसका प्रवाह व गति इतनी नियमित नहीं होती।

Sheep backs (मेष शिलायें)
(देखिये **Ronches Mountannees**)

Sheep Tracks (मेष पथ) पहाड़ियों या टीलों के ढालों पर अक्सर भूमि के खसकने से छोटे-छोटे चबूतरे बन जाते हैं जो दूर से सीढ़ियों से मालूम पड़ते हैं और जिन पर पैर रखकर चरनेवाली भेड़ें व बकरी ऊपर चढ़ जाती हैं और नीचे उतर आती हैं। इन्हें मेष पथ कहते हैं।

Sheep Farming (भेड़ चराना) भेड़ें मांस और ऊन के लिए पाली जाती हैं परन्तु दोनों की नस्ल अलग-अलग होती है। मांसवाली भेड का ऊन अच्छा नहीं होता और ऊन वाली भेड़ का मांस अच्छा नहीं होता। भेड़ों के लिये शुष्क प्रदेश जहाँ छोटी-छोटी घास उग आती है अनुकूल पड़ते हैं। सम जलवायु और साधारण वर्षा वाले प्रदेशों में भेड़ें खूब पाई जाती हैं। शीतोष्ण कटिबंध और भूमध्यसागरीय जलवायु में भेड़ें खूब पनपती हैं। भेड़ चराना निम्नलिखित तीन प्रकार की भूमि व प्रदेशों में होता रहता है:—

(१) ऊबड़-खाबड़ भूमि के वे चरागाह जो खेती के लिए बिल्कुल बेकार होते हैं और जहाँ खेती का धंधा नहीं हो सकता।

(२) अर्द्ध शुष्क जलवायु के वे प्रदेश जहाँ किसी प्रकार की फसल नहीं उग सकती और न जहाँ अन्य प्रकार के पशु ही चराये जा सकते हैं। ऊनवाली भेड़ को ठंडी व शुष्क जलवायु चाहिये। तर जलवायु में मांस वाली भेड़ें चराई जाती है।

(३) खेती की भारी परन्तु कम मूल्य की उपज को लाने में खर्चा पड़ता है। इसलिए मंडियों से दूर स्थित प्रदेशों में भेड़ चराने का ही काम किया जाता है। यही कारण है कि दक्षिणी अमरीका, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में भेड़ चराने का धंधा इतना उन्नति कर गया है।

इस प्रकार मोटे तौर पर भेड़ पालने के लिए संसार में दो प्रकार के प्रदेश मिलते हैं— **(१) नये देशों के विस्तृत चरागाह**—दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों की इस कोटि में गिनती है। यहाँ भूमि की अधिकता है और जनसंख्या बहुत कम है। **(२) पुराने देशों के अनुपजाऊ क्षेत्र**—इसके अन्तर्गत ब्रिटेन के पठारी भाग, मध्य स्पेन तथा दक्षिणी-पूर्वी यूरोप सम्मिलित हैं।

भेड़ पालनेवाले घास की तलाश में एक ऋतु में मैदानी भाग में, दूसरी ऋतु में पहाड़ी ढालों पर अपनी भेड़ों को ले जाते हैं। भेड़ पालने में अधिक आदमियों की जरूरत नहीं पड़ती। एक ही आदमी सैकड़ों भेड़ों की अकेले देखरेख कर सकता है। जहाँ बड़े-बड़े बनाये जा सकते हैं और वहाँ तो अधिक भेड़ों की देख-रेख की जा सकती है। चूँकि भेड़ बड़ी शैतान होती है इसलिये इसको हर जगह नहीं जाने दिया जाता। आस्ट्रेलिया में गड़ेरिया दो कुत्तों, एक तम्बू और दो घोड़ों के साथ तीन हजार तक भेड़ों को हफ्तों तक चराते फिरते हैं।

सबसे अच्छा ऊन मेरीनो जाति की भेड़ से मिलता है। उसके बाद दूसरे स्थान पर या द्वितीय श्रेणी का ऊन दोगली नस्ल की भेड़ से प्राप्त किया जाता है। इसका मांस भी अच्छा होता है। तीसरी श्रेणी का ऊन कारपेट ऊन है। यह छोटे रेशे का और मोटा होता है तथा कम्बल, गलीचे आदि बनाने में प्रयोग किया जाता है।

Sheet Erosion (सतह कटाव) जहाँ मिट्टी ऐसी हो जो पानी को अधिक सोख न सके या ढाल पर हो या बिना किसी वनस्पति के हो तो घोर वर्षा होने पर बहता हुआ जल धीरे-धीरे ऊपरी मिट्टी को बहा कर ले जाता है। इसे सतह कटाव कहते हैं। इसके द्वारा ऊपरी मिट्टी की तह की तह बह जाती है और नीचे की आधार चट्टानें बाहर निकल आती हैं। इस प्रकार भूमि खेती के लिए बेकार हो जाती है।

Shingle (शिन्गल) समुद्र के किनारे पर पत्थरों की असंयुक्त राशि को शिन्गल कहते हैं। समुद्र की लहरें कंकड़-पत्थर को घिसघिसाकर व रगड़ कर गोल कर देती हैं और यही समुद्र के किनारे इकट्ठा हो जाते हैं। इस राशि को ही शिन्गल कहते हैं।

Ship Canal (जहाजी नहर) बहुत अधिक चौड़ाई व गहराई की नहर को जिसमें से जहाज आ-जा सके जहाजी नहर कहते हैं। सामान्यतः जहाजी नहरों को इतना गहरा व चौड़ा बनाया जाता है कि बड़े-बडे महासागरीय जहाज तक आसानी से गुजर सकते हैं।

जहाजी नहर का मुख्य उद्देश यात्रा के लिए छोटा से छोटा मार्ग निकालना होता है। इसलिए किसी स्थल डमरूमध्य को बीच से काट कर जहाजी नहर बना देते हैं ताकि दो समुद्रों या महासागरों के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाय। इस प्रकार की जहाजी नहरों से सबसे महत्वपूर्ण स्वेज नहर और पनामा नहर है। स्वेज नहर आन्ध्र महासागर को भूमध्य सागर के जरिये हिन्द महासागर से मिलाती है। पनामा नहर आन्ध्र महासागर को

प्रशांत महासागर से मिलाती है। इनके बनने से यूरोप और भारत तथा आस्ट्रेलिया और अमरीका के पूर्वी तट और एशिया व आस्ट्रेलिया के बीच हजारों मील का अन्तर पड़ गया है। कील नहर भी इसी प्रकार की जहाजी नहर का उदाहरण है जो बाल्टिक सागर को उत्तरी सागर से मिलाती है।

कभी-कभी समुद्र से भीतर की ओर यातायात के लिए भी जहाजी नहर बना दी जाती है ताकि समुद्र से दूर स्थित कोई स्थान समुद्री बन्दरगाह का काम कर सके। मैनचेस्टर जहाजी नहर इसी प्रकार की है।

Shoal (शोल) (१) चट्टान या बालू की श्रेणी जो नदी या समुद्र के जल के भीतर छिपी रहती और जहाजों के लिए खतरनाक होती है उसे शोल कहते हैं।

(२) समुद्र के जल की सतह के समीप तैरती हुई मछलियों के समूह को शोल कहते हैं।

Shooting Star (गिरता हुआ तारा) रात के समय आकाश की तरफ देखने पर कुछ तारे टूट कर गिरते हुये मालूम पड़ते हैं। इन्हें गिरता हुआ तारा कहते हैं। गिरते हुये तारे का वास्तविक तारे से केवल यही सम्बन्ध है कि यह आकाशमण्डल के तारों के बीच चलता हुआ प्रतीत होता है। (देखिये **Meteor**)

Shore Line (तटरेखा) तट रेखा वह सीमा है जहाँ जलमण्डल व स्थलमण्डल मिलते हैं। तट रेखा दो प्रकार की होती है—सपाट और कटी-फटी। बन्दरगाहों के लिए कटी-फटी तटरेखा अच्छी रहती है। तटरेखा भूमि के ऊपर उठाने या जलमग्न होने से बनती है। इस प्रकार तटरेखा के प्रधानतः दो भेद हैं—(१) भूमि के नीचे धँसने से बनी हुई जलमग्न तटरेखा और (२) भूमि के ऊपर उठने से बनी उत्क्षेप तट रेखा।

जलमग्न हुई भूमि की बनावट और बाह्य प्राकृतिक शक्तियों के घात-प्रतिघात से तट रेखा के रूप में अनेक परिवर्त्तन हो जाते हैं। चार मुख्य प्रकार की तटरेखायें निम्नलिखित हैं:—

(१) निमग्न घाटी तट (**Ria Coast**), (२) **Fiords** फियार्ड तट रेखा, (३) अनुतटीय श्रेणी वाली तट रेखा (**Haff coastline**), (४) जलमग्न पर्वतीय प्रदेश की तट रेखा (**Dalmation caastline**)

वास्तव में तट रेखा का प्रारम्भिक रूप तो उत्क्षेप व निमज्जन द्वारा बनता है परन्तु बाद में आवरणक्षय व निक्षेप द्वारा उस के रूप में परिवर्त्तन होता रहता है। (देखिये **Coastline, Ria Coast, Fiords, Haffs, Dalmatian Coastline**)

तटरेखा का आकार व रूप निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है—(१) चट्टानों की बनावट और झुकाव, (२) भूपटल की गतियाँ—उत्क्षेप, निमज्जन, पर्वत निर्माणकारी हलचलें, (३) आवरणक्षय की शक्तियों द्वारा काट-छाँट और निक्षेप, (४) जीव व बनस्पति की क्रिया—जो या तो आवरण क्षय की शक्ति को कम करते हैं या तीव्रतर कर देते हैं और अपने आधिक्य से तटीय निक्षेप में सहायता करते हैं। (५) समुद्र की आवरण क्षयकारी शक्तियों जैसे लहरों, धाराओं और ज्वारभाटा द्वारा आवरणक्षय, अपनयन और निक्षेप।

Shore zone (अनुतटीय प्रदेश) स्थलखंड के तट के समीप उथले पानी के क्षेत्र को अनुतटीय प्रदेश कहते हैं। इसके अन्तर्गत महाद्वीपीय सागर और महाद्वीपीय ढाल सम्मिलित रहता है। (देखिये **Continental Shelf, Continental Slope**)

यह अनुतटीय प्रदेश महाद्वीपों के पहिले के विस्तार को सूचित करता है। कहीं तो यह प्रदेश चौड़ा होता है और कहीं सँकरा। साधारणतया यह देखा जाता है कि जहाँ का तटीय

प्रदेश मैदान होता है वहाँ का अनुतटीय प्रदेश चौड़ा रहता है पर जहाँ तट के समीप पर्वत होते हैं वहाँ का अनुतटीय प्रदेश सँकरा होता है।

इसी अनुतटीय प्रदेश के विस्तार पर लहरों की शक्ति व वेग निर्भर रहता है।

Shott (शॉट) उत्तरी अफरीका में अलजीरिया के पठार पर और एटलस पर्वत के दक्षिण की घाटियों में पाई जाने वाली उथली खारी झील या नमकीन दलदल को शॉट कहते हैं। पठार पर इन शॉट का विस्तार २५० मील तक होता है और इसीलिए इस पठार को शॉट्स पठार कहते हैं। जब ये झीलें सूख जाती हैं तो इन के बेसिन में नमक की पपड़ी जमी रह जाती है और इन पर किसी भी प्रकार की वनस्पति नहीं उगती।

Shoulder (कंध) ऊँची भूमि से नीचे की तरफ को निकली हुई या लटकती हुई छोटी शाखा को कंध कहते हैं। इसका आकार मुँह से बाहर की ओर निकाली हुई जीभ की तरह होता है।

Sial (सिआल) स्थल मण्डल की अपेक्षाकृत हल्की चट्टानों के बोध के लिए सिआल शब्द का प्रयोग होता है। यह पारिभाषिक शब्द सिलिका और अल्यूमिनियम शब्दों के प्रथम वर्गों से मिलकर बना है और इससे स्पष्ट होता है कि परतदार चट्टानों के नीचे का भूपटल इन दो मूल तत्वों से मिलकर बना है। इसमें की अधिकतर चट्टानें ग्रेनाइट है और हमारे महाद्वीप इसी के बने हैं। भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि सिआल के द्वारा विरचित स्थलमण्डल सिमा के ऊपर तैर रहा है। (देखिये **Sima**) सिआल पृथ्वी का सबसे हल्का परत है जो स[illegible] जगह मिला हुआ नहीं है। कई कारणों से यह स्थान-स्थान [illegible] छिन्न-भिन्न हो गया है। पृथ्वी के प्रारम्भिक कल्प से पहिले, पृथ्वी पर कई बार पर्वत निर्माणकारी हलचलें हुईं। प्रत्येक हलचल के समय सिआल के परत में ऊँची-नीची मोड़ें पड़ गयीं और कुछ भाग नीचे गिरकर विलीन हो गये। इस प्रकार सिआल भाग के टूटने और मोड़ पड़ जाने से वर्त्तमान महाद्वीपों का निर्माण हुआ।

Sidereal Day (आवर्त्तन दिवस) जिस कालान्तर में कोई तारा ध्रुव तारे के चारों ओर एक पूरा चक्कर लगा लेता है उसे आर्वतन दिवस कहते हैं। आर्वतन दिवस में २३ घण्टे, ५६ मिनट और ४ सेकण्ड होते हैं या यूँ कहा जा सकता है कि इसकी अवधि उतनी ही होती है जितनी देर में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा कर लेती है। सूर्य दिवस के मध्यम मान अवधि से यह ४ मिनट छोटा होता है। (देखिये **Solar Day**)

Sierra (सिआरा) यह स्पेनी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। स्पेन और स्पेनी अमरीका में ऊबड़-खाबड या कटे-फटे पृष्ठ भाग वाले पर्वतों की लम्बी श्रृंखला को सिआरा कहते हैं। उत्तरी अमरीका के सिआरा निवाडा और सिआरा मादरे इसका अच्छा उदाहरण है।

Sill (सिल) जब पृथ्वी के भीतर से मैग्मा बाहर निकलने का प्रयत्न करता है तो उसका कुछ अंश कभी-कभी परतदार चट्टानों की दो परतों के बीच जाकर फँस जाता है और वहीं फैलकर ठंडा हो जाता है। इस प्रकार एक समाकार चट्टान सी बन जाती है। इस समाकार अग्नि चट्टान को सिल कहते हैं।

सिल की मोटाई कुछ इंच से लेकर कई सौ फीट तक हो सकती है परन्तु इसका समानान्तर विस्तार या लम्बाई सदैव ही मोटाई की अपेक्षा कहीं अधिक रहती है। सिल से ही डाइक चट्टानें बन जाती हैं। (देखिये **Dyke**)

सिल के नीचे दबी हुई मुलायम चट्टान घिसाव या काट-छाँट से बच जाती है और

आवरण क्षय की गति में अन्तर के कारण कभी-कभी श्रेणी या सपाट शिखर का पर्वत बन जाता है। (देखिये Laccolith)

Silt (तलछट) नदी या झील में होनेवाले निक्षेप को तलछट कहते हैं। तलछट के कण बालू की अपेक्षा छोटे होते हैं, चिकनी मिट्टी की अपेक्षा मोटे होते हैं। इसमें धूल के कणों के अलावा प्राणिज व वनस्पति के अवशेषांश भी मिले पाये जाते हैं। तलछट दो प्रकार का होता है—भारी और बड़े आकार के शिलाचूर्ण पहले जमा हो जाते हैं और हल्के तथा छोटे कण कुछ आगे जमा हो जाते हैं। इस प्रकार की छटनी द्वारा एक ही आकार व वजन के कण एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। जल के भीतर जमा होते रहने के कारण इन में कार्बनिक तत्वों का भी मिश्रण हो जाता है।

Sima (सिमा) भूगर्भ के केन्द्र परिमाण मण्डल और सबसे ऊपरी पटल स्थल-मण्डल के बीच में स्थित मध्यवर्ती मण्डल को सिमा कहते हैं। सिमा शब्द सिलिका और मैगनीसियम तत्वों के प्रथम वर्णों के योग से बना है और इस बात को स्पष्ट करता है कि इस भाग में पाई जानेवाली बसाल्ट चट्टानों में सिलिका और मैगनीसियम तत्वों की प्रधानता रहती है। यह भाग सियाल परत से अधिक भारी होती है और जगत के महासागर की तलैटी या पेटे में यही परत है। इसकी मोटाई १७०० मील है। ऊपर से नीचे की ओर चलने पर प्रथम ७०० मील की परत तो बसाल्ट चट्टानों की है और उसके नीचे की एक हजार मील मोटी परत में अति पैठिक चट्टानों की अधिकता है। (देखिये Panysphere)

Simoon (सिमून) सहारा और अरब के रेगिस्तानों में गर्मी और बसन्त ऋतु में चलनेवाली गर्म शुष्क तूफानी हवा को सिमून कहते हैं। यह हवा बवन्डर की तरह चलती है और इसकी गति वायु भँवर की तरह चक्करदार होती है। इसके चलने पर साँस लेना कठिन हो जाता है। इसके साथ बालू के घने बादल उठते रहते हैं और फल यह होता है कि कुछ गज की दूरी तक भी नहीं देखा जा सकता। इसके मार्ग में पड़नेवाले बालुका स्तूपों का आकार बहुत बदल जाता है। इनकी उत्पत्ति उस समय होती है जब सहारा प्रदेश में उच्च भार और भूमध्यसागर पर निम्नभार केन्द्र रहता है। (देखिये Sirraco)

Sink Hole (Swallow Hole) (जल सोखनेवाले गर्त्त) कार्स्ट मैदानों में चूने की चट्टानों की संधों में होकर पानी नीचे पहुँचता है। कारबन डाइ आक्साइड मिल वर्षा के जल में चट्टानों को घुलाकर नष्ट करने की शक्ति होती है। ज्यों-ज्यों चूना घुलने से जोड़ अधिक चौड़े होते जाते हैं त्यों-त्यों पानी की प्रवाह गति भी अधिक तेज होती जाती है और जोड़ के स्थानों पर कुप्पी की शक्ल के चौड़े गड्ढे बन जाते हैं। इन्हें जल सोखनेवाले गर्त कहते हैं।

कहीं-कहीं भूगर्भवर्ती गुफाओं की छत टूट जाने से भी इस प्रकार के गड्ढे बन जाते हैं परन्तु इस प्रकार से बने गर्त की आकृति गोलाकार होती है। इन जल सोखनेवाले गर्तों से होकर वर्षा का जल भूमि के भीतर चला जाता है और वहाँ पर अपना कार्य करता रहता है। इन गर्तों की संख्या और विस्तार में बराबर वृद्धि होती रहती है और धरातल के नीचे खोखला-स्थान या कन्दरायें बन जाती हैं।

इस प्रकार जल सोखनेवाले गर्त कार्स्ट मैदान के स्थल रूप व बनावट की पहिली सीढ़ी है। इन्हीं के सहारे भूगर्भवर्ती जल द्वारा आवरणक्षय की क्रिया का सूत्रपात होता है।

Sinter Deposits (सिटन्र निक्षेप) एक विशेष प्रकार के खनिज निक्षेप को सिन्टर

कहते हैं। कार्बन डाइ आक्साइड मिले हुये जल में कार्बनिक तत्वों से बनी चट्टानों को घुलाने की क्षमता होती है। चूने के अंश वाली चट्टानों को घुलाकर यह जल नष्ट कर देता है और चूने का अंश जल में घुलमिल जाता है। इस प्रकार चूने के घोलवाला जल कुछ विशेष दशाओं में अपने अन्दर घुले हुये चूने को जमा कर देता है। इस प्रकार के निक्षेप को जब खंड रूप में काटा जाता है तो उसमें लहरदार समानान्तर परतें पायी जाती हैं। इस सिन्टर निक्षेप को कार्बनिक सिन्टर निक्षेप या ट्रेवरटाइन (Travertine) कहते हैं। रोम के समीप टिओली नामक स्थान में इस प्रकार का निक्षेप पाया जाता है।

दूसरी प्रकार के सिन्टर निक्षेप गर्म जल स्रोत या गेसर के समीप पाये जाते हैं। इनके भीतर से निकलने वाले गर्म जल में सिलिका खनिज मिला रहता है और जब पानी धड़ाके से निकलता है या उबल कर बाहर निकलता है तो गर्म जल के मुहँ के चारों ओर सिलिका जमा रह जाता है। कभी-कभी इस प्रकार के सिलिका सिन्टर निक्षेप का आकार टीले या चबूतरे जैसे बन जाता है। इस निक्षेप से होकर जल प्रवेश कर सकता है। इस में कई प्रकार के रंग मिले हुये पाये जाते हैं। जब मुँह बन्द हो जाने पर गर्म जल में सिलिका घुलकर आना बन्द हो जाता है तो इस सिन्टर निक्षेप का रंग गायब हो जाता है तथा मौसमी क्षति के प्रभाव से यह सिन्टर का ढेर टूट-फूट कर सफेद खड़िया के चूर्ण की तरह हो जाता है। (देखिये Geysers)

Sirocco (**सिरक्को**) जब कोई चक्रवात भूमध्य सागर पर से होकर गुजरता है और सहारा प्रदेश में अपेक्षाकृत उच्चभार रहता है तो निम्नभार केन्द्र की तरफ एक गर्म शुष्क और धूल से भरी वायु प्रवाहित होने लगती है। सहारा की तरफ से चलने के कारण उत्तरी अफ्रीका, सिसली और दक्षिणी इटली में इसका रुख दक्षिण से रहता है। इस हवा को इटली में सिरक्को और सहारा में सिमून कहते हैं।

अलजीरिया के तट पर पर्वतीय श्रेणी से उतरने के कारण इस वायु की शुष्कता व गर्मी दोनों ही बहुत अधिक बढ़ जाती है। अक्सर यह भूमध्य सागर को पार कर जाती है। चूँकि यह भूमध्यसागर के सबसे चौड़े भाग को पार करती है जहाँ वाष्पीकरण बहुत होता रहता है, इसलिए दक्षिणी इटली तक पहुँचने-पहुँचते यह गर्म और तर हवा बन जाती है। इटली में इन हवाओं के चलने पर मौसम बडा ही तकलीफदेह हो जाता है। इसके चलने पर बड़ी ही सुस्ती आती है और काम करने की इच्छा नहीं होती।

भूमध्य सागर पर पश्चिम से पूर्व को चलनेवाले चक्रवातों के अग्रभाग में सिरक्को हवा चलती है। इसलिये यह हवा सभी मौसम में चलती रहती है। परन्तु इसका महत्व बसन्त ऋतु में विशेष अधिक होता है क्योंकि उस समय चक्रवातों की शक्ति अधिक रहती है और रेगिस्तान में गर्मी शुरू हो चुकी होती है। गर्मी के मौसम में यह हवा कोई नियमित रूप से नहीं चलती।

सिरक्को हवा की विशेषता यह है कि यह एक या दो दिन तक तो चलती है और उसके बाद चक्रवात के पिछले भाग से आने वाली ठंडी उत्तरी वायु इसका स्थान ग्रहण कर लेती है। फिर भी इसके चलने पर वनस्पति सूख जाती है और खड़ी हुई फसलों को विशेष हानि पहुँचती है। यदि यह हवा उन दिनों चलती है जब दक्षिणी इटली और सिसली में अंगूर की बेल और जैतन के वृक्षों में फूल निकलते होते हैं तो सारी फसल की फसल झुलस जाती है और बड़ी हानि होती है।

इस स्थानीय हवा को मिश्र में खामसिन (Khamsin), दक्षिणी-पूर्वी स्पेन में लेवीची (Leveche), ट्यूनिस में चिली (Chili) और लीबिया में गिबली (Gibli)

कहते हैं। सूडान और गिनीतट की हरमाटम (Harmattam) और आस्ट्रेलिया की ब्रिकफील्डर (Brickfielder) भी इसी प्रकार की हवायें हैं।

Skarries (स्कैरीज) शिलाखंडों से लदी हुई लहर जब तट की चट्टानों पर टकराती है तो उसके आघात-प्रतिघात से सँकरी कटान बन जाती है। लहरों द्वारा आवरण क्षय के कारण जल निमग्न इस भूभाग का कुछ हिस्सा मुख्य स्थलखंड से अलग हो जाता है। इस प्रकार से असम्बद्ध या अलग छूटे हुये भूमि खंड को स्कैरीज कहते हैं। इन्हें स्टैक भी कहते हैं।

लहरों की काट-छाँट से तट जैसे-जैसे पीछे को हटता है और उसका अधिकाधिक भाग कट-कट कर निमग्न होता जाता है, भूभाग के कुछ हिस्से (खास तौर पर अन्तरीप के पास के या तट से बाहर को निकले हुये चट्टान खंड) कुछ थोड़े समय के लिये काट-छाँट से बचे रह जाते हैं। नष्ट होने से बचे इन स्थलखंडों का रूप छोटे-छोटे चट्टानी द्वीप की तरह होता है। इन में कभी तो समुद्री गुफायें पायी जाती हैं और कभी-कभी सँकरी कटान या खाड़ियों द्वारा ये एक दूसरे तथा मुख्य तट से अलग हो जाते हैं।

काट-छाँट से पीछे को हटते हुये तट के ये अवशिष्ट भाग या तो तटीय चट्टानों की किसी विशेषता के परिणाम होते हैं या लहरों के अपने सीधे पथ से विचलित हो जाने के कारण छूट कर बचे रह जाते हैं। इनके बनने का कारण चाहे कुछ भी हो परन्तु एक बात नितान्त सत्य है कि इनकी अवधि या जीवन अधिक नहीं होता। ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

यदि तट चूने की चट्टानों का बना हुआ है तो इन स्टैक या स्कैरीज के बनने पर भूगर्भवर्ती जल की करामात सामने आ जाती है। इनमें अनेक कन्दरायें व बड़े-बड़े छेद और गड्डे बने दिखलाई देते हैं।

Skerry (स्केरी) एक छोटा चट्टानी द्वीप जो काट-छाँट द्वारा तट के समीप ही बन जाता है परन्तु शीघ्र ही नष्ट भी हो जाता है। (देखिये Skarries)

Sky (आकाश) वायुमण्डल के ऊपर वितान या चँदोबा-सा खिंचा हुआ मण्डल आकाश कहलाता है। पृथ्वी और वायुमण्डल के ऊपर यह मेहराब की तरह फैला दिखलाई पड़ता है।

इसका रंग नीला दिखलाई पड़ता है और जैसे-जैसे हम शिरोबिन्दु की ओर बढ़ते हैं यह नीलिमा और गहरी होती जाती है। निरीक्षक की ऊँचाई के साथ-साथ भी आकाश का नील वर्ण और गहरा होता चला जाता है।

वास्तव में आकाश कोई मूर्त वस्तु नहीं है। सूर्य की रोशनी जब वायुमण्डल में से होकर गुजरती है तो वायुमण्डल में उपस्थित मोटे धूलकणों के सम्पर्क में आकर यह बिखर जाती है। इस प्रकार बिखरी हुई रोशनी का केवल नीला रंग दिखलाई पड़ता है। यदि आकाश के आरपार देखा जा सकता तो यह सम्भवतः काला दिखलाई पड़ेगा।

Slate (स्लेट) ज्वालामुखी से निकली राख शेल चट्टान जब पृथ्वी के नीचे दब जाती है और उस पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है तो उसका रूप बदल कर स्लेट पत्थर बन जाता है। इस प्रकार स्लेट एक रूपान्तरित चट्टान है।

स्लेट के कण व स्फट बड़े-बड़े होते हैं और यह पत्थर बड़ा ही कठोर होता है। इसकी बनावट बड़ी ही ठोस व घनी होती है। इसको पतली चिकनी परतों में तोड़ा जा सकता है। वास्तव में दबाव के कारण इसकी विभिन्न परतें एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हुई भी समानान्तर तौर पर दरारतल पर अलग की जा सकती हैं।

इनकी विभिन्न परतें कभी तो चमकदार होती हैं और कभी धुँधली। इसी प्रकार उनकी

सतह कभी तो बड़ी चिकनी और कभी बड़ी रूखी या ऊबड़-खाबड़ होती है। जहाँ कहीं इसकी परतों में पिराइट या मैगनेटाइट के स्फट आ जाते हैं वहाँ इसकी परतों की बनावट रँगीली हो जाती है। इसका रंग साधारणतया काला होता है परन्तु कभी-कभी लाल, भूरे और हरे रंग के स्लेट पत्थर भी पाये जाते हैं।

इसका सापेक्षिक घनत्व करीब २.७५ होता है। इस को छत डालने के काम में लाया जाता है।

Sleet (स्लीट) ग्रेट ब्रिटेन में तुषार और वर्षा से मिली-जुली वृष्टि को स्लीट कहते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में हिम के उन टुकड़ों को स्लीट कहा जाता है जो या तो वर्षा की बूँदों के जम जाने से बन जाते हैं या जो तुषारपात के समय बर्फ के पिघलकर दुबारा जमने पर बन जाते हैं। जब तुषारपात होता है तो उसका कुछ अंश पिघल जाता है परन्तु भूमि के धरातल के समीप की वायु की ठंडी परतों में से होकर गुजरने पर यह पिघला हुआ तुषार फिर से जम जाता है।

Slickensides (स्लिकन साइड्स) दरारतल के दोनों ओर की चट्टान को स्लिकन साइड्स कहते हैं। दरारतल के दोनों ओर की चट्टानें भूभाग के ऊपर नीचे खसकने से रगड़ खाकर चिकनी हो जाती हैं। उन पर रगड़ के खरौंच भी पड़ जाते हैं।

Small Circle (छोटा वृत्त) पृथ्वी के धरातल पर खींचा हुआ वह वृत्त जो उसको दो हिस्सों में न बाँटे छोटा वृत्त कहलाता है। इस प्रकार भूमध्यरेखा को छोड़कर अन्य सभी अक्षांश के वृत्त छोटे वृत्त होते हैं। (देखिये Great Circle)

Small-scale Map (लघुमानदण्ड मानचित्र) आवश्यकता के अनुसार मानचित्र बनाने में लघुमानदण्ड या दीर्घ मानदण्ड को अपना सकते हैं। मानदण्ड के चुनाव में निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना पड़ता है—(१) क्षेत्र का विस्तार जिसका मानदण्ड बनाना है, (२) तथ्यों की संख्या व मात्रा जिनको दिखाना है और (३) कागज की लम्बाई-चौड़ाई। लघुमान दण्ड मानचित्र में मीलों को एक इंच के बराबर दिखलाया जाता है। साइकिल व मोटर चलाने से सम्बन्धित मानचित्र में १ मील या दो मील को एक इंच के बराबर दिखलाया जाता है।

मानचित्रावली के मानचित्र तो और भी लघुमानदण्ड पर बनाये जाते हैं। उनमें कुछ मील से लेकर कई सौ मील तक को एक इंच के बराबर दिखलाया जाता है। इस प्रकार लघुमानदण्ड मानचित्र द्वारा केवल सामान्य विवरण या स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। उसमें सूक्ष्म तथ्य दिखलाने की गुंजाइश नहीं रहती।

Smokes (स्मोक्स) अफ्रीका के गिनी तट पर शुष्क मौसम में सुबह और शाम के समय गहरा धुंध छाया रहता है। इसे स्मोक्स कहते हैं। स्मोक्स और कैकिम्बो में कोई विशेष अन्तर नहीं है। (देखिये Cacimbo)

Snow (तुषार) हिमस्फट की वृष्टि को तुषार कहते हैं। तुषार में हिम स्फट बड़े ही कोमल पंख की तरह के होते हैं। कभी-कभी ये हिम स्फट महीन सुई की तरह नुकीले भी हो जाते हैं। ये हिमस्फट या तो अलग-अलग अकेले गिरते हैं या कई हिम स्फट मिलकर तुषार के फुवे बना लेते हैं। जिस समय तुषार गिरता है उस समय ऐसा मालूम होता है जैसे रुई के फुवे गिर रहे हों। तुषार बड़ा हल्का और फूला हुआ रहता है।

वायुमण्डल का तापक्रम हिमांक से नीचे चला जाता है तो उसमें उपस्थित तुषार में परिणत हो जाती है। परंतु अक्सर तुषार के कण पृथ्वी तक पहुँचने के पहिले ही पिघल जाते हैं और फल यह होता है कि जब उच्च पहाड़ों पर तो तुषार गिरता रहता है, निम्न भूमि या

मैदानों में वर्षा होती रहती है। सम्भवत: ऊपरी वायुमण्डल में बहुत से मेघों में तुषारकण ही विद्यमान रहते हैं परन्तु वे भूमि तक इसलिये नहीं आ पाते कि भूमि का तापक्रम अधिक रहता है। इसलिए भूमि पर तुषार उसी समय गिरता है जब धरातल का तापक्रम हिमांक से नीचे चला जाता है।

तुषार की मात्रा को नापने के लिए तुषार को पिघला लिया जाता है और तब वर्षा के जल की मात्रा के रूप में व्यक्त करते हैं। साधारणतया १० इंच या एक फुट तुषार लगभग एक इंच वर्षा के बराबर होता है यद्यपि यह अनुपात तुषार की विशेषता के अनुसार बदलता रहता है।

जिन स्थानों में तुषार गिरता है वहाँ वह अपने ही दवाव से हिम में परिणत होता जाता है। साथ-साथ उसका कुछ भाग पिघल कर फिर जम जाता है।

Snowdrift (तुषार प्रवाह) हवा द्वारा किसी किनारे या ढेर में इकठ्ठा कर दिये गये तुषार को तुषार प्रवाह कहते हैं। हिम प्रवाह के बनने के दो कारण हैं—(१) किसी छायादार स्थान में तुषार का इकट्ठा होते रहना और (२) गिरे हुये तुषार का हवा द्वारा अपनयन।

Snowfield (हिमक्षेत्र) हिम से निरन्तर ढके रहने वाले प्रदेशों को हिमक्षेत्र कहते हैं। चूँकि पर्वत प्रदेशों और अक्षांशों में तापक्रम काफी निम्न रहता है इसलिए हिम क्षेत्र इन्हीं भागों में पाया जाता है। हिम क्षेत्र की सबसे निचली सीमा हिमरेखा होती है। इस हिमक्षेत्र में बारबार तुषारपात होते रहने से तुषार की एक मोटी तह जम जाती है और ऊपर के दबाव से नीचे की तुषार परतें हिम में परिणत हो जाती हैं।

इस हिम क्षेत्र का हिमनदी से बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। वास्तव में हिमनदी का प्रवाह, गति व अस्तित्व हिमक्षेत्र के विस्तार व स्थायित्व पर निर्भर रहता है। इसलिये हिम क्षेत्र को यदि हिमनदी का ऊपरी भाग या स्रोत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

Snowfall (तुषारपात) जब भाप के द्रवीभूत होते समय हवा का तापक्रम ३२° फार्नहट या हिम से कम हो जाता है तो भाप हिमकणों के रूप में प्रकट होती है। जलवायु के अधिक ठंडे होने पर जल वृष्टि के स्थान पर बर्फ गिरने लगती है। इसे तुषारपात कहते हैं।

भारी तुषारपात होने के लिए हवा में काफी नमी होना चाहिये और साथ-साथ हवा का तापक्रम भी कम होना चाहिये। ऐसी दशा ऊँचे पर्वतों, ध्रुवीय प्रदेशों तथा जाड़े के मौसम में शीतोष्ण कटिबंध के भीतरी भागों में होती है।

तुषारपात से दो लाभ हैं—(१) जहाँ तुषारपात होता है तथा भूमि पर तुषारकण बहुत समय तक पड़े रहते हैं वहाँ रात के समय ताप का परिवर्त्तन शीघ्रतापूर्वक नहीं होता। इस लिये उन भागों का तापक्रम बहुत कुछ स्थिर रहता है। (२) हिम धीरे-धीरे पिघलती है, इसलिए वर्षा के जल की तरह तुषारपात द्वारा प्राप्त जल जल्दी नहीं बह सकता। इसी कारण जहाँ तुषारपात होता है वहाँ की भूमि कई फीट की गहराई तक तर हो जाती है।

Snow Gauge (तुषारमापक यन्त्र) तुषारपात से एकत्रित हिम की गहराई नापने के यन्त्र को तुषारमापक यन्त्र कहते हैं। यह यन्त्र वृष्टिमापक यन्त्र की ही तरह का बना होता है। इसमें केवल इस प्रकार की व्यवस्था कर दी जाती है कि तुषारकण इस में जाकर इकटठा होते रहें और बाद में उन्हें पिघला कर नाप लिया जाय। (देखिये Snow and Rain Gauge)

Snow Line (हिम रेखा) जिन स्थानों पर इतना अधिक तुषारपात होता है

कि गर्मी के मौसम में पिघल जाने के बाद भी हिम की काफी मात्रा शेष रह जाती है तो वे स्थान सदैव बर्फ से ढके रहते हैं। इस प्रकार के हिमक्षेत्र की निचली सीमा को हिमरेखा कहते हैं। दूसरे शब्दों में यूँ कह सकते हैं कि हिमरेखा वह कल्पित रेखा है जिससे ऊपर की ओर निरन्तर हिम क्षेत्र बना रहता है। इस रेखा के नीचे जो तुषारपात होता है वह गर्मी के मौसम में पिघल कर नष्ट हो जाता है।

हिमरेखा कोई निश्चित व नियमित रेखा नहीं है क्योंकि हिम क्षेत्र के किनारे की तरफ हिमराशि अनियमित व स्थान-स्थान पर गायब मिलती है यहाँ तक कि और आगे बढ़ने पर यह बिल्कुल ही नहीं दिखलाई पड़ती।

वृष्टि की मात्रा और अक्षांश के अनुसार हिमरेखा की ऊँचाई बदलती रहती है। साधारणतया भूमध्य रेखा से ध्रुवीय प्रदेशों की ओर बढ़ने पर हिम रेखा की ऊँचाई कम होती जाती है। भूमध्य रेखा के ऊपर एण्डीज पर्वतों पर हिमरेखा की ऊँचाई १८००० फीट है। मोटे तौर पर भूमध्यरेखा पर हिमरेखा की ऊँचाई १६००० से २०००० फीट तक होती है। आल्प्स और पिरीनीज पर्वतों में हिमरेखा की ऊँचाई समुद्रतल से ८००० से १०००० फीट है। राकी पर्वतों में हिमरेखा ११००० फीट की ऊँचाई पर पायी जाती है। उत्तरी स्कैन्डिनेविया में हिमरेखा की ऊँचाई ४००० फीट है और ग्रीनलैण्ड में केवल २००० फीट है। उच्च ध्रुवीय प्रदेशों में तो हिमरेखा बिल्कुल समुद्रतल पर होती है। एक ही पर्वत श्रृंखला के विपरीत पार्श्वों पर हिमरेखा की ऊँचाई अलग-अलग होती है। हिमरेखा की ऊँचाई निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है--(१) वृष्टि की मात्रा। जहाँ तुषारपात कम होता है वहाँ हिमरेखा अधिक ऊँचाई पर पाई जावेगी और इसके विपरीत अधिक तुषारपात वाले स्थानों पर तुषार रेखा नीची रहेगी। (२) अक्षांश स्थिति। (३) गर्मी के मौसम का तापक्रम जिस पर तुषार का पिघलकर नष्ट होना निर्भर रहता है। (४) वायु की शुष्कता। हिमक्षेत्र की सतह पर से वाष्पीकरण होता है। इसलिए शुष्क हवाओं के मार्ग में स्थित ढालों व प्रदेशों में हिमरेखा ऊँची रहती है। इसके विपरीत तर हवाओं के प्रदेश में हिम रेखा नीची होगी क्योंकि तर हवाओं में और जलवाष्प ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती। (५) ढाल की दिशा और प्राकृतिक बनावट के अन्तर्गत ढाल का तीव्र या क्रमशः होना, हवाओं के सामने या विमुख दिशा में पड़ना, सूर्य की किरणों के सीधे सामने या पर्वतों व चट्टानों के द्वारा सूर्य की तेज किरणों से छाया में रहना तथा हिम के कारण वायु का ठंडा होना आदि बातें सम्मिलित हैं।

तीव्र ढालों पर तुषारपात की हिमराशि हिमशैल के रूप में नीचे फिसल आती है। इसलिये क्रमशः ढाल पर, जहाँ पिघलने तक अधिकांश तुषारकण जमा रहते हैं, हिम रेखा नीची रहती है और तीव्र ढालों पर ऊँची। इसी भाँति पर्वतों के दक्षिणी ढाल पर हिमरेखा ऊँची रहती है और उत्तरी ढाल पर अपेक्षाकृत नीची। परंतु हिमालय प्रदेश में हिमरेखा दक्षिणी ढालों की अपेक्षा उत्तरी ढालों पर करीब २००० फीट अधिक ऊँची है। इसका कारण यह है कि दक्षिणी ढाल पर उच्च तापक्रम से होनेवाली हानि दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवाओं से होनेवाली वृष्टि की मात्रा के सामने नगण्य है।

Soft Woods (**कोमल लकड़ी के बन**) उत्तरी गोलार्द्ध में शीत शीतोष्ण कटिबंध में पूर्व से पश्चिम तक और अन्य कटिबंधों के उच्च पर्वतीय ढालों पर पाये जाने वाले वनों के वृक्षों से मुलायम लकड़ी प्राप्त होती है। इन्हें कोमल लकड़ी के वन कहते हैं। इन वनों के मुख्य वृक्ष चीड़, स्प्रूस, लार्च, सीडर, फर आदि हैं जिनकी पत्तियाँ नुकीली होती हैं और जो सदैव हरे-भरे रहते हैं। इनसे प्राप्त कोमल लकड़ी की लुग्दी बनाई जाती है और

इन्हीं के सहारे इन प्रदेशों में दियासलाई, कागज और सामान बन्द करके बक्स बनाने का उद्योग उन्नति कर गया है। (देखिये Coniferous Forests)

Soil (मिट्टी) भूमि आवरण की सबसे ऊपरी परत को मिट्टी कहते हैं। मिट्टी भूतल पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों का वह ऊपरी परत है जो मूल चट्टानों तथा वनस्पति अंश के योग से बनता है। इसके कण इतने बारीक, मुलायम और असंगठित होते हैं कि पौधों की जड़ें आसानी से अन्दर प्रवेश करके भोजन व जल प्राप्त करती हैं। खेती के दृष्टिकोण से मिट्टी भूमिआवरण की वह कुछ इंच मोटी परत है जिसमें खेतिहर पौधे उगाये जाते हैं। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि मिट्टी की गहराई केवल कुछ इंच ही होती है। वास्तव में मिट्टी की गहराई एक इंच के भिन्नांश से लेकर कई फीट तक हो सकती है।

साधारण मिट्टी का ९० प्रतिशत शुष्क अंश में अकार्बनिक खनिज तत्व होते हैं जो चट्टानों की टूट-फूट, विखंडन और मौसमी क्षति द्वारा प्राप्त होते हैं। ये खनिज तत्व ही मिट्टी के वास्तविक आधार हैं। परन्तु इसके अलावा मिट्टी में वनस्पति अंश भी मिला रहता है। मिट्टी के कणों की बनावट के बीच के छेदों में तरल व द्रव तत्व भी पाये जाते हैं। इसमें पानी व वायु का अंश भी मौजूद रहता है।

मिट्टी का रंग, बनावट, प्राकृतिक तथा रासायनिक संगठन मूल चट्टान से अक्सर बहुत भिन्न होता है और इसका प्रमुख कारण वाह्य प्राकृतिक शक्तियों—जलवायु वनस्पति का प्रभाव है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मिट्टी की रचना में निम्नलिखित दो बातों का योग रहता है—(१) मूल चट्टान का स्वभाव (२) वनस्पति का प्रभाव। मूल चट्टानों के स्वभाव पर तो उनके कणों की बनावट तथा उनमें उपस्थित खनिज तत्वों का अनुपात निर्भर रहता है। इसके विपरीत जलवायु-वनस्पति के प्रभाव के फलस्वरूप मिट्टी में वनस्पति अंश, जल राशि और वायु की उपस्थिति निर्भर रहती है। और इन सभी बातों के योग पर मिट्टी का सबसे बड़ा गुण उसका उपजाऊपन निर्भर रहता है।

मिट्टी का उपजाऊपन निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहता है—(१) पौधों को भोजन देने की क्षमता खनिज तत्वों और वनस्पति अंश पर निर्भर रहती है। (२) जड़ों और जल के अन्दर प्रवेश करने की गुंजाइश मिट्टी के कणों की बनावट पर आश्रित है—कुछ मिट्टी के कण मोटे और ढीले होते हैं जैसे बालू; कुछ के बहुत महीन व सटे जैसे चिकनी मिट्टी और कुछ के न बहुत महीन और न बहुत मोटे जैसे दोमट। (३) वाह्य शक्तियों के द्वारा अपनयन या स्थानान्तरण का प्रभाव। जल प्रवाहित मिट्टी या काँप सबसे अधिक उपजाऊ होती है। हिम प्रवाहित मिट्टी और वायुप्रवाहित मिट्टी अपेक्षाकृत बहुत कम उपजाऊ होती है।

Soil Creep (मिट्टी का खसकाव) पर्वतीय ढालों पर सतह की मिट्टी और शिलाखंडों का निरन्तर धीरे-धीरे खसकते रहने को मिट्टी का खसकाव कहते हैं। मिट्टी का खसकाव इतना धीरे-धीरे होता है कि देखने से बिल्कुल भी नहीं मालूम पड़ता। इसका मुख्य कारण गुरुत्वाकर्षण है।

शुष्क मौसम में सूर्य की गरमी के कारण मिट्टी चटख जाती है और पहाड़ के ढाल के नीचे की तरफ़ यह दरार या संध बदलती जाती है। जब वर्षा का जल मिट्टी में भर जाता है तो नीचे के ढाल की ओर यह संध फिर बन्द हो जाती है। तब पानी से तर मिट्टी नीचे की ओर खसकने लगती है। और इसका यह खसकाव एक इंच के भिन्नांश से अधिक नहीं होता।

इसी प्रकार का खसकाव उस समय होता है जब मिट्टी दिन में गर्म होने पर फैलती है और

रात में ठंडी होने पर सिकुड़ती है। दिन प्रति दिन ताप प्रत्यावर्त्तन के कारण भूमि आवरण की ऊपरी परत—मिट्टी—नीचे की चट्टानों को छोड़ कर ढीली पड़ जाती है और सम्पूर्ण सतह की सतह धीरे-धीरे नीचे की ओर फिसलने लगती है। नदियों के जल प्रवाह से इसमें सहायता मिलती है और फिसल कर नदियों में जा गिरती है तथा उनके द्वारा समुद्र तक वहाँ ले जाई जाती है। (देखिये Solifluction)

Soil Group (**मिट्टी के भेद**) जिन प्रदेशों की मिट्टी की आन्तरिक विशेषतायें एक सी होती हैं उन्हें एक प्रकार या भेद का कहा जाता है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर पाई जाने वाली मिट्टी के भेद स भाँति है—(१) **टुन्ड्रा प्रदेशीय मिट्टी** नीले भूरे रंग की होती है और इसमें वनस्पति अंश की बहुत कमी रहती है।

(२) **पाडजॉल मिट्टी या वन प्रदेशीय मिट्टी** में चूना और वनस्पति अंश की कमी रहती है। नाइट्रोजन तथा फासफेट भी कम अंश में ही पाये जाते हैं। इसके तीन उपभेद हैं—(अ) **गहरी भूरी मिट्टी** जो बहुत नुकीली पत्ती वाले जंगली प्रदेशों में पायी जाती है। इसमें वनस्पति का अंश बहुत कम होता है। (ब) **भूरी मिट्टी** जो शीतोष्ण प्रदेश के नम भागों में मिलती है और इसमें वनस्पति अंश भी होता है। (स) **लाल पीली मिट्टी या लैटराइट मिट्टी।**

(३) **घास के प्रदेशों की मिट्टी** इसमें वनस्पति का अंश काफी मिलता है। रंग भेद से इस मिट्टा के तीन उपविभाग हैं—(अ) काली मिट्टी, (ब) प्रेरी प्रदेशीय मिट्टी, (स) स्टेपी भूरी मिट्टी। नमें सबसे अधिक वनस्पति अंश काली मिट्टी में होता है और अन्य में क्रमशः घटता जाता है जिससे उनका उपजाऊपन भी घटता जाता है।

(४) **मरुस्थली मिट्टी** में वनस्पति अंश की कमी तो रहती है परन्तु इनमें वर्षा की कमी के कारण खनिज नमकों के बह जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः इसमें खनिज तत्व काफी मौजूद रहते हैं। (देखिये Podzol Soil, Cherrozem Soils)

Soil Series (**मिट्टी का क्रम**) जिस मिट्टी के सतह की बनावट चाहे भिन्न हों परन्तु अन्दर के खंड की परतें समान होती हैं उसे मिट्टी का एक क्रम कहते हैं। एक ही प्रकार की मूल चट्टानों से उत्पन्न मिट्टी एक क्रम में आती है। इस प्रकार मूल चट्टानों के स्वभाव के आधार पर मिट्टी के क्रम अलग-अलग कई हो जाते हैं। साधारणतया मिट्टी के चार क्रम माने जाते हैं—(१) **बलुही मिट्टी** जो सिलिका नामक चट्टानों के टूटने-फूटने पर बनती है और जिसके कण मोटे व ढीले होते हैं। (२) **चीका मिट्टी** शैल नामक मुलायम चट्टान से बनती है। इसके कण बारीक और मिले हुये होते हैं। इसमें चिपचिपापन पाया जाता है और इसमें जल मुश्किल से सोख पाता है। परन्तु सोखा हुआ जल बहुत दिनों तक बना रहता है। (३) **दोमट मिट्टी**—बलही और चीका मिट्टी के मिश्रण से बनती है और इसके कण न बहुत मोटे और न बहुत बारीक होते हैं। इसमें पौधों की जड़ें व जल आसानी से जा सकता है। (४) **लावा से बनी काली मिट्टी** बेसाल्ट नामक चट्टान से बनती है और इसमें पानी रोके रखने की शक्ति होती है।

Soil Type (**मिट्टी के प्रकार**) मिट्टी के प्रकार और मिट्टी के क्रम में कोई खास भेद नहीं है और बहुधा ये दोनों पारिभाषिक शब्द अदल-बदल कर प्रयोग किये जाते हैं। मिट्टी के प्रकार या एक विशेष प्रकार की मिट्टी की विशेषता यह है कि उसमें सतह की बनावट में बहुत अधिक हेर-फेर नहीं होना चाहिये। सतह की बनावट और आन्तरिक खंड की परतों की बनावट यथासम्भव एक ही प्रकार की होनी चाहिये।

इस भाँति मिट्टी के दो मोटे-मोटे प्रकार हैं—(१) **अनाशिष्ट मिट्टी** जो मूल चट्टान से टूट-फूट कर बनने के बाद उसी स्थान पर रहती है जहाँ इसका निर्माण हुआ। इसे मूल स्थानीय मिट्टी भी कहते हैं। पेड़-पौधों व जीव-जन्तुओं के अवशेषांश से प्राप्त सड़ी-गली सामग्री के जमते रहने से भी इसी प्रकार की मिट्टी बन जाती है और उसे मक मिट्टी (Muck soil) कहते हैं।

(२) **स्थानान्तरित मिट्टी** जो जल, वायु और हिमनदी के द्वारा मूल स्थान से ले जाकर दूसरी जगह पहुँचा दी गई हो। इसके तीन उप प्रकार हैं—(१) काँप या जलप्रवाहित मिट्टी, (२) हिम प्रवाहित मिट्टी और (३) वायुप्रवाहित मिट्टी। (देखिय Alluvial soil, Glacial or Till soil, Eolian soil or Loess)

Solano (सोलानो) दक्षिणी-पूर्वी स्पेन और जिब्राल्टर जलसंयोजक में चलने वाली तथा वर्षा करनेवाली पूर्वी वायु को सोलानो कहते हैं। सहारा और अरब मरुस्थलों के किनारों पर स्थित निम्न भार प्रदेश के कारण सोलानो वायु चलने लगती है और भू-मध्य सागर के सँकरे भाग को पार करने के बाद आइबेरियन प्रायद्वीप में गर्म बारीक धूल उड़ा कर ले आती है। (देखिये Levanter)

Solar Constant (स्थायी सूर्य ताप) पृथ्वी को अधिकतर ताप सूर्य प्रकाश से प्राप्त होता है परन्तु सूर्य प्रकाश की अधिकतर शक्ति वायुमण्डल से होकर आने में नष्ट हो जाती है। केवल ५७ प्रतिशत ताप ही पृथ्वी तक पहुँच पाता है।

शून्य में सूर्य द्वारा ताप विकिरण की तीक्ष्णता को जब हम सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी के मध्यममान के आधार पर निकालते हैं तो यह १.९४ कैलोरी प्रति वर्ग सेन्टीमीटर प्रति मिनट के हिसाब से प्राप्त होती है। सूर्यताप विकिरण की यह मात्रा स्थायी होती है, इसलिये इसे स्थायी सूर्यताप कहते हैं।

सूर्य में काले धब्बों की बढ़ती व घटती के अनुसार स्थायी सूर्यताप में २ प्रतिशत तक का हेर-फेर हो जाता है।

Solar Distance (सूर्य की दूरी) पृथ्वी मे सूर्य की औसत दूरी ९३,०००,००० मील है। परन्तु पृथ्वी का ग्रहपथ अण्डाकार है और सूर्य इस पथ का एक केन्द्र है। इसलिए एक समय अपने परिभ्रमण में पृथ्वी सूर्य से अधिक दूर चली जाती है और एक समय इसके निकट आ जाती है। सूर्य की दूरी सबसे कम तो जनवरी में होती है और सबसे अधिक जुलाई में। इस प्रकार जनवरी और जूलाई के महीनों में पृथ्वी की स्थिति से सूर्य की दूरी में ३,०००,००० मील का हेरफेर हो जाता है। उत्तरायण या जूलाई के महीने में सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी ९४५००,००० मील हो जाती है और दक्षिणायन में यह दूरी ९१५००,००० मील हो जाती है। इससे सूर्यताप की मात्रा में अन्तर पड़ जाता है।

प्रति वर्ग क्षेत्रफल इकाई पर सूर्यताप विकिरण की मात्रा केन्द्र से परिधि की ओर चलने पर कम होती जाती है। दक्षिणायन स्थिति की अपेक्षा उत्तरायण स्थिति में सूर्य पृथ्वी से ३.३ गुना अधिक दूर रहता है। इसलिये उत्तरायण स्थिति में ताप विकिरण की तीव्रता ६.६ अंश में कम रहती है। परन्तु फिर भी उत्तरायण स्थिति में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी की ऋतु रहती है। इसका कारण यह है कि इस स्थिति में पृथ्वी की परिभ्रमण गति धीमी पड़ जाती है और इसके फलस्वरूप गर्मी व वसन्त ऋतु १८७ दिन की हो जाती है जब कि दक्षिणायन स्थिात में पहुँचने पर जाड़े और पतझड़ की ऋतु केवल १७८ दिन की होती है। यह ९ दिनों की बढ़ती ताप विकिरण की हानि को पूरा करने में सफल होती है।

Solar Day (सूर्य दिवस) जब सूर्य किसी स्थान के शिरोविन्दु पर पहुँचता है तो वहाँ का स्थानीय समय दोपहर होता है। किसी विशेष स्थान पर निरन्तर विभिन्न समय पर जब सूर्य मध्यान्ह रेखा को पार करता है तो उन के बीच के अन्तर को सूर्य दिवस कहते हैं। वास्तव में पृथ्वी के परिभ्रमण और साथ-साथ आवर्त्तन के कारण ही एक ही स्थान पर सूर्य के शिरोविन्दु पर पहुँचने के समय में अलग-अलग दिन अन्तर हो जाता है और उसी अन्तर को सूर्य दिवस कहते हैं।

सूर्य दिवस की औसत अवधि ८६,४०० सेकन्ड या २४ घण्टे या नागरिक समय के एक दिन के बराबर होती है। पृथ्वी के गृहपथ के अण्डाकार होने के कारण और कक्षातल पर भूमध्य रेखा के झुकाव के कारण सूर्य दिवस की अवधि साल के अलग-अलग महीनों में अलग-अलग होती है। इसीलिए इसकी औसत अवधि को लेते हैं और उसे सूर्य दिवस का मध्यम-मान कहते हैं।

चूँकि एक माने में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर उसी प्रकार घूमती है जैसे कि अपनी धुरी पर, इसलिये प्रत्येक सूर्य दिवस साधारण दिन की अपेक्षा ४ मिनट बड़ा होता है। इस समस्या पर एक दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। अन्य तारागण पृथ्वी से इतनी अधिक दूरी पर हैं कि उनकी स्थिति पर पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण का कोई भी असर नहीं पड़ता। सूर्य अपेक्षाकृत पृथ्वी के अधिक समीप है। इसलिए इसकी दिखलाई पड़ने वाली स्थिति पर पृथ्वी के आवर्त्तन और परिभ्रमण का बड़ा असर पड़ता है। फलतः प्रतिदिन सूर्य कुछ पिछड़ा हुआ मालूम होता है। चूँकि पृथ्वी एक दिन में सूर्य के चारों ओर अपने परिभ्रमण का केवल १/३६५वाँ भाग तय कर पाती है, इसलिए प्रति दिन सूर्य की स्थिति में २४ घंटे का १/३६५वाँ भाग या ४ मिनट का फरक मालूम पड़ने लगता है।

Solar Radiation (सूर्यीय विकिरण) विकिरण द्वारा ताप एक वस्तु से दूसरी वस्तु में बिना किसी भौतिक आधार के प्रवेश करती है। पृथ्वी सूर्य के विकिरण द्वारा ही गरम होती है। वास्तव में सूर्यीय विकिरण से वायुमण्डल के तापक्रम पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता है। हाँ, यह जरूर है कि इस विकिरण द्वारा प्राप्त ताप का आधा अंश वायुमण्डल में से होकर गुजरने पर नष्ट हो जाता है। केवल ५७% प्रतिशत विकिरणताप ही पृथ्वी तल तक पहुँच पाता है और सर्व प्रथम इस विकिरण को पृथ्वी व जल सोखता है। इसके द्वारा पृथ्वी और जलाशय पहले गर्म होते हैं और फिर उनके सम्पर्क से वायुमण्डल गरम होने लगता है।

सूर्यीय ताप विकिरण की मात्रा दिन प्रतिदिन भिन्न होती है। सूर्यीय विकिरण की मात्रा में ५ से १० प्रतिशत का अन्तर हो जाता है और अवधि में यह हेर-फेर ५ से १० दिन तक होता है। इसमें अन्तर पड़ने पर स्थायी सूर्यताप में भी अन्तर पड़ जाता है।

Solar System (सौर मण्डल) प्रत्येक तारे के चारों ओर कुछ ग्रह चक्कर काटते हैं। इस तारे और उसकी परिक्रमा करने वाले ग्रहों को मिला कर एक मण्डल बनता है। ये सभी तारामंडल एक अज्ञात केन्द्र की परिक्रमा किया करते हैं। सूर्य भी एक तारा है और उसके चारों ओर नौ ग्रह परिक्रमा कर रहे हैं। और इन ग्रहों के चारों ओर घूमने वाले उपग्रह तथा पुच्छल तारे, उल्का और टूटनेवाले तारे आदि को मिला कर सौर मण्डल कहते हैं।

सौरमण्डल की उत्पत्ति के बारे में अनेकों धारणायें हैं। परन्तु एक बात पर सभी विद्वान

सहमत हैं कि इस सम्पूर्ण मण्डल की उत्पत्ति एक घूमती हुई नीहारिका से हुई है जो पहिले द्रव दशा में था। (देखिये Nebula)

सौर मण्डल का आदि जनक सूर्य है। समस्त ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। **ग्रहों की परिक्रमा के मार्ग अण्डाकार हैं और सौर मण्डल के विभिन्न ग्रहों का विस्तृत विवरण** निम्नलिखित से स्पष्ट हो जायेगा—

ग्रह	सूर्य से औसत दूरी (मीलों में)	औसत व्यास (मीलों में)	काल (वर्षों में)	उपग्रह
(१) बुध (Mercury)	३६,०००,०००	३०३०	०.२४	०
(२) शुक्र (Venus)	६७,२००,०००	७७००	०.६२	०
(३) पृथ्वी (Earth)	९२,९००,०००	७९१८	१.००	१
(४) मंगल (Mars)	१४१,५००,०००	४२३०	१.८८	२
(५) वृहस्पति (Jupiter)	४८३,२००,०००	८५,५००	११.८६	९
(६) शनि (Saturn)	८८५,९००,०००	७३,०००	२९.४६	९
(७) अरुण (Uranus)	१,७८२,२००,०००	३१,९००	८४.०२	४
(८) वरुण (Neptune)	२,७९१,६००,०००	३४,८००	१६४.७८	१
(९) कुबेर (Pluto)	३,७००,०००,०००	३,६००	२५०.००	१

(देखिये Planets)

सौर मण्डल के प्रकाश और गर्मी का मूल स्रोत सूर्य है। अनुमान है कि सूर्य इतना गर्म है कि यह अभी-अभी युवावस्था में है। यह अपनी धुरी पर घूमा करता है और एक चक्कर २५ दिन में पूरा करता है। इसकी दूरी पृथ्वी से ९३,१००,००० मील है, इसका व्यास ८६६,३०० मील है और इसका भार पृथ्वी से ३३४,५०० गुना अधिक है।

सूर्य और ग्रहों तथा उपग्रहों के [illegible] हैं। यह सम्पूर्ण सौर मण्डल तारा समूह के मध्य एक इकाई के रूप में चलता रहता है और इसकी प्रगति १२ मील प्रति सेकन्ड की रफ्तार से वेगा (Vega) तारे की दिशा में होती रहती है।

सौरमण्डल के ग्रहों की व्यवस्था सिगार के समान ही है। सूर्य के समीप बुध ग्रह होता है। इसके बाद ग्रहों का आकार बड़ा होता जाता है और बीच में वृहस्पति ग्रह सबसे बड़ा है। इसके बाद ग्रह फिर छोटे होने लगते हैं। और अन्तिम ग्रह कुबेर सब से छोटा है। यह सभी ग्रह अपने-अपने परिभ्रमण पथ पर टिके हुये हैं। इसका मुख्य कारण सूर्य का महान आकर्षण है। सूर्य की आकर्षण शक्ति पृथ्वी की शक्ति से २८ गुना अधिक है। ऐसी महान शक्ति के अभाव में सौर मण्डल कभी भी नष्ट हो सकता है।

Solfatara (गन्धकीय धुआँरा) जो ज्वालामुखी करीब-करीब मृत होने को होता है उससे पिघला हुआ लावा और राख इत्यादि निकलना बन्द हो जाता है और केवल कुछ गैसें या भाप ही निकलती रहती हैं। इस प्रकार के ज्वालामुखी को गन्धकीय धुँआरा कहते हैं। इस प्रकार सॉलफटरा ज्वाला मुखी के जीवन की अन्तिम सीढ़ी हैं और ये धुँआरे या Fmnarole से सर्वथा भिन्न है। दोनों में सबसे बड़ा भेद यह है कि सॉलफटरा से निकलने वाली गैसों में गंधक मिले हुये हाइड्रोजन और अन्य गन्धकीय गैसों की प्रधानता रहती है।

Solifluction (**मिट्टी का बहाव**) ढालों पर ऊपर से नीचे की ओर मिट्टी व शिल्प-खंडों का तेजी से खिसकना मिट्टी का बहाव कहलाता है। मिट्टी का बहाव प्रधान रूप से टुंड्रा प्रदेश में होता है। वहाँ मिट्टी की सबसे ऊपरी सतह पानी से भर जाती है और रात में या जाड़े में बरफ के जमने तथा दिन में या गर्मी में बरफ के पिघलने की क्रिया प्रतिक्रिया से मिट्टी ढीली हो जाती है। इस प्रकार वह नीचे की ओर तेजी से बह चलती है।

Solstice (**अयन स्थिति**) पृथ्वी की वे स्थितियाँ जब कि सूर्य कर्क एवं मकर रेखा पर लम्बवत् रहता है, अयन स्थितियाँ कहलाती हैं। इस समय दिन और रात छोटी-बड़ी होती है। अयन स्थितियाँ पृथ्वी के चारों ओर परिभ्रमण की वे दशायें हैं जब सूर्य भूमध्य रेखा के उत्तर या दक्षिण में सबसे अधिक दूर वाले बिन्दु पर लम्बवत् चमकता है। इन स्थितियों में सूर्य का झुकाव एक वार सबसे अधिक और एक बार सबसे कम हो जाता है। और ऐसी दशा में मध्यान्ह के समय सूर्य की ऊँचाई कुछ दिनों तक स्थिर सी मालूम पड़ती है।

अयन स्थितियाँ दो प्रकार की होती है—(१) **उत्तरायण स्थिति**—२१ जन को उत्तरी ध्रुव सूर्य के निकट रहता है और उत्तरी गोलार्द्ध में कर्करेखा पर सूर्य की, किरणें सीधी पड़ती हैं। इस समय गर्मी के मौसम का मध्यकाल होता है और दक्षिणी गोलार्द्ध में जाडा पडता रहता है। उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में रात बड़ी और दिन छोटे होते हैं। २१ जून को वस्तुत: सबसे बड़ा दिन और सब से छोटी रातें उत्तरी गोलार्द्ध में और इसके विपरीत सबसे छोटा दिन और सबसे बड़ी रात दक्षिणी गोलार्द्ध में होती है।

(२) **दक्षिणायन स्थिति**—२२ दिसम्बर को जब कि दक्षिणी ध्रुव सूर्य के निकट और उत्तरी ध्रुव सूर्य से दूर होता है तो उसे [illegible] हैं। इस समय दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी के मौसम का मध्यकाल होता है और उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़ा पड़ता रहता है। इस समय दिन और रात का क्रम उत्तरायण स्थिति के क्रम का बिल्कल उल्टा रहता है। सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत् चमकता रहता है और इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में दिन सबसे छोटे तथा रातें सबसे बड़ी होती हैं।

उत्तरायण में सूर्य १८७ दिन रहता है और इसके विपरीत दक्षिणायन स्थिति की अवधि केवल १७८ दिन ही होता है। दूसरी बात यह है कि उत्तरायण स्थिति में पृथ्वी सूर्य से अधिक दूरी पर स्थित होती है परन्तु दक्षिणायन स्थिति में वह सूर्य के निकट पहुँच जाती है।

Sonenseite (**सॉनस सेट**) यह जर्मन भाषा का पारिभाषिक शब्द है। (देखिये Adret)

Soroche (**सोरोश**) एण्डीज पर्वत माला के पूना प्रदेश में अनुभव की जाने वाली पर्वतीय विकलता को सोरोश कहते हैं। वहाँ के आदि निवासी भी जब तटीय प्रदेश से पूना की तरफ बढ़ते हैं तो उन्हें इस विकलता का अनुभव होने लगता है।

Sotch (**सॉच**) फ्रांस के कुछ भागों में सोखने वाले गर्त (Sinkhole) को सॉच कहते हैं।

Sound (**जल संयोजक**) सँकरे जल मार्ग को जो दो महासागरों को मिलाता है जलसंयोजक कहते हैं। (देखिये Strait)

Sounding (**समुद्र की गहराई नापना**) समुद्र की गहराई जानने व नापने के अनेक तरीके हैं। सबसे सरल तरीका तो यह है कि एक तार में जस्ते का एक भारी टकड़ा बाँधकर समुद्र के जल के भीतर इस प्रकार लटकाया जाता है कि वह उसकी तली तक

पहुँच जाये। जहाज पर से लटकाये हुये इस तार को नाप लेते हैं और उससे समुद्र की गहराई का पता चल जाता है। यद्यपि गहराई नापने की यह विधि सरल जरूर है परन्तु यह बहुत पुरानी है।

गहराई नापने के लिए आजकल एक ध्वनि तरंग को जल के भीतर समुद्र के पेटे तक भेजते हैं। समुद्र के पेटे से टकराकर यह ध्वनि तरंग सतह पर फिर वापिस आ जाती है। इस प्रकार ध्वनि तरंग के भीतर तलैटी तक पहुँचने और उसके प्रतिध्वनित होकर सतह तक वापस लौटने में जितना समय लगता है उसे नोट कर लिया जाता है। ध्वनि की जल में गति व चाल तो निश्चित व ज्ञात होती है। अत: इन दोनों आँकड़ों की सहायता से चाल और ध्वनि-प्रतिध्वनि के बीच के समय समुद्र जल की गहराई को निकाला जा सकता है। (देखिये Fathometer)

Source of the River (नदी का उद्गम) जब किसी झील, झरने या वर्षा जल की धाराओं के मिलने से बने जलाशय से जल एक निश्चित धारा के रूप में बहने लगता है तो उसे नदी कहते हैं और जहाँ से नदी का प्रवाह शुरू होता है उसे उसका उद्गम कहते हैं। नदी का उद्गम तीन प्रकार का होता है—(१) वर्षा जल के वहाव की धारा, (२) भूगर्भवर्ती जल के झरने और (३) झील, दलदल, हिमक्षेत्र तथा हिमनदियाँ।

नदी का उद्गम स्थान ढाल के ऊपरी सिरे पर स्थित होता है और उद्गम के समीप नदी की शक्ति अधिक नहीं होती क्योंकि उसमें जल भी कम रहता है तथा शिलाखंडों की राशि भी बहुत कम मात्रा में मिली रहती है।

जलविभाजक के दोनों ओर विभिन्न नदियों के उद्गम स्थान स्थित होते हैं। नदी अपनी घाटी को उद्गम स्थान की ओर भी काटती जाती है। इससे नदियों के जलविभाजक नष्ट हो जाते हैं और दूसरे ओर की नदी के उद्गम को एक ओर की बड़ी नदी हड़प लेने में सफल होती है। (देखिये Headward Erostion, River Capture)

Sources of Power (चालक शक्ति के साधन) मानव समाज के प्रत्येक प्रकार का उत्पादन कार्य के लिए किसी न किसी प्रकार की शक्ति चाहिये। आरम्भ में मनुष्य स्वयं अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा ही सारे उत्पादन कार्य करता था। धीरे-धीरे उसे पता चला कि पशुओं की शक्ति उससे कहीं अधिक है। अत: पशुओं की सहायता से सारे काम किये जाने लगे। इसके बाद में जलशक्ति और वायशक्ति का पता चला और जल की धाराओं की प्रगति से चक्कियाँ आदि चलाई जाने लगीं। इस प्रकार चालक शक्ति के प्राचीन साधन मनुष्य, पशु, जल और वायु हैं।

आज का युग औद्योगिक प्रगति का युग है और विभिन्न उद्योग-धन्धों, कल-कारखानों में यन्त्रों और मशीनों को चलाने का प्रधान आधार चालक शक्ति ही है। चालक शक्ति के औद्योगिक महत्व के कारण इसे औद्योगिक शक्ति भी कहते हैं। आजकल चालक शक्ति के तीन प्रधान साधन हैं—कोयला, तेल और जल विद्युत। इस प्रकार चालक शक्ति के साधन निम्नलिखित हैं—(१) मनुष्य, (२) पशु, (३) जल, (४) वायु, (५) लकड़ी, (६) कोयला, (७) तेल और (८) जलविद्युत। इनमें से प्रथम पाँच का तो मनुष्य ने तिरस्कार कर दिया है और आज के युग में सारे उद्योग-धंधे आखिरी तीन साधनों के सहारे ही संचालित होते हैं।

चालक शक्ति का महत्व तो इसी से स्पष्ट है कि बिना चालक शक्ति के किसी प्रकार का औद्योगिक विकास असम्भव है। वर्त्तमान युग में संसार के सभी कामों के लिये चालक शक्ति के साधन रीढ़ की हड्डी के समान हैं। इस बात का पता तो उस समय चला जब युद्ध के दौरान में चालक शक्ति—कोयले—के अभाव में इटली की बड़ी हीन दशा हुई।

कोयला न होने की वजह से उसके उद्योग-धन्धे बन्द हो गये और गोला-बारूद न बन सकने से उसकी बन्दूकें न चलाई जा सकीं और इन सब का सामूहिक असर यह हुआ कि उसकी सेनायें शक्तिहीन हो गईं।

सन् १९१३ से लेकर अब तक चालक शक्ति का प्रधान साधन कोयला ही है। वर्त्तमान युग का वाणिज्य व व्यापार कोयले से चलनेवाले जहाजों पर निर्भर रहता है। और वर्त्तमान युग के कल-कारखाने कोयले से उत्पन्न भाप की शक्ति से ही चलते हैं। (देखिये Coalniferous Age)

डीसल इंजनों के आविष्कार के बाद से खनिज तेल का महत्व चालक शक्ति के साधन के रूप में बढ़ रहा है। बड़े-बड़े उद्योग-धंधों को छोड़कर हवाई जहाजों, पनडुब्बी किश्तियों और जहाजों में तेल का ही उपयोग होने लगा है। कोयले की अपेक्षा तेल कम जगह में रक्खा जा सकता है। साथ ही इसके यातायात में भी अधिक कठिनाई नहीं होती है। निकालने में टूट-फूट कर चूर होने से होने वाली क्षति का भी सवाल इसमें नहीं उठता। दूसरी बात यह है कि इसको साफ करने के धंधे से बहुत सी गौण वस्तुयें प्राप्त होती हैं। परन्तु खनिज तेल, कोयला दोनों का ही भंडार एक न एक दिन खतम हो जाने का डर है। इसलिए इनके उपयोग में अधिक नियंत्रण से काम लिया जाता है। इन दोनों साधनों की अपेक्षा जल विद्युत का बड़ा महत्व है और इसके भंडार को क्षीण होने की कोई भी सम्भावना नहीं है। वास्तव में सच तो यह है कि जलविद्युत का वर्त्तमान उत्पादन सम्भावित उत्पादन से कहीं कम है। इसके सहारे कोयला व तेल से हीन क्षेत्रों में भी उद्योग-धन्धे उन्नति कर गये हैं। (देखिये Hydroelectricity)

Southerly Burster (**सदरली बर्सटर**) दक्षिणी और दक्षिणी-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में दक्षिण दिशा से चलने वाली शीत लहर को सदरली बर्सटर कहते हैं। जब कभी कोई निम्नभार केन्द्र कायम हो जाता है तो उसके पीछे यह लहर या वायु प्रवाह अन्टार्कटिक क्षेत्र से आने लगता है।

इस स्थानीय शीत वायु के चलने पर तूफान की जैसी दशायें उत्पन्न हो जाती हैं। बादल गरजते हैं, बिजली कड़कती है और जोर से वर्षा करने वाली आँधियाँ चलती हैं। इन दशाओं के उत्पन्न होने के पहिले आसमान में बादल की चादर सी फैल जाती है। शुरू में यह हवा गर्म होती है और उत्तर से आती है तथा इसे ब्रिक फील्डर कहते हैं परन्तु एकाएक यह प्रचण्ड वायु में बदलकर दक्षिण से चलने लगती है। इसके साथ धूल के बादल उड़ते हुये आते हैं और बादल गरजने के साथ-साथ बिजली खूब तड़कती है।

इसके चलने पर तापक्रम एकाएक गिर जाता है। औसत से २०° फार्नहीट या उससे भी अधिक तापक्रम नीचा हो जाता है। यह वायु बसन्त और गरमी की ऋतु में विशेष रूप से चलती रहती है और न्यू साउथ वेल्स के किनारे वाले भागों में इसका प्रभाव सबसे अधिक रहता है। इसके पीछे आनेवाले विपरीत चक्रवात की प्रगति पर्वत माला द्वारा रुक जाती है जिसके फलस्वरूप वायुभार का ढाल तीव्र हो जाता है और इस दक्षिणी वायु की गति बड़ी भीषण व प्रचण्ड हो उठती है।

इसकी विशेषतायें दक्षिणी अमरीका की वायु से मिलती-जुलती हैं।

Southern Circuit (**दक्षिणीय वृत्तीय पथ**) उत्तरी अमरीका महाद्वीप के आरपार पश्चिम से पूर्व दिशा में चक्रवातों के चलने के सामान्य दक्षिणी पथ को दक्षिणी वृत्तीय पथ कहते हैं। यह मार्ग संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मध्य भाग से होकर गुजरता है। जाड़े के मौसम में चक्रवात इस मार्ग से होकर अधिक चलते हैं। सच तो यह है कि जाड़े के

शुरू होते ही चक्रवात उत्तरी वृत्तीय पथ को छोड़कर दक्षिणी वृत्तीय पथ से होकर महाद्वीप को पार करने लगते हैं और जाड़े के मध्य काल के आते-आते ये चक्रवात मेक्सिको की खाड़ी के किनारों के समीप से होकर चलने लगते हैं। (देखिये Northern Circuit)

Southern Cross (**दक्षिणी चक्र**) दक्षिणी गोलार्द्ध में दिखलाई पड़नेवाले चार तारों के समूह को दक्षिणी चक्र कहते हैं। ये चारों तारे एक चक्र के रूप स्थित होते हैं। और इस चक्र की लम्बीवाली धुरी सदैव दक्षिण दिशा की ओर इशारा करती रहती है। अगर इस धुरी को बढ़ाकर ४½ गुना कर दिया जाय तो इसका अन्तिम बिन्दु दक्षिणी ध्रुव के ठीक ऊपर होगा।

अतएव दक्षिणी गोलार्द्ध में दिशायें जानने के लिए इस तारा समूह को उसी भाँति प्रयोग करते हैं जैसे उत्तरी गोलार्द्ध में ध्रुवीय तारे को।

South Pole (**दक्षिणी ध्रुव**) पृथ्वी की धुरी का दक्षिणी सिरा ध्रुव कहलाता है। इस सिरे पर पृथ्वी चिपटी हुई है और यहाँ से पृथ्वी का हर कोई हिस्सा उत्तर में स्थित रहता है। यहाँ पर ६ महीना रात और ६ महीना दिन रहता है। यहाँ की भौतिक व प्राकृतिक दशायें उत्तरी ध्रुव की दशाओं की ठीक उल्टी होती हैं। (देखिये North Pole)

दक्षिणी ध्रुव का अधिकतर भाग जल है और अधिक शीत के कारण यह भी सदैव बर्फ से ढका रहता है। यहाँ पर अंटार्कटिका महाद्वीप का हिमाच्छादित भूभाग ही पाया जाता है।

Sphere of Influence (**प्रभाव का क्षेत्र**) अक्सर सन्धि के द्वारा कुछ राष्ट्र आपस में यह समझौता कर लेते हैं कि एक विशेष प्रदेश में उनमें से किसी एक या सबको कार्य व्यापार की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। इस प्रकार के प्रदेश को उन राष्ट्रों के प्रभाव का क्षेत्र कहते हैं। कभी-कभी इस पारिभाषिक शब्द को उस देश या प्रदेश के लिए भी प्रयोग करते हैं जहाँ बिना कब्जा किये ही कोई विदेशी राज्य अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है।

मध्य अमरीका के स्वतंत्र राज्य इसी प्रकार के हैं और केवल नाममात्र को स्वतंत्र हैं। वास्तव में वे सभी संयुक्त राष्ट्र अमरीका के प्रभाव क्षेत्र हैं। यह शब्द वर्त्तमान युग में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि एक ओर अमरीका और दूसरे ओर रूस पृथ्वी के अधिक से अधिक भाग को अपने-अपने प्रभाव का क्षेत्र बनाना चाहते हैं—अमरीका धन की सहायता से और रूस कम्युनिस्ट सिद्धान्त द्वारा।

Spinney (**स्पिनी**) वह छोटा वन प्रदेश है जिसमें भूमि घास पतवार व जंगली पौधों से आच्छादित रहती है।

Spit (**स्पिट**) समुद्रतट से बाहर की ओर निकला हुआ बालू व बजरी का टीला या अग्रभाग स्पिट कहलाता है। यह राशि सँकरी होती है और जल के भीतर डूबी हुई रहती है। इसका आकार कभी तो जीभ की तरह और कभी हँसियाकार टीले के समान होता है। कभी-कभी दो स्पिट एक ही बिन्दु पर आ मिलते हैं और एक अर्द्धचन्द्राकार टीला सा बन जाता है। (देखिये Cuspate Foreland)

स्पिट और बालुका तट या भित्त में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि बालुका तट तो तट के समानान्तर बनता है और उसके तथा तट के बीच एक उथली लैगून झील स्थित रहती है। परन्तु स्पिट का एक सिरा भूखंड से मिला रहता है और तट से बाहर की ओर यह इस प्रकार निकला रहता है जैसे मुँह में से जीभ।

खाडियों के मुहाने पर आरपार बहने वाली तटीय धाराओं से स्पिट का निर्माण होता है। वास्तव में कटी हुई बालू, मिट्टी और बजरी की मात्रा इतनी अधिक होती है कि

लहरों द्वारा वहा ले जा कर वे खाड़ी के मुहाने पर एक हँसियाकार टीले रूप में इकट्ठा कर दी जाती है। इनका एक भाग समुद्रतट से जुड़ा रहता है। समुद्र में किसी मोड़वाले स्थान पर जब लहरें विपरीत दिशा से आकर टकराती हैं तो इसी मोड़ पर निक्षेप करती जाती हैं और तब तट का भाग बाहर की तरफ बढ़ने लगता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप स्पिट बन जाते हैं।

Spot Heights (स्थिति ऊँचाई) भूमि की बनावट तथा ऊँचाई-निचाई को दिखलाने के लिए कई तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं। जब पैमाइश के द्वारा निर्धारित भूमि की वास्तविक ऊँचाई को अंकों में मानचित्र पर दिखलाते हैं तो उसे स्थिति ऊँचाई कहते हैं।

इसमें विभिन्न स्थानों की वास्तविक ऊँचाई को पहिले ही पैमाइश द्वारा निश्चित कर लेते हैं और फिर समुद्रतल से इस ऊँचाई को अंकों में ही अंकित कर देते हैं। मानचित्र में पहिले उन स्थानों की स्थिति को बिन्दुओं द्वारा अंकित कर लेते हैं जिनकी ऊँचाई को नापा गया है। इसके बाद उन स्थिति बिन्दुओं के बगल में समुद्रतल से ऊँचाई को मीटर या फीट में अंकित कर देते हैं।

यह गणित विधि है और इससे भूमि की बनावट या बन्धुर का बिल्कुल भी अन्दाज नहीं हो पाता। इसी कारण भूमिति चित्रों में केवल इस विधि का सहारा नहीं लिया जाता है। समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं, रंगीन तहों तथा छायाकरण की विधियों के साथ-साथ बीच-बीच में इस स्थिति ऊँचाई को भी देते जाते हैं। इससे बीच-बीच के प्रदेशों की ऊँचाई का वास्तविक ज्ञान हो जाता है और उन स्थानों की ऊँचाई का भी ज्ञान हो जाता है जो समोच्च भूमिदर्शक रेखाओं के अन्तरस्थल में स्थित होने के कारण छुटे रह जाते हैं।

इस रीति के दो गुण हैं। यदि किसी क्षेत्र के विषय में विस्तृत पैमाइश न की गई हो और केवल कुछ स्थानों की ऊँचाई ही मालूम हो तो इस विधि से उसका भूमिति चित्र तैयार किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि थोड़े समय के उपयोग के लिए जल्दी से ही सामान्य भूमिति चित्र बनाने के लिए यह रीति बड़ी ही अच्छी है।

Sporting Horns (उगलनेवाले छेद) समुद्रतट की चट्टानों पर जब प्रचण्ड लहरें टक्कर मारती हैं तो चट्टान के किसी गड्ढे में से जल या वायु बाहर की तरफ निकल पड़ता है। जहाँ लहर टक्कर मारती है उससे कुछ दूरी पर लहर की प्रचण्डता से दबा हुआ जल या दबाई हुई हवा चट्टानों में बने गड्ढों से बाहर की तरफ तेजी से निकलती है। इस प्रकार के गड्ढों को उगलने वाले छेद कहते हैं।

वास्तव में यदि चट्टान में कोई संध या दरार होती है तो हवा उसमें तेजी से घुसती है और संध के बड़े हो जाने पर हवा के साथ जल भी उस में होकर फौव्वारे की तरह बहने लगता है। इस प्रकार उगलने वाले छेद बन जाते हैं। इन्हें अंग्रेजी में Blow Holes भी कहते हैं।

Spring (स्रोत) भूमि के धरातल से जब जल अपने आप स्वाभाविक रूप से निकलने लगता है तो उसे स्रोत कहते हैं। जब यह जल बूँद-बूँद करके आता है तो इसे जलस्रोत कहते हैं, जब ऐसे स्रोतों का जल अधिक तेजी से निकलता है तो उसे झरना कहते हैं। झरने के जल की मात्रा यदि और भी अधिक हुई तो उसे धारा कहते हैं।

वर्षा होने पर जल का काफी अंश भूमि में सोख जाता है। परन्तु वर्षा का यह जल एक निश्चित गहराई पर पहुँच कर अप्रवेश्य चट्टानों के होने के कारण और अधिक नीचे नहीं जा सकता। अतएव यह इकट्ठा होकर बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ने लगता है और प्रवेश्य

चट्टानों की ऊपरी परत के नीचे किसी प्राकृतिक संध या दरार से स्रोत के रूप में बाहर निकल पड़ता है। इसलिए स्रोत की स्थिति जलरेखा की ऊँचाई, धरातल की बनावट और चट्टानों के स्वभाव पर निर्भर रहती है। इस आधार पर कुछ स्रोत तो ऐसे होते हैं जिनमें लगातार पानी आता रहता है और कुछ ऐसे होते हैं जिनमें वर्षाकाल तथा उसके कुछ समय बाद तक तो जल आता रहता है परन्तु शुष्क मौसम में भूमिगत जल के कम हो जाने से उनमें जलप्रवाह बन्द हो जाता है और वे सूखे पड़ जाते हैं। (देखिये **Intermittent Spring**)

वास्तव में स्रोत निम्नलिखित तीन दशाओं में बन जाते हैं—(१) जब चट्टानों की बनावट व स्वभाव इस प्रकार का हो कि ऊपर की ओर प्रवेश्य चट्टानें रहें और उनके नीचे अप्रवेश्य चट्टानें। ऐसी दशा में वर्षा का जल ऊपर की चट्टानों में से होकर अप्रवेश्य चट्टानों की सतह पर पहुँचता है और वहीं पर घूमता-घूमता अन्त में किसी संध या दरार से बाहर निकल पड़ता है। (२) जब किसी घाटी या निम्न मैदानी प्रदेश में धरातल करीब-करीब के प्रदेश की जलरेखा से नीचा होता है तो भी स्रोत बन जाते हैं। कभी-कभी चट्टानों की संधों व दरारों से होता हुआ वर्षा का जो जल अन्दर पहुँच जाता है वह फिर प्रवेश्य करनेवाले क्षेत्र से कम ऊँचाई वाले प्रदेश में अपने आप ही स्रोत के रूप में बह निकलता है।

परंतु इनके अलावा कुछ स्रोत में जल काफी गहराई से आता है जैसे पाताल फोड़ कुओं में। अधिक गहराई से आने के कारण इसका जल गरम व खनिजपूर्ण होता है। (देखिये **Geyser, Hot Spring, Mineral Spring**)

स्रोत का बड़ा महत्व है। बहुत से स्रोतों से नदियों को जल प्राप्त होता है। बहुत से तालाब व झीलें भी स्रोत के जल पर ही आश्रित रहते हैं। इनके जल में कभी-कभी औषधि के गुण पाये जाते हैं और इनके आसपास स्वास्थ्यवर्धक केन्द्र बन जाते हैं।

Spring Tides (दीर्घ ज्वार) ज्वार-भाटे के उत्पन्न होने में चन्द्रमा की ही आकर्षण शक्ति काम करती है परन्तु सूर्य की आकर्षणशक्ति ज्वारभाटे के वेग पर प्रभाव डालती है। जब सूर्य का आकर्षण जिस दिशा में चन्द्रमा का आकर्षण होता है, उसी दिशा में होता है तो ज्वार बहुत ऊँचा होता है। इसे दीर्घ ज्वार कहते हैं। अमावस्या के बाद दुइज के दिन और पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी तीनों एक ही सीधी रेखा में होते हैं। अतः इन तीनों में सूर्य और चन्द्रमा की संयुक्त आकर्षण शक्ति पृथ्वी पर प्रभाव डालती है। फलस्वरूप इन दोनों तिथियों को दीर्घ ज्वार आता है जो अन्य दिनों के ज्वार की अपेक्षा अधिक ऊँचा होता है।

इस प्रकार प्रत्येक महीने में दो बार दीर्घ ज्वार आता है और उसके साथ ही भाटा भी अन्य दिनों की अपेक्षा बहुत नीचा होता है।

Spur (पर्वत शाखा) जब उच्च भूमि से नीचे की ओर कोई चट्टान खंड बाहर को निकला हुआ रहता है तो उसे पर्वत शाखा कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—(१) छोटी पर्वत शाखायें जिन्हें कंध या बट्रेस कहते हैं और (२) चौड़े तीव्र ढाल वाली शाखायें जिन्हें ब्लफ (**Bluff**) कहते हैं। इनके अलावा घुमावदार नदी के मार्ग में जो पर्वतशाखायें होती हैं उन्हें फँसावदार पर्वत शाखायें कहते हैं। (देखिये **Interlocking Spurs**)

किसी मानचित्र पर पर्वतशाखा को दिखलाने वाली समोच्च भूमिदर्शक रेखायें मुख्य पर्वत से बाहर को निकलती हुई होती हैं।

Squall (तूफान) वह प्रचण्ड वायु है जो एक दम से उत्पन्न होती है और कुछ

मिनट तक चलने के बाद एकाएक खतम हो जाती है । तूफान की कोई निश्चित दिशा नहीं होती । कभी तो यह एक दिशा से चलती है और कभी दूसरी दिशा से । तूफान के चलने के समय जरा-जरा सी देर के बाद हवा की गति बदलती जाती है । (देखिये Line Squall)

Square Root Scales (वर्गमूल मानदण्ड) कभी-कभी भौगोलिक मानचित्रों में कुछ वस्तुओं या तथ्यों की मात्राओं के वितरण को दिखलाने के वास्ते वृत्ताकार रेखाचित्रों का प्रयोग करते हैं। इन्हें पाइग्राफ (Pie Graph) भी कहते हैं। इनमें वृत्त का क्षेत्रफल उन मात्राओं के अनुपात में होता है जिन्हें उनके द्वारा दिखलाया जाता है। वृत्त का क्षेत्रफल बराबर होता है $= \pi r^2$ के। चूँकि π तो सदैव निश्चित रहती है इसलिए यह स्पष्ट है कि वृत्त का अर्द्ध व्यास या r बराबर होगा दिखलाई जाने वाली मात्रा के वर्गमूल के । इसलिए प्रत्येक वृत्त को बनाने के पहिले विभिन्न तथ्यों, आँकड़ों और मात्राओं का वर्गमूल निकालना होगा ताकि इस प्रकार प्राप्त अर्द्धव्यास से वृत्त खींचे जा सकें ।

सुविधा के लिए इस प्रकार के मानचित्र के नीचे एक रेखांकित मानदण्ड बना दिया जाता है जिस पर विभिन्न वृत्तों के अर्द्ध व्यास को नापा जा सकता है । इसे वर्गमूल मानदण्ड कहते हैं ।

Stack (स्टैक) तटरेखा के समीप चट्टानी छोटे द्वीप या स्तम्भ को स्टैक कहते हैं। लहरों के आवरणक्षय द्वारा यह मुख्य तट से अलग कर दिया जाता है ।
(देखिये Ikarries)

Stage (अवस्था) प्रत्येक स्थलरूप का विकास होता है और शुरू से अन्त तक होने वाली विकास की विभिन्न स्थितियों व दशाओं को उनकी अवस्था कहते हैं ।

प्रत्येक प्रकार के स्थलरूप की तीन अवस्थायें होती हैं—(१) नवीन अवस्था जब बाह्य शक्तियों का कार्य शुरू होता रहता है, (२) मध्य अवस्था जब स्थल रूप पर बाह्य शक्तियों का प्रभाव काफी बढ़ चुका होता है और (३) अन्तिम अवस्था या जीर्णावस्था जब स्थलरूप घिसघिसाकर बराबर हो चुका होता है और उसमें अधिक काट-छाँट की गुंजाइश ही नहीं होती है । (देखिये Evolutional Cycle, Initial Form, Sequent Form, Ultimate Form)

किसी स्थल रूप की अवस्था व विकास की स्थिति निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है—(१) चट्टानों का स्वभाव, क्रम और बनावट, (२) बाह्य शक्तियों की प्रगति व स्वभाव और (३) मौसमी क्षति की तीव्रता । इन तीनों ही में सर्वप्रथम बात का सब से अधिक महत्व है—इसके अन्तर्गत चार बातें ली जाती हैं—(अ) चट्टानों का स्वभाव–कठोर, मुलायम या घुलनशील है, (ब) चट्टानों के झुकाव का कोण व दिशा, (स) चट्टानों का रचनाक्रम व्यवस्था कठोर व मुलायम चट्टानें समानान्तर रूप से एक के ऊपर दूसरी या लम्बरूप से एक दूसरे के बगल में या आड़ी-तिरछी परतों में बिछी हुई है । (द) कमजोरी के तल की स्थिति—चट्टानों में संधें व दरारें किस प्रकार और किस दशा में पायी जाती हैं ।

Stalactite (स्टैलेक्टाइट) छत से या ऊपर से नीचे की ओर लटकते हुये खनिज तत्व या हिम के स्तम्भ को स्लेटेक्टाइट कहते हैं । हिम स्तम्भ को छोड़कर इस प्रकार के स्थल रूप का सर्वोच्च उदाहरण चूने की चट्टानों से बने मैदान में पाया जाता है । वहाँ पर भूगर्भवर्ती कंदराओं की छटा से लटकता हुआ चूने का पाषाणीय स्तम्भ बन जाता है ।

कारबन डाइ आक्साइड गैस से मिला हुआ वर्षा का जल जब चूने या खड़ियामिट्टी की

चट्टानों से बने भूभाग में प्रवेश करता है तो चट्टानों के चूना और मैगनीशियम को घुला देता है। इस प्रकार इन खनिज तत्वों से युक्त जल धरातल से नीचे की ओर चट्टानों से घिस-घिस कर भूगर्भवर्ती कन्दराओं की छत तक पहुँच जाता है और फिर छत की संधों से बूँद-बूँद करके टपकता है।

जितनी देर तक बूँद छत से चिपकी हुई लटकी रहती है उसका कुछ अंश भाप बन कर उड़ जाता है और मिले हुये चूने का कुछ भाग छत से चिपका रह जाता है। दूसरी बूँद भी इस प्रकार से कुछ चूने का भाग छोड़कर नीचे गिर जाती है। इस प्रकार प्रत्येक बूँद के द्वारा कुछ न कुछ चूना इकट्ठा होते रहने से कालांतर में एक खम्भा सा लटकता हुआ रह जाता है। निक्षेप धीरे-धीरे तो जरूर होता है परन्तु इससे खम्भा निरन्तर नीचे की ओर बढ़ता जाता है और जल इसके इधर-उधर से बहकर इसके निम्नतम अग्रभाग में आकर लटकने लगता है।

चूँकि वाष्पीकरण बूँद के किनारों और बीच के केन्द्र में सबसे अधिक तेजी से होता रहता है, इसलिये प्रत्येक बूँद के द्वारा छोड़ा गया चूने का निक्षेप कुण्डलीकार या छोटे-छोटे सफेद छल्लों के रूप में होता है। प्रत्येक छल्लों के किनारे पर तो पानी का कुछ अंश चिपका रहता है और तब भाप बन कर उड़ता है परंतु छल्लों के बीच से पानी की बूँदें धीरे-धीरे टपकती रहती हैं इसलिये स्टेलेक्टाइट का स्तम्भ रूप छल्लेदार होता है और छत के करीब काफी मोटा तथा नीचे की ओर बराबर पतला होता जाता है यहाँ तक कि इसका सब से निचला किनारा बड़ा ही नुकीला होता है।
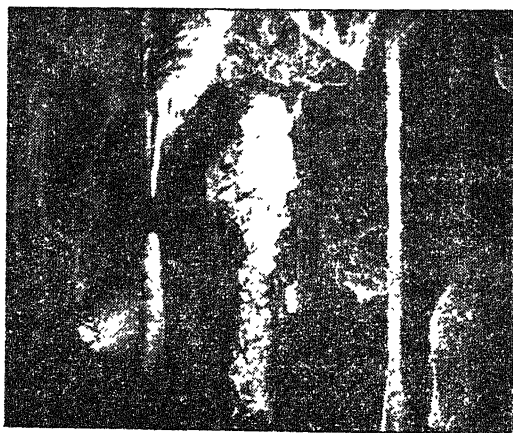
स्टेलेक्टाइट

स्टेलेक्टाइट समकेन्द्र वृत्ताकार परतों का बना होता है और विभिन्न परतों की मोटाई करीब-करीब एकसी होती है और इस स्तम्भ की धुरी पर से इन छल्लों को बराबर के अन्तर पर तोड़ कर अलग किया जा सकता है।

Stalagmite (स्टेलेग्माइट) चूने की चट्टानों या खड़िया मिट्टी से बने हुये प्रदेशों में चूने से मिला हुआ जल भूगर्भवर्ती कन्दराओं की छत से बूँद-बूँद कर टपकता है। यद्यपि इन बूँदों का मिला हुआ चूना कुछ अंश में तो कन्दरा की छत में ही लगा रह जाता है परन्तु नीचे गिरी हुई बूँदों का जाल जब भाप बन कर उड़ जाता है तो चूने का एक पिण्ड कन्दरातल पर भी बन जाता है। इसे स्टेलेग्माइट कहते हैं और यह उसी प्रकार स्तम्भ रूप में ऊपर की ओर उठने लगता है जैसे छत से नीचे की ओर स्टेलेक्टाइट।

साधारणतया स्टेलेग्माइट स्टेलेक्टाइट की अपेक्षा छोटा व मोटा होता है। इसका रूप शंकु के समान होता है। अक्सर स्टेलेक्टाइट से टपकते हुये पानी से ठीक उसके नीचे ही स्टेले-ग्माइट का निर्माण हो जाता है। कभी-कभी छत से लटकने वाले और भूमि से ऊँचे उठते

हुये, दोनों पिण्ड, अधिक समीप आ जाने से मुड़ जाते हैं और एक कन्दरा स्तम्भ बन जाता है जो कन्दरातल से छत तक बराबर उठा रहता है। इस प्रकार का कन्दरा स्तम्भ ऊपर या नीचे को मोटा तथा बीच में पतला होता जाता है।

कंदरा के तल पर और दीवारों पर चूना मिले हुये पानी के रिसने से बनी चूने की पपड़ी को भी स्टेलेग्नाइट कहते हैं। यदि कन्दरा ऊँची हुई तो ऊपर से गिरते हुये पानी की बूँदें कन्दरा तल पर गिरने के बाद दूर-दूर तक फैल जाती हैं। ऐसी दशा में बननेवाला स्टेलेग्नाइट अपेक्षाकृत अधिक मोटा व भद्दा होता है।

स्टेलेग्नाइट जब तल से छत की ओर उठता है तो इसके शिखर पर ज्वालामुखी मुख की तरह का गड्ढा बन जाता है। और इस प्रकार का स्टेलेग्नाइट जब ऊपर से लटकते हुये स्टेलेक्टाइट से मिल जाता है तो इनका आकार किसी बाजे की नली के समान हो जाता है। इस पर यदि किसी डंडे से चोट की जाय तो स्पष्ट ध्वनि निकलती है।

इनके अलावा ये पिण्ड और भी कई रूप के होते हैं और देखने में बड़े ही विचित्र मालूम पड़ते हैं। कभी-कभी एक स्टेलेग्नाइट अपने पड़ोस के अन्य स्टेलेग्नाइट से जुड़ जाता है और बड़ी अजीब व सुन्दर आकृत के पर्दे जैसे लटकते हुये मालूम पड़ने लगते हैं।

न्यू मेक्सिको के कार्ल्सबाद नामक स्थान की कन्दराओं में भूमि से उठता हुआ एक पिण्ड ५० फीट ऊँचा है। उसका व्यास धरातल के समीप १५ फीट से भी अधिक है। (देखिये **Stalactite**)

Standard Time (प्रामाणिक समय) प्रत्येक स्थान पर अपने देशान्तर के अनुसार जो समय होता है उसे वहाँ का स्थानीय समय कहते हैं। परन्तु यदि देश के प्रत्येक शहर या ग्राम का समय अपना-अपना अर्थात् एक-दूसरे से भिन्न हो तो दैनिक कार्यक्रम में बड़ी असुविधा होती है। ऐसी दशा में भ्रमण करने वाले लोगों को अपनी घड़ी जगह-जगह ठीक करनी पड़ेगी। इससे रेल, तार आदि कार्यों में बाधा उपस्थित हो जाने का डर रहता है। अतएव प्रत्येक देश में एक प्रामाणिक देशान्तर मान ली जाती है और उसका स्थानीय समय ही देश भर का प्रामाणिक समय माना जाता है। ग्रीनविच का स्थानीय समय सारे ब्रिटेन में प्रामाणिक समय माना जाता है। भारत में ८८½ पूर्वी देशान्तर का समय ही प्रामाणिक माना जाता है।

ग्रीनविच माध्यमिक समय जो ग्रेट ब्रिटेन का प्रामाणिक समय है वही संसार के विभिन्न क्षेत्रों के प्रामाणिक समय का आधार है। साधारणतया प्रामाणिक देशान्तरों को इस प्रकार चुना जाता है कि वे ग्रीनविच के देशान्तर से १५° या ७½° भाज्य संख्याओं का अन्तर रहे। इसका उद्देश्य यह होता है कि विभिन्न प्रदेशों के प्रामाणिक समय के बीच निश्चित व पूरे घंटों तथा आध घण्टों का फरक रहे।

इस प्रकार समस्त भूमण्डल को २४ कालक्षेत्रों में बाँट दिया गया है। प्रत्येक क्षेत्र में एक ही प्रामाणिक समय रहता है। प्रत्येक कालक्षेत्र पश्चिम से पूर्व तक १५ देशान्तरों में फैला रहता है। प्रत्येक काल क्षेत्र का विस्तार प्रामाणिक देशान्तर के दोनों ओर पूर्व और पश्चिम में ७ १/२° तक रहता है। एक कालक्षेत्र के भीतर सभी स्थान उसी प्रामाणिक समय को मानते हैं।

इन काल क्षेत्रों में एक-एक घण्टे का अन्तर रहता है। गोले में ३६० अंश होते हैं। इसी लिए प्रत्येक कालक्षेत्र में १५ अंश देशान्तर होते हैं। पश्चिमी यूरोप में ग्रीनविच के देशान्तर को प्रामाणिक माना जाता है और ग्रीनविच माध्यमिक समय ही वहाँ का प्रामाणिक समय होता है। इसके अलावा यूरोप महाद्वीप में दो और प्रामाणिक समय हैं—मध्य यूरोपीय

प्रामाणिक समय और पूर्वी यूरोपीय प्रामाणिक समय । इन दोनों क्षेत्रों में ग्रीनविच के समय में एक-एक घंटे का अन्तर कर दिया गया है ।

जिन देशों में देशान्तर विस्तार अधिक होता है वहाँ पर देश को कई काल क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है । कनाडा के लोगों ने अपने देश को ५ क्षेत्रों में बाँटा है और उनमें ६०°, ७५°, ९०°, १०५° और १२०° पश्चिमी देशान्तर रेखाओं का समय ही प्रामाणिक समय माना जाता है । कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में कालक्षेत्रों को अटलांटिक, पूर्वी, मध्यवर्त्ती, पर्वतीय और प्रशान्त समय कहते हैं । ये सभी कालक्षेत्र एक-दूसरे से १-१ घंटे का अन्तर रखते हैं ।

प्रामाणिक समय और कालक्षेत्र के द्वारा विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले स्थानीय समय से उत्पन्न अवस्था नहीं होने पाती और दूसरे देश की केन्द्रीय बेधशाला के स्थानीय समय को राष्ट्र भर में अपनाने की भी आवश्यकता नहीं रहती ।

Standard Parallel (प्रामाणिक समानान्तर) शंक्वाकार अंकन में शंकु ग्लोब को जिस अक्षांश रेखा पर स्पर्श करता है उसे प्रामाणिक सामानान्र कहते हैं क्योंकि यह ग्लोब की वास्तविक रेखा से बिल्कुल मिलती है और इस पर मानदण्ड भी बिल्कुल यथार्थ होता है ।

प्रामाणिक समानान्तर का शक्वांकार अंकन में विशेष महत्व होता है । यदि प्रामाणिक समानान्तर ध्रुव के समीप होती है तो शंकु का ऊपरी शिखर इसके समीप होगा और इसलिये शंकु के शिखर का कोण बहुत फैल जायेगा । ध्रुव पर १८०° का कोण बन जायेगा । इसके विपरीत यदि प्रामाणिक समानान्तर भूमध्य रेखा के समीप हुई तो शंकु का शिखर बहुत अधिक दूरी पर होगा और शंकु के पार्श्व पृथ्वी की धुरी के समानान्तर हो जायेगा ।

प्रामाणिक समानान्तर को बेलनाकार और जेनीथल अंकन में भी प्रयोग करते हैं । परन्तु शंकु के खोलने पर प्रामाणिक समानान्तर वृत्तखण्ड सा बन जाती है । कभी-कभी कछ शंक्वाकार अंकन में दो प्रामाणिक समानान्तर रखते हैं ।

Statistical Diagram (आँकड़े सम्बन्धी रेखाचित्र) जब किसी भौगोलिक या आर्थिक तथ्य के आँकड़ों को कुछ बहुत ही अमूर्त्त तथा सांकेतिक रूप में व्यवत करते हैं तो उस प्रकार के रेखाचित्र को आँकड़े सम्बन्धी रेखाचित्र कहते हैं । ये रेखाचित्र दो प्रकार के होते हैं—(१) एक तो वे जिन में किसी वस्तु के दैनिक मासिक या वार्षिक उत्पादन के आँकडे मात्र दिखलायें जाते हैं और (२) दूसरे वे जिनमें किसी स्थान की स्थिति, बनावट आदि सम्बंधी तथ्यों को दिखलाया जाता है । इन दूसरे प्रकार के रेखाचित्रों को आकृति चित्र भी कहते हैं। इन में किसी विशेष स्थान पर किसी विशेष वस्तु के उत्पादन के आँकड़ों को दिया जाता है ।

आँकड़े सम्बन्धी रेखाचित्र बनाने में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना पड़ता है :— (१) उद्देश्य, (२) तरीका और (३) यथार्थता का अंश । आँकड़ों द्वारा सामान्य सूचना दी जा सकती है या तुलनात्मक विवेचन किया जा सकता है । यथार्थता का अंश मानदण्ड और अधिकतम तथा न्यूनतम आँकड़ों पर निर्भर रहता है । और इन दोनों बातों पर रेखाचित्र बनाने की रीति निर्भर रहती है—रेखाचित्र कई प्रकार से बनाये जाते हैं ।

(१) स्तम्भ रेखाचित्र (Bar Diagrams) सबसे सरल तरीका तो आँकड़ों को स्तम्भ द्वारा व्यक्त करना है । स्तम्भ रेखाचित्र की लम्बाई मात्रा के अनुपात में ही होती है । और ये स्तम्भ चित्र लम्बरूप अथवा समागार हो सकते हैं । स्तम्भ चित्र कभी तो एक ही प्रकार के आँकड़ों को व्यक्त करते हैं और कभी इनके जैसा विभाग करके उत्पादन के साथ-साथ वितरण को भी व्यक्त कर देते हैं ।

(२) ब्लाक चित्र (Blocks) वे होते हैं जिनमें चतुर्भुजाकार, बेलनाकार शंक्वाकार अथवा अण्डाकार रेखाचित्र द्वारा आँकड़ों को व्यक्त करते हैं। चतुर्भुजाकार या समचतुर्भुजाकार रेखाचित्रों की लम्बाई-चौड़ाई के गुणनफल या क्षेत्रफल को आँकड़ों के अनुपात में बनाते हैं। इसके विपरीत बेलनाकार, शक्वांकार और अण्डाकार रेखाचित्रों में लम्बाई-चौड़ाई तथा गहराई के गुणनफल द्वारा उनके आयतन को आँकड़ों के अनुपात में बनाते हैं। ये ब्लाक चित्र या तो अकेले होते हैं या एक के ऊपर दूसरे रक्खे हुये होते हैं।

(३) घनराशि चित्र (Block piling) में इकाई घनत्व के रेखाचित्रों को एक-दूसरे के ऊपर इस प्रकार रखते हैं कि उनकी चौड़ाई, लम्बाई व ऊँचाई स्पष्ट रहे और उनसे आँकड़ों का ज्ञान हो जाय। यह देखने में भी अच्छा मालूम पड़ता है और इन से आँकड़ों का अध्ययन भी अपेक्षाकृत सरल होता है।

(४) वृत्ताकार चित्र (Wheel Diagram) को पहिये के रेखाचित्र भी कहते हैं। इसमें वृत्त या पहिये के क्षेत्रफल को अंकित मात्रा या संख्या के अनुपात में बनाते हैं। वितरण मानचित्रों के लिये यह तरीका बहुत ही उपयुक्त है क्योंकि इसमें कम जगह घिरती है।

(५) आकृति चित्र (Pictorial Diagram) इसमें चित्रवत् संकेतों जैसे बोरे, गाँठें, तश्तरियाँ, तालाब आदि द्वारा आँकड़ों को व्यक्त करते हैं।

(६) तारक रेखाचित्र (Star Diagram) में तारे की किरणों की भाँति एक केन्द्र से रेखायें खींची जाती हैं। प्रत्येक रेखा की लम्बाई प्रदर्शित मात्रा या संख्या के अनुपात में होती है। हवा की गति व दिशा सम्बन्धी आँकड़ों को दिखलाने में इसी रीति को अपनाया जाता है।

आँकड़े सम्बन्धी रेखाचित्रों के अनेक गुण व लाभ हैं—(१) बहुत से तथ्यों का केवल एक नजर डाल कर ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। (२) इनके द्वारा तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। (३) ये ज्ञान को चित्रवत् प्रस्तुत करते हैं और इनसे अध्ययन बड़ा ही रोचक हो जाता है। (४) इनको आसानी से बनाया जा सकता है।

Statistics (आँकड़े) किसी विशेष तथ्य, तत्व, वस्तु अथवा पदार्थ के उत्पादन तथा वितरण से सम्बन्धित बातों को आँकड़े कहते हैं। संसार की प्रत्येक विद्या के कुछ सिद्धान्त होते हैं और इन सिद्धान्तों की पुष्टि उनसे सम्बन्धित आँकड़ों से होती है। आँकड़े कई प्रकार के होते हैं—(१) भौतिक आँकड़े जो तापक्रम, वायुभार, जीव-जन्तु, वनस्पति आदि से सम्बन्ध रखते हैं।

(२) आर्थिक आँकडे जो खेतिहर, वन प्रदेशीय, औद्योगिक उत्पादन से सम्बन्धित होते हैं। इसके अन्तर्गत विविध प्रकार के व्यवसाय में लगे हुये क्षेत्रफल व उनके उत्पादन को लिया जाता है।

(३) सांस्कृतिक आँकड़े जैसे जनसंख्या का वितरण, जातियों और धर्मों तथा भाषाओं का विन्यास आदि।

वर्त्तमान युग में इन सभी प्रकार के आँकड़ों का बड़ा महत्व है। इनके द्वारा तुलनात्मक अध्ययन में सहायता मिलती है। इनके ही द्वारा किसी तत्व या सिद्धान्त का महत्व स्पष्ट होता है। सैद्धान्तिक अध्ययन के लिए आँकड़े दृष्टान्त या उदाहरण का काम करते हैं।

Stationary Wave Theory (स्थायी तरंग सिद्धान्त) ज्वार-भाटे के बारे में इस सिद्धांन्त के प्रमुख समर्थक हैरिस हैं। इसका आधारभूत नियम यह है कि यदि हम एक तालाब को या पानी से भरी टंकी के एक किनारे को ऊपर उठायें और फिर नीचा करें तो एक लहरदार गति उत्पन्न हो जायेगी। तालाब के मध्य की धुरी के चारों ओर पानी ऊँचा-

नीचा और इस प्रकार आधे तालाब में पानी ऊँचा उठेगा और दूसरे आधे भाग में नीचा होगा। यही बात महासागर में भी होती है। महासागरों के विविध भागों की स्थायी तरंगों की गति से ज्वार-भाटा उत्पन्न होता है। जब ये स्थायी तरंगें उत्पन्न होती हैं तो समुद्र जल ऊपर-नीचे को होने लगता है और एक विशिष्ट काल में बराबर होती रहती है।

हैरिस के अनुसार एक ऐसा काल भी होना चाहिये जिसमें ज्वारभाटा बिल्कुल नहीं आयेगा। डीफाल्ट नामक दूसरे विद्वान् ने इस प्रकार की गति का बेरिंग जलसंयोजक में अध्ययन किया और पता लगाया कि इसका वास्तविक ज्वारभाटे को उत्पन्न करने में कितना हाथ रहता है। उन्होंने पता लगाया कि उत्तर-दक्षिण की स्थायी तरंग होनेवाली हलचल से ही अन्ध्र महासागर के ज्वारभाटे आते हैं।

Steamer Service (स्टीमर व्यवस्था) कुछ नदियों या झीलों को पार करने के लिए स्टीमर की व्यवस्था रहती है। ये स्टीमर एक नियत स्टेशन से थोड़े-थोड़े समय के बाद छूटते हैं और इनका छूटने का समय वहाँ तक आने वाली रेलों के आगमन के समय पर निर्भर रहता है।

स्टीमर व्यवस्था निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है—(१) जल की गहराई, (२) पुल न बनाये जा सकने की दशा, (३) यात्रियों की संख्या और (४) अन्य यातायात का अभाव।

Steppes (स्टेपी प्रदेश) यूरेशिया में पाये जाने वाले शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान को स्टेपी प्रदेश कहते हैं। ये मैदान समतल हैं और इन पर वृक्षों का अभाव है। स्टेपी प्रदेश डैन्यूब नदी की निचली घाटी से लेकर यूरोपीय रूस के दक्षिणी भाग से होता हुआ दक्षिणी-पश्चिमी साइबेरिक तक एक चौड़ी पट्टी की तरह फैला हुआ है।

इस प्रदेश की जलवायु महाद्वीपीय है और इसलिए बहुत कड़ी है। वार्षिक तापान्तर बहुत अधिक रहता है। जाड़े के मौसम में कड़ाके की सर्दी पड़ती है और बर्फीली तेज हवायें चलती हैं। गरमी के मौसम में गर्मी पड़ती है। वर्षा बहुत कम होती है। वार्षिक वर्षा का औसत १०" से २०" तक रहता है। वर्षा पश्चिम से पूर्व की ओर कम होती जाती है। पूर्वी यूरोप में वर्षा का औसत २० इंच तथा पश्चिमी साइबेरिया में केवल १०" है क्योंकि यहाँ पछुवा हवाओं को रोकने के लिये पश्चिम की ओर कोई बड़े पर्वत नहीं हैं।

अतः यहाँ छोटी-छोटी घास मिलती है और पेड़ों का तो सर्वथा अभाव है। कहीं-कहीं तो केवल रेगिस्तान ही मिलता है। इसीलिए इन प्रदेशों का प्रधान व्यवसाय पशुचारण है। यहाँ के निवासी गाय, भैंस, घोड़े, भेड़ें आदि पालते हैं। इन लोगों को खिरगीच कहते हैं और वे लोग चरागाह की खोज में इधर-उधर घूमा करते हैं। ये लोग बड़े अच्छे घुड़सवार होते हैं। इन के घर तम्बू होते हैं जो आसानी से उखाड़ कर इधर-उधर ले जाये जा सकते हैं। ऊँट को यह बोझा ढोने के काम में लाते हैं।

साईबेरिया के स्टेपी प्रदेश की घास बड़ी मीठी और पोषक होती है। और यहाँ के घास के मैदान बड़े विस्तृत हैं। अतः यहाँ पशुचारण तथा घी उद्योग के लिये काफी गुंजाइश है। वर्षा की कमी के कारण यह प्रदेश खेती के लिए अनुकूल तो नहीं है किन्तु सिंचाई की व्यवस्था करके गेहूँ की खेती की जाने लगी है। यूरोपीय रूस के स्टेपी प्रदेश में तो आशातीत उन्नति हुई है। सामूहिक कृषि व्यवस्था से यहाँ जई, जौ, सन, गेहूँ, चुकन्दर और कपास की खेती की जाती है। साईबेरिया वाले प्रदेश में यातायात की असुविधाओं के कारण विकास की गति रुकी हुई थी किन्तु ट्रान्स साइबेरियन रेलमार्ग के बन जाने के बाद

यहाँ भी काफी विकास हो चला है। सोवियत प्रभाव से यहाँ कृषि के विकास की गति तीव्र हो गई है। इसे भविष्य का भंडार कहा जाता है।

स्टेपी प्रदेश खनिज सम्पत्ति में भी बहुत धनी है। यूरोपीय रूस में कोयले की खानों के कई क्षेत्र हैं जिनमें डोनेज क्षेत्र प्रसिद्ध है। लोहा, खनिजतेल, मैंगनीज, सोना इत्यादि धातुयें, भी मिलती हैं। साइबेरिया वाले भूभाग में सोना, कोयला, लोहा, मैंगनीज, ताम्बा, जस्ता चाँदी, अभ्रक तथा नमक पाया जाता है। परंतु यातायात की अव्यवस्था के कारण इस सम्पत्ति का पर्याप्त उपभोग नहीं हो पाया है।

Stereographic Projection (स्टीरियोग्राफिक अंकन) यदि प्रकाश ग्लोब के ऊपर उस बिन्दु पर रख दिया जावे जो ठीक उस भाग के विपरीत हो जहाँ कि ग्लोब का गज छूता है तो इस प्रकार प्राप्त अंकन को स्टीरिओग्राफिक अंकन कहेंगे। इस अंकन में अथवा मध्यान्ह रेखाओं के बीच की दूरी सीमा की ओर बढ़ती जाती है, अतएव क्षेत्रफल समानान्तर भी बढ़ते जाते हैं। विस्तृत क्षेत्रों का आकार भी बिगड़ जाता है।

यह अंकन जेनीथल अंकन का ही एक प्रकार है। इसकी निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं—(१) जब कागज ग्लोब को ध्रुव पर छूता है तो देशान्तर सीधी रेखायें होती हैं जो ध्रुव से बाहर को फैलती रहती हैं। समानान्तर रेखायें समकेन्द्र वृत्त होते हैं जिनको ध्रुव केन्द्र से खींचा जाता है। (२) जब कागज भूमध्यरेखा पर छूता है तो भूमध्यरेखा व केन्द्रीय मध्यान्ह रेखा सीधी रेखायें होती हैं और सारा देशान्तर व अक्षांश रेखायें वृत्तों के अंश होते हैं। (३) अक्षांश रेखाओं पर मानदण्ड हर जगह बढ़ा हुआ रहता है परन्तु केन्द्र से दूर जाने पर यह तेजी से नहीं बढ़ता। (४) देशान्तर पर भी मानदण्ड बढ़ा हुआ रहता है परन्तु देशान्तर पर मानदण्ड की बढ़ती अक्षांश पर मानदण्ड की बढ़ती के बराबर ही होता है। (५) देशान्तर और अक्षांश रेखायें एक-दूसरे को समकोण पर काटती हैं जैसा कि ग्लोब पर होता है। इसलिए आकार स्थानीय रूप से बिल्कुल ठीक रहता है। (६) मध्य भाग के समीप दूरी कम रहती है परन्तु किनारे की तरफ दूरी बढ़ती जाती है।

चूँकि किसी बिन्दु पर मानदण्ड में बढ़ती सब दिशाओं में एक सी रहती है इसलिए बहुत छोटे क्षेत्रों का आकार ठीक-ठीक बना रहता है। परन्तु केन्द्र से दूर जाने पर क्षेत्रफल बढ़ जाता है। किनारे पर क्षेत्रफल का मानदण्ड केन्द्र की अपेक्षा चौगुना हो जाता है। फिर भी किनारों पर क्षेत्रफल व आकार का विकार उतना नहीं होता जितना कि ऑरथोग्राफिक अंकन में। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि इसे आसानी से खींचा जा सकता है और समक्षेत्रफल होता है। इस अंकन को गोलार्द्ध के मानचित्र बनाने के लिए खींचा जाता है।

Stevenson's Screen (स्टीवन्सन्स स्क्रीन) ऋतु विज्ञान में वायुमण्डल का तापक्रम थर्मामीटर से नापा जाता है परन्तु वह थर्मामीटर छाया में रक्खा जाता है। वेधशालाओं में थर्मामीटर को छाया में रखने के लिए एक लकड़ी के बक्स का प्रयोग करते हैं। इसे स्टीवन्सन्स स्क्रीन कहते हैं। इसका उद्देश्य थर्मामीटर को सूर्य और पृथ्वी के ताप विकिरण से बचाना होता है।

यह एक दुहरी दीवाल का लकड़ी का बक्स होता है जो जमीन से उठा हुआ रहता है और जिसके अन्दर सफेद रंग किया हुआ रहता है। इसकी छत भी दुहरी होती है और दोनों तहों के बीच में हवा के लिये जगह होती है। इधर-उधर की दीवारों पर हवा आने के लिए दरारें बनी रहती हैं। इस प्रकार हवा को खूब आने दिया जाता है। थर्मामीटर की

घुंडी भूमि से ४ फीट की ऊँचाई पर रहती है। इस प्रकार थर्मामीटर करीब-करीब वायु का तापक्रम बतलाता है।

साधारण प्रकार के स्टीवन्सन्स स्क्रीन में शुष्क व तर घुंडीवाले थर्मामीटर तथा अधिकतम व न्यूनतम थर्मामीटर रक्खे रहते हैं। ये सब थर्मामीटर अन्दर एक चौखट पर रक्खे रहते हैं जो छत, फर्श और दीवारों में फिट रहता है। बड़े प्रकार के स्टीवन्सन्स स्क्रीन में थर्मोग्राफ और हिग्रोग्राफ भी रक्खा रहता है।

Stock (स्टॉक) (१) इस पारिभाषिक शब्द को छोटे विस्तार के बैथोलिथ के लिए प्रयोग करते हैं।

(२) किसी देश या प्रदेश के पालतू जानवरों को वहाँ का स्टॉक कहते हैं।

Stock Raising (पशुपालन) भोजन सामग्री, यातायात, वस्त्रों तथा कुछ अन्य वस्तुओं के लिए विभिन्न प्रकार के पशुओं को पाला जाता है। गाय-बैल, भैंस, भेड़, सूअर, ऊँट, घोड़े, गधे, बकरियाँ, हाथी आदि को पाला जाता है और उनको पालने के धंधे को पशुपालन कहते हैं। परन्तु पशुओं के घूमने और चरने के लिये विस्तृत क्षेत्रों का होना आवश्यक है। अतः पशु पालन का धंधा उन्हीं देशों में पाया जाता है जहाँ घास के बड़े-बड़े मैदान पाये जाते हैं। घनी आबादी वाले प्रदेशों में अथवा पर्वतीय प्रदेशों में इस धंधे का विकास कठिनता से होता है। गाय को दूध, मक्खन और पनीर के लिए पाला जाता है। बैल व सूअर को मांस के लिए तथा भेड़-बकरी को ऊन व मांस दोनों ही के लिए पाला जाता है। घोड़ों, गधों, ऊँटों और हाथियों को यातायात के लिए रक्खा जाता है।

पशुपालन में लगे लोगों का निवास अस्थाई होता है और ये अपने पशुओं की सम्पत्ति साथ लिये इधर-उधर फिरा करते हैं परन्तु शीत भण्डार रीति तथा अन्य वैज्ञानिक खोजों से यह धंधा अधिक स्थायीरूप से किया जाता है। पशुपालन के लिए अनुकूल दशायें निम्न-लिखित हैं—(१) सम जलवायु क्योंकि ऐसे स्थानों में पशुओं को रहने के लिये मकानों की आवश्यकता नहीं होती। (२) पशुओं को चराने के लिए विस्तृत चरागाह (३) स्वास्थ्यप्रद वातावरण। उष्ण प्रदेशों में बहुधा अनेक कीड़े रहते हैं जिनके काटने से पशु रोगी हो जाते हैं। (४) पीने के लिए स्वच्छ पानी (५) पशुओं से प्राप्त सामग्री की पर्याप्त माँग या अन्य प्रकार से उनकी आवश्यकता।

Stock map (पशु सम्बन्धी मानचित्र) जिस मानचित्र में पशुओं का वितरण दिखलाया जाता है उसे पशु सम्बन्धी मानचित्र कहते हैं। इस प्रकार के मानचित्र में पशुओं का वितरण दिखलाने के लिए या तो बिन्दुओं का प्रयोग करते हैं या रंगीन तहों का। यदि पूर्ण संख्या दिखलानी हो तो बिन्दुओं का प्रयोग अच्छा रहता है परन्तु जहाँ प्रति इकाई क्षेत्रफल पर पशुओं की संख्या दिखलाना होता है वहाँ रंगीन तहों का प्रयोग करते हैं।

पशुसम्बन्धी मानचित्र बनाने से पहिले दो बातों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है—(१) प्रत्येक बिन्दु द्वारा दिखलाने की इकाई (२) वनस्पति मानचित्र का सम्यक अध्ययन। मवेशी के विषय में प्रति बिन्दु भेड़ की अपेक्षा छोटी होगी। दूसरे बिन्दुओं को वहीं रखना चाहिये जहाँ चरागाह या घास के मैदान हैं। कभी-कभी चित्रों को भी पशुवितरण दिखलाने में प्रयोग किया जाता है। यद्यपि चित्र का मानचित्र देखने में अच्छा मालूम पड़ता है परन्तु इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि अन्य बातें छिप जाती हैं।

Stone Age (पाषाण युग) जब मनुष्य पत्थर के बने औजार व हथियार इस्तेमाल करता था, उस काल को पाषाणयुग कहते हैं। यह युग उस युग से पहिले था जब

प्रथम बार धातु को खानों से निकालना शुरू हुआ। (देखिये Bronze Age) पाषाण युग इतिहास का कोई विशिष्ट काल नहीं है। कुछ लोग अन्य की अपेक्षा पाषाणयुग को पार कर सभ्यता की सीढ़ी पर जल्दी चढ़ गये। इसलिए पाषाण युग मनुष्य की सभ्यता के विकास में केवल एक अवस्था या दशा बतलाता है।

Stone River (पथरीली नदी) मौसमी क्षति से हुये विखण्डन से पर्वत बड़े-बड़े शिलाखंडों की राशि जब गुरुत्वाकर्षण के कारण किसी घाटी में से होकर इस प्रकार अग्रसर होने लगती है जैसे कि कोई जलधारा प्रवाहित हो रही हो तो उसे पथरीली नदी कहते हैं। इसका आकार या रूप चट्टानी हिमनदी के ही समान होता है। इस प्रकार की पथरीली नदियाँ फाकलैण्ड द्वीपों में बहुत मिलती हैं।

Stoned Winds (अवरुद्ध वायु) प्रचलित हवायें जब किसी पर्वत माला के द्वारा रुक जाती हैं तो उन्हें अवरुद्ध वायु कहते हैं। इस प्रकार की अवरुद्ध वायु की साधारण गति बहुत बढ़ जाती है और यह बड़ी प्रचण्डता के साथ भीषणगति से टक्कर मारती है। पर्वतीय दर्रों या ऊँचे पठारों पर इस वायु के कारण अक्सर बड़ी असुविधा का अनुभव होता है।

Storm (तूफानी आँधी) जब हवा की गति बड़ी तेज और रूप बड़ा प्रचण्ड होता है तो उसे तूफानी आँधी कहते हैं। सामान्यत: इसकी गति ७० मील प्रति घंटे तक होती है और इसके चलने पर दूर-दूर तक विस्तृत हानि होती है। तूफानी आँधी कभी-कभी ही चलती है परन्तु जब चलती है तो पेड़ उखड़ जाते हैं, छतें उड़ जाती हैं और जहाँ देखो वहाँ धूल ही धूल छा जाती है। अक्सर तूफानी आँधी के पहिले वायुमण्डल में स्तब्धता छा जाती है और वायु की गति प्रतीत होती है। परन्तु इस के बाद बादलों की कड़क और बिजली की चमक के साथ छींटे भी पड़ जाते हैं।

Strait (जलसंयोजक) जल का वह सँकरा भाग जो दो विस्तृत महासागरों को मिलाता है उसे जलसंयोजक कहते हैं। जिब्राल्टर, बेहरिंग और मलक्का के जलसंयोजक संसार में बड़े प्रसिद्ध हैं। इनके बनने के अनेक कारण हैं। आवरण क्षय से या निमज्जन से भूखंड का कोई भाग जलमग्न हो जाता है और वहाँ पर समुद्र का जल भर जाता है तो जल संयोजक बन जाता है। अक्सर किसी स्थल डमरूमध्य के बीच की भूमि में दरार पड़ कर धँस जाने से भी जल संयोजक का निर्माण हो जाता है।

Strand Lake (स्ट्रैन्ड झील) नदी के प्रवाह में किसी प्रकार का अवरोध हो जाने से उनके मुहाने के समीप जो झीलें बन जाती हैं उन्हें स्ट्रैंड झील कहते हैं। इनके दो प्रकार होते हैं—(१) **अनुतटीय श्रेणी से बनी झील** (Bayhead Bar Lakes) समुद्रतट के समीप बालू, बजरी की श्रेणी बन जाने से एक प्रकार का अवरोध बन जाता है और महासागर का थोड़ा सा भाग झील के स्वरूप में अलग हो जाता है। अधिकतर नदियों के खुले मुहाने पर इस प्रकार की श्रेणियाँ बन जाती हैं और वहीं ये झीलें बन जाती हैं। इस प्रकार झीलें कटी-फटी तटरेखा वाले समुद्रतट पर बन जाती हैं। साल्टन सिन्क (Salton Sink) इसका उदाहरण है। (२) **बालुका स्तूप झीलें** (Dune Lakes) नदियों के मुहाने पर जल के प्रवाह के बीच बालू के टीलों के आकार पड़ जाने से समुद्रतट पर झीलें बन जाती हैं। फ्रांस के तट पर ये झीलें पाई जाती हैं।

इस प्रकार से बने अवरोध हल्के मुड़े हुये होते हैं। कभी-कभी उनका आकार अर्द्धचन्द्र के समान होता है और वे बालू, बजरी और गोल पत्थरों के बने होते हैं। इन अवरोध का ढाल भूमिखंड की ओर तो तीव्र परन्तु समुद्र की तरह क्रमश: होता है।

Strath (स्ट्रैथ) स्काटलैन्ड में चौड़ी नदी घाटी को स्ट्रैथ कहते हैं।

Stratigraphy or Stratigraphical Geology (स्ट्रैटीग्राफी) यह भूगर्भ तत्व शास्त्र की वह शाखा है जिसके अंतगत चट्टानों की रचना के इतिहास व काल विभाग का अध्ययन किया जाता है। कभी-कभी इस पारिभाषिक शब्द को ऐतिहासिक भूगर्भतत्व-शास्त्र के लिये भी प्रयोग करते हैं।

Stratiform Cloud (स्ट्रैटीफार्म मेघ) विकिरण द्वारा ताप हानि और ठंडी व गर्म हवाओं की धाराओं के मिलने से इस प्रकार के मेघ बन जाते हैं। इस प्रकार के मेघ पतली भूरी चद्दर की तरह फैले रहते हैं। इनके ऊपर वायु की एक धारा एक दिशा में और दूसरी नीचे की ओर विपरीत दिशा में चलती रहती है। कभी-कभी दो वायुधारायें एक-दूसरे के आर-पार काटती है और तब यह मेघ की चद्दर गोल-गोल टुकड़ों में बँट जाती है और बीच-बीच में नीला आकाश दिखलाई पड़ता रहता है।

Stratocumulous (स्ट्रैटो क्युमुलस) ये एक प्रकार के निम्न मेघ होते हैं जो १०००० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। इनका आकार एक परत की तरह होता है जिसमें बादल गोलाकार या लहरों की तरह व्यवस्थित होते हैं। ये बादल के टकड़े आपस में मिल जाते हैं और उनकी परत विस्तृत हो जाती हैं। इनका रंग कुछ काला होता है।

Stratosphere (समताप मण्डल) वायुमण्डल की ऊपरी परत को जो धरातल से ६ मील की ऊँचाई के ऊपर फैली रहती है उसे समतापमण्डल कहते हैं। यह भाग २० मील की ऊँचाई तक माना जाता है। यहाँ पर तापक्रम स्थिर रहता है। इसमें ऊपर से नीचे अथवा नीचे से ऊपर वायु धारायें चला करती हैं।

समताप मंडल किस ऊँचाई से शुरु होता है यह बड़ा ही अनिश्चित है। वास्तव में इस में इसकी न्यूनतम ऊँचाई व तापक्रम मौसम, तूफानी दशाओं और अक्षांश स्थिति पर निर्भर रहते हैं। जाड़े की अपेक्षा गर्मी के मौसम में यह अधिक ऊँचाई पर रहता है। अन्य स्थानों की अपेक्षा भूमध्य रेखा पर इस का तापक्रम भी नीचा रहता है। भूमध्य रेखा पर ८०° सेन्टीग्रेड रहता है जब कि अन्य स्थानों पर ५०° से ६०° तक रहता है। परन्तु अधिक ऊँचाई पर समतापमण्डल का तापक्रम भूमध्यरेखा पर ठंडा रहता है। इसका कारण यह है कि लम्बरूप संवाहन धाराओं के द्वारा काफी मेघ बनते रहते हैं जिनके द्वारा धरती से ताप विकिरण ऊपर तक पहुँचने के पहिले ही रोक लिया जाता है। समताप मण्डल का औसत तापक्रम–७०° फार्नहीट है।

उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी के मौसम में ६०° अक्षांश पर इसकी ऊँचाई १० किलोमीटर रहती है परन्तु भूमध्यरेखा की एक तरफ यह ऊँचाई बराबर बढ़ती जाती है और भूमध्य रेखा पर इसकी ऊँचाई १५ किलोमीटर हो जाती है। तापक्रम भी—–४५° सेन्टीग्रेड भूमध्य रेखा पर–७०° से हो जाता है।

समताप मण्डल में वायु हल्की व कम घनी, तापक्रम निम्न पर स्थायी और मेघों का अभाव रहता है। ऋतुमापक गुब्बारों से पता चला है कि समताप में लम्बरूप से तापक्रम परिवर्त्तन बिल्कुल भी नहीं होता परन्तु समानान्तर परतों में तापक्रम बढ़ता-घटता रहता है। इन गुब्बारों के द्वारा पता चला है कि समताप मण्डल की निचली परतों में ऊँचाई के साथ तापक्रम बढ़ता जाता है। इस प्रदेश में जलवाष्प या धूल के कणों का भी अभाव रहता है। अधिक ऊँचाई पर संवाहन धारायें भी नहीं रहतीं।

अक्षांश स्थिति के अनुसार समतापमण्डल की रचना में भी अन्तर आ जाता है। उच्च

अक्षांशों में निम्न अक्षांशों की अपेक्षा ओजोन का अंश अधिक रहता है। जलवाष्प और सापेक्ष आर्द्रता में भी स्थानीय अन्तर पाया जाता है।

इगलैंड के गोल्ड और अमरीका के हम्फरीज नामक विद्वानों ने यह पता लगाया है कि वायुमण्डल के प्रत्येक भाग का तापक्रम सोखे हुये विकिरण और त्यागे हुये विकिरण के अन्तर पर निर्भर रहता है। जहाँ कहीं सोखे हुये विकीरण की मात्रा त्यागे हुये विकिरण की मात्रा के बराबर हो जाता है वहाँ तापक्रम स्थायी हो जाता है। इस प्रकार समताप मंडल की आधार परत को हम वह स्थान व रेखा कह सकते हैं जहाँ पर ऊँचाई के साथ तापक्रम के निम्नतर होते जाने की क्रिया एक दम बन्द हो जाती है।

Strahim (प्रस्तर) भूपटल पर बिछी हुई चट्टानों की क्रमिक पंक्ति को प्रस्तर कहते हैं। वास्तव में परतदार चट्टानें विभिन्न प्रस्तर एक दूसरे के ऊपर बिछे रहते हैं। चट्टानों के ये प्रस्तर किसी निश्चित विभाजन रेखा द्वारा अथवा विभिन्न मोटाइयों द्वारा अथवा अपने अलग-अलग रंगों द्वारा साफ-साफ पहिचाने जा सकते हैं।

जो बात चट्टान के विषय में सच है वही बात भूपटल की विभिन्न परतों के विषय में भी पाई जाती है। हमारी पृथ्वी कई परतों से मिलकर बनी है। और स्थलमंडल पर चट्टानें एक-दूसरे पर इस प्रकार बिछी हुई हैं जैसे एक ही चट्टान के विभिन्न प्रस्तर। इन प्रस्तर की मोटाई एक इंच के अंश से लेकर कई फीट तक होती है। इनकी व्यवस्था समानान्तर रूप में रहती है।

Stratus (स्ट्रैटस) यह एक प्रकार के निम्न मेघ हैं जो धरती से अधिक से अधिक एक या दो मील की ऊँचाई पर बनते हैं। परन्तु आकाश में पूरी तरह छा जाते हैं। इनकी आकृति सब जगह एक सी रहती है। ये बादल शीतोष्ण कटिबंध में प्रायः जाड़े की ऋतु में अधिक बनते हैं। इन का निर्माण दो भिन्न प्रकार की हवाओं के मिलने से होता है। इसका आकार ऐसा होता है जैसे कि कुहरा भूमि पर से ऊपर को उठ गया हो।

Stream (जलधारा) एक निश्चित मार्ग से प्रवाहित जल को जलधारा कहते हैं। इस के अन्तर्गत छोटे नद, नदी, नाला आदि आते हैं।

Striae (खरौंच) जब कोई हिमनदी किसी धरातल पर से प्रवाहित होती है तो उसमें भरे हुये शिलाखंड तलैटी की चट्टान के साथ रगड़ खाते जाते हैं। इस रगड व घिसाव से तलैटी की चट्टान में निशान पड़ जाते है और कहीं मुलायम चट्टानें हुई वहाँ पर सँकरे गड्ढे बन जाते हैं। इस प्रकार बने निशान व सँकरी नालियों को खरौंच कहते है। इनके द्वारा हिमनदी की प्रवाह की दिशा का पता चलता है।

Strike (स्ट्राइक) किसी चट्टानी प्रस्तर में उस समानान्तर रेखा को जो झकाव-तल की दिशा के साथ समकोण बनाती हुई लम्बरूप स्थिति रहती है स्ट्राइक कहते हैं। किसी चट्टानी प्रदेश के झुकाव और स्ट्राइक में वही सम्बन्ध है जो किसी जगह के समोच्च भूमिदर्शक रेखाओं और वहाँ के ढाल के बीच रहता है। (देखिये **Dip**)

Strombolian Crater (स्ट्रोम बोलियन ज्वालामुख) जिस ज्वालामुखी पर्वत का ज्वालामुख बहुत चौड़ा तथा फैला हुआ रहता है उसे स्ट्रामबोलियन ज्वालामुख कहते हैं। इस प्रकार के ज्वालामुख के भीतर लावा की हल्की जमी हुई सतह दिखलाई पडती है। इस पपड़ी के बीच-बीच जगह-जगह दरारें होती हैं जिनसे भाप निकला करती हैं। कुछ दरारों से लावा की धारायें निकला करती है। कुछ में से भाप व धुँआ झटके के साथ निकलता रहता है जैसे किसी रेल के इंजन से। कुछ दरारों के भीतर खौलता हुआ लावा

दिखलाई पड़ता है और बीच-बीच में बड़ी प्रचण्डता और विस्फोट के साथ भाप का बुलबुला बाहर को फूट पड़ता है ।

इस प्रकार की दशा बहुत से राखनिर्मित ज्वालामुखी या मिश्रित ज्वालामुखी शंकुओं के भीषण उद्गारों के बीच में उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार की हल्की सक्रियता को स्ट्राम-बोलियन कहते हैं और जिस ज्वालामुखी के मुख में ये विशेषतायें और इस प्रकार के हल्के उद्गार आते रहते हैं उसे स्ट्रामबोलियन ज्वालामुख कहते हैं ।

Structural Material (इमारती सामान) भूगर्भ में पायी जाने वाली वे वस्तुयें चट्टानें व धातुयें जो इमारतों के बनाने में प्रयोग की जाती हैं उन्हें इमारती सामान कहते हैं । सीमेन्ट, पत्थर, चूना, एसिबेस्टास, अस्फान्ट, खड़िया मिट्टी, चिकनी मिट्टी, रेत, कंकड़, स्लेट, ग्रैनाइट आदि विभिन्न प्रकार के इमारती सामान हैं जो मनुष्य को भूगर्भ से प्राप्त होते रहते हैं ।

Submergence (जलमग्न होना) जहाँ पहले कभी भूखंड था वहाँ पर जल भर जाने को जलमग्न होना कहते हैं । कोई भी प्रदेश जब जलमग्न होता है तो उसकी तटरेखा कटी-फटी हो जाती है और उसके उच्च प्रदेश टापू की तरह जलके बाहर दिखलाई पड़ने लगते हैं । जलमग्न होने की क्रिया के तीन कारण हैं—(१) निमज्जन (Subsidence) थल का भीतर को धँसना, (२) आवरणक्षय (Erosion) लहरों द्वारा तटीय चट्टानों की काट-छाँट होते-होते कभी-कभी वह इतना नीचा हो जाता है कि जल के भीतर डूब जाता है । (३) तनाव के कारण चट्टानों में दरार पड़ जाती है तथा चट्टानों का कुछ भाग नीचे बैठ जाने से जल भर जाता है ।

भूखंड के जलमग्न हो जाने पर महाद्वीपीय तट तथा कटी-फटी तट रेखा बन जाती है ।

Submerged Forest (जलमग्न वन प्रदेश) जब कोई तटीय प्रदेश जलमग्न हो जाता है तो उस पर स्थित वन प्रदेश भी पानी में डूब जाते हैं । इस प्रकार के वन प्रदेश को जलमग्न वन प्रदेश कहते हैं । ये वन प्रदेश केवल भाटे के समय ही जल के थोड़ा बाहर निकल आते हैं । इस प्रकार के जलमग्न वन प्रदेशों के अनेक उदाहरण ब्रिटिश द्वीप समूह के चारों ओर बहुत पाये जाते हैं ।

ऐसा विश्वास है कि आज से करोड़ों वर्ष पहिले इसी प्रकार के जलमग्न वन प्रदेशों में ही संसार की वर्तमान कोयले की राशि का सूत्रपात हुआ था ।

Sub Polar Regions (उपध्रुवीय प्रदेश) टुंड्रा प्रदेश और शीतोष्ण कटिबंध के बीच के प्रदेश को उपध्रुवीय प्रदेश कहते हैं । इस प्रदेश के ध्रुवीय सिरे पर टुंड्रा और भूमध्यरेखा की तरफ वाले सिरे पर शीत शीतोष्ण कटिबंध स्थित रहते हैं । कहीं-कहीं इनके भूमध्यरेखा की तरफ वाले सिरे पर स्टेपी व मरुस्थली भाग पाये जाते हैं । इसको कभी-कभी शीत शीतोष्ण कटिबंध कहते हैं और उत्तरी गोलार्द्ध के उच्च अक्षांशों में स्थित नुकीली पत्तीवाले जंगल इसी प्रदेश में पाये जाते हैं ।

उपध्रुवीय प्रदेशों में जाड़े की ऋतु लम्बी तथा बहुत ठंडी होती है । गर्मी का मौसम बहुत छोटा होता है । वर्षा का औसत बहुत कम रहता है परन्तु चूँकि वाष्पीकरण भी बहुत कम होता है इसलिए इतनी थोड़ी वर्षा में भी जंगल उग आते हैं ।

Subsequent River (बाद में बनी नदी) ढाल के अनुरूप बहने वाली मुख्य नदी के दोनों किनारों पर दोनों दिशाओं से बहकर आने वाली सहायक नदियों को बाद में बनी नदी कहते हैं । आवरणक्षय के द्वारा ढाल के अनुरूप बहनेवाली मुख्य नदी के दोनों ओर का प्रदेश मैदान व श्रेणियों के रूप में ऊँचा-नीचा हो जाता है और इसके बाद में बने

ढाल के अनुरूप सहायक नदियाँ बहने लगती हैं। इन सहायक नदियों की घाटियाँ पर्वत के ढाल के समानान्तर रहती है। चूँकि आवरण क्षय के द्वारा कटी-फटी भूमि पर ये नदियाँ बहती हैं इसलिये बाद में बनी इन नदियों की घाटी चौड़ी व गहरी होती है। कमजोर व मुलायम चट्टानों के ऊपर से बहने के कारण इनकी धारा बड़ी तीव्र होती है।

बाद में बहने वाली नदी का प्रवाह मुख्य नदी के समान ढाल के अनुरूप ही होता है। ये सहायक नदियाँ मुख्य नदी में लम्बरूप आकर मिलती हैं। कभी-कभी इन में बनी नदी का जल विपरीत दिशा में बहने वाली नदी द्वारा हड़प लिया जाता है और वहाँ पर शुष्क बनी रह जाती है। (देखिये River Capture)

Subsidence (निमज्जन, नीचे बैठना)

(१) भूगर्भ की शक्तियों, भूकम्प व ज्वालामुखी उद्गारों तथा धरातल पर भार के असंतुलित हो जाने से जब कहीं के प्रदेश का तल अपने आस-पास के क्षेत्र की अपेक्षा नीचा हो जाता है या भीतर को धँस जाता है तो उसे निमज्जन कहते हैं। संसार के महाद्वीपों व महासागरों के निर्माण का यही कारण है।

(२) जब किसी प्रकार से भारी होकर या पर्वतीय बनावट के अनुसार वायु ऊपर से पृथ्वी के धरातल की ओर उतरने लगती है तो उसे नीचे बैठना कहते हैं। प्रायः विपरीत चक्रवात में या शीघ्रता से बढ़ते हुये वायुभार के प्रदेश में वायुमण्डल की ऊपरी परतों से ठंडी व भारी वायु धरातल की तरफ बैठने लगती है। इसी प्रकार वायु की दिशा में स्थित पर्वतीय ढालों पर वर्षा करने के बाद ऊँची चोटी पर पहुँची हुई ठंडी वायु विमुख ढाल पर से होती हुई नीचे को उतरने लगती है। इस प्रकार से नीचे बैठती हुई वायु अपने आप अपनी उतार गति से गर्म व शुष्क हो जाती है। यही कारण है कि शुष्क साफ मौसम में ही वायु नीचे को बैठती है।

Subsistence Agriculture (उपभोगी कृषि) जब किसान खेती के द्वारा उन्हीं फसलों को उगाता है जिन की उसे स्वयं जरूरत होती है तो उसके उद्यम को उपभोगी कृषि कहते हैं। उपभोगी कृषि का आधार व मूल किसान की अपनी जरूरत होती है। इस प्रकार की कृषि की उपज विक्रय के लिए मंडी में नहीं ले जाई जाती बल्कि स्वयं किसान व उसके घरवाले अपने उपभोग के लिए रख लेते हैं।

उपभोगी कृषि व्यवसायिक कृषि से बिल्कुल भिन्न होती है। इसमें किसान उन्हीं को उतनी ही मात्रा में उगाने की कोशिश करता जितने में उसका पेट पालन हो जाये। जो फसल वह उगाता है उस का केवल कुछ अंश इसलिए बेच देता है कि उसे लगान आदि के लिए थोड़े से रुपये में मिल जाये।

उपभोगी कृषि छोटे-छोटे खेतों पर पुराने ढंग से की जाती है। किसान उसमें न तो विशेष परिश्रम ही लगाता है और न ही वैज्ञानिक रीतियों को प्रयोग में लाता है। इन्हीं सब कारणों से उपभोगी कृषि की प्रति एकड़ उपज कम रहती है। अधिक घने बसे हुए भागों में जहाँ असंख्य जनता को भोजन देने की समस्या रहती हैं वहाँ उपभोगी कृषि मिश्रित कृषि का रूप धारण कर लेती है और वहाँ सयत्न तरीके से अपनी जनसंख्या को भोजन देने के लिए अधिकाधिक खाद्यान्न उगाने की चेष्टा की जाती है।

Subsoil (उपमिट्टी) वास्तविक मिट्टी के नीचे पाई जाने वाली चट्टानों के टुकड़ों की परत को उपमिट्टी कहते हैं। इस उपमिट्टी के कण अपेक्षाकृत मोटे व बड़े होते हैं। इसमें प्राणिज व वनस्पति अवशेष की मात्रा बहुत कम होती है। इसके खनिज तत्व भी मिट्टी से सर्वथा भिन्न होते हैं क्योंकि नीचे पड़ी रहने के कारण इस पर जलीकरण और ऑक्सीजनीकरण का विशेष प्रभाव नहीं पड़ने पाता।

इन सब कारणों से मिट्टी की अपेक्षा उपमिट्टी बहुत कम उपजाऊ होती है। फिर भी कुछ गहराई तक इसमें पेड-पौधों की जड़ें प्रवेश कर जाती है।

Sub-Tropical Region (उपोष्ण प्रदेश) शीतोष्ण कटिबंध और उष्ण कटिबंध के बीच के अन्तरिम या मध्यवर्त्ती प्रदेश को उपोष्ण प्रदेश कहते हैं। इसमें शीतोष्ण व उष्ण दोनों ही कटिबंधों की विशेषताओं का मिश्रण पाया जाता है। उष्ण कटिबंध के विपरीत यहाँ पर मौसमों का परिवर्तन या प्रत्यावर्त्तन अधिक स्पष्ट होता है। जाड़े और गर्मी के मौसम बिल्कुल अलग-अलग होते हैं परन्तु शीतोष्ण कटिबंध की अपेक्षा जलवायु सामान्यतः अधिक गरम रहती है।

वर्षा की मात्रा के आधार पर इसको दो प्रकारों का कहा जा सकता है :—

(१) शुष्क उपोष्ण प्रदेश जहाँ भूमध्यसागरीय जलवायु पायी जाती है। (देखिये **Mediterranean Climate**)

(२) तर या नम उपोष्ण प्रदेश जहाँ पर चीन तुल्य जलवायु पायी जाती है। उत्तरी अमरीका में इसे कपास की पेटी की जलवायु कहते हैं। (देखिये **Cotton Belt Climate**)

प्रथम प्रकार की जलवायु के प्रदेश महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर पाये जाते हैं और वहाँ गर्मी का मौसम लम्बा तथा शुष्क होता है। इसके विपरीत जाड़े के मौसम में साधारण वर्षा होती है।

दूसरे प्रकार की जलवायु महाद्वीपों के पूर्वी भाग में पायी जाती है। यहाँ वर्षा का वार्षिक औसत अपेक्षाकृत अधिक होता है और अधिकतर वर्षा गर्मी के मौसम में ही होती है।

Sudd (सड) जलधारा पर बहते हुये वनस्पति की राशि को सड कहते हैं। कभी-कभी वनस्पति की यह तैरती हुई राशि इतनी अधिक होती है कि नावों का चलाना तक कठिन हो जाता है। नील नदी के ऊपरी भाग में सड बहुत मिलता है और उसके कारण नाव्यता में बड़ी बाधा पड़ जाती है। कभी-कभी यह सड इतना विस्तृत व घना हो जाता है कि नदी के आर-पार यह कोई बीस मील लम्बा तथा २० फीट गहरा बाँध सा बना लेता है और इतना घना संयुक्त बन जाता है कि इस पर आसानी से एक हाथी खड़ा होकर चल सकता है।

आसपास के दलदलों के पौधों व वनस्पति के मिल कर इकट्ठा हो जाने से सड बन जाते हैं।

Suess's Theory (स्वेस का सिद्धान्त) महाद्वीपों और महासागरों की उत्पत्ति के विषय में स्वेस नामक विद्वान ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि पृथ्वी का पटल दो प्रकार के भागों से निर्मित था। संसार में तीन महान् चबूतरे जैसे प्रदेश मिलते हैं— (१) लारेंशियल ढाल या कनाडा का पठार, (२) बाल्टिक ढाल अथवा स्कैन्डिनेविया का पठार और (३) अंगारा शील्ड अथवा साइबेरिया का पठार। इसके अलावा एक और ढाल भी था जो अब छिन्न-भिन्न हो गई है। गोंडवाना लैण्ड उस समस्त भूभाग को घेरे हुये था जिसके कुछ भाग आज दक्षिणी भारत, दक्षिणी अफ्रीका और ब्राजील के पठार के रूप में स्थित हैं। ये सभी प्रदेश बड़ी ही कठोर चट्टानों के बने हुये थे। इनके अलावा कुछ अन्य भाग थे जो अस्थायी व मुलायम चट्टानों के बने हुये थे और वहाँ सागर पाये जाते थे।

पृथ्वी की व्यवस्था में पर्वत निर्माणकारी बहुत सी हलचलें हुईं और भूपटल पर मोड़ पड़ गये। इन मोड़ डालनेवाली हलचलों के अवकाश में पुरानी चट्टानों के ढाल समुद्र के अन्दर समा गये और उनके धँस जाने से महासागरों का विस्तार बढ़ गया। इसके विपरीत

अस्थायी और मुलायम चट्टानों वाले भागों में भी महासागर स्थित थे। उनमें निक्षेप होता रहा और कालान्तर में पर्वत निर्माणकारी हलचलों की क्रिया के फलस्वरूप महासागरीय गर्त मुड़ कर स्थल खंडों के रूप में निकल आये।

लारेंशियन और अंगोरा ढालों तथा गौन्डवानालैंड के बीच का टीथीज सागर इसी प्रकार स्थलखंड में बदल गया और आल्प्स तथा हिमालय पर्वत श्रेणियाँ उसी में से उदय हो गई। अब केवल भूमध्य सागर ही उसका अवशेष भाग रह गया। अन्य सम्पूर्ण विस्तार में स्थल का निर्माण हो गया है। जिससे यूरेशिया महाद्वीप का बहुत बड़ा भाग बन गया है।

इसके विपरीत गोंडवाना लैंड का बहुत अधिक अंश विलीन होकर महासागर का रूप धारण कर चुका है। अब केवल भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप, दक्षिणी अफ्रीका और ब्राजील के पठार ही जो इसके अंश थे बचे रह गये हैं। अन्य सभी जगह आन्ध्र महासागर व हिन्द महासागर हिलोरे मारता है।

Sumatra (सुमात्रा) मल्लक्का जल संयोजक में जब दक्षिणी-पश्चिमी मानसून चलता है तो रात के समय तूफानी आँधी आती है इसे सुमात्रा कहते हैं। इस तूफानी आँधी के आने पर हवा की गति में एक दम परिवर्त्तन होता है और हवा दक्षिण की जगह पश्चिम से चलने लगती है। इसके चलने पर तापक्रम एक दम से गिर जाता है। साथ-साथ क्यूमूलोनिम्बस मेघ की भारी चादर भी फैल जाती है और भीषण कड़क अथवा बिजली की चमक के साथ घनघोर वर्षा होती है।

Summit (उच्च सिरा) किसी उच्च भूमि प्रदेश के सबसे ऊपरी भाग को सिरा कहते हैं। यह कई प्रकार का होता है। कहीं तो यह गोलाकार तो कहीं शंक्वाकार और कहीं नुकीली सुई की भाँति होता है। उच्च सिरे की आकृति व ढाल चट्टानों के स्वभाव तथा आवरणक्षय की शक्तियों पर निर्भर रहता है।

Sun (सूर्य) सौरमण्डल का जनक और केन्द्रीय ग्रह सूर्य है। सूर्य का आकार गोल है या अण्डे की तरह है। इसका व्यास ८६५००० मील है और यह जगमगाता हुआ प्रकाश स्रोत है। ऐसा विश्वास है कि इसका भीतरी भाग तरल है तथा बाहर का भाग द्रव। पृथ्वी से इसकी दूरी लगभग ९३० लाख मील है।

चन्द्रमा की तरह सूर्य को भी देखा जा सकता है परन्तु इस की सूक्ष्म विशेषतायें बिल्कुल भी दिखाई नहीं पड़तीं। यद्यपि यह देखने में चन्द्रमा के ही बराबर मालूम पड़ता है परन्तु इसका व्यास चन्द्रमा के व्यास से ४०० गुना बड़ा है। इसके अर्थ यह हुये कि इसका क्षेत्रफल चन्द्रमा से १,६०,००० गुना अधिक है और इसका आयतन चन्द्रमा की अपेक्षा ६४,०००,००० गुना अधिक है।

सूर्य का संसार चमकदार, गर्म व जीवित है जिसमें बड़े भीषण परिवर्त्तन होते रहते हैं। सूर्य की ही गर्मी व प्रकाश से चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है। पृथ्वी सूर्य से केवल प्रकाश व ताप ही नहीं प्राप्त करती बल्कि इन दोनों तरीकों से वह अपने प्राणी व वनस्पति संसार के लिए हर प्रकार की शक्ति प्राप्त करती है। पौधों और जीव-जन्तुओं का प्राण तो सूर्य ही है।

सूर्य का ताप इतना अधिक है कि इसके निरीक्षण में बड़ी कठिनाई होती है। सामान्य रूप से देखे जाने पर सूर्य का धरातल बड़ा गुँथा हुआ मालूम पड़ता है। अक्सर इस प्रकार विभिन्न आकार व विस्तार के काले धब्बे भी दिखलाई पड़ते हैं। (देखिये **Solar system, Sun spot**)

Sunrise, Sunset (सूर्योदय, सूर्यास्त) सूर्य तो अपने स्थान पर स्थिर है परन्तु पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है। इसलिये प्रत्येक स्थान पर एक समय सूर्य क्षितिज के

ऊपर उठता हुआ दिखलाई पड़ता है इसे सूर्योदय कहते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर एक समय सूर्य क्षितिज के नीचे डूबता हुआ मालूम पड़ता है। इसे सूर्यास्त कहते हैं।

चूँकि सूर्य का दिखलाई पड़नेवाला व्यास काफी बड़ा होता है इसलिये सूर्य के क्षितिज के साथ प्रथम और अन्तिम सम्पर्क के बीच कुछ समय गुजर जाता है। अतएव सूर्यास्त और सूर्योदय में उस समय को लेते हैं जब सूर्य का केन्द्र क्षितिज पर आ जाता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त का समय अक्षांश तथा सूर्य के झुकाव के अनुसार बदलता रहता है।

Sunshine (सूर्य प्रकाश) जो प्रकाश सूर्य से सीधे पृथ्वी पर पहुँचता है और जिसके कारण संसार की वस्तुयें दिखलाई पड़ती रहती हैं उसे सूर्य प्रकाश कहते हैं। सूर्य प्रकाश सूर्य विकिरण का वह अंश है जिसमें लाल व फीरोज़ी रंग की प्रकाश लहरें शामिल रहती हैं।

जलवायु व ऋतु विज्ञान में सूर्य प्रकाश की अवधि व काल के सहारे यह पता लगाते हैं कि एक विशेष स्थान पर सूर्य का प्रभाव कितना रहता है। सूर्य प्रकाश की अवधि को घंटों में व्यक्त करते हैं। प्रायः एक निश्चित काल के भीतर सूर्य प्रकाश की दैनिक अवधि का मध्यम-मान निकालकर व्यक्त करते हैं।

सूर्य प्रकाश के साथ अल्ट्रा वायलेट रश्मियों का बड़ा गहरा सम्बन्ध है और इनका औषधि के दृष्टिकोण से बड़ा मूल्य है यद्यपि ये दिखलाई नहीं पड़तीं।' (देखिये Isobel, Sunshine Recorder)

Sunshine Recorder (सूर्यप्रकाश मापक यन्त्र) प्रत्येक दिन में सूर्य प्रकाश की अवधि को नापने के यन्त्र को सूर्य प्रकाश मापक यन्त्र कहते हैं। इस यन्त्र में एक चौखट होती है जिसके बीचोबीच में एक अण्डाकार शीशा रखा रहता है और उसके नीचे अंकित कार्ड की एक पट्टी रक्खी रहती है।

इस अण्डाकार शीशे के द्वारा उत्पन्न सूर्य का प्रतिबिम्ब कार्ड को प्रज्वलित कर देता है। प्रज्वलित रेखा की लम्बाई सूर्य के आकाश में चढ़ने के साथ-साथ बढ़ती जाती है और इससे एक दिन में सूर्यप्रकाश की अवधि को घंटों में माप लिया जाता है।

Sunspot (सनस्पॉट) सूर्य के धरातल पर अक्सर दिखलाई पड़नेवाले काले धब्बों को सनस्पाट कहते हैं। कभी-कभी सनस्पाट इतने बड़े होते हैं कि इनको धुयें से काले किये हुये शीशे या बादल की परत के जरिये नेत्र द्वारा देखा जा सकता है। इनकी उत्पत्ति का कारण तो अज्ञात है परन्तु ऐसा विश्वास है कि सूर्य के वातावरण के भीतर घूमती हुई गैस से ये धब्बे बन जाते हैं।

ये धब्बे आकार व विस्तार में बराबर बदलते रहते हैं। इन्हें देखकर गैलीलिओ ने यह पता लगाया कि सूर्य अपनी धुरी पर एक चक्कर २५ दिन में पूरा कर लेता है। सनस्पॉट की संख्या और विस्तार सदैव एक समान नहीं रहता। प्रायः सनस्पॉट के चक्र के अनुसार घटते बढ़ते हैं। हर ११ साल के बाद सनस्पॉट की संख्या व विस्तार बढ़ जाता है। एक समय सूर्य में धब्बे बिल्कुल नहीं दिखलाई पड़ते, फिर कुछ छोटे-छोटे धब्बे दिखलाई पड़ने लगते हैं। और अन्त में ये बहुत बड़े व अधिक हो जाते हैं। इस पराकाष्ठा पर पहुँचने के बाद घटती फिर शुरू हो जाती है और ११ साल के बाद फिर सनस्पॉट रहित समय आ जाता है। साधारणतया सनस्पॉट केवल कुछ ही दिन तक रह पाते हैं परन्तु कुछ सनस्पॉट एक महीने तक टिक जाते हैं। एक-आध सनस्पॉट ६ महीने तक ही चल जाते हैं। सनस्पॉट की सामान्य व्यवस्था एक लम्बी धारा के रूप में होती है जो सूर्य की मध्य रेखा के समानान्तर रहते हैं।

विस्तार में ये सनस्पॉट छोटे कण या अणु से लेकर दस हजार लाख वर्ग मील क्षेत्रफल तक के होते हैं।

सनस्पॉट दो प्रकार के होते हैं—मैकुली (Maculae) और फैकुली (Faculae) मैकुली तो काले धब्बे होते हैं और फैकुली दोनों तरफ की लम्बी प्रकाश रेखायें जो इतनी चमकती हुई होती हैं कि सूर्य के प्रकाश में भी दिखलाई पड़ती हैं और ऐसी मालूम पड़ती हैं जैसे कि ज्वार का झाग हो।

सनस्पॉट की विशेषताओं का अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसकी क्रिया-कलाप ज्वालामुखी के भीषण विस्फोट के समान होती है और जब ये अधिक संख्या में रहते हैं तो पृथ्वी पर चुम्बकीय तूफान आ जाते हैं तथा ध्रुवीय प्रकाश दिखलाई पड़ने लगता है।

जब सूर्य में सनस्पॉट छोटे व कम संख्या में रहते हैं तो उसे सनस्पॉट की न्यूनतम दशा कहते हैं और केवल बहुत ऊँचे अक्षांशों में ही दिखलाई पड़ते हैं। जब उनकी संख्या व विस्तार दोनों ही बढ़ जाता है तो उसे सनस्पॉट की अधिकतम दशा कहते हैं। तब ये भूमध्य रेखा तक दृष्टिगोचर होने लगते हैं। सनस्पॉट से इस बात का पता चलता है कि सूर्य के अन्दर कितना अधिक ताप व प्रकाश है।

Superimposed Drainage (पूर्व आरोपित प्रवाह) जहाँ की धरातल की बनावट ऐसी होती है कि ऊपर की कोमल चट्टानों के नीचे कठोर चट्टानें बिछी होती हैं वहाँ वर्षा का जल पहिले तो ऊपरी सतह के बीच अपनी धारा बनाता है। जल की यह धारा अपनी तलैटी को गहरा करती हुई बहुधा नीचे की कठोर चट्टान पर पहुँच जाती है। लेकिन इसकी दिशा व मार्ग में कोई भी परिवर्त्तन नहीं होता। जल प्रवाह नीचे की कठोर चट्टान पर पूर्व आरोपित हो जाता है। बाद में इस प्रकार का पूर्व आरोपित प्रवाह कठोर चट्टान के बीच अपने मार्ग स्थिर कर ले यह कुछ निश्चित नहीं है। इंग्लैंड के झील प्रदेश का जल प्रवाह इसी प्रकार का है।

चट्टानों की किस्म बदल जाने पर नदी में भँवर, प्रप त आदि बन जाते हैं और पाट भी तंग हो सकता है।

Superficial Eruption (ऊपरी उद्गार) शुरू-शुरू में जब पृथ्वी का पर्त पतला और कमज़ोर था उस समय मैग्मा आसानी से भूमि को तोड़ कर बाहर निकल पड़ता था और धरातल के विस्तृत भाग को पिघला देता था। इस प्रकार के उद्गार में विस्फोट आदि नहीं होता बल्कि मैग्मा उबल कर बाहर निकलता रहता है। इसे ऊपरी उद्गार कहते हैं।

Surf (तरंग) गहरे पानी से आने वाली लहरें जब किनारे के उथले पानी में पहुँचती हैं तो तली से रगड़ खाकर उनका वेग बहुत अधिक हो जाता है और वे चट्टानों या तट से टकराकर बड़ा झाग या फेना उछालती हैं। इस प्रकार की लहरों को तरंग कहते हैं।

Surveying (पैमाइश) भूमि के वास्तविक नाप द्वारा विस्तृत मानचित्र बनाने के काम को पैमाइश कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम यूँ कह सकते हैं कि पृथ्वी के धरातल पर विन्दुओं की सापेक्षिक स्थिति को जानने के लिए जो निरीक्षण व माप की जाती है उसे पैमाइश कहते हैं। इसके अन्तर्गत रेखिक व कोणिक माप तथा विभिन्न वस्तुओं की ऊँचाई को अध्ययन किया जाता है। साधारण पैमाइश में पृथ्वी की मोड़ को छोड़ कर सारे माप, समतल या लम्बतल पर मानकर लिये जाते हैं। यान्त्रिक पैमाइश में पृथ्वी के मोड़ पर ध्यान दिया जाता है जो कि ३४।१/२ मील में एक फुट होता है। १०० वर्गमील के क्षेत्रफल के लिये साधारण पैमाइश ही ठीक रहती है।

पैमाइश में त्रुटि के अभाव का अंश इस बात पर निर्भर रहता है कि वह किस उद्देश्य के लिए की जा रही है। यथार्थता के दृष्टिकोण से पैमाइश को दो प्रकार का कहा जा सकता है—(१) त्रिभुजीकरण या अधिक ठीक व विस्तृत पैमाइश।

(२) चलकर माप या जल्दी में की गई त्रुटिपूर्ण पैमाइश को और भी आधार पर कई भागों में बाँट सकते हैं—(१) भूमिति चित्रों के लिए पैमाइश (२) नगर चित्रों के लिए पैमाइश (३) भूगर्भ अन्वेषण के लिए पैमाइश और (४) सैनिक संचालन के लिए पैमाइश।

प्रत्येक प्रकार की पैमाइश में तीन प्रकार के काम करने पड़ते हैं—

(१) मैदान का काम—दूरी व कोण को नापना तथा निरीक्षण को दर्ज करना।

(२) दफ्तर का काम—गणना करना, रेखायें खींचना और मानचित्र बनाकर पूरा करना। (३) यन्त्रों को सावधानी से व्यवस्थित करना।

Swamp (पंक भूमि) निचली भूमि का वह क्षेत्र जो पानी से दलदली रहता है और जिस में वनस्पति उगती रहती है उसे पंक भूमि कहते हैं। यह दलदल (Marsh) और बॉग (Bog) से भिन्न होता है। दलदल से तो यह भेद है कि पंक भूमि सदैव पानी से घिरी रहती है और बॉग से इसकी भिन्नता इस बात में रहती है कि बॉग में वनस्पति सड़ती पायी जाती है। वास्तव में पंक भूमि, दलदल और बॉग पास-पास पाये जाते हैं और साधारण भाषा में तीनों में कोई विशेष भेद नहीं माना जाता।

पंक भूमि की नमी का कारण तो सामान्य जलप्रवाह में कोई रुकावट होती है। जलप्रवाह में यह रुकावट या तो भूमि के चौरस होने से या अप्रवेश्य चट्टानों के कारण या वनस्पति की घनी उपज के कारण हो जाता है और पंक भूमि बन जाता है। कभी-कभी झील के बेसिन के भर जाने से भी पंक भूमि बन जाती है क्योंकि सतह इतनी चौरस होती है कि वर्षा के जल का बहाव बड़ा धीरे-धीरे होता है। इस नम मिट्टी में वनस्पति उग आती है और पंक भूमि की सी दशाओं को कायम रखने में सहायक होती है।

इस प्रकार की पंक भूमि में सामान्यतः ऊसर पड़े रहते हैं। यद्यपि इनके कुछ भाग में व्यापारिक लकड़ी उगती हुई मिलती है और कुछ में चावल उगाया जाता है। ये पंकभूमियाँ या तो तटीय मैदानों में या नदी के बाढ़ के मैदान और डेल्टा-प्रदेशों में पाये जाते हैं। नदी का निक्षेप वर्षा जल के बहाव में रुकावट पैदाकरके पंक भूमि को जन्म दे देते हैं।

पंक भूमि का अस्तित्व जल के बहाव, प्रवेश करने की गति, वाष्पीकरण की मात्रा और वर्षा की मात्रा पर निर्भर रहता है। इसीलिये शुष्क प्रदेशों की पंक भूमियाँ उष्ण कटिबंध में अधिक पायी जाती हैं। हिम आवरण के कारण जल प्रवाह के अस्तव्यस्त हो जाने से भी पंक भूमियाँ बन जाती हैं। तर जलवायु में तो पंक भूमि पहाड़ों के ढालों पर भी पाये जाते हैं—इन्हीं पंक भूमियों में कोयले के जगर का जन्म हुआ है।

Swell (उभाड़) समुद्र के जल की सतह पर जब लहरें या ज्वार-भाटा नहीं आता तब उसकी गति ऊपर नीचे को होती हुई रहती है। जल के इस प्रकार ऊपर-नीचे होने को उभाड़ कहते हैं। इसका कारण बहुत काफी दूरी पर हुई घटना हो सकती है परन्तु घटना के समाप्त होने के बाद भी यह उभाड़ जारी रहता है।

Sympathetic Shocks (सहकारी कम्पन) भूकम्प की लहरों का अधिक प्रभाव भूकम्प केन्द्र पर पड़ता है, अतः उसके आसपास के क्षेत्र में सबसे अधिक हानि होती है। परन्तु भूकम्प के प्रमुख धक्के के बाद बहुत समय तक अल्पकालिक धक्के आते रहते हैं क्योंकि टूट जाने के पीछे बहुत समय तक चट्टानें थरथराती रहती हैं। इन्हें सहकारी कम्पन कहते हैं।

जिस प्रकार यदि टईं के ढेर में से एक ईंट को खींच लिया जाय तो उसके ऊपर की ईंट गिर जाती है और पास की ईंट अस्तव्यस्त हो जाती है। थोड़ी देर बाद ये अस्त व्यस्त ईंटें भी सरक पड़ती हैं। इसी प्रकार भूकम्प के प्रधान धक्के से कुछ दूर पर स्थित धरातल की व्यवस्था उलट-पुलट जाती है और वहाँ जो कम्पन आते हैं वे प्रधान कम्पन के साथी होते हैं। इसलिये उन्हें सहकारी कम्पन कहते हैं।

Syncline (**संनति**) धरातल पर भिचाव उत्पन्न होने से नरम चट्टान में जब मोड़ पड़ते हैं तो इनका एक भाग मेहराब की तरह उठ जाता है और दूसरा भाग नीचे झुक कर धँस जाता है। इसे संनति कहते हैं।

सनंति का आकार एक नाँद की तरह या उल्टे हुये मेहराब के समान होता है। मोड़-दार पर्वत प्रदेश की घाटियाँ इन्हीं संनति में बन जाती हैं। (देखिये Anticline)

Synclinal Mountain (**संनति पर्वत**) साधारणतया मोड़दार पर्वतों में प्रति-नति तो श्रेणियाँ होती हैं और संनति घाटियाँ। परन्तु जब किन्हीं विशेष कारणों से सनंति तो पर्वत की चोटियाँ बन जाते हैं और प्रतिनति में घाटियाँ तो इस प्रकार के पर्वत का संनतिकार पर्वत कहते हैं।

इस प्रकार के पर्वतों के बनने का मुख्य कारण जलविभाजकों का विलीन होना है। यदि किसी घाटी के दोनों ओर दो प्रतिनति स्थित हों और उनके ऊपर की परत कठोर चट्टानों की बनी हो तथा उनके नीचे मुलायम चट्टानें स्थित हों तो प्रतिनति की दरार में आवरण क्षय करती हुई घाटियाँ बनने लगती हैं। चट्टानों की बनावट के कारण शिखर पर की घाटी सनंति की अपेक्षा अधिक गहरी व बड़ी बन जायगी। धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब ये प्रतिनति घाटियाँ सनंति से भी नीची हो जाती हैं और तब सनंतिकार पर्वत और प्रतिनति घाटियाँ बन जाते हैं।

इस प्रकार के पर्वत भूरा पर्वत प्रदेश में बनना शुरू हो रहे हैं और अपलेशियन में बहुत विकसित रूप से पाये जाते हैं।

Synoptic Charts (**सांकेतिक ऋतु चित्र**) एक निश्चित समय पर लिये गये ऋतु सम्बन्धी निरीक्षण को जिस मानचित्र द्वारा अंकित किया जाता है उसे सांकेतिक ऋतुचित्र कहते हैं। ऋतु सम्बन्धी मानचित्र को बनाने के लिए अनेक प्रकार के आँकड़ों की आवश्यकता पड़ती है। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा मान्य एक निश्चित समय पर ऋतुसम्बन्धी दशाओं का निरीक्षण करके विभिन्न वेधशालाओं में अनेक प्रकार के आँकड़े प्राप्त किये जाते हैं। जहाज से भी निरीक्षण करके आँकड़े प्राप्त करते हैं और उन्हें प्रत्येक देश की केन्द्रीय वेधशाला को भेजते हैं। इस सूचना या समाचार में एक विशेष प्रदेश की ऋतुदशाओं का सारांश या संक्षेप दिया रहता है। इन संक्षेप सूचना के सहारे बनाये गये मानचित्र को सांकेतिक चित्र कहते हैं। (देखिये Weather Chart) संक्षेप सूचना ब्यूफार्ट साहेब के निकाले हुये वर्णों द्वारा प्रसारित की जाती है और इन वर्णाक्षरों को दुहरा कर या अन्य प्रकार से अंकित करके सांकेतिक चित्र बनाये जाते हैं।

Synchronous Charts (**समकाल सांकेतिक चित्र**) जैसा नाम से ही विदित है वे सांकेतिक चित्र जो एक विशेष समय या काल में ऋतु सम्बन्धी दशायें दिखाते हैं उन्हें समकाल सांकेतिक चित्र कहते हैं। (देखिये Synoptic Chart)

Synclinorium (**सिनक्लिनोरियअम**) वह बड़ी घाटी होती है जिसका आकार सनंति की तरह होता है और जिसके दोनों पार्श्वों पर अनेक मोड़ पाये जाते हैं।

Syzygy (**सिजीजी**) जहाँ दो ग्रह या तारे मिलते हैं उस बिन्दु को सिजीजी कहते

हैं। यह पारिभाषिक शब्द चन्द्रमा के लिए विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के साथ एक सीधी रेखा में स्थित रहता है तो उस दशा को सिजीजी कहते हैं। इस प्रकार की दशा दुइज और पूर्णमासी के दिन उत्पन्न होती है। (देखिये Phases of Moon)

Tableland (टेब्ललैण्ड) पठार के दोनों तरफ तीव्र ढाल चट्टान रहती है और इस तीव्र ढाल से उतरते ही एकाएक या तो समद्र आ जाता है या निम्न मैदान, और उसे टेबुललैण्ड कहते हैं। दक्षिणी अफ्रीका इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

इसका ऊपरी शिखर एक मेज की तरफ सीधा सपाट होता है। इसीलिए इसको इस नाम से पुकारते हैं। (देखिये Plateau)

Taiga (टैगा प्रदेश) साइबेरिया में नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वन की पट्टी को टैगा प्रदेश कहते हैं। यह प्रदेश पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ है और इसके उत्तर में टुन्ड्रा प्रदेश है जिसमें किसी प्रकार की वनस्पति नहीं पाई जाती और इसके दक्षिण में स्टेपी नामक घास के मैदान हैं। (देखिये Coniferous Forest)

टैगा प्रदेश के मुख्य पेड़ चीड, फर, स्प्रूस और लार्च हैं। इसके बीच में बहुत सी पंक भूमियाँ पाई जाती हैं जो वसन्त और गर्मी के मौसम में अधिकतर भूमि पर बाढ़ का पानी फैल जाने से दलदल हो जाता है। उत्तर की दिशा में बहने वाली नदियों का ऊपरी भाग तो जमा रहता है परन्तु निचले भाग में बर्फ के पिघल जाने से किनारों के ऊपर से पानी इधर-उधर फैल जाता है।

यद्यपि इस प्रदेश में यातायात की असुविधा के कारण बहुत उन्नति नहीं हो पाई है परन्तु इसकी उन्नति की बहुत सम्भावना है।

Talus (टैलुस) मौसमी क्षति के कारण पर्वतों की चट्टानों के टूटे-फूटे टुकड़े व शिलाखंड गुरुत्वाकर्षण के कारण जब पर्वत के आधार तल पर आकर इकट्ठा हो जाते हैं तो उन्हें टैलुस कहते हैं। इस शिलाखंड राशि में छोटे-बड़े, गोल-चौकोर और तिकोने सभी प्रकार के टुकड़े मिले पाये जाते हैं।

टैलुस का ढाल इतना तीव्र होता है कि जरा सी हलचल से सारी राशि ढाल पर से नीचे को खसकने लगती है। नदियों व हिमनदियों के प्रवाहित होने पर ये शिलाखंड बोझे के रूप में बहा ले जाये जाते हैं और आवरणक्षय में सहायता करते हैं।

लहरों व धाराओं में जो शिलाखंड मिले या घसीटते चलते हैं और तटीय आवरणक्षय में सहायता करते हैं उन्हें सामुद्रिक टैलस कहते हैं।

Talus Creep (शिलाखंड राशि का सरकाव) टैलुस ढाल पर से शिलाखंडों के अपने आप नीचे को खसकने को शिलाखंड राशि का सरकाव कहते हैं। इसका प्रधान कारण गुरुत्वाकर्षण है। परन्तु पानी के भीतर सोखकर ढीले पड़ जाने से भी खसकाव में सहायता मिलती है।

Tanks (तालाब) भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क प्रदेशों में छोटी-छोटी नदियों की घाटी के आरपार मिट्टी की दीवाल बना कर पानी को इकट्ठा कर लेते हैं। इस प्रकार बनी झीलों व जलाशयों को तालाब कहते हैं। इन तालाबों में वर्षा ऋतु का पानी इकट्ठा हो जाता है जिससे गर्मी के मौसम में सिचाई की जाती है। इन प्रकार के तालाबों का उपयोग शुष्क मौसम में ही होता है परंतु इनमें से अधिकांश का जल तो बिल्कुल ही सूख जाता है और गर्मी के मौसम में सर्वथा बेकार हो जाते हैं। कई वर्ष तो ऐसा होता है कि वर्षा होने पर भी ये तालाब नहीं भर पाते हैं।

तालाब बनाने में अधिक खर्चा नहीं होता क्योंकि केवल बाँध बनाकर पानी को रोकना पड़ता है। तालाव वहाँ बनाये जाते हैं जहाँ की बनावट पथरीली व पठारी होती है और अन्य किसी प्रकार के सिंचाई के साधन उपलब्ध नहीं होते हैं।

Tarn (टार्न) पर्वतीय प्रदेशों में हिमागारों या सिरक नामक गड्ढों में जल भर जाने से जो छोटी झीलें बन जाती हैं उन्हें टार्न कहते हैं।

Tactonic (भौगर्भिक) पृथ्वी के धरातल पर पाये जानेवाले विभिन्न स्थलरूपों को निर्माण करने वाली शक्तियों व दशाओं को भौगर्भिक कहते हैं। आन्तरिक ताप, भीतरी चट्टानों के प्रसार या मकुड़ने और पिघले हुये मैग्मा के इधर-उधर स्थानान्तरित होने पर भूगर्भ में कुछ घटनायें घटित होती रहती हैं। इन घटनाओं से उत्पन्न स्थलरूप निर्माण-कारी शक्ति के प्रभाव से कहीं का भाग ऊपर उठ जाता है और कहीं नीचे धँस जाता है। इसी प्रकार कहीं पर भिंचाव के कारण मोड़ पड जाते हैं तो कहीं खिचाव के कारण दरारें बन जाती हैं। इस प्रकार दो प्रकार की भौगर्भिक शक्तियाँ कही जा सकती हैं:—

(१) भूखंड निर्माणकारी जिनसे धरातल ऊँचा उठता और नीचे धँसता है। इसके द्वारा महाद्वीप व महासागर बन जाते हैं। यह शक्ति नीचे से ऊपर दिशा में आघात करती है।

(२) पर्वतनिर्माणकारी धरातल पर तनाव या खिंचाव पड़ कर स्तर भ्रंश हो जाता है या खिचाव के द्वारा मोड़ पड़ जाते हैं जिससे मोड़दार पर्वत व घाटियाँ बन जाती हैं। यह शक्ति दायें से बायें को आघात करती है। (देखिये Epierogenic, Orogenic Movement) भौगर्भिक शक्तियाँ बाह्य शक्तियों से भिन्न होती हैं जिनका काम आवरणक्षय द्वारा भूमि को समतल बनाना होता है।

Tectonic Lake (भौगर्भिक झील) भौगर्भिक शक्तियों से बनी झीलों को भौगर्भिक झील कहते हैं। शक्ति विशेष के अनुसार ये निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं:—

(१) **नवीन उत्क्षेप की झील** जब कोई स्थलखंड समुद्र से बाहर निकल आता है तो पहिले समुद्री तलैटी के गड्ढों में जल भरा निकल आता है और उथली झीलें बन जाती हैं। इस प्रकार झीलें फ्लोरिडा में पाई जाती हैं। इन झीलों का अस्तित्व अस्थायी होता है। इनकी रूप-रेखा अनियमित, किनारे बहुत नीचे और जल उथला होता है।

(२) **आन्तरिक बेसिन झील** (देखिये Basin Range lake)

(३) **भूकम्प झील** भूकम्प आने पर भूपटल पर चट्टानों की व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है और भूपटल के कुछ भाग के धँस जाने पर झील बन जाती है।

(४) **दरार घाटी झील** (देखिये Rift Valley)

Tectonic Mountains (**भूगर्भ की शक्तियों से निर्मित पर्वत**) भूगर्भ में दो प्रकार की घटनायें होती हैं। एक तो वे जो भिंचाव व मिंचाव के द्वारा भूपटल पर जोड़ व दरार बना देती हैं और दूसरी वे जो इस प्रकार मुड़े हुये भाग को या टूटे हुये भाग को उठा देती हैं या नीचे बैठा देती हैं। फलतः इस श्रेणी में तीन प्रकार के पर्वत आते हैं—

(१) मोड़दार पर्वत, (२) भूभाग निर्मित पर्वत और (३) लैकोलिथ या गम्बदनुमा पर्वत (देखिये Folded Mountain, Block Mountain, Laccolith)

Temperate Zone (**शीतोष्ण कटिबंध**) ऊष्ण कटिबंध और शीत कटिबंध के बीच का मध्यवर्त्ती अक्षांश प्रदेश शीतोष्ण कटिबंध कहलाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में कर्करेखा और आर्कटिक के बीच का प्रदेश शीतोष्ण कटिबंध कहलाता है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा और अन्टार्कटिक वृत के प्रदेश को शीतोष्ण कटिबंध कहते हैं।

इस प्रदेश में सूर्य कभी भी लम्बवत नहीं चमकता है । सूर्य की किरणें कई दिशाओं से होकर चमकती हैं। इसलिए यहाँ पर गरमी व सर्दी का मौसम विशिष्ट व अलग-अलग होते हैं। इस कटिबंध को शीतोष्ण तो जरूर कहा जाता है परन्तु केवल दक्षिणी गोलार्द्ध के प्रदेशों और उत्तरी गोलार्द्ध के पश्चिमी तटीय प्रदेशों को छोड़कर जलवायु कहीं भी शीतोष्ण नहीं होती। उत्तरी अमरीका और यूरेशिया के आन्तरिक व पूर्वी प्रदेशों की जलवायु काफी विषम रहती है।

तापक्रम के आधार पर शीतोष्ण कटिबंध को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) शीतोष्ण कटिबंध के गरम प्रदेश और (२) शीतोष्ण कटिबंध के शीतल प्रदेश। शीतोष्ण-कटिबंध के गरम प्रदेश ३०° और ४५° अक्षांशों के बीच में पाये जाते हैं। इन अक्षांशों के भीतर महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में भूमध्य सागरीय जलवायु पायी जाती है। और महाद्वीपों के पूर्वी भागों में इन्हीं अक्षांशों के बीच चीन तुल्य जलवायु पायी जाती है। (देखिये Mediterranean Type, Cotton belt Climate or China-type Climate)

शीतोष्ण कटिबंध के शीतल प्रदेश ४५° से ६०° या ६५° अक्षांशों तक स्थित हैं। इन अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में तो बड़ी ही सम जलवायु पायी जाती है जिसे पश्चिमी यूरोप जैसी जलवायु कहते हैं। इसके विपरीत महाद्वीपों के बीच में—कनाडा और यूरेशिया के उत्तरी भाग में—बड़ी विषम महाद्वीपीय जलवायु पायी जाती है।

Temperate Cyclone (शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात) शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात उत्तरी आन्ध्र महासागर में जाड़े के मौसम में बहुत आते हैं। इनकी उत्पत्ति का कारण संवाहन धारायें कदापि नहीं हैं। ये दो प्रकार से बनते हैं और इसी आधार पर इनके दो भेद किये जा सकते हैं :—

(१) सीमान्त जन्म चक्रवात जो विभिन्न प्रकार के तापक्रम वाली हवाओं के मिलने से बन जाते हैं। ध्रुवीय ठण्डी हवा जब अयनरेखाओं के पास से उठकर चलनेवाली गरम हवा से मिलती है तो ध्रुवीय सीमान्त बन जाता है और वहीं इन चक्रवात की सृष्टि हो जाती है। (देखिये Polar Front) ( ) चक्रवात जो स्थल की अपेक्षा गरम जलखंडों या जलखंडों की अपेक्षा गरम स्थल खंडों पर बन जाते हैं। यह अधिक स्थायी नहीं होता और वहाँ बन जाता है जहाँ आसपास की अपेक्षा बीच के प्रदेश का वायुभार कम होने से न्यूनभार केन्द्र बन जाता है। ऐसा होने पर चारों ओर से हवायें न्यूनभार की ओर दौड़ पड़ती हैं और चक्रवात बन जाता है। ऐसे ही चक्रवात दक्षिणी-पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र, साइबेरिया प्रायद्वीप, दक्षिणी आइसलैंड और दक्षिणी-पूर्वी ग्रीनलैंड में बन जाते हैं। (३) भ्रमणशील चक्रवात वह होते हैं जो ताप संवाहन धाराओं के कारण बन जाते हैं और द्रवीभवन द्वारा परित्यक्त गर्मी से कायम रहते हैं। ये बिल्कुल अस्थायी होते हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात लाखों वर्ग किलोमीटर में फैले रहते हैं। उत्तरी अमरीका में इनका विस्तार २५०० किलोमीटर तक होता है। ये विस्तृत चक्रवात उत्तरी गोलार्द्ध में पश्चिम से पूर्व को पछुआ हवाओं के साथ चलते हैं। महाद्वीपों पर से गुजरने पर यह दक्षिण को झुक जाते हैं परन्तु महासागरों पर से अपने मार्ग से उत्तर की ओर विचलित हो जाते हैं। इन चक्रवातों की चाल मौसम पर स्थिति और विशेष चक्रवात की तीव्रता पर निर्भर रहती है। गरमी में इनकी चाल सबसे धीमी होती है और जाड़े में सबसे तेज। उत्तरी अमेरिका में ये चक्रवात बहुत तेज होते हैं परन्तु यूरोप में इनकी गति धीमी हो जाती है।

शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात के केन्द्र स्पष्ट नहीं होते। वास्तव में उष्ण कटिबंधीय

चक्रवात की वायु प्रणाली से इसकी वायु व्यवस्था बिल्कुल ही भिन्न होती है। केवल छोटे व तीव्र बवण्डर में ही उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की सी दशायें पायी जाती हैं। अक्सर ऐसा होता है कि चक्रवात की आगे बढ़नेवाली हवा की गति चक्रवात से भी कम होती है। इसलिए यह वायु चक्रवात के केन्द्र के चारों ओर न घूमकर पीछे ही छुट जाती है। तूफान के विभिन्न क्षेत्र में हवाओं का रुख अलग-अलग होता है। दक्षिणी और पूर्वी चतुर्थांशों में हवा बड़ी प्रचण्ड रहती है। हवा का रुख चक्रवात के ही समान होता है। चक्रवात की हवाओं का मुख्य अंश जो २-३ किलोमीटर की ऊँचाई पर तथा ५-६ किलोमीटर से नीचे चलती रहती है। उनकी दिशा धरातल की समभारदर्शक रेखाओं के समानान्तर ही होती है।

चक्रवात की गति और वर्षा की मात्रा का सम्बन्ध अजीब है। जो चक्रवात धीरे-धीरे चलता है, उसकी हवायें अधिक देर तक ठहरती हैं और इसीलिए वर्षा की मात्रा बहुत अधिक होनी है। वर्षा अधिक देर तक भी होती रहती है। इसके विपरीत तेज चक्रवात में वर्षा की अवधि व मात्रा दोनों ही कम होते हैं।

Temperature (तापक्रम) किसी पदार्थ के अन्दर गर्मी के अंश को तापक्रम कहते हैं। किसी पदार्थ के तापक्रम को थर्मामीटर यन्त्र की सहायता से सेन्टीग्रेड या फार्नहीट अंशों में नापते हैं। तापक्रम, तापशक्ति से उत्पन्न दशा को बतलाता है। और पृथ्वी के ताप का अधिक भाग सूर्य से प्राप्त होता है यद्यपि इसका कुछ अंश भूगर्भ से भी आता रहता है। सूर्यताप पृथ्वी की वस्तुओं को गरम कर देता है और इस के सम्पर्क से संवाहन धाराओं द्वारा यह ताप वायुमण्डल की विभिन्न परतों में फैल जाता है। (देखिये **Insolation**)

किसी स्थान पर तापक्रम की दशा निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर रहती है—(१) क्षितिज पर सूर्य की ऊँचाई और दिन की अवधि। इसीलिये जाड़ों की अपेक्षा गर्मी के मौसम में तापक्रम अधिक रहता है। (२) धरातल की बनावट—(अ) जल और थल का वितरण, (ब) समुद्रतल से ऊँचाई प्रत्येक ३३० फीट ऊँचाई पर १° फार्नहीट तापक्रम कम होता जाता है। (देखिये **Inversion of Temperature**)। (३) वायुमण्डल की पारदर्शकता व घनत्व। वायुमण्डल में जलवाष्प और धूल के कण मिले रहते हैं। इनकी उपस्थिति से वायुमण्डल के तापक्रम में परिवर्तन हो जाता है। जलवाष्प का तापक्रम पर कंबल जैसा प्रभाव पड़ता है। चक्रवात और विपरीत चक्रवात से भी तापक्रम पर असर पड़ता है क्योंकि मेघाच्छादिता या दूसरे जगहों के तापक्रम को लाकर तापक्रम में परिवर्त्तन कर देते हैं। (४) प्रचलित वायु की दिशा।

अधिक तापक्रम वाली वस्तु से कम तापक्रम वाली वस्तु में ताप के प्रवेश करने की तीन विधियाँ हैं—(१) संचालन जिसमें सम्पर्क द्वारा एक कण से दूसरे कण में ताप प्रवेश करता है, (२) संवाहन जिसमें किसी वस्तु के कण गरमी के केन्द्र से ताप लेकर ऊपर की ओर उठते हैं और (३) विकिरण जिसमें ताप एक वस्तु से दूसरी वस्तु में या एक स्थान से दूसरे स्थान को बिना किसी भौतिक आधार के जाता है।

धरातल पर भूमध्य रेखा से ध्रुवों की तरफ बढ़ने पर तापक्रम बराबर घटता जाता है और इसे तापक्रम का समानान्तर वितरण कहते हैं। इसे समतापरेखाओं द्वारा दिखलाया जाता है। (देखिये **Isotherms**)। समुद्रतल से हम जितना ही ऊपर उठते हैं तापक्रम कम होता जाता है।

तापक्रम में दिन के विभिन्न समय तथा ऋतुओं के अनुसार परिवर्त्तन होता रहता है।

इसके द्वारा एक समय तापक्रम अत्यधिक और दूसरे समय न्यूनतम हो जाता है। इसे तापान्तर कहते हैं। (देखिये Range of Temperature)

तापक्रम को अंकित करते समय प्रत्येक दिन के अधिकतम और न्यूनतम तापांश को लेते हैं। इन दोनों का औसत तापांश का दैनिक मध्यममान कहलाता है। मास के सभी दिनों के मध्यमान तापांश के औसत को मासिक मध्यममान कहते हैं। किसी स्थान पर ३०-४० वर्षों तक एक ही दिन का तापक्रम लेते रहने से उसका औसत निकाल कर किसी स्थान पर तापक्रम में सामान्य तापक्रम (Normal Temp.) ज्ञात करते हैं।

Temperature anomaly (तापक्रम भिन्नता) मध्यममान और उस स्थान की अक्षांश रेखा पर मध्यममान तापक्रम के अन्तर को तापक्रम भिन्नता कहते हैं। स्थानीय व अक्षांशीय तापक्रम दोनों को ही इस प्रकार निकालते हैं जैसे कि वे समुद्रतल पर ही हों।

यदि कोई स्थान अपने अक्षांश के मध्यमान तापक्रम की अपेक्षा अधिक गर्म हो तो वहाँ पर तापक्रम भिन्नता को निश्चित कहते हैं। इसके विपरीत यदि अक्षांश के मध्यमान तापक्रम की अपेक्षा कोई स्थान ठंढा हो तो तापक्रम भिन्नता को निषेधात्मक कहते हैं।

संसार में सबसे अधिक तापक्रम भिन्नता आन्ध्र महासागर के उत्तरी-पूर्वी भाग में पायी जाती है। इसके अन्तर्गत ब्रिटिश द्वीप समूह भी सम्मिलित है। जनवरी के महीने में बहुत विस्तृत क्षेत्र में निश्चित तापक्रम भिन्नता २०° फार्नहीट से भी अधिक रहती है। (देखिये Isanamalous Line)

तापक्रम भिन्नता निम्नलिखित बातों पर निर्भर होती है— (१) समुद्र से निकटता अथवा दूरी, (२) प्रचलित हवाओं की दिशा, (३) मिट्टी व चट्टानों का स्वभाव और (४) गर्म या ठंढी जलधारायें। इन चारों बातों में से किन्हीं एक या दो के प्रभाव के फलस्वरूप स्थानीय तापक्रम अक्षांशीय औसत तापक्रम से कम या ज्यादा हो जाता है और तापक्रम भिन्नता बन जाती है।

Temporales (टेम्पोरैल) मध्य अमरीका के प्रशान्त सागरीय तट पर गर्मी के मौसम में चलनेवाली मानसूनी हवाओं को टेम्पोरैल कहते हैं। ये हवायें दक्षिण-पश्चिम से चलती हैं और इन की गति बड़ी प्रचण्ड होती है।

Terrace (उत्तल) (देखिये River Terraces)

Terrace Cultivation (उत्तल खेती) पर्वतों व पहाड़ियों के ढालों पर जहाँ खेतिहर भूमि की कमी रहती है; शुष्क प्रदेशों में जहाँ वर्षा की मात्रा व समय अनिश्चित होता है और उन प्रदेशों में जहाँ भूमि कटाव की समस्या बड़ा प्रचण्डरूप रखती है, खेती की एक विशेष पद्धति को अपनाया जाता है। भमि के ढाल पर काट कर चबूतरों की एक क्रमिक पंक्ति बना ली जाती है जो दूर से देखने पर सीढ़ी जैसी मालूम पड़ती है।

उत्तल खेती

इस प्रकार बनाये गये चबूतरों के तीन ओर मिट्टी की मेड़ या छोटी दीवार उठा दी जाती

हैं ताकि सिंचाई या वर्षा का जल बेकार न बह जाय और साथ-साथ मिट्टी का कटाव भी न होने पाये। इस प्रकार कम से कम जल को उपयोग किया जा सकता है और जल के बहाव पर नियन्त्रण रहने के कारण उस मे उत्पन्न होनेवाली भूमि कटाव समस्याओं से भी रक्षा हो जाती है। इसे उत्तल खेती कहते हैं।

भारत, चीन, जावा आदि देशों के पर्वतीय भागों में जहाँ भमि की कमी है तथा वर्षा अनिश्चित है वहाँ इसी उत्तल खेती द्वारा कृषि की जाती है। भूमिकटाव रोकने के लिए इसी प्रणाली को दक्षिणी अफ्रीका में अपनाया गया है। शुष्क खेती वाले क्षेत्रों में भी इस विधि का विस्तृत प्रयोग किया जाता है।

Terracettes (**टेरासेट्स**) घास से ढके हुये तीव्र ढालों पर छोटे-मोटे भूमि के टुकड़े के सरकने से सीढ़ियाँ सी बन जाती है। इस प्रकार बने चबूतरों का विस्तार बहुत अधिक नहीं होता और घास चरनेवाली भेड़ों व बकरियों के लिए ऊपर चढ़ने की सीढ़ी या मार्ग का काम देती है। इसीलिये इन्हें कभी-कभी मेषपथ भी कहते है। (देखिये Sheep Tracks)

Terral (**टेर्ल**) पश्चिमी पीवर के उष्णकटिबंधीय भाग में चलनेवाली स्थलीय पवन को टेर्ल कहते हैं। (देखिये Virazon)

Terra Rossa (**टेरा रोसा**) चूने की चट्टानों से बने प्रदेशों में कन्दराओं, डोलाइन और पोल्जे आदि गर्तों के धरातल पर पाई जाने वाली लाल मिट्टी को टेरा रोसा कहते हैं। यह इटली भाषा का पारिभाषिक शब्द है।

वास्तव में यह लाल मिट्टी चने की चट्टानों का वह अवशेषांश है जो चूने के घुल कर नष्ट हो जाने पर बचा रह जाता है। यह लाल मिट्टी काफी उपजाऊ होती है।

Terrestrial Magnetism (**धरातलीय आकर्षण**) पृथ्वी स्वयं एक बड़ा चुम्बक है जिसके आकर्षण को धरातलीय आकर्षण कहते हैं। इस आकर्षण की तीव्रता व दिशा हमेशा बदलती रहती है। इस परिवर्त्तन को समझने के लिये बहुत तीव्र चुम्बकों को प्रयोग में लाना पड़ता है और उनके द्वारा थोडा सा दैनिक कम्पन देखा जा सकता है। यह हिलना या कम्पन जाड़े की अपेक्षा गरमी में बहुत अधिक रहता है। इसके अलावा इसका सम्बन्ध सूर्य के धब्बों या सनस्पॉट से भी होता है। जब सूर्य में धब्बे अत्यधिक हो जाते हैं तो यह धरातलीय आकर्षण बढ़ जाता है। इन्हीं सनस्पाट के बहुत अधिक बढ़ जाने पर धरातलीय आकर्षण में विप्लव सा उठ जाता है और चुम्बकीय तूफान आ जाते हैं। (देखिये Magnetism of the Earth)

Terrigenous (**स्थलीय**) इस पारिभाषिक शब्द का साधारण अर्थ तो है स्थल से प्राप्त परन्तु इसे अधिकतर समुद्री निक्षेप के लिए प्रयोग करते हैं। भूखंडों के आस-पास के समुद्र में पायी जाने वाली मिट्टी, बालू, बजरी और कंकड़-पत्थरों की राशि को स्थलीय निक्षेप कहते हैं। यह सभी प्रकार की सामग्री धरातल की टूट-फूट से प्राप्त होती हैं और समुद्र की तली में या तो नदियों व हिमनदियों द्वारा बहाकर या वायु द्वारा उड़ा ला कर इकट्ठा कर दी जाती है।

स्थिति व राशि के कणों के स्वभाव तथा रचना के अनुसार इस स्थलीय निक्षेप को तीन प्रकार का कहा जा सकता है—(१) **तटीय निक्षेप** जो ज्वार के समय पानी में डूब जाता है और भाटे के समय उभड़ आता है। इसमें बड़े-बड़े शिलाखंड, शिन्गल बालू और दलदल पाया जाता है।

(२) **उथले जल निक्षेप** १०० फैदम या ६०० फीट की गहराई तक पाये जाते हैं। बजरी, बालू, और दलदल की इसमें प्रधानता रहती है।

(३) **गहरे सागर के स्थलीय निक्षेप** १०० फैदम या ६०० फीट से अधिक गहराई पर मिलते हैं और महाद्वीपीय सागर के बाहरी किनारों पर पाया जाता है। इसमें कई रंग के दलदल पाये जाते हैं जो कि रसायन के सड़कर अलग होने, मूँगे के कीड़ों के अस्थिपंजर के इकट्ठा होने तथा ज्वालामुखी उद्‌गार की राख व धूल से मिलकर बनते हैं।

Territory (**राज्य क्षेत्र**) यह राजनीतिक भूगोल पारिभाषिक शब्द है। किसी राष्ट्र की सरकार के आधिपत्य में उन सभी प्रदेशों को उसका राज्य क्षेत्र कहते हैं जहाँ उसकी सत्ता मानी जाती है। इस दृष्टिकोण से उपनिवेश व अधिकृत राज्य भी इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। परन्तु इसका एक सीमित अर्थ भी है जिसमें केवल राष्ट्र विशेष की भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत आनेवाले क्षेत्र को ही उसका राज्य क्षेत्र कहते हैं।

Territorial waters (**राज्य क्षेत्रीय समुद्र**) किसी राज्य के राज्य क्षेत्र के तट के समीप का जलप्रदेश राज्य क्षेत्रीय समुद्र कहलाता है। साधारणतया समुद्रतट से तीन मील चौड़े जलप्रदेश को राज्य क्षेत्रीय समुद्र के अन्तर्गत लेते हैं और इस जल प्रदेश पर उस राष्ट्र का आधिपत्य माना जाता है जो साथ लगे हुये तटीय स्थलखंड पर शासन करता है। परन्तु शान्तिकाल में प्रत्येक देश-विदेश के जहाजों को इसमें से होकर जाने में कोई रोक-टोक नहीं रहती।

Tertiary or Alpine Himalayan Movement (**अल्पाइन हिमालयन हलचल**) आज से सात करोड़ वर्ष पहिले नव कल्प के आदि में यूरेशिया महाद्वीप में दो समुद्र फैले हुए थे। उत्तरी जर्मनी, उत्तरी फ्रांस और बेल्जियम के उत्तर में तो उत्तर सागर था और इस प्रदेश के रशियन पर्वतों के दक्षिणी में टेथिस का समुद्र फैला हुआ था। इन समुद्रों में बहुत काल तक तलछट जमती रही जिससे यह समुद्र उथला होता गया। नवकल्प के मध्यकाल में एक पर्वतनिर्माणकारी हलचल आई जिसे मध्य यूरोप के आल्प्स और ऐशिया के हिमालय पर्वतों की सृष्टि हो गई। इसीलिये इस हलचल को अल्पाइन हिमालयन हलचल या नवकल्प की हलचल कहते हैं।

टेथिस के उथले समुद्र में से मोड़दार पर्वतों की श्रृंखला जिब्राल्टर जलडमरूमध्य से प्रारम्भ होती हुई एशिया के पूर्वी तट तक चली गई। इस हलचल से भूमध्यसागर के दोनों किनारों की पर्वतमाला का निर्माण हुआ जो किनारे-किनारे होती हुई हिमालय पर जा मिलती है। हिमालय भी इसी हलचल के फलस्वरूप बने और तलवार के समान पूर्व से पश्चिम की तरफ फैल गये। हिमालय पर्वत माला की भी दो शाखायें हुईं। एक शाखा बर्मा, मलाया, इन्डोनीशिया होती हुई न्यूजीलैण्ड तक गई है। दूसरी शाखा मध्य एशिया से होती हुई जापान तक चली गई है।

इस हलचल से बने पर्वत अपेक्षाकृत नवीन हैं उनकी चट्टानों के बीच मछलियों आदि समुद्री जीव जन्तुओं के अवशेष पाये जाते हैं। इसीलिये इनकी ऊँचाई भी बहुत अधिक है। इन दोनों पर्वतमाला का आकार मुड़ा हुआ वृत्तांश की तरह है। अन्तर केवल इतना है कि आल्प्स पर्वत उत्तर की ओर मुड़े हुये हैं और हिमालय दक्षिण की तरफ। इस अन्तर का मुख्य कारण यह है कि नवकल्प की हलचल में भिचाव या दबाव की दो दिशायें थीं। आल्प्स पर्वत प्रदेश में तो भिचाव नीचे से या दक्षिण से आया और उत्तर व पश्चिम की कठोर चट्टानों से टकराकर धरातल को उत्तर की तरफ उन्नतोदर कर दिया। इसके विपरीत हिमालय प्रदेश का निर्माण उत्तर की तरफ से आने वाले भिचाव के द्वारा हुआ और गोंडवाना लैण्ड की कठोर चट्टानों से टकरा कर निक्षेप इस प्रकार मुड़ा कि उसका उत्तरी उन्नतोदर भाग दक्षिण दिशा में रहा।

यह हलचल धीरे-धीरे होती रही है। इसीलिए इसमें बहुत सी नदियाँ यथापूर्व बह रही हैं। हलचल की तीव्रता यूरोप में एशिया की अपेक्षा अधिक थी। इसलिए आल्प्स पर्वत प्रदेश में ग्रीवाखण्ड व भ्रंश स्तर की अधिकता है।

Tertiary Industry (व्यावसायिक धंधा) आर्थिक लाभ के लिए किया गया वह काम जो धंधों या गौण धंधों को सहायता देता है उसे व्यावसायिक धंधा कहते हैं। इसके अन्तर्गत न तो प्रकृति के साधन ही प्रधान रहते हैं जैसा कि मुख्य धंधों में और नहीं पूँजी व परिश्रम की प्रधानता के द्वारा किसी वस्तु का निर्माण ही किया जाता है जैसे गौण धंधों में। इस में से तो अपने गुण व विशेषता के द्वारा यातायात, पूँजी, संचालन तथा दूसरे कामों की सुविधा प्रदान की जाती है।

व्यावसायिक धंधों के अन्तर्गत यातायात, व्यापार, सन्देश संचार, बीमाएजन्टी, पूँजी प्रबन्ध, अड़तियागीरी, मैनेजरी तथा अन्य प्रकार के व्यवसाय आते हैं जिन के द्वारा कोई मनुष्य या राष्ट्र आर्थिक लाभ करना चाहता है।

Tetrahedral Theory (चतुष्फल सिद्धान्त) संसार में महाद्वीपों और महासागरों के वितरण में एक निश्चित व्यवस्था पाई जाती है। प्राय: सभी स्थल और जलखण्ड त्रिभुजाकार हैं। इसको देखकर तथा ढाले हुये लोहे की नलियों को कुचलने का प्रयोग करके लोदियन ग्रीन तथा फेरब्रान नामक विद्वान ने यह सिद्धान्त निकाला कि पृथ्वी धीरे-धीरे ठंडी हो रही है। इसलिए इसका अन्दरूनी भाग अधिक तेजी से सिकुड़ रहा है और ऊपर का पटल धीरे-धीरे सिकुड़ रहा है। अतएव गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में ऊपर की पपड़ी टूट पड़ती है और इस प्रकार पृथ्वी की आकृति एक चतुष्फलक के समान हो जाती है।

चतुष्फलक एक वह ठोस आकृति है जो चार समत्रिबाहु त्रिभुजों के मिलाने से बनती है। फेरब्रान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चतुष्फलक के कोने जल के भीतर से बाहर को निकले रहेंगे और महाद्वीप बनायेंगे तथा उसके पार्श्व खंड नीचे दबे रहेंगे और उन पर महासागर स्थित होंगे।

इस सिद्धान्त की पुष्टि संसार के जल-थल खंडों की आकृतियों की व्यवस्था से स्पष्ट है। पश्चिमी गोलार्द्ध में भूखंड एक बड़े त्रिभुज के समान फैला है जिसका आधार उत्तर की तरफ है और शीर्ष नीचे को। पूर्वी गोलार्द्ध में दो त्रिभुजाकार भूमिखंड स्थित है जिनके आधार उत्तर में मिलते हैं और उनके शीर्ष अलग-अलग दक्षिण में स्थित हैं। एक चौथा भूमिखंड दक्षिणी ध्रुव के समीप स्थित है। ये चारों त्रिभुजाकार भूखंड चतुष्फलक के चार बिन्दु बनाते हैं जो समुद्र से बाहर निकले हुये महाद्वीपों की रचना करते हैं। इन के बीच में तीन बड़े-बड़े त्रिभुजाकार जलखंड हैं जिनके आधार दक्षिण में है जहाँ वे सब एक-दूसरे से मिल जाते हैं और उनके शीर्ष उत्तर में हैं जहाँ वे विभिन्न भूखंडों को एक-दूसरे से अलग करते हैं।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि संसार के सभी महाद्वीप और महासागर एक दूसरे के प्रतिध्रुव (Antipode) में स्थित हैं। अफ्रीका और यूरोप प्रशान्त महासागर के विपरीत, उत्तरी अमरीका हिन्द महासागर के विपरीत तथा एशिया और आस्ट्रेलिया आन्ध्र महासागर के प्रतिध्रुव में स्थित है।

यह सिद्धान्त बहुत दिनों तक माना जाता रहा परन्तु अब इसकी आलोचना की जाने लगी है क्योंकि इसमें पृथ्वी के आवर्त्तन से उत्पन्न सन्तुलन पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया गया है। खोज से पता चला है कि पृथ्वी आवर्तन से उत्पन्न सन्तुलन और चतुष्फलक की आकृति के बीच स्पष्ट विरोध है।

Thalweg (थालवेग) यह जर्मनभाषा का पारिभाषिक शब्द है। जब कोई नदी

अपनी तलैटी को गहरा करते-करते उस स्थिति में पहुँच जाती है जहाँ और अधिक आवरणक्षय सम्भव ही नहीं होता तो उस दशा में नदी के उद्गम से मुहाने तक सबसे निचले बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा को थालवेग कहते हैं। यह रेखा जिसे घाटी रेखा भी कहते सधी नहीं होती। इसका आकार नतोदर होता है और इससे नदी की पूरी तलैटी में घाटी का सामान्य ढाल मालूम पड़ता है। (देखिये Base Level, Grade)

Thaw (पिघलन) पाले के अन्त या समाप्ति को पिघलन कहते हैं। इस दशा में तापक्रम हिमांक से ऊपर उठ जाता है और हिम व तुषार पिघल कर जल बन जाते हैं। उच्च अक्षांशों में पिघलन का बड़ा महत्व है और यह वर्ष में एक बार होता है। प्रत्येक वर्ष बसन्त ऋतु में साल भर की जमी हुई बर्फ पिघलने लगती है और हिमाच्छादित समुद्र व नदियाँ खुल जाती हैं। इस प्रकार भूमि साफ हो जाती है और यातायात के साधन मुक्त हो जाते हैं। इसलिए पिघलन का शीतोष्ण कटिबंध के शीतल प्रदेशों में बड़ा आर्थिक महत्व है।

Theodolite (थियोडोलाइट) त्रिभुजीकरण द्वारा पैमाइश में प्रयुक्त यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण यन्त्र है। इसके द्वारा लम्बतल में—ऊँचाई में—और समतल में या दिशा में कोणिक दूरी को नापा जाता है। जिन वस्तुओं तक पहुँचना मुश्किल होता है उनकी ऊचाई का भी इस यंत्र के द्वारा पता लगाया जा सकता है। इसमें लगे समतल पर उस वस्तु की तरफ देखने से जो लम्बरूप कोण बनता है उसको नापकर ऊँचाई निकाली जा सकती है।

इस यन्त्र में एक दूरबीन लगी होती है जिसकी गति व हिलने डुलने को भली भाँति नियन्त्रण में रक्खा जा सकता है। इस यन्त्र को [illegible] में ही नहीं प्रयोग करते बल्कि ऊपरी वायुमण्डल को नापनेवाले गुब्बारे की दिशा आदि को नापने के लिए भी काम में लाते हैं। इसके द्वारा ऊपरी वायुमण्डल की हवाओं की दिशा और चाल का भी पता चलाया जाता है।

Thermal Belt (तापज पेटी) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अपलेशियन पर्वत प्रदेश में कुछ घाटियों में घाटी की तली से ३०० फीट की ऊँचाई पर एक ऐसी पेटी पाई जाती है जिसमें पाले का असर बिल्कुल भी नहीं पड़ता। इसे तापपेटी कहते हैं।

इसी पेटी में जाड़े के मौसम में लगातार वनस्पति हरी-भरी बनी रहती है जब कि घाटी की तली में पाले से भरी हुई वनस्पति काली पड़ जाती है। इस प्रकार दोनों वनस्पति के बीच की विभाजन रेखा को स्पष्टतया देखकर तापज पेटी की निचली सीमा को जाना जा सकता है। घाटी की तली में तापक्रम काफी निम्न रहता है परन्तु ३०० फीट की ऊँचाई पर इस पेटी में तापक्रम उच्चतर रहता है और पाला बिल्कुल भी नहीं पड़ता।

Thermal Equator (तापज विषुवत रेखा) ग्लोब के चारों ओर खींची गई वह काल्पनिक रेखा है जो उच्चतम औसत तापांश वाले स्थानों से होती हुई गुजरती है। तापज विषुवत रेखा की स्थिति मौसम के अनुसार बदलती रहती है। उत्तरी गोलार्द्ध में जब गर्मी का मौसम होता है तो यह कुछ उत्तर में चली जाती है और जब उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े का मौसम तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी पड़ती रहती है तो यह रेखा कुछ दक्षिण में स्थित हो जाती है। परन्तु फिर भी यह भौगोलिक भूमध्यरेखा से इतना अधिक उत्तर या दक्षिण में नहीं आती जितना कि सूर्य स्वयं उत्तर दक्षिण में हट जाता है।

यद्यपि तापज विषुवत रेखा की स्थिति सूर्य की दिखलाई पड़ने वाली गति व सूर्यताप पर निर्भर रहती है परन्तु इस पर जल-थल के वितरण व समुद्री धाराओं का भी असर पड़ता है।

सामान्यतः इसकी मध्यममान स्थिति भौगोलिक भूमध्यरेखा से थोड़ा सा उत्तर में रहती है।

Thermal Spring (गर्म जल स्रोत) देखिये (Hot Spring)

Thermogram (थर्मोग्राम) हफ्ते भर का प्रतिदिन लिया गया वायुतापांश का सतत लेख थर्मोग्राम कहलाता है। थर्मोग्राम के अंकित तापांश, थर्मोग्राम से लिया जाता है। (देखिये Thermograph)

Thermograph (थर्मोग्राफ) यह एक प्रकार का थर्मामीटर है जिसमें तापांश अपने आप अंकित होता रहता है। इसमें घूमते हुए ढोल के ऊपर एक थर्मोग्राफ द्वारा प्राप्त तापांश अंकित होता रहता है।

सबसे सीधा सादा थर्मोग्राफ वह होता है जिसमें एक धातु का बना हुआ चक्र या कुण्डली रहती है। इस कुण्डली का घटना-बढ़ना एक लीवर पर प्रभाव डालता रहता है। इस लीवर से लगी एक कलम होती है जो घूमते हुए थर्मोग्राम पर तापक्रम लिखती जाती है। इस यन्त्र का मुख्य प्रयोग तापक्रम के परिवर्त्तन जानने के लिए किया जाता है। तापक्रम की फेरबदल इसके द्वारा बड़ी अच्छी तरह अंकित होती जाती है।

Thermometer (थर्मामीटर) उष्णमापक यंत्र को थर्मामीटर कहते हैं। थर्मामीटर एक पतली नली का बना होता है जिसके सिरे पर एक घुंडी लगी रहती है। इस घुंडी में तथा नली के कुछ भाग में पारा या शराब भरी रहती है। समीप की वायु के तापक्रम के अनुसार पारा या शराब गर्म व ठंडा होता रहता है। गर्म होने पर इसका आयतन बढ़ जाता है और ठंडा हो जाने पर घट जाता है। जब पारा गर्म होता है तो नली में चढ़ने लगता है और ठण्डा होने पर उतरने लगता है।

नली के बाहर दो चिन्ह लगे रहते हैं। एक चिन्ह तो हिमांक को अंकित करता है और दूसरा उबाल के तापांश को निर्देश करता है। इनके बीच और अंश अंकित कर दिये जाते हैं। तापांश के ये अंक कहीं तो सेन्डीग्रेड मानदण्ड में दिखलाये जाते हैं और कहीं फार्नहीट मानदण्ड में हिमांक तो ०° सेन्डीग्रेड या ३२° फार्नहीट होता है। इसी प्रकार उबाल का तापांश सेन्टीग्रेड में २००° और फार्नहीट में २१२° होता है। इन दोनों चिन्हों के बीच सेन्टीग्रेड थर्मामीटर में १०० अंश होते हैं और फार्नहीट थर्मामीटर में १८० अंश होते हैं।

यह तो साधारण थर्मामीटर कहलाता है। इसके अलावा एक और प्रकार का थर्मामीटर भी होता है जिसे सर्वोच्च और सर्वनिम्न थर्मामीटर कहते हैं। सर्वोच्च थर्मामीटर अधिकाधिक या अधिकतम तापांश बतलाता है और सर्वनिम्न थर्मामीटर न्यूनतम तापांश बतलाता है। सर्वोच्च थर्मामीटर की नली में धातु का एक छोटा टुकड़ा होता है जो तापक्रम के बढ़ने पर ऊपर को चढ़ता जाता है परन्तु तापक्रम के घटने पर सर्वोच्च बिन्दु पर आकर रुक जाता है। इसके विपरीत सर्वनिम्न थर्मामीटर की नली में पड़ा धातु का टुकड़ा न्यूनतम तापक्रम पर रुककर अंकित करता है।

सर्वोच्च थर्मामीटर में पारा रहता है जो गर्म होने पर फैलता है और एक नली में एक समानान्तर नली में एक धातु के टुकड़े को आगे की ओर ठेल देता है। यह धातु का टुकड़ा सदा पारे के बाहर रहता है और जब पारा ठंडा होने पर सिकुड़ता है तो यह पीछे छुट जाता है। इस धातु के टुकड़े का वह सिरा जो पारे के बगल में होता है वह अधिकतम तापांश बतलाता है।

सर्वनिम्न थर्मामीटर में शराब भरी रहती है और इसके बीच में शीशे का बना हुआ घंटीनुमा टुकड़ा पड़ा रहता है और सदा इस तरल पदार्थ में डूबा रहता है। गर्म होकर फैलने पर

शराब इस टुकड़े पर से होता हुआ बढ़ जाता है और इसको हिलाता-डुलाता तक नहीं परन्तु ठंढे होने पर जब शराब सिकुड़ती है तो यह नीचे को उतरने लगता है और अपने साथ इस टुकड़े को भी घसीट लाता है। इस टुकड़े का वह सिरा जो शराब की सतह के बगल में रहता है वही न्यूनतम तापक्रम बतलाता है।

इन दोनों प्रकार के थर्मामीटर को ढालू करके या लुढ़का कर के प्रयोग करते हैं। परन्तु साधारण थर्मामीटर को प्रयोग करते समय सदैव सीधा या लम्बरूप रखते हैं।

Thicket (**झाड़ीवन**) उस छोटे वन या जंगल को जहाँ वृक्षों के बहुत पास-पास उगे रहने से एक झुरमुट सा बन जाता है उसे झाड़ीवन कहते हैं। झाड़ीवन में वृक्षों के बीच की भूमि छोटे-छोटे पौधों व लताओं तथा घासफूस से घिरी रहती है।

Thorn Forest (**कटीला वन**) उष्ण तथा उपोष्ण प्रदेश के उन भागों में जहाँ वर्षा की वार्षिक मात्रा १०-२० इंच से कम होती है, साधारण श्रेणी के पेड़ तो उग नहीं सकते। अतएव वहाँ की वनस्पति काँटेदार होती है। ये काँटेदार वृक्ष छोटे-छोटे तथा नीचे कद के होते हैं। इनमें पत्तियाँ बहुत कम होती हैं और वे भी लम्बे शुष्क मौसम में गिर जाती हैं। इस प्रकार के वनस्पति प्रदेश को कँटीला बन कहते हैं। इन काँटेदार पेड़ों में बबूल का पेड़ बहुत प्रमुख है।

Thrust Fault (**वितोदन दरार**) जब भिचाव की तीव्रता अधिक रहती है तो मोड़ उलट जाता है और अक्सर धुरी पर से टूटने से उसमें दरार बन जाती है। इस दरार के एक ओर की चट्टानें आगे खिसककर दूसरी तरफ के स्तर पर आरोपित हो जाती हैं। इस प्रकार के दरार को वितोदन दरार कहते हैं। इसमें चट्टानों का क्रम उलट जाता है। (देखिये Reversed Fault)

Thunderstorm (**गरजनेवाला तूफान**) गरजनेवाला तूफान वह होता है जिसमें वायु की तीव्र धारा ऊपर उठती रहती है और उसके फलस्वरूप क्यूमूलोनिम्बस मेघ बन जाता है। इन मेघों से भीषण वर्षा भी होती है। साथ-साथ कभी-कभी ओले भी गिरते हैं। स्थायी जलविद्युत के उत्पन्न हो जाने से कडक के साथ बिजली भी चमकती है। बिजली की चमक से उत्पन्न ताप इतनी अधिक होती है कि हवा गरम होकर फैल जाती है और फलस्वरूप बादल गरजने लगते हैं। इस प्रकार गरजनेवाले तूफान वर्षा के पहिले आते हैं। इनके बनने का प्रमुख कारण यह है कि वर्षा के सामने की गरम हवा उस ठंडी हवा से मिलती है जिसके बीच से वर्षा होती रहती है।

गरज़नेवाले तूफान के बनने के लिए निम्नलिखित दशायें बहुत आवश्यक हैं—(१) वायुमण्डल में जलवाष्प या आर्द्रता का अंश काफी होना चाहिये ताकि क्यूमूलोनिम्बस मेघ बन सके।

(२) तापक्रम का उतार बड़ी तीव्रता से होना चाहिये ताकि मेघ के आधार के १०,००० फीट ऊपर तक वायु की तेज धारा बराबर उठती रहे।

शीतोष्ण या शीतकटिबन्धों की अपेक्षा गरजनेवाले तूफानों की संख्या व तीव्रता उष्ण कटिबंध और विशेषकर भूमध्य रेखिक प्रदेशों में बहुत अधिक रहती है। इसका प्रथम कारण तो यह है कि इन प्रदेशों में आर्द्रता का अंश बहुत अधिक रहता है। दूसरा कारण यह है कि अत्यधिक गरमी के कारण तापक्रम का ऊँचाई के साथ परिवर्त्तन बड़ी द्रुत गति से होता है। इस प्रदेश की प्रचण्ड संवाहन धारायें उपस्थित जलवाष्प की सहायता से क्यूमूलोनिम्बस मेघ उत्पन्न कर देती हैं जिनसे भीषण गर्जन होता है और बिजली चमकती है।

Tides (ज्वार-भाटा) महासागर के जल का नियमित उतार-चढ़ाव ज्वार-भाटा कहलाता है। किसी बड़ी नदी के मुहाने पर समुद्रजल का तल दिन में दो बार ऊपर उठता है और गिरता है। जलमण्डल की इस बाढ़ या ऊँचे चढ़ने को ज्वार कहते हैं तथा उतार या नीचे गिरने को भाटा कहते हैं। जब समुद्र की जल सतह बहुत नीची हो जाती है तो भाटा कहते हैं और समुद्र से तट की ओर जल बढ़ता जाता है। इस प्रकार की दशा करीब सवा छः घंटे तक बनी रहती है और तब ज्वार आता है। ज्वार आने पर जल वापस जाता है या नीचे उतरने लगता है और फिर दूसरे सवा छः घण्टे के बाद भाटे की दशा पुनः उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार ज्वार-भाटे में छ घण्टे १५ मिनट का अन्तर रहता है परन्तु दो भाटे या दो ज्वार में १२ घंटे ३० मिनट का अन्तर पाया जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि पृथ्वी के आवर्तन के साथ-साथ चन्द्रमा भी घूमता रहता है। इसलिए किसी स्थान पर ठीक ऊँचे पर चन्द्रमा को फिर से आने में २४ घण्टा ५२ मिनट लग जाते हैं।

ज्वार-भाटे का प्रमुख कारण चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति है। यद्यपि सूर्य की आकर्षण शक्ति का भी प्रभाव पड़ता है। कृष्ण और शुक्ल पक्ष की अष्टमी को सूर्य के साथ पृथ्वी पर समकोण बनता है। इस प्रकार सूर्य चन्द्रमा से विरोधी दिशा में आकर्षण करता है और तब ज्वार की ऊँचाई छोटी होती है। इसे लघु ज्वार कहते हैं। इसके विपरीत दुइज और पूर्णमासी के दिन सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी तीनों एक ही सीधी रेखा में रहते हैं। अतः सूर्य चन्द्रमा के आकर्षण में वृद्धि कर देता है। फलतः दीर्घ ज्वार आता है। (देखिये Spring Tide, Neep Tide)

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि चंद्रमा के सामने वाले स्थान पर ज्वार उत्पन्न हो जाता है। परन्तु चन्द्रमा का आकर्षण स्थल खंड पर भी असर डालता है। इसलिए चन्द्रमा के विपरीत दिशा का स्थल भी चन्द्रमा की ओर खिंच जाता है। फलतः वहाँ का जल पीछे रह जाता है और परोक्ष रूप से ज्वार उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक ही समय में पृथ्वीतल पर दो ज्वार उत्पन्न होते हैं—एक तो चन्द्रमा के सामने और दूसरा उससे विपरीत दिशा में। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है। इसलिए प्रत्येक स्थान दिन-रात में एक बार चन्द्रमा के सामने आता है और एक बार उसकी विरोधी दिशा में। यह कारण है कि प्रत्येक स्थान में दिनरात में दो ज्वार आते हैं। इसी आधार पर यह भी देखा जाता है कि किसी स्थान पर हर दिन दो भाटे आते हैं। बात यह है कि जब ज्वार आता है तो आसपास के क्षेत्रों का पानी खिंचा चला आता है और इस प्रकार जहाँ पानी की कमी हो जाती है वहाँ भाटा आ जाता है।

दूसरे प्रकार से ज्वार-भाटा को हम दो लहरों के रूप में मान सकते हैं। जिनके उच्च शीर्ष १८०° के फासले पर रहते हैं। ज्वार की दशा या लहरों का चढ़ाव उन स्थानों पर होता है जहाँ या तो चन्द्रमा सबसे ऊपर या सबसे नीचे रहता है—शिरोबिन्दु या अधोबिन्दु पर रहता है। इन लहरों का उतार या भाटा वहाँ रहता है जहाँ चन्द्रमा क्षितिज पर रहता है।

खुले महासागरों में ज्वार-भाटे का उतार-चढ़ाव यानी ज्वार के दबाव तथा भाटे के उतार में एक या दो फीट से अधिक अन्तर नहीं रहता। लेकिन स्थलखंडों के समीप के उथले समुद्रों में ज्वार-भाटे का उतार-चढ़ाव २० फीट तक होता है और नदियों के सँकरे खुले मुहाने में यह ४०-५० फीट तक हो जाता है। इसी प्रकार तट की बनावट का टेढ़ापन तथा उसकी कटा ज्वार के मार्ग की दिशा और ऊँचाई पर गहरा प्रभाव डालती है।

Tidal Bores (ज्वारीय भित्त) खुले महासागर में ज्वारीय लहर की गति नियमित रहती है परन्तु जब यह लहर उथले पानी में पहुँचती है तो इसके अग्रभाग की गति कम हो जाती है। फलतः पहिले भाग का जल इस पर एकत्र होने लगता है। जिन खाड़ियों या मुहानों

में मुँह तो चौड़ा होता है और भीतर की ओर सँकरा होता जाता है। इस प्रकार की कुप्पीनुमा मुहानों में तटों के आकार और जल के उथलेपन के कारण आगे बढ़ती हुई ज्वारीय लहर रुक जाती है और उससे टकराकर नदी की धारा इकट्टा होने लगती है। जल की यह सम्पूर्ण राशि ज्वारीय लहर के द्वारा जब अन्दर को ढकेली जाती है तो पानी की एक दीवाल बन जाती है। इसको ज्वारीय भित्त कहते हैं और इसकी ऊँचाई कई फीट होती है। इसमें बहुत भाग बनता रहता है और इसका प्रभाव बड़ा ही हानिकारक होता है। इसकी आगे बढ़ने की गति २५ मील प्रतिघंटा तक होती है।

अमेजन, गंगा, याँगटीसी, सेवर्न, ट्रेन्ट और सालवे नदियों में इस प्रकार की ज्वारीय भित्त बन जाते हैं। (देखिये Borc)

Tidal Currents (ज्वारीय धारा) ज्वार-भाटे के कारण पानी का किसी खाड़ी, मुहाने या पोताश्रय में घुसना या वापस होना ज्वारीय धारा कहलाता है। जब ज्वार आता है तो ज्वारीय धारा का पानी तट की ओर बढ़ता है और जब भाटा आता है तो ज्वारीय धारा का पानी तट से बाहर की ओर जाने लगता है। वास्तव में नदियों के खुले मुहानों, द्वीपों के बीच के जलसंयोजक, या द्वीप और मुख्य भूखंड के बीच के सागर-प्रदेश में ज्वार-भाटा आने पर बड़ी शक्तिशाली ज्वारीय धारायें बन जाती हैं।

जिस नदी मुहाने में ज्वार आते रहते हैं उस पर बसे हुये बन्दरगाहों में आने जाने वाले जहाजों के लिए ज्वारीय धारायें बड़ी ही सहायक व महत्वपूर्ण होती हैं। इनकी सहायता से बड़े २ जहाज खुले मुहाने की कटानों वा डाक में बड़ी आसानी से आ जाते हैं। जिस एसचुअरी का आन्तरिक भाग सँकरा हो जाता है वहाँ पर ज्वारीय धारा ज्वारीय भित्त का रूप धारण कर लेती है।

द्वीपों के बीच की सँकरी खाड़ियों में ज्वारीय धारायें अक्सर बहुत तेज और भयानक हो जाती हैं। उनमें बहुत से भयंकर भँवर व द्रुत प्रवाह उत्पन्न हो जाते हैं। नार्वे के तट से दूर लोफटन द्वीप समूह के पास का मेलस्टार्म भवंर बड़ा ही महत्वपूर्ण है। बहुत तेज व शक्तिशाली ज्वारीय धारा को रेस (Race) भी कहते हैं। उत्तरी स्काटलैण्ड और आरकनीज द्वीपों के बीच पेन्टलैण्ड रेस की गति १० मील प्रति घण्टा रहती है। डोवर जलसंयोजक की शक्तिशाली ज्वारीय धारायें इंगलिश चैनल के आरपार तैरने वाले के मार्ग में अनेक रुकावटें पैदा करती है। इन ज्वारीय धाराओं में जल का उतार-चढ़ाव टेढ़ा-मेढ़ा होता है।

Tidal Range (ज्वारीय विस्तार) किसी स्थान पर ज्वार के चढ़ाव और भाटे के उतार के बीच के अन्तर को ज्वारीय विस्तार कहते हैं। ज्वारीय विस्तार खुले समुद्रों में कम रहता है। खाड़ियों, मुहानों या आन्तरिक समुद्रों में ज्वारीय विस्तार, अधिक होता है।

Tidal Wave (ज्वारीय लहर) प्रत्येक ज्वार-भाटे को ज्वारीय लहर कहते हैं। ज्वार को ज्वारीय लहर का चढ़ाव कह सकते हैं और भाटे को उसका उतार कहते हैं। इसलिए ज्वारीय लहर की ऊँचाई ज्वार और भाटे का अन्तर होता है। ज्वारीय लहर की लम्बाई एक ज्वारवाले स्थान से दूसरे ज्वारवाले स्थान तक पृथ्वी की आधी परिधि के बराबर होती है क्योंकि बारह घण्टों में पृथ्वी अपना आधा आवर्त्तन ही कर पाती है।

ज्वारीय लहरें समुद्र में अक्सर ७०० मील फी घण्टे की रफ्तार से आगे बढ़ती हैं। परन्तु स्थलखंडों की रुकावट के कारण इनके वेग में कमी आ जाती है और ज्वारीय लहर को तट-रेखा के अनुरूप ही बढ़ना पड़ता है। यहाँ द्वीपों की आकृति के अनुसार ज्वारीय लहर में अनेक

विशेषतायें आ जाती हैं। ज्वारीय लहर टूट सकती है और उसकी शाखायें फिर मिल सकती हैं और दोनों टकरा कर एक-दूसरे को प्रभाव शून्यकर देती हैं।

ज्वारीय लहर समुद्र की सतह पर आने वाली अन्य लहरों से सर्वथा भिन्न होती है। समुद्र की अन्य लहरें वायु के दबाव और रगड़ से उत्पन्न हो जाती हैं। इन साधारण लहरों और ज्वारीय लहरों में निम्नलिखित भेद हैं:—

ज्वारीय लहर	साधारण लहर
(१) इसका कारण सूर्य या चन्द्रमा का आकर्षण है।	(१) इसका कारण वायु का दबाव और वायु का घर्षण है।
(२) इसके द्वारा महासागर का सारा पानी प्रभावित होता है।	(२) इसके द्वारा केवल समुद्र जल की सतह पर ही असर पड़ता है।
(३) भूखंड से रुकावट के कारण इसकी सबसे अधिक ऊँचाई भूमि के समीप होती है।	(३) इसकी सर्वोच्च ऊँचाई खुले समुद्र में होती है।
(४) एक उच्चशीर्ष या चढ़ाव से दूसरे उच्चशीर्ष तक इसकी लम्बाई ६००० मील होती है।	(४) इसकी लम्बाई हद से हद आधा मील रहती है।
(५) खुले समुद्र में इसकी गति ७०० मील प्रतिघण्टा तक होती है।	(५) इसकी चाल एक्सप्रेस रेलगाड़ी की गति से कभी भी अधिक नहीं होती।
(६) इसकी दिशा स्थायी व नियमित रहती है।	(६) इसकी दिशा हवा के रुख के अनुसार बदलती रहती है।

Tidal Glacier (ज्वारीय हिमनदी) कोई महाद्वीपीय या पर्वतीय हिमनदी जब समुद्र में जाकर गिरती है और इस प्रकार समाप्त हो जाती है तो उसे ज्वारीय हिमनदी कहते हैं।

ज्वारीय हिमनदी में तीन विशेषतायें होती हैं—(१) इसमें से टूट-टूट कर हिमखंड समुद्र में बहते रहते हैं। (२) इसके अंतिम मोरेन समुद्र की तली में इकट्ठा हो जाते हैं। (३) इसका अन्तिम सिरा कटाफटा होता है।

Tied Island (श्रृंखलित द्वीप) तट प्रदेश पर आघात करने वाली लहरें शिलाखंडों को तोड़ कर ले जाती हैं और लौटती हुई लहरों का वेग घट जाने पर तट से थोड़ी दूर पर वे इनका निक्षेप कर देती हैं। कालान्तर में ये शिलाखंड द्वीप का रूप धारण कर लेते हैं जो समीपवर्ती तट से जुड़े हुए रहते हैं। इन द्वीपों को तट से मोड़ने या मिलाने वाला बालुका तट कहीं तो जल के बाहर निकला रहता है और कहीं जल के भीतर डूबा रहता है। इस प्रकार के द्वीपों को श्रृंखलित द्वीप कहते हैं। ये मेन तट के निकट बहुत पाये जाते हैं। जिब्राल्टर इसका सर्वोच्च उदाहरण है।

Tierra Caliente (टाइरा कालिंट) मध्य और दक्षिणी अमरीका के उष्णकटिबंधीय प्रदेश में भूमि की ऊँचाई के अनुसार तीन प्राकृतिक विभाग करते हैं। उन तीनों विभागों में से सब से निम्न प्रदेश को टाइरा कालिंट कहते हैं। इसके अन्तर्गत अत्यन्त गर्म तटीय मैदान व पर्वतों के ढाल शामिल हैं। इसमें ३००० फीट से कम ऊँचाई के क्षेत्र शामिल हैं। तटीय प्रदेशों में तो बड़ी सड़ी गर्मी पड़ती है जैसे कि भाप के डिब्बे में बन्द कर दिया जाय।

इन प्रदेशों में घनी उष्णकटिबंधीय बनस्पति पाई जाती है और अधिक वर्षा वाले

भागों में घने जंगल पाये जाते हैं। निचले मैदानों में केले, गन्ने और कोको के बगीचे लगाये गये हैं। पर्वतीय ढालों पर मक्का, तम्बाकू और कहवा की खेती होती है।

भूमध्यरेखा पर इन प्रदेशों की ऊँचाई ३००० फीट है परन्तु २०° अक्षांश पर १००० फीट से कम ही। जहाँ वर्षा काफी होती है वहाँ इस प्रदेश की सभी विशेषतायें गर्म-तर भूमध्य-रेखिक प्रदेशों जैसी है। जहाँ यह शुष्क है वहाँ यह प्रदेश मरुस्थलीय या स्टेपी प्रदेशों में समा जाता है।

Tierra Fria (टाइरा फ्रिया) मध्य और दक्षिणी अमरीका के तीन प्राकृतिक विभागों में से सब से ऊँचा व ठंडा भाग टाइरा फ्रिया कहलता है। इसके अन्तर्गत वे सब प्रदेश आते हैं जिनकी ऊँचाई समुद्रतल से ७००० फीट से भी अधिक है। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति नुकीली पत्ती वाले बन हैं। परन्तु जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ छोटी-छोटी झाड़ियाँ और घास के मैदान पाये जाते हैं। यहाँ पर वही फसलें उगाई जाती हैं जो शीतोष्ण कटिबंध में पनपती हैं। गेहूँ उगाया जाता है और पशुचारण के लिए विस्तृत मैदान हैं।

यहाँ का औसत वार्षिक तापक्रम टाइरा कालिंट की अपेक्षा २०° फार्नहेट कम रहता है। इस प्रकार यहाँ की रहन-सहन की प्राकृतिक दशायें अँग्रेजों व यूरोपियन लोगों के लिए बड़ी ही अनुकूल हैं। [illegible] में टाइरा फ्रिया प्रदेश में टाइरा कॉलिंट की अपेक्षा चौगुनी आबादी है।

इसका निचला भाग मोटे अनाज व पशुचारण की पेटी कहलाती है।

Tierra Templada (टाइरा टेम्पलदा) मध्य और दक्षिणी अमरीका के उष्ण-कटिबंधीय भूभाग में ऊँचाई के आधार पर भी तीन विभाग किए गये हैं, उनमें से मध्यवर्त्ती भाग को टाइरा टेम्पलदा कहते हैं। इस विभाग के ऊपर टाइरा फ्रिया और नीचे टाइरा कालिंट नामक विभाग हैं। इसके अन्तर्गत वे प्रदेश शामिल हैं जिनकी ऊँचाई समुद्रतल से ३००० से ७००० फीट तक है।

साधारणतया यहाँ का तापक्रम सम रहता है और वार्षिक तापान्तर या तापविस्तार ४° या ५° फार्नहेट से अधिक नहीं होता। मक्का, कहवा और तम्बाकू की खेती की जाती है। परन्तु वर्षा की मात्रा कम होने के कारण यहाँ का अधिकतर भाग बिल्कुल बेकार पड़ा रहता है। इतनी वर्षा भी नहीं होती कि उत्तम चरागाह बन सके।

यहाँ धूप तेज होती है परन्तु छाया में सर्दी लगती है। दिन गरम होते हैं परन्तु रात ठंडी होती है। दैनिक तापान्तर २°-३° फार्नहीट रहता है।

Till (टिल) हिमनदियों के नीचे से निकलने वाली जलधारायें जो निक्षेप करती हैं उसे टिल कहते हैं। टिल में अनेक प्रकार के कंकड़-पत्थर मिले पाये जाते है। कभी-कभी २० विभिन्न प्रकार के शिलाखंड मिले पाये जाते हैं जिनका रंग व बनावट अलग-अलग होता है। टिल राशि में चट्टानों के चूर्ण से लेकर बड़े-बड़े शिलाखंड तक एक ही जगह पाये जाते हैं। कभी-कभी इसे स्थलीय मोरेन भी कहते हैं। कंकड़ीले होने के कारण इसे बोल्डर मिट्टी भी कहते हैं। स्थान-स्थान पर इसकी संयुक्त बनावट के कारण इसे कठोर तवा (Hard Pan) भी कहते हैं। जहाँ मौसमी क्षति नहीं हुई है वहाँ इसका रंग नीला पाया जाता है। इस आधार पर इसे नीली पर मिट्टी भी कहते हैं।

टिल में पाई जाने वाली चट्टान चूर्ण व शिलाखंड का स्वभाव व गहराई में उन चट्टानों के अनुसार भेद हो जाता है जिन पर से होकर यह गुजरी है। टिल का निक्षेप बड़ा ही अनियमित होता है। इसकी स्थिति हिम के हटने पर निर्भर रहती है। जहाँ हिम नदी का प्रवाह तेज

था वहाँ शिलाखंड दूर ले जाये गये परन्तु जहाँ इसकी गति धीमी थी वहाँ हिम के नीचे इसका निक्षेप हो गया। इसका उदाहरण तो वहाँ मिलता है जहाँ किसी ऊँचे टीले के गति विमुख दिशा में बोल्डर मिट्टी की एक पूँछ सी बन जाती है। (देखिये Boulder Clay)

Tillage (जोत) (१) चालू वर्ष में खेती के लिए हल से या खुरपे से खोदी गई भूमि को जोत कहते हैं।

(२) भूमि को हल, फावड़े, पाटे आदि की सहायता से खेती के लिए तैयार करने के काम को जोत कहते हैं।

Timber (व्यापारिक लकड़ी) वन प्रदेशों के वृक्षों से प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण वस्तु व्यापारिक लकड़ी है। व्यापारिक लकड़ी का बड़ा महत्व है। इससे मेज, कुर्सी, जहाज, इमारतों की धन्नी दरवाजे व खिड़कियाँ, रेलों के स्लीपर आदि बनाये जाते हैं। संसार के बनों से प्राप्त व्यापारिक लकड़ी को दो प्रकार का कहा जा सकता है—(१) मुलायम लकड़ी जो नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वन के चीड़, देवदार, सनोवर, सरो तथा जूनियर के वृक्षों से प्राप्त होती है। इसको कागज उद्योग में प्रयुक्त लुग्दी तथा दियासलाई बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। इसका अन्य उपयोग मस्तूलों जहाज के तख्तों, घरेलू सामान तथा माल भर कर भेजने वाले बक्सों के बनाने में किया जाता है। (२) कठोर लकड़ी जो भूमध्य रेखीय सदाबहार बनों और शीतोष्ण प्रदेश के चौड़ी पत्ती वाले पतझड़ वनों से प्राप्त होती है। भूमध्य बन प्रदेश में सागौन, आबनूस रोजवुड, डाइवुड इत्यादि की लकड़ी मिलती है। यह लकड़ी कड़ी व मजबूत होती है। [illegible], जहाज, मेज, कुर्सी आदि बनाने में प्रयोग की जाती है। शीतोष्ण कटिबंध के पतझड़ वाले वनों से बलूत, बर्च, मेपल, ऐश, अखरोट तथा एल्म की लकड़ी प्राप्त होती है। यह लकड़ी मेज-कुर्सी तथा इमारतों में प्रयोग की जाती है। इससे खेलने के सामान भी बनते हैं।

Timber Line (काष्ठ रेखा) जिस सीमा के बाद पेड़ बिल्कुल भी नहीं उगते उसे काष्ठ रेखा कहते हैं। शीत और शीतोष्ण प्रदेशों में उच्च भूमि पर काष्ठ रेखा स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। परन्तु सच तो यह है कि यह रेखा किसी भी जगह निश्चित नहीं रहती। काष्ठ रेखा की ऊँचाई स्थानीय व अक्षांसीय दशाओं पर निर्भर रहती है। जलवायु और मिट्टी से सम्बन्धित दशायें काष्ट रेखा की ऊँचाई निर्धारित करती हैं।

उष्ण कटिबंध की अपेक्षा शीतोष्ण कटिबन्ध में काष्ठ रेखा की ऊँचाई कम रहती है। दूसरी बात यह है कि पर्वतों के सूर्याभिमुख ढालों की अपेक्षा छायादार ढालों पर काष्ठरेखा की ऊँचाई कम रहती है। काष्ठ रेखा की ऊँचाई उन ढालों पर सबसे अधिक रहती है जहाँ पर वायु से सुरक्षा रहती है और वहाँ सूर्य की किरणें सीधी और अधिक समय तक गिरती रहती हैं।

Time (समय) (देखिये Apparent Time, Local Time, Standard Time, Greenwich Mean Time)

Topography (स्थानावृत्त या भूमिति) किसी मानचित्र पर किसी प्रदेश के विस्तृत वर्णन को स्थानावृत या भूमिति कहते हैं। इसके अन्तर्गत किसी विशेष प्रदेश की प्राकृतिक बनावट, वहाँ के स्थलरूप के निर्णय के साथ-साथ वहाँ पर उपस्थित स्थायी पदार्थों को भी अंकित करते हैं चाहे वे पदार्थ प्राकृतिक हों या मनुष्य द्वारा निर्मित।

अतएव किसी स्थान की भूमिति के अन्तर्गत इस प्रकार का विवरण किया जाता है—
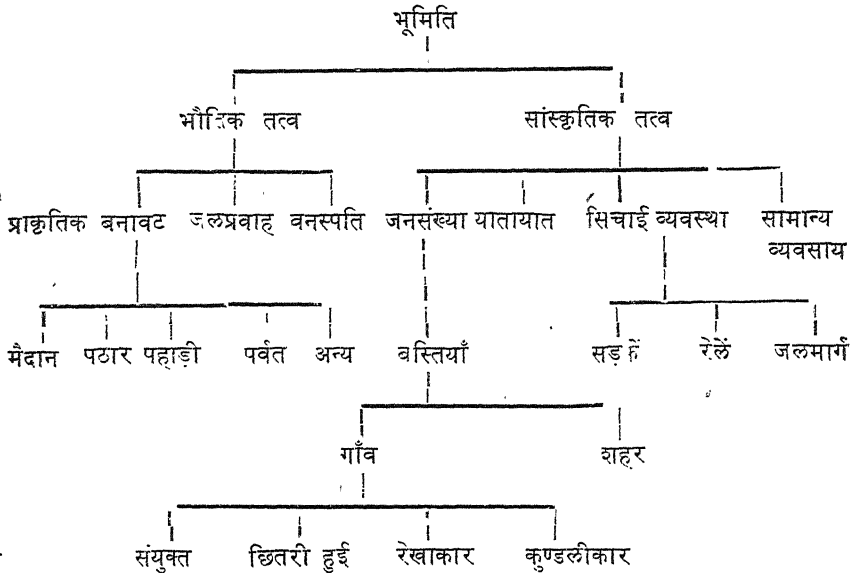
Topographic Map (भूमिति चित्र) जिस मानचित्र में किसी प्रदेश के स्थलरूपों का विस्तार से चित्रण किया जाता है उसे भूमिति चित्र कहते हैं। इसमें दीर्घ मान दण्ड पर समोच्च भूमिदर्शक रेखाओं द्वारा प्राकृतिक बनावट का चित्रण करते हैं। इसके अलावा वन, नदी और झील जैसे भौतिक रूपों तथा सड़कें, रेलें नहरें जैसी कृत्रिम रूपों को भी अंकित किया जाता है।

Tor (टॉर) ग्रैनाइट चट्टानों का बना हुआ भभाग जब मौसमी क्षति के कारण काफी कटफट जाने पर अलग स्थित दिखलाई पड़ता है तो उसे टार कहते हैं। अक्सर टॉर के आकार अनेक प्रकार के होते हैं। इंगलैंड में डेवन और कार्नवाल की ग्रेनाइट चट्टानें इसका सबसे अच्छा उदाहरण उपस्थित करती हैं।

Tornado (टारनैडो) (१) पश्चिमी अफ्रीका के गिनी प्रदेश में आने वाला एक अत्यन्त भीषण तूफान अक्सर अफ्रीकी टारनैडो के नाम से पुकारा जाता है। अति भीषण गरजने वाले तूफान की तरफ से बहकर आने वाली तूफानी आँधी से ये टॉरनैडो बन जाते हैं। ये एकाएक उत्पन्न हो जाते हैं और थोड़ी देर तक चलने के बाद अपने आप समाप्त हो जाते हैं। परन्तु इसके चलने पर जल और थल दोनों पर ही भीषण क्षति होती है। इसके साथ-साथ भीषण वर्षा भी होती है।

अफ्रीकी टारनैडो हवायें दिन में अधिक प्रचण्ड रूप धारण कर लेती हैं क्योंकि उस समय सतह की वायु अधिक गरम हो जाती है। इन हवाओं की प्रचण्डता शुष्क और वर्षा के मौसमों के अन्तरिम काल में विशेष अधिक हो जाती है। अफ्रीकी टारनैडो हवाओं की उत्पत्ति का प्रधान कारण गर्म व शुष्क तथा गर्म व तर हवाओं का आपस में मिलना है। जब दक्षिण-पश्चिम से आने वाली गर्म परन्तु तर मानसून हवा सहारा में उत्पन्न तथा उत्तर-पूर्व से बहने वाली शुष्क हारमाटन हवा से मिलती है तो अफ्रीकी टारनैडो का जन्म हो जाता है। इसका

सीमान्त कई मील लम्बा होता है और कभी-कभी तो इसकी लम्बाई दो सौ मील तक हो जाती है।

(२) टारनैडो चक्रवातीय वायु भँवर हैं जो बड़ी भीषण गति से और विशेष प्रचण्डता के साथ संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पूर्वी भाग में चलते हैं। इनका विस्तार तो छोटा होता है परन्तु इनकी भीषणता बहुत अधिक होती है। साधारणत: इनका व्यास एक-चौथाई मील से अधिक नहीं होता। इनका आकार की की तरह का होता है और इनका शीर्ष पृथ्वी की तरफ रहता है। इसलिए टारनैडो द्वारा प्रभावित क्षेत्र फीट या गज में नाप लिया जाता है। इस भँवर द्वार वायुचक्र की गति ३००-४०० मील प्रति घंटा होती है और इनके चलने पर वायु-भार ७-८ इंच तक गिर जाता है। इनके चलने पर बड़ी-बड़ी भारी इमारतें उलट जाती हैं, रेल के इंजन अपने पथ से दूर फेंक दिये जाते हैं और पेड़ उखड़ कर दूर जा गिरते हैं। इनको दूर से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कि एक काला कीपनुमा बादल आ रहा हो और साथ-साथ बड़ी भीषण आवाज भी होती रहती है।

टारनैडो की उत्पत्ति शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात के दक्षिण-पूर्वी चतुर्थांश में होती है। एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद ये सैकड़ों मील तक चले जाते हैं। उनकी उत्पति का आधार बिल्कुल ही मशीन जैसा है। इसमें वायु की दिशा घड़ी की सुइयों के बिल्कुल विपरीत होती है और ये ध्रुवों की तरफ व पूर्व की तरफ चलते हैं। वसन्त ऋतु के महीने इनकी उत्पत्ति के लिए बड़े ही अनुकूल होते हैं। इस समय हवा अपेक्षाकृत ठंढी रहती है। इसी समय भूमि के समीप में ही चक्रवात के दक्षिणी-पूर्वी चतुर्थांश में वायु की परत गर्म व तर रहती है। इससे संवहन धाराओं के मार्ग में अड़चन पड़ती है। इस प्रकार रुकी हुई संवाहन क्रिया उस समय फिर शुरू हो जाती है जब नीचे की गर्म वायु ऊपर की ठंढी वायु में से होकर गुजरती है। ठंढी वायु के संपर्क में आने पर भाप से लदी यह हवा द्रवीभूत होकर ताप छोड़ती है जिससे ऊपर उठती हुई हवा की शक्ति व प्रचण्डता बहुत बढ़ जाती है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मध्यवर्त्ती मैदान में मिसीसिपी नदी के बेसिन में मैक्सिको की खाड़ी की गर्म व तर हवा जब उत्तर की ठंडी व शुष्क वायु से मिलती है तो टारनैडो बन जाते हैं। स्थानीय तौर पर किसी चक्रवात के विकृत होने पर भी टारनैडो की उत्पति हो जाती है। ये स्थानीय टारनैडो बहुत प्रचण्ड नहीं होते। इनकी गति २० से ४० मील प्रति घण्टा होती है और ये एक सीधी रेखा में चलते हुये कोई बीस मील के बाद खतम हो जाते हैं। उपयुक्त जलवायु व ऋतु में जब निम्न भार प्रदेश काफी विस्तृत रहता है, तब बहुत से टारनैडो बन जाते हैं।

जाड़े के मौसम में टारनैडो बड़े कमजोर होते हैं। इनकी प्रचण्डता बसन्त ऋतु और गर्मी के शुरू में सबसे अधिक रहती है। दिन में ५ बजे तक टारनैडो विशेष प्रचण्ड रहते हैं।

जब टारनैडो हवायें किसी समुद्र पर से होकर गुजरती हैं तो जल को अपनी तरफ ऊपर खींच कर एक जलस्तम्भ सा बना देती हैं।

Torrid Zone (उष्ण कटिबंध) भूमध्यरेखा के दोनों ओर सबसे गर्म भाग को उष्ण कटिबंध कहते हैं। कर्क रेखा इसकी उत्तरी सीमा बनाती है और मकर रेखा दक्षिणी सीमा। इस प्रकार २३½° उत्तरी अक्षांश से लेकर २३½ दक्षिणी अक्षांश तक उष्णकटिबंध फैला हुआ है। इस कटिबंध में उत्तर या दक्षिण की ओर चलने पर वर्षा कम होती जाती है। यहाँ पर होनेवाली अधिकतर वर्षा संवाहनिक या पर्वतीय है। भूमध्यरेखा के दोनों ओर ५° उत्तरी अक्षांश से लेकर ५° दक्षिणी अक्षांश तक गर्म व तर जलवायु पाई जाती है और फलत: उन प्रदेशों में घने बन पाये जाते हैं। इसके बाद हम जैसे ही उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते हैं तो वर्षा की मात्रा कम हो जाने से वन प्रदेशों के स्थान

पर घास के मैदान मिलने लगते हैं जिन्हें हम सूडान की जैसी जलवायु के प्रदेश कहते हैं। इसके बाद मानसूनी हवाओं के क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। अयन रेखाओं के समीप महाद्वीपों के पूर्वी भागों में मानसूनी जलवायु और पश्चिमी किनारों पर गर्म मरुस्थल मिलते हैं। इस सम्पूर्ण प्रदेश में व्यापारिक हवायें चलती रहती हैं।

Trade (व्यापार) भिन्न-भिन्न देश अलग-अलग प्रकार की वस्तुओं को उत्पन्न करते हैं और फिर आपस में अदल-बदल करके माँग पूर्ति करते हैं। पदार्थों के इस पारस्परिक विनिमय को व्यापार कहते हैं। व्यापार तीन प्रकार का होता है—(१) जब पदार्थों का विनिमय किसी देश की सीमा के अन्दर होता है तो देशीय या आन्तरिक व्यापार कहते हैं। (२) जब यह विनिमय संसार के विभिन्न देशों के बीच होता है तो इसे अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशी व्यापार कहते हैं। प्रत्येक देश बाहर से चीजें मँगाता है जिसे आयात कहते हैं और अपने यहाँ की वस्तुओं को बाहर भेजता है जिसे निर्यात कहते हैं। अतएव कभी-कभी इसे आयात-निर्यात व्यापार भी कहते हैं। प्रत्येक देश के लिए विदेशी व्यापार का बड़ा महत्व है। इसके कई कारण हैं —(१) देश अपने यहाँ की अतिरिक्त उपज का निर्यात करके लाभ उठा सकता है। (२) अपने देशीय विकास या उन्नति के लिए बाहर के देशों से उन वस्तुओं को मँगवा सकता है जो वहाँ नहीं होती। इसके अलावा आयात-निर्यात व्यापार द्वारा प्रत्येक देश दूसरों के सम्पर्क में आता है और इससे अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन में सहायता मिलती है। (३) केन्द्रीय स्थिति वाले देश अक्सर बाहर से वस्तुएँ मँगवाकर अपने आस-पास के क्षेत्रों में दुबारा भेज देते हैं। इसे पुर्ननिर्यात व्यापार कहते हैं।

संसार में देशीय, अन्तर्राष्ट्रीय या पुर्ननिर्यात व्यापार के निम्नलिखित आधार हैं—(१) **जातीय भिन्नता**—विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले विभिन्न जातियों के लोगों की सभ्यता, कार्य शक्ति और कौशल अलग-अलग होते हैं। इसी के अनुसार उनकी माँगें व उत्पादित वस्तुयें भी अलग-अलग प्रकार की होती हैं। अतः उन भागों की पूर्ति व द्रुत उत्पादन की खपत के लिए आपस में व्यापार होने लगता है। (२) **आर्थिक विकास की विभिन्न दशा**—यह बड़ा ही महत्वपूर्ण आधार है और इसके अन्तर्गत औद्योगिक विकास के ऊपर खास तौर पर ध्यान दिया जाता है। जो देश उद्योगधंधों में आगे बढ़े हुये हैं वे तैयार किया हुआ माल बाहर भेजते हैं और अविकसित क्षेत्रों से कच्चा माल प्राप्त करते हैं। (३) **प्राकृतिक साधनों में अन्तर** इन तीनों आधारों में से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तत्व शामिल रहते हैं—(अ) **प्राकृतिक बनावट**—पर्वतीय प्रदेशों में वन काटना, और खान खोदने का उद्यम होता है और उसी प्रकार की वस्तुयें व्यापार में आती हैं परन्तु मैदानी क्षेत्रों से खेतिहर उपज प्राप्त होती है। इसलिये पर्वतीय प्रदेश अपने यहाँ की वस्तुओं को भेज कर खाद्यान व वस्त्र का आयात करते हैं। (ब) **मिट्टी** के ऊपर उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं के प्रकार निर्भर रहते हैं। (स) **नमी की मात्रा**। (द) **तापक्रम की विभिन्नता** और (इ) **समुद्र से समीपता**।

इसके अलावा देश के विस्तार तथा जनसंख्या के घनत्व और वहाँ की सरकार की नीति का भी व्यापार पर बड़ा असर पड़ता है।

Trade Route (व्यापारिक मार्ग) प्रायः हर प्रकार के व्यापार में दो समस्या रहती हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के मनुष्यों, स्थानों तथा समय से होता है। स्थानों की विभिन्नता व दूरी से सम्बन्धित कठिनाइयाँ केवल यातायात के साधनों द्वारा ही दूर की जा सकती हैं। जिन मार्गों द्वारा व्यापार होता है उन्हें व्यापारिक मार्ग कहते हैं। व्यापारिक मार्ग तीन प्रकार के होते हैं—(१) थलमार्ग, (२) समुद्री मार्ग और (३)

वायुमार्ग। थल के ऊपर स्थानों के बीच व्यापार के मुख्य जरिये सड़कें, नदियों, रेलें व नहरें होती हैं। इन साधनों के द्वारा आन्तरिक या देशीय व्यापार होता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रधान साधन समुद्र या महासागर है जिन पर जहाजों द्वारा माल इधर-उधर ले जाया जाता है। वायुमार्गों द्वारा हल्की भार की परन्तु अधिक मूल्य की वस्तुयें, डाक और यात्री ले जाये जाते हैं। (देखिये Air Routes, Ocean Routes, Road, Railway, Land Transport)

व्यापारिक मार्गों को एक दूसरे आधार पर भी विभाजित किया जा सकता है—(१) वस्तुओं के ढोने का तथा अधिक जहाजों द्वारा प्रयुक्त समुद्री व महासागरीय मार्ग, (२) तेज यातायात के व्यापारिक मार्ग भी थल के ऊपर से होकर आते हैं। इन व्यापारिक मार्गों में से प्रत्येक का एक मुख्य पथ होता है और उससे दायें-बायें को निकले हुये अनेक शाखापथ होते हैं।

व्यापारिक मार्गों पर भौगोलिक स्थिति का विशेष प्रभाव पड़ता है। किस देश में कौनसा साधन काम में लाया जायेगा और व्यापारिक मार्ग का कितना उपयोग हो सकेगा यह वहाँ के धरातल की बनावट व जलवायु पर निर्भर रहता है। इन्हीं के द्वारा यह भी निर्धारित किया जाता है कि एक विशेष मार्ग किस ओर होकर जायगा, उसके बनाने में कितना खर्चा आयेगा और उसकी देख-भाल साधारण खर्च में हो सकेगी या नहीं। (देखिये Means of Transport, Transport)

Trade Winds (व्यापारिक हवायें) कर्क और मकर रेखा के उच्चभार प्रदेशों से भूमध्यरेखा के न्यूनभार प्रदेश की ओर चलने वाली हवाओं को व्यापारिक हवायें कहते हैं। ये हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर-पूर्व से और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्व से चलती हैं। जिस समय जहाज पाल द्वारा चलते थे उस समय यूरोपीय जहाज इन्हीं के सहारे पश्चिमी द्वीप समूह तक पहुँच जाते थे। इसीलिये इसका नाम व्यापारिक हवायें पड़ गया है।

ये हवायें ३०° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों से १०° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश तक चलती है और समुद्र के ऊपर इनकी गति व दिशा बड़ी ही नियमित रहती है। इस नियमित रूप से ये साल भर बराबर चलती रहती हैं। परन्तु सूर्य की किरणें जब कर्क रेखा पर पड़ती हैं तो इन हवाओं की पेटी कुछ उत्तर में खसक जाती है और जब सूर्य की किरणें मकर रेखा पर लम्बवत् चमकने लगती हैं तो हवाओं का प्रवाह क्षेत्र कुछ दक्षिण की ओर खसक जाता है। इस प्रकार इनके क्षेत्र में ५° अक्षांश का अन्तर पड़ जाता है।

व्यापारिक हवायें समुद्रों पर तो बड़े नियमित रूप से चलती रहती हैं परन्तु महाद्वीपों के आंतरिक भाग में इनका चलना बहुत अधिक नियमित नहीं होता। उष्ण मरुस्थलों पर इनकी गति व दशा काफी नियमित रहती है। प्राकृतिक बनावट के अनुसार इनकी दिशा व गति में थोड़ा-सा हेर-फेर हो जाता है। समुद्र पर भी कभी-कभी इनकी दिशा बदल जाती है। उत्तरी आन्ध्र महासागर में पूर्वी किनारे पर इन हवाओं की दिशा उत्तर-पूर्व रहती है परंतु पश्चिमी किनारे पर ये पूर्व से बहने लगती हैं।

चूँकि व्यापारिक हवायें उच्च अक्षांशों से भूमध्य रेखा की ओर चलती हैं इसलिए बराबर गर्म होती जाती हैं और उनमें भाग ग्रहण करने की शक्ति बराबर बढ़ती जाती है। इसलिए इनसे वर्षा नहीं होती बल्कि जहाँ ये जाती हैं वहाँ शुष्कता बढ़ जाती है। फिर भी अपेक्षाकृत ठंढे देशों से आने के कारण ये कुछ ठंढक उत्पन्न करती हैं और मौसम को सुहावना बना देती हैं। इनके चलने की औसत गति १०-१५ मील प्रति घण्टे से अधिक नहीं होती और जहाँ कहीं भी इनके मार्ग में पर्वत आ जाता है वहाँ ये वर्षा कर देती हैं।

इनका विकसित रूप तो दक्षिणी आन्ध्र महासागर और हिन्द महासागर में दिखलाई पड़ता है। जाड़े की ऋतु में ये बड़ी प्रचण्ड रहती हैं परन्तु गर्मी के मौसम में मानसून हवायें इनको कमजोर कर देती हैं। साधारणतः इनके प्रवाह क्षेत्र का मौसम बड़ा ही शान्त रहता है परन्तु कभी-कभी उष्णकटिबंधीय चक्रवात विक्षोभ उत्पन्न कर देते हैं।

पछुवा हवाओं के अनुरूप ही व्यापारिक हवायें गर्मी के मौसम में सबसे कमजोर और जाड़े में सबसे अधिक वेगशालिनी होती हैं। उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवाओं की अपेक्षा दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक हवाओं का वेग एक-तिहाई अधिक रहता है। आन्ध्र महासागर की अपेक्षा प्रशान्त महासागर में व्यापारिक हवाओं का वेग कम होता है। हिन्द महासागर में केवल भूमध्यरेखा के दक्षिण में तो व्यापारिक हवायें रहती हैं। उत्तर में ये मानसून हवाओं का रूप ग्रहण कर लेती हैं।

Trade Centre (व्यापारिक केन्द्र) जिस स्थान पर व्यापार की सुविधा हो उसे व्यापारिक केन्द्र कहते हैं। व्यापारिक केन्द्र का अस्तित्व किसी क्षेत्र के व्यापार व उद्योग-धन्धों की आर्थिक दशा पर निर्भर होता है। जहाँ की भूमि उपजाऊ, जलवायु अच्छी और खनिज सम्पत्ति प्रचुर होगी वहाँ स्वभावतः आर्थिक उन्नति हो सकेगी और आबादी घनी होगी। स्पष्ट है कि व्यापार भी अधिक होगा और व्यापारिक केन्द्र बन जायेंगे। साधारणतया देखा जाता है कि कृषिप्रधान देशों में अपेक्षाकृत कम व्यापारिक केन्द्र होते हैं। औद्योगिक विकास के प्रदेशों में बहुत बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं। कृषि प्रधान क्षेत्र में व्यापारिक केन्द्र बहुधा बड़े-बड़े नहीं होते क्योंकि उनमें अधिक माल के विनिमय की गुंजाइश ही नहीं होती।

व्यापारिक केन्द्र की स्थिति व्यापारिक मार्गों के आधार पर निर्धारित होती है। सामान्यतः भागों के मिलन केन्द्र पर व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं। जहाँ समुद्री तथा स्थलमार्ग मिलते हैं वहाँ बन्दरगाह बन जाते हैं। इसी प्रकार सड़कों और रेलों के मिलन स्थान पर भी बड़ी-बड़ी मंडियाँ बन जाती हैं। अन्य प्रकार के केन्द्र नदियों व नहरों के संगम या मिलन स्थान पर बन जाते हैं। जिस स्थान पर दो प्रदेशों का मिलन होता है वहाँ भी व्यापारिक केन्द्र बन जाता है। वहाँ इन दोनों देशों की पैदावार का विनिमय होता है। इटली का मिलन नगर इसी का सर्वोच्च उदाहरण है।

Tramontana (ट्रैमोनटैना) यह भूमध्य सागर प्रदेश में चलने वाले ठंढी व शुष्क हवा है। यह स्थानीय हवा उत्तर दिशा से चलती है।

Transhumance (ट्रैनशूमेन्स) पर्वतीय प्रदेशों में चरवाहे किसान अपने जानवरों को गर्मी के मौसम में तो पर्वतीय ढालों के चरागाहों पर चराते हैं परन्तु जाड़ा आते ही वे घाटी के घास के मैदानों में उतर आते है और जाड़ा खतम होते ही फिर उच्च ढालों पर चले जाते हैं। मौसम के अनुसार इस परिवर्तन को ट्रेनशूमन्स कहते हैं।

इस आने-जाने में जानवर के साथ-साथ उनको चराने वाले भी जाते हैं और उनके साथ-साथ अन्य स्थानीय निवासी भी गर्मी में पहाड़ के ऊपर चले जाते हैं और जाड़े में घाटी में उतर आते हैं। पर्वतों व घाटियों में स्थायी मकानों व झोपड़ियों में तो जनता के लोग निवास करने लगते हैं और चरवाहे अपने जानवरों को इधर-उधर चराते फिरते हैं।

Transport (**यातायात या परिवहन**) एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को माल ले जाना यातायात या परिवहन कहलाता है। कुछ अविकसित व पिछड़े हुये क्षेत्रों में जैसे चीन और मध्य अफ्रीका में मनुष्य कुलियों की तरह भार ढोते हैं। कहीं-कहीं पर घोड़े, खच्चर,

गदहे, बैल, ऊँट, हाथी और बारहसिंहे जैसे जानवरों के द्वारा यातायात में सहायता ली जाती है। परन्तु उन्नत व विकसित क्षेत्रों में यातायात निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है—(१) समुद्री या जल यातायात जिसमें जहाजों, नावों व बजरों के द्वारा माल इधर-उधर ले जाया जाता है। (२) स्थलीय यातायात जिसमें रेलों, मोटर लारियाँ तथा अन्य यान्त्रिक तरीके से माल ढोया जाता है। (३) वायु यातायात जिसमें वायुयान हल्के पर अधिक मूल्य की वस्तुओं तथा डाक को एक जगह से दूसरी जगह कम से कम समय में ले जाते हैं। यद्यपि इसका प्रचार बढ़ रहा है परन्तु फिर भी इसका प्रयोग सीमित ही है।

यातायात पर अनेक बातों का असर पड़ता है जिनमें से निम्नलिखित प्रधान हैं :—

(१) माल ढोने में खर्च की दर का कम होना, (२) समय की बचत, (३) सुरक्षा, (४) प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता (५) समतल प्राकृतिक बनावट और (६) अच्छी जलवायु। इनके अलावा समुद्री या जलीय यातायात के लिए निम्नलिखित बातें होना और भी जरूरी हैं—(१) जलमार्ग का साल भर बराबर खुला रहना, (२) शुरू और अन्त के विन्दुओं का बराबर प्रयोग के योग्य बने रहना और (३) समुद्र तक पहुँचने की सुविधा और अच्छे पोताश्रयों का होना। (देखिये Means of Transport)

Transportation (अपनयन) ( ) माल को इधर से उधर ले जाना अपनयन कहलाता है। (देखिये Transport)

(२) भूपटल पर ढीले व असंयुक्त पदार्थों का एक स्थान से हट कर दूसरी जगह जाने को अपनयन कहते हैं। धरातल पर अपनयन का कार्य तीन प्रकार से होता रहता है—(अ) गुरुत्वाकर्षण द्वारा शिलाखंड ऊँचे भागों से लुढ़ककर नीचे गिर जाते हैं। (ब) हटानेवाली शक्ति विशेषतया बहता हुआ जल चट्टानों के अंश को अपने में घुलाकर अदृश्य रूप से हटाता है। (स) अपनयन करनेवाली प्राकृतिक शक्ति शिलाखंडों को जोर से ठेल कर हटाती रहती है।

वास्तव में जो शक्तियाँ स्थल को काटती हैं वही अपने साथ बहुत से पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती हैं। वायु, नदी, और हिमनदी इस कार्य को करती हैं। परन्तु पदार्थों का अपनयन करनेवाली शक्तियों में नदियाँ सबसे मुख्य हैं। कोई-कोई नदियाँ तो हजारों मील लम्बी होती हैं और वे अपने साथ शिलाखंडों व शिलाचूर्ण को बहुत दूर तक ले जाती है। नदियाँ अपनयन का कार्य दो प्रकार से करती हैं—(१) पंक, बालू और महीन मिट्टी को अपने जल के साथ-साथ बहाती ले जाती हैं। इसी कारण उनका पानी गँदला दिखलाई पड़ता है। यदि पानी को किसी जगह थोड़ी देर के लिये स्थिर करके रख दिया जाय तो यह राशि नीचे जम जायेगी। (२) नदी की तली में बहुत बड़े-बड़े शिलाखंड लुढ़कते हुये या रगड़ खाते हुये आगे बढ़ते रहते हैं।

वायु महीन धूल को बहुत दूर तक उड़ा ले जाती है। थोड़ी दूर तक बालू को भी धूल उड़ा ले जाती है। समुद्रतट से आन्तरिक प्रदेशों में बालू इसी प्रकार उड़ा कर ले जाई जाती है।

हिम नदियाँ भी पदार्थों को दो प्रकार से ले जाती हैं। उनकी तली में मिट्टी, बालू, पत्थर तथा बड़े-बड़े शिलाखंड जमे हुये रहते हैं और हिम प्रवाह के साथ नीचे की तली के साथ रगड़ खाते हुये चलते रहते हैं। इसके अलावा हिमनदी की सतह पर इधर-उधर से गिरे हुये पत्थर व शिलाखण्ड आगे को ले जाये जाते हैं। (देखिये Moraine)

इनके अलावा समुद्र की लहरें व धारायें भी पदार्थों को समुद्रतट से गहरे जल में ले जाती हैं। समुद्र द्वारा अपनयन का कार्य दो प्रकार से होता रहता है—(१) पत्थर के रोड़े, बालू

और बजरी को तट के किनारे-किन रे लुढ़काता रहता है। (२) यह तट के चट्टानों से तोड़े हुए पत्थर के टुकड़ों को अधिक गहरे जल में घसीट ले जाता है। किसी प्राकृतिक शक्ति द्वारा अपनयन का कार्य निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है—(१) प्रदेश विशेष की चट्टानें की बन वट व ढाल, (२) शक्ति विशेष की प्रचण्डता और (३) जल हिम या हवा का आयतन।

Tranquill Eruption (शान्त उद्गार) जब ज्वालामुखी के मुख से लावा उबल-उबल कर निकलता रहता है तो उसे शान्त उद्गार कहते हैं। वास्तव में शान्त उद्गार की विशेषतायें दरार उद्गार और विस्फोटक उद्गार दोनों से ही भिन्न होती हैं। इसीलिए इसको कभी-कभी इन दोनों के बीच की स्थिति कहा जाता है। हवाई द्वीप समूह के ज्वालामुखी उद्गार इसी प्रकार के होते हैं।

Transverse Valley (आड़ी तिरछी घाटी) जब नदी पर्वत श्रेणियों के समानान्तर न बहकर उनके बीच से आरपार घाटी बनाती है तो इसे आड़ी तिरछी-घाटी कहते हैं। आड़ी-तिरछी घाटी चट्टानों के स्तरों की दिशा के बीच आर-पार बनी रहती है। जिस प्रदेश में नदियाँ आड़ी-तिरछी घाटियों में से होकर बहती हैं वहाँ के जलप्रवाह को आड़ा-तिरछा जलप्रवाह कहते हैं।

जो नदियाँ आड़ी तिरछी घाटियाँ बनाती हैं उनकी सहायक नदियाँ बहुत होती हैं क्योंकि दोनों ही किनारों पर समानान्तर घाटियों में बहनेवाली नदियाँ आकर मिलती रहती हैं। (देखिये Longitudinal Drainage)

Traversing (ट्रैवर्सिंग) पैमाइश करने का सबसे सीधा और साधारण तरीका ट्रैवर्सिंग कहलाता है। इस प्रकार की पैमाइश का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि एक दूसरे से मिली हुई सीधी रेखाओं की एक क्रमिक व्यवस्था सी कर ली जाती है और इनकी लम्बाई व इनके बीच के कोणों का नाप लिया जाता है। रेखा की लम्बाई को श्रंखला, लोह के टेप, साइक्लोमीटर, पीडोमीटर या पैदल चलकर नाप ली जाती है। कोणोंको थियोडलाइट, प्रिसमेटिक ध्रुवघड़ी या साधारण मेज (Plane Table) द्वारा नाप लेते हैं।

ट्रैवर्सिंग द्वारा पैमाइश त्रिभुजीकरण के मुकाबले कम ठीक होती है। इसलिए इस प्रकार की पैमाइश को केवल वहीं करते हैं जहाँ (१) केवल देखभाल या जाँच-पड़ताल की ही जरूरत रहती है और जहाँ काम जल्दी निपटाना होता है। (२) जहाँ भारी यन्त्रों को नहीं ले जाया जाता है वहाँ भी इसी प्रणाली को अपनाते हैं। (३) समतल व घने बन ढके हुए प्रदेश में या घने बसे हुए नगरों में जहाँ त्रिभुजीकरण के बिन्दुओं को देखना कठिन होता है वहाँ भी इसी विधि द्वारा काम करते हैं। साधारणतया त्रिभुजीकरण द्वारा निर्धारित दो बिन्दुओं के बीच के तथ्य व निरीक्षण इसी विधि यानी ट्रैवर्सिंग द्वारा ही भरे जाते हैं।

पैमाइश के लिए बनाये गये ट्रैवर्स दो प्रकार के होते हैं—(१) **सब तरफ से बन्द** जिसमें रेखायें एक पूर्ण क्षेत्र को सब तरफ से घेरने के बाद मिल जाती हैं। (२) **खुला हुआ टैवर्स** जिसमें रेखायें किसी भी तरफ से बन्द नहीं होतीं। साधारणतया नदी-घाटी की पैमाइश में या मार्ग के मानचित्र बनाने में इसी प्रकार के टैवर्स को बनाया जाता है।

Travertine Taufa (ट्रैवरटाइन) चूने से मिला हुआ जल जब स्रोत से बाहर निकलता है तो वाष्पीकरण द्वारा जल तो उड़ जाता है और चूने का निक्षेप स्रोत के मुँह के पास इकटठा हो जाता है। सामान्यतः स्रोत का जल वायुमण्डल से कार्बन डाइ आक्साइड ग्रहण करके स्वयं ही चूने के अंश को अपने में घुला लेता है। बाद में इसी का निक्षेप बन जाने पर उसे ट्रैवरटाइन कहते हैं।

ट्रैवरटाइन उष्णजल के फौव्वारों के पास अक्सर बन जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के यलोस्टोन पार्क के मैमथ गर्म जल स्रोत से बहुत से ट्रैवरटाइन का निर्माण हो गया है। (देखिये Sinter Deposits)

Treaty Port (सन्धि बन्दरगाह) चीन के वे बन्दरगाह जिन के द्वारा विदेशी व्यापार हो सकता है उन्हें सन्धि बन्दरगाह कहते हैं। क्योंकि यह समझौता या व्यवस्था सन्धि द्वारा उपस्थित की गई है इन बन्दरगाहों में विदेशी जहाज आजादी से माल लादते व उतारते हैं और वहाँ विदेशी व्यापारी रहते हैं। उन्हें सम्पत्ति खरीदने का भी अधिकार रहता है। सबसे प्रधान सन्धि बन्दरगाह शंघाई है। कैन्टन भी सन्धि बन्दरगाह है। इसके अलावा कुछ और बन्दरगाह दक्षिणी-पूर्वी किनारे पर स्थित हैं।

Trellised Drainage (ट्रेलिस जलप्रवाह) जब किसी स्थान की ढाल के अनुरूप बहनेवाली नदियाँ और सहायक नदियाँ इस प्रकार से व्यवस्थित होती हैं कि उनका आकार एक चतुर्भुज की तरह हो जाय, तो उसे ट्रेलिस जलप्रवाह कहते हैं। इस प्रकार का जलप्रवाह वहाँ पाया जाता है जहाँ नदियों के जल हड़पने की क्रिया कई बार हो चुकी होती है। दक्षिणी अपलेशियन पर्वत की नदियाँ इसका स्पष्ट उदाहरण हैं।

Trellic Pattern (ट्रैलिक जलप्रणाली) जिस प्रदेश में भिन्न कठोरता व दावितवाली चट्टानें एक ही कोण पर इस प्रकार झुकी रहती हैं कि कठोर चट्टानों के स्तर तो सतह पर आ जाते हैं और उनसे श्रेणी बन जाती हैं। इन कठोर चट्टानों की श्रेणियों को जो घाटियाँ एक-दूसरे से अलग करती हैं वे रूप में बड़ी विषम होती हैं। इस प्रकार की स्थिति में बने हुए जल प्रवाह को ट्रैलिक जलप्रणाली कहते है। इस प्रकार का जलप्रवाह बहुत कुछ समानान्तर होता है।

जब श्रेणियाँ किसी गुम्बदाकार पर्वत के चारों ओर स्थित होती हैं तो उनकी घाटियों का जलप्रवाह भी मुड़ा सा हो जाता है। इसे एनुलर (Annular) जलप्रणाली कहते हैं।

Triangulation (त्रिभुजीकरण) यह पैमाइश की बड़ी ही त्रुटिरहित प्रणाली है और इसका आधारभूत सिद्धान्त यह है कि यदि किसी त्रिभुज के कोण व एक भुजा की रेखा ज्ञात हो तो अन्य भुजाओं की लम्बाई भी मालूम की जा सकती है। अतएव धरातल पर एक सीधी रेखा खींचकर उसको आधाररेखा मान लेते हैं। आधार रेखा की लम्बाई एक या दो मील होती है। इसके बाद थियाडलाइट द्वारा इसके दोनों सिरों से किसी प्रसिद्ध स्थान का निरीक्षण करके कोण बना देते हैं। इस प्रकार एक त्रिभुज बन जाता है। अब इस त्रिभुज की विभिन्न भुजाओं को आधाररेखा मानकर अन्य त्रिभुज इसी प्रकार बनाते चले जाते हैं यहाँ तक कि समस्त देश त्रिकोण के जाल से ढक दिया जाता है।

इन निश्चित बिन्दुओं की ऊँचाई पहिले से ही निश्चित कर ली जाती है और इनके बीच के भाग में प्लेन टेबल द्वारा विभिन्न स्थलरूपों को भर देते हैं।

त्रिभुजीकरण में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है और यन्त्रों की सहायता से करने पर कई मीलों में केवल कुछ ही इंच गलती की सम्भावना रहती है।

Tributary (सहायक नदी) जो नदी या धारा बहती हुई अपना पानी मुख्य नदी की धारा में डाल देती है उसे सहायक नदी कहते हैं। सहायक नदियाँ मुख्य नदी में किसी भी जगह दायें-बायें किनारे पर आकर मिल जाती हैं। मुख्य नदी तो ढाल के अनुरूप बहती है और इसके समानान्तर बहने के बाद सहायक नदियाँ इसमें किसी स्थान पर मिल जाती हैं। सहायक नदियों में दोनों ओर से ढाल के विपरीत बहनेवाली अनेक उपधारायें आ

मिलती हैं। इस प्रकार नदी व उसकी सहायक नदियाँ एक जाल की तरह बिछी मालूम पड़ती हैं।

प्रत्येक सहायक नदी मुख्य नदी की जल की मात्रा में वृद्धि तो जरूर करती है परन्तु यह कोई जरूरी नहीं है कि उससे मुख्य नदी की चौड़ाई बढ़ जाय। अक्सर जल की अतिरिक्त राशि ,5 तेज बहाव में पता ही नहीं चलता। (देखिये Subsequent Streams, Obsequent Streams)

Troglodyte (ट्रोगलोडाइट) गुफा या चट्टानी घर में रहनेवाले आदमी को ट्रोगलोडाइट कहते हैं।

Tropic of Cancer (कर्क रेखा) सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करती हुई पृथ्वी जब उस स्थित में पहुँचती है जहाँ उसका उत्तरी ध्रुव सूर्य की तरफ झुका रहता है तो उत्तरी गोलार्द्ध में एक रेखा में स्थित सभी स्थान दिन में एक बार सूर्य के नीचे आ जाते हैं। उस कल्पित रेखा को कर्क रेखा कहते हैं। कर्क रेखा २३½° उत्तरी अक्षांश बनाती है। पर जब सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं तो उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी की ऋतु होती है।

कर्क रेखा के दक्षिण में उष्ण कटिबंध और इसके उत्तर में शीतोष्ण कटिबंध पाया जाता है। इस प्रकार कर्क रेखा का भी विशेष महत्व है। इस अयन सीमा पर उच्चभार पाया जाता है और इससे ही उत्तर में पछुव हवायें तथा दक्षिण में व्यापारिक हवायें चलती हैं। वास्तव में भूमध्य रेखा पर गर्म व हल्की होकर जो संवाहन धारायें उठती रहती हैं वे ठंडी और भारी होकर उत्तरी गोलार्द्ध में इसी रेखा पर आकर उतरती है और उच्चभार उत्पन्न कर देती हैं।

Tropic of Capricorn (मकर रेखा) जिस प्रकार कर्करेखा उत्तरी गोलार्द्ध में है उसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा है जब पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ घूमती हुई उस स्थिति में पहुँचती है जहाँ उसका दक्षिणी ध्रुव सूर्य की तरफ झुका रहता है। इस समय दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा पर स्थित सभी स्थान दिन में एक बार सूर्य के नीचे आ जाते हैं। यह २३½° दक्षिणी अक्षांश बनाती है और इस पर जब सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं तो उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़ा और दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम रहता है।

मकर रेखा भूमध्यरेखा के दक्षिण में दूसरी अयन सीमा बनाती है। इसके उत्तर में उष्ण कटिबंध और इसके दक्षिण में शीतोष्ण कटिबंध पाया जाता है। इस पर उच्च भार रहता है। और यहाँ से दक्षिण की ओर पछुवाँ हवायें तथा उत्तर की ओर व्यापारिक हवायें चलती हैं।

भूमध्य रेखा पर गर्म व हल्की होकर उठनेवाली हवायें दक्षिण में वायुमण्डल की ऊपरी सतहों में से होती हुई जब मकर रेखा पर पहुँचती हैं तो वहाँ ये ठंडी व भारी हवायें नीचे को उतरने लगती हैं और उच्च भार प्रदेश बना देती है।

Tropics (अयन सीमायें) (१) कर्क और मकर रेखा। (२) कर्क रेखा और मकर रेखा के बीच के प्रदेश को उष्ण कटिबंध कहते हैं। इस कटिबंध में दो बार सूर्य सर के ऊपर सीधा चमकता है और इसकी किरणें साल के किसी महीने में भी टेढ़ी नहीं पड़ती। इसीलिये सामान्यतः मौसम सदा ही गर्म बना रहता है।

Tropical Zone (उष्णकटिबंध) (देखिये Torrid Zone)

Tropical Cyclone (उष्णकटिबंधीय चक्रवात) उष्णकटिबंध में स्थानीय संवाहन धारायें जब पृथ्वी के आवर्तन के कारण मुड़कर वायुभवँर सी बना लेती है तो उन्हें उष्णकटिबंधीय चक्रवात कहते हैं। उष्णकटिबंधीय चक्रवात का विस्तार यद्यपि बहुत

अधिक नहीं होता परन्तु इसकी प्रचण्डता बहुत अधिक होती है। इस प्रकार के तूफान उष्णकटिबंध में विशेष मौसमों में समुद्र के ऊपर बन जाते हैं। प्राय: इन की उत्पत्ति भूमध्य रेखीय शान्त मण्डल में तथा महासागरों के पश्चिमी सिरे पर होती है। इनकी उत्पत्ति का प्रधान क्षेत्र १०° और २०° अक्षांश के बीच में स्थित हैं। ये चक्रवात भूमध्य रेखा के समीप या इस पर नहीं बन पाते क्योंकि भूमध्य रेखा पर पृथ्वी के आवर्त्तन के कारण मार्ग से विचलित होने का अंश बहुत कम रहता है और यही कारण है कि उष्ण कटिबंधीय चक्रवात उस समय सब से अधिक उत्पन्न होते हैं जब शान्त मण्डल भूमध्य रेखा से अधिकतम दूरी पर स्थित होता है। शान्त मण्डल में भी इन तूफानी चक्रवातों की बहुलता उस भाग में होती है जो ध्रुवों की तरफ स्थित होते हैं।

इस प्रदेश या भाग में चक्रवात बनने के अनुकूल सभी दशायें मौजूद रहती हैं। यहाँ हवा बहुत नम रहती है और इनकी उत्पत्ति के लिए वायु का गर्म, नम तथा प्रवाहहीन होना आवश्यक है। ये तीनों ही बातें भूमध्यरेखिक शान्तमण्डल के ध्रुवीय किनारे पर समुद्र के पश्चिमी भागों में पाई जाती है जहाँ की व्यापारिक हवाओं में भाप ग्रहण करने के अधिकतम शक्ति होती है। ये चक्रवातीय तूफान उस समय सबसे अधिक बनते हैं जब पृथ्वी शरतकालीन समरात्रि (Autumnal Equinox) में स्थित होती है। इस क्षेत्र में उत्पन्न होने के बाद ये तूफानी चक्रवात आगे बढ़ते हैं और व्यापारिक हवाओं के क्षेत्र में किसी कमजोर स्थान मिलने पर ये फौरन पछवाँ हवाओं के क्षेत्र में पहुँच जाते हैं।

ये तूफान उत्तरी गोलार्द्ध में और विशेषकर आन्ध्र महासागर में बनते हैं। विविध क्षेत्रों में इनके नाम अलग-अलग हैं। पश्चिमी द्वीप समूह में इन्हें हरीकेन (Hurricane) दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र में टारनैडो (Tornado) और चीन के समीप टाइफून (Typhoon) कहते हैं। उष्णकटिबंध में उत्पन्न होने के बाद ये व्यापारिक हवाओं के साथ पश्चिम दिशा की ओर चलते हैं परन्तु ध्रुव की तरफ हटने पर जब ये शीतोष्ण कटिबंध में पहुँचते हैं तो ये पूर्व की ओर मुड़ जाते हैं और इनमें शीतोष्ण कटिबंध की विशेषतायें भी आ जाती हैं। उष्णकटिबंध से शीतोष्ण कटिबंध में पार कर जाने पर इनकी भीषणता कम हो जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये तूफान पहिले पश्चिम की ओर चलते हैं, फिर उत्तर-पश्चिम की ओर। २० और २५ अक्षांश के बीच में ये उत्तर की तरफ मुड़े जाते हैं और उत्तर पूर्व से चलते।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात एक घुमावदार मार्ग पर चलते हैं और इनके चलने पर बड़ी हानि होती है। प्रत्येक तूफान की प्रचण्डता व गति अलग-अलग होती है। कभी-कभी तो चक्रवात के विविध अंशों में वायु की गति विभिन्न होती है। केन्द्र के समीप हवा मन्द रहती है परन्तु ध्रुवों की तरफ इनकी गति ५०-६० मीटर प्रति सेकण्ट तक हो जाती है। लेकिन ये स्थायी नहीं होते और इनकी गति ५०-६० किलोमीटर प्रति घण्टे तक गिर जाती है। इनके चलने की गति कभी-कभी तो बड़ी ही शून्य होती है और कभी ये एक दिन में ८०० किलोमीटर तक चले जाते हैं। बंगाल की खाड़ी, अरब सागर और चीन सागर में इनकी औसत चाल ३२० किलोमीटर तक होती है। जल पर चलनेवाले उष्णकटिबंधीय चक्रवात बड़े भयानक होते हैं। इनकी विनाशकारी शक्ति समुद्रतट तथा द्वीपों पर बहुत अधिक होती है परन्तु ज्योंही ये तूफान स्थल पर पहुँचते हैं त्योंही इनकी शक्ति कम हो जाती है और गति धीमी पड़ जाती है। परन्तु तटीय व द्वीपीय प्रदेशों में पेड़ उखड़ कर गिर जाते हैं और समुद्र में उठनेवाली भीषण लहरें भारी हानि करती हैं।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का आकार अण्डे की तरह होता है और इनके व्यास की लम्बाई

अलग-अलग होती है। उत्पत्ति के स्थान के समीप ये ८० किलोमीटर तक चौड़े होते हैं परन्तु पूर्ण विकसित चक्रवात का व्यास ३०० से १५०० किलोमीटर तक हो सकता है। परन्तु मेघाच्छादित भाग ३००० किलोमीटर तक विस्तृत हैं।

उष्णकटिबंधीय चक्रवात के न्यून भार केन्द्र को तूफान की आँख कहते हैं और इस आँख के चारों ओर भार का ढाल बहुत अधिक होता है। तूफान की आँख का व्यास प्रायः २० मील तक होता है। यहाँ पर वायुभार निम्न होता है और आसमान साफ रहता है। वायु के सदैव उतरते रहने के कारण दबाव से हवा गर्म व शुष्क हो उठती है। तूफान के अन्य भागों में हवा बड़े जोरों से चलती है और घने बादलों से भीषण वर्षा होती है। अक्सर बादल भी गरजते हैं और बिजली भी चमकती है। परन्तु तूफान की आँख आने पर वर्षा बन्द हो जाती है और आकाश खुल जाता है। आकाश में सिरस बादल छा जाते हैं।

उष्णकटिबंधीय चक्रवात के आने पर मौसम नम व सुस्त हो जाता है। जोर के अंधड़ चलते हैं और भारी वर्षा होती है। इन अंधियों के बीच मौसम शान्त हो जाता है।

Troposphere (अधोमण्डल) वायुमण्डल की निचली तहों को अधोमण्डल कहते हैं। यह भाग पृथ्वी तल से ६ मील की ऊँचाई तक माना जाता है। अधोमण्डल का विस्तार अलग-अलग होता है। इसका विस्तार भूमध्य रेखा पर सबसे अधिक (१३-१४ मील) और ध्रुवों पर सबसे कम (४ मील) रहता है। अधोमण्डल में वायु की संवाहन धारायें चला करती हैं और जैसे-जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है तापमान गिरता जाता है।

समतापमण्डल के विपरीत इसमें अनेक वायु विक्षोभ हुआ करते हैं। इसमें धूल के कण और जलवाष्प भी पाये जाते हैं और मेघों का प्रदेश भी यही है। ऋतु में परिवर्तन का भी प्रदेश यही अधोमण्डल है और ऋतु विज्ञान में इसी प्रदेश का अध्ययन किया जाता है।

Tropopause (मध्यस्तल) अधोमण्डल और समताप मण्डल को अलग करने वाली रेखा या सीमा को मध्यस्तल कहते हैं। इसे अक्सर अधोमण्डल की आन्तरिक छत भी कहते हैं।

Tropophyte (ट्रोपोफाइट) जो पेड़ या पौधा एक मौसम में हिगरोफाइट (Hygrophyte) की विशेषतायें और दूसरे मौसम में जेरोफाइट (Zerophyte) के गुण प्रदर्शित करता है उसे ट्रोपोफाइट कहते हैं। सवाना प्रदेश या उष्णकटिबंधीय घास के मैदानों के पेड़ शुष्क मौसम में अपनी पत्तियाँ गिरा कर कुछ समय के लिए जेरोफाइट बन जाते हैं और वर्षा के शुरू होते ही फिर पत्तियाँ ग्रहण करके हिगरोफाइट हो जाते हैं।

Trough (घाटीगर्त) जब भूमि का कोई भाग समीपवर्ती भागों की अपेक्षा नीचे धँस जाता है तो इस प्रकार जो निम्नभूमि या गड्डा बन जाता है उसे घाटी गर्त कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है—(१) V आकार का घाटीगर्त जो नदी के जल के द्वारा अथवा दरेरें पड़ने से बन जाता है। (२) U आकार का घाटी गर्त जो हिम नदी के कार्य से बन जाता है (३) कीप के आकार का घाटी गर्त जो घुलनशील चट्टानों के क्षेत्र में बन जाता है। (देखिये Syncline, Valley, Doline, Swallow Hole or Sink Hole)

Trough Compass (ट्रफ ध्रुवघड़ी) पैमाइश में प्रयुक्त यह एक यन्त्र है। इसमें एक लम्बा बक्स होता है जिसके दोनो पार्श्व समानान्तर होते हैं और जिसके ऊपर शीशे का ढक्कन लगा रहता है। इसके अन्दर केन्द्र में एक चुम्बकीय सुई रक्खी रहती है। इस सुई के किनारे अंकित वृत्तांशों पर आजादी से घूमते हैं। निरीक्षण करते समय सुई को ढीला व कसा जा सकता है। अब चुम्बकीय सुई के सिरे इस प्रकार स्थिर हो जाते हैं कि वे शून्यांश पर आ

जाते हैं। ऐसी दशा में सुई की धुरी बक्स के दोनों पार्श्वों या किनारों के समान्तर हो जाती है और इन किनारों के सहारे खींची गई रेखायें चुम्बकीय दिशा दिखलाती हैं।

Trough Fault (घाटी दरार) देखिये (Rift Valley)

Trough of Low Pressure (निम्नभार गर्त) जब किसी चक्रवात के सीमान्त की सतह पृथ्वी के धरातल के सम्पर्क में आ जाती है तो समभार रेखाओं की दिशा में बड़ा फरक आ जाता है। इसलिए समभार रेखायें नुकीली V अक्षर के आकार के हो जाते हैं और इन्हें निम्नभार गर्त कहते हैं। कभी-कभी इन्हें V आकार के गर्तचक्र भी कहते हैं।

साधारण रूप से निम्न भार का यह लम्बा क्षेत्र किसी चक्रवात या गर्तचक्र का बढ़ा हुआ हिस्सा होता है और इसकी समभार रेखायें एक घाटी की तरह गहरे बेसिन से ऊपर की ओर उठी रहती हैं। इसकी बनावट उच्चभार-श्रेणी (Ridge of High Pressure) के बिल्कुल विपरीत होती है। इनका सीमान्त इनके मध्य में स्थित होता है और मौसम की दशा इस बात पर निर्भर रहती है कि यह सीमान्त गर्म है या ठंडा या सीमान्त मिलन से सम्बन्धित।

गर्म सीमान्त के निम्नभार गर्त में लगातार वर्षा होती है और हल्के मेघ छाये रहते हैं। ठंढे सीमान्तवाले गर्त में सीमान्त आने से पहिले वर्षा होनी शुरू हो जाती है और जैसे ही निम्नभार गर्त गुजर जाता है मौसम फौरन ही साफ हो जाता है। परन्तु मौसम साफ होने से पहिले भारी वर्षा की एक बौछार अवश्य आ जाती है। यदि निम्नभार गर्त सीमान्त मिलन (Occlusion) से उत्पन्न हुआ है तो इसका मौसम ठीक वैसा ही होता है जैसा कि ठंडे सीमान्त वाले का: पर वर्षा जल्दी शुरु हो जाती है।

Trough Glacier (गर्त हिमनदी) कुछ हिमनदी पूर्णतया विकसित होकर हिम आवरण का रूप नहीं ग्रहण कर पाते बल्कि वे प्रवाहित होती हुई निचले सपाट जल विभाजक तक पहुँच जाती हैं। जल विभाजक के सिरे पर पहुँचने पर विपरीत दिशा में एक दूसरी हिम नदी प्रवाहित होने लगती है। इस प्रकार की सिरों वाली हिमनदी को गर्त हिमनदी कहते हैं। यह एक सिरे से दूसरे सिरे तक बराबर प्रवाहित होती रहती है।

True North (सच्चा उत्तर) ध्रुवतारा लगभग उत्तरीय ध्रुव के शिरोविन्दु पर है। इसलिए उत्तरी गोलार्द में ध्रुव तारे की स्थिति से दिशा का पता लगाते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ध्रुवतारे की ओर की दिशा उत्तर कहलाती है और इसे सच्चा उत्तर कहते हैं क्योंकि ध्रुव घड़ी के द्वारा जो उत्तरदिशा का पता लगता है वह सच्चे उत्तर से थोड़ा हट कर रहता है।

True Horizon (सच्चा क्षितिज) (देखिये Horizon)

Tsunami (शूमानी) जब कभी महासागर तल में कोई ज्वालामुखी विस्फोट होता है तो उसके उद्‌गार की शक्ति से समुद्र में एक बहुत बड़ी लहर उठ जाती है। इस भीषण लहर को शूमानी कहते हैं। यह लहर प्रशान्त महासागर में जापान के तट के समीप अक्सर आती है। जैसे-जैसे यह लहर गहरे समुद्र से तट की ओर अग्रसर होती है इसकी ऊँचाई उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इतिहास से ज्ञात होता है कि एक समय शूमानी से हजारों आदमियों की मृत्यु हो गई थी।

कभी-कभी भूल से इसे ज्वारीय लहर कह बैठते हैं।

Tufa (टयूफा) (देखिये Travestine)

Tuff (टफ) ज्वालामुखी उद्‌गार के समय ज्वालामुखी से चट्टानों के बहुत से

टुकड़े निकलते हैं। जिन शिलाखंडों में ज्वालामुखी राख का अंश मौजूद रहता है उन्हें टफ कहते हैं।

हाल में बनी टफ चट्टानें प्रायः ढीली व असंयुक्त होती हैं परन्तु पुरानी टफ चट्टानें साधारणतया जम-जमाकर संयुक्त व ठोस बन गई हैं।

Tumulus (ट्यूमूलस) (देखिये Barrow)

Tundra (टुन्ड्रा) उत्तरी अमरीका में कनाडा के अत्यन्त उत्तरी भाग में फैला हुआ वृक्षरहित शीत मरुस्थल टुन्ड्रा कहलाता है। यह आर्कटिक वृत में और नुकीली पत्तीवाले जंगल के उत्तर में फैला है। इसी प्रकार का क्षेत्र यूरेशिया के उत्तर में भी है और उसे लैपलैंड कहते हैं। इस प्रकार का कोई प्रदेश दक्षिणी गोलार्द्ध में नहीं है।

साल के अधिकतर भाग में यहाँ का औसत मासिक तापांश हिमांक से निम्न रहता है। जाड़े का मौसम लम्बा तथा कठोर होता है और भूमि वर्षा से ढकी रहती है। गर्मी का मौसम छोटा और कम गर्म होता है। जुलाई के महीने में भी मासिक तापांश का मध्यममान ५०° फार्नहीट से अधिक नहीं होने पाता है। दिन के समय अपेक्षाकृत अधिक गर्मी रहती है परन्तु ऊप मिट्टी या सतह से एक फुट नीचे की भूमि पर सदैव बर्फ जमी रहती है।

भूमि की इस विशेषता के कारण और जाड़े की प्रचण्ड बर्फीली हवाओं के कारण वृक्षों का उगना असम्भव होता है। गर्मी के मौसम में मास और लिचन की वनस्पति खूब उग आती है। साथ-साथ कुछ फूलदार पौधे भी निकल आते हैं। समतल भूमि पर, जहाँ जलप्रवाह खराब होता है, दलदल ही दलदल हो जाता है।

यहाँ पर बहुत कम लोग निवास करते हैं और जो थोड़े बहुत लोग रहते भी हैं वे खाना-बदोशों जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय शिकार करना या मछली मारना होता है। ये लोग तटीय प्रदेशों पर या दक्षिणी ढालों की सीमा पर शिकार करके और मछली मार के पेट भरते हैं। जानवरों के दाँतों से तो यह हथियार बनाते हैं और उनकी खाल से अपने वस्त्र बनाते हैं। इनका पहिनावा बूट, पतलून और कनटोपदार कोट होता है और ये सभी सील की खाल से बनाये जाते हैं। यहाँ पर रहने वाले लोग एस्कीमों कहलाते हैं। तट पर रहने वाले एस्कीमों लोग लकड़ी व पत्थर के मकानों में रहते हैं। जाड़े में ये लोग सील की खाल या कैरीवड की खाल के बने तम्बुओं में रहते हैं खासतौर जब ये अन्दर के प्रदेश में जाते हैं। कभी-कभी ये बर्फ का मकान बना कर रहते हैं जिसमें जाने का रास्ता बड़ा संकीर्ण होता है। जाड़े में बर्फ में छेद करके हारपून या भाले से ये मछलियों का शिकार करते हैं।

टुन्ड्रा निवासियों के प्रधान जानवर बारहसिंघा, मस्कबैल और कैरीवड होते हैं। जिन्दा दशा में इनसे घोड़े व गाय का काम लिया जाता है। ये बेपहिये की गाड़ी खींचते हैं तथा दूध देते हैं। जब ये मर जाते हैं तो इनसे खाने को मांस तथा पहिनने को खाल मिलती है। इसके अलावा यहाँ रोयेंदार भालू, लोमड़ी व भेड़िये पाये जाते हैं। बालदार खरगोश और गिलहरियाँ भी पाई जाती हैं। गर्मी के छोटे मौसम में यहाँ मच्छड़, मक्खी आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

टुन्ड्रा प्रदेश बहुत पिछड़े हुये हैं और यहाँ पर अब थोड़े दिनों से बालदार जानवरों की खाल व फर इकट्ठा करने का काम शुरू हुआ है।

Twilight (गोधूलि प्रकाश) पृथ्वी के विभिन्न प्रदेशों में सूर्योदय से पहिले और सूर्यास्त के बाद देखा जाने वाला प्रकाश गोधूलि प्रकाश कहलाता है। यह वह समय है जब

वायुमण्डल सूर्योदय से पहिले थोड़ी देर तक और इसी प्रकार सूर्योदय के बाद थोड़ी देर तक प्रकाशित बना रहता है।

जब सूर्य क्षितिज के नीचे रहता है तो उसका प्रकाश वायुमण्डल की ऊपरी परतों में बादलों व धूल-कणों द्वारा फैल जाता है और वही प्रतिबिंबित धुंधला प्रकाश गोधूलि प्रकाश कहलाता है। गोधूलि प्रकाश की अवधि ध्रुवों पर सबसे अधिक और भूमध्य रेखा पर सबसे कम होती है। इसका कारण यह है कि भूमध्यरेखा पर स्थित स्थान ध्रुवों पर स्थित स्थानों की अपेक्षा अधिक तेजी से घूमते हैं और इसी जह से सूर्योदय के समय से फौरन सूर्य के सामने आ जाते हैं और सूर्यास्त के समय फौरन उसकी किरणों के मार्ग से हट जाते हैं।

जब सूर्य अस्त होते समय क्षितिज पर समकोण बनाता है तो वह बहुत शीघ्र छिप जाता है। परन्तु इसके विपरित जब सूर्य क्षितिज के साथ कोण बनाता हुआ अस्त होता है तो उसे छिपने या अदृश्य होने में अपेक्षाकृत देर लगती है। इसीलिए गोधूलि प्रकाश की अवधि समरात्रियों (Equinoxes) में सबसे कम और उत्तरायण तथा दक्षिणायन स्थिति में सबसे अधिक रहती हैं।

प्रातःकाल गोधूलि प्रकाश उस समय शुरू होती है जब सूर्य क्षितिज रेखा से १८° नीचे रहता है और सायंकाल का गोधूलि प्रकाश उस समय समाप्त हो जाता है जब सूर्य क्षितिज रेखा से १८° नीचे चला जाता है। परन्तु इसे ज्योतिषीय गोधूलि (Astronomical Twilight) कहते हैं। इसके विपरीत नागरिक अथवा असैनिक गोधूलि प्रकाश (Civil Twilight) वह होता है जिसमें बाहर-भीतर आने-जाने का काम किया जा सके। सुबह के गोधूलि प्रकाश का प्रारम्भ और सायंकाल के गोधूलि प्रकाश का अन्त उस समय होता है जब सूर्य की स्थिति क्षितिज रेखा से ६° नीचे को रहती है।

गर्मी के मौसम के मध्यान्ह में ४८½° अक्षांश और और आर्कटिक या अन्टार्कटिक वृत के बीच के कटिबंध में कुछ समय तक रात में भी गोधूलि प्रकाश बना रहता है। जैसे-जैसे हम ध्रुवों की ओर बढ़ते है वैसे वैसे सतत गोधूलि प्रकाश की रातों की संख्या बढ़ती जाती है।

Typhoon (टाइफून) चीन सागर के उष्णकटिबंधीय चक्रवात को टाइफून कहते हैं। इनके चलने का समय प्रायः पिछली गर्मी और शरत ऋतु का प्रारम्भ होता है। अगस्त और सितम्बर के महीने में टाइफून हवायें खूब चलती हैं। पश्चिमी प्रशान्त महासागर में कैरोलीना द्वीपसमूह के समीप ये हवायें बनती हैं और उत्तर-पूर्व की ओर चलती है। फिलीपाइन द्वीपसमूह तो इनके मार्ग में पड़ते हैं। दक्षिणी चीन के तटीय भागों में भी इनका प्रभाव पड़ता है।

आम उष्णकटिबंधीय चक्रवात के तरह, टाइफून हवायें बड़ी प्रचण्ड होती हैं और भीषण वर्षा करती हैं। इनके चलने पर विस्तृत हानि होती है। ये तूफानी तट रेखा को पार करने के बाद जैसे-जैसे अन्दर की तरफ स्थलखंड पर बढ़ती हैं कमजोर पड़ती जाती हैं।

सन १९२२ के अगस्त महीने में स्वाटेव में टाईफून हवाओं से भीषण हानि हुई थी। चक्रवात के केन्द्र के गुजरने के एक दम बाद ही वायु की दिशा में ऐसा आकस्मिक परिवर्त्तन हुआ कि एक भीषण लहर सारे नगर पर फैल गई और करीब ५०,००० आदमियों की जानें गईं।

Ubac (यूबक) यह फ्रांसीसी भाषा का पारिभाषिक शब्द है। किसी पर्वतीय प्रदेश का जो ढाल ध्रुवों की ओर स्थित होता है उस पर सूर्य की किरणें नहीं पड़तीं। वह सदैव

छाया में स्थित रहता है। सूर्य प्रकाश और सूर्यताप दोनों ही इस ढ़ाल पर बहुत कम रहते हैं। इसे यूबक कहते हैं। यह विशेषकर आल्पस पर्वत प्रदेश में प्रयोग किया जाता है। इटाली भाषा में इसे ओपाको (Opaco) और जर्मन भाषा में शेटनसीट (Schattenseite) कहते हैं। (देखिये Adret)

Ultimate Form (अन्तिम स्थिति) जब बाह्य शक्तियाँ काट-छाँट करती हुई किसी स्थलरूप को उस दशा में पहुँचा देती हैं जब और अधिक काटछाँट सम्भव नहीं होती तो इसे स्थलरूप की अन्तिम स्थिति कहते हैं। इसमें व टी समतल मैदान बन जाती है और उसके बीच से नदी मन्थरगति से बहती रहती है। बीच-बीच कठोर चट्टानों के अवशेष छोटे-छोटे टीलों के रूप में पाये जाते हैं। (देखियेPene Plain) यह स्थलरूप के विकास और बनावट की अन्तिम दशा है जब इसका रूप और अधिक नहीं निखर सकता। आवरण क्षय, अपनयन और निक्षेप की शक्तियाँ अपना काम खत्म कर चुकी होती हैं। परन्तु बहुत कम स्थलरूप इस अन्तिम स्थिति तक पहुँच पाते हैं क्योंकि बीच में ही किसी भौगर्भिक हलचल के कारण उनमें नवजीवन का संचार हो जाता है और फिर से काट-छ ट शुरू हो जाती है।

Umbra (छाया) जब सूर्य या चन्द्रग्रहण पड़ता है तो बीच में पड़ने वाली पृथ्वी या चाँद की परछ ई को छाया कहते हैं। यह छाया बिल्कुल पूर्ण होती है। चन्द्रग्रहण के समय पृथ्वी की छाया बहुत बड़ी होती है परन्तु सूर्य ग्रहण के समय चन्द्रमा की छाया अपेक्षाकृत बहुत छोटी होती है; सनस्पॉट (Sunspot) के केन्द्र में स्थित वाले या अँधेरे भाग को भी छाया ही कहते हैं।

Undertow (अन्डरटो) जब लहर किनारे पर टकराने के बाद वापस होती है तो जल के भीतर से होकर जाती हैं और साथ में बहुत से कंकड़-पत्थर व बालू-बजरी भी बहा ले जाती हैं। इसे अन्डरटो कहते हैं।

Underground Drainage (भूगर्भवर्ती जलप्रवाह) (१) चूने व खड़िय मिट्टी से बनी चट्टानों के प्रदेश में सतह पर कोई भी जल प्रवाह नहीं दिखलाई पड़ता। र्षा का जल भूमि में प्रवेश करने पर चूने की चट्टानों को घुला डालता है और भूगर्भ में बड़ी बड़ी सुरंगें व कन्दरायें बन जाती हैं। ऊपर के गड्ढों या छेदों से होकर र्षा का जल या सतह की धारायें इन भूगर्भवर्ती सुरंगों व कन्दराओं में पहुँच जाता है। इसे भूगर्भवर्ती जलप्रवाह कहते हैं (देखिये Karst Topography)। यह भूगर्भवर्ती जलप्रवाह आ रणक्षय व निक्षेप दोनों ही कार्य करता है।

(२) प्रवेश्य चट्टानों में प्रवेश करके जब र्षा का जल धरातल के नीचे अप्रवेश्य चट्टानों पर पहुँचता है तो इधर-उधर घूमने लगता है और बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ता है। चट्टानों की बनावट के अनुसार यह स्रोत तथा पाताल फोड़ कुएँ के रूप में ऊपर आ जाता है। (देखिये Hot Spring, Mineral Spring, Geyser, Artesian Well)

यदि जलवायु व भूगर्भवत दशायें अनुकूल ह तो भूगर्भवर्ती जलप्रवाह बन जाता है। यदि वर्षा की मात्रा अधिक हो तथा चट्टानें प्रवेश्य ह तो धरातल की चट्टानों के छिद्रों, गड्ढों, संधों, और दरारों में से होकर ऊपर की सतह का जल नीचे पहुँच जाता है। यदि जल की अमाई पर्याप्त मात्रा में हो तो चूने व खड़िया मिट्टी की चट्टानों में अन्दर की तरफ काफी जल इकट्ठा हो जाता है और भूगर्भवर्ती जलप्रवाह का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस प्रकार के प्रदेशों में सतह तो बिल्कुल सूखी पड़ी रहती है परन्तु नीचे से पानी के गड़गड़ाने की भीषण आवाज आती है। ऊपर के छेदों से झाँक कर देखने पर मालूम पड़ता है कि मीलों नीचे कोई बड़ी

नदी बह रही है। कभी-कभी कन्दराओं की छत टूट जाने पर भूगर्भवर्ती जलप्रवाह धरातल पर दिखलाई पड़ने लगता है।

भूगर्भवर्ती जलप्रवाह तीन प्रकार का काम करता है–(१) घुलाना, (२) निक्षेप और (३) पाषाणीकरण। इसके अलावा यह मूल्यवान खनिजों को घुला-घुला कर चट्टानों के भीतर इकट्ठा करता रहता है। बहुत से खनिज झरनों के साथ धरातल पर आ जाते हैं और दवाव तथा गर्मी के कम हो जाने पर वहीं जमा हो जाते हैं। इसी प्रकार एक खनिज के स्थान पर दूसरे खनिज का निक्षेप हो जाता है। चूने के स्थान पर सिलिका या लोहा सल्फाइड का निक्षेप बन जाता है। इसे पाषाणीकरण कहते हैं और यह क्रिया हड्डियों या घोंघों में हो जाता है।

Undulating Slope (**ऊँचा-नीचा ढाल**) साधारणतया ढाल पहाड़ी के सिरे पर तो उन्नतोदर और धरातल की तरफ नतोदर होता है परन्तु कहीं-कहीं ढाल इतना व्यवस्थित नहीं होता। जब ढाल कहीं उन्नतोदर और कहीं नतोदर होता है तो उसे ऊँचा-नीचा ढाल कहते हैं। मानचित्र पर ऊँचे-नीचे ढाल को दिखलाने के लिए समउच्चभूमिदर्शक रेखायें इस प्रकार खींची जाती हैं कि उनके बीच का अन्तर कहीं कम और कहीं ज्यादा होता है।

Uniform Slope (**नियमित ढाल**) जब किसी पर्वत प्रदेश का ढाल न तो क्रमशः ही होता है और तीव्र भी नहीं; न तो उन्नतोदर होता है और न नतोदर तो इस प्रकार के एक सा ढाल को नियमित ढाल कहते हैं। इसको मानचित्र पर जिन समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं द्वारा दिखलाया जाता है उनके बीच का अन्तर बराबर एक-सा रहता है।

Unlined Well (**कच्चा कुआँ**) जिस कुएं को खोद कर वैसा ही छोड़ दिया जाता है और उसकी दीवालें पक्की नहीं की जातीं उसे कच्चा कुआँ कहते हैं। कच्चा कुआँ लागत में सस्ता होता है परन्तु अक्सर इसका पानी मिट्टी के कट कर गिरने या दीवालों में नोना लग जाने से खराब गंदला हो जाता है। प्रायः कम गहरे कुओं को ही कच्चा रक्खा जाता है। अधिकतर कच्चे कुएं साल के शुष्क व गर्म महीनों में सूखे पड़े रहते हैं।

Unmetalled Road (**कच्ची सड़क**) जो सड़क केवल मिट्टी, गारे व कंकड़ की बनी होती है और जिस पर न तो पत्थर बिछाये गये होते हैं और न ही कोलतार या कंक्रीट, उसे कच्ची सड़क कहते हैं। भारतवर्ष के गाँवों की अधिकतर सड़कें कच्ची ही हैं। इन कच्ची सड़कों पर वरसात के मौसम में दलदल हो जाता है और बैलगाड़ियों के पहियों के दबाव से गड्ढे बन जाते हैं। इन गड्ढों में पानी भर जाता है और पैदल चलने वालों या पशुओं को बड़ी कठिनाई होती है। इन पर भारी गाड़ियाँ व मोटर लारियाँ नहीं चल सकतीं। यद्यपि ये कच्ची सड़कें कम लागत पर बन जाती हैं परन्तु इनका प्रयोग अधिक दिन तक करते रहने से ये बिल्कुल बरबाद हो जाती हैं। इनके द्वारा शीघ्र गमनागमन भी नहीं हो सकता।

मोटर यातायात के इस युग में इन सड़कों का कुछ भी महत्व नहीं है और ये प्रायः पिछड़े हुये देशों में ही अब पायी जाती हैं। अन्य सभी देशों में कच्ची सड़कों को अब पक्का किया जा रहा है।

Upland (**उच्चभूमि**) घाटियों और मैदानों की अपेक्षा उच्च तल पर स्थित भूमि को उच्च भूमि कहते हैं। इसके अन्तर्गत आकार व रूप के अनुसार पर्वत, पठार, पहाड़ी व टीले आदि सम्मिलित हैं। किसी उच्च भूमि की विशेषता उसकी ऊँचाई, बनावट व ढाल पर निर्भर रहती है।

उच्चभूमि प्रदेश को निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है—(१) पर्वत, (२)

पठार, (३) पहाड़ी और (४) टीले। (देखिये Mountain, Plateau Mound or Monadnock)

Upper Valley Plain (ऊपरी घाटी मैदान) नदी का वह भाग जो स्थल खंड के पहाड़ी भाग में उद्गम स्थान के समीप स्थित होता है उसे नदी की घाटी कहते हैं। इस प्रदेश में भूमि ऊबड़-खाबड़ तथा ढाल ऊँचा-नीचा होता है। नदी की चाल इसी कारण बहुत तेज रहती है और इस के द्वारा काटे हुए अनेक शिलाखंड इसमें बहते रहते हैं। जब यह नदी पर्वत प्रदेश को छोड़कर मैदान में प्रवेश करती है तो पर्वत के आधार पर इन शिलाखंडों के निक्षेप से मैदान बन जाता है। इसे ऊपरी घाटी मैदान कहते हैं। (देखिये River Fan, Piedmont, Alluvial Plain)

U. Shaped Valley (U आकार की घाटी) हिमनदी द्वारा आवरण क्षय से बनी हुई घाटी को U आकार की घाटी कहते हैं। इस प्रकार की घाटी का तल सपाट तथा पार्श्व तीव्र व समानान्तर होते हैं। इनके दो तरफ की दीवाल का ढाल उन्नतोदर होता है।

वास्तव में नदियों की तरह हिमनदी में घाटी बनाने की शक्ति नहीं होती परन्तु जब कभी वे नदी द्वारा निर्मित घाटी में से होकर बहती हैं तो वे पुरानी घाटी को काट कर तथा घिसकर उसका रूप बदल देती हैं। हिमनदी अपने कठोर व स्थूलरूप के कारण सँकरी नदी घाटी को चौड़ा कर देती है और उसके टेढ़े-मेढ़े रूप को खुरच-खुरच कर सीधा व सपाट कर देती है। साधारणतया हिम नदियों द्वारा घिसाव की तीव्रता तल की अपेक्षा किनारों पर अधिक होती है। इसलिए धीरे-धीरे V आकार की नदी घाटी घिस-घिसाकर U के आकार जैसा रूप धारण कर लेती है।

बहुधा इन U आकार घाटियों के दोनों ओर लटकटी हुई घाटियाँ बनी रहती हैं और सम्पूर्ण घाटी क्षेत्र एक उगालदान य पीकदान सा लगने लगता है। कभी-कभी इन U आकार घाटियों के दोनों पार्श्व पर चटटानों की सीढ़ी सी बन जाती है या कभी-कभी कोई बहुत बड़ा शिलाखंड जरा-सी जगह में संतुलित स्थित हो जाता है।

ये U आकार घाटियाँ उन प्रदेशों में विशेष रूप से पाई जाती हैं जहाँ हिम नदियाँ नदी घाटियों में से होकर बह चुकी होती हैं।

Utilisation of Land (भूमि का उपभोग) किसी प्रदेश में जनसंख्या प्रति मनुष्य पीछे उपलब्ध भूमि के क्षेत्रफल में जो कुछ आर्थिक अथवा उपयोगी प्रयत्न किये जाते हैं इसे भूमि का उपभोग कहते हैं। कहीं पर भूमि का उपभोग बड़ी लापरवाही से किया जाता है क्योंकि थोड़ी जनसंख्या के लिए काफी भूमि पड़ी रहती है। और कहीं जनसंख्या का घनत्व अधिक होने से भूमि पर इतना दबाव रहता है कि उसका उपभोग सयत्न करना पड़ता है। अधिक पूँजी और उससे भी अधिक परिश्रम द्वारा भूमि से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने की कोशिश की जाती है।

इसके अलावा निम्न और उच्च भूमि प्रदेश के उपभोग में भी अन्तर रहता है। निम्न भूमि का मुख्य उपभोग खेती के द्वारा होता है परन्तु फिर भी कुछ भूमि खाली पड़ी रहती हैं क्योंकि खेती के अयोग्य होती है। भूमि का कुछ अंश बन्जर पड़ा रहता है और कुछ अंश पर वन खड़े होते हैं। खेती के लिए अनुपयुक्त भूमि को उपयोगी बनाकर खेती का विस्तार करते हैं। वनों की सुरक्षा करके उनसे लकड़ी व अन्य गौण वस्तुयें प्राप्त करते हैं। उच्च भूमि प्रदेश का उपभोग उद्यानकृषि, पशुचारण तथा खनिज सम्पत्ति के द्वारा किया जाता है।

वास्तव में किसी प्रदेश विशेष में भूमि का उपभोग किस प्रकार का होगा यह कुछ परि-

स्थितियों पर निर्भर रहता है। भूमि के उपभोग पर असर डालने वाली दशायें तीन प्रकार की होती हैं—(१) भौगोलिक, (२) आर्थिक और (३) सांस्कृतिक। भौगोलिक दशाओं के अन्तर्गत वर्षा, तापक्रम, मिट्टी और भूरचना शामिल है जिनका पौधों के जीवन व बाढ़ पर असर पड़ता है। आर्थिक दशाओं के अन्तर्गत यातायात, जनसंख्या का घनत्व और बाजार सम्मिलित हैं। सांस्कृतिक दशाओं का सम्बन्ध किसी स्थान पर कृषि व उद्योगधंधों का विकास, स्थानीय मत व विचारधाराओं, खेतिहर भूमि के विभाजन की प्रणाली और सरकारी नीति से होता है। इन सब दशाओं के सामूहिक प्रभाव पर ही भूमि का उपभोग निर्भर रहता है।

Uvala (यूवाला) कार्स्ट प्रदेश में सोखनेवाले गर्त (Sink Hole) से बड़े गड्ढे को यूवाला कहते हैं। बहुधा कई सोखनेवाले गर्तों की ऊपरी छत व दीवार टूटने पर वे मिलकर एक यूवाला बनाते हैं। इनका व्यास करीब-करीब एक किलोमीटर तक होता है। परन्तु फिर भी यह पोल्जे (Polje) से छोटा होता है।

Vadose Water (वडोस जल) पृथ्वी के धरातल और पृथ्वी के नीचे की जलरेखा के बीच के प्रदेश में स्थित जलराशि को वडोस जल कहते हैं।

Vale (घट) सामान्यत: चौड़ी व समतल घाटी को घट कहते हैं।

Valley (घाटी) पृथ्वी की सतह पर लम्बी व सँकरी तराई को घाटी कहते हैं। इसका ढाल नीचे की ओर बड़ा ही नियमित होता है। इसके बीच से होकर नदी या जलधारा बहती है। वास्तव में नाले का बहता हुआ जल अपने नीचे की चट्टानों को गहरा काटता जाता है और इस तलैटी से ही घाटी बनने का काम शुरू हो जाता है। कालान्तर में नदी द्वारा आवरणक्षय तथा मौसमी क्षति से इसकी तलैटी व किनारे के कटने और घिसने के कारण घाटी गहरी और चौड़ी होती जाती है।

शुष्क प्रदेशों को छोड़ कर अन्य सभी प्रदेशों में नदी की घाटी और नदी का जलप्रवाह उद्गम स्थान से लेकर मुहाने तक फैली रहती है। घाटी का प्रारम्भ तो उद्गम स्थान पर होता है और यह वहाँ समाप्त होती है जहाँ नदी किसी महासागर या झील में जा गिरती है।

जब घाटी नवीन अवस्था में रहती है तो यह सँकरी होती है और इसके किनारे बड़े तीव्र ढालवाले होते हैं। नवीन अवस्था की गहरी घाटियों में जलप्रपातों का बाहुल्य होता है। यदि भूमि ऊँची है तो उसका ढाल बड़ा तीव्र होता है परन्तु यदि उद्गम स्थान समुद्र से बहुत दूर हुआ तो घाटी गहरी हो जाती है। इस अवस्था में इसका आकार V की तरह होता है और इसकी सहायक नदियाँ छोटी होती हैं। मध्य अवस्था में घाटी चौड़ी हो जाती है। इसके किनारे का ढाल क्रमशः धीमा है और इसकी सहायक नदियाँ लम्बी होती हैं। जीर्णावस्था की घाटी बहुत अधिक चौड़ी तथा समतल मैदान जैसी हो जाती है। इसका बाढ़ का मैदान बड़ा चौड़ा होता है और नदी के आधारतल पर पहुँच जाने के कारण घाटी का ढाल बहुत कम हो जाता है। इस हालत में नदी घाटी और आवरण क्षय के मैदान में कोई अन्तर नहीं रहता।

घाटियाँ दो प्रकार की होती हैं—(१) नदियों द्वारा बनाई हुई घाटियाँ V आकार की होती है। (२) हिमनदी द्वारा बनाई हुई घाटी V आकार की होती है। इसके अलावा घाटियाँ दरार के बीच की भूमि धँस जाने से भी बन जाती हैं। कुछ घाटियाँ लटकती हुई होती हैं और कुछ शुष्क पड़ी रहती हैं। इसके अलावा कुछ घाटियों की दिशा समानान्तर होती है और कुछ आड़ी तिरछी। (देखिये Rift Valley Dry Valley, Hanging Valley, Longitudinal Valley)

नदी की घाटी को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) ऊपरी घाटी जो स्थलखंड के पहाड़ी भाग में स्थित होती है, (२) मध्यघाटी में नदी का जमाव कार्य शुरू हो जाता है और विस्तृत बाढ़ का मैदान बन जाता है और (३) निम्नघाटी में नदी की चाल धीमी पड़ जाती है और निक्षेप बढ़ जाता है।

Valley Glacier (घाटी हिमनदी) पर्वत प्रदेश की घाटियों में प्रवाहित होनेवाली हिमनदी को घाटी हिमनदी कहते हैं। इसे आल्पाइन हिम नदी भी कहते हैं। इसको तुषार या हिम निम्नलिखित तरीकों से प्राप्त होता है—(१) तुषारपात से, (२) और घाटी के ढाल पर हिमशैल के फिसलने से (३) हवा द्वारा उड़ाकर लाये हुये हिम से।

जब ये घाटी हिमनदी पर्वत प्रदेश के आधार पर पहुँचते हैं या किसी चौड़ी घाटी में प्रवेश करते हैं तो इनका हिम एक पंख या बल्ब के रूप में फैल जाता है।

घाटी हिमनदी की स्थिति के अनुसार कई प्रकार के हो जाते हैं—(१) उच्श्रृंग हिमनदी (Cliff or Cornice Glacier), (२) प्रपाती हिमनदी (Cascade Glacier), (३) पुनर्युक्त हिमनदी (Reconstructed Glacier), (४) गर्त हिमनदी (Bough Glacier), (५) चट्टान हिमनदी (Rock Glacier) और (६) ज्वारीय हिमनदी (Tidal Glacier)

Valley Line (घाटी रेखा) (देखिये Base Level Thalweg)

Valley Train (घाटी निक्षेप) जब कोई हिमनदी पिघलने लगती है तो उसके नीचे से जलधारा उत्पन्न हो जाती है और इसके साथ शिलाखंडों की विस्तृत राशि भी बहती या लुढ़कती चली आती है। इस प्रकार के शिलाखंडों के निक्षेप को घाटी निक्षेप कहते हैं। इसका निर्माण उसी प्रकार होता है जैसे कि हिम जलनिर्मित मैदान (Outwash Plain) का। परन्तु यह घाटी निक्षेप बहुत विस्तृत नहीं होता और घाटी की दीवारों तक सीमित रहता है।

Valley Wind (घाटी पवन) अक्सर शान्त मौसम व आकाश के स्वच्छ होने पर दिन के समय घाटी से ऊपर की ओर पवन चलने लगती है। इस स्थानीय पवन को घाटीपवन कहते हैं। दिन के समय पर्वतीय ढालों की अपेक्षा घाटी तल अधिक ठंडा रहता है क्योंकि पर्वतीय ढालों पर संवाहन धारायें लम्बरूप उठती रहती हैं। इन संवाहन धाराओं के ठंडे होने पर तीसरे पहर वर्षा हो जाती है जिससे कि वायु का तापक्रम एक पर्त के बाद दूसरे पर्त में ठंडा होता जाता है। अपेक्षाकृत पर्वतीय ढाल गर्म बने रहते हैं। इसलिए घाटी में उच्चभार और पर्वतीय ढालों पर निम्नभार हो जाता है जिससे घाटी की ओर से हवा पर्वतीय ढालों पर चढ़ने लगती है। ऐसा तो गर्मी के मौसम में होता है परन्तु जाड़े में तो दशायें बिल्कुल विपरीत हो जाती हैं।

इस प्रकार घाटी पवन दो कारणों से चलने लगती है—(१) धुँआरें की-सी दशा में जब घाटी की हवा गर्म व हल्की होकर ऊपर की ओर ढाल पर चलने लगती है, (२) वायुभार ढाल के कारण—जब घाटी में उच्चभार और ढालों पर अपेक्षाकृत निम्नभार रहता है। इसी आधार पर घाटी पवन को दो प्रकार का कहा जा सकता है—(१) जब कोई पर्वत अकेला किसी सामान्य बराबर से तपने वाले मैदान के बीच में स्थित होता है तो मैदान व पर्वतीय ढालों की हवा गर्म होकर फैलती है तथा ऊपर की ओर चलने लगती है। वायुभार ढाल कम होने की वजह से इस पवन की गति बड़ी मन्द होती है। (२) जब किसी पर्वत प्रदेश का ढाल इस प्रकार होता है कि उसके द्वारा विभिन्न तल पर स्थित चौड़े पठार आपस में संबन्धित होते

हैं तो दिन में वायुभार सतहें बढ़ती जाती हैं और जैसे-जैसे पर्वत के ढाल के करीब आते-जाते हैं, वैसे-वैसे फैलाव की मात्रा कम होती जाती है। इस प्रकार एक निश्चित वायु भार ढाल स्थापित हो जाता है और इसका जोर पर्वत के ढाल की तरफ अधिक रहता है। फलतः तेज गति वाले घाटी पवन का प्रादुर्भाव हो जाता है और जैसे-जैसे यह पवन पर्वत के शिखर के समीप पहुँचता जाता है इसकी प्रचण्डता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। (देखिये Arabatic Wind)

Vapour (जलवाष्प) गर्मी के कारण जल भाप रूप में परिवर्त्तित हो जाता है जिसे जलवाष्प या भाप कहते हैं। यद्यपि वायुमण्डल में भाप या जलवाष्प का अंश बहुत कम होता है परन्तु इसका विशेष महत्व है। वायुमण्डल में इसका अंश ४ या ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होता परन्तु इससे वायुमण्डल का तापक्रम प्रभावित होता है और संसार के प्राणीवर्ग का जीवन और वर्षा इसी पर निर्भर रहती है। वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प का आधा भाग भूमि से ६००० फीट तक की ऊँचाई के भीतर ही पाया जाता है। जलवाष्प के प्रधान स्रोत महासागर, वनस्पति प्रदेश तथा नदियाँ व झीलें हैं। हरे पेड़-पौधों का रस सूख कर वायुमण्डल में मिलता रहता है।

जलवाष्प भारी होती है और इसमें गुप्त ताप निहित रहता है। भाप के ठंडी होकर जल में परिणत होने पर यह गुप्त ताप निकल जाता है और फलस्वरूप वायु गरम हो जाती है। दूसरे शब्दों में हम यूँ कह सकते हैं कि जब तक कि हवा गरम रहती है उससे जलवाष्प बनी रहती है परन्तु हवा के ठंडे होते ही भाप जल का रूप धारण कर लेती है और भाप के जल रूप परिणित होने पर हवा फिर से गरम हो उठती है।

Vapour Capacity (भाप धारण करनेवाली शक्ति) किसी प्रदेश की वायु में कितनी भाप सम्मिलित हो सकती है इसे भाप धारण करने की शक्ति कहते हैं। वायु की भाप को धारण करने की शक्ति उसके तापक्रम पर निर्भर रहता है। वायु जितनी ही अधिक गर्म होगी उसमें उतनी ही अधिक भाप समा सकती है। तापक्रम की वृद्धि के साथ-साथ भाप धारण करने की शक्ति बढ़ जाती है।

एक घनफुट वायु में तापक्रम के अनुसार अधिक से अधिक भाप निम्नमात्रा में रह सकती है—जब हवा का तापक्रम ३०° फार्नहीट होगा तो उसमें १.९ ग्रेन भाप रह सकती है; ६०° तापक्रम पर ५.७ ग्रेन और ९०° तापक्रम पर १४.७ ग्रेन भाप रह सकती है। यदि ९०° फार्नहीट तापक्रम वाली वायु के तापक्रम को १०° अधिक कर दिया जाय तो उसकी भाप धारण करने की शक्ति प्रतिघनफुट में ५ ग्रेन बढ़ जायेगी।

Variable Winds (परिवर्त्तनशील हवायें) पृथ्वी की विचित्र परिस्थितियों के कारण वायुमण्डल के सामान्य प्रवाह में विशेष परिवर्तन हो जाते हैं और उनसे उत्पन्न अनियमित भंवर चक्रों को परिवर्तनशील हवायें कहते हैं। बहते हुए जल में अक्सर भवँर उत्पन्न हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार वायु प्रवाह में भी भवँर या चक्कर उत्पन्न हो जाते हैं जो बढ़ते-बढ़ते भयंकर तूफान का रूप धारण कर लेते हैं। इन तूफानों के आने की कोई दिशा नहीं होती है और इनके अन्दर वायु विभिन्न दिशाओं से चलती हुई प्रतीत होती है। इन्हें चक्रवात व विपरीत चक्रवात भी कहते हैं। (देखिये Cyclones, Anticyclone)

Varve (वार्व) समुद्र या झील में उस निक्षेप को जिसमें मोटी बजरी की परत नीचे पाई जाती है और उस के ऊपर महीन चिकनी मिट्टी की परत हो उसे वार्व कहते हैं। वास्तव में जल शिलाखण्डों के चूरचार को बहाकर समुद्र या झील में जमा करता रहता है।

जब नदी या हिम नदी समुद्र या झील से जाकर मिलती है तो उसकी प्रवाह शक्ति कमजोर पड़ जाती है और बड़े-बड़े आकार के शिलाचूर्ण पहले जमा हो जाते हैं। इनके ऊपर या इनसे कुछ आगे हलके व छोटे कण जमा हो जाते हैं। इस प्रकार चट्टानों का चूरा समुद्र की तली में प्राय: दो परतों के जोड़े में पाया जाता है—नीचे की परत मोटी बजरी की होती है और ऊपर की परत चिकनी मिटटी की। इन दोनों परतों के संयुक्त रूप को वार्व कहते हैं और प्रत्येक वर्ष नदी द्वारा निक्षेप से एक नये वार्व की रचना हो जाती ह।

इन वार्व को गिनकर पिछले हिमयुग से अब तक के समय का अन्दाज लगाया जा सकता है। जितने वार्व होंगे उतने वर्ष तब से अब तक बीते होंगे। बसन्त और गरमी की ऋतु में जब किनारे की झीलों की बर्फ पिघली तो मोटी बजरी तथा बड़े-बड़े शिलाखंडचूर्ण जमा हो गये। पतझड़ और जाड़े में झीलों की सतह जमी हुई रहती थी और नीचे से निकलने वाली जल धाराओं में बहती हुई महीन मिट्टी बाढ़ से उसके ऊपर जमा हो गई। इस प्रकार प्रत्येक वार्व एक वर्ष का निक्षेप है।

इस निक्षेप को वार्वदार चिकनी मिट्टी या वार्वदार बजरी कहते हैं।

Veering (वीरइंग) जब वायु की दिशा में घड़ी की सुइयों की तरह परिवर्तन होता है तो उसे वीरइंग कहते हैं। ऐसी दशा में वायु की दिशा पूर्व से दक्षिण-पूर्व को होती हुई दक्षिण की ओर हो जाती है। इसमें वायु की दिशा परिवर्तन Backing के बिल्कुल विपरीत होता है।

Vega (वेगा) स्पेन में उस सिंचित भूमि प्रदेश को जिस में वर्ष में एक फसल उगाई जाती है, वेगा कहते हैं। यह ह्वेरटा से बिल्कुल भिन्न है। (देखिये Huerta)

Vegetation (वनस्पति) किसी स्थान पर पाये जाने वाले पेड़-पौधे आदि को वहाँ की वनस्पति कहते हैं। वनस्पति प्राय: दो प्रकार की होती है—(१) प्राकृतिक वनस्पति और (२) कृत्रिम वनस्पति। भूतल पर प्राय: सभी जगह किसी न किसी प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति का आवरण मिलता है। इसकी सघनता और प्रकार विभिन्न भागों की प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर होता है। किसी स्थान की प्राकृतिक वनस्पति निम्न-लिखित बातों पर निर्भर होती है—(१) वर्षा की मात्रा, (२) तापांश, (३) प्रकाश की प्राप्ति, (४) वायु की दशा व दिशा और (५) मिट्टी का स्वभाव। वर्षा जहाँ अधिक होती है वहाँ वन पाये जाते हैं। जहाँ साधारण वर्षा होती है वहाँ घास के मैदान तथा जहाँ वर्षा बहुत ही कम होती है वहाँ कँटीली झाड़ियाँ उगती हुई पाई जाती हैं। हर प्रकार की वनस्पति के लिए निश्चित व पर्याप्त तापक्रम की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि अत्यन्त शीत प्रदेशों में केवल लिचन और मास उगते हैं जबकि अत्यन्त उष्ण व तर प्रदेशों में इतनी घनी वनस्पति उगती है कि चलना-फिरना मुश्किल हो जाता है। परन्तु उष्ण व शुष्क प्रदेशों में कुछ भी नहीं उगता। कहीं-कहीं झाड़ियाँ या घास के गुच्छे पाये जाते हैं।

प्रकाश की मात्रा और वायु की तीव्रता व दिशा का पेड़-पौधों की उठान व आकार पर असर पड़ता है। मिट्टी का वनस्पति के लिए जो महत्व है उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। मिट्टी का उपजाऊ होना हर प्रकार की वनस्पति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मिट्टी से पौधों को खनिज तत्व मिलते हैं और उन्हें भोजन व जल प्राप्त होता है।

जहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है वहाँ प्राकृतिक वनस्पति को साफ करके उपयोगी पौधों की खेती की जाती है। इसे हम कृत्रिम वनस्पति कह सकते हैं और इसके अन्तर्गत वे सभी फसलें आती हैं जिन का हम खाने-पीने या कच्चे माल की तौर पर प्रयोग करते हैं। कभी-कभी

इसे व्यावसायिक वनस्पति भी कहते हैं। इसको हम तीन प्रकार का कह सकते हैं—(१) खाद्यान्न जैसे गेहूँ, चावल, जौ, मक्का आदि, (२) पेय फसलें जैसे चाय, कहवा, तम्बाकू आदि और (३) व्यावसायिक फसलें जैसे कपास, सन, पटसन, गन्ना, रबड़ इत्यादि।

Vein (खनिजस्तर) चट्टानों के जिन दरार व संधों में घुला हुआ खनिज तत्व जमा हो जाता है उसे खनिज स्तर कहते हैं। सामान्यतः धातुजनक पत्थर इन खनिज स्तरों में पाये जाते हैं। इसीलिये धातुओं की खानें इसी प्रकार खनिज स्तरों के समीप पाई जाती हैं। संसार का अधिकतर सोना, चाँदी और सीसा आदि ऐसी ही दशाओं में पाया जाता है।

ये धातुजनक पत्थर इन संधों व दरारों में भरे हुये कदापि नहीं मिलते। उनके साथ-साथ अन्य बहुत से निरर्थक खनिज तत्व मिले हुए पाये जाते हैं। इन निरर्थक खनिजतत्वों की महान राशि को हटाकर के ही धातुओं को प्राप्त किया जा सकता है।

खनिज स्तर पारिभाषिक शब्द उन चट्टानों की परतों के लिए भी प्रयोग किया जाता है जिनका विशेष आर्थिक महत्व है। लोहे का पत्थर इसी प्रकार की चट्टान परतों में पाया जाता है परन्तु उसे खनिज स्तर ही कहते हैं।

Veld (वेल्ड) यह डच भाषा का पारिभाषिक शब्द है। दक्षिणी अफ्रीका के पठार का जो भाग ट्रान्सवाल व आरेंज फ्री स्टेट में सम्मिलित है उसे वेल्ड कहते हैं। वेल्ड प्रदेश विस्तृत व खुली हुई उच्च भूमि है।

ऊँचाई के आधार पर इसको प्रायः तीन भागों में बाँट सकते हैं—(१) ऊपरी वेल्ड, (२) मध्यवर्ती वेल्ड और (३) निम्न वेल्ड। ऊपरी वेल्ड प्रदेश ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट के दक्षिण-पूर्व में स्थित है और इसकी ऊँचाई ३००० फीट से अधिक है। औसतन यह प्रदेश समुद्रतल से ५०००, ६००० फीट ऊँचा है। इस प्रदेश में ऊँचे-नीचे परन्तु विस्तृत मैदान पाये जाते हैं जिनके बीच-बीच में कोपजे (Kopje) भी मिलते हैं। इन घास के मैदानों की विशेषतायें शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान—स्टेपी, प्रेरी तथा पैम्पाज—जैसे ही हैं। इनमें पेड़ बिल्कुल ही नहीं उगते हैं और इन वृक्षरहित विस्तीर्ण घास के मैदानों में गाय-बैल तथा भेड़-बकरियाँ चराई जाती हैं। इनसे ऊन व खाल प्राप्त करके बाहर निर्यात कर दिया जाता है। अनुकूल जलवायु के कारण इस प्रदेश में यूरोपियन लोग जाकर बस गये हैं।

(२) **मध्यवर्ती वेल्ड प्रदेश** में रैन्ड (Rand) व कोपजे (Kopje) पाये जाते हैं। इनकी औसत ऊँचाई १००० से ३००० फीट तक है। इन छोटी-छोटी पहाड़ियों व टीलों पर झाड़ियाँ मिलती हैं।

(३) **निम्न वेल्ड प्रदेश** में भी रैन्ड और कोपजे पाये जाते हैं परन्तु इस प्रदेश का ढाल बहुत ऊँचा-नीचा नहीं है। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति भी झाड़ी वन है।

मध्य व निम्न वेल्ड प्रदेश में मौसम शुष्क रहता है और यहाँ के आदि निवासी अपने पशु, भेड़ बकरियों के साथ चरागाह व भोजन की तलाश में घूमा करते हैं। ऊपरी वेल्ड प्रदेश के अतिरिक्त इसके अन्य सभी भाग अविकसित व पिछड़े हुये हैं।

Vendavales (**वेन्डावेल्स**) जिब्राल्टर जलसंयोजक और स्पेन के पूर्वी तट पर चलने वाली स्थानीय वायु को वेन्डावेल्स कहते हैं। यह हवायें बड़ी ही भीषण होती हैं और दक्षिण-पश्चिम से चलती हैं। इनके चलने पर तूफानी आँधी जैसी दशायें उत्पन्न हो जाती हैं। बादल गरजते हैं, बिजली कड़कती है और घनघोर वर्षा होती है। इनका सम्बन्ध

चक्रवातों से होता है, इसलिए ये हवायें जाड़े की ऋतु में विशेष नियमित रूप से चलती हैं।

Veranillo (वेरानिलो) अमरीका के उष्णकटिबंधीय भाग में और विशेष-कर कोलम्बिया में वर्षा के मौसम में लगातार वर्षा नहीं होती। बीच में कुछ दिनों के लिए मौसम शुष्क हो जाता है। वर्षा के बीच इस छोटे शुष्क मौसम को वेरानिलो कहते हैं।

Verano (वेरानो) अमरीका के उष्ण कटिबंधीय भाग में और विशेषकर कोलम्बिया राज्य में वर्षा के बीतने पर लम्बा खुश्क मौसम वेरानो कहलाता है। यह वेरानिलो से भिन्न होता है। (देखिये Veranillo)

Vernal Equinox (बसन्त समरात्रि) (देखिये Equinox)

Vernier Scale (वरनियर मानदण्ड) वरनियर एक ऐसी युक्ति है जिसके द्वारा एक अंश की न्यूनतम भिन्न को भी नापा जा सकता है। वरनियर मानदण्ड में एक मुख्य मानदण्ड तो बड़ी होती है और उसके किनारों पर अंश अंकित रहते हैं। इस मुख्य व बड़े मानदण्ड के अंकित सिरे पर से सरकता हुआ एक छोटा मानदण्ड होता ह जिसे मन माफिक इधर-उधर किया जा सकता है। इस खिसकनेवाले मान दण्ड पर भी अंश अंकित रहते हैं और इसका अंश अंकित किनारा बड़े मानदण्ड के अंश अंकित किनारे से सटा रहता है।

मुख्य मानदण्ड पर इस छोटे मानदंड को खसका कर अंश की भिन्न तक नाप ली जा सकती ह।

Vertical Illumination (लम्बवत् प्रकाश) मानचित्र पर रंगीन तहों द्वारा भूमि की उच्चता दिखलाने के वास्ते प्रदेश पर दूर से प्रकाश गिरता हुआ मान लिया जाता है। जब इस काल्पनिक प्रकाश को ऊपर से गिरता हुआ मानते हैं तो इसे लम्बवत् प्रकाश कहते हैं। इस लम्बवत् प्रकाश के ऊपर से डाले जाने पर जो चमक आती है वह ढाल की तीव्रता के अनुसार भिन्न होती जाती है। जितना ही तीव्र ढाल होगा उतनी ही अन्धेरी छाया भी पड़ेगी। अपेक्षाकृत सपाट व चौरस प्रदेशों जैसे पर्वत शिखर, पठार, श्रेणियों की चोटियाँ, घाटियों की तली आदि में छाया या रंगीन तहें हल्की होती हैं।

रंगीन तहों द्वारा मान पर ऊँचाई दिखाने के वास्ते लम्बवत् प्रकाश ही सबसे उपयुक्त रहता है। इस विधि के पता लगने मे पहिले प्रकाश को आड़ा तिरछा मानते थे। कल्पना करते थे कि प्रकाश मानचित्र के उत्तरी-पश्चिमी किनारे से आ रहा है। इस प्रकार उत्तर-पश्चिम की दिशा वाले ढाल तो प्रकाश में आ जावेंगे और दक्षिण-पूर्व की अ र अभिमुख ढाल अन्धेरे में पड़ जायेंगे। इससे बड़ा धोखा होता था। इसीलिए अब रंगीन तहों के प्रयोग में लम्बवत् प्रकाश का ही सहारा लिया जाता है।

Vertical Interval (लम्बान्तर) विभिन्न ऊँचाई पर स्थित विन्दुओं के बीच के अन्तर को लम्बान्तर कहते हैं। किसी प्रदेश का लम्बान्तर उसकी समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं से जाना जा सकता है। समोच्च भूमिदर्शक रेखाओं के बीच में जो अन्तर पाया जाता है वही लम्बान्तर होता है। इसके द्वारा भूमि के ढाल की सामान्य दशा का पता लग जात है।

यदि विभिन्न समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं के बीच का अन्तर शुरू से अन्त तक एक सा है तो स्पष्ट है कि ढाल नियमित है या एक सा है। जब पहाड़ी के शिखर के समीप की समोच्च भूमि दर्शक रेखाओं का लम्बान्तर कम हो और बाहर या नीचे की तरफ आने पर यह अन्तर बढ़ता जाये तो ढाल नतोदर होगा। उन्नतोदर ढाल में लम्बान्तर की व्यवस्था ठीक इसके विपरीत होती है। यदि लम्बान्तर कहीं अधिक और कहीं न्यून हो तो उस प्रदेश का ढाल

ऊँचा-नीचा होता है। इसी प्रकार कम लम्बान्तर वाले समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं से तीव्र ढाल का और अधिक लम्बान्तर से क्रमशः ढाल का भास होता है।

Vertical Scale (**उच्चता मापक मानदण्ड**) किसी प्रदेश के ढाल के बारे में सामान्य ज्ञान तो लम्बान्तर के द्वारा ही हो जाता है परन्तु अक्सर ढाल की निश्चित मात्रा को जानना जरूरी होता है। ढाल को नाप कर व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त विधियों को उच्च ामापक मानदण्ड कहते हैं।

उच्चता मापक मानद ड कई प्रकार का होता है—(१) **प्रतिशत द्वारा**—इसमें ढाल का पता लगाकर १०० से गुणा कर देते हैं और इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है वही प्रदेश विशेष का प्रतिशत ढाल होता है।

(२) **मिल द्वारा** इस में ढाल का पता लगाकर १००० से गुणा कर देते हैं। वास्तव में प्रतिशत ढाल का १० गुना करने पर मिल द्वारा ढाल प्राप्त होता है। इसीलिए केवल २०° तक के ढाल को मीलों में व्यक्त करते हैं।

(३) **भिन्न द्वारा**—दो विन्दुओं के बीच की धरातल पर की दूरी के अनुपात में भूमि की लम्बवत् उठान क्या है इसे भिन्न द्वारा व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए १।५ के अर्थ होंगे कि ५ फीट की दूरी में भूमि का उतार-चढ़ाव १ फीट है।

(४) **डिग्री या अंश द्वारा**—दो बिन्दुओं के बीच ढाल को व्यक्त करने के लिए बहुधा एक समकोण त्रिभुज की कल्पना करते हैं। इसका आधार तो विन्दुओं के बीच की धरातल वाली दूरी होती है, लम्ब तर लम्बरेखा होती है। इसके शीर्ष को आधार से मिला देने पर जो कोण आधार रेखा के साथ बनता है वही ढाल बतलाता है। इस प्रकार कोण के द्वारा ढाल को अंशों में भी व्यक्त किया जाता है।

Virazon (**विराजन**) पश्चिमी पीरू के उष्णकटिबंधीय प्रदेश में चलकर आनेवाली समुद्री पवन को विराजन कहते हैं। (देखिये Terral, Sea Breeze)

Visibility (**दृश्यता**) वायुमण्डल की पारदर्शिता को दृश्यता कहते हैं। दृश्यता को नापने के लिए यह देखा जाता है कि प्रसिद्ध वस्तुयें कितनी दूर से देखी जा सकती हैं। जब २५ मीटर से अधिक दूरी पर स्थित वस्तुओं को आसानी से नहीं देखा जा सकता तो दृश्यता को शून्यांश पर मानते हैं। इसके विपरीत जब ५० किलोमीटर तक की दूरी पर स्थित वस्तुओं को देख सकें तो दृश्यता ९ अंश पर होती है। इस प्रकार शून्यांश और नवांश के बीच में और भी अंश होते हैं जिन्हें दृश्यता का मानदण्ड कहते हैं।

Viticulture (**अंगूर की खेती करना**) अंगूर एक लता का फल होता है और इससे अनेक प्रकार की वस्तुयें बनाई जाती हैं। इसके रस को निकाल कर शराब बनाई जाती है। इनको सुखा कर मुनक्का और किशमिश बनाई जाती है।

अँगूर का पौधा काफी लम्बी गर्मी के मौसम में पनपता है। इसकी सफल उपज के लिए तापक्रम काफी ऊँचा रहना चाहिये। सितम्बर तक अच्छी-खासी गर्मी वनी रहनी चाहिये। चूँकि इसकी जड़ें काफी लम्बी होती हैं इसलिए यह काफी गहराई तक पहुँच कर जल प्राप्त कर सकती है। इसलिए शुष्क प्रदेशों की मिट्टी में यह खूब पनप सकता है। यही कारण है कि यह भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेशों में खूब उग सकता है। यद्यपि केलीफोर्निया में अँगूर की फसल को सींचा जाता है परन्तु अत्यधिक नमी इसको नुकसान करती है।

अंगूर की खेती के लिये निम्नलिखित दशाओं का होना अत्यावश्यक है—(१) इसकी खेती सयत्न प्रणाली पर की जाती है और इसलिए घनी आबादी होना जरूरी है। किसी भी

उद्यान फसल की तरह इसमें अधिक परिश्रम करना पड़ता है। (२) देश में अंगूर से शराब बनाने या सुखाने का पर्याप्त इन्तजाम होना चाहिये। (३) न तो पाला पड़ना चाहिये और न शुष्क हवाओं का प्रवाह ही होना चाहिये। पाले स तो पौधा मर जाता है और शुष्क हवाओं से इसका रस बिल्कुल सूख जाता है।

फ्रांस, इटली और स्पेन अंगूर उत्पादक प्रमुख देश हैं। इसके अलावा कैलीफोर्निया, ग्रीस, अफगानिस्तान और तुर्की में भी अँगूर की खेती की जाती है।

Volcano (ज्वालामुखी) जब भूगर्भ में घूमता हुआ मैग्मा भूपटल की किसी कमजोर जगह से फूट निकलता है तो इस प्रकार बने दरार को ज्वालामुखी कहते हैं। वास्तव में जब भूमि ठंडी हो रही थी और इसका ऊपरी पटल इतना कठोर नहीं था तो चट्टानों का पिघला हुआ रूप मैग्मा कहीं से भी फटकर बाहर निकल जाता था परन्तु जैसे-जैसे पृथ्वी कठोर पड़ती गई मैग्मा के लिए बाहर रास्ता पाना कठिन होता गया और केवल कमजोर स्थानों से ही रास्ता पाकर धड़ाके के साथ उद्गार होने लगे। जब भीषण धड़ के के साथ विस्फोट होता है तो लावा के साथ-साथ चट्टानों के टुकड़े व गैसें भी निकलती हैं। धीरे-धीरे इस प्रकार निकली हुई सामग्री के इकट्ठा होते रहने से दरार या संध के चारों ओर एक शंक्वाकार पर्वत सा बन जाता है। इस पर्वत के मध्य में प्याले के आकार का खाली स्थान बन जाता है। उसको मुख कहते हैं। इस मुख से हमेशा ज्वाला निकलती रहती है। इसीलिए इन्हें 'जलता हुआ पहाड़' या 'धुँआ देते हुये पहाड़' भी कहते हैं।

ज्वालामुखी बनने तथा विस्फोट होने के कई कारण हैं—(१) वर्षा का जल भूमि में सोख कर नीचे पहुँचता है तो मैग्मा के सम्पर्क में आने से भाप में बदल जाता है। (२) चट्टान की पिघली हुई राशि बाहर आने की कोशिश करती है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि ज्वालामुखी विस्फोट के समय भाप के घने बादल निकल कर छा जाते हैं और दूसरे यह कि अधिकतर ज्वालामुखी समुद्र के समीप पाये जाते हैं। कभी-कभी ज्वालामुखी विस्फोट भौमिक शक्तियों के प्रभाव के फलस्वरूप भी हो जाते हैं।

ज्वालामुखी में जब विस्फोट होते रहते हैं तब उसे चैतन्य ज्वालामुखी कहते हैं। जो ज्वालामुखी अब बिल्कुल कार्य नहीं करते वे मृत ज्वालामुखी कहलाते हैं और जो ज्वालामुखी बहुत समय से शान्त हैं परन्तु फिर भी उनमें किसी भी समय उद्गार हो सकते हैं उसे निद्रित ज्वालामुखी कहते हैं। जब ज्वालामुखी में उद्गार नहीं आते रहते तब उसका मुख ठोस पड़े हुये लावा से बन्द हो जाता है।

कुछ ज्वालामुखी में लावा उबल-उबल कर बहता रहता है और बहकर विस्तृत भूभाग में फैल जाता है। हवाई द्वीप पर मौनालोआ इसका सर्वोच्च उदाहरण है। कुछ ज्वालामुखी में भीषण विस्फोट होते हैं और धुँआ व भाप के बादल छा जाते हैं। साथ-साथ शिलाखंड व जमे हुये लावा के टुकड़े भी बाहर निकलते हैं। मारटिनक द्वीप पर माउन्ट पेली इसी प्रकार का था। सन् १९०२ में इसका जो विस्फोट हुआ उससे सेंट पीयरी नगर और वहाँ के २८००० निवासी हमेशा के लिए लुप्त हो गये। इन दो प्रकार के अलावा कुछ ज्वालामुखी ऐसे होते हैं जिनसे साधारणतया तो शान्तिपूर्वक लावा निकला करता है परन्तु कभी-कभी भीषण विस्फोट हो जाते हैं। इटली का माउन्ट वेसूवियस इसी प्रकार का ज्वालामुखी है।

ज्वालामुखी उद्गार या पर्वत में एक चक्र सा चला करता है जिसमें ५ अवस्थायें कहीं जा सकती हैं—प्रथम अवस्था में तो भूपटल के कमजोर होने के कारण लावा धरातल पर

निकल-निकल कर छा जाता है। दूसरी अवस्था में निश्चित दरारों से लावा निकलता है और उसके चारों ओर शंकु सा बन जाता है। तीसरी अवस्था में लावा का सीधी दरारों में से होकर निकलना बंद हो जाता है और अंदर की गैसें शंकु के इधर-उधर की दीवारों में कमजोर स्थान पाकर फूट निकलती हैं। भीषण धड़ाका होता है और दूर-दूर तक इसके शिलाचूर्ण जा गिरते हैं। चतुर्थ अवस्था में लावा की मात्रा तो कम हो जाती है और जब कभी धड़ाके के साथ उद्गार होता है तो केवल गैसें व धूल ही बाहर निकलती हैं। अन्तिम अवस्था में धड़ाके समाप्त हो जाते है। साथ-साथ ज्वालामुखी शंकु भी बहुत कुछ ध्वंस हो चुका होता है। जगह-जगह छेद बन जाते हैं जिनसे भाप या गन्धकीय गैस या गर्म जल के फौवारे निकला करते हैं।

संसार के ज्वालामुखी पर्वत पृथ्वी के भ्रंश स्तर या कमजोर प्रदेश में पेटी की तरह फैले हुये हैं। संसार के ज्वालामुखी निम्नलिखित चार पेटियों में फैले हुये हैं —(१) प्रशान्त महासागर के किनारों पर, (२) पूर्वी द्वीप समूह में, (३) यूरेशिया में इटली और भूमध्य सागर के द्वीपों में और (४) पश्चिमी द्वीपसमूह।

Volcanic Ash (**ज्वालामुखी राख**) ज्वालामुखी से जब विस्फोट होता है तो लावा व भाप के साथ-साथ लावा के महीन कण या चूर्ण भी निकलते हैं। इसे ज्वालामुखी राख कहते हैं। इसके कण ज्वालामुखी धूल की अपेक्षा मोटे होते हैं। परन्तु अक्सर इन दोनों शब्दों को एक-दूसरे की जगह प्रयोग करते हैं। इसके कण बाजरा या मटर के बराबर होते हैं। कभी-कभी ज्वालामुखी रेत भी कहते हैं।

Volcanic Bomb (**ज्वालामुखी बम**) ज्वालामुखी से उद्गार के समय बहुत से ठोस पदार्थ भी निकलते हैं। अक्सर लावा के बड़े-बड़े ढोके तरल अथवा अर्द्ध द्रव अवस्था में ही बाहर फेंक दिये जाते हैं और भूमि पर गिरने पर वे ठोस पड़ जाते हैं। ये ठोस टुकड़े जब अँगुली के जोड़ से बड़े होते हैं तो इन्हें ज्वालामुखी बम कहते हैं। इन बमों का आकार व विस्तार बड़ा ही विभिन्न होता है। इनका व्यास कुछ इंच से लेकर कई फीट तक होता है। उद्गार से गिरे हुये ये बम कभी-कभी तो बहुत भारी व ठोस होते हैं और कभी कई छेदों वाले बहुत पोले। कभी-कभी अन्दर की गैसों के फैलने से इन बमों में मधुमक्खी के छत्ते समान अनेक छेद बन जाते हैं।

वास्तव में लावा का ढोका अर्द्धद्रव दशा में बाहर निकलते हैं और गैसों के साथ टूटकर वायुमंडल में घूमने के कारण इनके नाना प्रकार के आकार बन जाते हैं। वैसे तो इनका आकार गोल ही रहता है परन्तु कभी-कभी लम्बे, अण्डे की तरह के और मूसल जैसे आकार के बम भी दिखलाई पड़ते हैं। तेजी से घूमने के कारण इन बमों की ऊपरी सतह शीशे की तरह चिकनी व चमकदार हो जाती है।

ये बम तीन प्रकार से बन जाते हैं—(१) कुछ तो अर्द्धद्रव लावा पिण्ड के ठंडे होने पर बनते हैं।(२) कुछ पिछले जमे हुये लावा के खण्ड होते हैं और (३) कुछ ज्वालामुख में जमा लावा राशि तथा ज्वालामुखी की चट्टानों के धड़ाके के समय टूट जाने से बन जाते हैं।

Volcanic Cinders (**ज्वालामुखी कंकड़**) ज्वालामुखी से उद्गार होने पर निकले हुये सुपाडी के बराबर के टुकड़ों को ज्वालामुखी कंकड़ कहते हैं। (देखिये Lapalli)

Volcanic Dust (**ज्वालामुखी धूल**) ज्वालामुखी उद्गार के समय निकले हुये लावा के महीन कणों को ज्वालामुखी धूल कहते हैं। इस धूल के कण बड़े ही सूक्ष्म होते हैं और धड़ाके के साथ निकलने पर यह टूट कर और भी महीन हो जाते हैं। ज्वालामुखी धूल का रंग

मटमैला होता है और यह बहुत हल्की होती है। अ सर विस्फोट के साथ यह धूल वायुमंडल में बहुत ऊँचे तक चली जाती है और फिर हवा द्वारा बहुत दूर-दूर उड़ा ले जाई जाती है।

Volcanic Neck (ज्वालामुखी ग्रीवा) (१) जिस मार्ग से चट्टानों की पिघली हुई राशि लावा बाहर निकलता है उसको ज्वालामुखी की नली कहते हैं। इस नली में लावा उबलता रहता है और जब ज्वालामुखी शान्त हो जाता है तो यही लावा ठंडा होकर ठोस पड़ जाता है। यदि मौसमी क्षति द्वारा ज्वालामुखी शंकु विखण्डित होकर टूट-फूट जाता है तो यह जमा हुआ लावा अकेला खड़ा रह जाता है। इसे ज्वालामुख ग्री ा कहते हैं।

(२) ज्वाला ुखी पर्वत के शिखर पर ज्वालामुखी का मुख ह ता है जिसका आकार एक कटोरे या प्याले की तरह होता है। इस मुख को आधार तल की दरार से सम्बन्धित करने वाली नली को ज्वालामुख ग्रीवा कहते हैं। इसमें सदैव लावा उबलता रहता है और कभी-कभी विस्फोटक उद्गार होने पर इसका कुछ भाग विध्वंस हो जाता है। कभी-कभी इस ग्रीवा से अनेक छोटी-छोटी नलियाँ निकल पड़ती हैं जिनके द्वारा शंकु के इधर-उधर से उद्गार होते हैं।

ज्ाल मखी ग्रीवा

Volcanic Lake (ज्वालामुखी झील) ज्वालामुखी उद्गार से निकला हुआ लावा जब ब ता हुआ किसी घाटी के आर-पार जाकर फँस जाता है तो जलप्रवाह के मार्ग में अवरोध या बाधा सा बन जाने से उसके पीछे झील बन जाती हैं। इसे कूली झील कहते हैं।

परन्तु ज्वालामुखी झील का सबसे महत्वपूर्ण रूप व प्रकार वह है जो शान्त ज्वालामुखी के मुख में वन जाती है। ज्वालामुख का आकार एक गड्ढे की तरह होता है। जब कभी इस गड्ढे की तली में लावा जम जाता है और र्षा का पानी इकट्ठा हो जाता है तो एक झील बन जाती है। इसे ज्वालामुख झील कहते हैं। रोमन कैम्पग्ना की कैलरा झीलें इसी प्रकार की हैं। नि ली राइन नदी के समीप इफल की मार झील भी ज्वालामुख झील है। इन झीलों का आकर गोल होता है और इनके किनारे की दीवारें बड़ी ढालू होती हैं। इस प्रकार की झील की गहराई केन्द्र के समीप बहुत अधिक होती है।

V-Shaped Depression (V प्रकार का गर्त चक्र) निम्नभार गर्त को V आकार का गर्तचक्र कहते हैं क्योंकि इसमें समभार रेखायें V के आकार में व्यवस्थित रहती हैं। (देखिये Trough of Low Pressure)

V-Shaped Valley (V आकार की घाटी) नदी का जल बहता हुआ अपने नीचे की चट्ट नों में गड्ढा करता जाता है। धीरे-धीरे यह नालियाँ और गहरी होती चली जाती हैं। साथ-साथ नदी अपने किनारों को भी काटती चलती है। इसलिए नदी की तलैटी के गहरे होने के साथ-साथ उ का पाट भी चौड़ा होता जलता है। परन्तु किनारों पर मौसमी क्ष ति के द्वारा भी काट-छाँट होती रहती है। इस प्रकार तलैटी की अपेक्षा ऊपर के किनारों की दीवारें अधिक चौड़ी हो जाती हैं क्योंकि तलैटी पर तो केवल प्रवाहित जल ही आघात करता है और किनारों पर प्रवाहित जल के साथ-साथ मौसमी क्ष ति भी अ ना काम करती रहती है।

इस आवरण क्षय के अन्तर के कारण घाटी का आकार तली की तरफ सँ रा और ऊपर की तरफ चौड़ा होता जाता है। इसका आकार अँग्रेजी वर्णमाला के V अक्षर के समान हो जाता है। इसे V आकार को घाटी कहते हैं। (देखिये Valley)

Vulcanism (**ज्वालामुखी क्रिया**) ज्वालामुखी के फटने पर उसके अन्दर से गैस, ठोस पिण्ड, धूल और लावा निकलता है और आसपास के प्रदेश में परिवर्तन हो जाता है। इसे ज्वालामुखी क्रिया कहते हैं। ज्वालामुखी क्रिया दो प्रकार से होती रहती है—(१) **शान्त क्रिया** जब पैठिक लावा कम या बिना गैस के साथ धीरे-धीरे निकलता रहता है। (२) **विस्फोटक क्रिया** जब कि अम्ल लावा बहुत प्रकार की गैसों के साथ धड़ाके से बाहर निकलता है।

ज्वालामुखी क्रिया का असर धरातल के स्थलखंडों व वायुमंडल दोनों ही पर पड़ता है। वायुमंडल में उपस्थित कारबन डाइआक्साइड गैस ज्वालामुखी क्रिया का ही फल है। यह गैस पृथ्वी से ताप विकिरण के लिए कम्बल का काम करता है। इसके अलावा ज्वालामुखी से निकलने वाला लावा व रेत से आसपास का प्रदेश रेगिस्तान जैसा हो जाता है और तापक्रम की विषमता उत्पन्न हो जाती है। बनस्पति से ढके हुये प्रदेशों में भी वर्षा की कमी उत्पन्न करके ज्वालामुखी क्रिया तापक्रम को बढ़ा देती हैं। ज्वालामुखी उद्गार से निकली हुई धूल वायुमण्डल में मिल जाती है और यह सूर्य के ताप विकिरण को सोखकर तापक्रम को नीचा कर देती है। ऐसा विश्वास है कि हिमयुग के आगमन से पूर्व इसी प्रकार की धूल के बादल छा गये थे। (देखिये Volcano, Eruption)

Wadi (**वादी**) रेगिस्तानी नदी की घाटी को वादी कहते हैं। यह घाटी प्रायः सूखी पड़ी रहती है और केवल भारी वर्षा के बाद ही इसमें जलप्रवाह होता है। ये वादी दूरस्थित पर्वतों पर की बरफ के पिघलने से बन जाती हैं और आगे पहुँचने पर रेगिस्तान में लुप्त हो जाती हैं। कभी-कभी वादी रेगिस्तान में ही बनती हैं और थोड़ी दूर चलने के बाद समाप्त हो जाती है। वादियाँ सहरा और अरब देशों में विशेष रूप से पायी जाती हैं। (देखिये Arroyo, Nullah)

Wall map (**दीवार पर टाँगने का मानचित्र**) कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए जिन मानचित्रों का प्रयोग किया जाता है उन्हें दीवार पर टाँगने वाले मानचित्र कहते हैं। इनको इसीलिए बड़ी स्पष्टता व मोटी लकीरों द्वारा बनाया जाता है। दीवार पर टाँगने वाले मानचित्रों में सामान्य विस्तार के कागज पर सम्पूर्ण संसार या किसी गोलार्द्ध को चित्रित करते हैं। किसी महाद्वीप या देश का भी ऐसा मानचित्र बनाया जा सकता है जिसे दीवार पर टाँग कर प्रयोग किया जा सके। आवश्यकता के अनुसार दीवार पर टाँगने के मानचित्र छोटे या बड़े बनाये जाते हैं।

इनका मानदण्ड भूमिति चित्रों की अपेक्षा छोटा होता है परन्तु मानचित्रावली के मानचित्र की अपेक्षा दीर्घ होता है। कभी-कभी दीवार पर टाँगने वाले (८) मानचित्रों का एक समूह बना देते हैं और उनमें एक ही देश, महाद्वीप, गोलार्द्ध या सम्पूर्ण पृथ्वी के अलग-अलग दृश्य प्रदर्शित करते हैं। अतएव इन सबों को एक साथ बराबर से टाँग कर विस्तृत विवरण प्राप्त किया जा सकता है। कभी-कभी इस प्रकार के मानचित्र समूह को एक ही रोलर पर चढ़ा दिया गया होता है जिससे तुलनात्मक अध्ययन में सहायता मिलती है। दीवार पर टाँगने वाले मानचित्र और मानचित्रावली के मानचित्र में यही अन्तर है जो पोस्टर और तस्वीर में। इसका प्रयोग शिक्षक द्वारा कहे गये तथ्यों के लिए पृष्ठभूमि का काम करता है।

Warm Front (**गर्म सीमान्त**) आगे बढ़ती हुई गरम हवा जब किसी ठंडी वायु राशि के ऊपर उठती है तो पृथ्वी के धरातल पर इन दोनों को अलग करने वाली रेखा गर्म सीमान्त कहलाती है। दूसरे शब्दों में गरम हवा के अन्तिम छोर को गरम सीमान्त कहते हैं। गरम सीमान्त उतना लहरदार नहीं होता जितना कि शीत सीमान्त। गर्म और ठंडी

गर्म सीमान्त

वायुराशि के बीच की सीमान्त सतह शीत सीमान्त की अपेक्षा निम्नतर कोण बनाती हुई उठती या मुड़ती है।

ठंडी हवा के ऊपर गर्म हवा के चढ़ने से घने बादल बन जाते हैं और सीमान्त के आगे काफी वर्षा हो जाती है। जब गर्म सीमान्त गुजर जाता है तो उसके प चात् या तो थोड़ी सी वर्षा होती है या जलफुहार पड़ती है या कभी-कभी बिल्कुल भी वर्षा नहीं होती। गर्म सीमान्त के गुजरने पर साधारणतया तापक्रम बढ़ जाता है, वर्षा कम हो जाती है या बिल्कुल बन्द हो जाती है और हवा की गति बढ़ जाती है और दिशा दक्षिण-पश्चिम की ओर घड़ी की सुइयों की तरह विचलित हो जाती है।
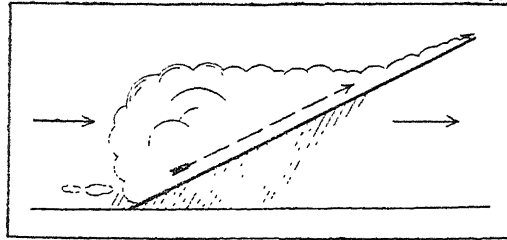
गर्म सीमान्त प्रायः उच्च अक्षांशों में जाड़े के मौसम में पाये जाते हैं जबकि चक्रवातों की जिनसे वे सम्बन्धित रहते हैं बहुलता रहती हैं।

Warm Sector (गर्म वृत्तांश) शीत सीमान्त या ध्रुवीय सीमान्त और गर्म सीमान्त के बीच में स्थित गर्म वायु राशि के प्रदेश को गर्म वृत्तांश कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में बने चक्रवात में दक्षिण-पूर्व के वृत्तांश को गरम वृत्तांश कहते हैं क्योंकि इस भाग में दक्षिण से आई हुई गरम हवा चलती है। जैसे जैसे चक्रवात आगे बढ़ता है, पश्चिम की ओर से बढ़ती हुई ठण्डी हवा गरम हवा को हटाती जाती है और गरम वृत्तांश निरन्तर छोटा होता जाता है। इस प्रकार गरम वृतांश केवल ऊपरी वायुमण्डल में स्थित रह जाता है, पृथ्वी के धरातल पर उसका सर्वथा लोप हो जाता हैं।

Warm Wave (ताप लहर) शीतोष्ण कटिबंध के प्रदेशों में जब कभी निम्न अक्षांशों से गरम हवा आ जाती है तो तापक्रम एकाएक बहुत अधिक हो जाता है। इसे ताप लहर कहते हैं। यह ताप लहर उस समय विशेष रूप से उत्पन्न हो जाती है जब कोई चक्रवात या विपरीत चक्रवात आता है। जब कोई चक्रवात पूर्व की ओर बढ़ता हुआ प्रदेश की तरफ आता है तो उसके अग्रभाग में ताप लहर का प्रादुर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार किसी विपरीत चक्रवात के पश्चिम में तापक्रम ऊँचा उठ जाने से ताप लहर बन जाती है।

यह पारिभाषिक शब्द संयुक्त राष्ट्र अमरीका में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। वहाँ की केन्द्रीय व पूर्वी राज्यों में इस प्रकार की ताप लहर गर्मी के मौसम में आती है।

War Map (युद्ध मानचित्र) युद्ध के लिए कई प्रकार के मानचित्र ब ाये जाते हैं और इन सभी का मानदण्ड दीर्घ होता है। युद्ध मानचित्रों में बहुत से ऐसे प्रदेशों के मानचित्र बनाये जाते हैं जिनका मानचित्र अभी तक कभी नहीं बनाया गया। इसमें हवाई जहाज से तस्वीर खींची जाती है।

युद्ध मानचित्रों को निम्नलिखित प्रकार का कहा जा सकता है—(१) निशाने के मानचित्र वे होते हैं जिनमें एक शहर, पुल या कारखाने को विस्तार से दिखलाया जाता है। इन्हें या तो फोटो चित्र द्वारा या बन्धुर आकृति द्वारा बनाया जाता है। ये बन्धुर आकृति रबड़ या प्लास्टिक पर बनाई जाती है, (२) राडर चित्र एक खास प्रकार के पदार्थ से बनाये जाते

हैं। (३) बन्दरगाह मानचित्र (४) नगर चित्र (५) सड़कों के मानचित्र (६) फौज उतारने के मानचित्र (७) भागने के रास्ते व तरीकों के मानचित्र।

वर्तमान युद्ध-कला में इनका बड़ा महत्व है और सच तो यह है कि सम्पूर्ण युद्ध संचालन इन्हीं पर निर्भर रहता है।

Waterfall (**जलप्रपात**) जब किसी नदी की तलैटी में कठोर चट्टानों की परत बिछी होती है तो जलप्रवाह उसे काट नहीं पाता और उसके ऊपर से होकर यकायक गिरने लगता है। इसे जलप्रपात कहते हैं।

जलप्रपात उस नदी की तलैटी में बन जाते हैं जहाँ एक सी चट्टानें नहीं बिछी रहती हैं। कहीं पर कठोर चट्टानें होती है और कहीं पर नरम चट्टानें। कठोर चट्टानें या तो नरम चट्टानों के ऊपर समानान्तर बिछी रहती है या धारा के उपर की तरफ झुकी हुई आड़ी-तिरछी खड़ी रहती हैं। कभी-कभी चट्टानों की व्यवस्था ऐसी होती है कि नरम चट्टानों के बीच कठोर चट्टान की परत लम्बरूप स्थित रहती है। जल का प्रवाह नीचे की नरम चट्टानों को आसानी से और जल्दी काट देता है और फलस्वरूप उसके मार्ग में कठोर चट्टान की परत या पिण्ड या तो ऊपर से लटकता हुआ रह जाता है या लम्ब रूप अड़ा सा रह जाता है। इस पर से होकर नदी का जल बड़े जोरों से गिरता है और जलप्रपात बन जाता है।

गिरते हुये पानी से कठोर चट्टान की परत भी नीचे से फट जाती है और समय-समय पर इसमें से बड़े-बड़े शिलाखण्ड टूट कर गिरते रहते हैं। इस प्रकार जलप्रपात पीछे को हटता जाता है और इसकी स्थिति नदी के उद्गम की ओर हटती रहती है। जलप्रपात के इस हटाव में भी जलप्रपात का शीर्ष कठोर चट्टानी परत के सिरे पर ही रहता है। नदियों की ऊपरी घाटी में पर्वतीय जलप्रपात अक्सर हटते-हटते नदी के उद्गम तक पहुँच जा हैं और उद्गम को भी हटाकर जलविभाजक को भंग कर देते हैं। इसके विपरीत कभी-कभी जलप्रपात स्वयं पीछे की ओर कटते जाते हैं और थोड़े दिनों में एक गहरी कन्दरा बन जाती है। जलप्रपात के पीछे हटने का सर्वोच्च उदाहरण नियागरा जलप्रपात में मिलता है। प्रपात के पीछे हटने से घाटी की गहराई बढ़ती जाती है।

इस विषय में यह ध्यान देने योग्य बात है कि जलप्रपात तभी पीछे को हटता है जब कठोर चट्टानों की परत नरम चट्टानों पर समानान्तर स्थित हो। यदि कठोर चट्टानों का पिण्ड लम्ब रूप स्थित हुआ तो जलप्रपात पीछे नहीं हटेगा बल्कि उसकी ऊँचाई धीरे-धीरे कम होती जायेगी जैसे-जैसे उसकी कठोर सतह जल द्वारा घिस कर नष्ट होती जायगी।

जब कोई नदी लटकती हुई घाटी में से होकर बहती हुई मुख्य नदी में गिरती है तब भी जलप्रपात बन जाते हैं। जलप्रपात से नदी की नाव्यता में तो जरूर बाधा पड़ती है परन्तु जल विद्युत के दृष्टिकोण से इनका बड़ा महत्व है। (देखिये Rapids)

Water Gap (**जल दर्रा**) (१) कठोर चट्टान में से काटी हुई सँकरी नदी घाटी को जलदर्रा कहते हैं।

(२) जब कोई नदी अपने समीप की विपरीत दिशा में बहने वाली दूसरी नदी का पानी हड़प लेती है तो हड़पी हुई नदी की तलैटी में जलप्रवाह नहीं रह जाता। वह शुष्क हो जाती है। विस्तार या लम्बाई-चौड़ाई को देखते हुये उसमें कभी-कभी जब अत्यन्त छोटी जलधारा बाकी रह जाती है तो उसे जलदर्रा कहते हैं। वास्तव में इस प्रकार की कम जल वाली विस्तृत घाटियाँ पर्वत प्रदेशों में आवागमन का अच्छा मार्ग बनाती हैं। (देखिये Wind Gap)

Water Hemisphere (**जलीय गोलार्द्ध**) भूमध्य रेखा से दक्षिण में स्थित आधे

भाग में स्थल खंड की अपेक्षा जल का विस्तार अधिक है। इस दक्षिणी गोलार्द्ध को इसीलिए जलीय गोलार्द्ध कहते हैं। यह स्थलीय गोलार्द्ध के विपरीत स्थित है और इसका केन्द्र न्यूजीलैण्ड के समीप कहा जा सकता है। जलीय गोलार्द्ध में सम्पूर्ण पृथ्वी का केवल सप्तमांश स्थल भाग सम्मिलित है।

Water Parting **(जल विभाजक)** (देखिये (Watershed)

Water Power **(जलशक्ति)** प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जलप्रपातों से प्राप्त शक्ति को जलशक्ति कहते हैं। जलशक्ति दो प्रकार की होती है—(१) गिरता हुआ जल किसी पहिये पर गिरकर उसको बराबर चलाता रहता है और उस पहिये से सम्बन्धित कलें उसी शक्ति द्वारा चलती रहती हैं।

(२) इस जल को टबाइन द्वारा प्रयोग में लाकर विद्युत उत्पादक यन्त्र की सहायता से जल विद्युत उत्पन्न करते हैं। (देखिये Hydroelectricity)

Watershed **(जल विभाजक)** पास-पास स्थित परन्तु विभिन्न जलप्रवाह या बेसिन में जाकर गिरने वाली सहायक नदियों के उद्गम स्थान को अलग करने वाली उच्च भूमि को जल विभाजक कहते हैं। इस का ऊपरी भाग बड़ा ही अनियमित होता है और पहाड़ी श्रेणियों की दिशा के अनुसार कदापि नहीं होता है। यह जल विभाजक स्थायी नहीं होता। नदियाँ अपनी तलैटी को उद्गम स्थान की तरफ काटती रहती हैं। इसलिए ये जल विभाजक भी खसकते रहते हैं। जब नदियाँ दूसरी तरफ के जलप्रवाह को हड़प लेती हैं तो जलविभाजक गायब हो जाते हैं और उनके बीच से होकर प्रवाहशालिनी धारा बहती चली जाती है।

नवीन नदी के जल विभाजक चौड़े व ऊँचे होते हैं परन्तु जैसे-जैसे नदी की घाटी व तलैटी का विस्तार होता जाता है वैसे-वैसे जल विभाजक सँकरे होते जाते हैं और उनकी ऊँचाई कम होती जाती है। अन्तिम दशा में ये बिल्कुल ही नष्ट हो जाते हैं और इनके स्थान पर समतल मैदान बन जाता है।

जल विभाजक दो प्रकार के होते हैं—(१) नतोदर और (२) उन्नतोदर। साधारण जलविभाजक उन्नतोदर होते हैं परन्तु जब उनके दोनों ओर प्रवाहशालिनी नदियाँ बहती होती हैं तो उस के ढल का आकार नतोदर तथा उसका शीर्ष गोलाकार की जगह नुकीला बन जाता है। (देखिये Normal Watershed, Cuspate Watershed)

Water Spout **(जल स्तम्भ)** जब किसी समुद्र पर कोई टारनैडो तूफान चलता है तो इसके प्रभाव से समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं और कभी-कभी इसके द्वारा जल का एक खम्भा सा बन जाता है। इसे जल स्तम्भ कहते हैं। टारनैडो तूफान के आने पर क्यूमोलोनिम्बस मेघ बन जाता है और इससे उल्टे हुये शंकु या त्रिकोण के आकार का मेघ लटकता रहता है। उल्टे हुए शंकु के आकार का यह मेघ जल को ऊपर की तरफ खींचता है और इसकी ओर खिंच कर जल एक शंकु के आकार में खड़ा हो जाता है। बादल और समुद्र की सतह के बीच में बना हुआ जल का खम्भा या शंकु जल स्तम्भ कहलाता है।

यह जल स्तंभ कई सौ फीट ऊँचा रहता है और बनने के बाद आध घंटे तक खड़ा रहता है। इसके बिल्कुल समीप में बड़ी तेज हवायें इसके चारों ओर भवँर चक्र की तरह चला करती हैं। इसके आधार की अपेक्षा इसका शीर्ष अधिक तीव्रगति से आगे बढ़ता है। यह टेढ़ा हो जाता है या मुड़ जाता है और बाद में टूट कर गायब हो जाता है।

Water Table **(जल रेखा)** वर्षा का जल मिट्टी के छिद्रों से होकर धरती के भीतर प्रवेश कर जाता है परन्तु इसके अन्दर जाने की एक सीमा होती है। यदि नीचे कोई

कठोर अभेद्य चट्टान आ जाये तो इस जल का आगे जाना रुक जाता है । इसी प्रकार एक गहराई पर पहुँचकर भार के कारण प्रवेश्य चट्टानों के छेद इतने बन्द हो जाते हैं कि जल आगे जा ही नहीं सकता । पानी के नीचे जाने की सीमा के ऊपर कुछ ऊँचाई तक चट्टानों के छेदों, संधों और दरारों में पानी भरा रहता है । इस प्रकार जलपूर्ण चट्टानों की ऊपरी सीमा को जलरेखा कहते हैं । इस रेखा के नीचे जल बराबर बना रहता है ।

जलरेखा कहीं ऊँची और कहीं नीची होती है । इसके अलावा इसके तल में मौसम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है । जब वर्षा अधिक मात्रा में अधिक समय तक होती रहती है तो चट्टानों के छेद पानी से भर जाते हैं और जलरेखा थोड़ी सी गहराई पर ही मिल जाती है । ऐसी दशा में प्रवेश्य और अप्रवेश्य चट्टानों के मिलन स्थान से जल झरनों के रूप में बाहर निकलने लगता है । स्रोत के रूप में जल निकल जाने से जलरेखा की गहराई पर ही मिल जाती है । ऐसी दशा में प्रवेश्य व अप्रवेश्य चट्टानों के मिलन स्थान से जल झरनों के रूप में बाहर निकलने लगता है । स्रोत के रूप में जल निकल जाने से जलरेखा की गहराई बढ़ जाती है । शुष्क मौसम में जलरेखा नीची हो जाती है और वर्षा के मौसम में जलरेखा ऊँची हो जाती है । परन्तु सच तो यह है कि एक निश्चित सीमा पर पहुँचकर जलरेखा का ऊँचा-नीचा होना बन्द हो जाता है । इस निश्चित सीमा को जिससे जलरेखा नीचे नहीं जा सकती उसे स्थायी जलरेखा कहते हैं ।

जलरेखा की ऊँचाई भूमि की बनावट तथा उसके ढाल पर निर्भर रहती है । पहाड़ी भागों में और तीव्र ढालों पर जल रेखा बहुत गहराई पर मिलती है परन्तु मैदानी भाग में जलरेखा की ऊँचाई अधिक होती है । इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की रचना वाली चट्टानों में जलरेखा की ऊँचाई अलग-अलग होती है । जहाँ पर विभिन्न प्रकार की चट्टानें मिलती हैं वहाँ एक अस्थायी जल रेखा बन जाती है ।

Water Meadow (**सिंचित चरागाह**) जिस पशुचारण भूमि में साल के कुछ अंश में या तो पानी भरा रहता है या सिंचाई द्वारा पानी का प्रबन्ध किया जाता है, उसे सिंचित चरागाह कहते हैं । इस प्रकार के चरागाहों में उत्तम प्रकार की घास उगाई जाती है और अधिकतर गाय-बैल पाले जाते हैं । इस प्रकार वर्तमान दुग्धशाला व मांस उद्योग का आधार यही सिंचित चरागाह हैं । इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग इंगलैण्ड में बहुत किया जाता है ।

Weather (**ऋतु**) वायुमण्डल पृथ्वी को घेरे हुये है और मानव जीवन को प्रवाहित करता है । वायुमण्डल की विशेष दशायें वायु का भार, तापांश, हवायें, नमी और वर्षा हैं । इन सभी दशाओं की एक दिन या एक समय पर क्या स्थिति होगी उसे ऋतु कहते हैं । अतएव एक निश्चित समय पर या काल में वायुमण्डल की विशेष दशा का नाम ऋतु है । वायु-भार, तापांश, आर्द्रता, वर्षा, मेघाच्छन्निता, वायु की गति और दिशा आदि सभी तत्वों का सामूहिक रूप ऋतु है । कभी-कभी इन तथ्यों में से कोई एक तत्व इतना प्रधान हो जाता है कि उसी के द्वारा ऋतु का नाम पड़ जाता है । कभी हम कहते हैं कि ऋतु नम है, कभी कहते हैं ऋतु शुष्क आदि । उच्च अक्षांशों और विशेषकर पश्चिम यूरोप जैसी जलवायु के प्रदेशों में प्रायः दिन प्रति दिन ऋतु बदला करती है । परन्तु भूमध्यरेखा और ध्रुवों के समीप वाले प्रदेशों में ऋतु परिवर्तन इतना कम होता है और इतनी देर से होता है कि वहाँ की ऋतु और जलवायु में कोई भेद ही नहीं रह जाता ।

Weather Chart (**ऋतु चित्र**) जिन देशों में ऋतु परिवर्त्तन बड़ी शीघ्रता से होता

है और जहाँ का प्रत्येक दिन दूसरे दिन से भिन्न होता है वहाँ नाविकों व कृषकों की सुविधा के लिए प्रतिदिन छोटे-छोटे मानचित्र प्रकाशित किये जाते हैं। इन्हें ऋतुचित्र कहते हैं।

ऋतुचित्र में एक विशेष स्थान या प्रदेश के ऋतु सम्बन्धी तथ्यों को सांकेतिक चिन्हों द्वारा अंकित करते हैं। ये तथ्य दशाओं से सम्बन्धित ज्ञान का निरीक्षण एक विशेष या निश्चित समय पर किया जाता है और विभिन्न ऋतुदशाओं का निरीक्षण अलग-अलग यंत्रों की सहायता से वेधशालाओं में किया जाता है। देश में ऋतु ज्ञान के निरीक्षण के लिए बहुत-सी बेधशालायें या निरीक्षण गृह बने होते हैं। इनमें लिए गये निरीक्षण दिन में दो बार केन्द्रीय बेधशाला को तार यन्त्र के द्वारा भेजे जाते हैं और केन्द्रीय बेधशाला में ये आँकड़े एक विस्तीर्ण मानचित्र पर अंकित कर दिये जाते हैं। तट के समीप आने वाले जहाज भी निरीक्षण के द्वारा ऋतुदशा सम्बन्धित ज्ञान को केन्द्रीय बेधशाला में भेजते हैं। वायुमण्डल के उच्च परतों के विषय में ज्ञान गुब्बारों, हवाई जहाजों तथा पहाड़ी केन्द्रों से प्राप्त होता है।

ऋतु चित्रों का एक क्रम होता है जिन्हें ६ घण्टे या प्रत्येक तीन घंटे के अन्तर पर बनाया जाता है। जब किसी क्षेत्र के विषय में सब निरीक्षण, आँकड़े व तथ्य अंकित कर दिये जाते हैं तो फिर समभार रेखायें बनायी जाती हैं। ये समभार रेखायें साधारणतया २ मिलीबार के अन्तर पर बनाई जाती हैं और फिर मुख्य ऋतुआकारों को अंकित कर दिया जाता है। समभार रेखाओं की आकृति से पता चलता है कि कहाँ चक्रवात व विपरीत चक्रवात हैं, वे किस दिशा में बढ़ रहे हैं, वायु की गति व दिशा क्या है तथा किसी स्थान पर पिछले २४ घंटों में कितना तापांश रहा व वर्षा की मात्रा कितनी रही। इन्हें सांकेतिक चिन्हों द्वारा चित्रित किया जाता है जिन्हें ब्यूफर्ट साहब ने निकाला था। (देखिये Beaufort Notation)

Weather Forecasting (**ऋतु आँकना**) विविध ऋतु चित्रों के अध्ययन के आधार पर आनेवाली ऋतु को अंदाजना ऋतु आँकना कहलाता है। ऋतुसम्बन्धी दशाओं का बनना इतना जटिल होता है और उसमें इतनी कठिनाइयाँ होती हैं कि भविष्य में आनेवाले मौसम के बारे में सही अन्दाज तो लगाया ही नहीं जा सकता। इसलिए ऋतु आँकने के लिए ऋतु विज्ञान के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचय होना आवश्यक है। ऋतु की दशायें इतनी अनिश्चित व अस्थिर होती हैं कि ऋतु आँकने में किसी खास नियम का पालन नहीं किया जा सकता। ऋतु आँकने में सफलता आँकने वाले के अनुभव पर निर्भर रहती है।

ऋतु आँकनेवाला स्थानीय मौसम से भिज्ञ होना चाहिए और उपस्थित वायुमण्डलीय दशाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करके आगे की ऋतु बतला देने की इसमें क्षमता होनी चाहिए। ऋतु आँकना दो प्रकार का होता है—(१) दीर्घकालीन ऋतु आँकना जिसमें काफी काल के भीतर होनेवाली सामान्य दशाओं को बतलाया जाता है। (२) लघुकालिक ऋतु आँकना वह होता है जिसमें अगले २४ या ४८ घंटों के मौसम के बारे में विस्तार से बतलाया जाता है।

Weather Survey (**ऋतु पैमाइश**) ऋतु ज्ञान के लिए वायुमण्डल की निम्न-लिखित ६ दशाओं का निरीक्षण आवश्यक होता है—(१) तापक्रम (२) वायुभार (३) हवा (४) आर्द्रता (५) मेघ और (६) वृष्टि। इनके सम्बन्धित दशाओं को जानने के लिए अनेक प्रकार के यन्त्रों से सहायता ली जाती है। इस समस्त कार्य को ऋतु पैमाइश कहते हैं। ऋतु चित्र बनाने और ऋतु आँकने के लिए ऋतु पैमाइश का बड़ा महत्व है।

Weathering (**मौसमी क्षति**) जिस क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा वायुमण्डल की शक्तियाँ चट्टानों को तोड़-फोड़कर नष्ट-भ्रष्ट करती रहती हैं उसे मौसमी क्षति कहते हैं

आवरण क्षय का यही प्रधान आधार है और भूमि पर पायी जानेवाली बारीक मिट्टी इसी से प्राप्त होती है। मौसमी क्षति के द्वारा चट्टानें आवरण क्षय के लिए तैयार की जाती हैं।

मौसमी क्षति दो प्रकार से होती रहती है—(१) रसायनिक क्रिया द्वारा चट्टानों के खनिज तत्वों में हेर-फेर होना और (२) चट्टानों का टूट-फूट कर टुकड़े-टुकड़े होना। प्रायः ये दोनों प्रकार की क्रियायें एक साथ होती रहती हैं। चट्टानों के खनिज तत्वों में हेरफेर करने वाले प्रधान साधन आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड और हाइड्रोजन गैसें हैं। इन गैसों के प्रभाव से चट्टानों की धातुओं और रसायनिक तत्वों में परिवर्तन हो जाता है। जब चट्टानों में आक्सीजन प्रवेश कर जाता है तो लोहे का खनिज आक्साइड में बदल जाता है और चट्टानों में ढीलापन आ जाता है। कारबन डाइ आक्साइड गैस को ग्रहण करने के बाद वर्षा का जल जब चट्टानों में प्रवेश करता है तो चूने के अंश को घुलाकर नष्ट कर देता है और फेल्डस्पार को ढीला कर देता है। रसायनिक क्रिया के द्वारा चट्टानों के खनिज तत्वों में हेरफेर की तीव्रता निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है—(१) वर्षा की मात्रा (२) चट्टानों की संरचना (३) चट्टानों की प्रवेश्यता (४) चट्टानों पर भूमि आवरण की मात्रा (५) जल के रसायनिक गुण (६) वायुमण्डल का तापक्रम। रासायनिक क्रियाओं द्वारा मौसमी क्षति शुष्क प्रदेशों में सबसे कम और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सबसे ज्यादा तीव्र होती हैं।

चट्टानों का टूटना-फूटना अनेक प्रकार से होता रहता है। उष्ण प्रदेश में दिन में सूर्य के ताप से चट्टानों का प्रसार होता है और रात्रि में ठंडक पड़ने से चट्टानें सिकुड़ जाती हैं। दिन प्रतिदिन इस प्रसार व संकुचन से चट्टानें कमजोर होकर टूटने लगती हैं। उच्च अक्षांशों में चट्टानों की दरारों में भरा हुआ पानी रात में ठंड के कारण जम जाता है। जमने पर उसे अधिक जगह की जरूरत होती है और वह फैलता है। इस प्रकार दरारें चौड़ी होती जाती हैं। दिन में यह जमा हुआ जल पिघल जाता है और दरारों में सिकुड़न होने लगती है। इस प्रकार बार-बार जमने और पिघलने से दरारों पर से चट्टानों के खंड-खंड हो जाते हैं। वर्षा का जल अपने साथ ढीले कणों को बहा ले जाता है और मिट्टी के स्तम्भ खड़े रह जाते हैं। अत्यन्त गर्म देशों में सूर्य की गरमी से तपी हुई चट्टानों पर जब वर्षा का जल पड़ता है तो वे एक दम ठंडी होकर तड़क जाती हैं।

शुष्क प्रदेशों के उच्च भागों में वायु भी विखण्डन या मौसमी क्षति करती रहती है। वायु तापक्रम को प्रभावित करती है और ऊपर की परतों को तड़का कर इस प्रकार उतार लेती है जैसे फूल की ऊपरी पपड़ी।

इसके अलावा अनेक पेड़-पौधों की जड़ें नमी की तलाश में इधर-उधर फैला करती हैं और धीरे-धीरे चट्टानों में दरारें पैदा कर देती हैं। कुछ जीव-जन्तु पृथ्वी में अपने रहने के लिए बिल बनाते हैं और खोदकर मिट्टी को बाहर निकालते रहते हैं। मनुष्य भी अपनी जरूरत के लिए सुरंगें बनाता है, खानें खोदता है और इससे भी चट्टानों की टूट-फूट होती रहती है।

Wedge **(वेज)** कभी-कभी दो चक्रवातों के बीच के प्रदेश में समभार रेखायें इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि उल्टे हुये V अक्षर के समान मालूम पड़ती हैं और उनका बन्द वाला सिरा गोलाकार रहता है। इस उल्टे हुये V के भीतर उच्चभार रहता है। इन्हें वेज कहते हैं। ये वेज चक्रवातों के साथ आगे बढ़ते हैं और इसके अग्रभाग का मौसम वही होता है जैसा कि आगे वाले चक्रवात के पिछले भाग में। वेज के पीछे के हिस्से का मौसम बाद में आने वाले चक्रवात के अग्रभाग से मिलता-जुलता है। वेज के अग्रभाग में से मौसम साफ और सुहाना रहता है और दूर तक देखा जा सकता है। इसके पीछे के भाग में मौसम मेघों से घिरा हुआ और सुस्त रहता है।

Wedge of High Pressure (उच्चभार श्रेणी) इस उच्चभार प्रदेश में समभार रेखायें V आकार की होती है। (देखिये Ridge of High Pressure, Wedge)

Well (कुआँ) भूमिगत जल को प्राप्त करने के लिए अक्सर धरातल पर एक छेद या गड्ढा बना देते हैं जिसकी गहराई सतह से जल रेखा तक होती है। इसे कुआँ कहते हैं। कुयें से पानी या तो पम्प द्वारा निकाला जाता है या खेंच कर निकाला जाता है।

यदि कोई कुआँ केवल इतनी गहराई तक खोदा जाय कि वर्षा ऋतु की जलरेखा को प्राप्त कर ले तो उसमें जल की मात्रा व प्रवाह अस्थायी रहेगी। ऐसे कुयें शुष्क और मौसम में सूख जाते हैं। परन्तु यदि कुयें को अधिक गहरा करके स्थायी जलरेखा तक पहुँचा दिया जाय तो इसमें सदैव पानी बना रहेगा। (देखिये Artesian Well)

कुयें कच्चे व पक्के होते हैं। कुछ कुओं से बिजली द्वारा पानी निकाला जाता है। उन्हें ट्यूब वेल कहते हैं। (देखिये Lined Well, Unlined Well, Tube Well)

Westerlies (पछुवा हवायें) शीतोष्ण कटिबंध में कर्क और मकर रेखा की तरफ से ध्रुव वृत्तों की ओर चलनेवाली हवाओं को पछुंवा हवायें कहते हैं। ये हवायें भूमध्यरेखा के दोनों ओर लगभग ३५°-४०° अक्षांश से ६०°-६५° अक्षांश तक चलती हैं। अयन सीमाओं के उच्चभार कटिबंध के ध्रुवीय सिरों से ये सदैव उत्तर या दक्षिण की ओर चला करती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये दक्षिण-पश्चिम से और दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिम से चलती हैं। जिन प्रदेशों में ये हवायें चलती हैं उन्हें पछुंवा हवाओं के प्रदेश कहते हैं। जाड़ों में इन हवाओं की पेटी कुछ दक्षिण में खसक जाती है और उत्तरी गोलार्द्ध के भूमध्य सागरीय प्रदेश तथा घोड़े के अक्षांश इनके प्रभाव में आ जाते हैं। इन्हीं हवाओं के कारण इन प्रदेशों में जाड़े में वर्षा होती है। गर्मी के मौसम के आते ही यह हवायें फिर उत्तर की ओर खसक जाती हैं।

ये हवायें गरम अक्षांशों से ठण्डे अक्षांशों की ओर चलती हैं। अतः जैसे-जैसे ये आगे बढ़ती हैं वैसे-वैसे ये ठण्डी होती जाती हैं और वर्षा करती हैं। महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर इन्हीं हवाओं के कारण साल भर लगातार वर्षा होती है। इन हवाओं के साथ चक्रवात तथा विपरीत चक्रवात भी चलते रहते हैं। इन तूफानों के कारण इस प्रदेश में बड़ी अनियमित दशा उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए इन्हें तूफानी हवायें भी कहते हैं। ये तूफानी चक्रवात इस प्रदेश के ध्रुवों की तरफ वाले किनारे पर बहुत अधिक रहते हैं। ध्रुवों की तरफ वाले किनारों पर इनके ऊपर से ध्रुवों की ठंडी हवा आ मिलती है और ध्रुवीय सीमान्त बन जाता है।

व्यापारिक हवाओं के विपरीत पछुवा हवाओं की गति व दिशा बड़ी ही अनियमित व विषम होती है। कभी यह बहुत मन्द गति से चलती हैं तो कभी तूफान की तरह वेगवती हो जाती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये हवायें बहुत दिनों तक पूर्व की ओर से चलती रहती है। उत्तरी गोलार्द्ध में चक्रवात व विपरीत चक्रवातों की बहुलता के कारण ये सभी दिशाओं से चलती हैं। इस विषमता के दो कारण हैं—प्रथम तो यह है कि उत्तरी गोलार्द्ध में पश्चिम से पूर्व की ओर चलनेवाले चक्रवात व विपरीत चक्रवातों की एक लड़ी सी लग जाती है। दूसरे महाद्वीप और महासागरों के हेरफेर से इनमें विषमता और भी बढ़ जाती है। ऐशिया के पूर्वी भाग में पछुवा हवाओं का प्रभाव मानसूनी हवाओं के कारण कमजोर हो जाता है। जाड़े की ऋतु में उत्तरी आन्ध्र महासागर पृथ्वी पर सबसे अधिक तूफानी क्षेत्र बन जाता है। परन्तु गर्मी के मौसम में हवा की गति व मौसम दोनों ही अपेक्षाकृत बहुत शान्त रहते हैं।

दक्षिणी गोलार्द्ध में इन हवाओं के मार्ग में रुकावट डालने वाला कोई विस्तुत स्थलखंड

नहीं है। इसलिए साल भर बराबर ये हवायें बड़े प्रचण्ड वेग से चलती रहती हैं। इनकी गति और दिशा तथा इनके द्वारा उत्पन्न मौसम सभी कुछ निश्चित व स्थायी होता है। इसीलिये उस प्रदेश में इन्हें गरजने वाली चालीसा कहते हैं।

पछुवा हवाओं में निम्नलिखित तीन विशेषतायें पायी जाती हैं—(१) ये ध्रुवों की तरफ चलती हैं और तूफानों से भरी होती हैं। (२) गर्म अक्षांशों से ठंडे अक्षाशों की तरफ चलने के कारण ये तापक्रम को बड़ा देती हैं। (३) ठंडे अक्षांशों की तरफ चलने के कारण इनमें द्रवीभवन क्रिया होती रहती है और इनसे विस्तत वर्षा होती है। (४) इनके साथ चक्रवातीय दशायें और परिवर्तनशील मौसम बना रहता है। (देखिये Roaring Forties, Brave West Winds)

Wet Bulb Temperature (**गीली घुंडी का तापांश**) गीली घुंडी वाले थर्मामीटर द्वारा नापा गया तापक्रम गीली घुंडी का तापांश कहलाता है। गीली घुंडी वाला थर्मामीटर साधारण थर्मामीटर की ही तरह होता है। इसका बल्ब या घुंडी एक तर मलमल के टकड़े से ढकी रहती है और इस मलमल का एक कोना पानी से भारी बोतल में डूबा रहता है। इस प्रकार यह कपड़ा बराबर तर बना रहता है।

इस प्रकार इस थर्मामीटर से जो तापांश प्राप्त होता है वह वायुमण्डल का वह तापक्रम है जो गीली सतह से होनेवाले वाष्पीकरण द्वारा कम हो गया है। थर्मामीटर की घुंडी के ठंढे होने की मात्रा वाष्पीकरण की न्यूनाधिकता पर निर्भर रहती है।

शुष्क घुंडी और तर घुंडी वाले थर्मामीटरों द्वारा प्राप्त तापांश का अन्तर बड़ा ही महत्वपूर्ण है। वायुमण्डल के तापक्रम के अनुपात में इस अन्तर से सापेक्षिक आर्द्रता का ज्ञान होता है। तापांश के आँकणों से सापेक्ष आर्द्रता जानने के लिए कुछ विशिष्ट तालिकायें तैयार की गई हैं। यदि दोनों तापांश में सापेक्ष आर्द्रता बहुत थोड़ा हुआ तो स्पष्ट है कि वायु बहुत नम है और सापेक्ष आर्द्रता बहुत अधिक है। ऐसी दशा में तर घुंडीवाले थर्मामीटर से वाष्पीकरण की मात्रा बहुत कम रहती है। यदि दोनों तापांश में अन्तर काफी हुआ तो स्पष्ट है कि मौसम शष्क है और सापेक्ष आर्द्रता बहुत कम है। (देखिये Relative Humidity)

Wet Spell (**तर काल**) ब्रिटिश द्वीपसमूह में जब लगातार १५ दिन तक प्रतिदिन .०४ इंच या अधिक वर्षा होती है तो उसे तर काल कहते हैं। यह पारिभाषिक शब्द अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग में नहीं आया है।

Wheat Belt (**गेहूँ प्रदेश**) उत्तरी अमरीका के प्रेरी प्रदेश का वह भाग जहाँ गेहूँ की विस्तत खेती की जाती है, गेहूँ प्रदेश कहलाता है। यह गेहूँ प्रदेश राकी पर्वतमाला के पूर्व में स्थित है और कनाडा में उत्तरी अलबर्टा प्रान्त से संयुक्त राष्ट्र अमरीका के उत्तरी टेक्सास राज्य तक फैला हुआ है। उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई यह सम्पूर्ण पट्टी संसार का सबसे प्रधान गेहूँ उत्पादक प्रदेश है। संसार के सर्वप्रथम गेहूँ उत्पादक राज्यों में से एक तो संयुक्त राष्ट्र अमरीका है परन्तु कनाडा से सब से अधिक गेहूँ निर्यात किया जाता है।

Wheat Crescent (**गेहूँ चक्र**) दक्षिणी अमरीका के पेम्पास प्रदेश के पश्चिमी किनारे पर जलवायु शुष्क है। इसके चारों ओर अर्द्धचन्द्र के आकार का एक प्रदेश है जिसमें गेहूँ उगाया जाता है। इसे गेहूँ चक्र कहते हैं। इसी प्रदेश के कारण अर्जेन्टाइना संसार के दो प्रमुख गेहूँ निर्यातक देशों में से एक हो गया है।

Wheel Diagram (**चक्र चित्र**) (देखिये Statistical Diagram)

Whirlpool (**जल भँवर**) नदी या समुद्र में जब जल तेजी से चक्कर

देकर घूमता है तो उसे जल भँवर कहते हैं। जल भँवर में नदी की धारा आगे को नहीं बढ़ती बल्कि घूम-घूम कर एक ही जगह रह जाती है। इस प्रकार की जल भँवर नाविकों व तैराकों के लिए बड़ी भयंकर होती है। यह दो धाराओं के मिलने से या तलैटी की विशेष बनावट के कारण बन जाते हैं। इनके बीच नाव के एक बार फँस जाने पर फिर बाहर निकलना सर्वथा असम्भव हो जाता है। भँवर की उपस्थिति से नदी की नाव्यता में बड़ा असर पड़ता है।

Whirlwind (**वायु भवँर, बवण्डर**) लम्बरूप अथवा थोड़ी झुकी हुई धुरी के चारों ओर तेजी से चक्कर काटते हुई हवा के छोटे स्तम्भ को वायु भँवर को बवण्डर कहते हैं। इस के मध्य या केन्द्र में निम्न भार होता है। कभी-कभी इसकी ऊँचाई बहुत अधिक होती है। रेगिस्तान में जब ये बवण्डर आते हैं तो धूल की आँधियाँ चलने लगती है और चारों तरफ रेत के बादल छा जाते हैं।

जब कभी किसी तीव्र ढालवाले पर्वत या पहाड़ी के ऊपर से हवा गुजरती है तो वायु विमुख ढाल पर वायुभँवर बन जाते हैं। ऐसी दशा में धरातल की हवा की दिशा प्रचलित वायु की दिशा के बिल्कुल विपरीत होती है और उनके बीच का प्रदेश शान्त रहता है।

वायुभँवर बनने का प्रधान कारण स्थानीय तापान्तर है। प्राय: ये उस समय बनते हैं जब सूर्य मध्यान्ह पर होता है और शीघ्रता से उठनेवाली संवाहन धारायें चक्कर काटती हुई ऊपर को उठने लगती हैं।

वायुभँवर या बवण्डर में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं—(१) ये तीसरे पहर बहुत प्रचण्ड रहती है। सुबह के समय ये बहुत कमजोर रहती हैं। (२) बवण्डर गर्मियों में सबसे अधिक प्रचण्ड और जाड़े व वसन्त में सबसे कमजोर रहते हैं। (३) उष्ण व उपोष्ण प्रदेशों में ये सबसे प्रचण्ड होते हैं। (४) जल व वनस्पति प्रदेशों की अपेक्षा बवण्डर ऊसर व रेगिस्तानी प्रदेशों में सबसे अधिक रहते हैं। (५) ऊँची-नीची व टूटी-फूटी भूमि प्रदेश की अपेक्षा निम्न समतल भूमि पर बवण्डर या वायु भँवर की प्रचण्डता बहुत अधिक रहती है।

बवण्डर में चक्कर देते हुये वायु स्तम्भ की ऊँचाई, प्रचण्डता और अवधि स्थानीय ताप तथा निम्नभार ढाल पर निर्भर रहता है।

White Horses (**सफेद घोड़े**) समुद्र की लहरों पर जब हवायें विपरीत दिशा से टकराती हैं तो उनका अग्रभाग या शीर्ष बिखर कर सफेद सा हो जाता है। इसे सफेद घोड़े कहते हैं क्योंकि आगे बढ़ती हुई लहरें सफेद घोड़ों की तरह मालूम पड़ती है। कभी-कभी इन्हें सफेद टोपी भी कहकर पुकारते हैं क्योंकि ऊपरी भाग केवल सफेद होने के कारण ऐसा मालूम पड़ता है जैसे टोपी पहिने हुये हो।

White Man's Grave (**श्वेत मनुष्यों की कब्र**) पश्चिमी अफ्रीका के गिनी तट के प्रदेशों को श्वेत मनुष्यों की कब्र कहते हैं। इसके अन्तर्गत गोल्ड कोस्ट, आइवरी कोस्ट और नाइजीरिया के देश सम्मिलित हैं। यहाँ का वायुमण्डल सदा ही बहुत गर्म तथा तर बना रहता है। इसी कारण यहाँ की जलवायु बड़ी अस्वास्थ्यकर है। अधिकतर हवायें गिनी की खाड़ी की तरफ से आती हैं। उत्तर-पूर्व से प्रवाहित होने वाली शुष्क परन्तु स्वास्थ्य-वर्द्धक हारमाटन हवा इस तटीय प्रदेश तक पहुँच ही नहीं पाती।

इस नाम को सियरा लिओन के शासन केन्द्र फ्रीटाउन के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त करते हैं क्योंकि यहाँ की गर्म, नम व अस्वास्थ्यकर वातावरण में आकर श्वेत जाति के लोग बीमार पड़ जाते हैं और अक्सर मर जाते हैं।

Whole Gale (पूर्ण तूफान) जब वायु ५९-६० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चलती है तो उसे पूर्ण तूफान कहते हैं। यह तूफान बड़ा भयंकर होता है और इसका प्रभाव समुद्री प्रदेशों तक ही सीमित रहता है। देश के आन्तरिक भागों तक इसका असर नहीं पहुँच पाता। इसके चलने पर पेड़ मूलत: उखड़ जाते हैं और इमारतों को काफी हानि पहुँचती है।

Willy-Willy (विली-विली) उत्तरी-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में चलनेवाला उष्ण-कटिबंधीय चक्रवात विली-विली कहलाता है। यह गर्मी के पिछले भाग में विशेष गतिशील रहता है।

अति गर्म टिमौर सागर में उत्पन्न होकर यह चक्रवात पहिले दक्षिण-पश्चिम को चलते हैं और इस दिशा में चलते हुए ये मोती निकालने के उद्योग को भारी हानि पहुँचाते हैं। थोड़ी दूर तक दक्षिण-पश्चिम दिशा में चलने के बाद ये दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ जाते हैं और तट को पार करने पर भारी वर्षा के साथ-साथ भयंकर हानि भी पहुँचाते हैं। भूखंड के ऊपर ये चक्र-वात ग्रेट आस्ट्रेलियन बाइट की ओर अग्रसर होते हैं।

आस्ट्रेलिया के आन्तरिक भाग में इसकी प्रचण्डता बहुत कम हो जाती है और इसके कारण वर्षा होने से लोग इस हवा का बड़ा स्वागत करते हैं। उस प्रदेश में यह बड़ी अच्छी समझी जाती है।

कभी-कभी यह पारिभाषिक शब्द आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान में उत्पन्न वायु भँवर व बवण्डर के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

Williwan (विलीवाँ) मैगेलन जल संयोजक में सदैव ही हवायें पश्चिम दिशा से बड़ी प्रचण्डता के साथ चलती रहती हैं। इस प्रदेश में आनेवाली प्रचण्ड तूफानी आँधी को विलीवाँ कहते हैं।

Wind (हवा) वायु की समानान्तर धारा जो किसी दिशा में कोई निश्चित गति से चलती रहती है उसे हवा कहते हैं। हवा की दिशा वह होती है जिधर से यह चलती है। दक्षिणी हवा वह है जो दक्षिण की ओर से आती है। हवा की गति को भूखंड पर मील प्रतिघण्टा और समुद्र पर नॉट प्रति घंटे में नापते हैं। हवा की वास्तविक गति एनीमोमीटर नामक यन्त्र से पता लगाई जाती है। गति की मन्दता व तीव्रता के आधार पर हवा को अनेक प्रकार की कहा जा सकता है। साधारण चाल की हवा पवन कहलाती है। मध्यम गति की हवा को आँधी कहते हैं और प्रचण्ड गति की हवा को तूफान कहते हैं। इनके और भी उपभेद हैं। (देखिये Beaufort Scale)

इसके अलावा हवा के निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं—(१) **स्थायी हवायें** जैसे व्यापारिक हवायें, पछुआँ हवायें और ध्रुवीय हवायें (२) **स्थानीय हवायें** जो स्थानीय कारणों से उत्पन्न हो जाती हैं—समुद्रीय व स्थलीय पवन, पर्वतीय व घाटी पवन, बवण्डर, धूल की आँधी, मिस्ट्रल, शिनूक आदि इसके उदाहरण हैं। (३) **परिवर्तनशील हवायें** जिनके अन्तर्गत चक्रवात व विपरीत चक्रवात को लेते हैं।

वायु में समानान्तर धारावाहिक प्रवाह दो कारणों से उत्पन्न हो जाता है—(१) दबाव से (२) तपित व ठंडे होने से। वास्तव में साधारण नियम यह है कि हवा निम्न भार की ओर चलती है। इसलिए जहाँ कहीं भी भार का ढाल बन जाता है यानी जहाँ कहीं एक स्थान पर उच्च भार और दूसरे पर निम्नभार बन जाता है वहीं वायु की धारा या हवायें उच्चभार प्रदेश से निम्नभार की ओर चलने लगती है। इस प्रकार से हवा को निम्नलिखित प्रकार का

कह सकते हैं —(१) **स्थानीय ताप के कारण उत्पन्न हवायें**—वायुभँवर या बवंडर, घाटी पवन, समुद्री पवन। (२) **स्थानीय ठंडे होने के कारण बनी हवायें**—स्थलीय पवन, पर्वती पवन, हिमनदी पवन, बोरा, मिस्ट्रल नारवे की पतझड़ वाली हवायें। (३) **स्थानीय ताप व ठंडक के साथ-साथ होने** के फलस्वरूप तूफानी आँधियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। (४) **प्रादेशिक ताप व शीत वितरण के कारण**—मानसूनी हवायें, व्यापारिक हवायें, पछुवा हवायें, उष्णकटिबंधीय चक्रवात, शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात और विपरीत चक्रवात। (५) **दूसरी वायु के दबाव से बनी हुई हवायें** जैसे फॉन, टारनैडो इत्यादि।

Wind Direction (**वायु की दिशा**) जिस ओर से वायु चलती हुई आती है उसे वायु की दिशा कहते हैं। वायु की दिशा वायुभार के ढाल पर निर्भर रहती है। जहाँ उच्च भार होगा वहीं से निम्न भार की ओर हवा चलने लगेगी। इसलिए उच्च भार प्रदेश की दिशा ही वायु की दिशा को निर्धारित करती है परन्तु पृथ्वी के आवर्तन के कारण हवा का रुख कुछ बदल जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में यह अपने दायें ओर घूम जाती है और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने से बायें ओर। इस प्रकार की वायु की दिशा सामान्यतः दिशाकोण द्वारा व्यक्त की जाती है जैसे दक्षिण-पूर्व, उत्तर-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम, उत्तर-पश्चिम आदि। वायु की दिशा सूर्य के सबसे गर्म भाग के अनुसार बदलती रहती हैं। सुबह के समय यह पूर्व से चलती है, तीसरे पहर के शुरू में यह दक्षिण से चलने लगती है और शाम के समय यह पश्चिम से चलने लगती हैं।

प्रचलित वायु की दिशा का जलवायु के अध्ययन में बड़ा ही प्रमुख स्थान है। भूमध्य रेखा की तरफ से आती हुई हवा गर्म होगी और ध्रुवों की तरफ से आनेवाली हवा स्वभावतः ठंढी होगी। इस प्रकार वायु की दिशा पर उसका तापक्रम निर्भर रहता है। हवा में नमी का अंश और वर्षा करने की शक्ति भी उसकी दिशा पर ही निर्भर रहती है। जलखण्डों पर से होकर आने वाली हवा में वर्षा करने की अधिक शक्ति होती है। इसी प्रकार उत्तर या दक्षिण से भूमध्यरेखा की ओर चलने वाली हवायें बराबर गर्म व शुष्क होती जाती हैं और उनमें वर्षा बिल्कुल भी नहीं होती। इसके अलावा ध्रुवों की तरफ आनेवाली बराबर ठंडी होती जाती हैं और खूब वर्षा करती है।

Wind Deflection (**हवा का दिशा परिवर्तन**) हवायें उच्चभार से निम्नभार की ओर अवश्य चलती हैं परन्तु उनकी दिशा सदैव एक सीधी रेखा में नहीं होती। उसमें कई वजह से परिवर्तन हो जाता है और वह अपने सीधे मार्ग से विचलित हो जाती है। इसे हवा की दिशा का परिवर्त्तन कहते हैं।

इसके संबंध में निम्नलिखित बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—(१) पृथ्वी के आवर्त्तन के कारण कोई भी प्रवाहित वस्तु अपने मार्ग से विचलित हो जाती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती रहती है। इस कारण उत्तरी गोलार्द्ध में हवायें अपने सीधे मार्ग से दायें ओर को भटक जाती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बायें को हटकर चलती रहती हैं। (२) पर्वत श्रेणियों की स्थिति के अनुसार भी वायु की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। जिन हवाओं के मार्ग में पर्वत श्रेणियाँ आरपार या लम्ब रूप स्थित हैं, वहाँ हवायें पर्वत श्रेणियों को पार करने के बाद संवाहन धाराओं के समान नीचे उतरने लगती हैं और वायु विमुख ढाल पर या वृष्टि छाया प्रदेश में भिन्न गति से चलती हैं। इसी प्रकार बंगाल की खाड़ी का दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हिमालय की श्रेणी के समानान्तर उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ने लगता है और उसकी दिशा दक्षिण-पूर्व हो जाती है। (३) चक्रवात व विपरीत चक्रवात से भी वायु की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। (४) जल और थल के मिलन बिन्दु भी वायु

की दिशा में अन्तर ला देते हैं। जल पर चलनेवाली हवा जब थल में प्रवेश करती है तो उस की गति विभिन्न हो जाती हैं।

Wind Gap (**शुष्क दर्रा**) जब कोई विशाल नदी अपने जलविभाजक के दूसरी तरफ की छोटी नदी के जल को हड़प लेती है तो हड़पी हुई नदी की तलैटी में से जलप्रवाह गायब हो जाता है और वह शुष्क पड़ी रह जाती है। इस प्रकार बनी रह गई घाटी को शुष्क दर्रा कहते हैं। (देखिये Water Gap, River Caphire)

Wind Rose (**वायुचक्र**) किसी विशेष स्थान पर सभी दिशाओं से चलने वाली हवाओं को जब हम उनकी तीव्रता के अनुपात के अनुसार एक रेखाचित्र पर अंकित करते हैं तो उसे वायुचक्र कहते हैं। वास्तव में वायुचक्र बनाने से काफी काल तक वायु की दिशा व तीव्रता को अध्ययन कर लेते हैं। फिर उसके मध्यममान या औसत को निकाल कर वायुचक्र पर अंकित करते हैं। इस प्रकार दृष्टि डालने से प्रचलित हवाओं का ज्ञान हो जाता है।

साधारण वायुचक्र में आठों दिशाओं से चलने वाली हवाओं को तीव्रता के अनुपात में खींची गई सीधी रेखाओं द्वारा अंकित करते हैं। इनकी दिशा बिल्कुल ठीक होती है और यह सब रेखा एक छोटे वृत पर आकर मिल जाती है । इस छोटे वृत्त के मध्य में बहुधा कोई अंक लिखा रहता है जिसके द्वारा यह पता चलता है कि कितने प्रतिशत अंशों में हवा बिल्कुल शान्त रही।

कुछ अन्य प्रकार के वायुचक्र में हवाओं की गति व प्रचण्डता को रेखाओं की विभिन्न मोटाइयों द्वारा प्रदर्शित कर देते हैं।

Wind Scale (**वायुगति मानदण्ड**) आजकल वायु की गति जानने के लिए एनीमोमीटर का प्रयोग करते हैं और उसके द्वारा प्राप्त निरीक्षण के आधार पर वायु की विभिन्न गति तथा उनका सामान्य प्रभाव ज्ञात किया जाता है। इसी के अनुसार वायु को कई प्रकार का कहा गया है। इसे वायु की गति मानदण्ड कहते हैं। इसका सब से अधिक महत्व नाविकों के लिए है। चूँकि एडमिरल ब्यूफ़ार्ट ने इसे निकाला था इसलिए उन्हीं के नाम पर इसे ब्यूफर्ट मानदण्ड कहते हैं। (देखिये Beaufort Scale)

Wind System (**वायु व्यवस्था**) सूर्यताप और वायुभार के भूमंडल पर वितरण की विभिन्नता के अनुसार भूमध्य रेखा और ध्रुवों के समीप तो निम्नभार प्रदेश पाये जाते हैं तथा ध्रुवों पर और कर्क तथा मकर रेखा पर उच्चभार की पेटी पाई जाती है। धरातल पर इस भार विभिन्नता के कारण उच्चभार प्रदेश से निम्नभार की ओर हवायें चलने लगती हैं।

अतएव कर्क और मकर रेखा से भूमध्य रेखा की ओर और इन्हीं अयन सीमाओं से उप-ध्रुवीय निम्नभार प्रदेश की ओर हवायें चलने लगती हैं। ध्रुवों पर उच्चभार रहता है। इसलिए ध्रुवों से अन्टार्कटिक वृत्त की ओर भी हवायें चलने लगती हैं। इस प्रकार से धरातल पर हवाओं के चलने को वायु व्यवस्था कहते हैं।

धरातल की वायु व्यवस्था के तीन अर्थ हैं—(१) कर्क और मकर रेखा के बीच भूमध्य-रेखा के बीच भूमध्यरेखा के दोनों और चलने वाली व्यापारिक हवायें। (२) उत्तरी गोलार्द्ध कर्क रेखा और आर्कटिक वृत्त के बीच तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में मकररेखा और अन्टार्कटिक वृत्त के बीच चलनेवाली पछुआ हवायें और (३) ध्रुवों तथा आर्कटिक व अन्टार्कटिक वृत्त के बीच चलने वाली ध्रुवीय हवायें। (देखिये Planetary Winds, Trade Winds, Westerlies, Polar Winds)

Wind Vane (विन्ड वेन) हवा की दिशा को नापने वाले यन्त्र को विन्ड वेन कहते हैं। इस यन्त्र में एक संतुलित पिंड एक लम्बरूप धुरी पर आधारित रहता है। इस संतुलित पिंड में एक समानान्तर हत्था लगा रहता है। इस समानान्तर हत्थे का एक सिरा तीर की तरह नुकीला होता है और दूसरा चपटा हुआ सपाट। जरा सी हवा लगने पर यह पिण्ड व हत्था घूम जाता है। इसके आधार पर चारों दिशाओं के सूचक बिन्दु बनते रहते हैं। जिस बिन्दु पर यह तीर जैसी नोक जाकर रुक जाती है वही हवा की दिशा होती है। इस प्रकार इस हत्थे का नुकीला भाग वायुअभिमुख हिस्सा होता है और चौड़ा चपटा भाग वायुविमुख।

Wind Veering (हवा की वीरइंग) (देखिये Veering)

Wind Velocity (हवा की गति) हवा की गति धरातल के ऊपरी व निचली अक्षांश के तापान्तर पर निर्भर रहता है। जब यह तापान्तर अधिकतम होता है तो हवा की चाल भी बड़ी तेज हो जाती है। परन्तु उच्च अक्षांशों में ताप का परिवर्तन जितना अधिक होता है उतना निम्न अक्षांशों में कदापि नहीं। इसलिये समानान्तर ताप और वायुभार ढाल के अधिकतम होने पर हवा की गति भी सबसे ज्यादा तेज हो जाती है। यही कारण है कि जाड़ों में हवा की गति बड़ी भीषण रहती है। ४५° उत्तरी अक्षांश के समीप हवाओं की गति सबसे अधिक तेज रहती है। परन्तु जाड़े में यह प्रदेश भूमध्यरेखा की तरफ या दक्षिण को खसक आता है। प्रति दिन दोपहर के एक बजे से दो बजे तक हवा की गति बड़ी भीषण रहती है और सूर्य निकलते समय यह सबसे कम होती है। हवा की गति में यह न्यूनाधिक मेघाच्छादित दिनों की अपेक्षा साफ मौसम वाले दिनों में अधिक रहती है। जाड़ों की अपेक्षा गर्मी में दैनिक गति का अन्तर अधिक रहता है। वायु की गति अक्षांश के अनुसार भी बदलती रहती है। भूमध्यरेखा के समीप से ऊपरी अक्षांशों की ओर जानेवाली वायु की गति अपेक्षाकृत अधिक तेज होती जाती है। इसके विपरीत ऊपरी अक्षांशों से भूमध्य रेखा की तरफ उतरने वाली वायु बराबर धीमी होती जाती है।

वायु की गति पर वायुमण्डल की पारदर्शता, धरातल की बनावट तथा संवाहन धाराओं का बड़ा असर पड़ता है। वायु की गति ऊँचाई के साथ-साथ बढ़ती जाती है। ३०० से ५०० मीटर की ऊँचाई तक वायु की गति बराबर बढ़ती जाती है। इसके बाद २०० मीटर तक वायु की गति घटती जाती है। ५०० से १५०० मीटर की ऊँचाई तक अनियमित हवायें बराबर तीव्रतर होती जाती हैं। १५०० से ५००० मीटर तक की ऊँचाई तक वायु की गति की तीव्रता बड़े स्थायी रूप से बढ़ती रहती है। समतापमण्डल पर पहुँचने पर यह वृद्धि बन्द हो जाती है।

पर्वतीय प्रदेशों में वायुगति रात में सबसे तेज हो जाती है और दिन में सबसे कम रहती है। इसके विपरीत मैदानी भागों में वायु की गति दिन में सबसे तेज और रात में सब से मन्द रहती है।

Windward (वायुअभिमुख) जो दिशा या पार्श्व वायु की दिशा के सामने पड़ती है उसे वायुअभिमुख दिशा कहते हैं। पर्वतीय प्रदेशों में वायु की दिशा के सामने पड़ने वाले ढालों पर खूब वर्षा होती है और इसी कारण वहाँ पर वनस्पति भी घनी होती है। (देखिये Orographic Rain)

Wood (लघु वन) पेड़ों के विस्तृत समूह को लघु वन कहते हैं। यह बहुत

घना नहीं होता और नहीं इसमें घासफूस व झाड़-झंखार पाये जाते हैं। वन प्रदेश की अपेक्षा लघु वन अधिक खुले रहते हैं।

Wooded Area (**वनाच्छादित प्रदेश**) जिस भूमिखंड के अधिकतर प्रदेश में यहाँ-वहाँ पेड़ों के झुरमुट पाये जाते हैं उसे वनाच्छादित प्रदेश कहते हैं।

World Geography (**भूमण्डल का भूगोल**) पृथ्वी के प्रादेशिक विवरण को भूमण्डल का भूगोल कहते हैं। इसके अन्तर्गत आर्थिक व भौतिक विकास का प्रादेशिक वर्णन दिया रहता है।

Xerophyte (**ज़ेरोफाइट**) वह पौधे जो कम वर्षा के भागों में भी उग सकते हैं उसे ज़ेरोफाइट कहते हैं। इस प्रकार की वनस्पति उन प्रदेशों में पाई जाती है जहाँ साधारणतया सूखा पड़ता है। इस प्रकार के पौधे में रचनात्मक विशेषतायें होती हैं जिनकी सहायता से यह थोड़े-से-थोड़े जल से अधिकाधिक लाभ उठाता है। इसकी जड़ें लम्बी या बढ़ी हुई होती हैं। पत्तियाँ छोटी व मोटी होती हैं। लम्बी जड़ें भूमि के नीचे बहुत भीतर तक धँसकर जल ले आती हैं। मोटी पत्तियों पर वाष्पीकरण तथा सूर्यताप का असर कम पड़ता है। किसी-किसी प्रकार के पौधे में पत्तियाँ बिल्कुल भी नहीं होतीं। केवल काँटे ही काँटे होते हैं। ज़ेरोफाइट पौधों के डंठल कभी-कभी बड़े गूदेदार होते हैं ताकि अधिक समय तक उनमें पानी रुक सके। इन पौधों की छाल मोटी होती है और उन पर ऐसी चिकनाहट होती है जैसे कि किसी ने मोम चढ़ा दिया हो। इस प्रकार ये पौधे तेज धूप से होनेवाले वाष्पीकरण से अपनी रक्षा करते हैं।

Yardangs (**यारदाँग**) रेत के कणों से लदी हुई हवा जब चट्टानों से टकराती है तो उनके निचले भाग को काट देती है और इस प्रकार चट्टानों का अग्रभाग ढालू होकर ऊपर से लटकने लगता है। इन लटकती हुई चट्टानी श्रेणियों को यारदाग कहते हैं। इनके दोनों ओर के ढाल बड़े तीव्र होते हैं और ये एक दूसरे से लम्बे बरामदे जैसी चट्टानों द्वारा अलग किये जाते हैं। ये यारदांग मोटी तौर पर एक दूसरे के समानान्तर रहते हैं और प्रचण्ड वायु के मार्ग व दिशा में स्थित होते हैं। वास्तव में यारदाँग, जेरन का बढ़ा-चढ़ा रूप है। (देखिये Zergen)

यारदाँग केवल वहीं आते हैं जहाँ हवा के द्वारा चट्टानों पर प्रचण्ड आघात होता है। यदि कहीं कठोर चट्टानों के नीचे व चारों ओर मुलायम चट्टानें बिछी हों या कठोर चट्टानों के नीचे की परत में सँधे हों तो आघात से नीचे की चट्टानें कट कर अलग हो जाती हैं और ऊपर की चट्टानें खड़ी रह जाती हैं। इस प्रकार यारदाँग की एक श्रृंखला सी बन जाती है और तब उसे कुकुरमुत्ते जैसी भूरचना (Mushroom Topography) कहते हैं।

Year (**वर्ष**) जिस समय के अन्दर पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक चक्कर पूरा कर लेती है उसे एक वर्ष कहते हैं। एक ऋतु चक्र के पूरा होने में भी एक वर्ष लग जाता है। बसन्त ऋतु की समरात्रि स्थिति से लेकर दूसरी वसन्त ऋतु की समरात्रि स्थिति तक नापने पर एक वर्ष ३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनट और ४६ सेकण्ड का बैठता है। परन्तु कैलेन्डर के वर्ष को केवल ३६५ दिन का माना जाता है। इस प्रकार वास्तविक वर्ष की अवधि से कैलन्डर के वर्ष में १।४ दिन की कमी रह जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए प्रत्येक चौथे साल को ३६६ दिन का मानते हैं और उसे लौंद का साल कहते हैं। (देखिये Calendar, Leap year)

Yield (उपज, उत्पादन) किसी प्रकार के धन्धे से प्राप्त वस्तु को उपज कहते हैं।

कृषि या पशुचारण के धन्धे में भूमि या पशु की एक इकाई से प्राप्त उत्पादन को उपज कहते हैं। इसी प्रकार गौण उद्योग-धन्धों में लगाई हुई पूँजी व परिश्रम की प्रति इकाई पर तैयार माल के औसत को निकाल कर उपज ज्ञात करते हैं।

किसी जगह या धन्धे की उपज को निकालने तथा व्यक्त करने में प्रति इकाई अवश्य लिख देते हैं जैसे उपज प्रति एकड़ या उत्पादन प्रति मजदूर इत्यादि।

Zenith (शिरोबिन्दु) आकाशमण्डल का वह स्थान जो निरीक्षक के ठीक ऊपर लम्बरूप स्थित होता है उसे शिरोबिन्दु कहते हैं। यह शिरोबिन्दु दो प्रकार का होता है—(१) ज्योतिष शिरोबिन्दु और (२) भौगोलिक शिरोबिन्दु। पृथ्वी की धरातल से ऊपर की ओर बढ़ायी गई रेखा (Plumb Line) जिस बिन्दु पर आकाश पथ (Celestial Sphere) को काटती है उसे ज्योतिष शिरोबिन्दु कहते हैं। भौगोलिक शिरोबिन्दु वह स्थान है जहाँ पर पृथ्वी के धरातल पर लम्बरूप या समकोण बनाती हुई रेखा आकाश पथ को काटती है। इस प्रकार ये दोनों प्रकार के शिरोबिन्दु सदैव एक ही स्थान पर कदापि नहीं होते।

शिरोबिन्दु के द्वारा समय ज्ञात करने में बड़ी सुविधा होती है। प्रारम्भ में इरॉटासथीनीज नामक विद्वान ने शिरोबिन्दु के सहारे ही पृथ्वी की परिधि को नापा था।

Zenithal Projection (जेनीथल अंकन) जेनिथल अंकन में ग्लोब के केन्द्र बिन्दु के ठीक ऊपर से प्रकाश आता हुआ माना जाता है। इस प्रकाश से अक्षांश व देशान्तर रेखायें एक सपाट कागज पर जो ग्लोब को किसी बिन्दु पर छूता रहता है छायांकित हो जाती हैं। इस प्रकार यह शंक्वाकार अंकन का ही विशेष रूप है। इस में शंकु के स्थान पर चौकोर कागज लेते हैं।

जेनीथल अंकन पर मानचित्र के केन्द्र से सब ओर की दिशायें बिल्कुल ठीक रहती हैं। जिस कागज पर अक्षांश व देशान्तर रेखायें छायांकित की जाती है वह सदैव ग्लोब को ध्रुव बिन्दु पर ही नहीं छूता रहता। ग्लोब के किसी भी बिन्दु पर यह छूता हुआ रह सकता है और स्पर्श स्थान या बिन्दु ही बाद में मानचित्र का केन्द्र होता है।

जब मानचित्र बनाने का सपाट कागज ग्लोब को ध्रुव पर छूता है तो उसे ध्रुवीय जेनीथल अंकन कहते हैं; जब भूमध्यरेखा पर छूता है तब उसे भूमध्यरेखिक जेनीथल अंकन कहते हैं और जब भूमध्यरेखा और ध्रुव के बीच किसी बिन्दु पर छूता है तो आबलीक (Oblique) जेनीथल अंकन कहते हैं।

इसी प्रकार प्रकाश की स्थिति के अनुसार भी इसके भेद हो जाते हैं—(१) जब प्रकाश ग्लोब के केन्द्र पर रहता है तो उसे ग्नोमिक अंकन कहते हैं (२) जब प्रकाश ग्लोब को छूनेवाले बिन्दु के विपरीत परिधि पर स्थित होता है तो उसे स्टीरियोग्रोमिक अंकन कहते हैं। (३) जब प्रकाश बहुत दूर पर स्थित रहता है तो उसे आर्थोग्रैफिक अंकन कहते हैं। (देखिये Gnomic, Stereographic, Orthographic Projection)

Zenithal Equal Area Projection (जेनीथल समक्षेत्रफल अंकन) जिस जेनीथल अंकन में दो अक्षांश व देशान्तर अंशों के बीच का क्षेत्रफल ग्लोब के अनुसार होता है उसे जेनीथल समक्षेत्रफल अंकन कहते हैं। (देखिये Homolographic Projection)

Zenithal Equidistant Projection (जेनीथल समदूरी अंकन) जिस जेनीथल अंकन में मानचित्र के केन्द्र से सब दिशाओं में दूरी ग्लोब पर उन्हीं दूरी के बराबर होती

है, उसे जेनीथल समदूरी अंकन कहते हैं। इस दशा में ग्लोब को उसके केन्द्र से प्रकाशित किया जाता है।

Zodiac (**राशिपथ**) आकाशमण्डल के उस कटिबंध या पेटी को जिसमें से होकर सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य मुख्य ग्रह भ्रमण करते हैं उसे राशिपथ कहते हैं। इस राशिपथ को १२ खंड में बाँट देते हैं और प्रत्येक खंड को राशि कहते हैं। प्रत्येक राशि के अन्तर्गत कुछ तारों के समूह होते हैं और साल के बारह महीनों में सूर्य इन्हीं में से होता हुआ भ्रमण करता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार ये बारह राशियों से प्रत्येक का सम्बन्ध साल के बारह महीनों में से किसी महीने से अवश्य होता है। १२ राशियाँ क्रमशः साल के १२ महीनों में सूर्य की विभिन्न दशा का परिचय कराती हैं।

प्रत्येक राशि का विस्तार ३० अंश होता है और इनके विस्तार को सूर्य की वसन्त ऋतु वाली समरात्रि स्थिति से नापते हैं। १२ राशियों के नाम इस प्रकार हैं—मेष (Ram), वृष (Bull), मिथुन (Twins), कर्क (Crab), सिंह (Lion), कन्या (Virgin), तुला (Balance), वृश्चिक (Scorpion), धनु (Archer), मकर (Goat), कुम्भ (Water Pourer), और मीन (Fishes)। इन के ये नाम विभिन्न तारा समूह के लिए माने गये सांकेतिक चिन्हों या चित्र पर आधारित हैं।

Zodiacal Light (**राशिपथ प्रकाश**) सूर्यास्त के बाद जब गोधूलि का धुँधला प्रकाश मन्द पड़ चुका होता है तो राशिपथ के समानान्तर आकाश के पश्चिमी भाग में एक हल्की रोशनी दिखलाई पड़ती है। इस रोशनी को प्रकाश कहते हैं और इसका आकार व रूपरेखा शंकु के समान होती है। सूर्योदय से पहिले जब गोधूलि के धुँधलेपन का भास भी नहीं रहता है, उस समय भी यह शंक्वाकार प्रकाश आकाश के पूर्वी भाग से चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है।

इस राशिपथ प्रकाश का महत्व स्थलखंड पर तो बहुत नहीं है परन्तु समुद्र व महासागरों पर यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है और अंतरिक्ष में दिलचस्पी लेने वाले विद्वान् इसके आधारभूत कारण को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं।

Zonda (**जोन्डा**) यह एक स्थानीय पवन है जो अर्जेन्टाइना और युरुगुवे में चलती है। यह पवन उत्तर से चलता है और अपने साथ उष्ण कटिबंधीय वायु को बहा लाता है। यह पवन बड़ा ही गर्म व सुस्ती का मौसम उत्पन्न कर देता है। इसकी विशेषतायें आस्ट्रेलिया के ब्रिकफील्डर से मिलती-जुलती हैं। आर्जेन्टाइना और युरुगुवे में चलने वाली पैम्परो हवा के पहिले जोन्डा प्रवाहित होती है। इसके चलने पर लोगों को सुस्ती मालूम पड़ती है और किसी काम करने की तबियत नहीं होती।

Zones (**कटिबंध**) सूर्य से प्राप्त धरातल की गर्मी भूमध्य रेखा से दूर जाने पर बराबर कम होती जाती है। इस आधार पर पृथ्वी को पाँच प्रदेशों या पेटियों में बाँट देते हैं। इन्हें कटिबंध कहते हैं। आर्कटिक और अन्टार्कटिक वृत्त के भीतर का प्रदेश शीत कटिबंध कहलाता है। अन्टार्कटिक वृत्त के भीतर का भाग उत्तरी शीत कटिबंध और अन्टार्कटिक वृत्त के भीतर का प्रदेश दक्षिणी शीत कटिबंध कहलाता है। कर्क रेखा और आर्कटिक वृत्त के बीच का प्रदेश उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध और मकररेखा तथा अन्टार्कटिक वृत्त के बीच का प्रदेश दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध कहलाता है। भूमध्यरेखा के बीच ये सबसे गर्म भाग उष्ण कटिबंध कहलाता है।

पृथ्वी का इस प्रकार कटिबंधों में विभाजन त्रुटिपूर्ण है क्योंकि इसके अन्तर्गत भूमि की ऊँचाई तथा समुद्र से दूरी या समीपता के कारण पड़ने वाले अन्तर पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है। इसलिये जलवायु के आधार पर किये गये भौगोलिक प्रदेशों में पृथ्वी का विभाजन कहीं अधिक उपयोगी व यथार्थ है।

Zone of Dwindling River **(लोप होती हुई नदी का प्रदेश)** (१) चूने की चट्टानों और खड़िया मिट्टी के बने मैदानों में नदियाँ अधिक समय तक सतह पर नहीं रह पातीं। ऊपर के गर्त या छिद्र में होकर वह नीचे की कन्दराओं में चली जाती हैं और उनकी घाटी सतह पर शुष्क-सी पड़ जाती है। इसे लोप होती हुई नदी का प्रदेश कहते हैं।

(२) जब एक नदी दूसरी नदी के जल को हड़प लेती है तो हड़पी हुई नदी का उदगम छीन लिये जाने से उसकी तलैटी में जलधारा दिन प्रति दिन क्षीण होती चली जाती है। इस प्रकार लोप होती हुई नदी की घाटी को लोप होती हुई नदी का प्रदेश कहते हैं।

(३) जो नदियाँ प्रतिवर्ष बाढ़ के बाद अपने मार्ग को बदल देती हैं उनके बाढ़ के मैदान में बहुत से ऐसे परित्यक्त घुमाव रहते हैं जो नदी की पिछली तलैटी के प्रतीक हैं। इन घुमाओं व परित्यक्त तलैटी भाग में नदी की धारा दिन पर दिन कम होती जाती है और इसे लोप होती हुई नदी का प्रदेश कहते हैं।

Zone Time **(कटिबंधीय समय या प्रारम्भिक समय)** (देखिये Standard Time)

Zoogeography **(जीव-जन्तु भूगोल)** पृथ्वी के धरातल पर जीव-जन्तुओं के वितरण के अध्ययन को जीवजन्तु भूगोल कहते हैं। इसके अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि विभिन्न प्रकार के पशु किन दशाओं में पाये जाते है। साधारणतया जलवायु प्राकृतिक बनावट और वनस्पति के ऊपर पशुओं का अस्तित्व निर्भर रहता है। इसलिये पशु भूगोल के क्षेत्र में जलवायु, भूरचना और वनस्पति के वे अंश आ जाते हैं जिनका सम्बन्ध पशु जीवन से है।

पशु दो प्रकार के होते हैं—उपयोगी और हिंसक। प्रथम को मनुष्य पालता है और उनसे अनेक प्रकार की वस्तुयें प्राप्त करता है या उन्हें अपना बोझा ढोने के काम में लाता है। हिंसक पशुओं का शिकार कर के कभी-कभी बहुत-सी खानाबदोश व आदिम जातियाँ अपना पेट भरती हैं। दूसरे दृष्टिकोण से उपयोगी पशु या पालतू पशु मनुष्य की आर्थिक उन्नति में सहायक होते हैं और इसके विपरीत हिंसक पशु व हानिकारक कीड़े-मकोड़े नुकसान पहुँचा करके कार्य में बाधा डालते हैं।

इन्हीं सब बातों का अध्ययन जीव-जन्तु भूगोल का व्यापक क्षेत्र बनाता है। मवेशी के आधार पर दुग्धशाला व मांस उद्योग का अस्तित्व व विकास पाया जाता है। भेड़-बकरी का मांस व ऊन दोनों ही के लिए पाला जाता है। सूअर से गोश्त तथा बाल और चर्बी जैसी अन्य बहुत-सी गौण वस्तुयें प्राप्त होती हैं। मुर्गी और शुतुरमुर्ग को अंडों के लिए पालते हैं। मधुमक्खी व रेशम के कीड़े तथा लाख के कीड़े से क्रमशः शहद, रेशम, और लाख प्राप्त होती है। बैल, हाथी, घोड़े और ऊँटों को सवारी के काम में लाया जाता है। शेर, चीता तेंदुआ बहुत-से कीड़े-मकोड़े जैसे टीडी, सी फ्लाइ आदि हिंसक व जहरीले होने के कारण विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं।

Zoogeographical Map (जीव-जन्तु मानचित्र) जिन मानचित्रों पर जीव-जन्तुओं का वितरण दिखलाया जाता है उन्हें जीवजन्तु मानचित्र कहते हैं। वास्तव में जीव-जन्तुओं का वनस्पति के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि वनस्पति मानचित्रों को जीव-जन्तु मानचित्र से किसी भी प्रकार अलग नहीं रक्खा जा सकता। दीर्घ मानदण्ड पर बनाये गये मानचित्रों में वनस्पति और जन्तुओं का वितरण साथ-साथ दिखलाया जाता है।

इस प्रकार के मानचित्रों में तथ्यों को रंग द्वारा अथवा काली व सफेद स्याही द्वारा अंकित किया जाता है। इसके अलावा बीच-बीच में सांकेतिक अक्षरों व चिन्हों द्वारा जीव-जन्तुओं के नाम, घनत्व तथा आर्थिक उपयोगिता आदि को भी दिखलाया जा सकता है। इन पर आश्रित धंधों की ओर भी इशारा कर दिया जाता है।